शहीदे इन्सानियत

लेखक: आयतुल्लाहिल उज़मा सय्यदुल उलमा

मौलाना सय्यद अली नक़ी नक़वी र.अ.



हिन्दी अनुवाद: फ़िरोज़ आलम रिज़वी

alinaqinaqvi.blogspot.in
www.slideshare.net/changezi
youtube.com/user/mahakavi

सिलसिल–ए–इशाअत नूरे हिदायत फ़ाउन्डेशन नं०31

शहीदे इन्सानियत

लेखक

आयतुल्लाहिल उज़मा सय्यदुल उलमा मौलाना

सय्यद अली नक़ी नक़वी[र०अ०]

नाम किताब	:	**शहीदे इन्सानियत**
मुसन्निफ़	:	आयतुल्लाहिल उज़्मा सय्यदुल उलमा मौलाना सय्यद अली नक़ी नक़वी र०अ०
तादाद	:	एक हज़ार
सने इशाअत	:	फ़रवरी 2017
कम्पोज़िंग	:	शाहिद अली आज़मी
प्रेस	:	नुक्कर प्रिन्टिंग एण्ड बाइन्डिगं सेन्टर 26— शरीफ़ मंज़िल, हुसैनाबाद, लखनऊ—3
क़ीमत	:	Rs. 300

नाशिर

नूरे हिदायत फ़ाउन्डेशन

इमामबाड़ा गुफ़रानमआब, मौलाना कल्बे हुसैन रोड, चौक,
लखनऊ-226003 (उ० प्र०) भारत

फ़ोन नं० 0522-2252230 मो० :08736009814, 09335996808

Email: noorehidayat@gmail.com, Web: noorehidayatfoundation.org

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

وَلَا تَحْسَبَنَّ الَّذِيْنَ قُتِلُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ اَمْوَاتًا بَلْ اَحْيَاءٌ عِنْدَ رَبِّهِمْ يُرْزَقُوْنَ

और जो लोग ख़ुदा की राह में शहीद किये गए उन्हें हरगिज़ मुर्दा न समझो बल्कि वह लोग ज़िन्दा हैं और अपने परवरदिगार की तरफ़ से रिज़्क़ पाते हैं। (सूरए आले इमरान / 169)

इन्सान को बेदार तो हो लेने दो
हर क़ौम पुकारेगी हमारे हैं हुसैन
(जोश मलीहाबादी)

शहीदे इन्सानियत

लेखक

आयतुल्लाहिल उज़्मा सय्यदुल उलमा मौलाना सय्यद अली नक़ी नक़वी ता०स०

मिलने का पता

नूरे हिदायत बुक डिपो

इमामबाड़ा ग़ुफ़रानमआब, मौलाना कल्बे हुसैन रोड, चौक,
लखनऊ-226003 (उ० प्र०) भारत

फ़ोन नं० 0522-2252230 मो० :08736009814, 09335996808

Email: noorehidayat@gmail.com, Web: noorehidayatfoundation.org

अर्ज़े हाल

हिन्दी के इस दौर में शिद्दत से इस बात की ज़रूरत महसूस की जा रही थी कि जवान तबके के लिए जो उर्दू से ज़्यादा हिन्दी ज़बान से आशना हैं किताब **"शहीदे इन्सानियत"** हिन्दी ज़बान में शाया की जाए ताकि हिन्दी रस्मुल ख़त पढ़ने वाले हज़रात भी सरकारे सैय्यदुल उलमा आयतुल्लाहिल उज़मा मौलाना अली नक़ी नक़वी की इस शाहकार और अज़ीमुश्शान किताब से फ़ायदा उठा सकें जो सीरते इमामे हुसैन और वाक़-ए-करबला पर मबनी अपनी नौइयत की मुनफ़रद और बेमिसाल किताब है। याद रहे कि इसके पहले 1984 ई0 में यादगारे हुसैनी के ज़ेरे एहतेमाम ये किताब अंग्रेज़ी ज़बान में भी शाया हो चुकी है। जिसका तरजमा जनाब सै0 अली अख़्तर साहब मरहूम ने फ़रमाया था। इसके अलावा लन्दन से भी शहीदे इन्सानियत का अंग्रेज़ी तरजमा शाया हो चुका है। चुंकि सरकारे सैय्यदुल उलमा की आलेमाना गुफ़तगु हिन्दीदाँ हज़रात को समझने में दुशवारी न हो लेहाज़ा मुशकिल अलफ़ाज़ के नेमुलबदल आसान अलफ़ाज़ भी रखे गये हैं और जनाब की असल तहरीर से कोई छेड़छाड़ नहीं की गई है जो उन्होंने अवाम के लिए तरतीब दी है। हिन्दी ज़बान में तरजमा करने में जनाब मौलाना असीफ़ जायसी और जनाब तज़हीब नगरौरी ने हक़ीर का मुकम्मल साथ दिया जो शुक्रिये के मुस्तहक़ हैं।

अपनी कोताह इल्मी का एतेराफ़ करते हुए नेमुलबदल अलफ़ाज़ में जो कमी रह गई हो उसके लिए तमाम क़ारईन से मुआज़ेरत ख़्वाह हूँ।

वस्सलाम

फ़िरोज़ आलम रिज़वी
शीशमहेल, हुसैनाबाद, लखनऊ
मोबाइल नं0 : 09450637057

मुन्दरजात

पेश लफ़्ज़

ब–फ़ज़्ले इलाही अब उसकी तौफ़ीक़ से वह हंगाम आ गया कि "शहीदे इन्सानियत" अस्ल किताब की शक्ल में मन्ज़रे आम पर लाई जा सके।

किताब के "मसव्वदे" (ख़ाके) की ब–ग़रज़े इस्तेसवाब इशाअत (प्रिन्ट) के बाद जिन अफ़राद ने नर्म व गर्म मुख़तलिफ़ लहजों, और तामीरी (सुलझे हुए) व तख़रीबी (फ़साद वाले) मुख़तलिफ़ सूरतों से अपने ख़यालात का इज़हार फ़रमाया वह सब ही शुक्रिये के मुस्तहक़ हैं और इस ऐडीशन में अस्ल मक़ासिदे (मक़्सद की जमा) किताब और नश्रे हुसैनियत के अहम मफ़ादात (फ़ाएदों) का तहफ़्फ़ुज़ (लिहाज़) करते हुए जहाँ तक मुमकिन था उन सबका लिहाज़ किया गया है।

वस्सलाम

अली नक़ी नक़वी उर्फ़ेया अन्हू

तमहीद

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعَالَمِيْنَ وَالصَّلٰوةُ عَلٰى سَيِّدِ الْمُرْسَلِيْنَ وَآلِهِ الطَّاهِرِيْنَ

दुनिया में कोई तालीम याफ़्ता ऐसा न होगा जिसने अरब का नाम न सुना हो। अरब एक रेगिस्तानी मुल्क है जो ऐशिया की मग़रबी सरहद पर वाक़े है और जिसके साहिल पर बहरे अहमर (लाल समुद्र) लहरें मार रहा है, उसी मुल्क से सातवीं सदी ईसवी शुरू होने के बाद एक इन्क़ेलाब की लहर उठी जिसका नाम है "इस्लाम" उस इन्क़ेलाब के बानी हज़रत मोहम्मद बिन अब्दुल्लाह थे जिन्हों ने अपनी पैग़म्बरी का ऐलान करते हुए दुनिया को कामिल तौहीद का पैग़ाम पहुंचाया और बुत परस्ती, इक़्तेदार परस्ती, सरमाया परस्ती ग़रज़कि ग़ैरुल्लाह की हर तरह की परस्तिश की मुख़ालिफ़त की। उससे उन लोगों को मुख़ासिमत (दुश्मनी) पैदा हो गई जिनके इक़्तेदार को इस तालीम से नुक़्सान पहुँचता था। उन्होंने इस इन्क़ेलाब को रोकने की कोशिश की और उनके हाथों पैग़म्बर को बड़ी तक्लीफ़ें उठाना पड़ीं।

इस मुख़ालिफ़त में बनी उमय्या पेश पेश थे। इसलिये कि अगरचे पैग़म्बरे इस्लाम[स0अ0] की तालीम बराहे रास्त किसी ख़ानदान की बलन्दी और किसी ख़ानदान की पस्ती की हिमायत नहीं करती थी मगर आपकी तालीम में बलन्दी और इज़्ज़त का जो मेयार क़रार दिया गया था वह सिर्फ़ किरदार की ख़ूबी, फ़राएज़े इन्सानी की बजा आवरी (पूरा करना) थी। इस मेयार पर बनी उमय्या के अक्सर अफ़राद पूरे न उतरते थे। चुनानचे उमय्या के पोते अबू सुफ़यान बिन हर्ब ने इस्लाम के ख़िलाफ़ बग़ावत का झंडा बलन्द किया। अरब के हट धर्म और जाहिल बुत परस्त उस अलम के नीचे जमा हो गए और हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] को सताने और तबलीग़े इस्लाम में रोड़े अटकाने लगे और आप बराबर मुसीबतें और सख़्तियाँ झेलते रहे और दायरा आपके पैग़ाम की मक़बूलियत का वसीअ् (फैलता) होता गया। यहाँ तक कि हिजाज़ (आज का सऊदी अरब) के दूसरे अहम शहर मदीने के रहने वालों ने इस तालीम को क़ुबूल कर लिया और आपकी नुसरत का वादा करके आपको और आपके

साथियों को वहाँ आने की दावत दे दी। चुनानचे आपके साथ वाले वहाँ रफ़्ता रफ़्ता जाने भी लगे और ज़्यादातर चले गए। जब मक्का वाले आपके मुख़ालिफ़ीन ने यह देखा तो अब उन्होंने ऐका करके आपकी जान लेने का फ़ैसला कर लिया और रात के वक़्त आपके मकान को आकर घेर लिया मगर आप अपने चचाज़ाद भाई हज़रत अली[अ०स०] को अपने बिस्तर पर लिटा कर खुद उनके हलक़े से निकल गए और मदीने की तरफ़ रवाना हो गए। इस वाक़िये को "हिजरत" के नाम से याद किया जाता है और इसी से मुसलमानों के हिजरी सन की इब्तेदा होती है।

दुश्मनों ने हिजरत के बाद भी आपको चैन से बैठने न दिया और कई मर्तबा चढ़ाई करके आपको क़त्ल करने आये। मजबूरन आपको कई लड़ाईयाँ लड़नी पड़ीं जिन में बद्र, ओहद, और अहज़ाब बहुत मशहूर हैं। मगर इन तमाम लड़ाईयों में अबू सुफ़ियान को हर मर्तबा शिकस्त हुई और हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स०अ०] के हामियों की तादाद और उनकी ताक़त बराबर बढ़ती रही। आख़िर बनी उमय्या की कूव्वत बिल्कुल टूट गई और अपनी कमज़ोरी को छुपाने के लिये उन्होंने भी कुबूले इस्लाम की नक़ाब डाल ली मगर मौक़े के मुन्तज़िर रहे कि इस्लाम की ताक़त कुछ भी कमज़ोर हो तो उन्हें अपने गए हुए इक़्तेदार (हुकूमत) को वापस लाने का मौक़ा मिले।

हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स०अ०] की ज़िन्दगी में उनकी इस आरज़ू के पूरा होने का कोई इम्कान न था मगर उसके थोड़े ही अरसे बाद हज़रत की वफ़ात हो गई और मुसलमानों के निज़ाम में अबतरी (कमज़ोरी) पैदा हो गई। उस वक़्त की हुकूमत की मसलहतो के दुनयवी मसालेह (मसलहतों) ने बनी उमय्या को शाम में अपनी हुकूमत क़ायम करने का मौक़ा दे दिया जो शुरू में सिर्फ़ एक सूबेदार या गवर्नर की हैसियत से थी मगर रफ़्ता रफ़्ता उसके इक़्तेदार और कूव्वत में इज़ाफ़ा होता गया। यहाँ तक कि आख़िर में उसने खुद मुख़्तार (आज़ाद) सलतनत की हैसियत हासिल कर ली।

उन लोगों ने शाम के मुल्क में अपना क़ब्ज़ा जमाते ही हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स०अ०] के राएज किये हुए तरीक़ों और इस्लाम की फैलाई हुई मसावात (बराबरी) को मिटाना शुरू कर दिया और आख़िर में तो यह हालत हुई कि क़ुरआनी अहकाम की एलानिया मुख़ालिफ़त होने लगी।

हज़रत रसूल[स०अ०] के हक़ीक़ी जानशीन जो इस्लामी तमद्दुन व तहज़ीब के मुहाफ़िज़ थे उसको किसी तरह बर्दाश्त न कर सकते थे। जब अली इब्ने

अबी तालिब[अ०स०] जो रसूल[स०अ०] के चचाज़ाद भाई, उनकी आवाज़ पर सबसे पहले लब्बैक कहने वाले और शुरू से आख़िर तक इस्लाम की इशाअत में उनके दस्तो बाज़ू (शाना बशाना) थे मुसलमानों के तख़्ते हुकूमत पर आये तो उन्हें हुकूमते शाम से मुक़ाबला करना पड़ा और सिफ़्फ़ीन की ख़ूँरेज़ लड़ाई हुई मगर अभी हज़रत अली[अ०स०] का इरादा और काम मुकम्मल नहीं हुआ था कि मस्जिदे कूफ़ा में ऐन हालते सजदा में हज़रत अली[अ०स०] के सर पर तलवार लगाई गई जिससे आप ने शहादत पाई। हज़रत अली[अ०स०] के बाद आपके बड़े फ़रज़न्द इमाम हसन[अ०स०] ने कुछ शराएत का पाबन्द करने के बाद हुकूमते शाम से सुल्ह करली मगर हुकूमते शाम ने उन शराएत की पाबन्दी नहीं की और खुफिया तौर पर ज़हर दिलवा कर उनकी ज़िन्दगी का ख़ातेमा कर दिया। अब पैग़म्बर[स०अ०] के ख़ानदान में उसूले इस्लाम के तहफ़्फ़ुज़ की पूरी ज़िम्मेदारी हुसैन[अ०स०] पर थी जो हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स०अ०] के दूसरे नवासे और हज़रत अली[अ०स०] छोटे बेटे थे।

हुकूमते शाम के तख़्त पर अबू सुफ़ियान का पोता यज़ीद बिन मुआविया बैठा जो बड़ा ही शराब ख़्वार और बद–किरदार था और ऐसे अख़लाक़ी जराएम का मुरतकिब (करता) होता था जिनका तज़केरा भी तहज़ीब और शाइस्तगी के ख़िलाफ़ है। उसके बावजूद इतने दिन के मज़बूत उमवी इक़्तेदार (हुकूमत) की हैबत से अवाम को दम मारने की हिम्मत न थी। वह हुकूमत के ज़ुल्मो सितम से इतना डर गए थे कि ख़ौफ़े ख़ुदा का एहसास बाक़ी न रहा था।

मगर यज़ीद जानता था कि हिजाज़ के मुल्क में शहरे मदीना के महल्ल–ए–बनी हाशिम के अंदर एक इन्सान है जो मुझसे नहीं डरता सिर्फ़ ख़ुदा से डरता है और वह उसूले इस्लाम का हक़ीक़ी मुहाफ़िज़ रसूल[स०] का नवासा है। वह ख़ामोश सही मगर किया मालूम किस दिन दुनिया की आँखों से ग़फ़लत के पर्दे हट जायें और वह सच्चाई की तरफ़ खिंच जाये। इस बिना पर यज़ीद को फ़िक्र लाहक़ हुई कि किसी न किसी तरह वह हुसैन[अ०स०] से बैअत हासिल कर ले। चुनानचे उसने मदीने के हाकिम वलीद बिन अतबा बिन अबी सुफ़ियान को हुक्म भेजा कि हुसैन से बैअत हासिल करो और इस मुआमले में किसी मुराआत (रिआयत) से काम न लो। हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] ने इस पैग़ाम के माना समझ लिये और आप उसे पहले ही से समझे हुए थे।

उसूलन आप के लिए यज़ीद की बैअत करना ग़ैर मुमकिन था। सर का क़लम होना बेशक आसान था मगर हिफ़ाज़ते ख़ुद इख़्तियारी के फ़र्ज़ को अन्जाम देने के बाद जो इस्लामी शरीअत का एक बुनियादी हुक्म है।

इस के लिये हुसैन[अ०स०] ने तर्क वतन का फ़ैसला कर लिया। आपने अपने तमाम मुतअल्लेक़ीन (रिश्तेदार) को जिन में औरतें और बच्चे भी थे अपने साथ लिया और मक्के में जाकर पनाह ली। इस तरह आपने यह साबित कर दिया कि आप किसी से जंग करना और अपनी और अपने साथियों की ज़िन्दगी को मोरिज़े ख़तर (ख़तरे) में डालना नहीं चाहते थे बशरतेकि आपको यज़ीद की बैअत पर मजबूर न किया जाता।

मक्का अरब के बैनुल अक़वामी (Intarnational) क़ानून और फिर इस्लाम के रू से एक ऐसा अमन का मक़ाम था जहाँ किसी मुतनफ़्फ़िस (शख़्स) के लिये ख़तरा न होना चाहिए। मगर फ़रज़न्दे रसूल[स०अ०] को यहाँ भी अपने क़त्ल का सामान दिखाई दिया। आख़िर अय्यामे हज में कि जब तमाम आलमे इस्लामी मक्के की तरफ़ खिंचा चला आ रहा था हुसैन[अ०स०] को मक्के से रूख़सत होना पड़ा और आप कूफ़े की तरफ़ रवाना हुए जहाँ के लोग आपको इसरार के साथ बुला रहे थे। और आप से मज़हबी रहनुमाई के तालिब (चाहते) थे और आप अपने चचाज़ाद भाई मुस्लिम बिन अक़ील को वहाँ के हालात का मुशाहिदा (जाएज़ा लेने) करने के लिए भेज चुके थे मगर इस दौरान में कूफ़े की हालत दिगरगूँ (बिगड़) हो गई वहाँ संगदिल हाकिम उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद का इक़्तेदार क़ायम हो गया और मुस्लिम बिन अक़ील शहीद कर डाले गए। उसके बाद कूफ़े जाने का ब–ज़ाहिर कोई मौक़ा न था मगर मक्का और मदीना वापस जाने का भी इम्कान न था। उधर कूफ़े से आपको गिरफ़्तार करने के लिए फ़ौज भेज दी गई जिसने आपको आगे बढ़ने या वापस जाने से रोका। मजबूरन आप करबला की सर ज़मीन पर उतर पड़े। दूसरे ही दिन से यज़ीद का टिड्डी दल लश्कर करबला के मैदान में आना शुरू हो गया। तमाम रास्ते बन्द कर दिये गए और इमाम हुसैन[अ०स०] को घेर कर यज़ीद की बैअत पर इसरार किया जाने लगा।

हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] के साथ सिर्फ़ आपके सत्तरह अज़ीज़, चन्द गुलाम और सौ डेढ़ सौ के क़रीब वह ख़ास दोस्त थे जो कूफ़े या बाज़ दूसरे मक़ामात से बावजूद रास्तों के बन्द होने के किसी न किसी तरह आप तक पहुंच सके थे।

सातवीं मोहर्रम से आप पर और आपके तमाम साथियों यहाँ तक कि छोटे बच्चों पर पानी बन्द कर दिया गया मगर चूँकि अमन पसन्दी हक़ीक़ी मानी में आपका शिआरे ज़िन्दगी (ज़िन्दगी का चलन) था लिहाज़ा इतमामे हुज्जत के तौर पर आपने यज़ीदी फौज के अफ़सर उमर बिन सअ्द के सामने ऐसे शराएत पेश किये जिन से मामलात रू ब-इस्लाह (सुलह) हो जायें। और जंग की नौबत न आये। आप का तरीक़-ए-कार इतना सुलझा हुआ था कि उमर बिन सअ्द को भी इस बात का क़ायल होना पड़ा कि हुसैन[अ0स0] सुलह के रास्ते पर गामज़न हैं। चुनानचे उसने कूफ़े के हाकिम उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद के पास इसी मज़मून पर मुशतमिल एक ख़त भेजा मगर इब्ने ज़ियाद को हुकूमत का गुरूर और सलतनत का नशा था। उसने इमाम हुसैन[अ0स0] को पहचाना भी न था कि वह मुशकिलात का कहाँ तक मुक़ाबला कर सकते हैं। उसने आपकी सुलह पसन्दी को कमज़ोरी और आजज़ी का नतीजा ख़याल करते हुए उमर बिन सअ्द को लिख भेजा कि हुसैन[अ0स0] ग़ैर मशरूत (बग़ैर किसी शर्त के) तरीक़े पर इताअत कर लें। जब ही उनकी जान बच सकती है। ग़ैरतदार और फ़र्ज़ शनास इमाम हुसैन[अ0स0] के लिए ऐसा मुमकिन न था।

नवीं मोहर्रम की शाम को इस बड़े लश्कर ने आप पर हमला कर दिया मगर आपने एक शब के लिए इलतवाये जंग (जंग टालने) की ख़्वाहिश फ़रमाई जो ब-मुशकिल मन्ज़ूर की गई। आपका मक़सद यह था कि आख़री मर्तबा यह पूरी रात इबादते खुदा में बसर कर लें। इसके अलावा दोस्त और दुश्मन दोनों को जंग के क़तई तौर पर तय हो जाने के बाद सोचने का मौक़ा दे दें। दुश्मनों पर इतमामे हुज्जत हो जाये और साथियों में से कोई साथ छोड़ कर जाना चाहता हो तो चला जाए आपने आने साथियों को जमा करके साफ़ तौर पर बता दिया कि कल हमारी ज़िन्दगी का फ़ैसला है। मैं तुम से अपनी बैअत की ज़िम्मेदारी हटाये लेता हूँ। तुम इस रात के पर्दे में जिधर चाहो चले जाओ मगर उन जाँबाज़ों ने उस मौक़े से फ़ायदा उठाना नहीं चाहा और एक ज़बान होकर कहा कि हम आपका साथ कभी न छोड़ेंगे। उन लोगों ने जो कहा था वही कर दिखाया।

सामने फ़ौजों का समन्दर लहरें मार रहा था। गिर्दो पेश (चारों तरफ़) वीरानी और बरबादी के सिवा कुछ और नज़र न आता था। अज़ीज़ों, भाईयों, भतीजों, और औलाद के खूबसूरत चेहरे इमाम के सामने थे और आपके साथ पर्दा दार औरतें और छोटे बच्चे भी मौजूद थे। दरिया पर फ़ौज का पहरा बैठा

हुआ था और हुसैन[अ०स०] और उनके साथियों तक एक क़तर–ए–आब तक के पहुँचने की इजाज़त न थी। बे ज़बान बच्चे प्यास की शिद्दत से बेताब नज़र आ रहे थे मगर ताक़त की तमाम नुमाइशें और ईज़ा रसानी (तकलीफ़ पहुंचाने) की तमाम सूरतें इमाम हुसैन[अ०स०] और आपके साथियों को मजबूर न कर सकीं कि एक फ़ासिक़ व फ़ाजिर को जाएज़ हुकमरान तस्लीम करें।

दसवीं मोहर्रम को सुबह से दोपहर के बाद तक इमाम हुसैन[अ०स०] के जाँबाज़ साथी जो आपसे ख़ानदानी तअल्लुक़ (रिश्ता) न रखते थे बराबर अपनी जानें हुसैन[अ०स०] और आपके उसूल की ख़ातिर क़ुर्बान करते रहे। जब उन में से कोई बाक़ी न रहा तो अज़ीज़ों की नौबत आई। इस मौक़े पर आपके लिए आसान होता कि आप ख़ुद आगे बढ़ कर राहे हक़ में अपने सर का हदिया पेश कर देते मगर आपको अपनी क़ूव्वते बर्दाश्त का पूरा इम्तेहान देना था। चुनाँनचे उसके बाद आपके अज़ीज़ आपसे जुदा होने लगे। सबसे पहले आपने अपने जवान बेटे अली अकबर को जो शबीहे पैग़म्बर[स०अ०] भी थे मरने के लिए भेजा। माँ ख़ैमे में थीं और बाप ख़ैमे के दरवाज़े पर और उनका चाँद फ़ौजे मुख़ालिफ़ की घटा में छुपा था। बाप ने देखा और माँ ने सुन लिया कि अली अकबर तलवारों से टुकड़े टुकड़े हो गए मगर सब्रो सुकून में फ़र्क़ न आया। उसके बाद दूसरे अज़ीज़ भी एक एक कर के रूख़्सत हुए और राहे हक़ में निसार हो गए। सबसे आख़िर में आपके जाँबाज़ भाई अब्बास बिन अली[अ०स०] आपसे रूख़सत हुए। यह हुसैनी जमाअत के अलमदार थे जिनके क़त्ल होने से हुसैन[अ०स०] की कमर टूट गई मगर हिम्मत शिकस्ता नहीं हुई। उसके बाद आपके पास कोई सरमाया हक़ की बारगाह में नज़्र देने के लिए न था। मगर सबसे आख़िर में आपने एक ऐसा मासूम हदिया पेश कर दिया जिस पर किसी शरीअत और क़ानून की रू से मुजरिम होने का इल्ज़ाम न आ सकता था। वह शीरख़्वार (दूध पीता) बच्चा जो अपनी माँ की गोद में प्यास से सिसकियाँ ले रहा था हुसैन[अ०स०] ने उसकी हालत देखी और दुश्मन की फ़ौज के सामने अपने हाथों पर लिया, यह था हुसैन[अ०स०] का सबसे आख़री फ़िदया। इन्सानियत के हाथ पैरों में लरज़ा पड़ गया और रहमो करम की दुनिया में अंधेरा छा गया। जब उस दुश्मन फ़ौज के एक सिपाही ने तीर चिल्ल–ए कमान में जोड़ा और बच्चे की गर्दन को निशाना बनाया। हुसैन का यह आख़िरी तोहफ़ा भी क़ुबूल हो गया। अब क्या था? ब–ज़ाते ख़ुद हज़रत को हक़ की हिमायत में जेहाद का फ़र्ज़ अन्जाम देना था और अपनी जान की क़ुर्बानी पेश करना थी। चुनानचे

आपने इस शिकस्तगी और बेकसी के आलम में तलवार न्याम से निकाली और जितना क़ानूने इस्लाम की रू से आपको अपना फ़रीज़ा महसूस होता था उस हद तक इन्तेहाई शदीद मुक़ाबला किया। वह मुक़ाबला जो ऐसे हालात में आम इन्सानों की ताक़त से यक़ीनन बाला तर (पहुँच से बाहर) है। मगर कहाँ एक इन्सानी जिस्म और कहाँ फ़ौलादी तलवारों का सैलाब, जिस्म ज़ख़्मों से चूर हो गया। आप घोड़े से ज़मीन पर गिरे और वह मरहला जो आपके लिये पहले ही आसान था अब ज़्यादा आसान हो गया। आपका सर क़लम करके नैज़े पर बलन्द किया गया। शहीदों की लाशें घोड़ों से पामाल की गईं। मालो असबाब लूटा गया। ख़ानदाने रिसालत की मुक़द्दस ख़्वातीन के सरों से चादरें उतारी गईं। खेमों में आग लगाई गई। मर्दों में एक बीमार व नातवाँ अली बिन हुसैन[अ०स०] बाक़ी रह गए थे जिन्हें तौक़ व ज़ंजीर पहनाये गए और अरब के शरीफ़ तरीन ख़ानदान की ग़ैरत मन्द बीबियाँ असीर करके शहर–ब–शहर फिराई गईं।

यह है दुनिया–ए–तारीख़ का वह बड़ा हादसा जो "वाक़–ए–करबला" के नाम से याद किया जाता है।

यूँ तो आलम का हर वाक़ेया अपने महल्ले वुक़ूअ (जहाँ वाक़ेया हुआ है) के एतेबार से किसी ख़ास जगह, किसी ख़ास क़ौम और किसी ख़ास तब्क़े से मुतअल्लिक़ होता है और इस लिहाज़ से वाक़–ए–करबला भी इराक़ की सरज़मीन, अरब के मुल्क, हाशिम की नस्ल और मुसलमानों की जमाअत से तअल्लुक़ रखता था मगर वाक़ेयात में हमागीरी और वुसअत पैदा हो जाती है उन ख़ुसूसियात और नताएज के लिहाज़ से जो कुल्ले नौये इन्सानी (पूरी इन्सानियत) से वाबस्ता हों और जिन में मज़हबो मिल्लत की कोई तफ़रीक़ (फ़र्क़) न हो। इस हैसियत से देखा जाता है तो वाक़ये–ए–करबला मुतअद्दिद वजूह (बहुत सी वजहों) से तमाम नौ–ए–इन्सानी (पूरी इन्सानियत) के तअल्लुक़ का मरकज़ (सेन्टर) है।

अव्वलः यह कि ज़ालिम से नफ़रत और मज़लूम के साथ हमदर्दी फ़ितरते बशरी में (इन्सान के नेचर) दाख़िल है। अगर कोई क़िस्सा हमारे सामने पेश हो जिस में एक तरफ़ ज़ुल्म का मुज़ाहरा हो और दूसरी तरफ़ मज़लूमियत तो चाहे इस वाक़ेया से मुतअल्लिक़ शख़्सियतों से हम बिल्कुल वाक़िफ़ न हों तब भी ज़ालिम से नफ़रत और मज़लूम के साथ हमदर्दी पैदा हो जायगी और उसमें किसी मज़हब व ख़याल का इम्तेयाज़ (फ़र्क़) न होगा।

हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] पर जो मज़ालिम करबला में वाके़ हुए उनकी मिसाल तारीखे़ आलम में नापैद (मौजूद नहीं) है। यूं तो अक्सर अम्बिया और मुक़र्रबीन (अल्लाह से क़रीब) अबनाये ज़माना (दुनिया परस्तों) के हाथों मज़ालिम का शिकार हुए। बहुत से बे गुनाह अफ़राद क़त्ल किये गये। बहुतों का माल असबाब लूटा गया और बहुत से लोग कै़द हुए मगर बहैसियते मजमूई (आमतौर पर) वह तमाम मसाएब जिनका सामना फ़रदन फ़रदन बहुत से अशख़ास (लोगों) को करना पड़ा। हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] की ज़ात में एकटठा हो गये। और उन पर ब–वक़्ते वाहिद (एक वक़्त में) जमा हो जाने से आपकी ज़ाते मज़लूमियत में अपनी आप मिसाल क़रार पा गई।

लिहाज़ा जिस क़द्र हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] की मज़लूमियत का दर्जा बलन्द और ज़ालिम के ज़ुल्म का दर्जा शदीद (ज़्यादा) है उसी क़द्र वह हमदर्दी भी कि जो इमाम हुसैन[अ०स०] के साथ ब–हैसियते मज़लूम होना चाहिए। हर दूसरे मज़लूम से ज़्यादा है और वह नफ़रत भी कि जो आपके दुश्मनों से ब–हैसियते ज़ालिम होना चाहिए तमाम दुनिया के सितमगारों की बनिसबत ज़्यादा है।

दुसरे यह कि हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] की मज़लूमियत बेबसी की मज़लूमियत न थी, जिस तरह किसी शख़्स पर अकेले जंगल में डाकू हमला कर दें और उसके मालो असबाब को लूट लें। या उसे क़त्ल कर डालें। मज़लूम यह भी है और हमदर्दी इसके साथ भी होगी मगर यह मज़लूमियत ग़ैर इख़्तियारी तौर पर है। इसके साथ कोई अमल ऐसा शरीक नहीं है जो अख़लाक़ी नुक़्त–ए नज़र से क़ाबिले मदह (तारीफ़) हो। हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] की मज़लूमियत इस नौ (तरह) की नहीं है। आपने एक मसलके (मज़हब) हक़ की हिमायत और एक सही उसूल की हिफ़ज़त के लिए इन तमाम मसाएब को बर्दाश्त किया। इसका नाम क़ुर्बानी है। यूँ तो क़ुर्बानी के बहुत से अक़्साम (क़िस्में) हो सकते हैं मगर सब में बलन्द जान की क़ुर्बानी है और अगर इस फ़र्ज़ के आयद (लागू) होने पर कोई इस मन्ज़िल में साबित क़दम नज़र आये तो तमाम अफ़रादे इन्सानी (लोगों) के नज़दीक ज़्यादा इज़्ज़त व एहतेराम का मुस्तहक़ होगा और जिस क़द्र मक़सद इज़्ज़तदार और शरीफ़ होगा उतनी ही क़ुर्बानी अहम और क़ाबिले इज़्ज़त समझी जायेगी। करबला की सरज़मीन पर हज़रत हुसैन बिन अली[अ०स०] ने जो क़ुर्बानी पेश की वह इन्सानी तारीख़ का एक बेमिसाल कारनामा है। हक़ परस्ती और हक़ परवरी की

बुनियादें मुतज़लज़ल (लरज़) हो रही थीं और ग़ल्बा (ताक़त) व इक़्तेदार (हुकूमत) इन्सानी आज़ादी का सर कुचल कर अपनी ग़ुलामी का इक़रार ले रहा था। इस नाज़ुक मौक़े पर हुसैन[अ०स०] ने अपने को और अपने अज़ीज़ों बल्कि बच्चों तक को मैदाने जेहाद में ला कर जब्रो इस्तिबदाद (ज़ुल्म) का पर्दा चाक कर दिया और सिबातो इस्तेक़लाल (साबित क़दमी) ज़ब्तो सब्र (बर्दाशत), ईसारो क़ुर्बानी, हक़ परवरी और रास्त किरदारी (नेक राह) का बहुत बलन्द नमूना पेश किया। इस लिहाज़ से हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] किसी क़ौम और मज़हब से मख़्सूस नहीं समझे जा सकते। हुसैन[अ०स०] का तअल्लुक़ तमाम दुनिया–ए–इन्सानियत से है। आपने वह काम किया जिसने इन्सानियत के मिटते हुए नुक़ूश (निशान) को फिर से उभार दिया और दम तोड़ती हुई इन्सानियत को नये सिरे से ज़िन्दा कर दिया। आपने दुनिया–ए–इन्सानियत को वह पैग़ाम दिया जो ज़िन्दा है और हमेशा ज़िन्दा रहेगा। आपने दुनिया को सच्चाई और रास्त बाज़ी (नेक राह) की सही क़द्रो क़ीमत का अन्दाज़ा कराया और उस मौत के मानी समझाये जिसमें दवामी ज़िन्दगी (हमेशा की ज़िन्दगी) की हक़ीक़त मुज़मर (छिपी) है। इसलिये तमाम अक़वामे आलम (सारी क़ौमें) जो क़ुर्बानी की इज़्ज़त करती हैं मजबूर हैं कि हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] को इन्तेहाई क़द्रो मन्ज़िलत की निगाह से देखें।

तीसरे यह कि हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] का मक़सद अपनी क़ुर्बानी से कोई ऐसा अम्र (चीज़) न था जो मुख़तलिफ़ मज़ाहिब के नुक़्त–ए–नज़र (नज़रिये) से महल्ले इख़्तेलाफ़ हो। इन्सानी औसाफ़ (सिफ़त) व इख़्लाक़ की एक मन्ज़िल वह है जहाँ तमाम मज़ाहिब (धर्म) मुत्तफ़िक़ (एक) हो जाते हैं। तमाम मज़ाहिब की अस्ल असास (बुन्याद) जिस पर उनकी इमारत बलन्द की गई है अख़लाके इन्सानी को नुक़्त–ए इरतेक़ा (बलन्दी के केंद्र बिंदु) तक पहुंचाना है। यह और बात है कि ज़माने के एख़्तेलाफ़ से कुछ अहकाम (क़ानून) में अमदन (जानबूझ कर) तबदीलियाँ की गई हों और बाज़ मज़ाहिब के उसूल में बाद की आने वाली नसलों की ना समझी से कुछ ज़्यादती या कमी हुई हो मगर अस्ली महवर (सेन्टर) सबका तहज़ीबे इख़्लाक़ और तकमीले बशरियत (मानवता की पूर्ति) है। हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] का मक़सद यही नुक़्त–ए–मुशतरक (यही एक बात सबसे अलग थी) था। यक़ीनन अगर हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] का मुक़ाबला किसी दूसरे दीन व मिल्लत के अफ़राद से हुआ होता यानी कोई ग़ैर मुस्लिम जमाअत आपके सामने होती तो चाहे आपकी क़ुर्बानी कितनी ही

हक्क़ानियत (सच) पर मबनी होती और आपको कितने ही ज़ुल्म के साथ शहीद किया गया होता मगर वह मज़हबी जमाअत जिसके मुक़ाबले में आप थे और जिसके हाथों आपको यह मज़ालिम बर्दाश्त करना पड़े थे किसी हद तक आपके नाम और आपके काम से बिनाये मुख़ासिमत (दुश्मनी) ज़रूर महसूस करती और वाक़य–ए–करबला के साथ हमदर्दी में उमूमियत (आम लोगों में) पैदा न होती लेकिन हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] की क़ुर्बानी रसमी तौर पर किसी एक मज़हब को मिटाने और दूसरे मज़हब को क़ायम करने के लिए नहीं थी बल्कि एक ही दीन के ज़ाहरी मानने वालों में बुराईयों को मिटाने और अच्छाईयों के क़ायम करने के लिए अमल में लाई गई थी और चूँकि बुराई और अच्छाई के मुतअल्लिक़ उसूली हैसियत से मज़ाहिब में कोई एख़्तेलाफ़ नहीं पाया जाता। यानी हर मज़हब के नज़दीक बुराईयाँ मिटाने के क़ाबिल और अच्छाईयाँ क़ायम करने की मुस्तहक़ हैं इसलिये हर मज़हब के लोगों को हुसैन[अ0स0] के मक़सद से इत्तेफ़ाक़ होगा और वह आपकी क़ुर्बानी को इज़्ज़त व एहतेराम का मुस्तहक़ समझेंगे।

चौथे हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] और उनके साथियों ने वाक़ेय–ए–करबला के दौरान में मुख़तलिफ़ अख़लाक़ व औसाफ़े कामिला (तमाम सिफ़तों) की जो मिसालें पेश कीं हैं वह आम्म–ए–ख़लाएक़ (लोगों) के लिए एक दायमी (हमेशा) दर्से अमल की हैसियत रखती हैं जिससे तमाम अफ़रादे बशर यकसाँ तौर पर फ़ायदा उठा सकते हैं। उन ही तमाम वजूह का नतीजा यह है कि दुनिया ने वाक़ेय–ए करबला के साथ अपने बाहमी तफ़रक़ा (आपसी इख़्तिलाफ़) और जज़्बात की कशमकश के बावजूद यगानगी (एकता) का बर्ताव किया और अक़वामे आलम ने यकसाँ तौर पर उसकी अहमियत का एतेराफ़ व इक़रार किया और सदियाँ गुज़रने के साथ उनकी दिलचस्पी इस अहम हादसे से न सिर्फ़ क़ायम रही बल्कि मुख़तलिफ़ अवक़ात (वक़्तों) में इसमें इज़ाफ़ा होता रहा।

अगर कोई सय्याह (सैलानी) मोहर्रम के ज़माने में शर्क़ व ग़र्बे 'Asia &Eurup आलम की सय्याहत (सैर) करे और हर मर्तबा मोहर्रम के पहले दस दिन एक नये ख़ित्त–ए–ज़मीन (मुल्क) पर गुज़ारे तो वह देख लेगा कि हर जगह अपने अपने मेयारे ज़िन्दगी और तर्ज़े मआशिरत (समाजी ज़िन्दगी) के एतेबार से किसी न किसी तरह करबला के शहीद को याद किया जाता है।

यह सालाना यादगार जो अज़ादारी के मुख़्तलिफ़ मरासिम (रसमों) की शक्ल में मनाई जाती है करबला के वाकेये के बाद पहली ही सदी में मुसलमानों ने क़ायम कर ली थी और उसके हल्क़–ए इशाअत (फैलाओ) में बराबर इज़ाफ़ा होता रहा।

हालाँकि इन्सान फ़ितरतन ख़ूशी को पसन्द करता है और रंजो ग़म से भागता है। इसलिये अगर ज़माने के हादसों के मातहत ग़म के असबाब पैदा भी होते हैं तो उनको भुलाने की कोशिश करता है। यही वजह है कि अक़्वामे आलम (दुनियावी क़ौमों) में जितने त्योहार हैं वह सब ख़ुशी की यादगार हैं। ग़म की यादगारें कभी क़ायम नहीं की गई यह सिर्फ़ हुसैन मज़लूम की शहादत है जिसकी यादगार ग़म की सूरत में सदहा साल (सैकड़ों साल) से बराबर क़ायम है। ज़ाहिर है कि फ़ितरते इन्सानी (नेचर) किसी बार को अरसे तक बर्दाश्त नहीं कर सकती। इस ग़म की यादगार का इस तरह बरक़रार रहना इस अम्र (हुक्म) की दलील है कि वाकेय–ए करबला की याद में इन्सानी ज़िन्दगी के लिये नफ़ा बख़्श (फ़ायदेमन्द) अनासिर मुज़मर (चीज़ें छुपी हुई) हैं।

फिर यह भी एक हक़ीक़त है कि हमेशा हाल का नक़्श माज़ी (पॉस्ट) को फ़रामोश बना कर उसके असर को ख़त्म कर देता है। लेकिन इसके बरख़िलाफ़ वाक़ेय–ए–करबला की यादगार इस शिद्दत के साथ क़ायम रहना कि हाल का कोई वाक़ेया इस पर असर अन्दाज़ न हो सके। यह मानने पर मजबूर करता है कि तारीख़े आलम इसके बाद से इस वक़्त तक कोई नज़ीर इसकी पेश नहीं कर सकी।

बावजूदेकि वाक़ेय–ए–करबला के बाद कितने ही इन्क़ेलाब हुए। तमद्दुन (तहज़ीब) ने कितनी ही करवटें बदलीं। मेयारे अख़्लाक़ में कितने ही तग़ैय्युरात (बदलाव) हुए मगर हुसैनी क़ुर्बानी की याद मुसलसल तेरह सौ बरस से यकसाँ इज़्ज़त व एहतेराम के साथ क़ायम है। मानना पड़ेगा कि वह क़ुर्बानी ऐसे मुशतरक इन्सानी उसूल की हिफ़ज़त के लिए की गई है कि जब तक दुनिया में इन्सानियत क़ायम है इस उसूल की भी क़द्रो मन्ज़िलत है और इस यादगार क़ुर्बानी की याद भी बरक़रार (बाक़ी) है।

खुली हुई बात है कि जितना कोई मौज़ू (सबजेक्ट) अहम होगा और तारीख़ी हैसियत से जिस क़द्र किसी वाक़ये में नुदरत (ब्यूटी) और अहमियत ज़्यादा होगी उसी क़द्र अहले फ़िक्रो क़लम तबा आज़माई (काम) ज़्यादा करेंगे। इसी का नतीजा है कि दुनिया की तारीख़ में करबला के वाक़ये से बढ़कर

किसी वाक़्ये से मुतअल्लिक़ नज़्मो नस्र शाएरी और तहरीरों (Prose and poetry) का ज़ख़ीरा फ़राहम नहीं हुआ।

करबला की ज़मीन पर अभी ख़ूने शहीदाँ की तरी ख़ुश्क न होने पाई थी कि शायरों की ज़बान से इस वाक़्ये के मुतअल्लिक़ अशआर तराविश (कहने लगे) करने लगे और नस्र (Prose) में उन खुतबों से क़तए नज़र (हटकर) करते हुए जो अहलेबैतु हुसैन[अ0स0] की ज़बान या दूसरे मुक़र्रेरीन (स्पीकर) के दहन से हंगामी हालात के मातहत निकले हैं ख़ुसूसन उन एक़दामात के ज़ैल में जो इमाम हुसैन[अ0स0] के ख़ून का बदला लेने के लिए सुलैमान बिन सुरदे ख़ुज़ाई और फिर मुख़्तार की जानिब से हुए थे जिनका मक़सद ही यह था कि लोगों को वाक़य–ए–करबला की अहमियत से मुतअस्सिर किया जाये। मुस्तक़िल तौर से इस वाक़्ये पर तसानीफ़ (बुक्स) की इब्तेदा पहली सदी हिजरी के अवाख़िर (आख़िर) से हुई और उसके बाद बराबर मुअर्रेख़ीन (इतिहास कार) वाक़य–ए–करबला पर मक़ातिल लिखते रहे और तसानीफ़ (किताबों) का सिलसिला जारी हो गया और यह वाक़ेया है कि दुनिया कि है किसी दूसरे मौज़ू पर इतना नहीं लिखा और कहा गया जितना वाक़ेय–ए–करबला के मुतअल्लिक़ लिखा और कहा जा चुका है, फिर भी मौज़ू तश्ना है और बहुत कुछ समझने और समझाने की ज़रूरत बाक़ी है। इसके अलावा अब तक जितनी किताबें लिखी गई हैं उनका अन्दाज़े बयान ज़्यादा तर मज़हबी मोतक़ेदात (अक़ीदे)[1] से वाबस्तगी रखने वाले अफ़राद के मज़ाक़ (ज़ौक़) के मुताबिक़ हैं जिससे अक्सर ग़ैर मज़ाहिब के अफ़राद अजनबियत महसूस करते हैं। कोई नावाक़िफ़ और अजनबी शख़्स अगर वाक़य–ए–करबला और इमाम हुसैन[अ0स0] की शख़सियत को आलमे असबाब (सबब) की तारीख़ी रफ़्तार और उसके नताएज और उनके ज़रूरी तफ़सीलात के साथ जनना चाहे तो उसकी तश्नगी दूर करने के लिए कोई एक किताब ऐसी जामे (मुकम्मल) नहीं है जिसका पता दिया जा सके। ज़ेरे नज़र किताब इस ज़रूरत को सामने रख कर लिखी जा रही है और इस मौक़े पर जबकि दुनिया–ए–इन्सानियत के इस अज़ीम वाक़्ये को पूरे तेरह सौ बरस हो गए हैं और हर मज़हबो मिल्लत

[1] इमाम की शान क्या होती है? इस बारे में जो शख़्स मज़हबे शिया के मोतक़ेदात (अक़ीदे) मालूम करना चाहे उसे अरबी में उसूले काफ़ी और उसके शुरूह, फ़ारसी में हक़्क़ुल यक़ीन अल्लामा मज्लिसी (मुतवफ़्फ़ी 1111 हिजरी) और हदीक़–ए सुलतानिया मुसन्निफ़ जनाब सय्यदुल उलमा सय्यद हुसैन (मुतवफ़्फ़ी 1273 हिजरी) और उर्दू में मज़कूरा किताबों के तरजुमों की तरफ़ रूजू करना चाहिये। मुख़्तसर तौर पर उसूले मज़हबे शिया के समझने के लिए ख़ुद मेरी वह तसानीफ़ (किताबें) देखना मुनासिब होंगी जो इमामिया मिशन से शाये हुई हैं।)

के अफ़राद ने मुत्तफ़िक़ (एक) हो कर हुसैन बिन अली[अ०स०] की सीज़दह सद साला (तेरह सौ साल) यादगार क़ायम की है। यह किताब इस सदी की यादगार के तौर पर हक़, इन्साफ़, और सच्चाई की बारगाह में हुर्रियत, मसावात (बराबरी) और ईसार की बारगाह में, इन्सानी दिल, दिमाग़, और ज़मीर की बारगाह में इन्सानी जज़्बात, एहसासात और शरीफ़ाना ख़यालात की बारगाह में, इन्सानी वक़ार, इज़्ज़त और इफ़्तेख़ार की बारगाह में, इन्सानी फ़िक्र, नज़र और किरदार की बारगाह में और इन सबके ज़रिये से उनके परवरदिगार की बारगाह में पेश की जाती है।

हुसैन इब्ने अली[अ०स०] के कारनाम–ए–जावेद की क़द्रो क़ीमत का सही अन्दाज़ा तो अलफ़ाज़ की महदूद दुनिया के बस से बाहर है लेकिन अगर इस पूरी किताब में एक जुमला भी इस ईसार व क़ुर्बानी की तस्वीर का कोई रूख़ आँखों के सामने ला सके तो यही इस ख़िदमत का पूरा माहसल (निचोड़) होगा।

अली नक़ी अन–नक़वी

पहला बाब

नसबी खुसूसियात, ख़ानदान और उसके शानदार रिवायात।

निज़ामे अख़लाक़ की तश्कील में आबाओ अजदाद (बाप दादा) का बड़ा हिस्सा होता है। ''तवारिसे सिफ़ात'' (अच्छाईयों की मीरास) और ख़ानदानी एहसासात के लिहाज़ से भी और इसलिये भी कि बचपन से कान में पड़े हुए माज़ी (पास्ट) के तज़केरों से क़वा–ए–इदराक (दिलो दिमाग़) की इस तरह परवरिश होती है जिस तरह दूध से बच्चे की जिस्मानी परवरिश और जिस तरह दूध ख़ून की शक्ल में तब्दील हो कर रगों में दौड़ता है यूँ ही बचपन के सुने हुए तज़केरे बिजली की रौ के साथ इन्सान के दिल व दिमाग़ की गहराईयों में उतरते और नफ़्स के तहतुश शुऊरी तब्क़ों में रासिख़ (नफ़्स की गहराईयों में उतर जाते हैं) हो जाते हैं। इसलिये मज़हबी मोतक़ेदात (अक़ीदों) से क़तए नज़र (हटकर) करते हुए इन्सानी हैसियत से हुसैन[अ0स0] को समझने के लिये उनके आबाओ अजदाद (ख़ानदान वालों) के कारनामों पर नज़र डालना ज़रूरी है।

हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह की ज़ात बड़ी हद तक बैनुल अक़वामी (इन्टरनेशनल) हैसियत रखती है। यानी यहूद व नसारा और मुसलमान सब उनको मानते हैं और वह मज़हबी तौर पर मुसलमानों के मूरिसे आला (वारिस, पूर्वज) कहे जा सकते हैं क्योंकि क़ुर्आने करीम की तसरीह (साफ़ तौर पर) के मुताबिक़ हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] ने अपने को मिल्लते इब्राहीम का रहबर बताया और हज़रत इब्राहीम[अ0स0] ही ने इस जमाअत का जो राहे हक़ में उनके पीछे आई सबसे पहले नाम ''मुस्लिम'' रखा और इब्राहीम[अ0स0] की ज़बानी अपने परवरदिगार की बारगाह में यह दुआ भी मज़कूर (लिखा) है कि ख़ुदा वन्दा हमको ''मुस्लिम'' क़रार दे और हमारी औलाद में से भी एक ''उम्मते मुसलेमा'' क़रार दे। इस तरह मुसलमानों की क़ौमी ज़िन्दगी और पैग़म्बरे इस्लाम की बेसत (रिसालत का एलान) गोया दुआ–ए–इब्राहीम का नतीजा थी। इसलिये हज़रत इब्राहीम[अ0स0] के रवायाते ज़िन्दगी अबनाये इस्लाम (आने वाली नसलों)

के लिए एक मौरूसी तर्का (ख़ानदानी विरसे में) की हैसियत रखते हैं और फ़रज़न्दाने इस्लाम के अनासिरे अख़लाक़ की तशकील में उनका बड़ा हिस्सा है।

हज़रत इब्राहीम[अ0स0] के दो बेटे थे। इस्हाक़[अ0स0] और इस्माईल[अ0स0]। हज़रत इस्हाक़[अ0स0] सिलसिल–ए बनी इस्राईल के और हज़रत इस्माईल[अ0स0] पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] के मूरिसे आला (जद) हैं। बाज़ मसालेह (मसलहतों) की बिना पर हज़रत इब्राहीम[अ0स0] ने अपने फ़रज़न्द इस्माईल[अ0स0] को शीरख़्वारगी (कमसिनी) के आलम में आपकी वालिद–ए–गिरामी हाजेरा के साथ मक्के की सर ज़मीन पर पहुंचा दिया जिस पर ख़ान–ए–काबा वाक़े है। ख़ान–ए–काबा की तामीर का काम उन्हीं बाप बेटे इब्राहीम[अ0स0] और इस्माईल[अ0स0] ने अन्जाम दिया जो मज़हबी तौर पर तमाम ख़ल्क़े ख़ुदा (लोगों) का महल्ले इज्तेमाअ् (जमा होने की जगह) क़रार पाया और यह आले इब्राहीम[अ0स0] की मरकज़ियत का एहसास आम्म–ए–ख़लाएक़ (अवाम) के दिल में पैदा होने का एक बड़ा ज़रिया बन गया।

इन दोनो बुज़ुर्गवारों की निसबत इस्लामी तारीख़ का यह वाक़ेया बड़ी अहमियत रखता है कि हज़रत इब्राहीम मिन जानिब अल्लाह मामूर हुए (अल्लाह की तरफ़ से चुने गए) कि अपने फ़रज़न्द हज़रत इस्माईल[अ0स0] को अपने हाथ से ज़िबह करें और आपने बड़ी साबित क़दमी और पुर जिगरी के साथ हुक्मे रब्बानी की तकमील को अमल के आख़िरी दर्जे तक पहुंचा दिया। अगरचे वक़्त पर परवरदिगारे आलम की तरफ़ से बजाये इन्सान के जानवर की क़ुर्बानी के अमल में आने का इन्तेज़ाम हो गया मगर इस एलान के साथ कि आइन्दा इस का मुआवज़ा राहे ख़ुदा में एक बड़ी क़ुर्बानी के साथ होना ज़रूरी है। "وَفَدَيْنَاهُ بِذِبْحٍ عَظِيمٍ"[1] इस वाक़ये को इस्लाम ने बड़ी अहमियत दी और ईदे क़ुर्बान की शक्ल में इसकी मुस्तक़िल यादगार क़ायम कर दी।

इस्माईल[अ0स0] के बारह फ़रज़न्द थे। उन में से नाबत और क़ीदार की औलाद हिजाज़ (आजका सऊदी) में आबाद हुई और बहुत फैली। क़ीदार की औलाद में अदनान बहुत मशहूर हैं और पैग़म्बरे इस्लाम[स0अ0] उन्हीं की औलाद में से थे।[2]

---

[1](सूरए साफ़्फ़ात आयत 107)

[2]अल–उमम वल–मुलूक तबरी/2, पेज/191–192

हज़रत का नसब नामा आपकी ज़ात से लेकर अदनान तक मुत्तफ़ेक़ा तौर से (शिया, सुन्नी के यहाँ एक साथ) तवारीख़ (History) व सीरत में मौजूद है। इस तरह (1) अदनान (2) मअ्द (3) निज़ार (4) मुज़र (5) इल्यास (6) मुदरका (7) खुज़ैमा (8) कनाना (9) नज़र (10) मालिक (11) फ़हर (12) ग़ालिब (13) लुई (14) काअ्ब (15) मुर्रा (16) किलाब (17) क़ुज़ैय (18) अब्दे मनाफ़ (19) हाशिम (20) अब्दुल मुत्तलिब (21) अब्दुल्लाह जो हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] के वालिदे बुज़ुर्गवार थे।[1]

इससे मालूम होता है कि हज़रत से अदनान तक इक्कीस पुश्तें हैं और अगर हर नस्ल का औसत तीस साल क़रार दिया जाये तो कुल पुश्तों की मुद्दत 630 बरस हुई। क़ुरैश का लक़ब उन इक्कीस आदमियों में से किसको मिला। इसमें इख़्तेलाफ़ है। बाज़ कहते हैं कि क़ुरैश का लक़ब सबसे पहले नज़र बिन कनाना को मिला। बाज़ के नज़दीक फ़हर को और बाज़ के नज़दीक क़ुसैय बिन कलाब को। वजहे तस्मिया (नाम रखने की वजह) में भी कई क़ौल हैं। उनमें से एक यह है कि वह तक़र्रूश से माख़ुज़ (लिया गया) है, तिजारत और कस्बे मआश (रोज़ी कमाना) के माना में, चूँकि यह लोग अपनी मेहनत व मुशक़्क़त और कुव्वते बाज़ू की कमाई को मेयारे इज़्ज़त समझते थे और अमली तौर पर उस के पाबन्द थे इसलिये क़ुरैश कहलाये और एक क़ौल यह है कि वह तक़र्रूश ब–माना इज्तेमा से माख़ुज़ (लिया गया) है। चूँकि उन लोगों ने मुतफ़र्रिक़ (अलग–अलग) होने के बाद इज्तेमाई शक्ल इख़्तियार की इसलिये क़ुरैश कहे जाने लगे।[2]

चूँकि क़ुसैय के वक़्त तक नस्ले अदनान के लोग मक्के के पहाड़ों और वादियों में मुन्तशिर थे, क़ुसैय ने इन सबको जमा करके काबे के आस पास मकानों में आबाद किया इसी लिये ख़ुद क़ुसैय को मुजम्मेअ् (जमा करने वाले) के लक़ब से याद किया जाने लगा जैसा कि अरब के शायर ने कहा है:

ابوکم قصی کان یدعنی مجمعاً
بہ جمع اللہ القبائل من فھر

---

[1]सीरते इब्ने हिशाम जि/1 त/मिस्र पेज/2, तबक़ाते इब्ने सअ्द त/लीदन जि/1, पेज/27–28

[2]सीरते इब्ने हिशाम जि/1, पेज/60–61

(यानी) तुम्हारे मूरिसे आला कुसैय वह हैं कि जो ''मुजम्मेअ्'' कहलाते थे। उन्हीं के ज़रिये से अल्लाह ने क़बील–ए–फ़हर की मुख़तलिफ़ शाख़ों को एक जगह जमा किया।[1]

नाबत बिन इस्माईल[अ0स0] के बाद ख़ान–ए–काबा की तौलियत (मुतवल्ली) जुरहमी ख़ानदान की तरफ़ जो उनके ननिहाल वाले थे मुन्तक़िल हो गई थी और इस तरह यह लोग दुनियवी और मज़हबी इक़्तेदार दोनों के मालिक बने हुए थे। अरसे तक क़ाबिज़ रहने के बाद उन्होंने काबा के अमवाल (पैसों) में तग़ल्लुब (इख़्तियार) व तसर्रुफ़ और हज को आने वाले परदेसियों पर ज़ुल्मो सितम और हरमे मक्का की हुरमतों को बर्बाद करना शुरू कर दिया जिसके नतीजे में बनी ख़ुज़ाआ ने यमन से निकल कर उन पर हमला कर दिया और उन्हें मक्के से निकाल कर ख़ुद क़ाबिज़ हो गए। यह ख़ानदान तक़रीबन दो सौ साल तक काबे का मालिक बना रहा। कुसैय ने उन्हीं में शादी की और जब उनका असरो रसूख़ (दबदबा) हिजाज़ में बढ़ गया तो उन्होंने नज़र बिन कनाना की तमाम औलाद को जमा करके उन्हें ख़ान–ए–काबा की हिमायत और तौलियत की ज़िम्मेदारी याद दिलाई और आख़िर मुत्तफ़ेक़ा (मिली जुली) ताक़त के साथ ख़ुज़ाईयों को शिकस्त दे कर मक्के पर ख़ुद क़ाबिज़ हुऐ। उन्होंने मक्क–ए मुअज़्ज़ेमा के मकानात की अज़ सरे नौ (नए सिरे से) तामीर की और दारुन नदवा (मशवरे की जगह) के नाम से एक इमारत तय्यार कराई जिसमें जमहूर (अवाम) के काम अन्जाम दिये जाते थे। उनके लिये मआशिरत के क़वानीन मुनज़बित किये (आपसी लेनदेन के क़ानून नाफ़िज़ किए) और ख़िराज की वसूलियाबी और हाजियों के ख़ुर्दो नोश (खाने पीने) का भी इन्तेज़ाम कराया।[2] उन्होंने शराब ख़ोरी की मज़म्मत और उसकी मुज़िरतों (नुक़्सान) का एलान भी किया।[3]

कुसैय के फ़रज़न्द में अब्दे मनाफ़ औसाफ़ (अच्छे गुणों) व कमालात में अपने बुज़ुर्गों के हक़ीक़ी जानशीन थे इसलिये अपने बाप की ज़िन्दगी ही में उन्होंने मुल्के अरब में शोहरत व इम्तेयाज़ का दर्जा हासिल कर लिया।[4]

---

[1]तबरी जि/2, पेज/182

[2]सीरते इब्ने हिशाम जि/1, पेज/71.79

[3]अल अमाली लिस्सुदूक़ पेज/4

[4]सीरते इब्ने हिशाम जि/1, पेज/81

अब्दे मनाफ़ के फ़रज़न्दों में हाशिम जिनका अस्ल नाम अम्र था निहायत बाअसर और मुमताज़ थे। काबे की मुअज़्ज़ि (मोहतरम) ख़िदमतें हाजियों की सैराबी और ज़ियाफ़त (मेहमान दारी) उनको सिपुर्द की गईं जो उन्होंने बहुत क़ाबलियत से अन्जाम दीं। उन्होंने सलतनते रोम से ख़तो किताबत करके कुछ ख़ास हुकूक़ अरब तज्जार (ताजिर) के वास्ते हासिल किये थे।[1] ''हाशिम'' उनका लक़ब इस वजह से हुआ कि उन्हों ने सबसे पहले अहले मक्का को रोटियों के टुकड़े शोरबे में भिगो कर खिलाये।[2] (अरबी में हशम चूरा करने को कहते हैं)

हाशिम की वफ़ात के बाद उनके भाई मुत्तलिब जानशीन हुए। इसलिये कि हाशिम के फ़रज़न्द शैबा उस वक़्त निहायत कमसिन थे। जब मुत्तलिब की वफ़ात हुई तो उनकी जगह उनके भतीजे शैबा ने हासिल की जो अब्दुल मुत्तलिब के नाम से मशहूर हुए। यह शरफ़, अज़मत और शोहरत में अपने बुज़ुर्गों पर भी फ़ौक़ियत ले गए।[3] और ''सय्यदुल बतहा'' के ख़िताब से मशहूर हुए जो उनकी औलाद में बाक़ी रह गया। चुनानचे वह आज तक ''सादात'' कहे जाते हैं। अब्दुल मुत्तलिब का तवक्कुल (भरोसा) और एतेमाद ख़ुदा पर उस वक़्त पूरे तौर पर ज़ाहिर हुआ जब अबरहा ने यमन से बढ़कर काबे को ढाने के इरादे से मक्का पर चढ़ाई की। मक्के वालों के पास कोई ऐसी फ़ौजी ताक़त न थी जिससे वह ग़नीम का मुक़ाबला करते मगर अब्दुल मुत्तलिब ख़ुदा वन्दी इमदाद पर भरोसा रखते थे। आख़िर ग़ैबी ताक़त ही ने असहाबे फ़ील (हाथियों वाला लश्कर) को तबाह कर दिया।[4] अब्दुल मुत्तलिब के दस बेटों में से दो बेटे अब्दुल्लाह और अबू तालिब थे।

अब्दुल्लाह बिन अब्दुल मुत्तलिब की क़ुर्बानी का वाक़ेया भी क़ुतुबे तवारीख़ में मज़कूर (बयान) है और मशहूर है कि अब्दुल मुत्तलिब अपने फ़रज़न्द अब्दुल्लाह की क़ुर्बानी पर तय्यार थे मगर उनके ननिहाल वालों के इसरार पर क़ुरआ डाला गया और सौ ऊँटों की क़ुर्बानी के बदले में अब्दुल्लाह की जान बची।[5]

---

[1] तबरी जि/1, पेज/190, जि/2, पेज/180

[2] सीरते इब्ने हिशाम जि/1, पेज/185, तबरी जि/2, पेज/179

[3] सीरते इब्ने हिशाम जि/1, पेज/86

[4] (उसूले काफ़ी तबा लखनऊ पेज/283, सीरते इब्ने हिशाम जि/1, पेज/32.34, तबरी जि/2, पेज/172.174)

[5] सीरते इब्ने हिशाम जि/1, पेज/94.97

चूँकि अब्दुल्लाह का इन्तेक़ाल बाप के सामने हो गया। इसलिये अब्दुल मुत्तलिब के तमाम इम्तेयाज़ात (खुसूसियसात) व इख़्तियारात अबु तालिब को हासिल हुए। "शैखुल बतहा" और सय्यदुल कुरैश" के ख़िताबों से मशहूर हुए। और उन अमानतों के साथ साथ जो इब्राहीम व इस्माईल[अ०स०] की मतरूका (छोड़ी) थीं एक सबसे बड़ी अमानत जो उनकी हिफ़ाज़त में आई वह अब्दुल्लाह के यतीम फ़रज़न्द मोहम्मद की ज़ात थी।

हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स०अ०] की उम्र नौजवानी की मन्ज़िल में थी कि आपकी रास्तबाज़ी (सच्चाई) और अमानत दारी को तमाम अरब ने तस्लीम करते हुए आपको "अमीन" का लक़ब दे दिया।[1] अपनी अमानतें आपके पास रखवाना शुरू कर दीं। अहम मुआमेलात (लेन देन) में आपके तसफ़िये (फ़ैसले) को क़ाबिले कुबूल समझने लगे। जब आपकी उम्र बीस साल की थी तो कुरैश में "हलफुल फुज़ूल" (एक दूसरे के जानो माल की सलामती का मीटिंग में फ़ैसला) का अहद नामा हुआ।[2] जो बेनज़ीर शरीफ़ाना उसूल पर मबनी था और उसकी तहरीक का सेहरा बनी हाशिम ही के सर रहा, इसलिये कि ज़ुबैर बिन अब्दुल मुत्तलिब उसके दाई (बानी) थे।

वाक़ेया यह था कि अब्दुल मुत्तलिब के इन्तेक़ाल के बाद अरब में मुतजकुल अनानी और बेआईनी (मनमानी और बग़ैर तरीके) का दौर दौरा हो गया, रिश्तेदारियों के लिहाज़ से आपस में किश्तो खून (खून ख़राबा) तो नहीं होने पाया मगर अजनबी लोगों के साथ इन्साफ़ नहीं होता था। चुनानचे क़बील–ए–ज़ुबैर के एक यमनी शख़्स ने जिससे कि आस बिन वायल सहमी ने कोई बेश क़ीमत चीज़ ख़रीद कर क़ीमत अदा नहीं की थी तमाम आले फ़हर को मुख़ातिब करके मुअस्सिर अन्दाज़ में इस ज़ुल्मो सितम का शिकवा भी किया।

उन्हीं वाक़ेयात से मुतअस्सिर हो कर बनी हाशिम, ज़ोहरा और असद बिन अब्दुल उज़ा के क़बीले अब्दुल्लाह बिन जदआन के मकान में जमा हुए और मुत्तफ़ेक़ा तौर पर अहद किया कि हम हमेशा मज़लूम का साथ देंगे और उस वक़्त तक चैन नहीं लेंगे जब तक उसका हक़ अदा न हो जाये। इस मुआहदे का नाम "हलफुल फुज़ूल" (क़सम) रखा गया जिसमें फ़ज़ल, फ़ज़्ज़ाल, मुफ़ज़िल और फुज़ैल शामिल थे और इसलिये उसका नाम फुज़ूल क़रार पागया

---

1. तबक़ात इब्ने सअ्द जि/1, पेज/76
2. इब्ने सअ्द जि/1, पेज/82

था। हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] इस मुआहदे में शरीक थे और हमेशा इस पर नाज़ाँ रहे बल्कि बेअ्सत के बाद जबकि अरब के तमाम क़दीम मुआहदात (एग्रीमेन्ट) और मुख़सिमात (दुश्मनियाँ) कल अदम (मन्सूख़) क़रार दे लिये गए थे आप अपने को इस मुआहदे का पाबन्द समझते थे और फ़रमाते थे कि आज भी अगर कोई मुझे इस मुआहदे की बिना पर आवाज़ दे तो मैं उसकी सदा पर लब्बैक कहूँगा।[1]

अगर आपने अरब की तारीख़ पढ़ी है तो आपको मालूम होगा कि यह मुआहेदा इस क़ौम की आम ज़हनियत के बिल्कुल ख़िलाफ़ था। वहाँ तो यह था कि हमको अपने क़बीले वाले की मदद करना चाहिए ख़्वाह वह ज़ालिम हो या मज़लूम। इस क़बायली तअस्सुब का नतीजा यह था कि एक शख़्स की ज़ाती जंग क़बायली जंग बन जाती थी जो चालीस चालीस बरस जारी रहती थी। इस ग़लत ज़हनियत की सबसे पहले मुख़ालिफ़त करने वाले बनी हाशिम थे जो दुनिया को हक़ व इन्साफ़ की क़द्रो क़ीमत का अन्दाज़ा करा रहे थे और बता रहे थे कि इसके मुक़ाबले में क़ौमियत या बरादरी कोई चीज़ नहीं है।

जब हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] की उम्र तीस बरस की थी अबू तालिब के यहाँ अली[अ0स0] की विलादत हुई।[2]और अभी अली बिन अबी तालिब चन्द ही साल के थे कि मक्के में क़हत (सूखा) पड़ा और अबू तालिब एक़्तेसादी (माली) तकालीफ़ में मुबतिला हो गए। आपके बार को कम करने के लिए मोहम्मदे मुस्तफ़ा[स0अ0] ने अली की परवरिश खुद से मुतअल्लिक़ कर ली इस तरह अली, मोहम्मद के आग़ोशे तरबियत में आ गए।[3]

यहाँ एक मर्तबा इस पर नज़र डाल लिजिये कि इस ख़ानदान की ज़मीने शरफ़ किस आसमान तक पहुँच चुकी थी और उसके क़दीम रिवायात किस दर्जा शानदार हैं।

1. काबा जो तमाम अरब के मज़हबी इज्तेमा का मरकज़ है वह तामीर किया हुआ है उनके मूरिसे आला हज़रत इब्राहीम[अ0स0]का।

2. उनके दादा हज़रत इस्माईल[अ0स0] अल्लाह की बारगाह में अपनी जान का नज़राना पेश करके ''ज़बीहुल्लाह'' (ज़िबहे ख़ुदा) कहलाये।

---

[1]इब्ने हिशाम जि/1, पेज/84, इब्ने सअ्द जि/1, पेज/82

[2]आप मक्क–ए–मुअज़्ज़ेमा के अन्दर 13 रजब सन 30 आमुल फ़ील को (काबा पर हाथियों के हमले से तीस बरस के बाद पैदा हुए) मुरव्वेजुज़ ज़हब मसऊदी, मुस्तदरक हाकिम, इरशाद शैख़ मुफ़ीद

[3]इब्ने हिशाम जि/1, पेज/156

फिर अब्दुल मुत्तलिब और उनके फ़रज़न्द अब्दुल्लाह ने इसी सबक़ को दोहरा कर साबित कर दिया कि यह कुर्बानी का जज़्बा इस ख़ानदान का विरसा है जो दुनिया को बराबर याद रहा। चुनाँनचे इन दोनों तय शुदा कुर्बानियों की बिना पर हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] को "इब्नुज़ ज़बीहैन" (दो ज़बीहों के बेटे) के लक़ब से याद किया गया।[1]

3. तमाम क़बायल मुज़िर की शीराज़ा बन्दी का फ़ख़्र उन ही को हासिल है।

4. ख़ान–ए–काबा के मुहाफ़िज़ और मौसमे हज के मुन्तज़िम होने की हैसियत से उन्हें तमाम अरब की मरकज़ियत हासिल है।

5. तमाम अन्दरूनी और बैरूनी मुआमिलात में अरब क़ौम की क़यादत और नुमाइन्दगी उनका हिस्सा है।

6. वह ग़रीबों के दस्तगीर और क़हत साली (सूखा पड़ने) वग़ैरह के सख़्त अवक़ात (वक़्तों) में मिसकीनों की ख़बरगीरी करने वाले हैं।

7. वह इस्म (नाम) और मुसम्मा (नाम आवर) दोनों हैसियतों से सय्यद (सरदार) माने जाते हैं।

8. वह एक ही वक़्त में मैदाने जंग के शहसवार और आलमे रूहानी के राज़दार हैं जिसका गवाह अस्हाबे फ़ील के मुक़ाबले में अब्दुल मुत्तलिब का तरीक़–ए–पैकार है।

9. उन्होंने मज़लूमों की हिमायत और हक़ की तरफ़दारी का बेड़ा उठाया और इस बारे में तमाम कुरैश की रहनुमाई की थी।

यह हैं वह नुमायाँ ख़ुसूसियात जो तारीख़ी असनाद (सनदों) के साथ इस ख़ानदान के लिये अभी तक साबित थे मगर अब इसी मशरिक़ से वह आफ़ताब चमकता है जिसकी शुआऐं दुनिया–ए–इन्सानियत को सुबहे क़यामत तक रौशन रखेंगी।

सातवीं सदी ईसवी के शुरू होने पर जबकि दुनिया तारीकी के अज़ीम दौर से गुज़र रही थी। जज़ीरा नुमाये अरब से यह आफ़ताब ताले (ज़ाहिर) हुआ जिसकी इब्तेदाई किरनें अगरचे हिजाज़ की सर ज़मीने मक्का से ज़ाहिर हुई थीं मगर रफ़्ता रफ़्ता उसकी रौशनी शर्क़ व ग़र्ब (Asia and Eurup) में

---

[1]तबरी जि/1, पेज/135, शरीयते इस्लामिया में यह तरीक़–ए–कुर्बानी कि अपने हाथ से अल्लाह की रिज़ा के लिये अपना या किसी अपने से मुतअल्लिक़ इन्सान का ख़ून बहाया जाये मन्सूख़ (रद) कर दिया गया मगर राहे ख़ुदा में जब ज़रूरत हो तो दुश्मनों से जेहाद करके अपनी जान क़ुर्बान करने का उसूल क़ायम रहा और आले रसूल[स0अ0] ने अमली तौर पर इसी की मिसालें पेश कीं।

फैल गई और दुनिया को रौशन कर दिया। यह आलमगीर मज़हब इस्लाम था और उस ख़ुदा वन्दी पैग़ाम के पहुंचाने के लिए मोहम्मदे मुस्तफ़ा[स0अ0] मुन्तख़ब हुए जिनके ज़रिये से कायनात को एक ख़ुदा–ए–तवाना के सामने सर झुकाने की तालीम दी गई और ग़ैरूल्लाह की परस्तिश (पूजा) को मिटाने का एलान किया गया। ख़्वाह वह सोने चाँदी और पत्थर के बुत हों या गोश्त पोस्त से बना हुआ इन्सान जो उलूही इक़्तेदार के सामने अपनी सितवत (शाही) व हैबत का सिक्का जमाना चाहता हो और ख़ल्क़े ख़ुदा को अपने सामने सरनिगूँ होने पर मजबूर करे।

उस वक़्त हज़रत अली इब्ने अबी तालिब[अ0स0] की उम्र दस बरस की थी और चूँकि अली[अ0स0] पहले रसूल[स0अ0] की आग़ोशे तरबियत में थे।[1] इसलिये यह कहना बिल्कुल दुरूस्त है कि अली[अ0स0] और इस्लाम में वही वाबस्तगी पैदा हुई जो एक आग़ोश में रहने वाले दो बच्चों में आपस में होना चाहिए।

चन्द साल तक राज़दारी के साथ फ़र्ज़े तबलीग़ को अदा किया गया।[2] उसके बाद हुक्म आ गया وَأَنذِرْ عَشِيرَتَكَ الْأَقْرَبِينَ (यानी अपने क़रीबी रिश्तेदारों को तबलीग़ कीजिये।)[3]हज़रत ने इस हुक्म की तामील में दावत का इन्तेज़ाम कर दिया और तमाम औलादे अब्दुल मुत्तलिब को जमा करके अपनी रिसालत का एलान किया और तौहीदे इलाही का पैग़ाम पहुंचाया। फिर फ़रमाया कि तुम में से कौन शख़्स इस दीन की इशाअत में मेरा दस्तो बाजू बनने के लिये तय्यार है? इस वादे पर कि वही मेरा भाई, मेरा वसी, और मेरा जानशीन क़रार पायेगा। मजमा तमाम ख़ामोश था। हज़रत अली[अ0स0] अगरचे सबसे ज़्यादा कमसिन थे मगर आप खड़े हो गए और कहा कि मैं आपका इस मुहिम में हर तरह से मददगार रहूँगा, आप ने हज़रत अली[अ0स0] के कांधे पर हाथ रखा और फ़रमाया बस यह मेरा भाई, मेरा वसी और मेरा जानशीन है, तुम सबको इसकी इताअत लाज़िम है।[4]

अब एलानिया बुत परस्ती की मज़म्मत होने लगी जिससे क़ुरैश आपकी मुख़ालेफ़त पर कमर बस्ता और ईज़ा रसानी (तकलीफ़ पहुंचाना) पर आमादा हो गए मगर आपके चचा जनाबे अबू तालिब की शख़सियत आपके सामने

---

[1]तबरी जि/2, पेज/312

[2]तबक़ात इब्ने सअ्द जि/1, पेज/132, तबरी जि/2, पेज/216–218, इरशाद पेज/16

[3]क़ुर्आन सुरए शुरा आयत/214

[4]तबरी जि/2, पेज/217

सीना सिपर थी जिसकी वजह से उन लोगों को कुछ बन न पड़ता था। आख़िर एकाबिरे क़ुरैश (क़ुरैश की सरदारों) का एक वफ़्द अबू तालिब के पास आया। उसमें अतबा, शैबा, अबू सुफ़ियान, आस बिन हिशाम, अबू जेहल, वलीद बिन मुग़ीरा और आस बिन वाएल वग़ैरह शरीक थे। उन लोगों ने अबू तालिब से कहा कि तुम्हारा भतीजा हमारे माबूदों (ख़ुदाओं) को बुरा कहता है। हमारे मज़हब की मज़म्मत करता है। हमको अहमक़ ठहराता है और हमारे अबाओ अजदाद (पूवर्जों) को गुमराह बताता है इसलिये या तो तुम उसे इन बातों से रोक दो या उसे हमारे सिपुर्द कर दो। पहली बार अबू तालिब ने नर्मी से उनको टाल दिया मगर कुछ अरसे के बाद जब यह वफ़्द (Delegation) फिर आया तो उसने निहायत सख़्ती से कहा कि अब हम इस सूरते हाल को बर्दाश्त नहीं कर सकते। या तो तुम उन्हें रोको या हमारे तुम्हारे दरमियान जंग हो कि हम दोनों में से एक का फ़ैसला हो जाये। अबू तालिब ने मुनासिब समझा कि अब रसूल अल्लाह[स0अ0] से इसका तज़केरा करें। हज़रत ने पूरा वाक़ेया सुना तो फ़रमायाः "ख़ुदा की क़सम अगर यह लोग मेरे एक हाथ में सूरज और दूसरे में चाँद लाकर दे दें तब भी मैं अपने फ़र्ज़ से बाज़ न आऊंगा। ख़ुदा इस काम को पूरा करेगा या मैं ख़ुद इस पर निसार हो जाऊँगा।" और यह कहते कहते आँखों में आँसू आ गए। यह देखना था कि अबू तालिब का दिल हिल गया। उन्होंने कहा कि "अच्छा तुम अपने फ़र्ज़ को अन्जाम देते रहो मैं आख़िर दम तक तुम्हारा साथ दूँगा।"[1]

चुनाँनचे अबू तालिब ने हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] की हिफ़ाज़त में कोई दक़ीक़ा उठा न रखा और जब तक ज़िन्दा रहे रसूल[स0अ0] के सीना सिपर रहे।

मगर हज़रत अबू तालिब और ख़दीज–ए कबुरा की वफ़ात के बाद अहले मक्का की ईज़ा रसानी हज़रत रसूल[स0अ0] के ख़िलाफ़ बहुत बढ़ गई और आपने उनके राहे रास्त पर आने से ब–ज़ाहिर असबाब ना–उम्मीद हो जाने की वजह से यह तय कर लिया कि अब मक्क–ए मुज़्ज़ेमा को जो आपका आबाई वतन था तर्क फ़रमा दें। चुनानचे रफ़्ता रफ़्ता अपने मुत्तबेईन (इताअत करने वाले) को मदीने की तरफ़ जहाँ के कुछ लोगों ने आपकी पैरवी क़ुबूल कर ली थी रवाना फ़रमाने लगे। यह देख कर मक्के वाले सब आपकी जान लेने के दरपै हो गए और एका हुआ कि रात के वक़्त आपके घर को घेर कर आपको क़त्ल कर डालें। आप अपने चचाज़ाद भाई अली बिन अबी तालिब[अ0स0] को यह

[1]सीरते इब्ने हिशाम जि/1, पेज/163–164, तबरी जि/2, पेज/219.–220

हिदायत फ़रमा कर कि वह आपके बिस्तर पर आपकी चादर ओढ़कर सो रहें खुद मदीनेकी तरफ़ रवाना हो गए। हज़रत अली[अ0स0] ने दुश्मनों की खिंची हुई तलवारों के अन्दर रसूल[स0अ0] के बिस्तर पर आपकी चादर ओढ़कर आराम किया।[1]

फिर मदीना पहुंचने के बाद जब मुख़ालेफ़ीने इस्लाम ने फ़ौजी ताक़तों के साथ मुसलमानों पर चढ़ाई की और बद्र व ओहद और ख़न्दक़ वग़ैरह की लड़ाईयाँ हुईं तो उन लड़ाईयों में हक़ व सदाक़त की रूहानी ताक़त के साथ हज़रत अली–ए–मुरतज़ा[अ0स0] की तलवार हर मौक़े पर इस्लाम की फ़तह मन्दी का सबब बनती रही।

हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] की एक बेटी थीं फ़ातिमा ज़हरा जिनकी उनके बलन्द औसाफ़ की बिना पर आप इतनी इज़्ज़त करते थे कि जब वह आपके पास आती थीं तो आप ताज़ीम के लिये खड़े हो जाते थे।[2] और ब–कसरत हदीसें आपने उनकी फ़ज़ीलत के बारे में इरशाद कीं जिन में एक यह थी कि वह सरदारे ज़ेनाने जन्नत और सरदारे ज़नाने अहले ईमान हैं।[3] और फ़रमाया कि فاطمة بضعة منى यानी फ़ातिमा मेरा एक टुकड़ा है।[4]

ज़ाहिर है कि ऐसी बेटी के लिए रसूल ऐसे ही साहिबे औसाफ़ मौज़ूं तरीन कुफ़ु (बराबरी) को मुन्तख़ब फ़रमा सकते थे। इसी का नतीजा था कि बहुत से पैग़ाम और निसबतें आईं मगर सब मुस्तरद कर दी गईं और सिर्फ़ अली[अ0स0] ही की एक ज़ात जिसके लिए रसूल[स0अ0] का क़ौल था कि मैं और अली एक ही नूर से हैं।[5] इस रिश्ते के लिये मौज़ूं समझी गई और रसूले खुदा[स0अ0] ने फ़रमाया कि यह मेरा ही नहीं बल्कि अल्लाह का इन्तेख़ाब है।[6]

उन्हीं दोनों मुक़द्दस और बुज़ुर्ग मर्तबा माँ बाप से दो फ़रज़न्द पैदा हुए। एक हसन[अ0स0] और दूसरे हुसैन[अ0स0]। अब क्या हुसैन[अ0स0] भुला सकते थे अपने ख़ानदानी खुसूसियात और क़दीम रवायात को?

ब–क़ौल मौलाना डाक्टर सय्यद मुजतबा हसन साहब कामून पूरीः

---

[1]तबक़ात इब्ने सअ़द जि/1, पेज/153 , इब्ने हिशाम जि/1, पेज/289–290, तबरी जि/1, पेज/244

[2]इस्तीआब जि/2, पेज/272, आलामुल वरा पेज/656

[3]सही बुख़ारी जि/2, पेज/174–185–189, सही मुस्लिम जि/2, पेज/290

[4]बुख़ारी जि/2, पेज/185.189

[5]फ़िरदौसुल अख़बार दैलमी व तज़केरा सिब्ते–ए–इब्ने जोज़ी वग़ैरह

[6]सवाएक़े मुहर्रेक़ा पेज/84.97

"हुसैन जिस नस्ल की यादगार थे वह सदियों से कुर्बानी व फ़िदाकारी की एक मुसलसल तारीख़ तय्यार कर रही थी।" हुसैन[अ०स०] ने देखा नहीं मगर कानों से सुनते तो रहे कि हमारे मूरिसे आला इब्राहीम[अ०स०] ख़ुदा की रज़ा के लिए बेटे के ज़िबह पर तय्यार हो गए। हमारे परदादा अब्दुल मुत्तलिब ने अपने बेटे अब्दुल्लाह को कुर्बानगाहे उबूदियत में पेश किया। हमारे जद्दे बुज़ुर्गवार हाशिम ने अपने माल व दौलत और असर को हमेशा ख़ल्क़े ख़ुदा की ख़िदमत में सर्फ़ किया। हमारे ख़ानदान ने मज़लूमों की इमदाद और ज़ालिमों से मुक़ाबले का हलफ़ उठाया है इसलिये अगर ख़ल्क़े ख़ुदा किसी ज़ालिम के हाथ से परेशान हो तो हमारा फ़र्ज़ है कि हम मज़लूमों की दस्तगीरी के लिए आगे बढ़ जायें।[1]

हुसैन[अ०स०] को मालूम हुआ कि सच्चाई की ख़ातिर पत्थर खाये मुसीबतें उठाईं मेरे नाना रसूल[स०अ०] ने। और पैग़म्बरे इस्लाम की हिफ़ाज़त के लिये सीना सिपर रहे मेरे दादा अबू तालिब[अ०स०]। और जब इस्लाम की हिफ़ज़त का मसअला दर पेश था तो सबसे पहले अहदे वफ़ादारी करने वाले और फिर तलवारों के हिसार में बिस्तरे रसूल[स०अ०] पर लेटने वाले और फिर हर सख़्त मौक़े पर सच्चाई के लिये जेहाद करने वाले मेरे बाप अली बिन अबी तालिब[अ०स०] थे।

यह आम क़ायदा है कि बच्चे जब अपने बुज़ुर्गों के हालात सुनते हैं तो उनमें बचपन ही से वलवला पैदा होता है कि हमें भी कोई मौक़ा ऐसे कारनामे पेश करने का मिल जाये। इसलिये आम फ़ितरत के तक़ाज़ों और ज़ाहरी असबाब के लिहाज़ से यह कहना बिल्कुल सही है कि इमाम हुसैन[अ०स०] के लिये अलावा मन्सबी ज़िम्मेदारी के ख़ानदानी रिवायात और बलन्द फ़ितरत का तक़ाज़ा यही था कि बचपन से मुन्तज़िर और मुश्ताक़ रहें (शौक़) कि सच्चाई की ख़िदमत, ग़रीबों की दस्तगीरी ओर मज़लूमों से हमदर्दी का कोई मौक़ा पेश

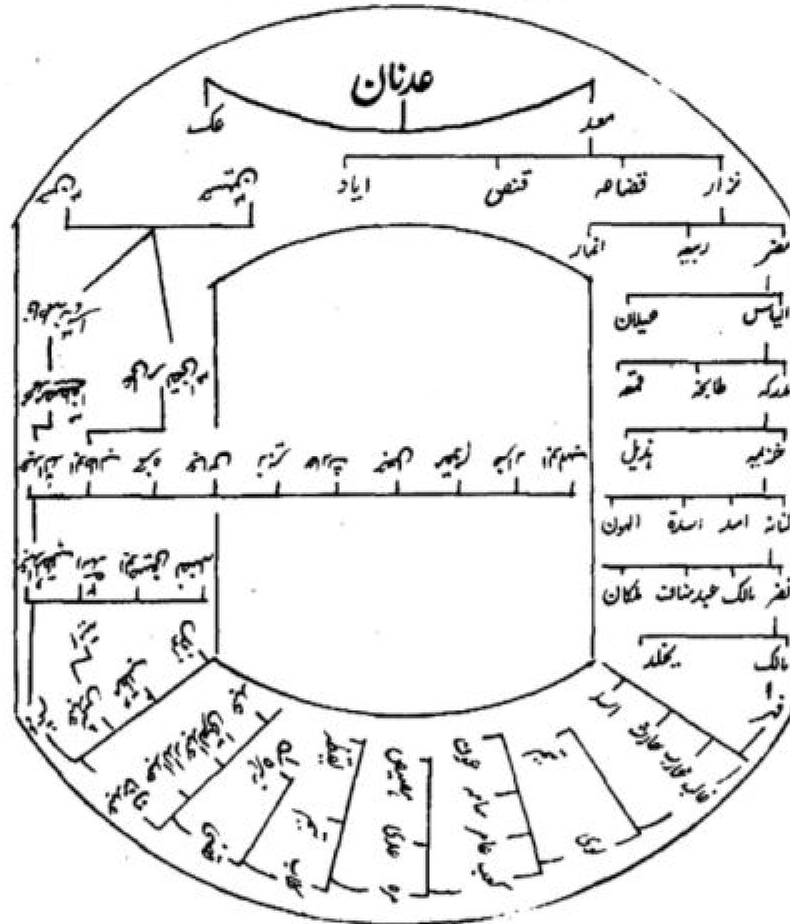
---

[1]हलफ़ुल फ़ुज़ूल को इमाम हुसैन[अ०स०] अपने पेशे नज़र रखते थे। इसका सुबूत यह है कि एक मौक़े पर जब वलीद बिन अतबा हाकिमे मदीना ने आपके साथ ज़ुल्म व सितम से काम लिया तो आपने हलफ़ुल फ़ुज़ूल का हवाला दिया था और उसकी पाबन्दी की तरफ़ सबको तवज्जा दिलाई थी। जिसके नतीजे में अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर, मंसूर बिन मख़रमा बिन नौफ़िल ज़हरी और अब्दुर रहमान बिन उसमान बिन उबैदुल्लाह तैमी मुतअददिद अशख़ास (बहुत से लोग) ने यह एलान किया कि अगर हुसैन बिन अली[अ०स०] इस मुआहदे (Agreement) की बिना पर अपने हक़ को तलब करने के लिए खड़े हों तो हम साथ होंगे। आख़िर वलीद ने सरे तस्लीम ख़म कर दिया और हज़रत के मुतालबे को मन्जूर किया। सीरते इब्ने हिशाम जि/1, पेज/84

आये और आप भी हक़ की हिमायत में अपने फ़रीज़े को अन्जाम देकर अपनी ख़ानदानी रिवायात को ज़िन्दा और बरक़रार रखें।

शजर–ए–नसब आले अदनान

شجرۂ نسب آلِ عدنان ع



ع ماخوذ از سیرۃ النبی لشیخ ابی محمد عبدالملک بن ہشام ج ۱، ط مصر۔ ۱ حضرت محمد مصطفےٰ کی والدہ آمنہ بنت وہب بن عبدمناف بن زہرہ تھیں (طبقات ابن سعد، ط لیدن ج ۱ ص ۳۱۔ ابن ہشام ج ۱ ص ۲۹۔ اصول کافی ط لکھنؤ ص ۲۷۸۔

۲ حضرت علی مرتضیٰ کی والدہ فاطمہ بنت اسد بن ہاشم تھیں۔ اسی لیے آپ کے خصوصیات میں سے ہے "اول ہاشمی ولدہ ہاشم مرتین" پہلے وہ شخص ہیں جو ددھیال اور ننھیال دونوں طرف سے ہاشمی النسل تھے (اصول کافی ط لکھنؤ ص ۲۸۰۔ الارشاد للمفید ط ایران ص ۳)۔

दूसरा बाब

बनी हाशिम और बनी उमय्या

बनी हाशिम के बिल मुक़ाबिल तारीख़ में जो नाम नज़र आता है वह "बनी उमय्या" है। इस क़बीले की बनी हाशिम से रिक़ाबत (दोस्ती) और मुख़ालिफ़त (लड़ाई) के लिये यह हिकायत बयान की गई है कि उमय्या का बाप अब्दुश शम्स और बनी हाशिम के मूरिसे आला हज़रत हाशिम यह दोनों माँ के पेट से जुड़वाँ पैदा हुए थे इस तरह कि उंगली एक दूसरे की पेशानी से चस्पाँ (जुड़ी) थी। मजबूरन उनको काट कर अलग अलग किया गया जिससे ख़ून बहने लगा। उस वक़्त लोगों ने उसे बदशगूनी मान कर कहा कि उनमें आपस में ख़ूंरेज़ियाँ होती रहेंगी।[1] यह हिकायत दुरूस्त हो या न हो लेकिन उससे यह तो अन्दाज़ा होता है कि उन दोनों ख़ानदानों की जंग ने कितनी जड़ पकड़ ली थी कि लोग उसको एक नागुज़ीर (न टलने वाला) और क़ुदरती चीज़ समझने लगे थे। मगर हम जहाँ तक तारीख़ के वाक़ेयात की छान बीन करते हैं हमें ख़ुद अब्दुश शम्स और हाशिम की जंग या मुनाज़ेअत (आपसी झगड़े) की कोई मिसाल नहीं मिलती। बेशक अब्दुश शम्स के बाद उमय्या की तरफ़ से मुख़ासिमत (दुश्मनी) की इब्तेदा नज़र आती है जबकि वह हज़रत हाशिम से मुक़ाबले की कोशिश में नाकाम हुआ और उस वक़्त से उसने एक शिकस्त ख़ुर्दा फ़रीक़ (हारा हुआ गिरोह) की तरह इन्तेक़ामी तसादुम (मुडभेड़) का सिलसिला जारी रखा। वाक़ेया यह था कि मक्का में क़हत पड़ा जिसमें क़ुरैश बहुत तबाह हाल हो गए। हज़रत हाशिम शाम की जानिब गए और वहाँ उन्होंने बहुत ज़्यादा मिक़दार में आटा फ़राहम करके उसकी रोटियाँ पकवाईं और उन्हें ऊँटों पर बार करके मक्का लाये। उन रोटियों को उन्होंने चूरा कराया और उन ऊँटों को नहेर (क़ुर्बान) करके शोरबा तय्यार कराया और बड़ी

[1] तबरी, जि/2, पेज/180

बड़ी देगों में उंडलवा कर वह तमाम रोटियों का चूरा उन देगों में डलवा दिया। इस खाने को अरब में "सरीद" (रोटी के टुकड़े सालन में भीगे हुए) कहते थे। इस तरह उन्होंने तमाम मक्के के लोगों को खाने से सेर किया। इत्तेफ़ाक़ से उसके बाद अब्र आया, पानी बरसा और क़हत साली दूर हो गई। हर शख़्स कहने लगा कि अब की पहला बाराने रहमत का छींटा वह था जो हाशिम के ज़रिये से बरसा। "हाशिम" के माना हैं रोटियों का चूरा करने वाला। शायरों ने इस वाक़ये को ख़ास अलफ़ाज़ में नज़्म किया। एक शायर ने कहा:

عمرو الذی هشم الثرید لقومه

قوم بمكة مسنتين عجاف

तरजुमा: "अम्र (यह हाशिम का अस्ली नाम है) जिन्हों ने अपनी क़ौम के लिये रोटी के टुकड़े करके उन्हें खाना खिलाया, वह क़ौम जो मक्के में क़हत से भूखी और तबाह हाल हो रही थी।"[1]

उमय्या दौलत मन्द आदमी था। उसने जो देखा कि हज़रत हाशिम ने यह किया तो उसे हसद दामनगीर हुआ और ख़्वाह मख़्वाह ब–ग़रज़े मुक़ाबला उसने भी हाशिम की नक़्ल उतारने की कोशिश की मगर वह कामयाब नहीं हुआ और यह अम्र (हुक्म) कुरैश में उसकी रूसवाई और बदनामी का बाइस बन गया। इस बारे में हाशिम का कोई क़ुसूर नहीं था मगर लोगों के तानों तशनियों से खिसयाने होकर वह हाशिम को बुरा भला कहने लगा और उसने हाशिम को "मुनाफ़िरत" (नफ़रत) की दावत दी। यह एक तरह का मुक़ाबला अरबों में रायज था कि दो शख़्स अपने अपने कारनामों को पेश करके किसी सालिस (तीसरे) को हकम (जज) बनाते थे कि वह फ़ैसला कर दे कि कौन उनमें ज़्यादा साहिबे फ़ख़्र व लाएक़े अज़मत है। इस सालिसी (तीसरे फ़रीक़) के लिये ज़्यादा तर काहन (जादूगर) मुन्तख़ब किये जाते थे जो इल्मे क़याफ़ा (अच्छे बुरो की पहचान करने वाला और सितारों का इल्म करने वाला) और नुजूम में बड़े माहिर होते थे। हज़रत हाशिम ने अपनी उम्र की बुज़ुर्गी और अपने रूतबे की बलन्दी के लिहाज़ से उमय्या के साथ मुक़ाबला से इन्कार किया मगर कुरैश के आम अफ़राद ने हज़रत हाशिम को बजबूर किया। आख़िर आप भी आमादा हो गए और कहा कि मैं इस शर्त पर मुक़ाबला करता हूँ कि शिकस्त ख़ुर्दा फ़रीक़ (हारा हुआ गिरोह) अपने मुक़ाबिल को 50 ऊँट सियाह

---

[1]सीरते इब्ने हिशाम जि/1, पेज/85

आँखों वाले सिपुर्द करे जो सरज़मीने मक्का में नहेर (ज़िबह) किये जायें और दस बरस के लिये वह मक्का से जिला वतन (देश से निकालना) हो जाये। उमय्या इस शर्त पर रज़ामन्द हो गया। चुनानचे क़बील–ए खुज़ाआ के काहेन को हकम (जज) मुक़र्रर किया गया। उसने फ़ैसला हाशिम के हक़ में और उमय्या के ख़िलाफ़ दिया। हज़रत हाशिम ने क़रार दाद के मुताबिक़ 50 ऊँट हासिल किये और उन्हें नहेर कराके फिर तमाम अहले मक्का की दावत कर दी और उमय्या को दस बरस के लिये मक्का से जिला वतन होना पड़ा और वह इस मुद्दत तक शाम में क़याम पज़ीर रहा। यह पहली अदावत थी[1] जो उमय्या की औलाद में बनी हाशिम के मुक़ाबले में नस्ल दर नस्ल बरक़रार रही। उसके बाद हाशिम के फ़रज़न्द जनाबे अब्दुल मुत्तलिब और उमय्या के फ़रज़न्द हर्ब में मुक़ाबला हुआ। इस तरह कि जनाबे अब्दुल मुत्तलिब के जवार (पड़ोस) में एक यहूदी का क़याम था जिसका नाम अज़ीना था। उसे तिजारत में बहुत तरक़्क़ी हुई जिससे वह बहुत दौलतमन्द हो गया तो हर्ब बिन उमय्या को उससे पुरख़ाश हो गई। उसने कुछ लोगों को आमादा करके उसे क़त्ल करा दिया और उसका सामान लुटवा दिया। जनाबे अब्दुल मुत्तलिब को तहक़ीक़ से क़ातिलों का पता चल गया मगर यह मालूम हुआ कि हर्ब ने उन्हें कहीं छुपा दिया है तो उन्हों ने हर्ब को समझाया कि क़ातिलों को हवाले करदो लेकिन वह इस पर तय्यार न हुआ। बल्कि जनाबे अब्दुल मुत्तलिब से लड़ने पर आमादा हो गया। उसके नतीजे में फिर नुफ़ैल काहन को सालिस बनाया गया जिसके फ़ैसले पर हर्ब को यह जुरमाना अदा करना पड़ा कि वह सौ ऊँटनियाँ जनाबे अब्दुल मुत्तलिब के हवाले करे जिन्हें वह उस मक़तूल यहूदी के वारिस को खूनबहा के तौर पर दे दें और उस यहूदी का जो माल लूटा गया था वह सब भी वापस दिलवाया गया। चन्द चीज़ें दस्तयाब नहीं हुईं तो उनका तावान हज़रत अब्दुल मुत्तलिब ने अपने माल से अदा किया।[2] पै दर पै (लगातार) शिकस्त खाने के लाज़मी नतीजे के तौर पर बनी उमय्या अरबी खून की बहुत सी लताफ़तें खोते गए और उनमें दनाअत, नालाएक़ी फ़रेब, (धोखा धड़ी) एहसासे कमतरी और दूसरे इसी तरह के औसाफ़ पैदा होते गए जो मुसलसल शिकस्त खाने वालों की ख़ासियत हुआ करते हैं।

---

[1]तबक़ात इब्ने सअ्द मतबूआ लीदन जि/1, पेज/43.44, तबरी जि/2, पेज/180

[2]कामिल इब्ने असीर तबा/मिस्र, जि/2, पेज/6

यहाँ तक कि बनी हाशिम और बनी उमय्या के दरमियान आम अफ़रादे अरब की निगाहों में इतना तफ़रिक़ा पैदा होता गया कि यह चीज़ क़ाबिले ग़ौर बन गई कि यह दोनों एक ही नस्ल की दो शाख़ें हैं भी या नहीं।

अरब क़ौम के यह तअस्सुरात (ख़यालात) देख कर बनी उमय्या, बनी हाशिम के ख़िलाफ़ ज़रबें लगाते थे मगर हर मर्तबा उन्हें नाकामी ही होती थी। हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] भी उठे तो बनी हाशिम ही के यहाँ से। यह आख़री बड़ी शिकस्त थी जिसे बनी उमय्या आसानी से सह न सकते थे। शिबली नोमानी सीरते नबी जिल्द अव्वल में पेज 158 पर लिखते हैं कि: "आँहज़रत की नुबूवत को ख़ानदाने बनी उमय्या अपने रक़ीब (हाशिम) की फ़तह का ख़याल करता था इसलिये सबसे ज़्यादा इसी क़बीले ने आँहज़रत की मुख़लिफ़त की।"

तीसरा बाब

इस्लाम और उसका पैग़ाम

ज़हूरे इस्लाम से क़ब्ल का ज़माना "अय्यामे जाहलियत" के नाम से याद किया जाता है। इसके मुतअल्लिक़ यह ख़याल दुरुस्त नहीं है कि अरब इसमें वहशत और बरबरियत (वहशी पन) के दौर से गुज़र रहे थे और तुमद्दुन व तहज़ीब से वाक़िफ़ नहीं हुए थे बल्कि जिस तरह डाक्टर वहीद मिर्ज़ा साहब ने लिखा है वाक़ेया यह है कि जुनूबी अरब इस्लाम से सदियों क़ब्ल एक बड़ी तहज़ीब का गहवारा और कारोबार तिजारत का एक ख़ुशहाल मरकज़ था। "हुमैरी" बादशाहों के आसारे क़दीमा, सद्दे मारिब, बाग़े शद्दाद और तख़्ते बिल्क़ीस मलक–ए–सबा वग़ैरह के तज़केरों में इसका मुकम्मल सुबूत मौजूद है। इसके अलावा अय्यामे जाहलियत की शायरी जो कि अदब का बेहतरीन नमूना है इसी से यह भी पता चलता है कि अय्यामे जाहलियत के अरब बहुत सी ख़ूबियों के हामिल थे। मसलन बहादुरी, सख़ावत, मेहमान नवाज़ी, वफ़ादारी, शौहरी मोहब्बत और बरादरी उन्स (भाईयों में मुहब्बत) वग़ैरह, ख़ुलासा यह कि शायरी उनके अख़लाक़ियात का दफ़्तर है और इससे पता चलता है कि वह शराफ़त का काफ़ी उनसुर (तबियत) रखते थे। उनकी शायरी बिलख़ुसूस उनमें से चन्द की, इस बात को भी ज़ाहिर कर देगी कि अगरचे वह उस ज़माने के इलहामी मज़हब (अल्लाह के दीन) को न मानने के बाइस मुशरिक थे और बुत परस्ती भी किया करते थे ताहम वह मज़हब के ख़ास ख़ास अक़ायद से बिल्कुल ना–वाक़िफ़ व बेगाना न थे। वह अपनी बुत परस्ती की यह तावील (दलील) करते थे कि उन बुतों के ज़रिये से हम ख़ुदा–ए–वाहिद (अल्लाह) की बारगाह में क़ुर्ब हासिल करते हैं। फिर यह कि अरबों की एक बड़ी तादाद जनाबे इस्माईल[अ०स०] की नस्ल से तअल्लुक़ रखती थी और यह नामुमकिन है कि वह अपने आबाओ अजदाद (पूवर्जों के तालीमात से क़तअन बेगाना हो गए हों बल्कि हक़ीक़त यह है कि तुमद्दुनी (तहज़ीबी) हैसियत से इस्लाम से क़ब्ल

के ज़माने में अरब की जमाअत तरक़्क़ी के बाद तनज़्ज़ुली (गिरावट) की तरफ़ जा रही थी। अब इसमें कुछ उमदा क़दीम खुबियों का शायबा (अक्स) तो मौजूद था लेकिन ज़्यादा तर इस में बुरी आदतें दाख़िल हो गई थीं। वह हर साल मक्के में ब–फ़र्ज़े हज जमा होते थे लेकिन इस मुक़द्दस फ़र्ज़ की अहमियत उनके दिलों से महो (ग़ायब) हो चुकी थी। उनके कारवाँ हिजाज़, इराक़, और शाम में अब भी असबाब (सामान) से लदे हुए जाते थे लेकिन अब उन में सनअत व तिजारत का जोश सर्द (ठंडा) हो चुका था और इन्तेहाई ग़ुरबत ने उन्हें हरीस (लालची) बना दिया था। उनमें अल्लाह का एक धुँधला और मद्धम तसव्वुर मौजूद था लेकिन उनके बुत उनके नज़दीक ज़्यादा मुक़द्दस थे। वह सुलह पसन्द और मुतमइन ज़िन्दगी के फ़वायद (फ़ायदों) से वाक़िफ़ थे और जंग से मुतनफ़्फ़िर (दूर) रहना चाहते थे जिसे वह ''शोला दर आग'' या उस मन्हूस जानवर से जिसके यहाँ कसरत से तमाम (जुड़वाँ) बच्चे पैदा होते हैं तशबीह (मिसाल) दिया करते थे लेकिन उनकी ख़ुद ग़र्ज़ी, और ग़ुरबत उनको आमादा करती थी कि वह अपने हमसाए (पड़ोसी) के माल पर दस्ते ततावुल दराज़ (माल ग़स्ब करना) करें। वह अपने मुर्दों का ख़ूब मातम करते थे लेकिन इन्तेक़ाम कशी (बदले की कार्रवाई) से अपने को बाज़ न रख सकते थे। नतीजा यह होता था कि नस्लन बाद नस्लिन बराबर ख़ूँरेज़ जंगे जारी रहती थीं। वह अपने बच्चों से मोहब्बत करते थे, इसलिये कि वह उनके जिगर के टुकड़े हैं जो ज़मीन पर चलते फिरते हैं लेकिन उन ही में से बाज़ को अपनी इज़्ज़त का इतना पास रहता था कि वह इस ख़याल को बर्दाश्त ही नहीं कर सकते थे कि उनकी लड़कियाँ किसी ज़ालिम भाई या चचा की कनीज़ी में चली जायें या उनके रहमो करम पर पड़ जायें और इसलिये वह उनकी हलाकत को अपनी इज़्ज़त के बरक़रार रखने का बेहतरीन ज़रिया समझते थे।

यही हालत वह होती है जिसकी इस्लाह निहायत दुशवार है क्योंकि दौरे बरबरियत (वहशी पन) व वहशत से गुज़रती हुई क़ौमें सादा लौह होती हैं। उनके दिलों पर जैसा नक़्श बिठलाया जाये वह आसानी से उतर आता है इसलिये कि उसके ख़िलाफ़ कोई नक़्श जमा हुआ नहीं है मगर अरबों की तमद्दुनी (रहेन सहन) ख़राबियाँ वह थीं जो ख़ालिस माद्दी साख़्त (दुनियावी बनावट) के तमद्दुन और हवसे इक़्तेदार की पैदावार होती हैं। उन्होंने अरबों

की उफ़तादे तबा (मिज़ाजी ख़राबियाँ) के साथ मिलकर सोने पर सुहागे का काम किया था।

एहसासे बरतरी क़ौमियत से मुन्तक़िल हो कर जब इन्फ़ेरादियत की तरफ़ आता है तो उसका नतीजा होता है बाहमी रिक़ाबत (आपसी दुस्ती) और आपस की ख़ाना जंगी। यह बात अरबों में इन्तेहा दर्जे पर पहुंच गई थी। फिर इसी का नतीजा था कि मसावाते (बराबरी) इन्सानी कोई चीज़ न रही थी और ग़ल्ब–ए–ताक़त और इक़तेदार सब कुछ था। उसकी एक अदना मिसाल यह है कि एक बड़े आदमी के क़त्ल हो जाने पर सिर्फ़ उसके क़ातिल को क़त्ल न किया जाता था बल्कि उसके क़बीले के सैंकड़ों बे गुनाह आदमियों को मार डाला जाता। तब कहीं यह समझा जाता था कि उसके ख़ून का बदला हुआ उसके बरख़िलाफ़ अगर बड़े आदमी के हाथ से कोई छोटा आदमी क़त्ल होता था तो उसका ख़ून क़िसास (बदले) का मुस्तहक़ न समझा जाता था। यह बड़े और छोटे की तफ़रीक़ हज़ारों तमद्दुनी गुनाहों का सरचश्मा थी और इन्सानियत के परख़्चे उड़ा रही थी। इसका सबब यह था कि उन्होंने माददियत को सब कुछ समझ लिया था। मावराउल माद्दा का तख़य्युल (आख़िरत का ख़याल) बाक़ी न रहा था। इसलिये माद्दी (दुनियावी) ताक़त ही की बिना पर वह इम्तेयाज़ात क़ायम करते थे। यह हालत कमो बेश अरब के अलावा दूसरे मुल्कों की भी थी।

मज़हबी हैसियत से अरब निहायत पस्ती में थे। उनमें कोई एक मज़हब मुशतरक न था बल्कि वहाँ मुतअददिद (बहुत से) मज़ाहिब के अफ़राद रहते थे और बड़ी जमाअत बुत परस्ती और सितारों की परस्तिश को अपना शिआर बनाये हुए थी। चुनानचे काबे ही में तीन सौ साठ बुत रखे हुए थे जिनमें से एक एक की परस्तिश साल के एक एक दिन की जाती थी क्योंकि अरबी साल तीन सौ साठ दिनों का होता है। जो मज़हब रायज थे जैसे यहूद, मजूस और नसारा वह भी पस्ती की तरफ़ मायल नज़र आ रहे थे। आमाले नाशाइस्ता (ग़लत काम), दूसरी जमाअतों से नफ़रत, रवादारी का मफ़क़ूद (न होना) होना, आपस की ख़ूँरेज़ी और ऐसी ही बहुत सी ख़राबियाँ उनमें वाज़ेह तौर पर मौजूद थीं और इसलिये फ़ितरते इन्सानी किसी ऐसी मुन्तख़ब हस्ती की ख़्वाहाँ थी जो दुनिया को इस मुसीबत से निजात दिलाए।

ऐसे वक़्त में मोहम्मद बिन अब्दुल्लाह[स0] इस्लाम का ज़लज़ला अफ़गन (हलचल मचा देने वाला) पैग़ामे इन्क़ेलाब लेकर दुनिया के सामने आ गये और

मुर्दा इन्सानियत को ज़िन्दगी का मुज़दा (पैग़ाम) सुनाया जैसा कि डाक्टर वहीद मिर्ज़ा साहब ने लिखा है: ''हज़रत[स0अ0] का काम यक़ीनन दुशवार था इसलिये कि आप महज़ वहशी लोगों को मुतमद्दिन (तहज़ीब याफ़्ता) नहीं बना रहे थे बल्कि बिगड़ी हुई समाजी कैफ़ियत को सुधारना चाहते थे। आपका काम उन तमाम अक़ायद व तवहहुमात, रिवायत व मरासिम (रसमें) का अरबों के दिलों से महो (मिटाना) करना था जो उनकी ज़िन्दगी का जुज़वे ला–युनफ़क (न ख़त्म होने वाला ज़िन्दगी का हिस्सा) बन चुकी थी। रसूल[स0अ0] उन लोगों को बुर्दबारी, ख़ाकसारी, पाकबाज़ी और अफ़्व (माफ़ करना) का सबक़ पढ़ाना चाहते थे जिनके नज़दीक माफ़ कर देना कमज़ोरी की दलील और इन्तेक़ाम न लेना ज़िल्लत और बुज़दिली की अलामत समझा जाता था। रसूल[स0अ0] उन लोगों को मसावात और अख़ूवत (भाई चारगी) की तालीम देना चाहते थे जो कि अपने ख़ानदानी शरफ़ पर फ़ख्र किया करते थे और अपने आबाओ अजदाद के पूरे शजरे को निहायत सख़्ती के साथ महफ़ूज़ रखा करते थे। उन चीज़ों के अलावा इस्लाम को अरबों के और बहुत से दूसरे रूजहानात से बरसरे पैकार (मुक़ाबला) होना पड़ा। मसलन उसने शराब की ममानिअत (मना) कर दी जिसके वह आदी हो चुके थे और जिसका इस्तेमाल वह सख़ावत की दलील समझते थे। उसने क़मारबाज़ी (जुआ खेलना) बन्द कर दी जो अरबों के नज़दीक बुज़दिल वजूद की एक क़तई अलामत थी और बहुत सी मुख़रबे अख़लाक़ (उनके अन्दर की ख़राबियाँ) आदतों को ममनूअ् (पाबन्दी) क़रार दिया। अरब इस बात का तसव्वुर भी न कर सकते थे कि सबसे ज़्यादा मुक़द्दस इन्सान क्योंकर खुदा की बारगाह में सबसे ज़्यादा मुअज़्ज़िज़ (मोहतरम) हो सकता है या इस्लाम क़ुबूल करने के बाद कोई पस्त इन्सान क्योंकर अरब के शरीफ़ तरीन ख़ानदानों के अशख़ास से बरतरी का दावा कर सकता है।''

ख़्वाजा गुलामु सय्यदैन साहब ने इसे बहुत अच्छे लफ़्ज़ों में लिखा है कि: ''इस्लाम एक ऐसी दुनिया के लिए जो पुजारियों के क़ब्ज़–ए–इक़तेदार और दौलतमन्दों के ज़ेरे हुकूमत मुसीबत के दिन काट रही थी पैग़ामे आज़ादी ले आया। आज़ादी पुजारियों की क़ैद से जो अब्दो माबूद (बन्दे और अल्लाह) के दरमियान वास्ता बनने के दावेदार थे आज़ादी गिरोहे उमरा (अमीरों) की हुकूमत से जो न किसी ख़ुदाई क़ानून की परवाह करते थे और न किसी इन्सानी क़ानून की, बल्कि बग़ैर रोक टोक के हरीसाना (लालच) तरीक़ों पर

दूसरों की मेहनत व मुशक़्क़त के फलों से खुद लुत्फ़ अन्दोज़ हो रहे थे, आज़ादी ग़ुलामों और नीच ज़ातों के लिये उनके मालिकों के मज़ालिम और ख़िलाफ़े इन्सानियत बेरहमाना सुलूक से, आज़ादी तब्क़–ए–निसवाँ (औरतों) के लिये उस अमली ग़ुलामी से जिसमें वह इन्सानी हुक़ूक़ के इब्तेदाई मनाज़िल से भी महरूम कर दी गई थीं, आज़ादी आम इन्सानों के लिये उन क़ुऊद (पाबंदी) से जिनमें वह ज़ात पात, रंग और क़ौम की तंग नज़री की बन्दिशों में मुबतिला थे जिससे उनकी हयाते इजतेमाई फ़ना (आम ज़िन्दगी बरबाद) हो रही थी और वह मुतख़ासिमीन (झगड़ालूओं) के गिरोह में मुन्क़सिम (बट) हो रहे थे गरोहे इन्सानी किस तरह अपने खुद साख़्ता (बनाए हुए) ज़ालिमाना क़ैदों में मुतक़य्यद (बन्द) हो रहा था। हिन्दुस्तान के मशहूर शायर और "फ़ैलसूफ़" एक़बाल ने इस मन्ज़र की तसवीर कशी ज़ैल के अशआर में की है।

बूद इन्साँ दर जहाँ इन्साँ परस्त
ना–कसो नाबूदमानदो ज़ेरे दस्त

सतवते किसरा व क़ैसर रहज़नश
बन्दहा दरदस्तो पाओ गर्दनश

काहिनो सुलतान व पापा व अमीर
बहरे यक नख़चीर सद नख़चीर गीर

अज़ ग़ुलामी फ़ितरते ऊँ दूँ शुदा
नग़महा अन्दर नये ऊ ख़ूँ शुदा

इस्लाम ने उसे एक पैग़ामे आज़ादी सुनाया। हुररियत (आज़ादी) व मसावात (बराबरी) और इन्सानी बरादरी की तलक़ीन की और तवारीख़े इन्सानी में पहले पहल शहरी और इन्सानी हुक़ूक़ पूरे तौर पर आम इन्सानों को बिल उमूम (एक जैसे) अता किये जिससे वह ब–सबबे क़ौमियत, रंग या जिन्स के या ब–सबबे ग़ुरबत व फलाकत (फ़ाक़ा ज़द) के महरूम थे। ग़ुरबा, मज़लूम और आम इन्सानों के आम तब्क़े को जो अब तक बड़ी बेदर्दी से पीसा जा रहा था, नई उम्मीदों और अपने कारआमद होने का नया एहसास अता किया।

ता आमीने हक़ ब–हक़ दाराँ सिपुर्द
बन्दगाँ रा मसनदे ख़ाक़ाँ सिपुर्द

एतेबारेकारबन्दाँ रा फ़ुज़ूद
ख़्वाजगी अज़ कारफ़रमायाँ रबूद

कुव्वते ऊ हर कुहन पैकर शिकस्त
नौए इन्साँ रा हिसारे ताज़ा बस्त

ताज़ा जाँ अन्दर तने आदम दमीद
बन्दा रा बाज़ अज़ ख़ुदा वन्दाँ ख़रीद

हुर्रियत ज़ाद अज़ ज़मीरे पाके ऊ
ईं मए नोशीं चकीद अज़ ताके ऊ

ना–शकीबे इम्तेयाज़ात आमदा
दर निहादे ऊ मसावात आमदा

असरे नौ कीं सद चिराग़ आवुर्दा अस्त
चश्मदर आग़ोशे ऊ वाकरदा अस्त

यह क़ीमती ख़यालात थे जिनको इस्लाम अरबों की ज़िन्दगी में दाख़िल करना चाहता था और अरबों की विसातत से तमाम इन्सानों में पहुंचाना चाहता था।''

इस्लाम ने इस ज़हनी इन्क़ेलाब के पैदा करने के लिये सबसे पहले असली सबब को दूर करते हुए लोगों की निगाह को माद्दियत के एहाते (सर्किल) से निकाल कर एक ग़ैबी ताक़त की जानिब मुतवज्जेह किया जिसके लिहाज़ से तमाम अफ़रादे इन्सानी यकसाँ हैसियत रखते थे। इसके सिवा मसावात क़ायम करने के लिये दौलत को बराबर तक़सीम कर दिया जाये लेकिन बाज़ूओं की ताक़त, मौरूसी वजाहत (नस्ली शान व शौकत), क़ौम व क़बीले की तक़सीम किस तरह की जा सकती है? इस्लाम जानता था कि ख़ारजी (बाहरी) मसावात (बराबरी) मुमकिन नहीं इसलिये उसने ज़हनी इन्क़ेलाब पैदा करने की कोशिश की ताकि इस ज़हनी तब्दीली के ज़रिये एक इन्सान दूसरे इन्सान को बराबर समझे, उसने सही तौर पर समझा कि बरादरी और बराबरी की अस्ल कुंजी क्या है? अहसासे अख़ूवत व मसावात की वाहिद बुनियाद यह है कि जब कोई कसरत किसी वहदत की तरफ़ मुसतनद (पलट) हो जायेगी तो उसके अजज़ा में बरादरी और बराबरी का एहसास पैदा हो जाना फ़ितरी है। दो भाई क्यों एक दूसरे के साथ बराबरी का दावा रखते हैं? इसलिये कि एक बाप के बेटे हैं, एक ख़ानदान के आदमी क्यों आपस में

बरादरी और बराबरी का तसव्वुर रखते हैं? इसलिये कि एक मूरिसे आला की नस्ल से हैं। एक मुल्क के लोग आपस में क्यों राब्त–ए–अख़ूव्वत महसूस करते हैं और क्यों हुक़ूक़ में बराबरी के तालिब (बाँग) होते हैं? इसलिये कि एक सरज़मीन के बाशिन्दे हैं। इतना ही नहीं बल्कि मशरिक़ वाले आपस में यगानगी (बराबरी) और मग़रिब वाले आपस में यकजेहती (इत्तेहाद) क्यों महसूस करते हैं? इसलिये कि वह आफ़ताब के लिहाज़ से एक सिम्त के रहने वाले हैं। मालूम हुआ कि कसीर अफ़राद में इत्तेहाद व मसावात का एहसास पैदा करने का ज़रिया सिर्फ़ वह एक वसी नुक़्त–ए–वाहिद (मरकज़) है जिसकी तरफ़ ज़्यादा से ज़्यादा अफ़राद यकसाँ तौर पर मन्सूब हो सकते हैं। दूसरे लफ़्ज़ों में कुल्लिया (निचोड़) यह हुआ कि जब कोई कसरत वहदत की तरफ़ मन्सूब हो तो उसके अन्दर बराबरी और बरादरी का एहसास पैदा हो जायेगा। मगर याद रखना चाहिए कि मज़कूरा बाला इत्तेहादों में से हर इत्तेहाद इफ़्तेराक़ (जुदाई) का पेश ख़ैमा क़रार पाया। यानी जब एक बाप के बेटों में ऐका पैदा हुआ तो दूसरे बाप के बेटों के सामने महाज़ क़ायम हुआ और जब एक ख़ानदान के लोगों में ऐका क़ायम हुआ तो दूसरे ख़ानदान वालों के सामने महाज़ क़ायम हुआ जिसका नतीजा हुआ करता है क़ौमों की जंग और ममालिक का बाहमी तसादुम (मुल्कों का आपसी टकराओ) और फ़तह व शिकस्त (जीत और हार) का ग़ैर मुतनाही सिलसिला (न ख़त्म होने वाला सिलसिला) जिसके करिश्मे आज भी नज़र आ रहे हैं और जब एक सिम्त वालों में इत्तेहाद हुआ तो दूसरी सिम्त वालों के सामने महाज़ क़ायम हुआ यहाँ तक कि युरोप वाले एक अलग क़ौम बन गए और एशिया वाले एक अलग क़ौम और जब इसके साथ रंग के इत्तेहाद ने असर दिखाया तो गोरों और कालों का ऐसा इफ़तेराक़ (जुदाई) पैदा हुआ कि गोरों ने न सिर्फ़ कालों को अपने साथ एक होटल में खाना खाने से रोका बल्कि एक इबादतगाह में इबादत के लिये एक ही मज़हब वालों के लिये जमा होना तक ममनूअ् क़रार दिया। यह सब नतीजा था इसका कि इत्तेहाद की दीवारें आलमे इन्सानियत के बीच में उठाई गईं थीं इसलिये हर दीवार जो उठी उसने इधर वालों को तो मुत्तहिद किया और उधर वालों को जुदा कर दिया। इस्लाम ने इस अस्ल उसूल को लेते हुए कि इत्तेहादे अफ़राद का राज इत्तेहादे मरकज़ी में मुज़मर है (लोगों का इत्तेहाद एक मरकज़ पर जमा होने में पोशीदा है।), ज़रूरत समझी कि इन तमाम दरमियानी दीवारों को ढा दिया जाये और बीच के उन तमाम ख़ुतूत

(तअस्सुब की हदें) को मिटा कर उनके बजाये एक वसी एहाता ऐसा क़ायम किया जाये जहाँ नस्ल, रंग, मुल्क और क़ौमियत किसी चीज़ की तफ़रीक़ न हो। वह एहाता ऐसा हो जो तमाम आलमे इन्सानी को अपने घेरे में ले ले और चूँकि इस एहाते के बाहर फिर कुछ रह नहीं जायेगा इसलिये इफ़तेराक (जुदा) व इम्तेयाज़ (फ़र्क़) का सवाल ही न पैदा हो सकेगा। इस के लिये कोई माद्दी चीज़ नुक़्त–ए–मरकज़ी नहीं बन सकती थी क्योंकि जो माद्दी (दुनियावी) शै होगी वह महदूद होगी और महदूद होने के साथ उसमें क़ुर्ब व बोद (नज़दीक व दूर) नीज़ कमी व ज़्यादती के मदारिज (दर्जे) पैदा होंगे इसलिये ज़रूरत थी कि निगाह को तमाम माद्दी चीज़ों से हटा कर उस ग़ैर माद्दी (दुनियावी) बलन्द व बालातर ताक़त की तरफ़ मोड़ दिया जाये जहाँ हुदूद व इक़दार (limitation & Boundation) क़ायम नहीं होते। इसका सबके साथ यकसाँ तअल्लुक़ है जो सबका है और सब उसके हैं। यह ख़ालिक़ की ज़ात है जिसे इस्लाम ने माबूदे बर हक़ और ख़ुदाए कुल साबित करते हुए सबका क़िबल–ए मक़सद क़रार दे दिया है।

इस एहसास के पैदा होने के साथ कि सब ख़ुदा के बन्दे हैं। अफ़रादे इन्सानी में एहसासे उख़ूव्वत (भाई चारगी) व मसावात (बराबरी) पैदा होना लाज़मी है। जब एक बाप के बेटे आपस में भाई भाई हैं और एक मूरिसे आला की औलाद में बरादरी क़ायम हो जाती है और एक सरज़मीन के रहने वाले अपनी मादरे वतन के लिहाज़ से आपस में उख़ूव्वत महसूस करते हैं और एक सिम्त के रहने वाले अपने में यकजेहती का तसव्वुर करते हैं तो क्या वजह है कि एक ख़ालिक़ के बन्दे सब आपस में भाई भाई न बन जायें। यह था वह अमली सबक़ जो इस्लाम की तौहीद में मुज़मर (पोशीदा) था।

बाज़ मज़ाहिब ने ख़ालिक़ के तख़य्युल (ख़यालात) में भी मुग़ायेरात (तब्दीली) बरती थी। उन्होंने ख़ुदा को अपना क़रार दे लिया था और यह कहते थे कि हम उसके बेटे हैं। इस्लाम ने उन लोगों के ख़याल या ज़ोम का ज़िक्र करते हुए एक तन्ज़िया अन्दाज़ में उसकी मुख़ालिफ़त की और उसके मुक़ाबले में मुसलमानों को यह तलक़ीन नहीं किया कि तुम ही अल्लाह के सपूत हो और बस, बल्कि मुसलमानों को अक़वामे आलम के मुक़ाबले में यह कहने की तालीम दी कि هوربنا وربكم لنا اعمالنا ولكم اعمالكم (यानी) "वह हमारा भी परवरदिगार है और तुम्हारा भी। हमारे लिये हमारे आमाल हैं और तुम्हारे लिये तुम्हारे आमाल।" इस तरह इस्लाम ने सबको मसावात का दर्जा देते हुए एक

मेयार इम्तेयाज़ का भी क़ायम कर दिया और वह इन्सानी किरदार है। अब साबिक़ के तमाम तफ़व्वुक़ (बरतरी) और बलन्दी के इम्तेयाज़ात (फ़र्क़) मिट कर एक न्या मेयार इम्तेयाज़ का क़ायम हो गया और वह यह कि जो शख़्स फ़राएज़े इन्सानी को सबसे ज़्यादा अन्जाम देता हो वह सबसे बेहतर है। ''إِنَّ أَكْرَمَكُمْ عِندَ اللَّهِ أَتْقَاكُمْ'' ''बेशक अल्लाह के नज़दीक साहिबे करामत वह है जो मुत्तक़ी व परहेज़गार है'' इस उसूल के मातहत ग़ल्बा, ताक़त, इक़्तेदार, क़ौम व क़बीला की ज़्यादती और तादाद की अक्सरियत यह तमाम बातें कुछ न रहीं बल्कि यह उसूल क़ायम हो गया कि एक इन्सान को दूसरे इन्सान पर फ़क़त एहसासे फ़राएज़ की बिना पर फ़ज़ीलत हासिल होती है। इसके मातहत अख़्लाक़ पर बहुत ज़ोर दिया गया। यहाँ तक कि बानिए इस्लाम ने अपना मक़सदे रिसालत ही यह क़रार दिया और एलान किया انمابعثت لاتم مكارم الاخلاق।दूसरी लफ़्ज़ों में انمابعثت لاتم حسن الاخلاق मेरी बेअ्सत महेज़ इन्सान सुधार और अच्छे एख़लाक़ की तकमील के लिए है।[1]

मुसलमानों से साफ़ कह दिया गया कि यह ख़याल न करना कि तुम्हें तुम्हारे आमाल की सज़ा न मिलेगी बल्कि जो जैसे आमाल करेगा वैसा ही पायेगा। मुसलमान वह है जो अहकामे ख़ुदा के आगे सरनिगूँ (झूकाना) हो जाये। सरकशी मुस्लिम की शान नहीं है। तुम अल्लाह के दोस्त जब ही कहलाये जा सकते हो जब उसके अहकाम की तमील (पालन) करो वरना उसकी रहमत के हक़दार नहीं और न उम्मते मरहूमा में शामिल होने के क़ाबिल।

मआशिरत (आपसी मेल जोल) के बाब में इस बात पर ज़ोर दिया गया कि सब इन्सान ज़ात और असलियत के लिहाज़ से एक ही हैं।(خلقكم من نفس واحدة)[2]क़बायल और अक़वाम में उनकी तक़सीम सिर्फ़ तआरूफ़ और शनाख़्त के लिये है। (وَجَعَلْنَاكُمْ شُعُوبًا وَقَبَائِلَ لِتَعَارَفُوا)[3] मगर फ़ज़ीलत व बलन्दी का तअल्लुक़ ज़ात और क़ौमियत से बिल्कुल नहीं है। (لافخر للقرشى علمى غير القرشى ولا للعربى على غير العربى)[4]फ़ज़ीलत व बुज़ुर्गी सिर्फ़ परहेज़गारी और तक़वा यानी इन्सानी आमाल और फ़राएज़ की बजाआवरी के साथ वाबस्ता है।

[1]तबक़ात इब्ने सअ्द जि/1, पेज/138

[2]उसने तुमको एक नफ़्स से पैदा किया

[3]हमने तुम्हें मुख़तलिफ़ ख़ानदानों और क़बीलों में इसलिये क़रार दिया है कि आपस में शनासाई(जान पहचान)पैदा हो

[4]क़रशी को ग़ैर क़रशी और अरब को ग़ैर अरब पर कोई फ़ख़्र नहीं

''اِنَّ اَکْرَمَکُمْ عِنْدَ اللّٰہِ اَتْقٰکُمْ''-[1]उसको पैग़म्बर ने सिर्फ़ क़ौलन नहीं बल्कि अमलन भी दिखाया। आपने अपना मुअज़्ज़िन (अज़ान देने वाला) बिलाले हबशी को क़रार दिया और जब किसी ने उसे देख कर नाक भौं चढ़ाई और कहा ''यह काले रंग का ग़ुलाम भी भला इस क़ाबिल है कि अज़ान दे।'' तो क़ुरआन की आयत उतरी (يَا أَيُّهَا النَّاسُ إِنَّا خَلَقْنَاكُمْ مِنْ ذَكَرٍ وَأُنْثَىٰ) यानी सब आदमी यकसाँ हैं, उनमें कोई फ़र्क़ नहीं।[2]जैसाकि अब्दुल हामिद साहब बदायूनी ने कहा हैः ''इस्लाम दर अस्ल हुकूमते इलाहिया का क़याम चाहता है। इस्लामी हुकूमत का दारो मदार अदल व इन्साफ़ क़रार दिया गया है। चुनानचे क़ुरआने मजीद ने इस बारे में फ़रमायाः

(إِذَا حَكَمْتُمْ بَيْنَ النَّاسِ أَنْ تَحْكُمُوا بِالْعَدْلِ إِنَّ اللّٰهَ نِعِمَّا يَعِظُكُمْ) (सूरए निसा)

(وَلَا يَجْرِمَنَّكُمْ شَنَآنُ قَوْمٍ عَلَىٰ أَلَّا تَعْدِلُوا اعْدِلُوا هُوَ أَقْرَبُ لِلتَّقْوَىٰ وَاتَّقُوا اللّٰهَ) (सूरए मायदा) ''यानी अगर तू ग़ैर मुस्लिम के बारे में फ़ैसला करे तो इन्साफ़ से फ़ैसला कर। बेशक ख़ुदा इन्साफ़ करने वालों को दोस्त रखता है।'' इस्लामी क़ानून में शाह व गदा यकसाँ हैसियत रखते हैं।

चुनानचे हुज़ूरे अनवर[स0अ0] ने फ़रमायाः ليس لاحد على احد فضل الابدين وتقوىٰ(मिशकात) इसी का नतीजा यह है कि इस्लाम में सियासत, ''हुसूले इक़्तेदार के कामयाब ज़राये के इस्तेमाल'' का नाम नहीं है बल्कि सियासत मुल्को मिल्लत के सही नज़्मो ज़ब्त और उमूरे ख़ल्क़ (लोगों के काम) के बेहतरीन तरीक़े पर चलाने का नाम है। इस लिहाज़ से सियासी हुकूमत मज़हबी क़यादत से अलग नहीं हो सकती और इसकी मिसाल ख़ुद हज़रत पैग़म्बर[स0अ0] की ज़ाते गिरामी है।

मगर याद रखने की बात है कि हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] ने इस मुकम्मल इक़्तेदार के बावजूद जिसके मातहत एलान कर दिया गया कि ''उन को हर शख़्स पर ख़ुद उसकी ज़ात से ज़्यादा हक़ और इख़्तियार है।'' कभी अपने को बादशाह कहा या समझा जाना पसन्द नहीं किया बल्कि इससे इन्कार फ़रमाया। चुनानचे एक मर्तबा एक शख़्स आपकी ख़िदमत में हाज़िर हुआ, जूँही आपके सामने खड़ा हुआ रोब से कांपने लगा। आपने फ़रमाया

---

[1]तुम में अल्लाह के नज़दीक सबसे ज़्यादा मअज़्ज़िज़ (मोहतरम) वह है जो तुम में सबसे ज़्यादा परहेज़गार हो
[2]इत्तेहक़ाक़ सुयूती देहली पेज/148

"अपने आपे में आओ मैं कोई बादशाह नहीं हूँ। मैं तो एक क़रशी औरत का बेटा हू॰ जो शोरबे में रोटी भिगो कर (ग़रीबाना खाना) खाती थी।"[1]

यह इसलिये था कि मुसलमानों में शरीयते इलाहिया की रहबरी से अलग हुक्मरान का तख़य्युल (ख़याल) पैदा न हो और सिवाए खुदा वन्दी इक़्तेदार के किसी इक़्तेदार के आगे मुसलमानों की गर्दने न झुकें।

[1]तबक़ात इब्ने सअ्द, कुम, जि/1, पेज/4

चौथा बाब

इस्लाम का मुज़ाहिम (मुख़ालिफ़) ताक़तों से तसादुम (टकराव)

जहाँ तक आईन और निज़ाम की तशकील का तअल्लुक़ है पैग़म्बरे इस्लाम की ज़िन्दगी में यह मक़सद हासिल हो गया और लाखों आदमी उसके तस्लीम करने वाले और उसको हक़ कहने वाले हो गए और यह एक इन्क़ेलाब की कोई कम कामयाबी नहीं है। मगर इस इन्क़ेलाब पैदा करने में रसूल[स0अ0] को कितनी दिक़्क़तें दर पेश हुईं और किन किन ताक़तों से मुक़ाबला करना पड़ा। यूँ तो कुछ लोग वह होते हैं जो जज़बात के लिहाज़ से हर क़दीम शै (पुरानी चीज़) के साथ उलफ़त रखते हैं इसलिये उन्हें हर इन्क़ेलाब के मुहर्रिक (बानी) से बुग्ज़ लिल्लाही होता है। इलाही बैर का मतलब यह है कि चाहे इस इन्क़ेलाब का उनकी ज़ात से कोई तअल्लुक़ न हो और उन्हें इससे कोई नुक़सान भी न पहुँचता हो मगर वह इन्क़ेलाब से सिर्फ़ इसलिये दुश्मनी रखते हैं कि वह इन्क़ेलाब है लेकिन कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनके ख़ुद ग़रज़ाना मफ़ाद (फ़ाएदे) क़दीम रस्मो रवाज के साथ वाबस्ता हैं और उन्हें इस इन्क़ेलाब से अपने मनाफ़े (फ़ाएदों) का ख़ून होते हुए नज़र आता है। चुनानचे इस्लाम जो इन्क़ेलाब लेकर आया था और उसने ज़िन्दगी के हर शोबे में जो तब्दीलियाँ कर दी थीं उनसे बहुत सी क़िस्म के लोगों को ज़ाती नुक़सानात पहुँच रहे थे। यह नुक़सानात माली भी थे और वजाहत (शानों शौकत) व इक़्तेदार के भी। मिसाल के तौर पर इस्लाम की मआशी (मालियत) तालीम कि सूद ख़ोरी ममनूअ् (मना) है, उससे क्या तमाम अरब के इन महाजनों का दीवाला नहीं निकल गया, जिनकी ज़िन्दगी ही हाजत मन्द मख़लूक़ का ख़ून चूस कर अपनी हवसे दौलतमंदी को पूरा करने पर थी। फिर अगर सिर्फ़ यह होता कि सूद लो नहीं तो यह मुमकिन था कि यह लोग इस्लाम न क़ुबूल करके अपने को इस हुक्म की पाबन्दी से महफ़ूज़ रखते मगर वहाँ तो यह था कि न सूद लो और

न सूद दो। ज़ाहिर है कि सूद देना काम होता है कम हैसियत ही लोगों का जो मेक़नातीसी (चुंबकीय) कशिश के साथ इस्लाम के ग़रीब परवर तालीमात की तरफ़ खिंचे चले जा रहे थे। अब अगर सरमायादार ख़ुद इस्लाम न भी क़ुबूल करें तो क्या फ़ायदा। जब उनकी ज़िन्दगी का दारोमदार जिन लोगों के रूपये पर था, उन्होंने इस्लामी तालीमात पर अमल पैरा हो कर अपना हाथ खींच लिया और वह अब एक पैसा भी सूद के नाम से देने पर तय्यार नहीं। उसके अलावा इस्लाम की यह तालीम कि अफ़रादे इन्सानी में इम्तेयाज़ सिर्फ़ अख़लाक़े हसना (अच्छे नेचर) व फ़राएज़े इलाहिया की बिना पर है। दूसरी किसी हैसियत से फ़ज़ीलत व तफ़व्वुक़ हासिल नहीं हो सकता (बरतरी हासिल नहीं हो सकती) उन लोगों के इक़्तेदार पर कारी ज़र्ब थी जो उसके पहले नस्ली तफ़व्वुक़ या माल व दौलत या क़ौम व क़बीले की कसरत की बिना पर ग़ल्बा व इक़्तेदार पर क़ब्ज़े किये हुए थे। इस्लाम ने नज़रिय–ए तफ़व्वुक़ व इम्तेयाज़ बदल कर इसे मिलकियत में दाख़िल ख़ारिज कर दिया। इस तरह के साहेबाने इक़तेदार जितने थे वह चूँकि इस्लामी मेयारे इज़्ज़त के लिहाज़ से सिफ़र (0) का दर्जा रखते थे इसलिये वह कुछ न रहे और जो लोग परदेसी या मोहताज या उन लोगों की नज़र में नीच ज़ात के होने की वजह से निगाह उठाकर बात करने के क़ाबिल न समझे जाते थे वह बड़े साहिबे इज़्ज़त हो गए। इसलिये कि वह अमल की कसौटी पर पुरे उतरते थे और परहेज़गारी और तक़वे में दरज–ए कमाल पर फ़ाएज़ थे। यह बात उन लोगों को ठंडे दिल से क्यों कर गवारा हो सकती थी जो अब तक इज़्ज़त की मसनदों पर इतमिनान के साथ बिराज रहे थे और जो ख़ल्क़े ख़ुदा को ख़ुदा के बदले ख़ुद अपना ग़ुलाम बनाये हुए थे।

बनी उमय्या के लिये इन तमाम मुहर्रेकात के अलावा उनकी देरीना मुख़ासिमत (पुरानी रंजिश) बनी हाशिम के साथ और ज़ाती रश्को हसद भी था जिसके मातहत उनके सरगिरोह अबू सुफ़यान ने तक़रीबन तमाम अरब को हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] के ख़िलाफ़ बरअन्गेख़्ता (उकसाना, भड़काना) कर दिया।

आपको तरह तरह की तकलीफ़ें दी जाने लगीं। जिस्म पर पत्थर मारे गए। सर पर कूड़ा फेंका गया। निजासतें डाली गईं और क़त्ल की धमकियाँ दी गईं। यहाँ तक कि जब ख़तरा बहुत बढ़ गया तो हज़रत के चचा अबू तालिब[अ0स0] ने आपको अपने एक महफ़ूज़ मकान में जो पहाड़ की घाटी में एक

क़ले की सूरत पर था मुन्तक़िल कर दिया। तमाम क़ुरैश ने बाहम एक तहरीरी मुआहेदा (Agreument) किया कि बनी हाशिम से न सिर्फ़ शादी बियाह तर्क कर दिया जाये बल्कि उनके साथ ख़रीदो फ़रोख़्त भी न की जायेगी। इसके मातहत महसूरीन (क़ैदियों) तक ज़रूरियाते ज़िन्दगी, पानी और खाना तक पहुँचना तक़रीबन ग़ैर मुमकिन बना दिया गया था। यह वाक़ेया बेअ्सत (एलाने रिसालत) के सातवें साल का है जो चार बरस तक क़ायम रहा। चार बरस की तवील मुद्दत के बाद यह तर्के मवालात (दोस्ती) ख़त्म हुआ और यह लोग क़ले से बाहर निकले। अब कुछ दिन तक मुख़ालिफ़तें ठंडी रहीं मगर फिर एक ही साल के अन्दर अबू तालिब और ख़दीजा दोनों की वफ़ात[1] के बाद इस मुख़ालेफ़त ने इन्तेहाई ज़ोर पकड़ा यहाँ तक कि अहले मदीना तक इस्लाम की रौशनी फैली और उन्हों ने आपको मदीने की तरफ़ तशरीफ़ ले जाने की दावत दी और आपने बहुत से मुसलमानों को वहाँ भेज दिया उन्हीं मुशरकीन ने आपको क़त्ल कर देने का पूरा मन्सूबा तय्यार कर लिया। जिसके बाद आपने मदीने की तरफ़ हिजरत फ़रमाई।

मदीने में आकर भी मुख़ालेफ़ीन ने चैन से बैठने न दिया। एक तरफ़ तो उन लोगों को जो आप पर ईमान लाये थे और मजबूरन मक्के में रह गए थे तरह तरह की तकलीफ़ें पहुँचाई जातीं, दूसरी तरफ़ आप के जाए पनाह मदीन–ए–मुनव्वरा पर फ़ौज कशी के इन्तेज़ामात होने लगे। आपको अपनी हिफ़ाज़त और अपने से ज़्यादा उन लोगों के घरबार की हिफ़ाज़त के लिये जिन्हों ने आपको पनाह दी थी मैदाने मुक़ाबला में निकल आना पड़ा।

सबसे पहली जंग जो मदीने में आकर हुई बद्र की लड़ाई थी। इस मौक़े पर मुसलमान बिल्कुल तय्यार न थे सिर्फ़ तीन सौ तेरह आदमी[2] जिनके पास सवार होने को सिर्फ़ तीन घोड़े थे।[3] और चन्द तलवारें। मगर बनी हाशिम की तलवार ने मुक़ाबिल वालों के दाँत खट्टे कर दिये। हमज़ा बिन अब्दुल मुत्तलिब[अ0स0], उबैदा बिन हारिस और अली इब्ने अबी तालिब[अ0स0] ने वह कारहा–ए–नुमायाँ दिखलाये कि मुख़ालिफ़ों की हिम्मत पस्त हो गई। अगरचे इस्लाम को बिल–ख़ुसूस बनी हाशिम को यह बड़ा नुक़सान पहुँचा कि उबैदा इस जंग में शहीद हो गए मगर मक्के वालों को और बिल–ख़ुसूस बनी उमय्या

---

[1]तबरी जि/1, पेज/229

[2]तबरी जि/2, पेज/272

[3]सीरते इब्ने हिशाम जि/1, पेज/407

को बहुत ज़्यादा नुक़सानात से दो चार होना पड़ा। इसमें अबू सुफ़ियान को अली बिन अबी तालिब^{अ0स0} के हाथ से महेज़ अपने बेटे हन्ज़ला के क़त्ल ही पर मातम करना नही पड़ा।[1] बल्कि आपने उसके एक दूसरे बेटे अम्र को क़ैद भी किया।[2] इसके अलावा उसकी बीवी हिन्द को अपने बाप अतबा और अपने चचा शैबा और भाई वलीद का मातम करना पड़ा।[3]

इसके बाद अबू सुफ़ियान ने अहद किया कि वह उस वक़्त तक नहायेगा नहीं जब तक कि रसूल[स0अ0] पर चढ़ाई न करे। मगर अब मुशरिकीन में आम तौर पर मुक़ाबले की हिम्मत न थी। मजबूरन अबू सुफ़ियान ने सिर्फ़ बराए नाम अपनी क़सम को पूरा करने के लिये दो सौ सवार क़ुरैश के इकट्ठा किये और उनको लेकर मदीने की तरफ़ रवाना हुआ। मदीने के हुदूद में पहुंच कर उसने रसूल के दो पैरओं (मानने वालों) को क़त्ल कर डाला और खजूर के दरख़्तों को तबाह कर दिया। हज़रत अपने पैरूओं के साथ जंग के लिये निकल आये मगर अबू सुफ़ियान अपने साथियों के साथ ख़ौफ़ खा कर पहले ही फ़रार हो चुका था और सब भागने की जल्दी में अपने सामान के गठठरों को रास्ते में फेंकते गए थे। उसमें ज़्यादा तर सत्तू बंधे हुए थे जो मुसलमानों को हासिल हुए। इसी वजह से इसको "जंगे सवीक़" कहते हैं क्योंकि अरबी में सवीक़ के मानी सत्तू के हैं।[4]

हिजरत के तीसरे साल वह निहायत अहम लड़ाई पेश आई जिसको ओहद की जंग कहते हैं।[5] अकरमा, बिन अबी जेहल, अबू सुफ़ियान और हिन्द को उस वक़्त तक चैन कहाँ आ सकता था जब तक कि वह मदीने वालों से इन्तेक़ाम न लेते। मक्का वालों ने बड़ी बड़ी तय्यारियाँ की थीं। उनकी फ़ौज में क़ुरैशियों के अलावा ख़ानदाने कनाना और बाशिन्दगाने तहामा भी शामिल थे।[6] फ़ौज में तीन हज़ार मुसल्लेह (हथियारों से लैस) सिपाही थे।[7] उनमें सात सौ ज़िरह पोश थे। उनके बिल–मुक़ाबिल रसूले ख़ुदा[स0अ0] के साथ सात सौ आदमी

---

[1]इरशाद पेज/38

[2]सीरते इब्ने हिशाम जि/1, पेज/397

[3]इब्ने हिशाम जि/2, पेज/37, तबरी जि/2, पेज/279

[4]सीरते इब्ने हिशाम जि/2, पेज/55, तबरी जि/2, पेज/299

[5]सीरते इब्ने हिशाम जि/2, पेज/65

[6]इब्ने हिशाम जि/2, पेज/68

[7]इब्ने हिशाम जि/2, पेज/69

थे जिनमें सिर्फ़ सौ ज़िरह पोश थे और फ़ौज में फ़क़त दो घोड़े थे।[1] अकरमा और ख़ालिद बिन वलीद दोनो फ़ौज के अफ़सर थे और ख़ास बात यह थी कि फ़ौज के अक़ब (पीछे) में अबू सुफ़ियान की बीवी हिन्दः मक्के की दूसरी औरतों के साथ मैदाने जंग में ढोल बजा बजा कर सिपाहियों की हौसला अफ़ज़ाई कर रही थी। हिन्दः के अशआर उस मौक़े के जो वह पढ़ रही थी कुतुबे तारीख़ में महफ़ूज़ हैं।[2]

हिन्दः के इन्तेक़ामी जज़बात का अन्दाज़ा इससे हो सकता है कि ओहद की जंग में जब रसूल[स0अ0] के चचा हज़रत हम्ज़ा शहीद हुए तो हिन्दः जज़्ब–ए–इन्तेक़ाम में अपनी सिन्फ़ बल्कि इन्सानियत की हुदूद से गुज़र गई। उसने इस बरबरियत का सुबूत दिया कि जनाबे हम्ज़ा का पहलू चाक कराके उनका जिगर निकलवाया और उसे मुँह में रख कर चबाने की कोशिश की। और कुश्तों के कान और नाक वग़ैरह आज़ा–ए जिस्म का गुलूबन्द (गले का हार) और सीना बन्द बनाया।[3] बल्कि बाज़ रावियों ने तो यहाँ तक बयान किया किया है कि उसने हज़रत हम्ज़ा के जिगर को भून कर खा लिया।[4] उससे उस एनाद और दुश्मनी का अन्दाज़ा किया जा सकता है जो उस ख़ानदान के मर्दों और औरतों के दिलों में बनी हाशिम, पैग़म्बरे इस्लाम[स0अ0] और इस्लाम के ख़िलाफ़ पाई जाती थी।

इस जंग में अगरचे आम तौर पर मुसलमानों की जमाअत में बड़ी अबतरी (कमज़ोरी) पैदा हो गई थी मगर आख़िर में बनी हाशिम और बिल–ख़ुसूस अली इब्ने अबी तालिब[अ0स0] की तलवार ने मुख़ालिफ़ जमाअत को शिकस्त दी और वह हज़ीमत ख़ुर्दा (बेइज़्ज़ती) सूरत में वापस गई। अब उनकी इन्फ़ेरादी ताक़त रसूल के मुक़ाबले में ना–काफ़ी साबित हो चुकी थी। इसलिये 5 हिजरी में आख़री कोशिश उन्होंने यह की कि जितनी जमाअतें मुल्के अरब में इस्लाम के ख़िलाफ़ उनको मिल सकती थीं सबको मुत्तहिद (एकजुट) किया। यहाँ तक कि यहूद को साज़ बाज़ करके अपने साथ मिलाया और इज्तेमाई ताक़त (एक जुट होकर) से दस हज़ार के लश्कर के साथ वह इस जंग के लिये आये जिसको इसी जत्थाबन्दी की वजह से "जंगे अहज़ाब" के नाम से याद किया

---

[1]तबरी जि/3, पेज/12

[2]तबरी जि/3, पेज/15–16

[3]इब्ने हिशाम जि/2, पेज/84, तबरी जि/3, पेज/23

[4]इस्तीआब जि/2, पेज/786, तबरी जि/3, पेज/43

जाता है। उनके मुक़ाबले में मुसलमान तीन हज़ार थे मगर फ़ौजे मुख़ालिफ़ को इस मर्तबा भी शिकस्त का रोज़े बद देखना नसीब हुआ और उनका माय–ए–नाज़ सूरमा अम्र बिन अब्दवद इब्ने अबी क़ैस आमरी, अली इब्ने अबी तालिब[अ0स0] के हाथ से तलवार के घाट उतरा।[1] अबू सुफ़ियान को ब–हाले ख़स्ता व तबाह मक्का वापस जाना पड़ा और अब हिम्मते मुक़ाबला व लश्कर कशी ख़त्म हो गई मगर दिल में इन शिकस्तों से जो घाव पड़े थे वह कभी भी भर न सकते थे।

पैग़म्बरे इस्लाम[स0अ0] ने जब कुछ अरसे तक यह देखा कि अब मुशरेकीने क़ुरैश की तरफ़ से कोई जंगी कारवाई नहीं होती तो आपने सन 6 हिजरी में ख़ान–ए काबा की ज़ियारत (उमरा) का इरादा किया और मुसलमानों की जमाअत के साथ मक्के की तरफ़ रवाना हुए।[2] आपके पास बुदने (क़ुर्बानी के ऊँट) थे।[3] जिससे ज़ाहिर था कि आप लड़ाई के लिये नहीं जा रहे हैं। मगर जब क़ुरैश को रसूल के आने की ख़बर पहुंची तो वह ख़ालिद बिन वलीद की क़यादत में ''कराउल ग़मीम'' (नामी) मक़ाम तक रसूल[स0अ0] का रास्ता रोकने के लिये निकल आये।

ज़ाहिर है कि मुसलमानों की हिम्मतें इसके पहले की हासिल शुदा पैदरपै फ़ुतूहात (जीत) से बढ़ी हुई थीं और सामने वही शिकस्त ख़ुर्दा (हारी हुई) जमाअत थी जो इस वक़्त जंग के लिये कोई तय्यारी भी न कर सकी थी इसलिये यह बहुत आसान था कि आप मुक़ाबले का हुक्म दे देते और फ़ातेहाना सूरत से मक्के में दाख़िल होते मगर पैग़म्बरे इस्लाम[स0अ0] को अमन पसन्दी का सुबूत देना था। जूँही गर्दो ग़ुबार उठता नज़र आया आपने फ़रमायाः इस रास्ते को छोड़ दो। किसी दूसरे रास्ते से आगे निकल चलो। चुनानचे दायें जानिब का रूख़ किया गया और आप ''हमस'' (नामी जगह) की पुश्त पर से ''सनियतुल मरार'' (नामी जगह) से होते हुए हुदैबिया को जो रास्ता जाता है उधर मुतवज्जे हुए।[4]

आपकी इस अमन पसन्दी के मुज़ाहरे का जमाअते मुख़ालिफ़ को इस हद तक एहसास हुआ कि वह भी वापस चली गई, और उसने अब नामा व पयाम

---

[1]इब्ने हिशाम जि/2, पेज/112, तबरी जि/3, पेज/48

[2]इब्ने हिशाम जि/12, पेज/210, तबरी जि/3, पेज/71

[3]तबरी जि/3, पेज/72

[4]तबरी जि/3, पेज/73

(ख़तो किताबत) का सिलसिला शुरू किया। चुनानचे उरवा बिन मसऊद सक़्फ़ी ने आकर गुफ़्तगू–ए–सुलह का आग़ाज़ किया और हज़रत रसूले ख़ुदा[स0अ0] की सुलह पसन्दाना बातों से ऐसी ख़ुशगवार फ़िज़ा क़ायम हुई कि सुहैल बिन अम्र क़ुरैश का नुमाइन्दा बनाकर गुफ़्तगू–ए सुलह के लिये हज़रत के पास भेजा गया और उसने अपनी जमाअत के मुतालबात पेश कर दिये, यह मुतालबात सब मुशरिकीन के हक़ में थे और उनके ज़रिये से ब–ज़ाहिर पैग़म्बरे इस्लाम को दबाया जा रहा था मगर आपने इन सब बातों को मन्ज़ूर फ़रमा लिया और सुलहनामा मुरत्तब हो गया। इस सुलह नामे के शराएत हस्बे ज़ैल थे।

1, रसूल इस साल अपने मुत्तबेईन (साथियों) के साथ बग़ैर ज़ियारत किये हुए वापस जायें।
2, दस साल तक आपस में जंग न हो।
3, जो शख़्स क़ुरैश में से अपने वली (सरदार) की इजाज़त के बग़ैर रसूल अल्लाह[स0अ0] के पास चला जाये उसको आप वापस कर देंगे मगर जब आपके पास से कोई निकल कर क़ुरैश के पास चला जाये तो क़ुरैश वापस न करेंगे।
4, जो क़बील–ए–रसूल[स0अ0] का हलीफ़ (हिमायती) होना चाहे वह आपके साथ मुआहद–ए–दोस्ती कर ले और जो क़बील–ए–क़ुरैश के साथ मुआहद–ए–दोस्ती करना चाहे वह उनके साथ हो जाये।
5, आइन्दा साल मुसलमान मक्के की ज़ियारत के लिये आ सकेंगे इस तरह कि बाशिन्दगाने मक्का तीन दिन के लिये मक्के को ख़ाली कर देंगे मगर मुसलमानों को लाज़िम होगा कि तीन दिन के अन्दर मक्के से बाहर निकल जायें और एक आदमी भी तीन दिन के बाद मक्का में रहने न पाये।
6, मुसलमान अपने साथ उस तरह के असलहे ला सकेंगे जैसे मुसाफ़िर अपने साथ रखते हैं, यानी तलवारें नियाम के अन्दर रखी हुई।[1]

यह ऐसी ग़ैर मुतवाज़िन (यकतरफ़ा) शर्तें थीं कि पैग़म्बरे इस्लाम[स0अ0] के अक्सर साथ वालों में जो रसूल के बलन्द मसालेह की तह तक पहुंचने से क़ासिर थे। शदीद बेचैनी पैदा हो गई थी। तारीख़ के अलफ़ाज़ यहाँ तक हैं कि "लोगों के दिलों में अम्रे अज़ीम (रसूल के लिए गुमान) पैदा हुआ यहाँ तक कि क़रीब था कि वह हलाकत में मुबतिला हो जायें।" इसका मतलब यह है

---

[1]इब्ने हिशाम जि/2, पेज/216, तबरी जि/3, पेज/79

कि उनके अक़ायद में तज़लज़ुल (अक़ीदे में डगमगाहट) हो गया। ऐसा कि क़रीब था कि वह इस्लाम से मुन्हरिफ़ ही हो जायें।[1]

इसी का नतीजा था कि जब पैग़म्बरे ख़ुदा[स0अ0] ने मुआहदे की तकमील के बाद असहाब से फ़रमाया कि उठो, क़ुर्बानियाँ करो और फिर सरों के बाल मुंडवा कर वापस चलो। तो आलम यह था कि रसूल[स0अ0] हुक्म दे रहे थे और मजमे की अक्सरियत ख़ामोश थी। कोई तामील के लिए उठता न था। यहाँ तक कि जब हज़रत ने उनकी तरफ़ से बेऐतेनाई इख़्तियार करके ख़ुद जाकर क़ुर्बानी की और बाल मुंडवाये तो मजबूरन दूसरे लोग भी खड़े हुए और सरों के बाल मूंडना या तराशना शुरू किये मगर रंज और सदमे का यह आलम था कि मालूम होता था एक दूसरे को क़त्ल कर रहा है।[2]

लेकिन रसूल[स0अ0] ने अपने साथियों के इन जज़्बात का कोई लिहाज़ न किया और कुफ़्फ़ार के इन जाबिराना शराएत को मन्ज़ूर करके वापसी इख़्तियार फ़रमाई। इस ख़याल से कि अगर इस मौक़े पर जंग करके मक्के को फ़तह किया जाता तो कहने को हो जाता कि रसूले इस्लाम[स0अ0] चढ़ाई करके आये। इस तरह जारेहाना हमला (ज़ुल्म के साथ हमला आवर होने) का इल्ज़ाम आप पर आएद किया जाता। लिहाज़ा आपने इस का मौक़ा न दिया और सुलह के शराएत की पाबन्दी इस हद तक फ़रमाई कि अभी यह तहरीर ख़ुश्क न होने पाई थी कि ख़ुद सुहैल बिन अम्र (जो मुशरिकीन की तरफ़ से नुमाइन्द–ए सुलह था) का लड़का जो पहले से मुसलमान हो चुका था और उसे सिर्फ़ इस्लाम लाने की वजह से घर वालों ने लोहे में जकड़ दिया था। उव वक़्त मौक़ा पाकर पा ब–ज़न्जीर होने ही की हालत में वा–मुहम्मदाह, वा–मुहम्मदाह कहता हुआ आया और अपने को रसूल के सामने डाल दिया। सुहैल ने जो यह देखा तो वह खड़ा हो गया, उसे तमांचा लगाया और गरीबान पकड़ कर खींचता हुआ ले चला। उसने पुकार कर आवाज़ दीः "क्यों मुसलमानो! क्या मैं फिर मुशरिकीन ही की तरफ़ वापस कर दिया जाऊंगा कि वह मुझे दीन से मुन्हरिफ़ करने की कोशिश करें।" मगर हज़रत[स0अ0] ने कोई तअर्रुज़ (एतेराज़) नहीं फ़रमाया और कहाः "ऐ अबू जन्दल! सब्र कर यह चन्द दिन की तक्लीफ़ है। अल्लाह तेरे लिये और तमाम कमज़ोर मुसलमानों के लिये जो मुशरिकीन के पंजे में गिरफ़्तार हैं कोई कशाइश (आसानी) की सूरत पैदा

---

[1]तबरी जि/2, पेज/79

[2]तबरी जि/3, पेज/80

करेगा। इस वक़्त तो हम ने इस क़ौम के साथ एक मुआहदा कर लिया है और इस मुआहदे की मुख़ालिफ़त हम नहीं करेंगे।"[1]

ग़रज़ पैग़म्बरे इस्लाम[स0अ0] ने इन ग़ैर मसावियाना (ग़ैर बराबरी) शराएत पर सुलह करके मक्के से वापसी इख़्तियार की और दसूरे साल मुआहदे के मुताबिक़ मक्का की ज़ियारत के लिये तशरीफ़ ले गए, मुशरिकीन ने तीन दिन के लिये शहर ख़ाली कर दिया और रसूल[स0अ0] अपने साथियों समेत मक्के में दाख़िल हुए। मरासिमे ज़ियारत बजा लाये और फिर हस्बे मुआहदा तीन दिन के बाद मक्के को छोड़ दिया और मदीने वापस चले गए।[2]

मगर मक्के वाले इसके बाद मुआहदे के दूसरे दफ़आत (दौर में) अदमे तअर्रूज वादे) पर क़ायम नहीं रहे।

मुआहदे में क़बाएल (क़बीले वालों) को जो इख़्तियार दिया गया था कि वह जिसके साथ चाहें शरीक हो जायें। इसके मातहत क़बील–ए–ख़ुज़ाआ पैग़म्बरे इस्लाम का हलीफ़ (तरफ़दार) हुआ था और बनी बक्र ने मुशरिकीन के साथ हलीफ़ (तरफ़दार) होने का एलान किया था चूँकि इन दोनों क़बीलों में क़दीम अदावत थी इसलिये दोनों हमेशा एक दूसरे के ख़िलाफ़ तय्यार रहते थे। मगर अब जो उनमें हर एक एक जानिब मुआहदे (Argument) के रू से मुन्सलिक हो गया और यह तय पा गया कि दस बरस तक जानिबैन (दोनों तरफ़ के लोगों में) में जंग न होगी तो ख़ुज़ाआ के लोग मुतमइन हो गए। उन्होंने असलेहे जिस्म से उतार दिये और जंग की तय्यारियाँ तर्क कर दीं। बनी बक्र ने इस मौक़े को ग़नीमत समझा और बनी ख़ुज़ाआ पर इस वक़्त जब कि वह एक पानी चश्मे के किनारे मुक़ीम थे हमला कर दिया और बहुत से लोगों को क़त्ल कर डाला।[3]

क़ुरैश के आदमियों ने भी ऐलानिया नहीं तो ख़ुफ़िया बनी बक्र को मदद पहुँचाई और वह भी ख़ुज़ाआ की तबाही के शरीक हुए।

मजबूरन क़बील–ए–ख़ुज़ाआ का एक आदमी जिसका नाम अम्र बिन सालिम था फ़रयाद करता हुआ मदीने गया और उस वक़्त जब पैग़म्बरे ख़ुदा[स0अ0] असहाब के दरमियान मस्जिद में तशरीफ़ रखते थे उसने इन्तेहाई

---

[1]तबरी जि/3, पेज/79–80

[2]इब्ने हिशाम जि/2,पेज/249–250, तबरी जि/3,पेज/100–101, बुख़ारी जि/3,पेज/36,मुस्लिम जि/2,पेज/105

[3]इब्ने हेशाम जि/2, पेज/260, तबरी जि/3, पेज/111

दर्द अन्गेज़ अशआर में अपने क़बीले की रूदादे ग़म सुनाई जिसके आख़िर में हस्बे ज़ैल मज़मून नज़्म किया गया था।

"ऐ खुदा के रसूल[स0अ0]! आपको मालूम हो कि कुरैश ने आपसे अहद शिकनी (वादा तोड़ना) की। बनी बक्र ने हमारे क़बीले पर चश्मे के किनारे कमीनगाह से हमला कर दिया। वह समझते थे कि हमारा कोई फ़रयाद रस नहीं है। अगर हम जंग के लिये तय्यार होते तो उनकी क्या मजाल थी कि वह हमसे मुक़ाबला करते। वह तादाद में भी कम और ताक़त में भी हमारे मुक़ाबले में हमेशा सुबुक साबित हुए। मगर हम तो नमाज़े शब में मसरूफ़ थे। उन्होंने रूकू व सुजूद की हालत में आकर हम को क़त्ल कर दिया।"

इन अशआर को पढ़ने के दौरान में आपकी हमदर्दी के तअस्सुरात इतने शदीद हो गए थे कि आपने जवाब में कोई तवील कलाम सुनने के इन्तेज़ार की ज़हमत भी देना न चाही और अशआर ख़त्म होते ही आपकी ज़बान से जो जुमला निकला वह यह था कि "क़द–नसरता या अम्र बिन सालिम" (अन्क़रीब अम्र बिन सालिम की मदद होगी) इसके नतीजे में आप इतमामे हुज्जत के दरमियान कुछ मराहिल तय करने के बाद मुसलमानों को लेकर मक्क–ए–मुअज़्ज़ेमा की तरफ़ रवाना हो गए। अब तेवर बदले हुए थे। मुशरेकीन में ताक़ते मुक़ाबला तो अब थी ही नहीं। उन्होंने हथियार डाल देने मुनासिब समझे और इसी मजबूरी के आलम में अबू सुफ़ियान ने भी ज़ाहरी तौर पर इस्लाम कुबूल कर लिया। जिसका वाक़ेया यह है कि अब्बास बिन अब्दुल मुत्तलिब और अबू सुफ़ियान में पुराने ज़माने की दोस्ती थी। इस रात को जब रसूल[स0अ0] मक्के के क़रीब पहुंच चुके थे और मुशरिकीन पर हिरास (ख़ौफ़) छाया हुआ था। अबू सुफ़ियान चन्द आदमियों के साथ रसूले खुदा की नक़्लो हरकत का हाल मालूम करने के लिये शहर से बाहर निकला। इसी वक़्त अब्बास इस फ़िक्र में निकले थे कि अगर कुरैश ने पैग़म्बरे खुदा की मुख़ालिफ़त बरक़रार रखी तो यह सब आज मारे जायेंगे। अबू सुफ़ियान को वहाँ पा कर उन्होंने कहा, कुछ ख़बर है? रसूल[स0अ0] दस हज़ार मुसलमानों की जमईयत (गिरोह) के साथ आये हैं, तुम उनका मुक़ाबला हरगिज़ नहीं कर सकते। अबू सुफ़ियान ने कहा फिर आपकी क्या राय है? मुझे क्या करना चाहिए? उन्होंने कहा। आओ मेरे साथ ऊँट पर बैठ जाओ और रसूल[स0अ0] के पास चल कर अमान हासिल कर लो वरना अगर तुम उनके हाथ आगए तो बग़ैर क़त्ल किये न छोड़ेगे। अबू सुफ़ियान को यह ज़रिया ग़नीमत मालूम हुआ

वह नाक़े (ऊँट) पर पीछे बैठ गया और अब्बास उसे लिये हुए पैग़म्बर[स0अ0] के पास हाज़िर हुए। रसूले ख़ुदा से उसके लिये अमान चाही। पैग़म्बर[स0अ0] ने फ़रमाया कि अच्छा इस वक़्त अमान है। सुबह को उन्हें फिर मेरे पास लाईयेगा। हस्बे हुक्म सुबह को अब्बास ने अबू सुफ़ियान को हाज़िर किया। हज़रत[स0अ0] ने उसको इस्लाम की दावत दी। वह पसो पेश करने लगा। अब्बास ने कहा इस्लाम क़ुबूल करो नहीं तो जान की ख़ैर नहीं। यह सुन कर अबू सुफ़ियान ने इस्लाम क़ुबूल कर लिया।[1]

बुख़ारी की रिवायत से ज़ाहिर होता है कि अबू सुफ़ियान और उसके साथी जब मालूमात हासिल करने बाहर निकले तो इत्तेफ़ाक़ से लश्करे इस्लाम के पहरे दारों के हाथों में गिरफ़्तार हो गए और रसूल[स0अ0] की ख़िदमत में हाज़िर किये गए। इस वक़्त अबू सुफ़ियान ने इस्लाम क़ुबूल किया।[2]

पैग़म्बरे ख़ुदा[स0अ0] की यह वुसअते क़ल्बी थी कि आपने अबू सुफ़ियान की न सिर्फ़ जान बख़्शी फ़रमाई बल्कि एलान कर दिया कि जो अबू सुफ़ियान के घर में पनाह ले ले उसे भी अमान है और जो मस्जिदुल हराम (काबा) में दाख़िल हो जाये उसे अमान है और जो अपने घर का दरवाज़ा बन्द करके बैठ जाये वह भी अमान में है।[3]

दूसरी रिवायत में मस्जिदुल हराम (काबे) में दाख़ले के बजाये यह है कि जो हथियार डाल दे उसे अमान है।[4] और मक्के में दाख़िल होने के बाद तो आपने सब ही की जान बख़्शी कर दी। आपने मक्के के आदमियों से जो आपके सामने थे पूछा क्यों तुम्हारा क्या ख़याल है मैं तुम्हारे साथ क्या सुलूक करूँगा? उन्होंने कहा हमें नेकी ही का गुमान है। आप हमारे फ़य्याज़ भाई हैं और फ़य्याज़ भाई के बेटे हैं। फ़रमाया: اذهبوا فانتم الطلقاء ''जाओ तुम सबको मैंने छोड़ दिया।[5]

उसके बाद अबू सुफ़ियान की बीवी हिन्द ने भी जिसके इन्तेक़ामी जज़बात की तस्वीर जंगे ओहद में सामने आ चुकी है। इस्लाम क़ुबूल किया और जितने

---

[1]तबरी जि/3, पेज/116
[2]बुख़ारी जि/3, पेज/29
[3]तबरी जि/3, पेज/116
[4]सही मुस्लिम जि/2, पेज/104
[5]तबरी जि/3, पेज/120)

सख़्त और मुतअस्सिब (कट्टर) एकाबिर (सरदार) कुरैश उस वक़्त बाक़ी थे सब ही मुसलमान हो गए।[1]

मगर मज़कूरा (ऊपर बयान किए हुए) वाक़ेयात से हर इन्सान यह सोचने पर मजबूर है कि बेबस हो जाने के बाद आदमी सर झुका सकता है, हाथ रोक सकता है, हथियार डाल सकता है, ज़बान बन्द कर सकता है लेकिन अपने दिल में तब्दीली नहीं पैदा कर सकता। अपने क़ल्ब में यक़ीन की सिफ़त पैदा नहीं कर सकता। और अपनी नफ़रत को मोहब्बत से तब्दील नहीं कर सकता। वह नफ़रत व दुश्मनी जो उन हुदूद तक पहुँच चुकी थी जिनका मुज़ाहरा गुज़िश्ता वाक़ेयात से हो चुका है क्या इस सबके बाद मोहब्बत व अक़ीदत से तब्दीली हो सकती है? आम उसूले फ़ितरत और वाक़ेयात की रफ़्तार के मुताबिक़ यह बात ग़ैर मुमकिन मालूम होती है। आम फ़ितरत के मुताबिक़ सिर्फ़ इतना समझा जा सकता है कि वह दुश्मन जो अब तक फुन्कारे मारते हुए अज़दहे की तरह सामने मौजूद था अब मारे आस्तीन(आस्तीन का साँप) बन कर खुफ़िया रीशा दवानियों (साज़िश रचने लगे या मुनाफ़िक़त) के लिये आज़ाद हो गया और कोई शुबह नहीं कि दुश्मन मौजूदा सूरत में पहली सूरत से ज़्यादा ख़तरनाक साबित हो सकता है। यही ख़याल था कि उनके बारे में इस्लाम के नक़्क़ाद (इस्लाम की परख रखने वाले) हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] का। आपने फ़रमायाः ماالسلموا ولا كن استسلموا। "यह लोग हक़ीक़तन इस्लाम नहीं लाये थे बल्कि इस्लाम के सामने उन्होंने हथियार डाल दिये थे और बस।"

---

[1]तबरी जि/3, पेज/121

पाँचवाँ बाब

हुसैन बिन अली[अ०स०] की विलादत और इब्तेदाई ज़िन्दगी

सन3 हिजरी (से) सन 11 हिजरी

हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] को मक्के से हिजरत करके मदीने में आये हुए तीसरा बरस था।[1] कि 5 शाबान को हुसैन बिन अली की विलादत हुई।[2]

हज़रत फ़ातिमा ज़हरा[स0अ0] अपने पिदरे बुज़ुर्गवार रिसालतमाब की ख़िदमत में मौलूद को लेकर हाज़िर हुईं। हज़रत ने हुसैन नाम रखा और एक मेंढे (भेड़) की क़ुर्बानी के साथ अक़ीक़ा किया।[3]

अब पैग़म्बरे इस्लाम[स0अ0] की गोद जो इस्लाम की तरबियत का गहवारा थी उन दो बच्चों की परवरिश का मरकज़ बनी, एक हसन और दूसरे हुसैन[अ0स0]।

उनकी आँखों के सामने एक तरफ़ नाना का उसव–ए–हसना (नेक सीरत) था जो बानिये इस्लाम थे, दूसरी तरफ़ बाप जो मुजाहिद व मुहाफ़िज़े इस्लाम थे और तीसरी तरफ़ माँ जो तब्क़–ए–ख़्वातीन के लिये तालीमाते पैग़म्बर[स0अ0] की अमली तरजुमान बनने के लिये पैदा हुई थीं। ब–क़ौल इक़बालः

मज़रये तस्लीम रा हासिल बतूल
मादराँ रा उसव–ए कामिल बतूल

तरजुमाः मस्जिद में पाँचों वक़्त नमाज़े जमाअत पैग़म्बर के बसीरत आफ़रीं मवाएज़ (वाज़) और ख़ुत्बे, मुसलमानों का ज़ौक़ व शौक़ और जोशो ख़रोश और घर में रात दिन इबादत व ज़िक्रे इलाही की आवाज़ें, तकबीर की सदायें, वही की आयतें, ग़ज़वात (जंगें) के तज़केरे, इस्लाम को तरक़्क़ी देने के मशवरे और या फिर ग़रीबों की ख़बरगीरी, कमज़ोरों की दस्तगीरी और मज़लूमों की

---

[1]काफी जि/1, पेज/394

[2]मक़ातिलुत तालिबीन पेज/54, इरशाद

[3]इरशाद

दादरसी बस हर वक़्त यही ज़िक्र है यही फ़िक्र। यही क़िस्से हैं और यही कहानियाँ। एक तरफ़ फ़ितरत के मख़सूस अतिये थे, दूसरी जानिब यह नूरानी और रूहानी माहौल और इस पर तरबियते पैग़म्बर ऐसे बलन्द मुअल्लिम की जिनका मक़सदे रिसालत ही क़ुरआन के एलान के मुताबिक़ ''तज़किय–ए–नुफूस (दिलों की पाकीज़गी) और तालीमे किताब व हिकमत था।[1]और आपने ख़ुद भी ऐलान किया था कि मकारिमे अख़लाक़ की तकमील मेरा असली नसबुल ऐन (मक़सद) है। फिर क्योंकर मुमकिन था कि रसूल अपने अहलेबैत की तरबियत में इस फ़र्ज़ को नज़र अन्दाज़ कर देते जो ब–हैसियते मुअल्लिमे (उस्ताद) अख़लाक़ के ब–हैसियते बुज़ुर्ग ख़ानदान के और ब–हैसियते एक पैग़म्बर के आप पर आएद होता था। चुनानचे हज़रत ने इस कमसिनी ही के आलम में इन बच्चों को अपने अख़लाक़ व औसाफ़ का नमूना बना दिया और उन आईनों में जो क़ुदरत की तरफ़ से कमाल का जौहर लेकर आये थे अपनी सीरत का पूरा अक्स उतार दिया।

उन्हीं ज़ात व सिफ़ात की मख़सूस बलन्दियों का यह नतीजा था कि रसूल[स0अ0] इन अपने नवासों के साथ ग़ैर मामूली मोहब्बत रखते थे जिसके मुज़ाहरात (इज़हार) तारीख़ और हदीस की किताबों में यकसाँ तौर पर दर्ज हैं। इसके अलावा आप दूसरों को भी इनसे मुहब्बत की ताकीद फ़रमाते थे। आपका क़ौल था कि जिसने हसन[अ0स0] व हुसैन[अ0स0] से मुहब्बत रखी, उसने मुझ से मुहब्बत रखी और जिसने उनको दुश्मन रखा उसने मुझे दुश्मन रखा।[2] आप अल्लाह को गवाह करते थे कि मैं इनसे इन्तेहाई मुहब्बत करता हूँ।[3] मगर इन तमाम बातों के साथ साथ हुसैन[अ0स0] अपने नाना की बलन्द सीरत, फ़राएज़ के बारे में एहतिमाम और इस्लाम के मुतअल्लिक़ आपके इन्हेमाक (लगन) को देखते हुए यह मुशाहिदा करते थे कि रसूल अल्लाह हमको बहुत चाहते हैं। मगर हमसे ज़्यादा आप अपने दीन यानी इस्लाम और उसके आईन व शरीअत को चाहते हैं। इसलिये अगर इस दीन और शरीअत पर कोई वक़्त पड़े तो पैग़म्बर तय्यार होंगे कि हम को इस पर निसार कर दें।

सन 10 हिजरी में नजरान (यमन) के ईसाइयों के साथ एक तरह के रूहानी मुक़ाबले का मौक़ा आया जिसका नाम ''मुबाहला'' है। यानी दोनों

---

[1]क़ुर्आने करीम सूरए बक़रा आयत/129 व 151, आले इमरान आयत 165, जुमा आयत/2

[2]सुनन इब्ने माजा जि/1, पेज/33

[3]सही मुस्लिम जि/2, पेज/282

फ़रीक़ (दोनों तरफ़ के लोग) अल्लाह से दुआ करें कि झूठे पर अज़ाब नाज़िल हो, इस मौक़े पर रसूल[स0अ0] तशरीफ़ ले गए तो इस तरह कि हाथ में अली इब्ने अबी तालिब[अ0स0] का हाथ था। हसन व हुसैन[अ0स0] आगे आगे थे और फ़ातिमा ज़हरा[स0अ0] पीछे आ रही थीं। नजरान वाले यह नूरानी मन्ज़र देखकर मरऊब (डरे) हुए और ख़िराज (टैक्स) देने के लिये आमादा हो गए।[1] ज़ाहिर है कि पैग़म्बरे ख़ुदा इस मुहिम को तन्हा सर कर सकते थे। फिर क़ुरआन की तसरीह[2] (वाज़ाहत) के मुताबिक़ रसूल अल्लाह[स0अ0] अपने अहलेबैत को साथ ले जाने पर क्यों मामूर हुए? इसका मक़सद एक तरफ़ हक़ के कामिल नुमाइन्दों का ख़ल्क़ (लोगों) से तआरूफ़ था तो दूसरी तरफ़ तालीम व तरबियत का अन्दाज़ा भी था। गोया अभी से ख़ानदाने रसूल की इन हस्तियों पर ज़िम्मेदारी का बार डाला जा रहा था कि ज़रूरत के वक़्त हिफ़ाज़ते इस्लाम की इन ही से उम्मीद है। रसूल[स0अ0] इन में से एक एक का हाथ पकड़ कर कह रहे थे कि देखो आज तो मैं ख़ुद मौजूद हूँ। मैं तुमको अपने साथ लिये जा रहा हूँ लेकिन अगर किसी वक़्त में मैं मौजूद न हूँ तो तुम इसी तरह हिफ़ाज़ते इस्लाम के लिये निकल खड़े होना जिस तरह मैं निकला हूँ। आज के इस अमल से यह भी वाज़ेह हो गया कि इस्लाम की नुसरत और ख़िदमत के मौक़े पर मर्द, औरत, जवान, बच्चा कोई मुस्तस्ना (अलग) नहीं हो सकता। और ज़रूरत पर हर एक को इस मक़सद में सर्फ़ होना लाज़िम है। सबसे कमसिन इस जमाअत में हुसैन[अ0स0] थे और ऐसा मालूम हो रहा है कि जैसे इस मौक़े पर साथ लाना क़ुदरत से इस मुस्तक़्बिल (Future) की तमहीद है कि उन्हीं को अमली तौर पर दोबारा इस मिसाल के पेश करने का मौक़ा मिलेगा जिसे आज पेश किया गया है।

हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] से बढ़कर कोई शख़्स जौहर शनास (ख़ूबियों का जानने वाला) नहीं हो सकता था। आप जानते थे कि आप के तालीमात की हिफ़ाज़त किन के ज़रिये से होगी। इसलिये मुख़तलिफ़ सूरतों से अपनी उम्मत को हिदायत की कि मेरे अहलेबैत की पैरवी करते रहना। कभी फ़रमाया कि मैं तुम में दो गिराँ क़द चीज़ें छोड़ता हूँ। जब तक तुम इन से तमस्सुक (जुड़े) रखोगे गुमराही से महफ़ूज़ रहोगे। इन में से एक क़ुरआन है और दूसरे

---

[1]इरशाद, पेज/87

[2]सूरए आले इमरान आयत/61

मेरे अहलेबैत।[1] और कभी फ़रमाया कि मेरे अहलेबैत की मिसाल कशति–ए–नूह की सी है। जो इस कश्ती पर सवार हुआ। उसने निजात पाई और जो रूगर्दां (गुमराह) हो वह दरिया–ए हलाकत में ग़र्क़ हुआ।[2]

खुसूसियत के साथ अपने दोनों नवासों के बारे में कभी फ़रमायाः "हसन[अ०स०] व हुसैन[अ०स०] जवानाने अहले जन्नत के सरदार हैं।"[3] इसका मतलब यही हो सकता है कि इन दोनों का किरदार इतना बलन्द है और रहेगा कि इनकी सीरते ज़िन्दगी की अमली हैसियत से तक़लीद ही (उनके दिखाए हुए रास्ते पर) रज़ा–ए–इलाही का सबब बन सकती है और कभी फ़रमाया कि "यह दोनों मेरे फ़रज़न्द इमाम (वाजिबुल इताअत) हैं ख़्वाह खड़े हों और ख़्वाह बैठे।"[4] आयेगा एक मुस्तक़्बिल जब एक इन में से सुलह करके बैठा होगा और एक जिहाद में खड़ा होगा। पैग़म्बरे इस्लाम[स०अ०] के इरशाद से दोनों के तर्ज़े अमल के अपनी अपनी जगह सही होने पर रौशनी पड़ेगी।

इसके साथ ख़ास इमाम हुसैन[अ०स०] के बारे में जो हदीसें हैं उनमें से एक यह है कि हुसैन[अ०स०] मुझसे है और मैं हुसैन से हूँ।"[5] यानी मेरा काम और मेरा नाम दुनिया में हुसैन[अ०स०] की ब–दौलत क़ायम रहेगा। इसके अलावा ब–कसरत हदीसें हैं जो फ़ज़ाएल व मनाक़िब की किताबों में दर्ज हैं।

अफ़सोस कि हुसैन के लिये इस लुतफ़ व मोहब्बत, बेपायाँ सूकून और इतमीनान की उम्र तूलानी नहीं हो सकी। अभी आपका सिन सात बरस का भी पूरा न हुआ था कि रबीउल अव्वल 11 हिजरी में [6]हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स०अ०] की वफ़ात हो गई और हुसैन रसूल अल्लाह[स०अ०] के साया–ए–आतेफ़त (मुहब्बत) से महरूम हो गए।

---

[1]मुस्नद अहमद हम्बल

[2]मआरिफ़ इब्ने कुतैबा

[3]इब्ने माजा जि/1, पेज/29

[4]इरशाद पेज/204

[5]इब्ने माजा जि/2, पेज/33

[6]अल–काफ़ी जि/1, पेज/275, तबरी जि/3, पेज/207

छठा बाब

इमाम हुसैन[अ०स०] की ज़िन्दगी का दूसरा दौर नाना की वफ़ात के बाद से बाप की शहादत तक।

सन11 हिजरी (से)सन 40 हिजरी

हज़रत रसूल[स०अ०] की वफ़ात तमाम ख़ान्दान के लिये एक बड़ा रूह फ़रसा (दर्द भरा) हादिसा थी। आपके अख़लाक़ व औसाफ़ ने दोस्त और दुश्मन के दिल को मुसख़्ख़र (हमवार) कर लिया था इसलिये आप के दुनिया से उठ जाने का एहसास हर फ़र्दे बशर को था और इस्लामी गिरोह का हर फ़र्द जितना तअल्लुक़ पैग़म्बर से रखता था, इस एतेबार से ग़ैर मामूली तौर पर मुतअस्सिर हो रहा था।

फिर ख़ास अहलेबैत[अ०स०] के ग़म व अलम का अन्दाज़ा कहाँ किया जा सकता है। खुसूसन हुसैन[अ०स०] जिनके साथ पैग़म्बर[स०अ०] की शफ़क़त का अन्दाज़ ही एक निराला था वह नाना जो अपनी गोद में बिठाता था, सीने पर लिटाता था और काँधे पर चढ़ाता था, जो ज़रा सी भी ख़ातिर शिकनी (तकलीफ़) हुसैन[अ०स०] की गवारा न करता था, आज हुसैन आँखें फिरा फिरा कर चारों तरफ़ देखते थे और वह शफ़ीक़ व मेहरबान नाना नज़र न आता था।

यह भी खुली हुई बात है कि पैग़म्बर की हयात में उनकी ग़ैर मामूली मोहब्बतों को देख कर नीज़ उनके उन मुतवातिर (लगातार) ऐलानात की वजह से कि जो मुझसे मुहब्बत रखता है उसे हुसैन से मुहब्बत करना चाहिये। आम मुसलमान जो भी रसूल के साथ अक़ीदत और मुहब्बत का दम भरते थे और उनके पसीने पर खून बहाने का दावा रखते थे पैग़म्बर[स०अ०] के सामने उनके इन फ़रज़न्दों के साथ इन्तेहाई लतीफ़ तरीन जज़बाते मुहब्बत व नियाज़मन्दी का इज़हार करते थे और अगर ज़रा सा भी उसमें कमी काशायबा पैदा होता था तो पैग़म्बर की तेवरियों पर बल दिखाई देने लगते थे। एक खुला हुआ सुबूत इसका इस वाक़ेये से मिलता है कि जब रसूल हसने मुजतबा[अ०स०] को

काँधे पर सवार किये हुए थे और एक सहाबी ने कह दिया कि ''ऐ साहब ज़ादे कितना अच्छा मरकब है तुम्हारा।'' रसूल[स0अ0] ने फ़ौरन टोक दिया और फ़रमायाः ''यह सवार भी तो कितना अच्छा है।''[1] यह बातें ऐसी थीं जिनके बाद मिज़ाजे नुबूअत में कुछ भी दरख़ोर (समझ) रखने वाले मुसलमान या आपके चश्मो अबरू पर चलने वाले नियाज़ मन्दान साहबज़ादों की ख़ातिर दारी और उनके साथ इज़हारे मोहब्बत में ज़रा भी फ़रूगुज़ाश्त (कमी) करते। इस तरह यह कहना हरगिज़ मुबालिग़ा नहीं है कि उस दौर में हुसैन एक चिराग़ थे जिसके गिर्द परवाने तवाफ़ करते थे या एक आफ़ताब जिसके गिर्द सितारे चक्कर लगाते थे। अक़ीदत की एक दुनिया उनके क़दमों पर निसार होती थी और मुहब्बत का एक आसमान था जो उनके सर पर साया फ़िगन (साया किये था) था मगर दुनिया एक हाल पर नहीं रहती। वह इन्क़ेलाबात का मजमूआ है। आज वह मरकज़ जिसकी मेक़नातीसी (चुंबकीय) कशिश दुनिया को जज़्ब किये हुए थी क़ब्र में पहुँचा चुका था। वह एक क्या गया कि हुसैन की दुनिया बिल्कुल बदल गई। वह माहौल भी बिल्कुल तब्दील हो गया जो आपके सामने रहा था। सुबह हुई और रसूल ने दरवाज़े पर आकर आवाज़ दी[2] अस–सलात अस–सलात। यानी उठो उठो नमाज़ का वक़्त आ गया और फिर कुरआन की यह आयत[3] ''إِنَّمَا يُرِيدُ اللهُ لِيُذْهِبَ عَنْكُمُ الرِّجْسَ أَهْلَ الْبَيْتِ وَيُطَهِّرَكُمْ تَطْهِيرًا''पढ़ते थे (जो आयते ततहीर के नाम से मशहूर है।) ''यानी अल्लाह को मन्जूर यही है कि ऐ अहले बैत तुमसे हर तरह की नजासत को दूर रखे और तुमको पाक रखे जो पाक रखने का हक़ है।'' सब फ़ौरन उठ बैठे बाप और भाई की तरह हुसैन ने भी फ़ौरन वुज़ू किया। मस्जिद में पहुंचे। मुसलमानों का इजतेमाअ् हुआ। पैग़म्बर ने नमाज़ पढ़ाई। फिर ज़ोहर, अस्र, मग़रिब और इशा हर वक़्त यही समाँ नमाज़ों के बाद या पहले और ज़रूरत की सूरत में मुख़तलिफ़ अवक़ात पर पैग़म्बर[स0अ0] के ख़ुत्बे। शरीयते इस्लाम की तालीम हासिल करने वालों का हुजूम, क़बाएले अरब और सलातीने (हाकिम) दुनिया के वफ़ूद(Deligation) और सुफ़रा (Ambasdars) का दौर, मुख़तलिफ़ जमाअतों की सरगरमियों का तज़केरा और उसके मुदाफ़ती इन्तेज़ामात (निमटने के तरीक़े) दीवानी और फ़ौजदारी के मुक़दमात का पेश होना, गवाहों के बयानात, बहस और जिरह और मुक़दमात

---

[1]सवाएक़े महर्रेक़ा पेज/83

[2]इस्तीआब जि/2, पेज/615

[3]सूरए अहज़ाब आयत/33

का फ़ैसला, मुजरिमों की सज़ायें, ज़कात व ख़ुमुस और अमवाले ग़नीमत का आना, और मुक़र्रा उसूल व क़वाएद के मुताबिक़ तक़सीम। ग़रज़ यह कि दीन और दुनिया के तमाम मसाएल इस एक नुक़्ते पर मजतमा नज़र आते थे। हुसैन[अ0स0] अपने नाना के पास तक़रीबन हर वक़्त मौजूद रहते थे और आँख खोल कर इसी आलम से रूशनास हुए थे। अब पैग़म्बर की वफ़ात के बाद यह तमाम समाँ आँखों से ओझल हो गया। इन्क़ेलाब और अज़ीमुश्शान इन्क़ेलाब।

अफ़सोस है कि रसूल[स0अ0] की ख़िलाफ़त का मसअला इतना एख़्तिलाफ़ी बन गया कि आज तक उसकी बुनियाद पर शिया और सुन्नी का तफ़रेक़ा क़ायम है। इस किताब में जो वाक़ेय–ए–करबला को ग़ैर निज़ाई (बग़ैर इख़्तेलाफ़ के) तौर पर दुनिया के सामने पेश करने के लिये लिखी जा रही है इस पर बहस करना मन्ज़ूर नहीं है। न इन नागवार वाक़ेआत का कोई मुस्तक़िल तज़किरा मक़सूद है। बहरहाल यह मुत्तफ़क़ अलैह तारीख़ी हक़ीक़त है कि रसूल[स0अ0] के बाद कुछ अफ़रादे उम्मत ने मुत्तफ़िक़ हो कर सियासी इक़तेदार ख़ानदाने रसूल से हटा दिया है। इस इन्क़ेलाब का लाज़मी नतीजा यह था कि सरकारे रिसालत के बाद डेयूढ़ी की चहल पहल और रौनक़ सन्नाटे से तब्दील हो गई और वह माहौल जिसमें हुसैन[अ0स0] ज़िन्दगी बसर कर रहे थे एक दम बिल्कुल बदला हुआ नज़र आया।

हुसैन[अ0स0] माँ के पास जाते तो यह देखते कि सिवा अवक़ाते नमाज़ के हर वक़्त गिरया व ज़ारी से काम है कुछ दिन तक तो घर ही पर रोया करती थीं फिर अहले मदीना की इस शिकायत पर कि आपके नाला व शेवन (रोना पीटना) ने हम पर ख़्वाब व ख़ोर (खाना पीना) हराम कर दिया है, आप जन्नतुल बक़ीअ् में चली जाती थीं और इस क़ब्रिस्तान में गिरया करती रहती थीं।[1] हुसैन[अ0स0] बाप के पास आते तो यह देखते कि उन्होंने अहले ज़माना की बेरूख़ी को देखते हुए घर से निकलना और लोगों से मिलना जुलना तर्क कर दिया है। आप हर वक़्त एक गोशे में बैठे क़ुरआने मजीद के मुतफ़र्रिक़ अजज़ा (मुख़तलिफ़ हिस्से) को असली तरतीब और शाने नुज़ूल के मुताबिक़ किताबी शक्ल में मुरत्तब करते रहते हैं और फ़रमाते हैं कि मैं ने अहद किया है कि अबा दोश पर न डालूँगा जब तक कि क़ुरआन जमा न कर लूँ।[2] क्या इस सूरते हाल को देखकर हुसैन[अ0स0] का दिल न घुटता होगा। वह सोचते होंगे

---

[1]कशफ़ुल गुम्मा पेज/148

[2]सवाएक़े मुहररेक़ा पेज/76

कि ऐ ख़ुदा यह कैसा अंधेरा है जो एक दम हमारी आँखों के सामने छा गया है। बहरहाल अपने बाप के तर्ज़े अमल में यह नसबुल ऐन नुमायाँ पाया कि चाहे हालात कितने ही नासाज़गार हों मगर हमें इस्लाम की ख़िदमत से हाथ नहीं उठाना चाहिये। हमारा और क़ुरआन का साथ है इसलिये क़ुरआन की हिफ़ाज़त हमारा फ़र्ज़ है और इस फ़र्ज़ को किसी वक़्त नज़र अन्दाज़ नहीं किया जा सकता।

हुसैन[अ0स0] ने यह भी देख लिया कि लोग मेरे बाप के पास आते हैं और वह उन्हें जोश दिलाना चाहते हैं कि आप इस्लामी हुकूमत के हुसूल के लिये कोशिश कीजिये जो वाक़ई आपका हक़ है। उठिये और हम आपकी इमदाद के लिये तय्यार हैं। उनमें सच्चे दोस्त भी हैं और नुमाइशी भी। एक तरफ़ रसूल के चचा अब्बास बिन अब्दुल मुत्तलिब कहते हैं कि अपना हाथ बढ़ाओ, मैं तुम्हारी बैअत कर लूँ। इसका मुसलमानों पर बड़ा असर पड़ेगा। और वह कहेंगे कि पैग़म्बर के चचा ने उनके इब्ने अम (चचा के बेटे) की बैअत कर ली, फिर किसी को उज़्र न होगा और दसूरी तरफ़ बनी उमय्या का सरदार अबू सुफ़ियान बिन हर्ब है और वह आकर कहता है कि कितने ग़ज़ब की बात है कि आपके होते हुए अरब के एक रज़ील (पस्त) तरीन ख़ानदान ने ग़ल्बा हासिल कर लिया। ख़ुदा की क़सम अगर आप चाहें तो मैं आपकी इमदाद के लिये मदीने को सवार और प्यादों से भर दूँ। मगर चूँकि आपकी ज़ात जज़्बात से बलन्द और नफ़सानियत के लौस से पाक थी और आप इस्लाम का हक़ीक़ी दर्द अपने सीने में रखते थे इसलिये आप अपना हक़ समझते हुए भी उन लोगों के कहने में नहीं आये और आपने अबू सुफ़ियसान को इस तरह डाँट कर जवाब दिया कि "ख़ुदा की क़सम तुम हमेशा इस्लाम और अहले इस्लाम के दुश्मन रहे हो।"[1] यह इसका अमली इज़हार था कि चाहे हमारे हुक़ूक़ हाथ से जायें। हमारे शख़्सी मफ़ाद को नुक़सान पहुंचे मगर हमको हमेशा इज्तेमाई और इस्लामी मफ़ाद पर नज़र रखना चाहिये और इसके लिये हर तरह की क़ुर्बानी के लिये तय्यार रहना चाहिये। यह नतीजा भी इस वाक़ेये से ज़ाहिर था कि अबू सुफ़ियान और उसके ख़ानदान के लोगों का इस्लाम सिर्फ़ नुमाइशी हैसियत रखता है और उनसे इस्लाम के मुतअल्लिक़ हमेशा नुक़सान रसानी का अन्देशा मौजूद है। इसीके साथ यह भी कि इस्लाम को उसके खुले हुए दुश्मनों

---

[1]इरशाद पेज/100, इस्तीआब जि/2, पेज/710, सवाएक़े मुहररेक़ा पेज/37, तारीखुल खुलफ़ा पेज/45, तबरी जि/3, पेज/202–203)

के हाथों इतना नुक़सान नहीं पहुंच सकता था जितना इन नुमाइशी दोस्तों से पहुँच सकता है इसलिये अगर इस्लाम का तहफ़्फ़ुज़ करना है तो हमेशा इस जमाअत की नक़लो हरकत पर नज़र रखना चाहिये और कोई मौक़ा न आने देना चाहिये कि यह अपने मक़सद में कामयाब हो जाये।

अफ़सोस है कि रसूल[स0अ0] की वफ़ात से चन्द ही महीनों के बाद गूनागूँ (तरह तरह) मसाएब व तकालीफ़ उठाने के साथ हुसैन[अ0स0] से उनकी बुज़ुर्ग मर्तबा माँ भी जुदा हो गईं। हज़रत फ़ातिमा ज़हरा[स0अ0] की वफ़ात से अली इब्ने अबी तालिब[अ0स0] और भी दिल शिकस्ता हो गए और हसन व हुसैन[अ0स0] के लिये महरो मोहब्बत की दुनिया बड़ी हद तक वीरान नज़र आने लगी। अब उनके लिये गहवार–ए–शफ़क़त व तरबियत सिर्फ़ एक था और वह उनके बुज़ुर्ग मर्तबा बाप की ज़ात। सात बरस की उम्र से लेकर छत्तीस साल की उम्र तक उन्नतीस साल बराबर हुसैन[अ0स0] अपने वही कमालात के मावरा हज़रत अली इब्ने अबी तालिब[अ0स0] ऐसे हकीमे इलाही, आलिमे रब्बानी, मुअल्लिमे अख़लाक़े इन्सानी और मजमूअ–ए–फ़ज़ाएले नफ़सानी के इल्मी और अमली फ़ुयूज़ (फ़ाएदे) से बहरावर (हासिल करते रहे) होते रहे और यही वह ज़माना है जिसमें आम निज़ामे असबाब की दुनिया में इन्सानियत की हक़ीक़ी तामीर होती है। इस उम्र के आग़ाज़ से बुलूग़ की मुद्दत तक अवसाफ़ व मलकात (कमालात) की दाग़ बेलें पड़ती हैं। नौजवानी के ज़माने में उन पर दीवारें उठती हैं और जवानी के इख़्तेताम तक यह इमारत मुकम्मल होकर उस पर नक़्शो निगार बन जाते हैं और वह साज़ो सामान औरशीशा आलात से भी आरास्ता हो जाती है। हुसैन[अ0स0] के लिये इन तमाम मनाज़िल की ज़ाहरी तकमील अली इब्ने अबी तालिब[अ0स0] की निगरानी में हो रही थी।

हुसैन ने देखा कि उनके वालिदे बुज़ुर्गवार अली इब्ने अबी तालिब[अ0स0] बावजूदेकि ज़माने की बेतवज्जोही, हक़ फ़रामोशी और सर्दमुहरी से कबीदा ख़ातिर (ग़मज़दा) ज़रूर थे लेकिन जब किसी इलमी मसले में किसी मुहिम के मुतअल्लिक़ मशवरे में, किसी मुक़दमे के फ़ैसले में उनकी ज़रूरत पड़ जाती है और उनसे इमदाद की ख़्वाहिश की जाती है तो वह फ़ौरन बिला उज़्र इमदाद करने के लिये तय्यार हो जाते हैं। यह जज़बा इन्सानों के रवैये के बिल्कुल ख़िलाफ़ है। वह अगर किसी मन्सब के हुसूल से जिसके हक़दार हों महरूम कर दिये जाये ंतो वह मुतअल्लिक़ा अफ़राद से ख़फ़ा हो कर अलग हो जायेंगे और अगर इस मन्सब से तअल्लुक़ रखने वाले मुआमिलात में उनसे मदद तलब

की जाये तो वह अपनी दिली रंजिश की बिना पर तआउन से इन्कार कर देंगे। इससे अहलेबैत[अ0स0] के हर फ़र्द के सामने यह नमूना पेश हो रहा था कि हम चाहे मुसलमानों के मुआमिलात से कितने ही ग़ैर मुतअल्लिक़ कर दिये जायें मगर हमें कभी अपने को ग़ैर मुतअल्लिक़ समझना नहीं चाहिये। हमें हर ऐसे मौक़े का मुन्तज़िर रहना चाहिए कि जिस वक़्त हमारे ज़रिये से इस्लामी मफ़ाद को हक़ीक़ी फ़ाएदा पहुंच सकता हो तो उस मौक़े पर हमें अपने फ़र्ज़ को अन्जाम देना चाहिये और इस्लाम की ख़िदमत को अपना नसबुल ऐन समझना चाहिये।

तीसरे ख़लीफ़ा के इन्तेख़ाब के मौक़े पर ऐसा वक़्त आया कि हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] तख़्ते हुकूमत को हासिल कर लेते जबकि ख़लीफ़ा–ए–दोम ने अपने इन्तेक़ाल के वक़्त छे आदमियों की कमेटी बना कर ख़िलाफ़त को उनमें मुन्हसिर कर दिया और उनमें से एक हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] को भी क़रार दिया था। तमाम दूसरे अरकान हज़रत अली[अ0स0] को ख़िलाफ़त के मन्सब पर नामज़द करने के लिये तय्यार थे ब–शर्तेकि आप किताब व सुन्नत के अलावा शैख़ेन (अबू बकर व उमर) की सीरत पर अमल का भी अहद करें।[1] मगर हुसैन[अ0स0] ने देखा कि उनके हक़ीक़त परवर, बलन्द हिम्मत और मुस्तग़नी तबियत (फ़राग़ दिली) बाप ने इस मौक़े को अपने हाथ से दे दिया। इस बिना पर कि वह किताब और सुन्नत पर अमल के अलावा किसी दूसरीशर्त को मानने के लिये तय्यार नहीं हुए। जिसके नतीजे में वह ज़ाहरी ख़िलाफ़त का हुमा (परिन्दा) जो उनके सरे हुमाईयूँ (हुकूमत पाने वाले) पर चक्कर लगा रहा था एक तवील अरसे तक के लिये उनसे अलाहेदा हो गया।

हुसैन[अ0स0] ने इस में एक बड़े अहम सबक़ का अमली नमूना देखा जिस पर उनके आईन्दा एक़दामात की बुनियाद क़ायम थी और वह यह कि शरीअत और मुसलमान हुक्मरानों की सीरत दो अलग अलग चीज़ें हैं। ऐसा नहीं है कि जो हुकूमते वक़्त का आईन और उसका अमल हो उसको शरीअत की रू से भी सही मानना पड़े बल्कि शरीअत के मुस्तक़िल उसूल हैं जिन्हें मुक़्तदा (पेशवा के तौर पर) होना चाहिये और हुकूमत के अमल को उनका मातहत होना चाहिये और जब ऐसा न हो तो एक मुसलमान का फ़र्ज़ है कि वह शरीअत को तस्लीम करे और हुक्काम के अमल को तसलीम न करे और अगर

---

[1]तबरी जि/5, पेज/40

किसी वक़्त ऐसा मौक़ा पेश आये कि हुक्काम का अमल खुल्लम खुल्ला शरीअत के ख़िलाफ़ और आईने मज़हब में बुनियादी तब्दीली का बाइस हो तो मुसलमान का फ़र्ज़ है कि वह शरीअत की हिमायत में कमर बस्ता हो जाये और इसके लिये ब–शर्ते ज़रूरत किसी क़ुर्बानी से दरेग़ न करे। इसी दौर में सन 31 हिजरी में यज़्द जुर्द बादशाहे ईरान का सरासिमगी और कस्मपुरसी के आलम में एक ईरानी ही के हाथ से ख़ातिमा हुआ।[1] जिसके बाद शाहज़ादियाँ ब–हैसियते क़ैदी के मदीने भेजी गईं और इस मौक़े पर जबकि ग़नीम मुल्क की शाहज़दियों को क़ैद देखकर बहुत से आदमी खुश हो रहे होंगे हज़रत अली और उनके आली दिमाग़ शाहज़ादा हुसैन ने उन्हें कनीज़ी की ज़िल्लत से बचा ही नहीं लिया बल्कि उन्हें ख़ानदाने रसूल के घर में मलेका का ताज पहना दिया। चुनानचे वह शाहज़ादी जिनका नाम शहरबानो या शाह ज़मान मशहूर है हुसैन[अ0स0] के अक़्द में आईं और इस तरह उन्होंने इस्लाम की इस तालीम को ज़िन्दा रखा जो मुल्की तफ़रीक़ को मिटा देने की अलमबरदार है।

तीसरे ख़लीफ़ा उसमान के दौर का आख़री हिस्सा बड़ी बे इतमिनानी और कशमकश में गुज़रा, मुसलमानों को उनसे शिकायतें पैदा हुईं और आख़िर एक़दामात की हद तक पहुंचीं मगर हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] ने उन एक़दामात को तक़वियत पहुंचाने के बजाये पूरी कोशिश केसाथ उनको रोकने की सई (कोशिश) फ़रमाई। कई मर्तबा बीच में पड़ कर सुलह कराई। मुख़ालिफ़ जमाअत की शिकायात दूर कराईं और उसे समझा बुझा कर मुन्तशिर किया।[2] मगर मरवान जो उस दौर में "कातिब"[3] के ओहदे पर था उसकी शरारतों ने इन कोशिशों को कामयाब न होने दिया और आख़िर इस जमाअत ने हाकिमे वक़्त के मकान का मुहासेरा कर लिया।[4] उस वक़्त भी हज़रत अली इब्ने अबी तालिब[अ0स0] ने यह हमदर्दी की कि जब आपको मालूम हुआ कि मुहासिरा करने वालों ने पानी बन्द कर दिया है तो आपने हसन और हुसैन[अ0स0] अपने दोनों फ़रज़न्दों को कुछ मश्कों के साथ रवाना किया और उन दोनों साहबज़ादों ने अपने को ख़तरे में डाल कर पानी क़सरे हुकूमत के अन्दर पहुँचा दिया। बहर हाल नज़्मे हुकूमत का पैमाना लबरेज़ था और पानी सर से ऊँचा

---

[1]तबरी जि/5, पेज/71

[2]तबरी जि/5, पेज/96–97–110–117.व 122

[3]कातिब का दर्जा उस दौर में "वज़ीर" का सा होता था। वह हाकिम का राज़दार, मुशीरकार, उसकी मोहर का इमानतदार और उसकी तरफ़ से ख़त व किताबत का ज़िम्मादार होता था।

[4]अल–वरा वल–किताब पेज/14, तबरी जि/5, पेज/111–112

हो चुका था। हमला आवर जमाअत ने दारूल हुकूमत की सरज़मीन को ख़लीफ़ा के ख़ून से रंगीन और उनके रिशत–ए–हयात को क़ता कर दिया। हैरत का अम्र है कि इतना बड़ा मुस्लिम अकसरियत का मुसल्लमुस सुबूत (कामिल) फ़रमाँरवा ख़ुद अपने दारूस सलतनत में एक महीना उन्नीस दिन महसूर रहा।[1] और आख़िर तलवार के घाट उतार दिया गया और इस दारूस सलतनत के लोगों में जो पैग़म्बर का दारूल हिजरत (हिजरत का घर) और मुसलमानों का सबसे बड़ा मरकज़ था और जहाँ के अहले हल्लो अक़द (असर वाले) ख़लीफ़ा गरी के काम का अपने को वाहिद ज़िम्मेदार समझते थे कोई जोशे मक़ाविमत (बदले का जज़्बा) पैदा न हुआ। इससे ज़्यादा तअज्जुब की यह बात है कि लाश तीन दिन तक बे गोरो कफ़न रही।[2] और आम्म–ए–मुसलिमीन (आम मुसलमान) दफ़्न की तरफ़ मुतवज्जा नहीं हुए आख़िर में रातों रात ''हश कौकब'' नाम के मक़ाम पर जो मुसलमानों के क़ब्रिस्तान से अलग था सिपुर्दे ख़ाक किये गए।[3]

इस इबरत ख़ेज़ मुरक़्क़े से एक हस्सास इन्सान किस क़द्र अहम नताएज अख़्ज़ (ले) कर सकता था, सलतनते दुनिया की बे सेबाती (मिटने वाली), जमहूर (अवाम) की वफ़ादारी पर अदमे एतेमाद (भरोसा न होना) नीज़ मरवान और दूसरे बनी उमय्या के हाथों इस्लाम के शीराज़े की अबतरी (तबाही) यह सब कुछ हुसैन[अ0स0] ने देखा और अपनी आइन्दा ज़िन्दगी के सबसे अहम कारनामे की बुनियादों को मुस्तहकम (मज़बूत) बनाने में उनमें से हर एक पहलू का लिहाज़ रखा जिसके सुनने और समझने के लिये आपको मुस्तक़बिल का इन्तेज़ार करना चाहिये।

हालात बहुत तेज़ी से तब्दील होते हैं और इन हालात के लिहाज़ से जमहूर के रूजहानात भी बदलते रहते हैं। इस हंगामी इन्क़ेलाब के नतीजे में मुसलमानों की आँखें खुलीं और उनके इन्तेख़ाब की निगाहें हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के चेहरे पर जम गईं। उन्होंने आपके पास आकर ख़िलाफ़ते इस्लामी की ज़िम्मेदारी को संभालने की दरख़्वास्त की। यह बात हैरत में डालने वाली थी कि हज़रत अली बा–वजूदेकि इसके पहले हमेशा ख़ल्क़े ख़ुदा की हिदायत और उनके नज़्मो नस्क़ की इस्लाह के लिये बे चैन और

---

[1]तबरी जि/5, पेज/122

[2]तबरी जि/5, पेज/143

[3]तबरी जि/5, पेज/143–144

खिलाफ़ते रसूल[स0अ0] के लिये अपने इस्तेहक़ाक़ (हक़) का ऐलान फ़रमाते रहे थे। आज मुसलमानों की इस मुत्तफ़ेक़ा मुलतजियाना पेशकश को मुस्तरद फ़रमा रहे थे।[1] और इसके लिये किसी तरह तय्यार नहीं थे। हुसैन[अ0स0] ख़ूब जानते थे कि इसका सबब क्या है? हुकमूत और उम्माले हुकूमत (हुकूमत के मुलाज़िम) हुकूमत के रवैये की ब–दौलत मुसलमानों की आदतें बिगड़ चुकी थीं और ज़ाविय–ए–निगाह (नज़रया) में तब्दीली हो चुकी थी, इस्लामी हुकूमत बड़ी हद तक दुनयवी एक़तेदारे सलतनत के क़ालिब (दिलों) में ढल गई थी और किसरवियत व क़ैसरियत (बादशाहत) के आसार उसमें नमूदार हो गए थे। यह चीज़ किसी तरह उस सादगी और मसावात के साथ साज़गार न थी जिसे पैग़म्बरे इस्लाम[स0अ0] ने दुनिया में फैलाया था और जिस पर हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] निहायत सख़्ती के साथ आमिल (पाबन्द) थे इसलिये हज़रत ख़ूब जानते थे कि अगर मैं इस वक़्त हुकूमत की बाग को संभालूँगा तो या तो मुझे ज़माने के साथ साज़ करके हवा के रूख़ पर चलना पड़ेगा और इसके लिये मेरा ज़मीर मुझको इजाज़त नहीं दे सकता और या मैं ज़माने के साथ जंग करूँगा। बेशक अगर मैं ज़िम्मेदारी अपने सर ले लूँ तो मुझे ऐसा ही करना चाहिये मगर उसका नतीजा यह होगा कि ममलिकत में ख़लफ़िशार (उथल पुथल) रहेगा और ब–हैसियत एक हाकिम के मेरा दौर ना कामियाब समझा जायेगा। आपने पूरे तौर पर इन्कार किया मगर मुसलमानों का इसरार इतमामे हुज्जत की सूरत इख़्तियार कर गया यानी वह अली बिन अबी तालिब[अ0स0] पर यह ज़िम्मेदारी आयद करने लगे कि दुनिया आपसे हिदायत व इस्लाह की तालिब है और आप इससे गुरेज़ करते हैं। एक दाईये हक़ (हक़ के नुमाइन्दे) को यह भी ज़ेबा नहीं है कि वह ख़ल्क़े ख़ुदा पर बे एतेमादी की आड़ पकड़ कर उनकी दरख़्वास्त को ठुकराता रहे और उनकी हिदायत की ज़िम्मेदारी को पूरा कर के उन पर हुज्जत तमाम न करे। मजबूरन हज़रत अली[अ0स0] को यह ज़िम्मेदारी क़ुबूल फ़रमाना पड़ी। बेशक आपने दुनिया को धोखे में मुबतिला न रखने के लिये साफ़ ऐलान कर दिया कि देखो जब तुम ज़िम्मेदारी को मेरे सिपुर्द कर रहे हो तो मैं जो ठीक रास्ता समझूँगा उसी पर तुम्हें चलाऊँगा और किसी के एतेराज़ और नुक्ता चीनी की परवा न करूँगा।[2] लोगों ने इसका इक़रार करके ज़िलहिज्जा सन 35 हिजरी में अली बिन अबी

---

[1] तबरी जि/5, पेज/152

[2] तबरी जि/5, पेज/156

तालिब[अ०स०] की बैअत की और ख़लीफ़तुल मुसलिमीन तस्लीम किये गए। इससे एक तरफ़ यह साबित किया गया कि दुनिया की फ़िज़ा अब अहलेबैत[अ०स०] की हुकूमत व इक़तेदार के लिये मौजू नहीं है। दूसरी तरफ़ यह कि अगर अल्लाह के बन्दे वफ़ादारी के अहद के साथ रहनुमाई के तालिब हों तो जब तक हुज्जत उन पर पुरे तौर से तमाम न हो जाये हमारा फ़र्ज़ यह है कि हम ब–ज़ाहिर उनके अहदो पैमान को बावर (वाज़ेह) करें और उनकी ख़्वाहिशे रहनुमाई की तकमील के लिये क़दम आगे बढ़ायें।

ख़िलाफ़त की ज़िम्मेदारी क़ुबूल करने के बाद वही हुआ जो हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ०स०] पहले से समझे हुए थे कि दुनिया आपके तालीमात की पैरवी के लिये तय्यार नहीं हुई। कुछ लोगों ने तो बैअत से पहलूतेही की जैसे उसामा बिन ज़ैद हस्सान बिन साबित, अब्दुल्लाह बिन उमर और सअ्द बिन अबी वेक़ास वग़ैरह। हज़रत अली[अ०स०] ने उनके साथ कोई सख़्ती नहीं की हालाँकि तमाम मुसलमानों के नुक़त–ए–नज़र से आप की बैअत मुकम्मल हो चुकी थी और इसलिये उनका बैअत से इन्हेराफ़ उन सबके नज़दीक ग़लत था मगर जब तक वह अमली तौर से कोई मुख़ालिफ़त न करते और इस निज़ाम में ख़लल न डालते, ज़रूरत ही क्या थी कि उनसे तअररूज़ (टोका) किया जाय जबकि उसूले मज़हब में दस्तूर यह है कि "لااکراہ فی الدین"(दीन में ज़बरदस्ती नहीं) तो ख़िलाफ़त के तस्लीम कराने में इकराह के क्या मानी?

लेकिन बाज़ लोगों का यह मशवरा कि मुआविया और जितने उसमान के ज़माने के आमिल (काम करने वाले) हैं उन सबको आप बरक़रार रखें और जब वह मुतमइन हो जायें और आपकी गिरफ़्त में आ जायें तो फिर चाहे सबको माज़ूल कर दें। इसे आप ने मन्ज़ूर नहीं फ़रमाया और आपने कहा और मज़हबी ज़िम्मेदारी[1]के लिहाज़ से आप इसके सिवा कह ही क्या सकते थे कि सियासते दुनिया के लिहाज़ से तो बेशक यही बेहतर है जो तुम कहते हो मगर जब मैं जानता हूँ कि वह ज़ालिम और ना अहल हैं तो उन्हें अपनी तरफ़ से हुकूमत

---

[1]पैग़म्बरे इस्लाम[स०अ०] का इरशाद है कि जो शख़्स मुसलमानों की हुकूमत का ज़िम्मेदार हो फिर वह अपनी जानिब से किसी शख़्स को वाली क़रार दे दराँहालेकि उससे बेहतर शख़्स मुसलमानों के मफ़ाद के लिये मौजूद हो तो उसने खुदा व रसूल से ख़्यानत की। दूसरी हदीस में है कि जो शख़्स किसी आदमी को कोई मन्सब अता करे किसी जमाअत के अन्दर हालाँकि उस जमाअत में उस आदमी से ज़्यादा पसन्दीदा शख़्स मौजूद है तो उसने खुदा और उसके रसूल और तमाम मोमेनीन से ख़यानत की। अस–सियासतुश शरीया फ़ि सलाहिर राये व राईया लिश्शैख़ इब्ने तैमिया पेज/3

का परवाना भेजकर मैं उनके मज़ालिम में शरीक हूँ। यह क्योंकर हो सकता है।

यह बड़ा दूर रस वाक़ेया है। अगर अली बिन अबी तालिब[अ0स0] अपनी मातहती में मुआविया ऐसे शख़्स की हुकूमत कोदीनी फ़रीज़े के मातहत बरदाश्त नहीं कर सकते थे तो उसके बाद कभी हुसैन[अ0स0] बैअत करके मुआविया से बढ़कर यज़ीद ऐसे शख़्स की हुकूमत क्योंकर तस्लीम कर सकते हैं।?

फिर भी हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] ने मुआविया के नाम जो ख़त लिखा उसमें कोई सख़्ती व दुरूश्ती, लबो लहजे की तल्ख़ी और जंगजूयाना अन्दाज़ न था बल्कि एक बरसरे इक़्तेदार आने वाले हाकिमे आला को अपने किसी आमिल को जिस तरह का ख़त लिखना चाहिये वैसा ही था। इस ख़त में मज़मून जो मशहूर मुअर्रिख़ वाक़दी की किताब अल–जमल से मन्कूल है हस्बे ज़ैल है।

''तुमको मालूम होगा कि मैंने मुसलमानों के मुआमिलात में अपने दामन को किस तरह साफ़ रखा और किस तरह तख़्ते ख़िलाफ़त से बे ऐतेनाई (दूरी) इख़्तियार करता रहा। यहाँ तक कि वह हुआ जो टल न सकता था (क़त्ले उसमान) और उसके बाद मेरे लिये चार–ए–कार बाक़ी न रहा। यह वाक़ेयात बहुत तूलानी हैं। बहरहाल जो होना था वह हुआ और अब जो हालात पेश हैं वह आँखों के सामने हैं। अब तुम वहाँ के लोगों से बैअत हासिल करो और अपने यहाँ के आदमियों के एक वफ़्द के साथ मेरे पास हाज़िर हो।''[1]

मुआविया अगर मुख़ालिफ़त पर पहले ही से तुले हुए न होते तो इस ख़त के मज़मून पर उन्हें अमल करना चाहिये था मगर वहाँ तो ऐनाद (दुश्मनी) व मुख़ालिफ़त की चिंगारियाँ पहले से सुलग रही थीं। आख़िर आपके मुक़ाबले में क़त्ले उसमान का ग़लत इल्ज़ाम तराशा गया और इस बहाने से आपकी मुख़ालिफ़त का झंडा ऊँचा किया गया।

मुआविया ने शाम वालों को हज़रत अली इब्ने अबी तालिब[अ0स0] के ख़िलाफ़ इस ग़लत तोहमत को उनके ज़ेहन नशीन करके पूरे तौर पर मुशतइल कर दिया। मस्जिदे जामा दमिश्क़ में मातमी जल्से किये गए। मक़तूल ख़लीफ़ा का खून भरा कुर्ता मिम्बर पर डाल दिया गया और आलम यह था कि पचास साठ हज़ार का मजमा उसे देख देख कर नाला व ज़ारी करता और

---

[1]नहजुल बलाग़ा जि/2, पेज/140

इस जोशे रिक़्क़त में उनसे कहा जाता था कि अब तुम्हें अली[अ0स0] से इस ख़ून का बदला लेना है।[1] अब हज़रत अली[अ0स0] शाम की मुहिम के तदारूक का सामान करना चाह रहे थे जो यक बयक यह ख़बर आई कि तलहा और ज़ुबैर ने ज़ौज–ए–रसूल आइशा बिन्ते अबी बकर को आमादा करके आपके ख़िलाफ़ महाज़ तय्यार कर लिया है।[2]

वह लोग जो पच्चीस बरस तक हज़रत अली[अ0स0] को मैदाने जंग से बिलकुल अलाहेदा रहते हुए ख़ामोशी की ज़िन्दगी गुज़ारते देख चुके थे उन्हें यक़ीन होगा कि हज़रत अली[अ0स0] किसी न किसी तरह इस क़ज़िये (झगड़े) को रफ़ा दफ़ा कर देंगे। और जंग की नौबत न आने देंगे मगर उन्होंने देख लिया कि वही अली जो अपनी तलवार को इतने अरसे तक नियाम में रख चुके थे कि जवानी गुज़र के बुढ़ापा आ गया था। आज वह ज़िम्मेदारी अपने ऊपर आयद हो जाने के बाद आईन व उसूल और हक़ की हिफ़ाज़त के लिये जंग पर बिल्कुल तय्यार हैं। बेशक इमाम हुसैन[अ0स0] ने देखा कि उनके पिदरे बुज़ुर्गवार ने इस उसूल की सख़्ती के साथ पाबन्दी फ़रमाई कि जब तक फ़रीक़े मुख़लिफ़ अमलन जंग की इब्तेदा न कर दे, उस वक़्त तक तलवार नियाम से न निकाली जाये। चुनानचे जमल[3] के मैदान में यही हुआ कि जब सुफ़ूफ़े लश्कर (लशकर की सफ़ें) मुरत्तब हो चुकीं तो हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] ने एक कुरआन हाथ में लेकर अपने साथियों से फ़रमाया कि कौन है जो इस कुरआन को ले जा कर उन्हें इस पर अमल करने की दावत दे मगर यह बताये देता हूँ कि वह क़त्ल कर दिया जायेगा। यह सुनकर अहले कूफ़ा में से एक जवान जिसका नाम मुस्लिम था खड़ा हो गया। कहा मैं जाऊँगा। हज़रत ने सुकूत फ़रमाया और फिर बलन्द आवाज़ से कहा कौन है जो इस कुरआन को ले जाकर उन्हें इस पर अमल की दावत दे मगर वह क़त्ल हो जायेगा। फिर खड़ा हुआ तो वही जवान। हज़रत ने फिर सुकूत किया और फिर वही अलफ़ाज़ बलन्द आवाज़ से कहे। जब फिर वही जवान खड़ा हुआ तो आपने वह कुरआन उसके सिपुर्द किया वह उसे लेकर सुफ़ूफ़े

---

[1]तबरी जि/5, पेज/163

[2]तबरी जि/5, पेज/164

[3]जमल अरबी में ऊँट को कहते हैं चूंकि इस जंग में ज़ौज–ए रसूल आइशा को एक ऊँट पर महमिल में सवार करके हज़रत के मुक़ाबिल पर लाया गया था इसलिये इस का नाम जमल हुआ)

मुख़ालिफ़ के सामने गया। ज़ालिमों ने उसका दाहना हाथ क़ता कर दिया तो उसने क़ुरआन को दोनों कटे हुए बाज़ूओं से थाम कर सीने से लगा लिया।

इस हालत में कि ख़ून की उसके कपड़ों पर बारिश हो रही थी। उसके बाद वह क़त्ल कर दिया गया। अली बिन अबी तालिब[अ०स०] पुकारे कि अब इन से जंग हलाल हो गई।[1] अब दुनिया ने देखा कि वही तलवार जो बद्र, ओहद, ख़न्दक़ और ख़ैबर में किसी वक़्त चमक चुकी थी जमल के मैदान में चमकने लगती है। वही हाथ है और हाथ की सफ़ाई। वही दिल है और दिल की ताक़त। यहाँ तक कि जमल का मारिका फ़रीक़े मुख़ालिफ़ की शिकस्त पर ख़त्म हुआ उस वक़्त हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ०स०] ने फ़रीक़े मुख़ालिफ़ की सरगिरोह उम्मुल मोमेनीन आइशा के साथ वह शरीफ़ाना और बा–इज़्ज़त बर्ताव किया जैसा कि किसी फ़ातेह ने अपने मफ़तूह (हारा हुआ) फ़रीक़ के साथ नहीं किया होगा।[2] यह मारिका रोज़े पंजशम्बा (जुमेरात) 10 जमादिउस सानिया सन 36 हिजरी में पेश हुआ। [3]

ज़ाहिर है कि आम असबाब के लिहाज़ से अब जनाबे अमीर[अ०स०] का सिन लड़ाईयों की उमंगों का मुतक़ाज़ी तक़ाज़ा नहीं था। उनसठ बरस की उम्र थी मगर आपका पच्चीस बरस की ख़ामोशी के बाद अब मैदाने जंग में आ जाना ऐलान कर रहा था कि हक़ीक़तन हमारा हरकत व सुकून सब फ़र्ज़ के एहसास का नतीजा होना चाहिये। फ़र्ज़ की पुकार पर हमें हमेशा जवाब देना चाहिये। उसूल और फ़र्ज़ के हुदूद में जज़बात का तक़ाज़ा और सिन का इख़तेलाफ़ कोई चीज़ नहीं है। अगर फ़र्ज़ हमारा ख़ामोशी का हो तो चाहे जवानी की तमाम उमंगें क़दम उठाने पर आमादा कर रही हों फिर भी हमको अपनी ज़िन्दगी ख़ामोशी के साथ गुज़ार देना चाहिये और जवानी सुकून के आलम में बसर करना चाहिये। और अगर फ़र्ज़ हमारा अमली इक़दाम का हो तो चाहे बुढ़ापे का इज़्मेहलाल (कमज़ोरी) जिस्मानी कुव्वतों को मुतअस्सिर भी किये हो मगर हमें अज़्म व इरादे के क़दमों पर खड़ा होना चाहिये और वह करना चाहिये जो जवाँमरदाना हिम्मत का तक़ाज़ा है।

उधर शाम में इशतेआल अंगेज़ी मुसलसल जारी रही। जनाबे उसमान का ख़ून भरा कुर्ता और उनकी ज़ौजा नायला की कटी हुई उंगलियाँ मिम्बर पर

---

[1]तबरी जि/5, पेज/205–206

[2]तफ़सील के लिए देखो तबरी जि/5. पेज/203–205, 218, 219, 225

[3]तबरी जि/5, पेज/219

आवेज़ाँ और उसके सामने गिरया व ज़ारी, यह सिलसिला एक साल तक बराबर जारी रहा। बहुत से अहले शाम ने क़सम खाई की वह औरतों के क़रीब न जाऐंगे सिवा गुस्ले वाजिब के किसी दिन नहायेंगे नहीं और बिछौने पर सोऐंगे नहीं जब तक उन आदमियों को जो क़त्ले उसमान में शरीक थे क़त्ल न कर लेंगे।[1] इस तरह मुआविया ने पूरे शाम को हज़रत अली[अ0स0] के ख़िलाफ़ बरअंगेख़्ता (भड़का) कर दिया मगर आपने अपनी जानिब से इस्लाह की कोशिश जारी रखी। चुनानचे इसी के लिये आपने जुरैर बिन अब्दुल्लाह बिजली को दमिश्क़ भेजा मगर इसका कोई भी नतीजा न निकला। आख़िर को सिफ़्फ़ीन की जंग के लिये फ़ौजें मैंदान में आ गईं। अब भी आपने फ़हमाइश और नसीहत का सिलसिला मौक़ूफ़ (ठहरा) नहीं किया। बशीर बिन अम्र बिन मोहसिन अन्सारी, सईद बिन क़ैस हमदानी और शबस बिन रबई तमीमी इन तीन आदमियों को मुआविया के पास रवाना फ़रमाया कि वह जा कर इत्तेहाद व इत्तेफ़ाक़ और इताअत व इज्तेमा की तरफ़ दावत दें। मगर इस अमन पसन्दाना पेश क़दमी का जवाब यह मिला कि पलट जाओ मेरे पास से क्योंकि मेरे तुम्हारे दरमियान बस तलवार से फ़ैसला होगा।[2] कहाँ तो हाकिमे शाम के यह जंगजूयाना अन्दाज़ और कहाँ हज़रत अली[अ0स0] की वह गुफ़्तगू जो आपने नमुइन्दगाने शाम हबीब बिन मुस्लिम फ़हरी, शरहबील बिन समत और मअ्न बिन यज़ीद बिन अख़नस के सामने फ़रमाई थी जिसमे आपने कहा थाः "तुम लोगों को किताबे खुदा और सुन्नते रसूल, बातिल को पामाल करने और हक़ को ज़िन्दा करने की जानिब दावत देता हूँ।"[3] लेकिन आपकी यह दावत मुस्तरद कर दी गई और बिल आख़िर मुसलमानों का खून बेदरेग़ बहाया जाने लगा।

इस जंग का आग़ाज़ असना और अन्जाम में बहुत से जाज़िबे तवज्जोह उमूर पेश आते रहे। पहले यह कि इस जंग में भी हज़रत अली[अ0स0] ने अपनी फ़ौज को हिदायत कर दी कि जब तक दुश्मन इब्तेदा न करे तुम जंग न करना। [4]आपने इन तमाम मारकों में जो नाम निहाद मुसलमानों के साथ पेश आये हैं बराबर अपनी फ़ौज को यह हिदायत फ़रमाई कि उस वक़्त तक जंग

---

[1]तबरी जि/5, पेज/235
[2]तबरी जि/5, पेज/243
[3]तबरी जि/6, पेज/4
[4]तबरी जि/5, पेज/238

न छेड़ना जब तक कि वह इब्तेदा न करें। इसलिये कि तुम्हारी हुज्जत बेहमदिल्लाह हक़्क़ानियत के लिहाज़ से तो तमाम है ही, अब यह तुम्हारा जंग में इब्तेदा न करना और उधर से इब्तेदा होना उनके मुक़ाबिले में मज़ीद इतमामे हुज्जत का बाइस हो जायेगा और जब लड़ाई छिड़ जाये और फिर दुश्मन को शिकस्त हो तो किसी भागते हुए का पीछा न करना। किसी ज़ख़्मी पर हाथ न उठाना। किसी औरत की बेहुरमती न करना। किसी मक़्तूल के आज़ा क़ता न करना, ख़्याम में बिला इजाज़त दाख़िल न होना। उनके माल व असबाब को न लूटना और दुश्मनों की औरतें तुम्हें और तुम्हारे सरदारों को गालियाँ भी दे तो उन्हें कोई ईज़ा न पहुंचाना।[1]

इसके अलावा यह भी एक वाक़ेया सामने आया कि मुआविया के मुक़द्दमतुल जैश (फ़ौज का वह हिस्सा जो बड़ी फ़ौज के लिए राह हमवार करता है) अबुल आवर सलमी ने नहरे फ़ुरात पर क़ब्ज़ा कर लिया और हज़रत अली[अ०स०] के लश्कर पर पानी बन्द कर दिया। मजबूरन आपने पानी के लिये जंग का हुक्म दिया। आपके लश्कर ने अबुल आवर सलमी की फ़ौज से घाट छीन लिया और यह इरादा किया कि अब दुश्मन की फ़ौज पर इसी तरह पानी बन्द कर दिया जाये। जैसा उसने हम पर बन्द किया था। मगर हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ०स०] ने उसको गवारा न फ़रमाया। आपने कहा वह उनका फ़ेअ्ल (काम) था मगर तुम उन्हें पानी से न रोको। इतमिनान के साथ सेराब होने दो।

इससे यह सबक़ दिया जा रहा है कि हमारी मुख़ालिफ़ जमाअत इन्सानियत और अख़लाक़ में कितनी ही पस्त हो जाये मगर हमको हमेशा बलन्द ज़रफ़ी से काम लेना चाहिये। और उसके कमीना तर्ज़े अमल का मुआवेज़ा उसके मिस्ल से नहीं करना चाहिये बल्कि हमें इन्सानियत की बलन्दी का तहफ़्फ़ुज़ करना ज़रूरी है।

जंगे सिफ़्फ़ीन में हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ०स०] को मुसलमानों की ख़ूंरेज़ी से बड़ी तकलीफ़ महसूस हो रही थी। चुनानचे आपने पुकार कर अमीरे श्शाम से कहा कि इससे क्या हासिल है कि आम मुसलमानों का ख़ून फ़य्याज़ी के साथ बह रहा है। बस तुम निकल आओ मैदान में और मैं आजाऊँ और इस जंग का फ़ैसला हो जाये।[2] मगर मुआविया ने इस ख़तरे को अपनी ज़ात के

---

[1]तबरी जि/6, पेज/6

[2]तबरी जि/6, पेज/203

लिये मोल न लिया। वह दूसरों के गले कटवाते रहे और ख़ुद कभी मुक़ाबले के लिये मैदान में नहीं आये। बरख़िलाफ़ इसके हज़रत अली[अ0स0] जान को जान न समझते हुए बराबर मुजाहदीन की सफ़ों के आगे आगे थे। इसलिये कि उनका ज़मीर मुतमइन था। वह शहादत के मुश्ताक़ थे। उनका तो क़ौल था कि "मैं मौत के साथ इससे ज़्यादा मानूस हूँ जितना बच्चा आग़ोशे मादर से मानूस होता है।" बेशक वह उस मौत को ना–पसन्द करते थे जो बुज़दिली के साथ बिस्तरे इस्तेराहत (आरामदेह बिस्तर) पर हो। चुनानचे असहाब से फ़रमाते थे कि याद रखो अगर तुम क़त्ल न हुए तो अपनी मौत मरोगे और क़सम उस ख़ुदा की जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है कि हज़ार ज़रबतें तलवार की जो सर पर पड़ें आसान हैं फ़र्शे ख़्वाब पर ऐड़ियाँ रगड़ कर मरने से।[1] चुनानचे उनका तर्ज़े अमल हमेशा इसी का मज़हर रहा था। इब्तेदा–ए–शबाब में जब हर इन्सान को ज़िन्दगी इन्तेहाई अज़ीज़ होती है रसूल का इरशाद कि अली मेरे बिस्तर पर सो रहो और अली का ब–सर व चश्म आमादा हो जाना इस का तज़केरा पहले हो चुका है। यह कोई मामूली बात नहीं थी। मालूम था कि ख़ून के प्यासे दुश्मन की खिंची हुई तलवारें लिये क़त्ल पर आमादा हैं मगर वहाँ राहे हक़ में मौत तो ख़ुशगवार समझी जाती थी।

इसी जंगे सिफ़्फ़ीन में एक मौक़े पर इमाम हसन[अ0स0] से फ़रमायाः

"तुम्हारे बाप को कोई परवाह नहीं है कि मौत उस पर गिर रही है या वह ख़ुद मौत के ऊपर गिर रहा है।"[2] फिर ऐसे बाप के जो बेटे हों जिनके सामने यह सीरत हो और जिनके कानों में यह बातें पड़ रही हों उन्हें मौत का अन्देशा क्योंकर रह सकता है। चुनानचे हुसैन[अ0स0]अपने भाई हसन और मोहम्मद बिन हनफ़िया के साथ इस जंग में बराबर से हिस्सा ले रहे थे और सख़्त से सख़्त मौक़ों पर सिबाते क़दम के जौहर दिखला रहे थे। तारीख़ ने एक ऐसे मौक़े की तस्वीर कशी करते हुए कि जब अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के लश्कर का बड़ा हिस्सा शिकस्त खा चुका था लिखा है कि उस वक़्त नहीं रह गए थे अली[अ0स0] के पास मगर बड़े फ़र्ज़ शनास और पुरजिगर अफ़राद, उस वक़्त आपने अपने घोड़े का रूख़ मैसरा की जानिब फेरा कि जिधर क़बील–ए–रबीया के लोग अब तक दुश्मनों का मुक़ाबला कर रहे थे। रावी जिसका नाम ज़ैद बिन वहब जहनी हैं बयान करता है कि मैं देख रहा था

---

[1]इरशाद पेज/128

[2]तबरी जि/6, पेज/11

अली[अ०स०] को कि आप रबिया की फ़ौज की तरफ़ जा रहे थे और आपके फ़रज़न्द हसन[अ०स०] व हुसैन[अ०स०] और मोहम्मद हनफ़िया आपके साथ साथ थे और तीर अली के कान और शानों के पास से गुज़र रहे थे मगर आप के फ़रज़न्द बढ़ बढ़कर सिपर बन जाते थे और अपने बाप की हिफ़ाज़त करते थे।[1] क्या यह जज़बा–ए–फ़िदाकारी और कुर्बानी का मामूली मुज़ाहरा है जो अली[अ०स०] की आँखों के सामने उन साहबज़ादों से ज़ाहिर हो रहा था? क्या इसके बाद कभी यह ख़याल किया जा सकता है कि अली[अ०स०] के यह बहादुर बेटे मौत के डर से किसी फ़र्ज़ में कोताही करें या किसी बातिल ताक़त के सामने जान के ख़ौफ़ से सर झुकायें।

इसी सिफ़्फ़ीन के मैदान में एक और मंज़र का भी मुशाहदा हुआ। वह यह कि ऐन जंग की हालत में हज़रत अली[अ०स०] की निगाह आफ़ताब पर थी। इब्ने अब्बास ने सबब दरयाफ़्त किया। हज़रत ने फ़रमाया कि देखता हूँ नमाज़े ज़ोहर का वक़्त आया या नहीं। इब्ने अब्बास ने अर्ज़ किया, क्या यह नमाज़ का मौक़ा है? जंग तो हो रही है। आपने फ़रमाया कि और यह हमारी जंग किस बात के लिये है? इसी नमाज़ के लिये तो जंग कर रहे हैं।

यह इबादते इलाही के फ़र्ज़ की अहमियत का एक बेमिस्ल अमली दर्स था कि तीरों की बारिश हो या आग बरस रही हो। जब नमाज़ का वक़्त आये तो लाज़िम है कि इस फ़र्ज़ के अदा करने के लिये खड़े हो जायें।

जंग को बहुत तूल हो चुका था। आख़िर एक दिन हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ०स०] ने तय कर लिया कि अब मुकम्मल फ़तह हासिल करने के बाद ही जंग को मौकूफ़ किया जायेगा। एक दिन और रात मुसलसल हंगाम–ए–दारो दगीर (धड़ पकड़) बरपा रहा जिसके नतीजे में फ़ौजे शाम के क़दम उखड़ने लगे और मुआविया को शिकस्त का यक़ीन हो गया। मगर अम्र बिन आस ने उस दिन के लिये एक चाल उठा रखी थी। वह यह कि फ़ौरन कुरआन नैज़ों पर बलन्द कर लिये गए और निदा दी गई कि भाईयो यह किताबे ख़ुदा ही हमारे और तुम्हारे दरमियान फ़ैसला कर देगी। शाम वाले सब हलाक हो गए तो शाम के हुदूद का कौन निगहबान होगा। [2]हालाँकि आग़ाज़े जंग से पहले ही हज़रत अली[अ०स०] कुर्आन के फ़ैसले की दावत दे चुके थे। मगर इस वक़्त कामयाबी के तख़य्युलात की बिना पर अली की दावत को मुस्तरद कर दिया

[1]अख़बारूत्तेवाल पेज/184, तबरी जि/6, पेज/10

[2]तबरी जि/6, पेज/46

गया। अब शिकस्त के आख़री अन्जाम से बचने के लिये कुर्आन दरमियान में लाया जा रहा था। हज़रत अली[अ0स0] ने अपनी फ़ौज वालों को इस मक्कारी और चालबाज़ी से आगाह किया और साफ़ फ़रमाया कि यह लोग न अहले दीन हैं और न अहले कुर्आन।[1] मगर आपकी फ़ौज के बहुत से लोग आपसे मुन्हरिफ़ होकर इस बात पर मुसिर हो गए कि अब तलवार रोक लीजिये। नही तो हमारे आपके दरमियान तलवार चलेगी। यह बड़ी कशमकश का मौक़ा थ। दुश्मन से मुक़ाबले के हंगाम में ऐसी सूरत पैदा हो जाना कि ख़ुद अपनी फ़ौज में तलवार चलने लगे एक इन्तेहाई हौलनाक सूरते हाल थी। जिसे हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] गवारा न कर सकते थे। मजबूरन आपने जंग के इलतिवा (जंग बन्दी) का हुक्म दिया और तय पाया कि एक हकम अहले शाम की तरफ़ से नामज़द हो और एक अहले कूफ़ा की तरफ़ से। मगर अहले शाम की तरफ़ से अम्र बिन आस ऐसा अमीरे शाम का नफ़्से नातिक़ा (बोलने वाला) मुक़र्रर किया गया और जब हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] ने चाहा कि मालिके अश्तर या अब्दुल्लाह बिन अब्बास या किसी दूसरे ऐसे ही अपने मुख़लिस और खैरख़्वाह को अपनी जानिब से मुक़र्रर करें। तो वही फ़ौज वाले फिर बिगड़ गऐ कि यह लोग तो बिल्कुल इस जंग के ज़िम्मेदार हैं हम उनको क्यों कर मुक़र्रर करें।[2] आख़िर सबने अबू मूसा अशअरी को जो पहले ही हज़रत अली[अ0स0] की मुवाफ़िक़त से गुरेज़ कर चुके थे अपनी जानिब से मुक़र्रर किया। मसलहते वक़्त यही थी क्योंकि अपनी जमाअत में खूंरेज़ी का इन्सेदाद (रोकना) इसी पर मौक़ूफ़ था कि हज़रत बा–दिले नख़्वास्ता (ना चाहते हुए) उसको बरदाश्त कर लें। यहाँ तक कि नतीजा सबकी आँखों के सामने आजाये। ताहम आपने जो सुलहनामा लिखवाया उसका मज़मून हस्बे ज़ैल था।

"अली बिन अबी तालिब[अ0स0] ज़िम्मा लेते हैं अहले कूफ़ा और तमाम मुसलमानों का जो उनके साथ हैं और मुआविया ने ज़िम्मेदारी ले ली है अहले शाम और तमाम अपने तरफ़दारों की कि हम अल्लाह और उसकी किताब के फ़ैसले पर दारोमदार रखते हैं और सिवा किताबे ख़ुदा के कोई शै हम में फ़ैसला कुन नहीं होगी और किताबे ख़ुदा हमारे सामने रहेगी। शुरू से लेकर आख़िर तक हम ज़िन्दा करेंगे उसी बात को जिसे ख़ुदा ज़िन्दा करे। और मुर्दा करेंगे उसको जिसे किताबे ख़ुदा मुर्दा करे। लिहाज़ा हकेमैन (दोनों फ़ैसला

---

[1]तबरी जि/6, पेज/27, इरशाद पेज/144

[2]तबरी जि/6, पेज/28

करने वालों को) को लाज़िम होगा कि वह किताबे ख़ुदा पर नज़र करें और जो कुछ उसमें मिले उस पर अमल करें और अगर किताबे ख़ुदा में उन्हें कोई हिदायत नज़र न आये तो रसूले ख़ुदा की सुन्नत पर जो इख़्तेलाफ़ी न हो अमल किया जायेगा।''

इस मुआहदे के अलफ़ाज़ से साफ़ ज़ाहिर है कि हकमैन (दोनों फ़ैसला करने वालों) को अपनी ज़ाती राय से जो किसी सियासते दुनयवी का तक़ाज़ा हो फ़ैसला करने का हक़ नहीं दिया गया था। चुनानचे हज़रत अली[अ0स0] ने ख़ुद हकेमैन से जो फ़ैसले के लिये मुक़र्रर हुए थे फ़रमाया था कि ''तुम इस शर्त पर हकम (क़ाज़ी) हो कि किताबुल्लाह के रू से फ़ैसला करना और अगर तुम्हें किताबे ख़ुदा की रू से फ़ैसला न करना हो तो तुम्हें अपने को हकम नहीं समझना चाहिये।[1] दूसरे अशख़ास को भी यह बता दिया गया कि हकमैन पर यह शर्त लगा दी गई है कि वह क़ुरआन की बिना पर फ़ैसला करें और अपनी ज़ाती राय को काम में न लायें।[2]

यह इक़रार नामा 13 सफ़र सन 37 हिजरी को पाय–ए–तकमील तक पहुँचा।

बावजूद हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] की इस दूर अन्देशी और एहतियात के फिर भी साथ वाले मुफ़सिद (फ़सादी) आदमी फ़ितना व फ़साद बरपा करने से बाज़ न आये और अभी इक़रार नामा लिखा ही गया था कि उसी वक़्त हज़रत अली[अ0स0] की फ़ौज में यह आवाज़ बलन्द हो गई कि इन्सानों को हकम (फ़ैसला करने वाला बनाना) दुरूस्त नहीं। ''ला–हकमा इल्लल्लाह'' यानी हकम होना अल्लाह से मख़सूस है। इस आवाज़ का सबसे पहला बलन्द करने वाला क़बील–ए–बनी तमीम का एक शख़्स उरवा बिन अदीय्या था।[3]

यह जमाअते ख़वारिज (हज़रत अली[अ0स0] की मुख़ालिफ़ जमाअत) का संगे बुनियाद था। उन लोगों ने हज़रत अली[अ0स0] से इसरार किया कि पहले मुआविया से जंग कीजिये हम आपके साथ हैं। आपने वही जवाब दिया जो रसूले ख़ुदा[स0अ0] सुलहे हुदैबिया के बाद देते थे।

---

[1]असदुल ग़ाबा जि/3, पेज/246

[2]तबरी जि/6, पेज/32, इरशाद पेज/44

[3]तबरी जि/6, पेज/30–31

"हम ने नविश्ता (लिखी हुए सनद) दे दिया है। शराएत तय किये हैं। अहदो मीसाक़ (वादा) कर लिया है। अब उसकी मुख़ालिफ़त मुमकिन नहीं है। कुरआन में हुक्म हुआ है कि वफ़ा करो अहदो पैमान के साथ और क़सम खाने के बाद उसकी मुख़ालिफ़त न करो जबकि तुम ने अल्लाह को इसका ज़ामिन बना दिया है और यक़ीनन अल्लाह तुम्हारे अफ़आल व आमाल पर मुत्तेला है।"

आपने इस सख़्ती के साथ मुआहदा पर क़याम किया मगर हकमैन ने खुद शराएते मुक़र्रा (की गई शर्तों) की पाबन्दी नहीं की और किताबे खुदा व सुन्नते रसूल से कोई सरोकार ही नहीं रखा। चूँकि अबू मूसा सादा लौह आदमी थे और जनाबे अमीर[अ0स0] से कोई खुलूस और मुहब्बत भी नहीं रखते थे। उन्हें अम्र बिन आस ने अपनी सियासत का शिकार बना लिया। इस तरह कि जब वक़्ते मुक़र्ररा पर "दूमतुल जन्दल" में जो कूफ़े व शाम के लिहाज़ से बिल्कुल वसत (बीच) में वाक़े था और इसलिये फ़ैसला के लिये वहीं इज्तेमा तय पाया था। यह लोग यकजा हुए। रोज़ाना मुलाक़ात और तबादल–ए ख़यालात का सिलसिला क़ायम हो गया तो अम्र बिन आस ने यह तरीक़ा इख़्तियार किया कि जब गुफ़्तगू हो तो अबू मूसा अशअरी को अपने ऊपर मुक़द्दम क़रार दें और कहें कि आप बुज़ुर्ग हैं। रसूले खुदा[स0अ0] की सहाबियत का मुझसे ज़्यादा शरफ़ रखते हैं। आप पहले तक़रीर कीजिये। फिर मैं जो कहना है कहूँगा। इस तरह अम्रे आस ने अबू मूसा अशअरी पर अपने खुलूस व अक़ीदत का असर जमाया और आइन्दा के लिये जो मन्सूबा सोचा था उसकी तमहीद क़ायम कर दी।

फिर ज़ेरे बहस मसअले के मुतअल्लिक़ तबादल–ए–ख़यालात किया और अबू मूसा को यह पट्टी पढ़ाई कि हम दोनों फ़रीक़ यानी हज़रत अली[अ0स0] और मुआविया को एक साथ माज़ूल (हटा) कर दें। और फिर मुसलमानों को इख़्तियार दें कि वह अज़ सरेनौ (नय सिरे से) जिसको चाहें मुन्तख़ब कर लें। अबू मूसा इस फ़रेब में आ गए और ब–ख़याले खुद मुत्तफ़क़ा हैसियत से यही तय कर लिया।

जब फ़ैसले का वक़्त आया और तरफ़ैन (दोनों तरफ़) के आदमी फ़ैसला सुनने को जमा हुए तो अम्रे आस ने हस्बे आदत अबू मूसा अशअरी से कहा "बिस्मिल्लाह! आप फ़रमाईये जो कुछ फ़रमाना है।" उनको तो आदत पड़ी ही थी कि हमेशा गुफ़्तगू में पहल वह करें। वह बिला उज़्र तक़रीर के लिये आमादा हो गए। अब्दुल्लाह बिन अब्बास ने जो समझदार आदमी थे मुतनब्बेह

(ख़बरदार) किया कि देखो अम्र बिन आस कहीं चोट न दे दे। पहले उसे तक़रीर कर लेने दो। फिर तुम तक़रीर करना। मगर अबू मूसा अशअरी ने कहा कि नहीं, हमने बाहम मुत्तफ़ेक़ा तौर पर एक चीज़ तय कर ली है। चुनानचे खड़े हो गए और हम्द व सना के बाद कहने लगे कि "हमने इन्तेहाई ग़ौर व ख़ौज़ के बाद ऐसी बेहतरीन सूरत तय की है जिससे इफ़तेराक़ (तफ़रक़ा) व इख़तेलाफ़ का ख़ातिमा हो सकता है। वह यह है कि हम दोनों अली[अ0स0] और मुआविया दोनों को माज़ूल कर दें और ख़िलाफ़त अज़ सरेनौ मुसलमानों के हवाले कर दें। कि वह जिसे चाहें मुन्तख़ब कर लें।" वह यह कह कर जूंही बैठे अम्र आस ने खड़े हो कर कहा कि "हज़रात! आप लोगों ने अबू मूसा अशअरी की तक़रीर सुनी वह अली के नुमाइन्दे हैं और उन्होंने अली को माज़ूल कर दिया है मैं मुआविया का नुमाइन्दा होने की हैसियत से अली के माज़ूल करने में उनसे मुत्तफ़िक़ हूँ मगर मुआविया को मैं बरक़रार रखता हूँ।" यह सुनना था कि अबू मूसा चीख़ उठे।

"अरे यह तूने क्या किया? ख़ुदा तुझसे समझे, तूने ग़द्दारी की, बेईमानी की, तू कुत्ते की तरह है कि चाहे उस पर हमला करो या उसे उसके हाल पर छोड़ दो। वह भौकने से बाज़ न आयेगा।"

अम्रे आस ने जवाब दिया।

"तुम्हारी मिसाल गधे की सी है जिसकी पुश्त पर किताबें लाद दी गई हों।"

मजमे में से कोई अबू मूसा की तरफ़ झपट कर हमला आवर हुआ और कोई अम्र आस पर। ग़रज़ इस हड़बन्ग और इन तहज़ीब व अख़लाक़ के मुज़ाहरों के साथ यह इज्तेमा मुन्तशिर हो गया।[1] ज़ाहिर है कि इस तरह की मक्काराना धांधली को किसी बा–ज़ाब्ता फ़ैसले का दर्जा दिया ही नहीं जा सकता था चुनानचे उसे किसी ने भी सही तस्लीम न किया और इख़तेलाफ़ जूँ का तूँ क़ायम रह गया लेकिन उससे हज़रत अली[अ0स0] की जमाअत में इन्तेशार में कुछ और ज़्यादती हो गई।

उधर ख़्वारिज ने अपनी जमाअत को मुनज़्ज़म करके मुक़ाबले की तय्यारी कर दी जिससे सन 38 हिजरी में जंगे नहरवान की सूरत पेश आई।

वाक़ेयात के इस तवील सिलसिले में बड़े नताएज बरामद हुए थे और महसूस होता था कि एक क़ायद को अपने साथ वालों के हाथों जबकि वह

---

[1]तबरी जि/6, पेज/40

ख़ालिस व मुख़लिस, यकदिल और हमआहंग न हों कितनी कशमकश और रूहानी तकलीफ़ का सामना हुआ है और इससे मक़सद को किस दर्जा नुक़सान पहुँच जाता है।

नहरवान के बाद भी यह फ़ितने और शोरिशें बिल्कुल ख़त्म नहीं हुईं। एक तरफ़ ख़वारिज नहरवान के हम ख़याल अफ़राद जो जंग में नहीं गए थे और शहरों के अन्दर मुक़ीम थे हज़रत अमीर[अ0स0] के ख़िलाफ़ फ़िज़ा में इन्तेशार पैदा करते रहते थे और दूसरी तरफ़ अमीरे शाम मुआविया जिन्हों ने अहले कूफ़ा के इफ़तेराक़ का फ़ाएदा उठा कर अपनी कुव्वत को ज़्यादा मुनज़्ज़म कर लिया था बराबर अतराफ़े ममलिकत (हुकूमत) में अपनी फ़ौजें भेजकर बद–अमनी का सिलसिला क़ायम किये हुए थे जिसमें ख़ुफ़िया और एलानिया हर क़िस्म के एक़दामात शामिल थे। मसलन मिस्र में जनाबे अमीर[अ0स0] के बहुत बड़े मुआविन (मददगार) मालिके अश्तर का ज़हर दिलवा कर ख़ात्मा किया।[1] उसके बाद मोहम्मद बिन अबी बकर गवर्नर बना कर भेजे गए तो अम्र बिन आस ने ख़ुतूत लिखकर ख़ुद मिस्र के बाज़ अमाएद (हम ख़याल लोगों) से साज़बाज़ की और फिर अपनी फ़ौज लेकर हमला कर दिया। उधर से शाम की फ़ौज और इधर से ख़ुद मिस्र वालों का एक मुसल्लह (अस्लहों से लैस) लश्कर मोहम्मद बिन अबी बकर मैय अपनी जमाअत के चक्की के दो पाटों में आ गए।[2] आख़िर उनकी फ़ौज ने शिकस्त खाई और ख़ुद इन्तेहाई बेदर्दी के साथ क़त्ल किये गए बल्कि लाश को भी आग में जला दिया गया।[3] मोहम्मद बिन अबी बकर के बाद मिस्र में मुआविया का तसल्लुत क़ायम हो गया। इसी से उनकी हिम्मत और बढ़ी। चुनानचे सन 39 हिजरी में नोमान बिन बशीर की सरकर्दगी में दो हज़ार की फ़ौज ने ऐनुत तमर पर हमला किया जो नाकामी के साथ पसपा हुआ।[4] सुफियान बिन औफ़ ग़ामदी ने छे हज़ार की फ़ौज के साथ अम्बार पर हमला किया और अशरस बिन हिसान बकरी को जो जनाबे अमीर[अ0स0] की तरफ़ से वहाँ मुक़र्रर थे उनके तीस हमराहियों समेत क़त्ल कर दिया और तमाम माल व असबाब लूट का वापस चला गया।[5] अब्दुल्लाह बिन मुसअ्दा

---

[1]तबरी जि/6, पेज/54
[2]तबरी जि/6, पेज/57
[3]तबरी जि/6, पेज/60
[4]तबरी जि/6, पेज/77
[5]तबरी जि/6, पेज/78

ख़ज़ारी ने सत्तरह सौ आदमियों के साथ तैमा पर हमला किया। हज़रत अली[अ0स0] ने मुसय्यब बिन नजबा फ़ज़ारी को उसके मुक़ाबले के लिये भेजा जिन्हों ने जंग करके उसको शिकस्त दी और उसने शाम की जानिब फ़रार किया।[1] इसी सूरत में ज़हाक बिन क़ैस को तीन हज़ार फ़ौज के साथ भेजा गया जो लूट मार करती हुई क़ादसिया के हुदूद तक पहुंच गई।[2] और हुज्र बिन अदी फ़ौज को लेकर गए तो उसने फ़रार इख़्तियार किया। मालूम होता है कि सिफ़्फ़ीन की जंग के बाद महसूस हो गया था कि हज़रत अली[अ0स0] से खुले मैदान में मुक़ाबला करके कामयाबी हासिल कर लेना मुमकिन नहीं है। इसलिये यह गोरीला जंग का तरीक़ा इख़्तियार कर लिया गया था जिससे इस्लामी ममलिकत में एक मुसतक़िल ख़लफ़िशार क़ायम रखने का इन्तेज़ाम किया गया था। इस सिलसिले का सबसे अन्दोहनाक (दर्दनाक) सानेहा बसर बिन अबी इरताह का तीन हज़ार की फ़ौज के साथ हिजाज़ पर हमला था जिसने मदीने और मक्के वालों से ब–जब्र बैयत लेने के बाद यमन का रूख़ किया और वहाँ कई आदमियों को क़त्ल किया।

उबैदुल्लाह बिन अब्बास का मकान लूटा और उनके दो कमसिन बच्चों को ज़िबह करा दिया। फिर जब हज़रत अली[अ0स0] ने मुक़ाबले के लिये लश्कर भेजा तो वह मैय अपनी फ़ौज के फ़रार कर गया।[3]

यह बुज़दिली का तरीक़ा–ए–जंग हज़रत अली[अ0स0] के लिये इन्तेहाई तकलीफ़ का बाइस था। मजबूरन फिर आपने तहय्या फ़रमा लिया था कि दमिश्क़ पर फ़ौज कशी करके हमेशा के लिये इस क़िस्से को ख़त्म किया जाये। जिसके लिये आपने एक निहायत पुरज़ोर ख़ुत्बा पढ़कर मुसलमानों को आमादा कर लिया मगर उसके बाद एक हफ़्ता भी पूरा न हुआ था कि मस्जिद में ऐन हालते नमाज़ में 19/रमज़ान को आपके सरे मुबारक पर इब्ने मुलजिम मुरादी ने ज़हर से बुझी हुई तलवार लगई।[4] जिसके असर से 21/रमज़ान सन 40 हिजरी को आपने दुनिया से रेहलत फ़रमाई।

---

[1]तबरी जि/6, पेज/78
[2]तबरी जि/6, पेज/78
[3]तबरी जि/6, पेज/80–81
[4]तबरी जि/6, पेज/84–85

उस वक़्त हुसैन इब्ने अली[अ०स०] छत्तीस बरस की उम्र को पहुँच चुके थे। इस तूलानी दौर में हुसैन[अ०स०] ने अपने वालिदे बुज़ुर्गवार अली बिन अबी तालिब[अ०स०] से क्या कुछ देखा, क्या कुछ सुना और कितना असर लिया?

मुसल्लमुस सुबूत (पुख़्ता सुबूत) शीई मोअ्तक़ेदात (अक़ीदे) से क़त–ए–नज़र (हट कर) करने के बाद भी आम तारीख़ी हालात और ज़ाहरी असबाब के मातहत यह अहम तजरेबात और गराँ क़द्र तालीमात जो एक रूब्आ सदी (25 साल) से ज़्यादा तक हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] को हासिल होते रहे। एक इन्सान के बलन्दी–ए–अख़लाक़ व सिफ़ात और पुख़्ता कारी के क़तई ज़ामिन और ज़िम्मेदार हैं।

सातवाँ बाब

बनी उमय्या का एक़्तेदार और उनकी सियासी रविश

बनी उमय्या और इस तरह के अक्सर लोग जो दबदबा और शिकोह (शानो शौकत) से मुतअस्सिर होकर मुसलमान हुए थे उनकी नफ़्सीयाती कैफ़ियत वही थी जो हर दबी हुई और शिकस्त ख़ुर्दा क़ौम की होती है यानी नफ़रत, दुश्मनी, गुस्सा, जज़्ब–ए इन्तेक़ाम और उसके साथ साथ डर जिसके नतीजे में वह खुल कर अपनी अदावत का इज़हार तो न कर सकते थे मगर बराबर मौक़े के मुन्तज़िर थे कि किस तरह हम इस्लाम को नुक़सान पहुँचायें और अगर उसको ख़त्म न कर सकें तो कम अज़ कम उन ख़ुसूसियाते इम्तेयाज़ी को तब्दील कर दें जो उसने क़ायम किये हैं और जिनसे हमारे एक़्तेदार को सदमा पहुँचा है और इस्लाम के पर्दे में ही सही उन हुदूद व इम्तेयाज़ात को क़ायम कर दें जो इस्लाम के पहले अरब में क़ायम थे।उन्होंने उसकी तय्यारी तो रसूल[स0अ0] के ज़माने ही से शुरू कर दी थी मगर पैग़म्बरे इस्लाम[स0अ0] की ज़िन्दगी में उनके इस मक़्सद की तक्मील मुशकिल थी। पैग़म्बर ने उनके दिलों को इस्लाम की तरफ़ माएल करने के वास्ते हर तरह कोशिश की मगर उनके जज़्बात वही रहे और एक ज़रा इस्लाम पर कोई मुसीबत पड़ती तो उनके चेहरे ख़ुशी से खिल जाते और कभी जज़्बाते दिली ज़बान पर आ जाते थे। चुनानचे जंगे हुनैन में जब मादूदे चन्द के सिवा बाक़ी तमाम मुसलमान मैदाने जंग से रू–ब–फ़रार हुए तो अबू सुफ़ियान ने कहाः बस अब यह समन्दर तक भागते चले जायेंगे। और एक नौ मुस्लिम ने कहा। बस अब जादू ख़त्म हो गया। [1]

वफ़ाते रसूल[स0अ0] के बाद अबू सुफ़ियान ने इस्लाम पर हमला करने की पहली कोशिश वह की जिसका तज़केरा पहले हो चुका है कि हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के पास आ कर आपको तलवार उठाने पर आमादा

---

[1] तबरी जि/6, पेज/128

करना चाहा। यक़ीनन उस मौक़े पर अगर कोई जज़्बाती इन्सान होता तो अबू सुफ़ियान का यह हर्बा इतना कारी साबित होता कि इस्लाम की बुनियाद हिल जाती। मुसलमान उसी वक़्त ख़ाना जंगी में मुबतिला हो जाते और इस्लाम का शीराज़ा दरहम बरहम हो जाता मगर वह नूरे इलाही से देखने वाले नब्बाज़े फ़ितरत (इस्लाम की नब्ज़ पर क़ुदरती महारत रखने वाले) अली थे जिन्हों ने मुख़ातिब के मक़सद को ताड़ लिया और बावजूदेकि ख़िलाफ़त का मुस्तहक़ वह सिर्फ़ अपने को मसझते थे। फिर भी अबू सुफ़ियान को डाँट कर जवाब दिया कि तुम हमेशा इस्लाम और अहले इस्लाम के दुश्मन रहे हो।

जब उधर से मायूसी हुई तब अबू सुफ़ियान ने चोला बदला। उधर जा कर मिल गए और इस रविश में कामयाबी भी हो गई। इस तरह कि सन 13 हिजरी के आग़ाज़ में ख़लीफ़–ए–अव्वल अबू बकर ने मुल्के शाम पर फ़ौज कशी का बन्दोबस्त किया और सात हज़ार के लश्कर के साथ यज़ीद बिन अबी सुफ़ियान को रवाना किया गया।[1]

फ़ौज के दूसरे हिस्से पर अब उबैद–ए–जरीह को मुक़र्रर किया गया और यज़ीद बिन अबी सुफ़ियान के साथ सुहैल बिन अम्र और दीगर 87 शेयूख़े क़ुरैश (बुज़ुरगाने क़ुरैश) को मुशीरे कार बनाया गया और उसके बाद जब कुछ और फ़ौज जमा हुई तो उस पर मुआविया इब्ने अबू सुफ़ियान को अफ़सर मुक़र्रर करके यज़ीद के पास रवाना किया गया। [2]

मजमूअन यह सत्ताईस हज़ार की जमइयत हो गई। उन लोगों की इमदाद के लिये ख़ालिद बिन वलीद को हुक्म दिया गया कि वह अपनी फ़ौज लेकर इराक़ से पहुँच जायें। चुनानचे 9 हज़ार फ़ौज लेकर वह पहुँचे। इस तरह मुसलमानों का छत्तीस हज़ार का लश्कर हो गया। उसी वक़्त इन उमरा (सरदारों रईसों) में से हर एक को एक जगह की हुकूमत के लिये नामज़द भी कर दिया गया था। चुनानचे अबू उबैदा जर्राह को हमस, शरजील बिन हसना को शर्क़ उरदन, अम्र बिन आस और अल्क़मा बिन मुजज़्ज़र को फ़िलिस्तीन और यज़ीद बिन अबी सुफ़ियान को दमिश्क़ का हाकिम क़रार दिया गया। [3]

---

[1]तबरी जि/4, पेज/28

[2]तबरी जि/4, पेज/30

[3]तबरी जि/4, पेज/32

इस फ़ौज में खुद अबू सुफ़ियान फ़ौज के सरदारों का दिल बहलाने के लिये क़िस्सा गोई की ख़िदमत अन्जाम देते थे।[1]

अबू सुफ़ियान की औलाद में से यज़ीद और मुआविया के अलावा उनकी एक बहन जुवेरिया बिन्ते अबू सुफ़ियान भी अपने शौहर के साथ मौजूद थीं और उन्होंने जंग में शिरकत भी की।[2]

इस दौरान में ख़लीफ़–ए अव्वल का इन्तेक़ाल हो गया लेकिन मुल्के शाम में लड़ाईयाँ होती रहीं। यहाँ तक कि रजब सन 14 हिजरी में शहरे दमिश्क़ फ़तह हुआ और हस्बे क़रारदादे साबिक़ (पहले की तरह) यज़ीद बिन अबी सुफ़ियान वहाँ के हाकिम हुए।[3]उकसे बाद तदरीजन (एक के बाद एक) शाम के दूसरे शहर भी फ़तह हुए।

सन 18 हिजरी के ताऊन (Plage की बीमारी) में अबू उबैदा और यज़ीद बिन अबी सुफ़ियान दोनों का इन्तेक़ाल हो गया।[4]

अबू सुफ़ियान उस वक़्त मदीने में थे। उनको बेटे की इतनी फ़िक्र न थी जितनी कि शाम के मुल्क की। चुनानचे ख़लीफ़–ए–दोम (दूसरे) ने जब उन्हें बुला कर यज़ीद के मरने की इत्तेलाअ् दी तो उन्होंने फ़ौरन यह सवाल किया कि आपने उसकी जगह पर किसे मुक़र्रर किया? जब मालूम हुआ कि मुआविया को वहाँ का हाकिम बना दिया गया तो वह खुश हो गए।[5]

अब मुआविया इब्ने अबी सुफ़ियान को दमिश्क़ और उसके मुज़ाफ़ात (आस पास) और शरजील बिन हसना को शर्क़े उरदन (पुर्वो जार्डन) और उसके मुज़ाफ़्फ़ात की हुकूमत मिली। [6]उसके कुछ अरसे के बाद शर्क़े उरदन की हुकूमत भी मुआविया ही को मिल गई।[7]

उस दौर में अबू सुफ़ियान वग़ैरह ने खूब ही फ़ाएदे हासिल किये। यहाँ तक कि हिन्दा मादरे मुआविया को जिन्हें अबू सुफ़ियान ने अब तलाक़ दे दी थी मरकज़ी हुकूमत के बैतुल माल से चार हज़ार दिरहम की रक़म क़र्ज़ दी गई जिससे उन्होंने तिजारत शुरू की और नफ़ा–ए–ख़तीर (बहुत ज़्यादा

---

[1]तबरी जि/4, पेज/34
[2]तबरी जि/4, पेज/36
[3]तबरी जि/4, पेज/55–59
[4]तबरी जि/4, पेज/302
[5]तबरी जि/5, पेज/69
[6]तबरी जि/4, पेज/202
[7]तबरी जि/5, पेज/69

फ़ाएदा) हासिल किया और अबू सुफ़ियान दमिश्क़ गए तो उन्हें एक दफ़ा सौ अशरफ़ियाँ ब–तौरे परवरिश हासिल हुईं। [1]

हालाँकि उनके जज़्बात इस्लाम के मुतअल्लिक़ अब भी ख़ैर ख़्वाही के न थे। चुनानचे जंगे यरमूक़ में जबकि मुसलमानों का मुक़ाबला सल्तनते रोम के लश्कर से था और मारिका–ए–कारज़ार गर्म था उस वक़्त अबू सुफ़ियान दूर से खड़ा हुआ तमाशा देख रहा था। जब रोमियों को ग़ल्बा हासिल होते नज़र आता तो कहता था ''शाबाश ऐ मुल्के रोम के बहादुरो'' और जब मुसलमानों को ज़रा तक़वियत हासिल होती थी तो अबू सुफ़ियान की ज़बान से हसरतो यास के साथ यह शेअ्र निकलता था।

وبنو الاصفر الملوک ملوک الروم لم یبق منھم مذکور

मतलब यह था कि ''हाय अफ़सोस सलतनते रोम के पुर शौकत बादशाहों का नाम मिटते हुए नज़र आता है।'' अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर ने इस वाक़ेये का अपनी आँखों से मुशाहदा किया और अपने बाप ज़ुबैर से बयान किया। उस वक़्त कि जब मुसलमानों को कामिल तौर पर फ़तह हासिल हो चुकी थी। ज़ुबैर ने कहा। ख़ुदा उसे ग़ारत करे। यह निफ़ाक़ से बाज़ न आयेगा। क्या हम उसके लिये रोमियों से बेहतर नही हैं।[2]

उसके बाद सन 23 हिजरी में जब उस्मान ख़लीफ़ा हुए तो चूँकि वह ख़ानदाने बनी उमय्या के एक फ़र्द थे। अबू सुफ़ियान वग़ैरह समझे कि अब हमारी बन आई। दिली जज़्बात इतनी क़ुव्वत के साथ उबले कि ताब न ही।

अबू सुफ़ियान उनके पास आया। वह उस वक़्त बहुत बूढ़ा था और आँखों से माज़ूर हो चुका था। उसने कहा बड़ी मुद्दत के इन्तेज़ार के बाद अब यह ख़िलाफ़त तुम तक पहुँची है। अब उसको गेंद की तरह अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ गर्दिश दो और बनी उमय्या के ज़रिये से उसकी बुनियादों को मज़बूत करो। इसलिये कि जो कुछ है वह यही दुनयवी सलतनत। रह गया जन्नत व दोज़ख़ उसको मैं कुछ समझता नहीं। [3]

चुनानचे अबू सुफ़ायन के ख़ानदान वालों ने इस ख़िलाफ़त से ख़ूब फ़ायदा उठाया और कोई शक नहीं कि अबू सुफ़ियान ने अपने दुनयवी ख़्वाबों की ताबीर अपनी ज़िन्दगी में अपनी आँखों से देख ली। सन 31 हिजरी तक

---

[1]तबरी जि/5, पेज/30

[2]इस्तीआब

[3]इस्तीआब)

दमिश्क़ और शर्क़े उरदन के साथ साथ हमस, क़न्सरीन और फ़िलिस्तीन भी मुआविया के ज़ेरे नगीन हो गए और वह बिला शिरकते ग़ैरे पूरे मुल्क पर क़ाबिज़ क़रार दे दिये गए।[1]

इसी सन 31 हिजरी में अबू सुफ़ियान बिन हर्ब 88 बरस की उम्र में रहे सिपारे आलमे आख़िरत हुए। (यानी मौत हो गई।)[2]

मगर वह मशवरा जो उन्होंने ख़लीफ़–ए–सोम को दे दिया था वही उनके बाद उनकी जान जाने का बाइस हुआ। चुनानचे हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] ने अपनी सबसे पहली मुलाक़ात में जो इस्लाहे हालात के लिये ख़लीफ़–ए–सालिस से की थी उनसे साफ़ कह दिया था कि आप अपने क़राबत दारों के साथ ग़ैर मामूली मुराआतें (मेहरबानियाँ) बरत्ते हैं। उनकी ग़लतियों से चश्मपोशी करते हैं। इन्तेहा यह है कि मुआविया बग़ैर आपकी मर्ज़ी के जो चाहता है करता है और लोगों से कहता है कि उस्मान का हुक्म है। आपको इसका इल्म होता है और फिर भी आप मुआविया को इस पर कोई तम्बीह नहीं करते।[3]

अब हज़रत उस्मान के मुंह पर यह कहा जाने लगा था कि उनके बाद आलमे इस्लामी की ख़िलाफ़त मुआविया को मिलेगी और उसकी कोई रद न की जाती थी।[4]

ग़ालिबन इसी का नतीजा था कि जब उनका मुहासरा हुआ और उन्होंने मुआविया को मदद के लिये लिखा तो मुआविया ने अपनी जगह से कोई जुम्बिश नहीं की। बल्कि नतीजे के मुन्तज़िर हो गए।[5] क्योंकि वह यक़ीन रखते थे कि उनके बाद ख़िलाफ़त मुझे मिलेगी और अम्र बिन आस तो साफ़ साफ़ उस्मान के ख़िलाफ़ इशतेआल अंगेज़ी करते थे। और जब क़स्रे हुकूमत का मुहासरा हो गया तो वह फ़िलिस्तीन जाकर अपनी कोशिशों के इन्तेज़ार में बैठ गए और हर आने वाले से मदीने का हाल बड़ी बेताबी से दरयाफ़्त करते थे। यहाँ तक कि जब क़त्ले उस्मान की ख़बर मिली तो कहा, क्या कहना मेरा, यह तो मेरी ही कोशिश का नतीजा है।[6]

---

[1] तबरी जि/5, पेज/69

[2] तबरी जि/5, पेज/79

[3] .तबरी जि/5, पेज/97

[4] तबरी जि/5, पेज/100

[5] तबरी जि/5, पेज/115

[6] तबरी जि/5, पेज/108–109–111

उसके बाद यही अम्र बिन आस मुआविया के दस्ते रास्त बने। और बड़े मनासिब हासिल किये। उन्होंने खुद एक मौक़े पर मुआविया से साफ़ कह दिया कि अगर हक़्क़ानियत सामने होती तो हम तुम्हारा साथ ही क्यों देते। अली का साथ न देते जिनके इस्लामी ख़िदमात, फ़ज़ीलत और रसूल[स0अ0] से क़राबत सबको मालूम हैं। मगर हमारे पेशे नज़र तो दुनिया है। इसी लिये तुम्हारा साथ दे रहे हैं।[1]

आले अबू सुफ़ियान ने शाम में हुकूमत क़ायम करने के बाद इब्तेदा ही से अपनी सियासी रविश शहाना रखी। कोई सय्याह अगर ममालिके इस्लामिया का सफ़र करके इस्लामी सादगी और मसावात की मिसालें देख चुका होता और फिर शाम जाकर वहाँ के तुज़्को एहतेशाम (शानो शौकत) का मुशाहदा करता तो वह हैरत व इस्तेजाब (तअज्जुब) की एक दुनिया में चक्कर लगाने लगता। वह सादगी जो इस्लामी ज़िन्दगी का तुर्रा–ए इम्तेयाज़ (ख़ुसूसियत) थी वहाँ नामो निशान को भी न थी। बल्कि उसके बजाये मुलूकाना अज़मतो जलालत के मुज़ाहरात पूरी ताक़त के साथ नज़र आते थे। देखने वालों ने देखा और पैग़म्बरे इस्लाम[स0अ0] के जारी किये हुए तर्ज़े ज़िन्दगी से मानूस बाज़ सहाबा को अन्देशा हुआ कि इस तरह इस्लाम के उसूल, क़द्रो क़ीमत और मेयारे अज़मत जो उसने बड़ी कोशिश से दुनयवी जाह व शौकत की क़द्रो क़ीमत को मिटा कर क़ायम किया था फ़ना हो जायेगा। चुनाँनचे मुआविया ने पानी पीने के प्याले सोने के ज़्यादा वज़न पर फ़रोख़्त किये तो अबू दरदा सहाबी ने मना किया और कहा, हमने रसूल अल्लाह[स0अ0] से सुना है कि ज़्यादा वज़न पर ख़रीद मना है। मुआविया ने कहा, मेरे नज़दीक तो इसमें कोई ख़राबी नहीं है। यह सुनकर अबू दरदा ने कहाः क्या ख़ूब! मैं तो रसूल अल्लाह[स0अ0] का हुक्म बयान कर रहा हूँ और तुम उस पर अपनी राय ज़ाहिर कर रहे हो। मैं ऐसे मक़ाम पर जहाँ तुम हो नहीं रहूँगा।

एबादा बिन सामित (मशहूर सहाबी) के साथ भी सोने की बैअ् व शरा (ख़रीदो फ़रोख़्त) के मुआमले में इसी तरह का क़िस्सा हुआ था और मुआविया ने उनको भी यही जवाब दिया था कि हम इसको किसी तरह बुरा नहीं समझते। एबादा ने कहा मैं तो रसूले ख़ुदा का हुक्म बयान करता हूँ और तुम

---

[1](1) (1. तबरी जि/5, पेज/235

अपनी राय बयान करते हो। ख़ुदा मुझे इस जगह से निकाले मैं इस सरज़मीन पर हरगिज़ न रहूँगा जिस पर तुम हाकिम हो।[1]

इससे मालूम होता है कि एक कशमकश दमिश्क़ की सियासत और परस्ताराने शरीअत में उस वक़्त से शुरू हो गई थी।

इसकी एक और मिसाल मुलाहेज़ा हो। अब्दुर रहमान बिन सहल अन्सारी तीसरी ख़िलाफ़त के दौर में एक जेहाद के सिलसिले में शाम की तरफ़ गए तो उन्होंने देखा कि ऊँटों पर शराब की मश्कें भरी हुई जा रही हैं। वह आगे बढ़े और उन्होंने अपने नैज़े से उन मश्कों को चाक कर दिया। ग़ुलामों ने मज़ाहमत (रोकने की कोशिश) की और यह ख़बर मुआविया को पहुंचाई। उन्होंने कहा छोड़ो उस बूढ़े को। उसकी अक़्ल जाती रही है। अब्दुर रहमान ने कहा मेरी अक़्ल नहीं गई है मगर रसूल अल्लाह[स0अ0] ने हमको ममानेअत (मना) फ़रमाई है कि शराब हमारे शिकमों (पेटों) और हमारे ज़ुरूफ़ (बर्तनों) में दाख़िल न हो।[2]

इन्हीं बातों का नतीजा था कि इन सिन रसीदा अफ़राद को जो सहाब–ए–रसूल में महसूब (शुमार) होते थे मुआविया से तनफ़्फ़ुर (नफ़रत) पैदा हो गया था। चुनाने एक दफ़ा ऐसा हुआ कि मुआविया अहले शाम की एक जमाअत के साथ जबकि वह मक्क–ए–मुअज़्ज़ेमा हज को गए हुए थे सुबह सवेरे सअ्द बिन अबी विक़ास की तरफ़ से गुज़रे। उन्हें सलाम किया मगर सअ्द ने जवाब नहीं दिया। मुआविया ने अपनी ख़िफ़्फ़त मिटाने को अपने साथ वालों से कहा कि यह सअ्द हैं। हज़रत रसूल[स0अ0] के सहाबी। उनका उसूल है कि सूरज तालेअ् (निकलने तक) होने तक किसी आदमी से बात नहीं करते। सअ्द को यह ख़बर मालूम हुई। कहा इसकी कोई असलियत नहीं मगर ब–ख़ुदा मैं ने इस से बात करना पसन्द न की।[3]

उसके बाद सलतनते दमिश्क़ जितनी ताक़तवर होती गई उतना ही उसने इस्लामी तमद्दुन (तहज़ीब) के बजाये दुनिया–दाराना तमद्दुन को फ़रोग़ दिया। जिसका नतीजा यह था कि इस्लामी क़द्रो क़ीमत के मेयार और वह इम्तेयाज़ात ख़त्म हो गए जो इस्लाम के सादा और ग़ुरबा परवर उसूल ने क़ायम किये थे। उसका एक नमूना है सन 30 हिजरी में हज़रत अबूज़र ग़फ़्फ़ारी का जिला वतन किया जाना। उनका एक क़ुसूर यह था कि वह उस

---

[1]सुनन इब्ने माजा जि/1, पेज/7

[2]एसाबा जि/2, पेज/401, असदुल ग़ाबा जि/3, पेज/299

[3] अल वोज़ानवल किताब पेज/26

सरमाया परस्ती की मज़म्मत करते थे जो उन्हें उस वक़्त इस्लामी मुल्क में नज़र आ रही थी। वह ग़रीब मुसलमानों को भूखा मरते देखते तो दमिश्क़ की गलियों में वह आयतें क़ुरआन की पढ़ते फिरते थे जो सरमाया परस्ती के ख़िलाफ़ हैं। वह कहते थे कि जो लोग सोना चाँदी ख़ज़ानों में जमा कर रहे हैं और उन्हें राहे ख़ुदा में सर्फ़ नहीं करते उन्हें मुन्तज़िर रहना चाहिये उस वक़्त का कि जब आतिशे जहन्नम से उनकी पेशानियाँ, उनके पहलू और उनकी पुश्तें दाग़ी जायेंगी।[1]

यह भी था कि वह हुकूमत की ख़ुशामद नहीं करते थे बल्कि मौक़े पर सच्ची बात कह गुज़रते थे। चुनानचे जब मुआविया ने क़स्रे ख़िज़रा की तामीर की तो अबूज़र से पूछा, क्यों इसे आप कैसा समझते हैं? हज़रत अबूज़र ने फ़रमाया। अगर तुम ने इसे ख़ुदा के माल से बनाया है तो तुमने ख़यानत की और अगर ख़ुद अपने ज़ाती माल से बनाया है तो इसराफ़ किया।[2]

मिज़ाजे क़ैसरियत इसका मुतहम्मिल (बरदाश्त) कब हो सकता था? नतीजा यह हुआ कि उनकी शिकायत दारूस सलतनत (राजधानी) मदीने में भेजी गई और वहाँ से हिदायत हुई कि अबूज़र को मदीने रवाना कर दो।[3]

अबूज़र शाम से मदीना भेज दिये गए और यहाँ पहुंच कर बजाए इसके कि मुआविया को कुछ तम्बीह की जाती इस जलीलुल क़द्र सहाबी को मदीने से निकलने का हुक्म हो गया। मुसाफ़िरत और बेसरो सामानी, आस पास कोई हमदर्द कैसा, शनासा तक नहीं, आख़िर यह शदायद (तकलीफ़ें) न उठ सके। सन 33 हिजरी में दाई–ए–अजल को लब्बैक कहा।

जब अबूज़र की हालत ख़राब हुई, पास सिर्फ़ बीवी और एक लड़की थी। अबूज़र ने उनको वसीयत की कि मरने के बाद तुम दोनों मिल कर मुझे ग़ुस्ल देना, कफ़न पहनाना और फिर लाश को ले जाकर क़ाफ़ेले की गुज़रगाह पर लिटा देना और जो क़ाफ़ेला उधर से गुज़रे उससे कहना यह रसूले ख़ुदा का सहाबी अबूज़र है, उसको दफ़्न करा दो। चुनानचे जब उनका इन्तेक़ाल हो गया तो ग़मज़दा माँ बेटी ने उसी हिदायत पर अमल किया। लाश के साथ सरे राह आकर बैठ गईं। इत्तेफ़ाक़न अब्दुल्लाह बिन मसऊद अहले इराक़ के एक क़ाफ़ेले के हमराह जो मक्क–ए–मुअज़्ज़ेमा हज के लिए जा रहा था उधर से

---

[1]तबरी जि/5, पेज/66

[2]किताबुल बिलदान पेज/156

[3]तबरी जि/5, पेज/66

गुज़रे। रोती हुई ख़ातून और बच्ची को देखकर ठहर गए और दरयाफ़्त हाल किया। मुसीबत ज़दों ने कहाः "लोगो! रसूल के मज़लूम सहाबी अबूज़र ने गुरबत के आलम में वफ़ात पाई। उन्हीं का लाशा है जो बेगोरो कफ़न पड़ा है। इब्ने मसऊद उनके साथी चींख़ें मार मार कर रोने लगे और उन्होंने अबूज़र को दफ़्न किया।

यह हुकूमते वक़्त की सियासत मुलूकाना के ख़िलाफ़ पहली क़ुर्बानी थी, जो रसूल के मुक़द्दस सहाबी हज़रत अबूज़र ग़फ़्फ़ारी ने पेश की।

याद रखने की बात है कि यह अबूज़र ग़फ़्फ़ारी और अब्दुर्रहमान बिन सहल अन्सारी अपनी फ़र्ज़ शनासी की बिना पर इस्लाम के क़ायम करदा हुदूद व इम्तेयाज़ात में बड़ी अज़मत के मुस्तहक़ थे मगर मौजूदा सियासत के हुदूद में वह बिल्कुल कम हक़ीक़त और बे वक़अत हो गए थे। इसके मानी यह थे कि इस्लामी इन्क़ेलाब की जगह क़दामत परस्ताना (बादशाही) इन्क़ेलाब फ़तह पाने लगा और इस्लाम के मुक़र्रर करदा हुदूद के बजाये दूसरे हुदूद व इम्तेयाज़ात क़ायम हो गए।

आठवाँ बाब

पैग़म्बरे ख़ुदा[स०अ०] के बाद इस्लामी मफ़ाद के मुहाफ़िज़ीन, उनमें और मुख़ालिफ़ क़ूवतों में तसादुम और उसके नताएज।

यह एक नुमायाँ हक़ीक़त है कि पैग़म्बरे इस्लाम के बाद पैग़म्बर के हक़ीक़ी विरसादार जो उनके अहलेबैत थे, इस्लामी इन्क़ेलाब और उसके खुसूसियात व इम्तेयाज़ात के मुहाफ़िज़ थे। दुनिया में आलीशान महेल तामीर हो चुके थे लेकिन उनका वही छोटा सा मकान था जिसमें उन्हें पैग़म्बर ने रख दिया था। दुनिया के महल्लात में रेशमी पर्दे दरवाज़ों पर हो गए थे मगर उनके दरवाज़े पर वही फटा हुआ पर्दा अब भी नज़र आता था। दुनिया के जिस्म पर हरीर व दीबा (रेशमी लिबास) नज़र आता था लेकिन यह खद्दर का मलबूस अब भी ज़ेबतन करते थे। दुनिया मफ़तूहा ममालिक (जीते हुए मुल्क) की दौलत से चैन करती और ऐश व इशरत में ज़िन्दगी गुज़ारती थी मगर यह अब भी अपने हाथ की मेहनत से रोज़ी कमाना और माले हलाल की तलाश करना अपना फ़र्ज़ समझते थे। और जो दौलत भी मिलती उसे ग़रीबों, मिसकीनों, बेवाओं और यतीमों की नज़्र कर दते। और इस बिना पर उनमें और उसके मुतवाज़ी (मुक़ाबले) दूसरे इन्क़ेलाब के अलमबरदारों में कशमकश लाज़मी थी। हज़रत अली[अ०स०] से मुआविया का तसादुम जिसके बहुत से वाक़ेआत का तज़किरा पहले हो चुका है। इसी कशमकश का नतीजा था।

इसमें कोई शक नहीं कि इस वक़्त इसके अलावा जब भी मुक़ाबला पड़ा है दुनिया में आले रसूल[स०अ०] के साथी कम निकले और यह सिलसिला हमेशा जारी रहा। इसके वजूह इक़्तेसादी (माली) भी हैं और सियासी भी। नफ़सियाती भी और नस्ली भी। यह पहले मालूम हो चुका है कि इस्लाम क़दीम इम्तेयाज़ात को मिटा कर मसावात (बराबरी) का पैग़ाम लेकर आया था और उसने इम्तेयाज़ सिर्फ़ फ़राएज़े इन्सानी की ज़्यादा से ज़्यादा बजा आवरी (अमल) की बिना पर क़रार दिया था। मुशतरिका दौलत (मिल्लत की दौलत) जो माले

ग़नीमत से हासिल होती है उसकी इस तरह तक़सीम कि जिसमें जानिबदारी (यकतरफ़ा) और अदमे मसावात (ना इन्साफ़ी) पैदा हो जाये इस्लाम के उसूल के ख़िलाफ़ थी और इस्लाम के सच्चे मुहाफ़िज़ीन उसके क़रीब न जा सकते थे। इसलिये आले रसूल[स0अ0] के लिये यह नामुमकिन था कि वह ख़ज़ाने में रूपये जमा करके दौलतमन्द बनें और खुसूसियत से उन लोगों को ज़र व जवाहर से माला माल करें जिनसे उनको अपने एक़तेदार के क़वी बनाने में फ़ाएदे की उम्मीद हो। यहाँ तो यह आलम था कि हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] जो कुछ बैतुल माल में आता है रोज़ का रोज़ तक़्सीम कर देते हैं और फिर बैतुल माल में झाड़ू दिलवा देते हैं और वहीं पर नमाज़ पढ़ते हैं कि वह ज़मीन ख़ुदा के यहाँ गवाही दे कि अली[अ0स0] ने मुसलमानों के माल के पहुँचाने में मुस्तहक़ लोगों तक दरेग़ नहीं किया।[1]

इसफ़हान से माल आता है। उस वक़्त इत्तेफ़ाक़ से सात आदमी साहबे इस्तेहक़ाक़ (ज़रूरत मन्द) मौजूद हैं। आपने तमाम माल के सात बराबर हिस्से कर दिये और एक रोटी भी उस माल में नज़र आ गई तो उसके भी सात टुकड़े करके हर हिस्से में एक टुकड़ा रख दिया। मुमकिन है ख़याल किया जाये कि ऐसी छोटी छोटी बातों का आदमी को लिहाज़ नहीं करना चाहिये और उस रोटी को किसी एक हिस्से में शामिल कर दिया जाता तो ब–ज़ाहिर शरीअत के मुताबिक़ कोई जुर्म न था मगर याद रखना चाहिये कि ज़हनियते अवाम की तशकील इन ही छोटी छोटी बातों से होती है। हज़रत अली[अ0स0] तो अवाम की ज़हनियत उसी मसावात के साँचे में ढालने का काम अन्जाम दे रहे थे जिसे रसूल[स0अ0] ने सिखाया था और मुसलमान रसूल[स0अ0] की रेहलत के बाद उसे भुला बैठे थे।

उसके बर ख़िलाफ़ अमीरे शाम के यहाँ इन बातों की कोई परवा न थी। वहाँ अपने एक़तेदार के क़ायम रखने के लिये ख़ज़ाने का मुँह खुला था और जिसको मतलब का समझा जाता था उसे माला माल कर दिया जाता था। फिर लोग जो इम्तेयाज़ात के आदी हो चुके थे इनका साथ देते या उनका।?

दुनिया की तो यह हालत है कि चाहे मिले मिलाये कुछ नहीं लेकिन अगर मालूम हो कि किसी के पास रूपया बहुत है और ख़ज़ाने में दौलत जमा है तो यही उसका असर क़ायम होने के लिये काफ़ी होता है। और इसी तरह उसकी साख क़ायम हो जाती है। यहाँ हज़रत अली[अ0स0] की यह कैफ़ियत कि मिम्बर

---

[1]इस्तीआब जि / 2, पेज / 478

पर अपनी तलवार के फ़रोख़्त का ऐलान करते हैं और बतलाते हैं कि मुझे एक लिबास की ज़रूरत है जो बग़ैर इस तलवार के फ़रोख़्त किये हुए मुमकिन नहीं है। अब्दुर रज़्ज़ाक मुहद्दिस ने इस रिवायत को नक़्ल करके लिखा है कि यह उस हालत में था कि जब सिवा शाम के तमाम आलमे इस्लाम की सलतनत आपके क़ब्ज़े में थी।[1] हर एक हरीस शख़्स समझता था कि जिसके पास ख़ुद अपने लिबास के लिये रूपया न हो उसके पास नाहक़ किसी दूसरे को देने के लिये रूपया कहाँ हो सकता है।

दुनिया ज़ाहरी तमतिराक़ (चमक दमक) और आओ भगत से भी मरऊब होती है मगर यहाँ यह हालत थी कि जनाबे अमीर[अ0स0] अपनी हुकूमत के ज़माने में कभी इसको आर न समझते थे कि मीसमे तम्मार की दुकान पर ख़रीद व फ़रोख़्त करें। बाज़ार में क़म्बर को साथ ले कर गए और दो पैराहन (लिबास) ख़रीद किये। एक सात दिरहम का और एक पाँच दिरहम का। सात दिरहम का पैराहन क़म्बर को दिया और पाँच दिरहम का ख़ुद ज़ेबे बदन किया। क़म्बर ने कहा यह ज़्यादा क़ीमत वाला आप लें। कोई और होता और वह ऐसा करता तो शायद जवाब देता कि मैं मसावात के फैलाने और ग़ुलामों का दर्जा बलन्द करने के लिये ऐसा करता हूँ। अली[अ0स0] का मक़सद यक़ीनन ऐसा ही था लेकिन अगर यह जवाब देते तो इसमें ख़ुद अदमे मसावात (ना इन्साफ़ी) का पहलू मुज़मर (छुपा) था। सुनने वाले को एहसासे ग़ुलामी ज़रूर पैदा हो जाता इसलिये आपने ऐसा जवाब दिया जो अपने बच्चों को दिया जाता है। फ़रमाया क़म्बर! तुम नौ उम्र हो, तुम्हें वही पैराहन अच्छा मालूम होता है। मेरा क्या, मैं यही पहन लूँगा। इन बातों की क़द्र अहले दुनिया कहाँ कर सकते थे और उनके दिल पर इन बातों का असर कहाँ क़ायम हो सकता था।

इसके अलावा इस्लाम ने उन तमाम मुक़तदर अशख़ास (बड़े लोगों) और जमाअतों के इम्तेयाज़ात को ख़त्म किया था जो उसके पहले बर सरे एक़तेदार थीं। वह मुक़तदर जमाअतें (दौलत मन्द) आपस में कितनी ही रक़ीबाना चश्मक (दुश्मनी) रखती हों लेकिन इस्लाम से ज़ख़्म ख़ुर्दा (हार मानी हुई) वह सब ही थीं। इसलिये इस्लाम के हक़ीक़ी मक़सद और क़ायम कर्दा इम्तेयाज़ के मिटाने में वह सब हम आहन्ग (एक आवाज़) बन सकती थीं क्योंकि उसके मिटाने में उनमें से हर एक के एक़तेदारे रफ़्ता (हुकूमत में) की वापसी मुन्हसिर थी और

---

[1]इस्तीआब जि/2, पेज/478

फिर साबिक़ की शिकस्तों का असर सब ही पर था और सब ही में जज़्बा–ए–इन्तेक़ाम पाया जाता था। फिर यह भी कि इस्लाम ने अपने उसूले मसावात की तलक़ीन (नसीहत) से खुद क़ौमे अरब का ब–हैसियते क़ौम भी इम्तेयाज़े ख़ास ख़त्म किया था। और परदेसिसों के हुकूक़ पर बड़ा ज़ोर दे दिया था और ग़ैर अरबी अनासिर (लोग) जो आते थे उन्हें अरबों के बराबर हुकूक़ दिये जाते थे। यह बात तमाम अरब ही को खलने की थी। बनी उमय्या ने अपने दौर में अरबी तअस्सुब (हसद) का मुज़ाहरा करके अरबी क़ौमियत के इम्तेयाज़ की हिमायत की और मवाली और आजाम (अजम की जमा ईरानी नस्ल) की कोर (ज़ोर को) दबाने की कोशिश की। चुनानचे इस दौर के इम्तेयाज़ी खुसूसियात में से यह है कि अरब और ग़ैरे अरब का सवाल पैदा हो गया। बनी उमय्या की इस सियासी रविश का कुदरतन यह नतीजा होना चाहिये था कि अरब ज़्यादा तर बनी उमय्या के तरफ़दार हो जाते। बनी हाशिम इस्लामी उसूल के हामी होने की वजह से अरबी क़ौमियत के इस जज़्बे की तरफ़दारी नहीं कर सकते थे। इसलिये उनका अरब की जानिब दारी का पहलू कमज़ोर था। इसकी तस्दीक़ इससे हो सकेगी कि उसके बाद जब बनी उमय्या के ख़िलाफ़ हाशेमियैन यानी बनी अब्बास वग़ैरह ने अलम बलन्द किया तो हाशिमयैन का साथ देने वाले मवाली और अजम ज़्यादा थे।

बनी हाशिम के क़दीमी रिवायात और सयादत (बुजुर्गी) व शराफ़त के इम्तेयाज़ की वजह से अरब ख़ानदानों को उनसे पहले ही हसद व एनाद था। इसलिये नस्ली तअस्सुबात भी मुख़ालिफ़त पर आमादा करते थे और अरब में क़बाइली निज़ाम बड़ी कुव्वत के साथ क़ायम था। हर क़बीले के सरगरोह (सरदार) और बड़े अफ़राद अपने जज़्बात की बिना पर जिस रास्ते पर जाते थे अवाम और पस्त अफ़राद अहले क़बीला भी उन ही की पैरवी करते थे क्योंकि अवाम का कोई नज़रिया नहीं हुआ करता। वह लीडरों के पाबन्द होते हैं और लीडर ज़्यादातर जज़्बात के शिकन्जे में क़ैद होते हैं। इन्हीं बातों का नतीजा था कि आले रसूल के मुक़ाबले में उनके मुख़लेफ़ीन की तादाद ज़्यादा रहती थी।

नवाँ बाब

हसने मुजतबा[अ०स०] की सुल्ह और उसके नताएज
सन40 हिजरी (से) सन 60 हिजरी

इन्तेक़ाल फ़रमाने से पहले हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] ने एक तहरीरी वसीयत नामा इमाम हसन[अ0स0] के नाम लिखा और उस पर इमाम हुसैन[अ0स0] और मोहम्मद बिन हन्फ़िया और अपनी दीगर औलाद, अइज़्ज़ा और मख़सूस असहाब की गवाहियाँ लिखवाईं और वसीयत नामा हसने मुजतबा[अ0स0] को सिपुर्द करते हुए फ़रमाया कि दुनिया से रूख़्सत होते वक़्त तुम इसे हुसैन[अ0स0] के सिपुर्द कर देना।[1] इसके अलावा एक वसीयत आपने हसन और हुसैन[अ0स0] दोनों भाईयों से मुशतरक तौर पर फ़रमाई वह यह थी कि ''मैं तुमको फ़र्ज़ शनासी की वसीयत करता हूँ और यह कि तुम कभी दुनिया के तलबगार न होना, चाहे वह दुनिया ख़ुद तुम्हारी तलबगार हो, और किसी दुनयवी नुक़सान पर कभी रंजीदा न होना और हमेशा हक़ के लिये ज़बान खोलना और सवाब के लिये काम करना और ज़ालिम के मद्दे मुक़ाबिल और मज़लूम के मददगार रहना।[2] मैं तुमको अपनी तमाम औलाद और अइज़्ज़ा और उन लोगों को जिन तक मेरा पैग़ाम पहुँचे वसीयत करता हूँ कि हमेशा ख़ुदा से डरते रहना और अपने शीराज़े को मुन्तशिर न होने देना और अपने दरमियान झगड़ों को सुलह व आश्ती के साथ तय करते रहना और देखो यतीमों का ख़याल रखना, उनकी ख़बर गीरी करते रहना और पड़ोसियों का ख़याल रखना इसलिये कि रसूल अल्लाह ने उनके बारे में वसीयत की थी, और देखो क़ुरआन का ख़याल रखना, तुम से बढ़कर कोई क़ुरआन पर अमल करने वाला न हो, और नमाज़ का ख़याल रखना, यह तुम्हारे दीन का सुतून है। और अल्लाह के घर (ख़ाना–ए काबा) का ख़याल रखना। ज़िन्दगी भर उसको कभी

---

[1]काफ़ी जि/1, पेज/184
[2]तबरी

एकेला न छोड़ना, और देखो ख़ुदा की राह में अपने जान व माल और ज़बान से जेहाद करते रहना। और आपस में सिल–ए–रहेमी (नर्म दिली) रखना, और एक दूसरे के साथ फ़य्याज़ी के साथ पेश आना और देखो कभी ख़ल्क़े ख़ुदा को नेक आमाल की तरग़ीब देने और बद आमालियों से रोकने से बाज़ न आना ताकि तुम पर बुरे लोगों का एक़तेदार क़ायम न होने पाये।[1] और देखो मेरे बाद ऐसा न होने पाये कि बनी हाशिम मुसलमानों में मेरे ख़ून के बहाने से ख़ूँरेज़ी शुरू कर दें। ज़्यादा से ज़्यादा मेरे ख़ून के क़िसास (बदला) के तौर पर बस मेरे क़ातिल को क़त्ल किया जा कसता है। और वह भी इस तरह कि उसको एक ज़रबत की पादाश (जुर्म) में बस एक ही ज़रबत लगाई जाये और उसको हरगिज़ मुसला (आँख, कान, वग़ैरह को अलग करना) न किया जाये। यानी आज़ा व जवारेह (जिस्म के हिस्सों को काटा न जाए) क़ता न किये जायें। इसलिए कि रसूल अल्लाह[स0अ0] फ़रमा गए हैं कि ख़बरदार किसी को मुसला न करो चाहे वह काटने वाला कुत्ता ही क्यों न हो।[2]

नफ़सियात के वाक़िफ़कार ख़ूब जानते हैं कि कुछ वह हालात होते हैं जिनमें बात पत्थर की लकीर की तरह सुनने वाले के दिल पर जम जाती है। यह सूरत कि एक बुज़ुर्ग मर्तबा वाजिबुल इताअत बाप बिस्तरे बीमारी पर है। उसकी रेहलत का हंगाम क़रीब है और उस वक़्त वह अपने तमाम अहले बैत[अ0स0] में से दो एक सईद फ़रज़न्दों को ख़ुसूसियत के साथ बुलाकर कोई ख़ास बात कहता है। यक़ीनन उस वक़्त की कही हुई बात उन फ़रज़न्दों के दिल व दिमाग़ पर ऐसा असर करेगी जैसा किसी दूसरे सब्रो सुकून के लमहों की बात असर नहीं कर सकती।

आम दुनिया से जाने वाले बाप उस वक़्त अपनी औलाद से वसीयत अपने घर के निजी मुआमिलात के मुतअल्लिक़ करते हैं मगर आले मोहम्मद[स0अ0] तो दीन व शरीयत, किताब और सुन्नत को अपने ज़ातियात में दाख़िल समझते थे। उन्होंने उस वक़्त पर जो वसीयतें की हैं वह सरासर मफ़ादे आम्मा, (आम लोगों के फ़ाएदे) मफ़ादे शरीयत और अहकामे इलाही से मुतअल्लिक़ थीं।

यूँ तो यह फ़रज़न्द वह थे जो ख़ुद सही और मुनासिब ही काम करते मगर हज़रत अली इब्ने अबी तालिब[अ0स0] को तो ब–ज़ाहिर असबाब एक मुरब्बी

---

[1]नहजुल बलाग़ा जि/2, पेज/78.79, तबरी और अबुल फर्ज असफ़हानी ने उनमें से अक्सर फ़िक़रात को इमाम हसनअ0स0 के नाम के तहरीरी वसीयत नामे में दर्ज किया है। मुक़ातिलुत तालिबीन पेज/25.27

[2]तबरी जि/6, पेज/86, नहजुल बलाग़ा जि/2, पेज/80

(शफ़ीक़) बाप की तरह अपना फ़र्ज़ अन्जाम देना था। जिसका नतीजा यह होना चाहिये कि उन वसीयतों का हर हर लफ़्ज़ सआदत शेयार (लाएक़ मन्द) बेटों के दिल पर नक़्श हो जाये। यह अलफ़ाज़ उनके कानों में हमेशा गूंजते रहें कि फ़र्ज़ शनासी को अपना उसूल रखना। दुनयवी जाह व इक़्तेदार के कभी तालिब न होना। दुनयवी नुक़सान की कभी परवाह न करना। ज़बान पर हक़ को जारी रखना। ज़ालिम के मद्दे मुक़ाबिल रहना और मज़लूमों के मददगार रहना। चुनाँनचे इन तमाम तालीमात को दोनों फ़रज़न्दों ने अपने अमल से मुजस्सम शक्ल में पेश किया और आपस में हमआहंगी को भी हर सूरत में बरक़रार रखा।

यह अलफ़ाज़ कि ''ख़ुदा की राह में अपने जान व माल और ज़बान से जिहाद करते रहना अम्रबिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर (अच्छी बातों की हिदायत और बुरी बातों से ममानियत) को कभी तर्क न करना। ऐसा न हो कि तुम पर बुरे लोगों का इक़्तेदार क़ायम हो जाये।''

ख़ुसूसियत के साथ उनको अमली जामा पहनाने का जिस तरह हुसैन[अ0स0] को मौक़ा मिला वह दुनिया की तारीख़ में यादगार है।

हज़रत अली इब्ने अबी तालिब[अ0स0] की वफ़ात के बाद तमाम मुसलमानों ने मुत्तफ़िक़ा तौर पर आपके बड़े फ़रज़न्द इमाम हसन[अ0स0] की ख़िलाफ़त तस्लीम की। आप पर अपने वालिदे बुज़ुर्गवार की शहादत का बड़ा असर था। आपने इस मौक़े पर जो ख़ुत्बा इरशाद फ़रमाया उसमें हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के फ़ज़ाएल व मनाक़िब तफ़्सील के साथ बयान करते हुए ख़ास तौर पर आपकी सीरत और तर्के दुनिया का तज़किरा किया और उस ज़िक्र में गिरया आपके गुलूगीर हुआ और तमाम हाज़ेरीन भी आपके साथ बे–इख़्तियार रोने लगे। फिर आपने अपने ज़ाती और ख़ानदानी फ़ज़ाएल बयान किये। उसके बाद अब्दुल्लाह बिन अब्बास ने खड़े होकर लोगों को आपकी बैयत करने की तरफ़ दावत दी। और सबने ब–रज़ा व रग़बत आपकी बैयत की। यह जुमा के दिन 21/माहे रमज़ान सन 40 हिजरी का वाक़ेया है।[1] आपने उसी वक़्त लोगों से साफ़ साफ़ यह क़ौल व क़रार ले लिया था कि अगर मैं सुलह करूँ तो तुमको सुलह करना होगी और अगर मैं जंग करूँ तो तुम्हें मेरे साथ जंग करना होगी। उसके बाद आप मुल्क के बन्दोबस्त की तरफ़ मुतवज्जेह हुए। अतराफ़

---

[1] इरशाद पेज/192

में उम्माल (हुकूमत का काम संभालने वाले) मुक़र्रर किये। हुक्काम मुऐय्यन किये और मुक़द्दमात के फ़ैसले करने लगे।

अभी मुल्क हज़रत अली[अ0स0] के ग़म में सोगवार ही था और हज़रत इमाम हसन[अ0स0] पूरे तौर पर इन्तेज़ामात भी न कर चुके थे कि मुआविया की तरफ़ से आपकी ममलिकत में दरअन्दाज़ी शुरू हो गई और उनके ख़ुफ़िया कारकुन (जासूस) रीशा दवानियाँ (मक्कारियाँ) करने लगे। चुनाँनचे एक शख़्स क़बील–ए–हुमैर का कूफ़े में और एक शख़्स बनी क़ैन में से बसरा में पकड़ा गया। यह दोनों इस मक़सद से आये थे कि यहाँ के हालात से दमिश्क़ में इत्तेला दें और फ़िज़ा को इमाम हसन[अ0स0] के ख़िलाफ़ ना–खुशगवार बनायें। ग़नीमत है कि इसका इन्केशाफ़ (पर्दाफ़ाश) हो गया। हमीर वाला आदमी कूफ़े में एक क़साई के घर से और क़ैन वाला आदमी बसरा में बनी सुलैम के यहाँ से गिरफ़तार किया गया और दोनों को जुर्म की सज़ा दी गई। इस वाक़ेये के बाद हज़रत इमाम हसन[अ0स0] ने मुआविया को एक ख़त लिखा जिसका मज़मून यह था कि ''तुम अपनी दरअन्दाज़ियों से बाज़ नहीं आते हो। तुमने लोग भेजे हैं कि मेरे मुल्क में बग़ावत पैदा करायें और अपने जासूस यहाँ फैला दिये हैं। मालूम होता है कि तुम जंग के ख़्वाहिशमन्द हो। ऐसा है तो फिर तैयार रहो। यह मन्ज़िल कुछ दूर नहीं है नीज़ मुझको ख़बर मालूम हुई है कि तुम ने मेरे बाप की वफ़ात पर तान व तशनीअ् के अलफ़ाज़ कहे। यह हरगिज़ किसी ज़ीहोश (अक़्लमंद) आदमी का काम नहीं है। मौत सबके लिए है। आज हमें इस हादिसे से दो चार होना पड़ा तो कल तुम्हें होगा। और हक़ीक़त यह है कि हम अपने मरने वाले को मरने वाला समझते नहीं। वह तो ऐसा है जैसे कोई एक मकान से मुन्तक़िल होकर अपने दूसरे मकान में जाये और आराम की नींद सोए।'' इस ख़त के बाद मुआविया और इमाम हसन[अ0स0] के दरमियान बहुत से खुतूत की रद्दो बदल (अदला बदली) हुई।[1] बहरहाल इन वाक़ेआत से यह अम्र बिल्कुल ज़ाहिर हो गया कि अमीरे शाम मुआविया को जनाबे अमीर[अ0स0] की ज़ात से कोई वक़्ती अदावत न थी वरना वह उनकी शहादत के साथ ख़त्म हो जाती बल्कि यह आले रसूल[स0अ0] से एक मुस्तक़िल दुश्मनी है जिसके नताएज आइन्दा देखिये क्या हों। यह भी इस वाक़ेये से साबित हो गया कि मुल्क में दुश्मन के जासूसों और मुख़बिरों के लिए जाये पनाह मौजूद है और अगर दो एक वाक़ेआत का इन्केशाफ हुआ और दो आदमी गिरफ़तार

[1]इरशाद पेज / 192.193

हो गए तो यह यक़ीन नहीं किया जा सकता कि ऐसे ही कुछ दूसरे लोग मौजूद नहीं हैं जिनका इन्केशाफ़ नहीं हो सका है और जिन्हें काफ़ी काम करने का मौक़ा मिल रहा है। बहरहाल इमाम हसन[अ0स0] दुश्मन के मुक़ाबले के लिए तैयार थे और हक़ के बारे में उसके साथ कोई मुराआत (रेआयत) करने पर आमादा न थे। बेशक आपको और आपके साथ हुसैन[अ0स0] को अपने मुल्क की फ़िज़ा की तरफ़ बेइतमिनानी ज़रूर थी। इसलिए कि ख़वारिज (हज़रत अली[अ0स0] के दुश्मन) के फ़ितने के बाद से ख़ुद अहले कूफ़ा में फूट पड़ चुकी थी और बहुत से लोग ऐसे भी थे जो ब–ज़ाहिर हज़रत अली[अ0स0] की फ़ौज में शामिल थे मगर क़राबत और दोस्ती या किसी और वजह से ख़वारिज के साथ हमदर्दी रखते थे। हज़रत अमीर[अ0स0] को ख़ुद उन लोगों की शोरिश पसन्दी, एख़्तेलाफ़े राय और नज़्म (इत्तेहाद) की कमी से इतनी तकलीफ़ और परेशानी थी कि आप मौत के आर्ज़ूमंद थे। तमाम कुतुबे तारीख़ और बिल–ख़ुसूस नहजुल बलाग़ा में वह ख़ुत्बे आपके दर्ज हैं जो आपकी कबीदा ख़ातिर (रंजीदा) बल्कि रूहानी तकलीफ़ के मज़हर हैं। आपने उनको मुख़ातब करके कभी फ़रमाया कि तुम ने मेरा दिल पीप से भर दिया और मेरे सीने को ग़म व ग़ुस्से से पुर कर दिया। [1]कभी फ़रमाया कि काश मुआविया मेरे साथ अपनी जमाअत का तुम्हारी जमाअत (साथियों) से तबादेला (बदल) कर लेता। इस तरह जैसे सोने के सिक्के का तबादला चाँदी के सिक्के से होता है। यानी तुम में से दस ले लेता और अपनों में का एक मुझे दे देता।[2] कभी फ़रमाया, कितने अफ़सोस की बात है कि अहले शाम बातिल रास्ते पर मुत्तफ़िक़ हैं और तुम हक़ रास्ते पर हो के बाहम तआवुन (एक दूसरे का साथ) नहीं रखते।[3] अहले शाम अपने हाकिम की इताअत करते हैं दराँहालेकि वह ख़ुदा की नाफ़रमानी करता है और तुम अपने इमाम का कहना नहीं मानते दराँहालेकि वह ख़ुदा की इताअत करता है।[4] और कभी फ़रमाया कि तुम लोगों से कहा जाता है कि जिहाद के लिए चलो जाड़े के ज़माने में तो तुम कहते हो कि यह कड़ाके का जाड़ा है हमें इतनी मोहलत दीजिये कि यह सर्दी कम हो जाये और जब तुम से कहा जाता है गर्मी के ज़माने में तो कहते हो कि यह तो तड़ाके की गर्मी है। इतनी

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/214, नहजुल बलाग़ा जि/1, पेज/78

[2]इरशाद पेज/164, नहजुल बलाग़ा जि/1, पेज/205

[3]इरशाद पेज/148, नहजुल बलाग़ा जि/1, पेज/72

[4]इरशाद पेज/164, नहजुल बलाग़ा जि/1, पेज/205

मोहलत दीजिये कि यह गर्मी कम हो जाये। अफ़सोस! तुम गर्मी और सर्दी से इतना भागते हो तो तलवार की आँच से और ज़्यादा भागोगे। [1]

यही वह जमाअत थी कि जिससे अब इमाम हसन[अ0स0] को साबिक़ा पड़ा था। आप उन लोगों की हालतों से अच्छी तरह वाक़िफ़ थे और यक़ीनन अमीरे शाम को भी अपने जासूसों के ज़रिये से यहाँ के हालात का इल्म हो गया होगा और वह यह भी समझते होंगे कि अमीरूल मोमिनीन हज़रत अली[अ0स0] की जो हैबत तमाम अरब के कुलूब (दिलों) पर छाई हुई थी वह बिल्कुल उसी दर्जे पर हज़रत हसन[अ0स0] के लिए अभी हासिल नहीं हो सकती इसलिए उन्हें हिम्मत हुई कि वह यकायक इराक़ पर हमला कर दें। चुनाँनचे वह अपनी फ़ौजों को लेकर जसरे मुनहज तक पहुँच गए। अब इमाम हसन[अ0स0] ने भी मुदाफ़िअत (बचाओ) के इन्तेज़ामात शुरू किये और हुज्र बिन अदी को भेजा कि वह दौरह करके तमाम मुक़ामात के आमिलों को सूरते हाल का मुक़ाबिला करने पर अमादा करें और लोगों को जिहाद के लिए तैयार करें। मगर अन्दाज़े के बिल्कुल मुताबिक़ यह अफ़सोसनाक सूरत सामने आई कि लोगों ने हुज्र बिन अदी की कोशिश का गर्म जोशी के साथ इस्तेक़बाल नहीं किया। आम तौर पर जमूद और सर्द मुहरी (बेहिसी) से काम लिया गया। कुछ थोड़ी सी जमइयत मुक़ाबले के लिए तैयार हुई थी तो उसमें कुछ हिस्सा ख़वारिज का था जो किसी न किसी हीले से मुआविया से जंग करना ही चाहते थे। कुछ शोरिश पसन्द और माले ग़नीमत के तलबगार और कुछ लोग सिर्फ़ अपने सरदाराने क़बाएल के दबाव से बा–दिले ना–ख़्वास्ता (ना चाहते हुए) साथ हो गए थे। जिन्हें फ़र्ज़ के एहसास से कोई वास्ता न था। थोड़े लोग वह होंगे जो वाक़ेई हज़रत अली[अ0स0] और इमाम हसन[अ0स0] के शिया समझे जा सकते हैं।[2] बहरहाल हज़रत हसन[अ0स0] ने क़ैस बिन सअद बिन एबादह अन्सारी को बीस हज़ार की फ़ौज के साथ आगे रवाना किया और खुद मुक़ामे दैर कॉब के क़रीब साबात में जाके क़याम किया। यहाँ पहुँच कर नुमायाँ तौर से आपको अपने साथियों की सर्द मुहरी का मुशाहिदा हुआ। आपने उन लोगों को जमा करके खुतबा इरशाद फ़रमाया जिसका मज़मून यह था कि "देखो मैं तमाम ख़ल्क़ से ज़्यादा ख़ल्क़े ख़ुदा का बही ख़्वाह (बेहतर) हूँ और मुझे किसी मुसलमान से कीना नहीं। आगाह होना चाहिए कि इत्तेफ़ाक़ व इत्तेहाद चाहे तुम्हें नापसन्द हो इख़तेलाफ़

---

[1]अख़बारूत्तुवाल पेज/214, इरशाद पेज/151, नहजुल बलाग़ा पेज/77

[2]इरशाद पेज/193

व इफ़तेराक़ से बेहतर है चाहे वह तुम्हें कितना ही पसन्द हो। याद रखो कि मैं तुम्हारे फ़ायदे के लिए तुम से बेहतर सोचने का हक़ रखता हूँ। तुमको लाज़िम है कि मेरी राय से इन्हेराफ़ और मेरे हुक्म की मुख़ालिफ़त न करो। आपकी तक़रीर का ख़त्म होना था कि मजमे में बद–नज़मी पैदा हो गई और ख़वारिज ने पुकार पुकार कर कहना शुरू किया कि यह काफ़िर हो गए, कुछ लोगों ने आप पर हमला करके आपके क़दमों के नीचे से मुसल्ला खींच लिया और दोशे मुबारक पर से चादर भी उतार ली। आप फ़ौरन घोड़े पर सवार हो गए और आवाज़ें बलन्द से पुकारा कि कहाँ हैं रबीआ और हमदान। यह दोनों क़बीले इधर उधर से दौड़ पड़े और शोरिश पसन्दों को आपसे दूर किया। [1]

इब्ने ज़ुरैर की रिवायत यह है कि किसी ने ख़बर उड़ा दी कि क़ैस बिन सअ्द क़त्ल हो गए। बस उस पर यह ग़दर मच गया और वह ख़ैमा जिसमें इमाम हसन[अ0स0] का क़याम था लूट लिया गया। यहाँ तक कि जिस बिछौने पर आप थे उसे आपके नीचे से खींच लिया गया। [2]

उसके बाद आप मदाएन की तरफ़ रवाना हो गए मगर वहाँ पहुंचने पर जर्राह बिन क़बीसा असदी ने जो उन्हीं ख़वारिज में सेथा कमीनगाह में छुप कर ख़ंजर से हमला कर दिया जिससे आप ज़ख़्मी हो गए अरसे तक मदाएन में इलाज के बाद आप अच्छे हुए और फिर मुआविया से मुक़ाबिला की तैयारी की।

मुआविया ने आपके पास पैग़ाम भेजा कि आप जिन शराएत पर चाहें मैं सुल्ह करने पर तैयार हूँ और उसके साथ आपकी फ़ौज के उन सरदारों के ख़ुतूत भी रवाना कर दिये जिन्होंने ख़ुफ़िया तरीक़े पर मुआविया से साज़ बाज़ करना चाही थी और दावत दी थी कि आप आईये तो हम हसन[अ0स0] को गिरफ़्तार करके आपके सिपुर्द कर देंगे या उनको क़त्ल कर डालेंगे।[3]

इमाम हसन[अ0स0] पहले ही अपने साथियों की ग़द्दारी से वाक़िफ़ थे और इसलिए जंग को मुनासिब वक़्त ख़याल नहीं करते थे लेकिन यह ज़रूर चाहते थे कि कोई सूरत ऐसी पैदा हो कि बातिल की हिमायत का धब्बा भी मेरे दामन पर न आने पाये। इस ख़ानदान के लोगों को हुकूमत व इक़तेदार की तो हवस कभी रही नहीं, उन्हें तो मतलब इससे था कि मख़लूक़े ख़ुदा की बेहतरी हो

---

[1] इरशाद पेज/194

[2] तबरी जि/6 पेज/92

[3] सही बुख़ारी जि/2 पेज/71, इरशाद पेज/195

और हुदूद व हुकूके इलाही का इजरा (राएज) हो। अब मुआविया ने जो आप से मुँह मांगे शराएत पर सुलह करने की आमादगी ज़ाहिर की तो आपने अपने नाना और बाप की देखी हुई सीरत के मुताबिक़ मसालिहत के बढ़ते हुए हाथ को नाकाम वापस नहीं किया। आपने सुल्ह के शराएत मुरत्तब करके मुआविया के पास रवाना किये। वह तमाम शराएत जिन से क़ानूनी तौर पर आईन व शरीयत का तहफ़्फ़ुज़ हो जाता है। चुनानचे सुलह की दस्तावेज़ मुकम्मल हुई और जंग का ख़ातिमा हो गया। हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] अपने बाप की वफ़ात के बाद अपने बड़े भाई हज़रत इमाम हसन[अ०स०] के साथ उन सर्द व गर्म हालात का बराबर मुतालिआ कर रहे थे। उन्होंने उन वाक़ेयात पर कभी एक ग़ैर मुतअल्लिक़ इन्सान की तरह नज़र नहीं डाली बल्कि वह उसको अपनी सरगुज़श्त (सानेहा) समझते थे और जानते थे कि हमें इसी हाल पर मुस्तक़्बिल की इमारत को बलन्द करना है। उस वक़्त के वाक़ेयात का यह पहलू बहुत अहम था कि साथियों की कसरत और जमइयत पर एतेमाद का ख़याल कुल्लियतन दूर अज़ कार (सिरे से ग़लत है) है। हुसैन[अ०स०] अपने वालिदे बुज़ुर्गवार के साथ एक दफ़ा उन साथियों के अमल को देख चुके थे कि वह उनके सामने तलवारें खींच कर आ गए और अब अपने बड़े भाई के साथ साथियों के तर्ज़े अमल को देख लिया कि खुद अपनी फ़ौज के हाथों किस तरह उनके भाई की जान ख़तरे में पड़ गई थी। मुमकिन है किसी वजह से उस वक़्त हुसैन[अ०स०] अपने बड़े भाई के पास मौजूद न हों और ऐसा ही मालूम होता है। इसलिए कि उस सख़्त और नागवार मौक़े पर कोई तज़किरा इमाम हुसैन[अ०स०] का नज़र नहीं आता मगर उन्होंने यक़ीनन उन हालात को दर्दमन्दाना तरीक़े पर सुना और उस ज़ख़्म को देखा होगा जो उनके भाई के जिस्म पर खुद अपने साथ वालों में से किसी के हाथ से आ गया था और उसका असर उनके हस्सास दिल पर जितना भी हुआ हो वह कम है।

इसके अलावा आपने अपने बुज़ुर्गों की सीरत में एक दफ़ा यह नमूना और देख लिया कि अम्ने आलम के लिए नुक़्त–ए–अव्वल सुल्ह व सलामती हैं जंग का दर्जा सुल्ह के बाद है और सुल्ह के इमकानात पैदा होने तक है इसलिए सुल्ह के ख़याल को जंग के पहले और जंग के दौरान में हमेशा पेशे नज़र रखना चाहिए। दुश्मन से सुल्ह की गुफ़्तगू को कभी अपनी खुद्दारी के ख़िलाफ़ न समझो चाहे जज़बाती लोग इस पर मोतरिज़ भी हों और चाहे उसके लिए तुम्हें अपने जाह व इक़्तेदार राहत व आराम या किसी दूसरे

शख़्सी मफ़ाद की कुर्बानी भी कर देना पड़े मगर यह ख़याल ज़रूरी है कि इस सुल्ह के अन्दर कोई ऐसा उसूल पामाल न होने पाये जिसका महफ़ूज़ रखना बहरहाल अपना मुक़द्दस फ़रीज़ा है। यही नमूना हुसैन[अ0स0] ने अपने नाना से देखा था, यही उनको अपने बाप के यहाँ नज़र आया और यही अब उनको अपने वाजिबुल इताअत भाई इमाम हसन[अ0स0] की जानिब से पेशे नज़र था।

एक बात ज़िम्नी तौर पर और दोबारा सामने आ गई। वह यह कि सच्चाई के रास्ते में अगर इतमामे हुज्जत की ज़रूरत हो तो दोस्त नहीं बल्कि दुश्मन के भी इक़रार पर भरोसा कर लेना चाहिए।

इस सुल्ह नामें के मुकम्मल शराएत जो अल्लामा इब्ने हजर मक्की ने दर्ज किये हैं हस्बे ज़ैल हैं।[1]

1. यह कि मुआविया हुकूमते इस्लाम में किताबे खुदा और सुन्नते रसूल और सही रास्ते पर चलने वाले खुलफ़ा–ए–राशेदीन के तरीक़े पर अमल करेंगे। [2]
2. यह कि मुआविया को अपने बाद किसी ख़लीफ़ा के नामज़द करने का हक़ न होगा।
3. यह कि शाम व इराक़ व हिजाज़ व यमन सब जगह के लोगों के लिए अमान होगी।
4. यह कि हज़रत अली[अ0स0] के असहाब और शिया जहाँ भी रहें उनके जान व माल व नामूस व औलाद महफ़ूज़ रहेंगे। [3]
5. यह कि मुआविया हसन इब्ने अली[अ0स0] और उनके भाई हुसैन[अ0स0] और किसी को भी ख़ानदाने रसूल[स0अ0] में कोई नुक़सान पहुँचाने या उनकी जान लेने की कोशिश न करेंगे। न खुफ़िया तरीक़े पर और न ऐलानिया और उनमें से किसी को किसी जगह धमकाया, डराया और दहशत में मुबतिला नहीं किया जायेगा।

यह मुआहिदा रबीउल अव्वल या जमादिउल ऊला सन 41 हिजरी को अमल में आया।

---

[1]सवाएक़े मुहर्रिक़ा पेज/81

[2]शिया माख़ज़ों (Writers) में इस शर्त के आख़िरी जुज़ का ज़िक्र नहीं है।

[3]इस शर्त के सुबूत के लिए मुलाहिज़ा हो तबरी जि/6 पेज/97

अगर ग़ौर किया जाये तो इस सुल्ह के ज़रिये से हज़रत इमाम हसन[अ०स०] ने वह मक़सद हासिल कर लिया था जिसके लिए उनकी अपने फ़रीक़े मुख़ालिफ़ से (मुनाज़ेअत) लड़ाई थी।

इसमें कोई शुबहा नहीं कि यह हज़रात ज़ाती अग़राज़ (फ़ाएदों) के लिए किसी से मुख़ासिमत (दुश्मनी) नहीं रखते थे। उनकी लड़ाई जो कुछ थी वह उसूले शरियत व मज़हब के लिए। हज़रत इमाम हुसन[अ०स०] ने सुल्ह नामे की पहली शर्त के लिहाज़ से अमीरे शाम को पाबन्द बना दिया था कि वह किताब व सुन्नत के मुताबिक़ अमल करें। इससे आपने एक तरफ़ तो यह बात हमेशा के लिए मुसल्लम बना दी कि उसूले शरीयत और है आईने हुकूमत और है। यह वह बड़ी चीज़ थी जिसके लिए आले मोहम्मद बराबर कोशाँ रहे थे यानी कभी ऐसा न हो कि हुक्कामे इस्लाम का तर्ज़े अमल ऐने शरीयत समझ लिया जाये। दूसरा अम्र यह भी आपने साबित कर दिया बल्कि फ़रीके मुख़ालिफ़ से तस्लीम करा लिया कि अब तक जो कुछ हुकूमते शाम का रवैया रहा है वह किताब और सुन्नत के मुताबिक़ नहीं है क्योंकि हर शख़्स जानता है कि सुल्हनामे की बुनियादी चीज़ें वही होती हैं जो दो फ़रीक़ों में बेनाए मुख़ासिमत (लड़ाई की बुनियाद) हों। अगर हुकूमते शाम का साबिक़ा तर्ज़े अमल अब तक बराबर किताब व सुन्नत के मुताबिक़ होता तो इस शर्त की ज़रूरत क्या थी। इसके बाद दूसरी अहम शर्त यह क़रार दी कि उनको अपने बाद किसी को नामज़द करने का हक़ न होगा। इस तरह आपने मुसतक़्बिल का तहफ़्फ़ुज़ किया क्योंकि यह मुमकिन था कि मुआविया अपनी ज़िन्दगी भर किताब और सुन्नत के मुताबिक़ अमल करते लेकिन बाद में कोई ऐसा आता जो इसके ख़िलाफ़ करता। इसलिए आपने आइन्दा के लिए जानशीन बनाने के हक़ को सल्ब (छीन) कर लिया।

बहर हाल सुल्ह हो गई। फ़ौजें वापस चली गईं और मुआविया की गिरफ़्त तमाम ममालिक इस्लामिया पर मज़बूत हो गई और अब शाम व मिस्र के साथ इराक़ व हिजाज़, यमन और ईरान वग़ैरह भी उनके तसर्रूफ़ में आ गए। हज़रत इमाम हसन[अ०स०] को इस सुल्ह के बाद अपने साथ के बहुत से लोगों की तरफ़ से इन्तेहाई दिलख़राश और तौहीन आमेज़ अलफ़ाज़ सुनना पड़े जिनका बर्दाश्त करना उन्हीं का काम था। बाज़ लोग ऐसे जो कल तक "अमीरूल मोमिनीन" कहकर तस्लीम बजा लाते थे आज "मुज़िल्लुल मोमिनीन" यानी मोमिनीन की जमाअत को ज़लील करने वाले" के अलफ़ाज़ से सलाम

करते थे मगर इमाम हसन[अ0स0] ने सब्र व इस्तेक़लाल और नफ़्स की बलन्दी के साथ इन तमाम नागवार हालात को बरदाश्त किया और मुआहिदे पर सख़्ती के साथ क़ायम रहे लेकिन मुआविया ने जंग के ख़त्म और सियासी इक़तेदार के क़ायम होते ही इराक़ में दाख़िल होकर नख़ीला में जिसे कूफ़े की सरहद समझना चाहिए क़ायम किया। और जुमे के ख़ुतबे के बाद यह ऐलान कर दिया कि मेरा मक़सद जंग से यह न था कि तुम लोग नमाज़ पढ़ने लगो। रोज़े रखने लगो, हज करो या ज़कात अदा करो। यह सब तो तुम करते ही हो। मेरा तो मक़सद जंग से फ़क़त यह था कि मेरी हुकूमत तुम पर मुसल्लम हो जाये। वह हसन[अ0स0] के इस मुआहदे के बाद मुकम्मल हो गई और बावजूद तुम लोगों की नागवारी के खुदा ने मुझे इस मतलब में कामयाब कर दिया। रह गए वह शराएत जो मैंने हसन[अ0स0] के साथ किये हैं वह सब मेरे पैरों के नीचे हैं और उनका पूरा करना या न करना मेरे हाथ की बात है।[1] मजमे में एक सन्नाटा छाया हुआ था मगर अब किस में दम था कि वह उसके ख़िलाफ़ लबकुशाई (मुँह खोलना) करता।

इक़तेदारे शाही की जुरअत इस नुक्ते तक पहुँची कि कूफ़े में इमाम हसन[अ0स0] और इमाम हुसैन[अ0स0] की मौजूदगी में मुआविया ने हज़रत अमीर[अ0स0] और इमाम हसन[अ0स0] की शान में ना–सज़ा कलेमात इस्तेमाल किये। इस पर सुकूत करना एतेराफ़ व इक़रार का मुरादिफ़ (बराबर) समझा जा सकता था। इसलिए फ़ौरन इमाम हुसैन[अ0स0] जवाब देने के लिए खड़े हो गए मगर हज़रत इमाम हसन[अ0स0] ने आपको बिठा दिया और खुद खड़े होकर निहायत मुख़्तसर और जामे अलफ़ाज़ में अमीरेशाम की तक़रीर का जवाब दिया।[2] हुसैन[अ0स0] जानते तो पहले ही थे मगर उस वक़्त महसूस कर लिया था कि हालात की रफ़तार क्या है और हम को इसका आख़िरी मुक़ाबिला किस तरह करना होगा। मगर वह जल्दबाज़ इन्सान न थे, न वह ज़िम्मेदारियों के महल से ना–वाक़िफ़ थे। इन्हीं सब्र आज़मा इन्तेज़ार के साथ हालात की तदरीजी रफ़तार (धीरे धीरे) के दोश ब–दोश अपने किरदार की मन्ज़िल को आगे बढ़ाना था और उसके पहले एक फ़र्ज़ शनास इन्सान की तरह अपने भाई के साथ वक़्त की मौजूदा साकिन मगर पुर इज़्तिराब (बेचैनी) ख़ामोशी में ग़र्क़ रहना था।

---

[1]इरशाद पेज / 196

[2]इरशाद पेज / 196

हज़रत इमाम हसन[अ0स0] ने उमूरे सलतनत से किनारा कशी इख़्तियार करने के बाद कूफ़े का क़याम तर्क करके फिर से मदीने में जाकर सुकूनत इख़्तियार फ़रमाई तो हुसैन[अ0स0] ने भी भाई का साथ दिया और मदीने में जाकर क़याम फ़रमाया। मगर इस इत्तेहादे अमल के बावजूद भी बनी उमय्या ने यह ग़लत शोहरत दी कि इस सुलह के बारे में हज़रत इमाम हसन[अ0स0] और इमाम हुसैन[अ0स0] दोनों भाईयों की यकजेहती (एकता) में वाक़ई कोई फ़र्क़ आ जाये मगर उनके तमाम तवक़्क़ुआत (अन्देशे) बिल्कुल ग़लत साबित हुए।

इमाम हुसैन[अ0स0] क़ौल, अमल और मसलक में अपने भाई इमाम हसन[अ0स0] के साथ बिल्कुल मुत्तहिद थे और हमेशा रहे। आपको मालूम था कि इमाम हसन[अ0स0] ने अगरचे इतमामे हुज्जत के लिए ख़ामोशी और गोशा नशीनी इख़्तियार कर ली है मगर ख़याल इनका भी यही है कि आख़िर में फिर तलवार दरमियान में आयेगी और आख़िरी फ़ैसला बग़ैर एक सख़्त और मुशकिल अक़दाम के न हो सकेगा और वह इसके लिए तय्यार भी हैं ब–शर्तेकि हालात की तदरीजी (धीरे धीर) रफ़्तार इन्हीं के दौरे हयात में इस आख़िरी नुक़्ते तक पहुँच जाये। जो इस आख़िरी इक़दाम के लिए ज़रूरी है। इमाम हसन[अ0स0] अक्सर यह अशआर ब–तौरे तम्सील (मिसाल) पढ़ा करते थे।

من عاذ بالسیف لا قیٰ فرصۃ   موتا علیٰ عجل اوعاش منتصفا
لاترکبوا السّہل ان السّہل مفصدۃ   لن تدرکوا المجد حتّیٰ ترکبوا عنقا

''जो तलवार को अपना पुश्त पनाह बनाये वह अजीब सुकून व इतमिनान हासिल करेगा या दुनिया से जल्द ही गुज़र जाना और या ज़िन्दगी ऐसी जो दाद रसी के साथ हो। कभी सहूलत पसन्दी से काम न लो। सहूलत पसन्दी बड़ी ख़राबी की बात है। इज़्ज़त हासिल कर ही नहीं सकते जब तक कि दुशवार गुज़ार मन्ज़िल को तय न करो।''[1]

रह गये मौजूदा हालात, उनके लिहाज़ से इमाम हुसैन[अ0स0] भी इस सुल्ह से मुत्तफ़िक़ थे चुनानचे ब–रिवायत दीनवरी जब हुज्र बिन अदी और उबैदा बिन अम्र जो सुल्ह के मुआमले में एख़तेलाफ़ रखते थे इमाम हुसैन[अ0स0] के पास आये और कहाः आप लोगों ने इज़्ज़त के बदले में ज़िल्लत को ख़रीद लिया। कम हुक़ूक़ हासिल करके बहुत से हुक़ूक़ से दस्तकशी (हाथ खींचना) कर ली। अच्छा अब आप ब–ज़ाते ख़ुद आज हमारी एक बात मान लीजिये फिर कभी कोई बात न मानियेगा। वह यह है कि आप हज़रत इमाम हसन[अ0स0] को तो

---

[1]किताबुल–बिलदान ले–इब्नुल फ़िक़ीह अल–हम्दानी तबअ् लीदन पेज/53

इस सुल्ह के रास्ते पर जो उन्होंने इख़्तियार किया है छोड़ दीजिये। लेकिन आप अपने साथियों को जो कूफ़े में या कूफ़े के बाहर हैं, जमा कीजिये और हम दोनों को मुक़द्दमतुल जैश (थोड़ा लशकर जो बड़ी फ़ौज के आगे चले) का अफ़सर बना दीजिये। फिर देखियेगा कि मुआविया को ख़बर भी न होगी और हम अचानक तलवारें मारते हुए नज़र आयेंगे। हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने फ़रमायाः यह नहीं हो सकता। हम अहेद कर चुके और क़ौल व क़रार हो चुका। इसी तरह अली बिन मोहम्मद बिन बशीर हमदानी का बयान है कि मैं सुफ़ियान बिन अबी लैला की मईयत में मदीना पहुँचा और इमाम हसन[अ0स0] के पास मिलने गया। आपके पास उस वक़्त मुसय्यब बिन नुजबा, अब्दुल्लाह बिन दवाक तमीमी और सिराज बिन मालिक ख़शई मौजूद थे। मैंने कहाः अस्सलामु अलैका या मुज़िल्लुल मोमिनीन। सलाम हो आपको ऐ मोमिनीन को ज़लील करने वाले।'' आपने फ़रमायाः व अलैकस्सलाम। बैठो मैं मोमिनीन की ज़िल्लत का बाइस नहीं हूँ। मैंने तो उनकी इज़्ज़त रख ली और उनको ख़ूँरेज़ी से बचा लिया। मैं देख रहा था कि अब जंग का जोश और वलवला बाक़ी नहीं है और कमज़ोरी नुमायाँ है। मैं देख रहा था कि अगर जंग जारी रखी गई तब भी एक दिन यही होना है कि मुआविया की बादशाहत क़ायम हो जाये।'' अब यह लोग हज़रत के पास से उठकर इमाम हुसैन[अ0स0] के पास गए और पूरी गुफ़्तगू हज़रत इमाम हसन[अ0स0] की बयान की। आपने फ़रमाया सच कहा अबू मोहम्मद (हज़रत हसन[अ0स0]) ने। तुम्हें लाज़िम है कि हर शख़्स तुम में से ख़ामोश होकर घर में बैठ जाये और बैठा रहे उस वक़्त तक कि जब तक यह शख़्स (मुआविया) ज़िन्दा है।[1]

यह आख़िरी फ़िक़रा दर हक़ीक़त बड़ा दूर रस था। आप समझते थे कि मुआहिदे की पाबन्दी नहीं होगी और आप जानते थे कि यह मुआहिदा मौत की आख़िरी हिचकी उस वक़्त लेगा जब मुआविया दुनिया से जाने लगेंगे। और अपने बाद जानशीन नामज़द कर जायेंगे। वह वक़्त होगा जब हमारी जानिब से कोई दूसरा इक़दाम किया जाये। आइन्दा चल कर दुनिया को हुसैन[अ0स0] के तदब्बुर की दाद देना पड़ेगी जिन्हों ने बीस बरस पहले यानी सन 41 हिजरी की तस्वीर अपनी आँख से देख ली और हुसैन[अ0स0] की पेश बीनी अईन्दा चलकर हर्फ़ ब–हर्फ़ पूरी हो कर रही।

[1]अख़बारूत्तुवाल पेज / 222

इस मुआहिदे के बाद अब बनी उमैया की कूव्वत बहुत मुस्तहकम हो गई थी। उनके रास्ते में जो एक ख़रख़्शा (रूकावट) था वह बिल्कुल दूर हो गया था। और इन्हें अपनी स्कीम को पूरा करने का पूरा मौक़ा मिल गया था। चुनानचे जितनी शर्तें हुई थीं सबकी मुख़ालिफ़त की गई और किसी एक पर भी अमल न हुआ।[1]

पहली शर्त यह थी कि किताबे ख़ुदा और सुन्नते रसूल[स0अ0] पर अमल होगा। यह शर्त मुसलमानों के किसी फ़िर्क़े के नज़दीक भी पूरी नहीं हुई। शियों का अक़ीदा तो इस बारे में ज़ाहिर है और अहले सुन्नत के नुक़त–ए नज़र से हज़रत रसूल अल्लाह[स0अ0] की वफ़ात के बाद सिर्फ़ तीस बरस तक ख़िलाफ़ते राशिदा रही है और यह तीस बरस की मुद्दत ख़त्म हो जाती है। हज़रत इमाम हसन[अ0स0] की सुलह पर। उसके बाद मुलूकियत व जहाँबानी और दुनिया दारी है, ख़िलाफ़ते राशिदा नहीं है। अगर यह शर्त पूरी हुई होती कि किताबे ख़ुदा और सुन्नते रसूल[स0अ0] पर अमल हो तो कोई वजह न थी कि मुआविया की हुकूमत ख़िलाफ़ते राशिदा के हुदूद से ख़ारिज होती। उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ तक के बारे में यह कहा गया है कि उनका ज़माना ख़िलाफ़ते राशिदा से मिलता जुलता है मगर फ़ासिला होने की वजह से इसमें महसूब (शुमार) नहीं हुआ। मगर मुआविया के दौरे हुकूमत के मुतअल्लिक़ किसी ने यह राय ज़ाहिर नहीं की। मालूम हुआ कि तमाम मुसलमानों के नज़दीक इस शर्त पर अमल नहीं हुआ। इसके अलावा वाक़ेआत से भी यही ज़ाहिर होता है। इसकी चन्द मिसालें ज़ैल में दर्ज की जाती हैं।

इनमें से एक बात थी सियासी मसालेह (Adviser) की बिना पर ज़ियाद बिन सुमय्या को अपने बाप का नाजाएज़ फ़रज़न्द बना कर अपना भाई क़रार देना हालाँकि इस्लाम में नाजाएज़ फ़रज़न्द को नसब में शरीक नहीं किया गया है। तफ़्सील इसकी यूँ है कि ज़ियाद पहले ज़ियाद बिन उबैद कहलाता था क्योंकि उसकी माँ सुमय्या एक सक़फ़ी क़बीले वाले शख़्स के ग़ुलाम उबैद की ज़ौजियत में थी और यह ख़ुद हारिस बिन कल्दा की कनीज़ थी। हारिस ने इसको आज़ाद कर दिया तब इसके यहाँ ज़ियाद पैदा हुआ और इसलिए ज़ियाद ग़ुलामी से ख़ारिज रहा और बढ़ा तो बड़ा समझदार और ज़हीन और अक़्लमन्द और अदीब देखा गया। मुग़ीरा बिन शअ़बा जब ख़लीफ़–ए–दुवुम की तरफ़ से बसरा के हाकिम हुए तो वह ज़ियाद को अपने साथ बसरा ले गए

---

[1]तबरी जि/6, पेज/93

और वहाँ उसे लिखना पढ़ना सिखलाया। जब हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] ख़लीफ़ा हुए तो आपने ज़ियाद को सरज़मीने फ़ारस का गवर्नर बनाया। आपकी शहादत के बाद मुआविया ने ज़ियाद को एक तहदीद आमेज़ (धमकाने वाला) ख़त लिखा जिस पर ज़ियाद ने मज्म–ए–आम में ख़ुत्बा पढ़ा और कहा कि जिगर ख़्वारा का लड़का और निफ़ाक़ का मरकज़ और दुश्मनाने इस्लाम का सरदार मुझे डराना चाहता है? हालाँकि मेरे और उसके दरमियान रसूल अल्लाह[स0अ0] के चचाज़ाद भाई (इब्ने अब्बास) और हसन बिन अली[अ0स0] नव्वे हज़ार अपने शियों की फ़ौज लिये हुए मौजूद हैं। ख़ुदा की क़सम अगर उसने इधर का रूख़ किया तो वह देखेगा कि मैं तलवार लिये हुए सामने मौजूद हूँगा और बड़ी शदीद जंग करूँगा। मुआविया को मालूम हो गया कि उस शख़्स को धमकियों से मुतअस्सिर नहीं किया जा सकता। जब इमाम हसन[अ0स0] ने सुल्ह फ़रमाई और मुआविया की सलतनत मज़बूत हो गई तो ज़ियाद इस्तख़र (फ़ारस का क़िला) में क़िला बन्द हो गया।[1]

मुआविया ने उसे अमान नामा लिखा कि तुम मेरे पास आ जाओ। जो कुछ तुम कहोगे वह मैं तुम्हें दूँगा। चुनानचे ज़ियाद, मुआविया के पास आया और मुआविया की बारगाह में उसका रसूख़ बढ़ता चला गया। यहाँ तक कि सन 44 हिजरी में मुआविया ने उसे अपना भाई ज़ाहिर किया।[2] ज़ाहिर है कि एक ऐसा शख़्स जिसके असली बाप का पता न हो और हो भी तो वह एक ग़ुलाम के सिवा कोई न हो वह एक दम शहनशाहे वक़्त का भाई बन जाये इससे बढ़कर उसकी इज़्ज़त क्या हो सकती है। मुआविया ने कहा: यह मेरे बाप अबूसुफ़ियान के नुत्फ़े से है और उसकी गवाही किसने दी? अबू मरयम सलूली ने जो क़ब्ले इस्लाम ताएफ़ में शराब बेचता था। उसने कहा कि अबू सुफ़ियान मेरे शराब ख़ाने में आया और मुझसे एक इस क़िस्म की औरत को बुला देने को कहा जो उस रात में उसकी दिलचस्पी का बाइस हो। मैंने सुमय्या को उसके पास बुला दिया और इस तरह अबू सुफ़ियान और सुमय्या में तअल्लुक़ात नाजाएज़ पैदा हुए और उन तअल्लुक़ात से ज़ियाद की विलादत हुई। एक शख़्स ने क़बील–ए–बनी मुसतलक़ में से जिसका नाम यज़ीद था गवाही दी की मैंने अबू सुफ़ियान को यह कहते सुना था कि ज़ियाद मेरे नुत्फ़े से है। हालाँकि पहले ज़ियाद ने कूफ़े में आकर वहाँ के लोगों से यह ख़्वाहिश

---

[1]तबरी जि/6, पेज/97

[2]अल वुज़रा वल किताब पेज/17

की थी कि तुम मुआविया के साथ मेरी क़राबत के लिए गवाही दे दो। उन सबने इन्कार किया कि हम झूठी गवाही न देंगे। यहाँ से मायूस होकर वह बसरा गया और वहाँ एक शख़्स गवाही देने के लिए तय्यार हो गया।[1]इस सुबूत को काफ़ी समझा गया और ज़ियाद मुआविया के भाई क़रार पा गए।

इस बात से मुसलमानों में और बिल–ख़ुसूस सहाबा के तब्क़े में बड़ी बेचैनी पैदा हुई क्योंकि पैग़म्बरे इस्लाम[स0अ0] का यह इरशाद मुतवातिर तौर पर सबको मालूम था कि "الولدللفراش والمعاهى الحجر" यानी "बच्चा अस्ली शौहर की तरफ़ मन्सूब होगा और ज़ानी के लिए बस पत्थर हैं।" मगर इक़्तेदारे हुकमत के कान अवाम की चीख़ पुकार सुनने से बालातर होते हैं। उन्होंने कोई परवा नहीं की। उनके लिए इससे बढ़कर और क्या हो सकता है कि इस ज़रिये से उन्होंने ज़ियाद और उसकी औलाद को हमेशा के लिए ख़रीद लिया।

चुनानचे जब ज़ियाद के ज़रा सर उठाने का अन्देशा पैदा होता तो यह एहसान याद दिला कर उसको सर झुकाने पर मजबूर कर दिया जाता था जैसा कि एक मर्तबा जबकि ज़ियाद बहुत से तहाएफ़ लेकर मुआविया के पास आया जिनमें जवाहरात का एक निहायत नफ़ीस गुलूबन्द भी था और मुआविया उसको देखकर बहुत ख़ुश हुए तो ज़ियाद ने ब–तौरे फ़ख़्र कहना शुरू किया। हुज़ूर देखिये मैंने आपके लिए किस तरह इराक़ को पामाल कर दिया है और किस तरह वहाँ के चप्पे चप्पे पर आपका तसल्लुत क़ायम कर दिया है और वहाँ की हर लज़्ज़त व नेअ्मत आपके क़दमों पर लाकर डाल दी है। यह सुनकर मुआविया अभी कुछ कहने न पाये थे कि यज़ीद बोल उठा। तुमने यह सब कुछ किया तो कमाल क्या किया? हमने जो तुम को क़बील–ए–सक़ीफ़ की गुलामी से निकाल कर कुरैशी होने की इज़्ज़त दे दी और उबैद की फ़रज़न्दी के बजाये अबू सुफ़ियान की फ़रज़न्दी का शरफ़ अता कर दिया और दफ़्तर में क़लम की घिस घिस से ऊँचा करके मिम्बरों की बलन्दी नसीब कर दी।[2]

ज़ाहिर है यज़ीद ऐसे नौ उम्र की ज़बान से ज़ियाद ऐसे सिन रसीदा का इन अल्फ़ाज़ को सुनकर बर्दाश्त करना एहसासे कमतरी ही का नतीजा था जो नसबी एतेबार से उसमें मौजूद थी। फिर इस सूरत में ज़ियाद की नस्ल अब कभी मुआविया या उनके बाद यज़ीद के मुक़ाबले में सरताबी की कहाँ हिम्मत

---

[1]तबरी जि/6, पेज/122

[2]तबरी जि/6, पेज/123

रख सकती थी। यह दूर रस असर था इस सियासी इक़दाम का जो ज़ियाद को भाई बनाकर किया गया था। चाहे शरीयत इस पर कितनी भी सरज़निश का मुस्तहक़ क़रार देती हो।

दूसरा वाक़ेयाः एक शख़्स थे हतात बिन ज़ैद बिन अलक़मा तमीमी दारमी। हज़रत रसूल अल्लाह[स0अ0] ने उनमें और मुआविया में मुवाख़ात (भाई चारगी) क़रार दी थी, वेसी ही मुवाख़ात जैसी एक मर्तबा महाजरीन में और एक मर्तबा महाजरीन और अन्सार में की गई थी। हर शख़्स जानता था कि इस मुवाख़ात से नसबी एहकाम जारी नहीं होते और मीरास एक की दूसरे को नहीं मिलती। यही अमल दर आमद मुत्तफ़िक़ा तौर पर साबित था कि हर एक की मीरास उसके नस्बी वरसा को पहुँचे। इस मज़हबी भाई को नहीं जो मुवाख़ात के ज़रिये से भाई क़रार दिया गया है। मगर इत्तेफ़ाक़ की बात कि हतात, मुआविया के पास आये हुए थे और उनका वहीं इन्तेक़ाल हो गया तो मुआविया ने उनकी मीरास पर क़ब्ज़ा कर लिया। यह कहकर कि यह मेरा भाई है। इस पर भी मुसलमानों में शोर हुआ यहाँ तक कि फ़रज़दक़ ने इस बारे में शेअ्र भी कहेः

ابوک وعمی یا معاوی اورثا   تراثا فیحنا زالتراث اقاربه

فما بال میراث الحتات آکلته   ومیراث صخر جامدلک ذانبه

فلوکان ھٰذا الامر فی جاهلیة   علمت من المرء القلیل خلائبه

ولوکان فی دین سویٰ ذا   لما حقّنا اوغض بالماء شاربه

(यानी) तुम्हारे बाप ने और मेरे चचा ने ऐ मुआविया मीरास छोड़ी तो उसूल यही रहा कि मीरास क़राबतदारों को दी जाये। फिर क्या बात है कि हतात की मीरास तो तुमने नोश जाँ फ़रमाई और अबू सुफ़ियान की मीरास तुम्हारी ही मिलकियत क़रार पाई। पस यह मुआमला अगर ज़मान–ए–जाहिलियत की रस्म में दाख़िल है तो हमें इसका इल्म होना चाहिए और अगर यह इसके अलावह किसी और दीन में है जिसकी तुमने ईजाद की है तो हमें भी हमारा हक़ मिलना चाहिए नहीं तो यह तुम्हें हज़्म नहीं हो सकता।[1]

---

[1]असदुल ग़ाबा जि/1, पेज/379

मगर तारीख़ नहीं बताती कि मुआविया ने इस माल को कभी वापस किया हो या हतात के वरसा को इसका मुआविज़ा दिया गया हो। इसके अलावा और बहुत सी बातें ख़िलाफ़े शरीयत रिवाज पा रही थीं। मसलन मुआविया ने ज़काते फ़ितरा के मुतअल्लिक़ कहा, हमारी राय में ज़काते फ़ितरा दो मुद (एक तरह का पैमाना) समरा शाम हैं यानी शाम के गेहूँ दो मुद। (समर–ए–शाम यानी शाम के गेहुँ 2 मुद) अबू सईद ख़दरी ने फ़रमाया यह मुआविया की मुक़रर करदा मिक़दार है। हम न इस पर अमल करते हैं और न इसे क़ुबूल करते हैं। हम अहदे रसूल[स0अ0] में हर एक छोटे बड़े और गुलाम व आज़ाद की तरफ़ से ज़काते फ़ितरा एक साअ् गन्दुम, (यानी दो सौ 2.34 चौतीस तोला वज़न) एक साअ् पनीर या जौ या खुजूर या मुनक्क़ा, इसी तरह निकालते रहे यहाँ तक कि जब मुआविया हज के लिए आये तो उन्होंने कहा हमारी राय में दो मुद गन्दुम शाम ज़काते फ़ितरा है। अबू सईद ख़दरी का क़ौल है कि मैं जब तक ज़िन्दा हूँ कभी मुआविया के इस कहने के मुताबिक़ अमल न करूँगा। इब्ने ज़ुबैर ने मुआविया की इस राय को सुनकर कहाः بئس الاسم الفسوق بعد الایمان।''यानी ईमान लाने के बाद फ़ासिक़ होना बहुत बुरा है।''मिक़दारे ज़काते फ़ितरा तो बस साअ् ही है।[1]

मिक़दाम बिन मअ्दी कर्ब की गुफ़्तगू जो मुआविया से हुई है उसमें उन्होंने कहा तुम्हें खुदा की क़सम। बताओ, क्या रसूल[स0अ0] ने नहीं फ़रमाया है कि सोना पहनना हराम है। मुआविया ने कहा सही है। फिर मिक़दाम ने कहा क्या आँहज़रत[स0अ0] ने दरिन्दा जानवरों की खाल पर बैठना और उनका पहनना ममनूअ् क़रार नहीं दिया था? मुआविया ने कहा, हाँ यह भी सही है। मिक़दाम ने कहा, फिर क्या बात है कि मैं यह सब चीज़ें तुम्हारे घर में देखता हूँ? इसके अलावा शरीयते इस्लाम का हुक्म है कि पेशाब या पायख़ाने के वक़्त रू–ब–क़िब्ला या पुश्त ब–क़िब्ला बैठना जाएज़ नहीं है। हज़रत अबू एय्यूब अन्सारी जब शाम में पहुँचे तो तमाम पायख़ानेके मुक़ामात को रू–ब–क़िब्ला पायाउन्होंने अस्तिग़फ़ार पढ़कर मुंह फेर लिया।[2]

अरफ़ा के रोज़ (हज के दिन) हज में तलबिया कहना लब्बैक अल्लहुम्मा लब्बैक ला–शरीक ल–क–लब्बैक। ज़रूरी और लाज़िमी शआएरे (निशानी) हज में से है। रसूले करीम[स0अ0] और असहाब बराबर कहते चले आये मगर इस नेक

---

[1]दरासातिल लबीब मुल्ला मोहम्मद मुईन पेज/77

[2]दरासातिल लबीब पेज/139

काम को मुआविया तर्क करते हैं और लोगों को इससे मना करते हैं। हज़रत इब्ने अब्बास ने सईद से अरफ़ा के रोज़ पूछा कि क्या वजह है मैं लोगों से तलबिया की आवाज़ नहीं सुनता। सईद ने कहा कि लोग मुआविया से डरते हैं। यह सुनकर इब्ने अब्बास अपने ख़ैमे से निकले और पुकारे लब्बैक अल्लहुम्मा लब्बैक और कहा। अगरचे यह मुआविया के लिए अलज़्ज़ोम (ज़िल्लत का सबब हो) इन लोगों ने अली[अ0स0] की अदावत से इस सुन्नत को तर्क कर दिया है। इस तरह की तीन रिवायतें कन्जुल उम्माल में दर्ज हैं, जिनमें इब्ने अब्बास ने बद–दुआ दी है इस बात पर कि अरफ़ा के रोज़ तलबिया कहने से इसलिए मना करते हैं कि अली अरफ़े के रोज़ तलबिया फ़रमाया करते थे।

हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] से यह कद (हसद) और ज़िद बहुत से सिनन व अहकाम में तरमीम का बाइस हो गई। चुनानचे इमाम फ़ख़रूद्दीन राज़ी लिखते हैं कि हज़रत अली[अ0स0] नमाज़ में बिस्मिल्लाह बलन्द आवाज़ से कहने पर ज़ोर देते थे। इसलिए जब बनी उमय्या को इक़्तेदार हासिल हुआ तो उन्होंने बलन्द आवाज़ से बिस्मिल्लाह कहने की मुमानिअत पर ज़ोर दिया सिर्फ़ इस कोशिश में कि हज़रत अली[अ0स0] के आसार बाक़ी न रहें।[1]

मदीने में मुआविया ने लोगों को नमाज़े इशा बा–जमाअत पढ़ाई तो न बिस्मिल्लाह पढ़ी और न बाज़ तकबीरें कहीं। जब नमाज़ से फ़ारिग़ हुए तो जमाअते मुहाजरीन व अन्सान ने शोर मचाया कि तुमने नमाज़ में अमदन चोरी की है या भूल गए हो? बिस्मिल्लाह और सज्दे में जाते हुए तक्बीरें कहाँ गईं? मगर मुआविया ने कोई परवाह नहीं की और उस नमाज़ का ऐआदा (दोबारा नहीं पढ़ी) नहीं किया।[2]

इसके साथ ही बुख़ारी और मुस्लिम दोनों के यहाँ यह रिवायत मौजूद है कि इमरान बिन हसीन ने हज़रत अली[अ0स0] के साथ बसरा में नमाज़ पढ़ी और ख़त्मे नमाज़ के बाद कहा कि उन्होंने हमको वह नमाज़ याद दिलाई जो हम रसूल अल्लाह के साथ पढ़ते थे। फिर ज़िक्र किया कि अली[अ0स0] जब सजदे से उठते थे और जब सजदे में जाते तो तकबीर कहते थे।[3]

---

[1]तफ़सीर कबीर जि/1, पेज/107

[2]कन्जुल उम्माल जि/2, पेज/210

[3]बुख़ारी जि/1, पेज/91

नीज़ मुतरफ़ बिन अब्दुल्लाह का बयान है कि मैंने और इमरान बिन हसीन ने अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के पीछे नमाज़ पढ़ी। पस जब अली सज्दा करते थे तो तकबीर कहते थे और जब सजदे से सर उठाते थे तो भी तकबीर कहते थे और जब दो रकअतों के बाद उठते थे तो तकबीर कहते थे। पस जब नमाज़ से फ़ारिग़ हुए तो इमरान ने मेरा हाथ पकड़ कर कहा, बेशक उन्होंने हमको हज़रत रसूल[स0अ0] की नमाज़ याद दिला दी या यह अलफ़ाज़ कहे कि उन्होंने हमको हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] वाली नमाज़ पढ़ाई।[1] इन ही बातों का नतीजा था कि असहाबे रसूल[स0अ0] रोते थे और अफ़सोस करते थे। चुनाँनचे बुख़ारी की रिवायत है कि एक रोज़ अबुल दर्दा गुस्से में भरे घर में आये, सबब दरियाफ़्त किया गया तो कहने लगे कि मैं उन लोगों में उम्मते मोहम्मद होने की कोई निशानी नहीं पाता। सिवा इसके कि नमाज़ जमाअत से पढ़ लेते हैं। इमाम मालिक ने रिवायत की है कि जो बातें हम पहले पाते थे उनमें से एक बात भी अब हम नहीं देखते, ब–जुज़ इसके कि अज़ान दे लेते हैं, और ज़हरी बयान करते हैं कि मैं अनस बिन मालिक के पास दमिश्क़ गया तो उनको रोते पाया। सबब पूछा तो अनस ने कहा कि जो बातें मैंने अहदे रसूल अल्लाह[स0अ0] में देखी थीं। अब उनमें से सिवा इस नमाज़ के कोई नज़र नहीं आती और यह नमाज़ भी ज़ाया (बदबाद) कर दी गई है।[2]

अमीरे शाम के यहाँ गाने वालों की क़द्र व मन्ज़िलत होती थी। चुनानचे सायब फ़ासिर ने जो एक फ़ासिक़ व फ़ाजिर शख़्स था उन्हें गाना सुनाकर अपनी तमाम हाजतें जो लेकर आया था पूरी करा लीं।[3]

इस आग़ाज़ का अन्जाम अगर यज़ीद की शराबख़्वारी और रक़्सो सुरूर के साथ फ़रेफ़्तगी (दीवानगी) की शक्ल में ज़ाहिर हो तो तारीख़ की तबई (बुराई) रफ़तार के लिहाज़ से क़ाबिले तअज्जुब नहीं है।

अल्लामा इब्नुल फ़क़ीह ने लिखा है कि मुआविया ने सबसे पहले पुलिस चौकी और पहरेदार मुक़र्रर किये और ख़्वाजा सरा बनाये और अमवाल ख़ज़ाने में जमा करके रखे।[4] उन्होंने सलातीन (बादशाह) रोज़गार की तरह अपने उम्माल (सरकारी मुलाज़िमों) के ज़रिये से नौरोज़ और महरगान (ईरानी

---

[1]बुख़ारी जि/1, पेज/91.96, मुस्लिम जि/1, पेज/169
[2]सही बुख़ारी जि/1 पेज/65
[3]तारीख़े तबरी जि/6 पेज/188
[4]अल–बुल्दान पेज/109

त्योहार) के तहाएफ़ वसूल किये जिनकी मिक़दार एक करोड़ दिरहम सालाना तक पहुंची।[1]

मज़कूरा बाला वाक़ेआत में से मुमकिन है कि बाज़ हैरत में डालने वाले हों मगर इसको क्या किया जाये कि तारीख़ में इससे ज़्यादा हैरत अंगेज़ बातें भी दर्ज हैं जिनको देखकर हर इन्सान यह नतीजा निकाल सकता है कि अबू सुफ़ियान की औलाद को बनी हाशिम से एक मौरूसी अदावत (ख़ानदानी दुश्मनी) जो थी उसकी बिना पर वह उनकी हर सुन्नत, हर रस्म और हर तरीक़े को फ़ना कर देना चाहते थे बल्कि सिरे से इस्लाम ही को नीस्तो नाबूद कर देने के दरपै थे। सिर्फ़ मजबूरी यह थी कि उनकी हुकूमत इस्लाम की बिना पर थी इसलिए उन्हें पैग़म्बरे इस्लाम[स0अ0] की नुबूअत का इन्कार मुमकिन न था लेकिन वह फिर भी हज़रत की अज़मत के एहसास और उसके असरात के क़ायम रखने का कोई जोश व वलवला न रखते थे। इसकी एक अदना मिसाल यह है कि मुआविया को शौक़ पैदा हुआ एक बड़े मुअम्मर (ज़ईफ़) आदमी से मुलाक़ात का जो गुज़िश्ता ज़माने के हालात बयान करे। लोगों ने कहा कि हज़रमूत (एक जगह का नाम) में एक शख़्स है जिसकी तीन सौ साठ बरस की उम्र है। मुआविया ने उस के पास आदमी भेजे और उसे बुलवाया। जब वह आया तो पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है? उसने कहा कि अबद बिन अबद। मुआविया ने उससे अब्दुल मुत्तलिब और उमैया वग़ैरह के हालात पूछे। फिर कहा तुमने मोहम्मद[स0अ0] को भी देखा है? उसे एक मुसलमान की ज़बान से हज़रत का नामे नामी इस तरह सुनकर हैरत हुई और उसने कहा व मन मुहम्मद यानी "मोहम्मद कौन? उन्होंने कहा "वही रसूल अल्लाह" उसने कहा फिर तुमने पहले ही उनका नाम इस शान के साथ क्यों न लिया? जिसका ख़ुदा ने उन्हें मुस्तहक़ क़रार दिया है। यह क्यों नहीं कहा कि तुमने रसूल अल्लाह को देखा है।?[2]

इससे ज़्यादा और इन्तेहाई हैरत ख़ेज़ यह है कि मुआविया को रसूल अल्लाह[स0अ0] कह कर सलाम किया गया और उनको सज़ा तो दरकिनार मामूली सी तन्बीह भी नहीं की गई। इस वाक़ेये की तफ़सील यह है कि अम्र बिन आस एक दफ़ा अहले मिस्र की एक जमाअत के साथ मुआविया के पास दारूल ख़िलाफ़ा शाम में बारयाबी (हाज़री) के लिए आये यह वह ज़माना था कि अम्र

---

[1]अल वुज़रा वल किताब पेज/15

[2]किताबुल मुअम्मरीन पेज/87, व असदुल ग़ाबा जि/1, पेज/115

बिन आस, मुआविया से कुछ बरसरे पुरख़ाश (नाराज़) थे। उन्होंने अपने साथियों को समझा दिया कि देखो जब तुम मुआविया के दरबार में जाना तो उसे ख़लीफ़ा कह कर सलाम न करना और जहाँ तक मुमकिन हो उससे हिक़ारत के साथ बात करना। उसकी वजह से तुम्हारी हैबत उसके दिल पर क़ायम हो जायेगी। मुआविया को जब उन लोगों के पहुँचने की इत्तेलाअ् हुई तो वह अपनी ज़हानत से अम्र बिन आस की साज़िश को ताड़ गए और दरबानों से कहा मेरा ख़याल है कि नाबग़ा के लड़के (अम्र आस) ने उन लोगों की नज़र में मेरी मन्ज़िलत को घटा दिया होगा। लिहाज़ा तुम ख़याल रखो जब यह लोग आयें तो उनके साथ इन्तेहाई सख़्ती करना। यहाँ तक कि हर शख़्स को उनमें से यक़ीन हो जाये कि उसकी जान की ख़ैर नहीं। नतीजा यह हुआ कि सबसे पहले जो शख़्स मुआविया के सामने दरबार में हाज़िर हुआ वह यूँ आदाब बजा लाया कि "अस्सलामु अलैका या रसूल अल्लाह" बस फिर क्या था, सब ने उसकी मुवाफ़िक़त की और जो आया उसने मुआविया को रसूल अल्लाह कह कर सलाम किया।[1]

मसल मशहूर है "अन्नासो अला दीने मुलूकेहिम" लोग बादशाहों के तरीक़े पर चलते हैं।" जब हुकूमत की यह रविश हो तो आम अफ़राद की नज़र में रसूल और शरीयते रसूल की क्या इज़्ज़त बाक़ी रह सकती है। जब लोग देख रहे हों कि हुकूमत की तरफ़ से मज़हब का नीलाम कराया जाता है और थोड़े से सिक्कों के एवज़ दीन व मज़हब की ख़रीदारी होती है तो लोगों की निगाह में मज़हब की क्या वक़अत बाक़ी रह सकती है?

वाक़ेया यह है कि हत्तात मजाशई, जारिया बिन क़ुदामा, अहनफ़ बिन क़ैस और जौन बिन क़तादा चारों आदमी मुआविया के पास आये। मुआविया ने हर एक को एक एक लाख दिरहम दिये मगर हत्तात को सत्तर हज़ार दिरहम दिये। हत्तात को जब इसका इल्म हुआ तो मुआविया से आकर इसकी शिकायत की। मुआविया ने कहा कि उन लोगों से मैंने उनका दीन ख़रीद किया है। हत्तात ने फिर कहा, फिर मुझसे भी मेरा दीन ख़रीद लीजिये।[2]

अब जो ज़रा भी ख़ुदा तरस मुसलमान थे वह ज़िन्दगी से आजिज़ हो गए थे। चुनानचे हकम बिन अम्र ग़फ़्फ़ारी ने जो यमन व ख़ुरासान के हाकिम बनाये गए थे जब 50 हिजरी में एक जंग के बाद अमवाले ग़नीमत (जंग में जीता

---

[1]तबरी जि/6, पेज/135, असदुल ग़ाबा पेज/154

[2]तबरी जि/6, पेज/135, इस्तीआब जि/1, पेज/154, असदुल ग़ाबा जि/1, पेज/379

हुआ माल) हासिल किये और यह हुक्म नामा पहुँचा कि लूट के माल को सिपाहियों में तक़सीम करने के बजाये तमाम नक़्द व जिन्स ख़ज़ान–ए–सरकारी में भेज दिया जाये तो उन्होंने हिम्मत करके यह जवाब लिख दिया कि यह हुक्म क़रआन के बिल्कुल ख़िलाफ़ है इसलिए मैं अमल करने से क़ासिर हूँ। मगर उसके बाद इतना ख़ौफ़ हुआ कि ख़ुदा से दुआ की। बारे इलाहा अब मुझे ज़िन्दगी दरकार नहीं है। मेरी रूह क़ब्ज़ फ़रमा ले। उसके बाद उनका इन्तेक़ाल हो गया।[1]

आसारे बनी हाशिम के मिटाने की सई (कोशिश) तामीरी यादगारों तक भी पहुँची। चुनाँनचे जब मुआविया ने हज किया तो वापसी में मदीने भी गए। और मिमबरे रसूल को उसकी जगह से हरकत दी। चाहते थे कि उसे शाम ले जायें उसी वक़्त सूरज को गहेन हुआ। जाबिर बिन अब्दुल्लाहे अन्सारी ने कहा, मुआविया ने रसूल अल्लाह के शहर और उनके दारूल हिजरत (हिजरत के घर) में बड़ा हादिसा रूनुमा (ज़ाहिर) किया। ज़रूर यह किसी मुसीबत में मुब्तिला होंगे। उसी साल मुआविया लक़वह में मुब्तिला हुए।[2]

यह सन 50 हिजरी का वाक़ेया है मिमबर को जुम्बिश देते ही सूरज में ग्रहन लगा ऐसा कि तारे नज़र आने लगे। अहले मदीना में इससे इतना हैजान पैदा हुआ कि मुआविया को अपना इरादा तर्क करना पड़ा और कहा कि मैंने तो मिमबर हटा कर सिर्फ़ यह देखना चाहा था कि उसे दीमक तो नहीं लगी है।[3]

हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ०स०] के साथ जो दुश्मनी थी वह भी आपकी ज़ात से ख़ुसूमत (कीना) की बिना पर न थी बल्कि सिर्फ़ इसलिए कि आप बनी हाशिम के चश्मो चिराग़ और उसूले इस्लाम के अलम बरदार थे। इसलिए सियासत का तक़ाज़ा यह था कि मुल्क में आपके ख़िलाफ़ नफ़रत पैदा कराई जाये। क़त्ले उसमान का इल्ज़ाम भी फ़क़त इस सियासत के पूरा करने का एक बहाना था। चुनाँनचे अल्लामा इब्ने हजर मक्की ने लिखा है। मरवान बिन हकम की ज़बानी मन्क़ूल है। उसने कहा कि कोई शख़्स अली से ज़्यादा उस्मान की हिमायत करने वाला न था। किसी ने कहा कि फिर तुम लोग

---

[1]तबरी जि/6, पेज/140–141

[2]किताबुल बुलदान पेज/24

[3]तबरी जि/6, पेज/133

मिम्बरों पर उन्हें गालियाँ क्यों देते हो? उसने कहा बग़ैर इसके हमारा इक़्तेदार क़ायम नहीं हो सकता।[1]

फिर जबकि सुल्हनामे की बुनियाद यानी किताब और सुन्नत की मुवाफ़िक़त (साथ चलने) वाली शर्त का यह अन्जाम हुआ तो दूसरी शरतों का नतीजा ज़ाहिर है। चुनाँनचे दूसरी शर्त यह कि मुआविया को अपने बाद किसी के नामज़द करने का हक़ न होगा, इसके अन्जाम का आइन्दा एक मुस्तक़िल बाब में बयान होगा।

तीसरी शर्त यह थी कि शाम व इराक़ व हिजाज़ (आज का सऊदी) व यमन सब जगह के लोगों के लिए अमान होगी। इसका अन्जाम बहुत दर्दनाक है। इराक़ में ज़ियाद बिन सुमैया के हाथों जो ख़ूँरेज़ियाँ हुईं वह सफ़ह–ए–तारीख़ पर नुमायाँ हुरूफ़ में दर्ज हैं। उस शख़्स के खुसूसियात में लिखा है कि वह जुर्म के पहले सज़ा देता, बदगुमानी की बिना पर बिला तहक़ीक़ व तफ़तीश क़ैद कर देता। और शुबहा (शक) पर ईज़ा रसानी (तकलीफ़ देना) करता था। इन्सान की जान लेना उसके नज़दीक कोई बात ही न थी। उसका एक अजीब नमूना इस वाक़ेये में है कि उसने यह आम हुक्म दे दिया था कि जो निस्फ़ शब (आधी रात) के क़रीब गली कूचे में नज़र आये उसको क़त्ल कर दिया जाये। एक रात एक देहाती अरब को गिरफ़्तार किया गया और उसे ज़ियाद के पास लाये। उसने अपनी सफ़ाई पेश की कि मैं यहाँ का रहने वाला नहीं हूँ। देहात से आज ही आया हूँ और मुझे आपके इस हुक्म की इत्तेला (जानकारी) नहीं थी। ज़ियाद ने कहा कि वल्लाह मेरे ख़याल में तू सच कह रहा है और बे ख़ता है मगर तेरे क़त्ल कर देने में अम्म–ए–ख़लाएक़ (तमाम लोग) के लिए बेहतरी है चुनानचे फ़ौरन उसे क़त्ल कर दिया गया।[2]

ज़ियाद की विलायत कूफ़े के बाद बसरा में उसके जानशीन समरा बिन जुन्दब के मज़ालिम उससे भी ज़्यादा थे। एक बार छेः महीने की मुद्दत में आठ हज़ार आदमी उसने तहेतेग़ किये। अबू सवार अददी का बयान है कि सुमरा ने मेरी क़ौम में से एक दिन में 47 आदमी क़त्ल किये जो सबके सब हाफ़िज़े क़ुरआन थे।

एक दिन सुमरा अपने लावलशकर के साथ शहर से बाहर निकला। बनी असद के मकानों के क़रीब एक शख़्स उस क़बीले का किसी ज़रूरत से एक

---

[1]सवाएक़े मुहर्रिक़ा पेज/33

[2]तबरी जि/6, पेज/126

गली में से निकला। लशकर के आगे आगे के सवारों में से एक ने उसे देखते ही अपने हरबे से हमला कर दिया और वह गिर कर ख़ाक व ख़ून में तड़पने लगा। सुमरा बिन जुन्दब उसकी लाश पर से गुज़रा और वाक़ेया मालूम होने पर कहा कि जब हमारी सवारी गुज़रा करे तो हमारे नैज़ों से बचते रहा करो।[1]

मुस्लिम अजली का बयान है कि एक शख़्स सुमरा के पास आया और अपने माल की ज़कात अदा की। फिर मस्जिद में आकर नमाज़ पढ़ना शुरू की। इतनी देर में एक शख़्स आया और उसकी गर्दन उड़ा दी। इस तरह कि मस्जिद में एक तरफ़ उसका सर कट कर जा गिरा और दूसरी तरफ़ बदन।

एक दूसरे मौक़े पर मुशाहिदा बयान किया है कि बहुत से आदमी इस तरह क़त्ल किये गए कि उनसे शहादतैन (दो गवाहियाँ) का इक़रार लिया जाता था। वह तौहीद और रिसालत का इक़रार करते थे और ख़वारिज (दीन से फिरे हुए) से बराअत (बेज़ारी) का एलान करते थे और फिर उसके बाद उनका सर क़लम कर दिया जाता था। और यह सब कुछ अमीरे शाम मुआविया की मर्ज़ी के मुताबिक़ होता था। चुनाँनचे जब अरसे के बाद मुआविया ने सुमरा को माज़ूल (हटाना) किया तो उसने कहा, ख़ुदा ग़ारत करे मुआविया को। अगर मैंने अल्लाह की इतनी इताअत की होती जितनी मुआविया की इताअत अन्जाम दी तो वह कभी मुझको अज़ाब न करता।[2]

चौथी शर्त यह थी कि हज़रत अली[अ0स0] के असहाब और शियों के जान व माल व नामूस व औलाद महफ़ूज़ रहेंगे। इस शर्त पर क़तई अमल नहीं हुआ।

इराक़ में शिअ्याने अली[अ0स0] पर जितने मज़ालिम हुए उनमें सबसे हल्की बात यह थी कि उनको कूफ़े से जिला वतनी पर मजबूर किया जाता था और उनकी जगह मुआविया के तरफ़दारों को ला कर बसाया जाता था।[3]

कूफ़े और बसरा दोनों जगह के शियों को मुल्क बदर कर दिया गया। उनमें से अक्सर को शाम के मक़ाम क़न्सरीन में जो बिल्कुल ग़ैर आबाद था ले जाकर फ़ौजी ज़िन्दगी गुज़ारने पर मजबूर किया गया।[4]

---

[1]तबरी जि/6, पेज/132
[2]तबरी जि/6, पेज/164
[3]तबरी जि/3, पेज/240
[4]तबरी जि/4, पेज/260

हुज्र बिन अदी और उनके साथी शाम में बुलवाकर क़त्ल कर दिये गए हालाँकि वह ऐलान कर रहे थे कि हम मुसलमान हैं। अपने मुहाएदे पर क़ायम हैं और बाग़ी नहीं हैं।[1]

मगर उनका सबसे बड़ा जुर्म यही था कि वह मुहिब्बे अहलेबैत[अ०स०] थे इसलिए उनके वास्ते न हिल्म (बरदाश्त) में गुन्जाइश थी न रहमो करम उन पर निगाह डालने की इजाज़त देता था। सैफ़ी बिन फ़सील शैबानी जो उन्हीं में से एक मुमताज़ फ़र्द थे। ज़ियाद के पास लाये गए तो ज़ियाद ने पूछा कि तुम अली बिन अबी तालिब के बारे में क्या राय रखते हो? कहा बेहतरीन राय जो अल्लाह के बन्दगाने मोमिन में से किसी के बारे में रखी जा सकती है। ज़ियाद ने हुक्म दिया कि इसे लकड़ी से पीटो, इतना कि ज़मीन से लग जाये। चुनाँनचे उन्हें इतनी ही शिद्दत से ज़दो कूब (मारना, तकलीफ़ पहुंचाना) किया गया। ज़ियाद ने कहा बस करो। फिर पूछा, हाँ अब बताओ अली के बाब में क्या कहते हो। कहा ब–ख़ुदा अगर उस्तुरों और छुरियों से मेरी बोटियाँ काट डालो तब भी वही कहूँगा जो पहले सुन चुके हो। कहा तुझ को उन पर लानत करना होगी। वरना तेरी गर्दन उड़ा दी जायेगी। सैफ़ी ने कहा तो फिर पहले गर्दन उड़ा ही क्यों न दो, मुझे इसमें कोई उज़्र नहीं बल्कि मैं इससे राज़ी और मुतमइन हूँ। [2]

ज़ियाद ने बारह आदमियों को पा–ब–ज़ंजीर शाम की तरफ़ रवाना किया।[3]

1, हुज्र बिन अदी कन्दी, 2, अरक़म बिन अब्दुल्लाह कन्दी, 3,शरीक बिन शद्दाद हज़रमी, 4,सैफ़ी बिन फ़सील, 5, क़बसिया बिन ज़बीआ अबसी, 6, करीम बिन अफ़ीफ़ ख़सअमी, 7, आसिम बिन औफ़ बिजली, 8, वरक़ा बिन समी बिजली, 9, कुदाम बिन हयात गज़ी, 10, अब्दुर्रहमान बिन हिसान ग़ज़ी, 11, महरज़ बिन शहाब तमीमी, 12, अब्दुल्लाह बिन हविया सअ्दी।

अतबा बिन अख़नस सादी और सअ्द बिन नमरान हमदानी, इन दो आदमियों को ज़ियाद ने बाद में भेजा जिसके बाद उनकी तादाद चौदह हो गई।[4]

---

[1]तबरी जि/6, पेज/148,153

[2]तबरी जि/6, पेज/149

[3]तबरी जि/6, पेज/144

[4]तबरी जि/6, पेज/152

उनमें से सात आदमी मुख़तलिफ़ लोगों की सिफ़ारिश पर छोड़ दिये गए और छेः आदमियों को मक़ामे मरज अज़रा में तहेतेग़ (क़त्ल) किया गया।[1]

एक शख़्स अब्दुर्रहमान बिन हिसान ग़ज़ी के लिए मुआविया को खुद अपनी बेरहमी नाकाफ़ी महसूस हुई और उनको फिर ज़ियाद के पास भेज दिया। इस इन्तेबाह (ख़बरदार) के साथ कि यह उन लोगों में सब से ज़्यादा शियीयत में सख़्त है। तुम उसको बद से बद तरीक़ा जो इख़्तियार कर सको उस तरह क़त्ल करो चुनाँनचे ज़ियाद के हुक्म से उन्हें ज़िन्दा ज़मीन में दफ़्न कर दिया गया।[2]

हुज्र बिन अदी उनमें से थे जो मरजे अज़रा में क़त्ल किये गए। उनको आलमे इस्लाम में कितनी हरदिल अज़ीज़ी थी। इसका अन्दाज़ा इससे हो सकता है कि जब ज़ियाद की मुख़बिरी की इत्तेला उम्मुल मोमिनीन आइशा को पहुँची तो उन्होंने अब्दुर्रहमान बिन हारिस बिन हिशाम को हस्बे ज़ैल (नीचे लिखे हुए) पैग़ामात के साथ मुआविया के पास रवाना किया। ''अल्लाह अल्लाह फ़ी हुज्र व असहाबेही'' यानी हुज्र और उनके असहाब के बारे में खुदा का ख़ौफ़ करना, मगर अफ़सोस है कि अब्दुर्रहमान उस वक़्त पहुँचे जब हुज्र अपने साथियों समेत क़त्ल हो चुके थे। अब्दुर्रहमान ने मुआविया से कहा, आपके पास से कहाँ चला गया था। अबू सुफ़ियान से मीरास में मिला हुआ हिल्म? आपने उस हिल्म से काम क्यों न लिया? आपने उनको जेल ख़ाने ही में डाल दिया होता और वबा व ताऊन (Plage) से हलाक हो जाने दिया होता। मुआविया ने तन्ज़िया तौर पर जवाब दिया कि तुम्हारे ऐसा कोई मशवरा देने वाला मौजूद न था। अब्दुर्रहमान ने कहा। अब ब–खुदा अरब में न तो आपके हुक्म का कोई ज़िक्र होगा और न आपकी इसाबते राय (ठीक राय) क़ाबिले तस्लीम रही। आपने ऐसे आदमियों को क़त्ल किया जिनको क़ैद करके आपके पास भेजा गया था और वह मुसलमान थे।

आएशा को इस हादिसे की इत्तेला पहुँची तो उन्होंने कहाः ''अगर मुआविया को एहसास होता कि अहले कूफ़ा में कुछ भी जुर्रअत व हिम्मत है तो वह कभी हुज्र और उनके असहाब को गिरफ़्तार कराके शाम बुलवाने और क़त्ल करने की जुरअत न करता। लेकिन जिगर ख़्वारा के लड़के को मालूम है कि आदमी फ़ना हो चुके हैं। खुदा की क़सम यह लोग अपनी इल्मी लियाक़त

---

[1]तबरी जि/6, पेज/154

[2]तबरी जि/6, पेज/155

और फ़िक़्ही क़ाबिलियत के लिहाज़ से अरब के सर और दिमाग़ समझे जा सकते थे। लुबीद शायर ने क्या ख़ूब नज़्म किया है अपने दो शेअ्रों में जिनका मज़मून यह है कि गुज़र गए वह लोग जिनकी पनाह में ज़िन्दगी बसर की जा सकती थी और रह गया हूँ मैं ऐसे पस मान्दा (दबे कुचले) अफ़राद में जो ख़ारशी (खुजली वाले) ऊँट की खाल के मिस्ल हैं। न तो उनसे कोई फ़ायदा है और न उनसे किसी अच्छाई की तवक़्क़ो है जब वह बात करते हैं तो उयूब से ममलू (ख़राबियों से भरी) होती है चाहे वह शोरो गुल बर्पा न करें।

जब मुआविया मदीन–ए–रसूल में आये और उम्मुल मोमिनीन आएशा के पास सलाम के लिए हाज़िर हुए तो सबसे पहली बात जो आएशा ने पेश की वह हुज्र का मुआमला था और उस गुफ़्तगू में यहाँ तक तूल हुआ कि मुआविया ने कहा, अच्छा फिर छोड़ दीजिये, मुझे और हुज्र को, ख़ुदा के यहाँ देखा जायेगा।

अब्दुल्लाह बिन उमर का वाक़ेया है कि वह बाज़ार में थे। उनको हुज्र के क़त्ल की ख़बर मिली तो वह बेचैन हो गए। नशिस्त क़ायम न रख सके और खड़े हो कर चीख़ें मार मार कर रोने लगे।

हसन बसरी को जब हुज्र और उनके साथियों के क़त्ल का हाल मालूम हुआ तो पूछा कि क्या उन पर नमाज़े जनाज़ा पढ़ी गई? कफ़न दिया गया? और दफ़्न किया गया और क़िब्ला रूख़ लाश रखी गई? मालूम हुआ कि यह सब किया गया। हसन ने कहा तो फिर बख़ुदा हुज्जत उनकी तमाम हो गई। [1]

मतलब यह था कि लाशों के साथ इस्लामी अहकाम पर अमल उनके मुसलमान समझे जाने का सुबूत है तो फिर उनका ख़ून मुबाह (जाएज़) क्योंकर हो सकता है।

रबी बिन ज़ियाद हारसी ने जो ख़ुरासान के हाकिम थे हुज्र बिन अदी के क़त्ल होने और मुसलमानों की बेहिसी का तज़किरा किया और फिर जुमा के दिन मस्जिद में आ कर हाज़िरीन से कहा, ऐ लोगो! मैं इस ज़िन्दगी से आजिज़ आ चुका हूँ। अब में एक दुआ माँगता हूँ, तुम सब आमीन कहना। उसके बाद हाथ उठाये और कहा। ख़ुदा वन्दा अगर रबीअ् के लिए तेरे नज़दीक कुछ बेहतरी है तो जल्दी उसकी रूह क़ब्ज़ फ़रमा ले। उसके बाद

---

[1]तबरी जि/6, पेज/155

मस्जिद से बाहर निकले, कुछ दूर न गए थे कि ज़मीन पर गिर पड़े और इन्तेक़ाल किया।[1]

खुद मुआविया को बाद में हुज्र के बेगुनाह क़त्ल करने के जुर्म का एहसास पैदा हो गया था चुनाँनचे जब वह मरजुल मौत में मुबतिला हुए और तकलीफ़ ज़्यादा हुई तो एक रोज़ अब्दुल्लाह बिन यज़ीद असदी उनके पास आया। उसने देखा कि वह बहुत मुज़तरिब (बेचैन) हैं। उसने (खुशामदाना लब व लहजे में कहा) आपको इज़तेराब की क्या ज़रूरत है? अगर मर गए तो जन्नत में पहुँचे और अगर ज़िन्दा रहे तो मुसलमानों के जहाँ पनाह रहे। मुआविया ने कहाः "खुदा रहमत नाज़िल करे तुम्हारे वालिद पर, वह मुझे हुज्र बिन अदी के क़त्ल से मना करते थे।" मुहम्मद बिन सीरीन की रिवायत है कि जब मुआविया का वक़्ते वफ़ात क़रीब आया और उन्हें घर्रा लगा तो उन्होंने कहा कि: يومی منک يا حجر يوم طويل(ऐ हुज्र तुम्हारे क़त्ल से मुझे तवील रोज़ का समना होगा।)"[2] हुज्न व मुशक़्क़त का ज़माना तूलानी होता है। लिहाज़ा इससे मक़सूद यह है कि मुझे इस क़त्ल के सबब से रोज़े क़यामत बड़ी तकलीफ़ व ज़हमत का सामना करना पड़ेगा।

अम्र बिनुल हुमुक़ अल खुज़ाई एक बुज़र्ग थे जिनको हज़रत पैग़म्बर[स0अ0] ने सलाम कहलवाया था और इसलिए बहुत बलन्द मर्तबा इन्सान समझे जाते थे। उनकी गिरफ़्तारी का हुक्म हुआ और मुआविया की खुसूसी हिदायत के मुताबिक़ उन पर नौ वार नैज़े के किये गए। हालाँकि पहले या दूसरे ही ज़ख़्म में वह जाँ बहक़ तस्लीम हो चुके थे।[3]

तारीख़ की तस्रीह (खुली हुई) के मुताबिक़ सबसे पहला सर जो इस्लाम में नैज़े की नोक पर बलन्द किया गया था उनका सर था।

इन वाक़ेयात से शिअ़याने अली[अ0स0] में तलातुम (हलचल) बर्पा हो गया। और हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] पर भी सख़्त असर हुआ चुनाँनचे देनवरी ने लिखा है कि जब हुज्र बिन अदी और उनके असहाब क़त्ल हो गए तो अहले कूफ़ा ने उसको बड़ी नागवार मुसीबत समझा और कुछ लोग अशराफे (बुज़ुर्ग) अहले कूफ़ा में से हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के पास गए और आपको इत्तेला

---

[1]तबरी जि/6, पेज/163
[2]तबरी जि/6, पेज/143
[3]तारीख़े जि/6, पेज/148

दी। आपने कहा ''انا لله وانا اليہ راجعون'' और यह वाक़ेया आपको बहुत शाक़ हुआ।[1]

ताहम आपने इस वाक़ेये पर एक दम कोई इन्तेहाई क़दम उठाना मुनासिब नहीं समझा बल्कि आइन्दा हालात का बेचैनी के साथ इन्तेज़ार करते रहे। बेशक जब मुआविया को यह मालूम हुआ कि लोग इमाम हुसैन[अ०स०] के पास शिकायत ले गए हैं और आपने भी उनके साथ इज़हारे हमदर्दी किया है तो उन्हें यह अन्देशा पैदा हुआ कि कहीं आप मुख़ालिफ़त के लिए खड़े न हो जायें। इस बिना पर उन्होंने उनके नाम एक तहदीदी (सख़्ती भरा) ख़त लिखा। उसके जवाब में अब हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] ख़ामोश न रह सकते थे। आपने एक एक कर के अमीरे शाम की जो खिलाफ़ वर्ज़ियाँ मुआहदे के मुतअल्लिक़ थीं वह गिनवाईं और खुसूसियत के साथ हुज्र बिन अदी वग़ैरह के क़त्ल को आपने मुअस्सिर (असर दार) अलफ़ाज़ में पेश किया और उस पर सख़्त एहतिजाज फ़रमाया। जिसका ज़िक्र इस बाब के आख़िर में आयेगा।

पाँचवीं शर्त यह थी कि इमाम हसन[अ०स०] और इमाम हुसैन[अ०स०] या किसी को भी ख़ानदाने रसूल[स०अ०] में से कोई नुक़सान पहुँचाने की कोशिश न की जायेगी। न खुफ़िया न एलानिया। इस शर्त की भी सरीह (खुली) ख़िलाफ़ वर्ज़ी की गई। हालाँकि इस सुल्ह के बाद यह हज़रात मुल्की और सियासी उमूर से बिल्कुल बे तअल्लुक़ रहे मगर उसके बाद भी इमाम हसन[अ०स०] बनी उमैया की ईज़ा रसानियों (तकलीफ़ पहुँचाना) से महफ़ूज़ नहीं रहे। उसकी मुख़तलिफ़ सूरतें थी। पहले ग़लत प्रोपैगन्डे और बे बुनियाद इलज़ामात जिनसे उनकी रफ़अते (बलन्द) मर्तबा पर आम निगाहों में हर्फ़ आये वह लोग समझते थे कि ख़ानदाने पैग़म्बर[स०अ०] के इन मुक़द्दस अफ़राद की ज़िन्दगी इतनी पाक है कि उनके ख़िलाफ़ ऐसा जुर्म जो खुला हुआ उसूले शरियत के ख़िलाफ़ हो आयद करना किसी तरह मुफ़ीद न होगा। और वह हरगिज़ मुसलमानों की जमाअत में बावर (कुबूल) नहीं किया जा सकता इसलिए इस तरह के इलज़ामात लगाये जो शरअ् के हुदूद के अन्दर तो हों मगर आम निगाहों में कुछ अच्छी हैसियत से देखे न जाते हों मसलन कसरते इज़दवाज (ज़्यादा शादियाँ) और कसरते तलाक़। यह चीज़ बजाये खुद शरअ् इस्लामी में जाएज़ है लेकिन बनी उमैया के प्रोपैगन्डे ने उसको हज़रत इमाम हसन[अ०स०] की निसबत ऐसे हौलनाक तरीक़े पर पेश किया जिससे लोग हज़रत इमाम हसन[अ०स०] की निसबत कुछ

[1]अख़बारूत्तुवाल, इरशाद पेज/206

अच्छी राय क़ायम न करें। इसी तरह दोनों भाईयों के इख़तिलाफ़े तबियत और इख़तिलाफ़े राय का प्रोपिगन्डा और ऐसी बहुत सी चीज़ें जो सिर्फ़ उमवी सियासत की पैदावार थीं।

दूसरे उम्माले बनी उमैया (बनी उमैया के कारिन्दे) और उनके हवा ख़्वाहों का हज़रत इमाम हसन[अ0स0] से बुरा बर्ताव सख़्त कलामी और दुशनाम तराज़ी (गाली गलौज) जिससे किसी वक़्त मुशतइल (गुस्सा) हो कर हज़रत इमाम हसन[अ0स0] या बनी हाशिम में से दूसरे लोग लड़ने मरने पर तैयार हो जायें। और इससे एक तरफ़ उन पर मुआहिदे की ख़िलाफ़ वर्ज़ी का बे बुनियाद इलज़ाम आयद किया जा सके। दूसरे उनकी ख़ूँरेज़ी का एक बहाना हाथ आये। उसका अन्दाज़ा इमाम हुसैन[अ0स0] के इन अलफ़ाज़ से होता है जो आपने मरवान बिन हेकम को मुख़ातब करते हुए फ़रमाये हैं। उस वक़्त कि जब इमाम हसन[अ0स0] की वफ़ात के बाद आपके जनाज़े पर मरवान रो रहा था। इमाम हुसैन[अ0स0] ने कहाः "आज तुम रो रहे हो हालाँकि इसके पहले तुम ही उनको ग़म व गुस्से के घूँट पिलाया करते थे।" मरवान ने कहाः "ठीक है मगर वह सब मैं ऐसे इन्सान के साथ करता था जो इस पहाड़ से ज़्यादा कुव्वते बर्दाश्त रखने वाला था।"

मगर इस इन्तेहाई ज़ब्त और तुहम्मुल (बरदाश्त) के बाद भी इमाम हसन[अ0स0] की ज़िन्दगी महफ़ूज़ न रह सकी। सलतनत को जब कोई बहाना उनके ख़िलाफ़ खुले हुए जौरो सितम का न मिला तो फिर वह ख़ामोश हर्बा इस्तेमाल किया गया जो सलतनते बनी उमैया में अक्सर बड़ी मुहिमों के सर करने में सर्फ़ किया जाता रहा था। अमीरे शाम मुआविया ने अशअस बिन क़ैस की बेटी जाअ्दा के साथ जो हज़रत इमाम हसन[अ0स0] की ज़ौजियत में थी साज़ बाज़ करके उसको एक लाख दिरहम भिजवाये और यज़ीद के साथ शादी हो जाने का वादा किया और उसके ज़रिये से हज़रत को ज़हर दिलवा दिया जिससे आपके कलेजे के टुकड़े हो गए।[1] जब आप की हालत दिगरगूँ (ख़राब) हुई तो आपने अपने मुख़तलिफ़ुल बत्न (सौतेले) भाई मोहम्मद बिन हन्फ़िया को बुला कर फ़रमाया कि देखो कहीं ऐसा न हो कि मेरे बाद हुसैन से तुम इख़तिलाफ़ करो। हुसैन मेरे बाद इमाम हैं। और उनकी इताअत लाज़िम

---

[1]इरशाद पेज/197

है। मोहम्मद ने निहायत खुलूस के साथ इक़रारे वफ़ादारी किया और इमाम हुसैन[अ0स0] की इताअत का वादा किया।[1]

फिर हज़रत ने इमाम हुसैन[अ0स0] को पास बुलाया और वसीयत की कि मुझे गुस्लो कफ़न के बाद मेरे जद्दे बुज़ुर्गवार रसूले खुदा[स0अ0] के रौज़े पर ले जाना ताकि एक मर्तबा ज़ियारते रसूल का शरफ़ और हासिल हो जाये।[2]और मुझे यक़ीन है कि लोग यह ख़याल करते हुए कि मुझे वहाँ दफ़्न किया जायेगा मुज़ाहमत (रोकेंगे) करेंगे। तो ख़बरदार इस बारे में एक क़तरा ख़ून भी गिरने न पाये। तुम मुझको मेरी दादी फ़ातिमा बिन्ते असद की क़ब्र के पास जन्नतुल बक़ी में दफ़्न कर देना।[3]

28/सफ़र सन 50 हिजरी को वह अमन व सुलह व सलामती का शहनशाह दुनिया से रूख़सत हो गया। इमाम हुसैन[अ0स0] वसीयत के मुताबिक़ अपने भाई को गुस्ल के बाद ताबूत में लिटा कर रौज़–ए–रसूल की तरफ़ ले चले। बनी उमैया को यक़ीन हुआ कि आपको वहाँ दफ़्न करेंगे। सबके सब मरवान के साथ हथियार बाँध कर निकल आये और बीच में सद्दे राह हुए। उस वक़्त बनी हाशिम को बहुत ज़्यादा इश्तेआल (बेचैनी) था मगर हुसैन[अ0स0] अपने भाई इमाम हसन[अ0स0] की वसीयत और फ़र्ज़ के एहसास से मजबूर थे। आप फ़रमा रहे थे कि खुदा की क़सम अगर भाई की वसीयत और उनके उसूल का पास न होता तो तुम देखते कि कैसी इस वक़्त तलवार चलती है।[4] बहरहाल हज़रत इमाम हसन[अ0स0] के जनाज़े को रौज़–ए–रसूल से वापस ले गए और जन्नतुल बक़ी में दफ़्न कर दिया।[5] फिर यह ख़बरें भी मालूम हुईं कि अमीरे शाम ने इमाम हसन[अ0स0] की वफ़ात पर इज़हारे मसर्रत किया और तअ्न व तशनीअ् के कलिमात कहे। इत्तेफ़ाक़ से उस वक़्त इब्ने अब्बास दमिश्क़ में थे उन्होंने यह अलफ़ाज़ सुने तो कहा कि खुश न हो तुम भी हसन के बाद अरसे तक ज़िन्दा न रहोगे।[6]

हज़रत इमाम हसन[अ0स0] की वफ़ात बनी हाशिम के लिए एक सख़्त हादिसा थी, चुनाँनचे इस सानेह–ए–अज़ीम पर बनी हाशिम एक महीना कामिल

---

[1]काफ़ी जि/1, पेज/186
[2]काफ़ी जि/1, पेज/185 व 187
[3]इरशाद, पेज/198
[4]इरशाद, पेज/199
[5]काफ़ी जि/1, पेज/188
[6]अख़बारूत्तवाल, पेज/224

सोगवार रहे।[1] मगर इसके बाद भी इमाम हुसैन[अ0स0] उसी रास्ते पर क़ायम रहे जो इमाम हसन[अ0स0] ने क़ायम कर दिया था और इस तरह यह ख़याल बिल्कुल ग़लत साबित हो गया कि आपको अपने भाई से उसूली इख़तिलाफ़ था। और सिर्फ़ उनके दबाओ की वजह से आप उस पर क़ायम थे। ऐसा नहीं बल्कि आप उसी रास्ते को सही समझते थे और इसी लिए खुद साहिबे इख़्तियार होने के बाद भी उसी को बरक़रार रखा। हालाँकि उस वक़्त शियों में हैजान भी पैदा हुआ जिसका तज़किरा तारीख़ इन अलफ़ाज़ में करती है कि जब हज़रत इमाम हसन[अ0स0] की वफ़ात हुई तो इराक़ के शियों में हरकत पैदा हुई और उन्होंने इमाम हुसैन[अ0स0] को लिखा कि हम लोग मुआविया की बैयत तोड़कर आपसे बैयत करने पर तैयार हैं मगर आपने फ़रमाया कि नहीं, हम में और मुआविया में मुआहेदा हो चुका है। इसका तोड़ना मेरे लिए सही नहीं है। बेशक जब मुआविया का इन्तेक़ाल होगा तो देखा जायेगा।[2]

आप सब्र व सुकून के साथ तमाम शराएत की ख़िलाफ़ वर्ज़ी और हुकूमते शाम की चीरह दस्तियों (सरकशी) को देखते और उनसे मुतअस्सिर होते रहे और उन्हें आप ने एक एक करके उस वक़्त ज़ाहिर कर दिया जब अमीरे शाम ने आपको एक तहदीद आमेज़ (सख़्ती भरा) ख़त लिया है। आपने उसके जवाब में एक तारीख़ी मकतूब (लिखित) तहरीर फ़रमाया जो दर्ज ज़ैल है।

''तुम्हारा ख़त मिला जिसमें तुम ने लिखा है कि तुम ने मेरे मुतअल्लिक़ अपनी मुख़ालिफ़त के बारे में कुछ ख़बरें सुनी हैं जिनकी तुमको उम्मीद न थी। तुमको जो ख़बरें पहुँची हैं वह तुम्हारे खुशामदी लोगों और चुग़लख़ोरों की पहुँचाई हुई हैं। जो इफ़तेरा (झूठ) और बोहतान की हैसियत रखती हैं। मैं इस वक़्त तुम से मुख़ासिमत और जंग का कोई इरादा नहीं रखता। और ख़ामोश हूँ मगर तुम को मालूम होना चाहिए कि मैं इस ख़ामोशी से खुश नहीं हूँ और यक़ीनन मुझे अपने इस सुकूत से यह अन्देशा है कि कहीं खुदा इसकी वजह से मुझ पर नाराज़ न हो। यह मेरी ख़ामोशी तुम्हारे लिए और तुम्हारे हवाख़्वाहों (तरफ़दारों) के लिए कभी कोई सनद नहीं बन सकती। क्यों मुआविया! क्या तुम ही नहीं हो वह शख़्स जिसने हुज्र कन्दी को क़त्ल किया? क्या तुम ही वह नहीं हो जिसने ऐसे नमाज़ गुज़ारों और परहेज़गारों को क़त्ल किया जो ज़ुल्म व बिदअत को पसन्द न करते थे। और दीन के मुआमिले में किसी शख़्स की

---

[1]मुस्तदरक हाकिम जि/3, पेज/173

[2]इरशाद, पेज/206

मलामत और सरज़निश की परवा न करते थे। हालाँकि तुम उनके साथ बड़ी क़स्में खा कर पुख़्ता वादा कर चुके थे और उन्होंने न कोई फ़ितना मुल्क में पैदा किया था और न तुम्हारी मुख़ालिफ़त की थी मगर तुम ने उनको क़त्ल किये बग़ैर न छोड़ा। क्या तुम ही वह शख़्स नहीं हो कि जिसने अम्र बिन हुमुक़ ख़ुज़ाई सहाबिये रसूल[स0अ0] को क़त्ल किया जो ऐसा सालेह और इबादत गुज़ार बन्दा था कि कसरते इबादत से उसका जिस्म घुल गया था। बदन ढल गया था। कुव्वतें ज़ायल (ख़त्म) हो गई थीं और चेहरे पर ज़र्दी छा गई थी। तुम ने पहले उनको अमान दे दी, और ऐसा मज़बूत वादा किया था कि अगर ऐसा वादा किसी जानवर से भी किया जाये तो वह पहाड़ की चोटी से उतर कर पास आ जाये। फिर तुम ने बड़ी जसारत के साथ इस अहेद को तोड़ डाला और बे जुर्म व ख़ता उनको मार डाला। क्या तुम ही वह शख़्स नहीं हो जिसने ज़ियाद बिन सुमैया को जो बनी सक़ीफ़ के ग़ुलाम उबैद नामी का बेटा था अपना भाई, अपने बाप अबू सुफ़ियान का बेटा क़रार दिया। हालाँकि रसूल अल्लाह[स0अ0] ने फ़रमाया है कि बेटा उसका समझा जायेगा जो औरत का असली शौहर हो, और ज़िना कार के लिए बस पत्थर हैं और कुछ नहीं। मगर तुम ने अपनी मसलहत की बिना पर रसूल[स0अ0] को पसे पुश्त डाल दिया और उसको अपना भाई बना कर इराक़ीन का हाकिम बना दिया ताकि वह मुसलमानों के हाथ पैर क़ता करे और उनकी आँखों को गर्म लोहे की सलाख़ों से फोड़े। और दरख़्तों की शाख़ों में लटका कर मारे। क्या तुम ही वह नहीं हो जिसे ज़ियाद बिन सुमैया ने लिखा था कि हज़रमीयीन अली के दीन पर हैं। तुम ने हुक्म दिया कि जो लोग अली[अ0स0] के दीन पर हैं उनमें से एक को ज़िन्दा न छोड़ो। उसने सबको मार डाला और मुसला (जिस्म के टुकड़े करना) भी किया। और जो तुम ने मुझे लिखा है कि मैं अपने नफ़्स का, अपने दीन का और उम्मते मोहम्मदी का ख़याल करूँ और उनको फ़ितने में न डालूँ। और जमाअत की तफ़रीक़ से परहेज़ करूँ। तो मेरे ख़याल में कोई फ़ितना इस उम्मत में तुम्हारी ख़िलाफ़त व हुकूमत से बढ़कर नहीं है। और मैं अपने नफ़्स, अपने दीन और उम्मते मोहम्मदी के लिए किसी फ़ायदे को इससे बढ़कर नहीं समझता कि मैं इन उमूर (काम) में तुम्हारी मुज़ाहमत (मुख़ालिफ़त) करूँ। अगर मैं ऐसा करूँ तो बेशक क़ुरबते इलाही का मूजिब (सबब) होगा और अगर तर्क करूँ और ख़ामोश रहूँ तो इसके लिए ख़ुदा से इस्तेग़फ़ार करूँगा। और उससे रूशदो (हिदायत) सलाहियत का तालिब हूँगा।''

इस ख़त से इमाम हुसैन[अ0स0] के तअस्सुरात का पूरे तौर पर अन्दाज़ा होता है और यह कि आप किसी अहम इक़दाम के लिए अपनी ज़िम्मेदारी को महसूस कर रहे थे। लेकिन इसके बाद भी आपने उस वक़्त तक बिल्कुल ख़ामोशी इख़्तियार की जब तक कि मुआहेदे की आख़िरी साँस भी क़ायम समझी जा सकती थी। उसके बाद के वाक़ेयात आने वाले अबवाब (किताब के हिस्से) में नज़्रे नाज़रीन होंगे।

दसवाँ बाब

यज़ीद की वली अहदी

मुआविया के लिए उनकी ज़िन्दगी का तवील दौर कम न था जिस में उन्होंने मुसलमानों की क़िसमत के मालिक बन कर अपने हौसले निकाल लिये थे। और दुनिया की जाहो हशमत और माल व दौलत के ख़ूब ख़ूब मज़े उठा चुके थे। जिसका एतेराफ़ उन्होंने एक ख़ास अन्दाज़ में खुद भी किया और कहा कि हम तो दुनिया में ग़लताँ (खो गए) हो गए और लोट लोट के उस में रहे।[1] मगर उन्होंने इस पर इक्तेफ़ा न की और यह चाहा कि उनकी औलाद भी इसी तरह बहरा अन्दोज़ (फ़ायदा उठाये) हो। हालाँकि वह मुआहेदे में यह शर्त कर चुके थे कि मैं अपने बाद किसी को ख़लीफ़ा नामज़द न करूँगा। फिर भी उन्हें फ़िक्र इस की हुई कि अपने बेटे को अपना जानशीन बना दें मगर वह यज़ीद के अफ़आल व आदात की वजह से समझते थे कि मुसलमानों को इस पर तैयार करना बड़ा दुशवार गुज़ार मरहला है। इस लिए वह उसको ज़बान पर नहीं लाते थे। ताहम रफ़्ता रफ़्ता (धीरे धीरे) उसके इन्तेज़ामात मुकम्मल कर रहे थे। उनमें से एक ऐसे बाअसर अफ़राद का जो मुद्दईये ख़िलाफ़त (ख़िलाफ़त का दावेदार) बन सकें ख़त्म करना था। चुनाँनचे अब्दुर्रहमान बिन ख़ालिद बिन वलीद जिनका असर इस वजह से शाम में बढ़ गया था कि उनके वालिद के कारनामे रूमियों के मुक़ाबले में अहले शाम के ज़बाने ज़द (ज़बानों पर) थे और इस बिना पर मुआविया को अन्देशा था कि कहीं अहले शाम उनको ख़लीफ़ा तस्लीम न कर लें। लिहाज़ा उनका इलाज यह किया गया कि इब्ने असाल के ज़रिये से उनको ज़हर दिलवा दिया। जिससे उनका ख़ातिमा हो गया।[2]मुआविया ने इब्ने असाल को इसका मुआवेज़ा यह दिया कि

---

[1]तबरी जि/6, पेज/186

[2]अल वुज़रा वल किताब पेज/16

हमेशा के लिए टेक्स से मुस्तसना (अलग) कर दिया। और हमस के ख़िराज (टेक्स) की वसूलियाबी का उसे वाली क़रार दे दिया।[1]

मगर उसे इस रिशवत से फ़ायदा उठाने का ज़्यादा मौक़ा नहीं मिला। इस लिए कि अब्दुर्रहमान के भाई महाजिर बिन ख़ालिद ने मदीने से दमिश्क़ जाकर अपनी तलवार से इब्ने असाल को क़त्ल कर दिया जिस पर मुआविया ने महाजिर को क़ैद की सज़ा दी और एक साल के बाद रिहा किया।[2]

दूसरा क़ौल यह है कि अब्दुर्रहमान के बेटे ख़ालिद बिन अब्दुर्रहमान बिन ख़ालिद बिन वलीद ने अपने बाप के क़ातिल को हुमस जा कर वहीं तहेतेग़ किया। इस पर मुआविया ने उसको थोड़े दिन तक क़ैद किया, फिर दियत (खून बहा) लेकर रिहा कर दिया।[3] यह सन 46 हिजरी का वाक़ेया है। उनके मुक़र्रेबीन और गिर्दो पेश के रहने वाले इसका अन्दाज़ा रखते थे कि मुआविया की यह दिली ख़्वाहिश है कि वह यज़ीद को अपना वली अहेद बनायें मगर उन्हें भी इसके बरूए कार (उस पर अमल करने की) आने की सूरत नज़र न आती थी। सबसे पहले जिसने इस तअत्तुल और जुमूद (रूके हुए काम) को हरकत और अमल में तब्दील किया वह मुग़ीरा बिन शअ्बा दाई कूफ़ा था। यह शख़्स बड़ा ही मुदब्बिर (ज़हीन) और अरब के निहायत चालाक लोगों में महसूब (शुमार) था। वाक़ेया यह पेश आया कि मुग़ीरा ने शायद फ़क़त इम्तिहान के तौर पर दमिश्क़ जा कर मुआविया के सामने हुकूमते कूफ़ा से इस्तीफ़ा देने का ख़याल ज़ाहिर किया। वह समझता होगा कि अमीरे मुआविया मुझे किसी क़ीमत पर हटाने के लिए तैयार न होंगे और उसके बाद मेरी ख़ुशामद करेंगे। वहाँ मुआमिला बरअक्स (उलटा) हुआ और मुआविया ने एक दूसरे शख़्स को कूफ़े की हुकूमत के लिए तज़वीज़ (चुन) किया। जब यह सूरत पेश आई तो मुग़ीरा ने हुकूमते कूफ़ा पर बरक़रार रहने के लिए तदबीर की कि वह यज़ीद के पास गया और उसे यह पट्टी पढ़ाई कि तुम अपने बाप से वली अहदी का ऐलान क्यों नहीं कराते।[4] कौन कह सकता है कि यज़ीद ख़ुद ही इसके वास्ते दिल ही दिल में बेचैन न होगा और अगर उसे शराब व कबाब के मशग़लों में अब तक इस पर ग़ौर करने का मौक़ा न भी मिला हो तब भी मुग़ीरा का यह कहना

---

[1]तबरी जि/6, पेज/128

[2]अल वुज़रा वल किताब पेज/17

[3]तबरी जि/6, पेज/129

[4]तबरी जि/6, पेज/169

उसकी दीवाना तबियत के लिए "हुए बस अस्त" से कम न था। वह मुआविया के पास गया और एक लाड प्यार से पले हुए बेबाक बेटे की तरह अपने बाप से बज़िद हो कर अपनी वली अहदी के लिए ख़्वाहिश की और मुग़ीरा बिन शअ्बा के ख़यालात को जो इस बारे में थे बयान किया। मुआविया को तो कभी इसकी तवक़्क़ो होती ही न थी कि कोई संजीदा इन्सान इस मन्सब के लिए यज़ीद का नाम पेश करेगा। उन्होंने मुग़ीरा की गुफ़तगू सुनी तो समझे कि सूखे धानों पानी पड़ा। उन्होंने मुग़ीरा को बुलवाया और उससे इस बारे में तबादल–ए–ख़याल किया। मुग़ीरा ने बड़े एतेमाद (भरोसे) के साथ बतलाया कि इस मुहिम का पूरा होना कोई मुशकिल नहीं है। कूफ़े में यज़ीद की मुवाफ़िक़त पर लोगों को हमवार करने के लिए मैं काफ़ी हूँ। बसरा में ज़ियाद इस काम को अन्जाम देगा। इन दो मक़ामात के बाद फिर तीसरी कोई जगह ऐसी नहीं है जो यज़ीद की मुख़ालिफ़त की जुरअत कर सके। मुआविया ने मुग़ीरा की इन बातों को बड़ी तवज्जोह के साथ सुना और उसको कूफ़े की गुवर्नरी पर बहाल कर दिया। मुग़ीरा फ़ौरन कूफ़े पहुँचा और इस मक़सद की तकमील में मसरूफ़ हो गया। उसे अपनी कार गुज़ारी का नतीजा जल्दी से मुआविया की ख़िदमत में पेश करके सिला हासिल करना और अपनी वफ़ादारी का सिक्का जमाना था। इसलिए उसने सबसे पहले जो ख़ास बनी उमैया के हवा ख़्वाह (चापलूस) थे उनको बुला कर अपने मक़सद का तज़किरा किया और बताया कि "ख़लीफ़तुल मुसलिमीन" इस अम्र के मुतअल्लिक़ मुतमइन नहीं है कि कूफ़े के लोग इस वली अहदी को तस्लीम करेंगे। इस लिए ज़रूरत है कि यहाँ से एक वफ़्द उनकी ख़िदमत में जाये और यह इल्तेजा पेश करे कि वह यज़ीद को अपना वली अहद क़रार दें। फिर भी ऐसे लोग कम मिलते थे जो इस वफ़्द में शरीक होना पसन्द करें। इस के लिए मुग़ीरा को अपनी जेब ख़ास या ख़ज़ान–ए–सरकारी से 30 हज़ार दिरहम रिशवत में सर्फ़ (ख़र्च) करना पड़े। इस तरह कूफ़ियों का एक वफ़्द मुरत्तब करके अपने बेटे मूसा की क़यादत में मुआविया से यज़ीद की नामज़दगी के लिए दरख़्वास्त पेश की। मुआविया इस इल्तेजा की हक़ीक़त को खूब समझते थे चुनानचे उन्होंने वफ़्द को मुनासिब जवाब देने के बाद एलाहदगी में मूसा बिन मुग़ीरा से पूछा कि सच बताओ कितने पर तुम्हारे बाप ने इन लोगों के दीन व ईमान को ख़रीद किया? मूसा न कहा तीस हज़ार दिरहम में।[1]

---

[1]कामिल इब्ने असीर....

मुआविया को इस मुआमिले में मुसलमानों की राय अम्मा (आम राय) के मुतअल्लिक़ अब भी इतमीनान न था। उन्हें जमहूर (अक्सरियत) की नफ़रत व बेज़ारी का ख़ौफ़ दामनगीर था। वह समझते थे कि मुग़ीरा के इस वफ़्द को राय आम्मा का तरजुमान नहीं समझा जा सकता। अब उन्होंने ज़ियाद बिन अबीह को जिसे वह सियासी तौर पर अपना भाई बना चुके थे। इस मुआमिले में मशवरा लेने के तौर पर ख़त लिखा। ज़ियाद को मुआविया की इस ख़्वाहिश का अन्दाज़ा बहुत अरसे से होगा। अब इस ख़त से इस ख़्वाहिश का इज़हार भी हो गया और यह ज़ाहिर है कि एक वफ़ादार गवर्नर की हैसियत से उसका क्या फ़र्ज़ होना चाहिए था खुसूसन जबकि मुआमिला इसके "भतीजे" का था। मगर मुआमिले की नज़ाकत और उसके तमाम पहलू ज़ियाद को लरज़ा बरअन्दाम (ख़ौफ़ज़दा कपकपी पैदा कर रहे) बना रहे थे। चुनाँनचे उसने अपने ख़ास महरमे राज़ (राज़दाँ) उबैद बिन काब नमीरी को बुला कर कहा, कि "ख़लीफ़तुल मुस्लिमीन ने मुझे ख़त लिखा है कि उन्होंने यज़ीद की बैयत लेने का इरादा किया है मगर उन्हें लोगों की नफ़रत व बेज़ारी का ख़ौफ़ है और चाहते हैं कि किसी तरह जमहूर (अक्सरियत) मुसलिमीन मुत्तफ़िक़ किये जा सकें और इस बारे में मुझसे मशवरा किया है। इस्लामी ज़िम्मेदारी का एहसास बहुत अहम है और यज़ीद एक आवारा और मुतलक़ुल ऐनान (आवारह) शख़्स है और शिकार का बड़ा दिलदादा है। तुम मेरी तरफ़ से सरकार के पास जाकर यज़ीद के अफ़आल व हालात का तज़किरा करो और कहो कि ज़रा सोच समझ कर इस काम को करें। थोड़े दिन की ताख़ीर कर लेना इस से बेहतर है कि जल्द बाज़ी से काम लिया जाये। जिसका नतीजा नाकामी की सूरत में ज़ाहिर हो। उबैद ने इस में इतनी तरमीम की कि मुआविया को इस तरह दो टूक जवाब न दिया जाये बल्कि यज़ीद से मिलकर उससे कहा जाये कि अगर आपको राय आम्मा अपने मुवाफ़िक़ बनाना है तो इन अफ़आल को तर्क कीजिये जिन्हें मुसलमान उमूमन ना पसन्द करते हैं। ज़ियाद ने मुआविया को सिर्फ़ इतना लिखा कि इस बारे में ज़रा ताख़ीर से काम लिजिये। ताजील (जल्द बाज़ी) मुनासिब नहीं है।[1] कहा जाता है कि उसके बाद यज़ीद ने अपनी बहुत सी बद आमालियों को तर्क कर दिया।[2] मगर बाद के हालात से अन्दाज़ा होता है कि यह कीना (गुस्सा) यज़ीद के दिल में ज़ियाद की तरफ़ से पैदा हो

---

[1]तबरी जि/6, पेज/169

[2]तबरी जि/6, पेज/170

गया बल्कि शायद हमसिनी की रक़ाबत से उसको यह ख़याल हुआ कि ज़ियाद ने यह मुख़ालिफ़त अपने बेटे उबैदुल्लाह के इशारे से की है इस लिए वह उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद से भी एक अरसे तक उसके बाद बदज़न रहा।

सन 49 हिजरी या सन 50 हिजरी में सत्तर बरस की उम्र में मुग़ीरा का इन्तेक़ाल हो गया।[1] अब कूफ़े में ज़ियाद की हुकूमत हो गई। वह सन 45 हिजरी में मुआविया की तरफ़ से बसरा, खुरासान और सजिस्तान का हाकिम बनाया गया था। फिर बहरैन और ओमान भी उसकी हुकूमत में शामिल कर दिये गए।[2] अब मुग़ीरा के मरने के बाद कूफ़ा भी उसकी हुकूमत में शामिल कर दिया गया। चूँकि इस तमाम क़लमरू (सलतनत) में बसरा और कूफ़ा दो अहम मक़ाम थे लिहाज़ा अब वह साल में छः महीना बसरा में रहता था और छः महीने कूफ़े में और इस मुद्दत में बसरे की हुकूमत पर समरा बिन जुन्दब को अपना क़ायम मक़ाम बना जाता था।[3] तीन या चार साल की मुद्दत गुज़रने पर 4 माह रमज़ान सन 53 हिजरी को ज़ियाद की भी वफ़ात हो गई।[4] अब शायद इस अन्देशे में कि रहे सहे ख़ास ख़ास ख़ैर ख़्वाह भी कहीं राहिये मुल्के अदम न हो जायें (मर न जायें)। मुआविया ने एक तहरीरी फ़रमान यज़ीद की वली अहदी का लिख कर मजमये आम में इसका एलान कर दिया और रिआया से उसका इक़रार लिया गया।[5]

वाक़ेयात बतलाते हैं कि मुग़ीरा बिन शॉबा बड़ी हद तक कूफ़े की ज़मीन को हमवार बनाने का काम कर चुका था और कम अज़ कम हवा ख़्वाहाने (चापलूस) बनी उमैया को उसके लिए तैयार कर लिया था। बसरा में बहरहाल उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद को इस इस्कीम की तकमील करना लाज़िम थी। चाहे उसकी ज़ाती राय इस बारे में कुछ भी होती और वहाँ की ख़िलक़त (अवाम) उसके बाप से और खुद उससे इस दर्जा मरऊब व ख़ाएफ़ थी कि वहाँ किसी मुख़ालिफ़त का इमकान न था और शाम तो अपना मुल्क ही था। ले दे कर वहाँ एक अब्दुर्रहमान बिन ख़ालिद बिन वलीद थे जिन से अन्देशा होता उन्हें पहले ही ख़त्म किया जा चुका था। दूसरे मक़तूल ख़लीफ़ा उसमान के बेटे

---

[1]तबरी जि/6, पेज/131

[2]तबरी जि/6, पेज/......

[3]तबरी जि/6, पेज/131

[4]अन वुज़रा वल किताब, पेज/16

[5]तबरी जि/6, पेज/177

सईद थे। उन्होंने ज़रा ख़िलाफ़ते यज़ीद पर इज़हारे नाराज़गी किया और ख़ुद मुआविया के पास आकर कहा कि आपने यज़ीद को मुझ पर मुक़द्दम किया और उसके लिए बैयत ली हालाँकि बख़ुदा आप जानते हैं कि मेरे बाप उसके बाप से बेहतर और मेरी माँ उसकी माँ से अच्छी और मैं ख़ुद उससे बेहतर हूँ और आपको जो कुछ मिला है यह मेरे बाप का सदक़ा है। यह सुनकर मुआविया ने कहा कि तुम ने जो अपने बाप के एहसान का मुझ पर ज़िक्र किया तो मुझे इसका इन्कार नहीं मगर मैंने इसका एवज़ (बदला) यह कर दिया कि उनके ख़ून का मुतालिबा किया और क़ातिलों से उनका बदला लिया और तुम्हारे बाप की फ़ज़ीलत, इस में भी कोई शक नहीं कि मुझसे बेहतर थे और उन्हें रसूले ख़ुदा[स0अ0] से क़राबत मुझसे ज़्यादा हासिल थी, इसी तरह तुम्हारी माँ की फ़ज़ीलत। इस में भी कोई शक नहीं क्योंकि क़रशिया की बुज़ुर्गी कल्बिया पर ज़ाहिर है लेकिन यह बात कि तुम यज़ीद से बेहतर हो तो मालूम होना चाहिए कि मेरे नज़दीक अगर तुम ऐसों से मेरा घर भरा हो वह सब मिलकर भी यज़ीद के बराबर न होंगे।

वह तो यह जवाब सुनकर अपना सा मुँह लेकर रह गए होगें मगर फिर कहा जाता है कि यज़ीद ने अपने बाप से सिफ़ारिश कि सईद मेरी वजह से कबीदा ख़ातिर (रंजीदा) हो गए हैं तो आप इन्हें किसी सूरत से ख़ुश कर दीजिये। इस पर मुआविया ने उन्हें ख़ुरासान का हाकिम बना दिया।[1] इस तरह यह ख़दशा भी दूर हो गया। शाम और इराक़ को हमवार करने के बाद मुआविया ने मक्का और मदीने के मुतअल्लिक़ ख़याल किया उस ज़माने में मरवान मदीना का हाकिम था। मुआविया ने उसको लिखा कि हम ने यज़ीद को अपना वली अहद बनाया है और उसके लिए वलीअहदी की बैयत ली जा चुकी है तुम ख़ुद भी यज़ीद से बैयत करो और हमारी तरफ़ से वहाँ मदीने के लोगों से यज़ीद के लिए बैयत लो। मरवान ने जब मुआविया का हुक्म पढ़ा तो गुस्से से बरअफ़रोख़्ता (भड़क कर) हो कर घर में गया। घर वालों और अपने मामूज़ाद क़बील–ए–बनी कनाना के लोगों पर भी अपनी इस नाराज़गी और रंज व ग़ज़ब का इज़हार किया और इसी गुस्से में दमिश्क़ की तरफ़ मुआविया से ख़ुद बात चीत करने की ग़रज़ से रवाना हो गया। वहाँ पहुंच कर मुआविया से मिला और इस अन्दाज़ से चलता था जिस तरह दो बराबर के रिश्तेदार होते हैं। मुआविया से गुस्से से भरी हुई तेज़ व तुन्द तक़रीरें कीं और कहा यह

---

[1]तबरी जि/6, पेज/171

आप क्या कर रहे हैं। छोकरों को अमीर और सरदार बनाते हैं। इस इरादे से बाज़ आईये। याद रखिये कि आपकी क़ौम में ऐसे और भी मौजूद हैं जो आपके मशवरों में शरीक और आपके कामों में आपके वज़ीर व मददगार रहे हैं। मुआविया ने कहाः मरवान ख़फ़ा न हो। तुम बेशक ख़लीफ़–ए–वक़्त की नज़ीर हो और हर मुशकिल में उसके पुश्तपनाह और मददगार हो। इस लिए यज़ीद के बाद तुम को ही यज़ीद का वली अहद हम ने क़रार दिया है। यह था वह सियासी मन्तर जिसने मरवान के गुस्से को ख़त्म कर दिया और मरवान बख़याले खुद मुतमइन हो कर मदीना वापस हुआ। मदीने में मरवान ने एक जलसा मुन्अक़िद किया और उसमें यज़ीद की तख़्त नशीनी के मुतअल्लिक़ ज़िक्र किया और कहा मुआविया ने अपने बेटे यज़ीद की बैयत का उसी तरह हुक्म दिया है जिस तरह अबू बकर ने उमर के लिए बैयत ली थी। यह सुनना था कि अब्दुर्रहमान बिन अबी बकर बिगड़ गए और कहा अबू बकर ने अपने बेटे की बैयत नहीं ली थी। यह तो किसरा व क़ैसर का तरीक़ा है। हम हरगिज़ उस शराबी व ज़ानी की बैयत न करेंगे। अब्दुर्रहमान के ख़यालात की ताईद हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0], अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर और अब्दुल्लाह बिन उमर ने की। जो वाक़ेया पेश आया उसकी इत्तेलाअ् मरवान ने मुआविया को कर दी। मुआविया ने कुछ दिन तअम्मुल (इन्तेज़ार) किया। फिर यज़ीद को लेकर हज के बहाने से रवाना हुए। मुआविया को खूब एहसास था कि उन लोगों को जिन्हों ने ख़िलाफ़ते यज़ीद पर एतेराज़ किया है दुनिया–ए–इस्लाम में क्या अहमियत हासिल है यह याद रखने के क़ाबिल बात है कि मुसलमानों के हर फ़िरक़े के नुक़त–ए–नज़र से जिन जिन अफ़राद को इस्लामी मुआमलात से दिलचस्पी का विरसा पहुँचता था वह सब ही यज़ीद से इख़तेलाफ़ रखने में मुत्तफ़िक़ थे। चुनाँनचे एक तरफ़ उनमें **हज़रत हुसैन बिन अली**[अ0स0] थे तो दूसरी तरफ़।

अब्दुर्रहमान———————इब्ने अबी बकर
आइशा—————————बिन्ते अबी बकर
अब्दुल्लाह———————इब्ने उमर
अब्दुल्लाह———————इब्ने अब्बास और
अब्दुल्लाह———————इब्ने ज़ुबैर भी थे

इन नामों को देखने से वाज़ेह हो जाता है कि मुसलमानों में जो फ़िरक़ा बन्दी आज क़ायम है उसका कोई असर यज़ीद की वली अहदी के जवाज़ पर

नहीं पड़ता। उसूलन यज़ीद की वली अहदी से इख़्तेलाफ़ में तमाम वह अफ़राद मुत्तफ़िक़ थे जो किसी फ़िरक़े के नुक़्त–ए–नज़र से भी मज़हबी नुमाइन्दगी कर सकते थे। अब यह अपना अपना सिबाते क़दम और इस्तेक़लाल है कि कोई तमाम मुशकिलात के बावजूद आख़िर वक़्त तक अपनी इस बात पर क़ायम रहे और कोई फिर हालात से मजबूर हो जाये लेकिन उसूल और आईन के एतेबार से उन सब का मुत्तफ़िक़ होना ख़ुद एक बड़ी वज़नी हक़ीक़त है।

मुआविया ने उन लोगों को ख़ौफ़ दिला कर भी दबाना चाहा और लालच दिला कर भी माएल करना चाहा। चुनाँनचे सब से पहले जब वह मदीना के क़रीब पहुँचे तो इमाम हुसैन[अ0स0] से मुलाक़ात हुई। आपको देख कर मुआविया ने कहा न तुम्हारे लिए ख़ुशी हो और न बरकत। तुम एक क़ुर्बानी का दुम्बा हो जिस का ख़ून जोश खा रहा है। ख़ुदा की क़सम यह ख़ून ज़रूर गिराया जायेगा। इमाम हुसैन[अ0स0] ने फ़रमायाः चुप रहो। हम ऐसे कलाम के अहल नहीं हैं। मुआविया ने कहा। इससे भी बदतर कलाम के मुस्तहक़ हो। फिर उसके बाद इब्ने ज़ुबैर से मिले तो उनसे कहा कि तू एक छुपे हुए मक्कार सूसमार गोह, (जानवर) के मानिन्द है जो सर को अपने सूराख़ में डाल कर दुम हिलाता है। क़सम है ख़ुदा की अन्क़रीब उसकी दुम पकड़ ली जायेगी। दूर करो इसको और फिर उनके ख़च्चर पर चाबुक मारा और हटा दिया। फिर उसके बाद अब्दुर्रहमान बिन अबी बर्क मिले। उनको कहा कि यह बुढ़ा भी सठिया गया है और इसकी अक़्ल जाती रही है। फिर हुक्म दिया कि उनके सवारी के ख़च्चर पर भी ताज़ियाना मारो और हटा दो। फिर अब्दुल्लाह बिन उमर से भी ऐसा ही सुलूक किया गया।[1]

उसके बाद मदीने में दाख़िल हो कर भी ख़िलाफ़ते यज़ीद के लिए उन हज़रात को डराने दहलाने और क़त्ल की धमकियाँ देने लगे।

आएशा ने जो यह सुना तो गुस्से में मुआविया के पास गईं और कहा कि यह कोई अच्छी बात नहीं है कि तुम पहले मेरे एक भाई (मोहम्मद बिन अबी बर्क) को क़त्ल कर चुके और तुमने लाश उनकी आग में जलाई आज मदीने में आकर मेरे दूसरे भाई को तकलीफ़ पहुंचाते हो और उनके बारे में सख़्त अलफ़ाज़ इस्तेमाल करते हो और फ़रज़न्दे रसूल और अब्दुल्लाह बिन उमर और अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर को भी डराते धमकाते हो। तुम उन लोगों में से हो

---

[1]कामिल इब्ने असीर जि/3, पेज/454

जिन्हें रसूल[स0अ0] ने रहम खा कर फ़तहे मक्का में क़त्ल से आज़ाद कर दिया था। तुम को ऐसी हरकतें हरगिज़ ज़ेब नहीं देतीं।

तबरी ने मुआविया का मुकालिमा जो अब्दुर्रहमान बिन अबी बक्र के साथ दर्ज किया है वह हस्बे ज़ैल है।

मुआविया ने कहाः ऐ अब्दुर्रहमान कैसे हाथ पैरों के साथ तुम मेरी नाफ़रमानी करने की जुरअत करते हो? अब्दुर्रहमान ने कहाः इस लिए कि इस अम्र (काम) के लिए मैं अपने को ज़्यादा मुस्तहक़ समझता हूँ। मुआविया ने कहा कि मैं इस सूरत में तुम्हारे क़त्ल का इरादा रखता हूँ। अब्दुर्रहमान ने कहा अगर तुम ऐसा करोगे तो लानते खुदा और सज़ा–ए–आख़िरत के मुस्तहक़ होगे।[1]

यह तो ख़ौफ़ दिलाने की तरकीबें थीं। जब यह कामयाब नहीं हुई तो दूसरी सूरत भी इख़्तियार की गई चुनानचे एक लाख दिरहम अब्दुर्रहमान बिन अबी बकर के पास भेजे। मगर उन्होंने रूपया वापस कर दिया और कहा कि हम दीन को दुनिया के एवज़ (बदले) फ़रोख़्त नहीं करेंगे और मक्का से हिजरत कर गए। इसी तरह अब्दुल्लाह बिन उमर को भी एक लाख दिरहम भेजे गए, उन्होंने कहा कि मैं बूढ़ा हो चुका हूँ और मेरा दीन एक लाख दिरहम से ज़्यादा क़ीमती है। यह कह कर रूप्या वापस कर दिया। और इमाम हुसैन[अ0स0] को भी बहुत कुछ तहाएफ़ और ज़रो माल पेश किया गया था मगर आपने क़ुबूल न फ़रमाया और वापस कर दिया।

अज़वाजे रसूल[स0अ0] में से आएशा ने इस मुख़ालिफ़त में ज़्यादा हिस्सा लिया। चुनानचे हाफ़िज़ जलालुद्दीन स्यूती ने लिखा है कि मुआविया मदीने में मिम्बरे रसूल पर बेठे यज़ीद की बैयत ले रहे थे कि आएशा ने अपने हुजरे से पुकार कर कहा कि ख़ामोश हो जाओ, क्या कर रहे हो? क्या तुम से पहले शैख़ेन ने अपने बेटों के लिए कभी बैयत ली थी? मुआविया ने कहा कि नहीं। तो आएशा ने कहा फिर तुम किसकी पैरवी करते हो? मुआविया यह सुनकर शर्मिन्दा हुए और मिम्बर से उतर आये।

इससे ज़ाहिर है कि यज़ीद की वली अहदी सबके नज़दीक उसूले शरीयत और आईने इस्लाम के ख़िलाफ़ थी। इसके अलावा हज़रत इमाम हसन[अ0स0] के साथ शराएते सुलह में यह बात तय पा चुकी थी कि मुआविया को अपने बाद

---

[1] तबरी जि/6, पेज/177

किसी जानशीन के नामज़द करने का हक़ न होगा। उसके बाद मुआविया को अपने बेटे का खुद नामज़द करना किसी तरह दुरूस्त नहीं हो सकता।

यह सब इस सूरत में भी था कि जब यज़ीद अपने किरदार के लिहाज़ से अच्छा ही आदमी होता चेजायेकि यज़ीद के अख़लाक़ व आदात वह थे जो किसी शाइस्ता इन्सान और एक मामूली मुसलमान के भी शायाने शान नहीं चेजाएकि ख़िलाफ़त के लिए जो बहरहाल एक मज़हबी ओहदा समझा जाता है। डॉक्टर वहीद मिर्ज़ा साहब लिखते हैं: "इस्लाम के शुरू से हाकिमे इस्लाम दीन और दुनिया दोनों का मुक़्तदा (पेशवा) समझा जाता था। मज़हब और सियासत का यह इज्तिमा अक़्लमन्दाना उसूल पर मबनी था या नहीं, यह एक मुख़तलिफ़ फ़ीह (एक साथ ज़्यादती) बात है जिसके मुतअल्लिक़ मैं अपनी राय का इज़हार ज़रूरी नहीं समझता लेकिन यह उसूल आम तौर पर तस्लीम कर लिया गया था और इस लिए यह ज़रूरी समझा जाता था कि ख़लीफ़–ए–इस्लाम में अलावा सियासी क़ाबलियत के मज़हबी और दीनी सिफ़ात भी बदर्जा–ए–अतम (पूरी तरह) मौजूद हों। और यह सबको मालूम था कि यज़ीद इस लिहाज़ से किसी तरह भी मुस्तहक़्क़े ख़िलाफ़त नहीं था।" इसी लिए जितने समझदार इन्सान थे सब ही इस इक़दाम को नाज़ेबा समझ रहे थे और उसे एक मोहलिक इक़दाम की हैसियत से दखते थे।

हसन बसरी का क़ौल था कि मुआविया ने चार बातें ऐसी कीं जिनमें से एक भी हो तो वही हलाकत के लिए काफ़ी है। अव्वल जाहिलों की मदद से बग़ैर उम्मत के मशवरे के उन्होंने ख़िलाफ़त पर क़ब्ज़ा कर लिया। हालाँकि उस वक़्त असहाबे रसूल[स0अ0] और साहबाने फ़ज़ीलत मौजूद थे। दूसरे अपने बेटे को जो शराब ख़्वार नशा बाज़ था और रेशम पहनता और तनबूरह बजाया करता था अपना जानशीन बनाया। तीसरे ज़ियाद को अपने बाप अबू सुफ़ियान का बेटा क़रार दिया हालाँकि रसूल अल्लाह[स0अ0] ने फ़रमाया है कि बेटा उसी का क़रार दिया जा सकता है जो असली शौहर हो और ज़िना कार के लिए बस पत्थर है। चौथे हुज्र और असहाबे हुज्र का क़त्ल करना।[1]

दूसरा क़ौल उनका यह भी था कि मुसलमानों की तबाही के ज़िम्मेदार दो शख़्स हैं। एक अम्र बिन आस जिसने मुआविया को क़ुरआन नैज़ों पर बलन्द करने की राय दी थी। चुनाँनचे वह बलन्द भी किये गए और दूसरे मुग़ीरा जिसने मुआविया को यज़ीद की बैयत लेने का मशवरा दिया। अगर मुग़ीरा की

---

[1]कामिल इब्ने असीर जि/2, पेज/45, अबुल फ़िदा जि/1, पेज/196, तबरी जि/6, पेज/157

यह राय न होती तो क़यामत तक इन्तेख़ाब का उसूल क़ायम रहता। मुआविया के बाद जो तख़्त नशीन हुए वह सब के सब मुआविया की मिसाल के मुताबिक़ अपने बेटों की बैयत कराते रहे।

मुसलमानों की इस राय आम्मा की नुमाइन्दगी वह चन्द अशख़ास कर रहे थे जिनके नाम तारीख़ में दर्ज हैं।

मुआविया पर यह अम्र छुपा हुआ नहीं था कि इस जमाअत में सबसे नुमायाँ हस्ती हुसैन[अ0स0] की है और इस बिना पर उन्होंने मदीने में आ कर सबसे पहला काम जो किया वह यह कि हुसैन बिन अली को बुलवाकर कहा कि इस मुआमिले में तमाम लोग हमवार हो चुके हैं। सिवा पाँच आदमियों के क़ुरैश में से जिनकी सरकरदगी (रहनुमाई) आप कर रहे हैं। हज़रत ने मुतअज्जिबाना (तअज्जुब से) अन्दाज़ से कहाः "मैं उनकी सरकरदगी (रहनुमाई) करता हूँ।" मुआविया ने कहाः बेशक आप ही उनके सरग़ना हैं।" यह सुनकर हज़रत ने फ़रमाया तो इसकी तदबीर यह है कि आप दूसरे लोगों को बुलवा कर उनसे बैयत का मुतालिबा कीजिये। अगर उन सब ने बैयत कर ली तो तन्हा मुझसे आपको किसी अन्देशे की ज़रूरत नहीं है। यह दफ़उल वक़्ती (वक़्ती छुटकारा) कामयाब हुई और नतीजे में मुआविया की यह कोशिश बेसूद साबित हुई और वह नाउम्मीदी के साथ शाम वापस गए। इमाम हुसैन[अ0स0] का बैयत से इन्कार सलतनत के इक़्तेदार के लिए बड़ी सख़्त ठोकर थी जिसे मुआविया की क़ूव्वते सियासत दानी समझती थी मगर उसे हुसैन इब्ने अली का एक बड़ा तदब्बुर समझना चाहिए कि आपने अपने अमल को सलबी हुदूद तक महदूद रखा यानी सिर्फ़ बैयत न करना और सुकूत इख़्तियार करना। आप जानते थे कि फ़रीक़े मुख़ालिफ़ एक वक़्त में इस सुकूत को तोड़ने के लिए तशद्दुद से काम लेगा जिसके लिए आप तैयार थे मगर आप यह न चाहते थे कि आपकी तरफ़ किसी जारिहाना इक़दाम का इलज़ाम आयद किया जा सके। दूसरी तरफ़ मुआविया ने भी ब–तक़ाज़ा–ए–सियासत उस वक़्त किसी अमली इक़दाम को मुनासिब न समझा मगर उसके बाद न मुआविया तदबीरों से ग़ाफ़िल थे और न हुसैन[अ0स0] मुस्तक़्बिल से बे ख़बर थे। अस्ल में हुसैन[अ0स0] चाहते थे कि मैं ख़ामोश रहूँ और हरीफ़ (मुख़ालिफ़) तशद्दुद से काम ले और मुआविया का मतलब यह था कि हम अपनी तरफ़ से अमली तौर पर तशद्दुद की पहल न करें और हुसैन[अ0स0] जोश में आकर कोई ऐसा इक़दाम कर बैठें

जो अमने आलम (शांति) को सदमा पहुंचाने की ज़िम्मेदारी उन पर आयद कर दे।

दर हक़ीक़त करबला की जंग अपने क़रीबी असबाब के लिहाज़ से शुरू यहीं से हो गई मगर यह उस वक़्त एक सब्र आज़मा नफ़सियाती कशमकश थी जो न मालूम कब तक जारी रहती। अगर मुआविया का रिश्त–ए–उम्र क़ता न होता (न मरता) और नौ उम्र, ना तजरेबा कार, गुरूरे सलतनत से बदमस्त यज़ीद तख़्ते सलतनत पर न बैठता।

ग्यारहवाँ बाब

मुआविया की वफ़ात और यज़ीद की तख़्त नशीनी

सन 50 हिजरी में अमीरे शाम मुआविया मरजुल मौत में मुबतिला हुए। उन्हें अपनी बीमारी के आलम में और खुसूसन उस वक़्त जबकि सेहत से मायूसी हो गई थी शदीद एहसास था कि उन्होंने यज़ीद की ख़िलाफ़त तस्लीम कराने में कितनी मेहनत व मशक़्क़त बरदाश्त की है और किस दर्जा अपने राहत व आराम और माल व दौलत और सबसे बढ़ कर ज़मीर की क़ुर्बानी की है जो रूहानी तकलीफ़ का बाइस होती है जिसका इज़हार उन्होंने ब–सीग़–ए–राज़ (ख़ामोशी) मरवान से किया। मुलाहिज़ा हो इब्ने हज्र मक्की की किताब "ततहीरूल जिनान वल लिसान" जो उन्होंने मुआविया के मनाक़िब (तारीफ़) व फ़ज़ाएल में तस्नीफ़ (लिखी) की है। वह लिखते हैं कि एक रोज़ मुआविया रोने लगे। मरवान ने सबब दरयाफ़्त किया। उन्होंने जवाब दिया कि दुनिया में कौन सी राहत थी जो मैंने नहीं उठाई हो। अब सिन ज़्यादा हो गया और हड्डियाँ घुल गईं और जिस्म कमज़ोर हो गया लेकिन अगर मुझ पर यज़ीद की मोहब्बत का ग़ल्बा न होता तो मैं अपने लिए राहे रास्त को हासिल कर लेता।[1]

अल्लामा इब्ने हज्र ने इसकी तशरीह करते हुए लिखा है कि इन अलफ़ाज़ में मुआविया ने पूरे तौर पर इक़रार कर लिया है कि यज़ीद की मोहब्बत ने उनको हिदायत के रास्तों से अंधा बना दिया है और इसी फ़र्ते (जोशे) मोहब्बत में मुसलमानों को उनके बाद ऐसे फ़ासिक़ व फ़ाजिर के हाथों में मुब्तिला कर दिया जिसने उनको तबाह कर दिया।[2]

फिर यह फ़ितरी बात है कि जितना ज़्यादा किसी ने एक मक़सद के लिए ईसार और कदो काविश (कोशिश) की हो उतनी ही उसे अपने उस मक़सद

---

[1]हाशिया सवाएके मुहर्रिक़ा, पेज / 56

[2]हाशिया सवाएके मुहर्रिक़ा, पेज / 58

की कामयाबी की फ़िक्र होती है और उसमें किसी ख़लल के वाक़े होने का क़लक़ (दुख) होता है। मुआविया ने यज़ीद के लिए क्या कुछ किया और उसमें उनके नज़दीक ख़लल क्या बाक़ी रह गया। इसका तज़किरा उन्होंने ख़ुद यज़ीद से किया। अपने मरजुल मौत (मौत का मरज़) की इब्तेदा में जबकि उन्होंने उसे बुला कर कहा। बेटा मैंने तुमको कच और मक़ाम (सफ़र और क़याम) की ज़हमतों से बचा दिया और तुम्हारे लिए तमाम इन्तेज़ामात मुकम्मल कर दिये और तमाम दुश्मनों के सर तुम्हारे लिए ख़म करा (झुका) दिये और तमाम क़ौमे अरब की गर्दन को तुम्हारे वास्ते झुका दिया और सबको तुम पर मुजतमा (तुमहारा) कर दिया मगर मुझे इस ख़िलाफ़त के मसले में जो तुम्हारे लिए मुकम्मल हो चुका है। बस क़ुरैश के चार आदमियों से खटका है। हुसैन बिन अली[अ0स0], अब्दुल्लाह बिन उमर, अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर, और अब्दुर्रहमान बिन अबी बकर।[1]

ज़ाहिर है कि इन आँखों की सूईयों के रह जाने का मुआविया को कितना ख़याल और सदमा होगा और यह सदमा उतना उतना बढ़ता था जितना जितना उनकी मौत का वक़्त क़रीब आता जाता था।

लेकिन वह यज़ीद जिसके लिए उन्होंने सब कुछ किया था अपने बूढ़े बाप के आख़िर वक़्त पास मौजूद भी न था।[2] और दमिश्क़ के बाहर मक़ामे हवारीन पर रंग रलियों में मसरूफ़ था।[3] मुआविया ने अपनी हालत दिगरगूँ (नाज़ुक) पाकर उसके पास बुलाने के लिए आदमी भेजा मगर उसके आने में ताख़ीर हुई तो उन्होंने अपने पुलिस आफ़ीसर ज़हाक बिन क़ैस फ़हरी और अपने पहरेदारों के सरदार मुस्लिम बिन अक़बा को बुला कर कहा कि जब यज़ीद आये तो मेरी वसीयत उस तक पहुँचा देना और उसे बतलाना कि मेरा हुक्म उसके लिए यह है कि वह अहले हिजाज़ के साथ मराआत (नर्मी) से काम ले। जो लोग वहाँ से दारूस्सलतनत में आयें उनका इकराम व एहतेराम किया जाये और जो वहाँ के अशराफ़ और बुज़ुर्ग यहाँ से दूर हैं उनकी भी वक़्तन फ़वक़्तन ख़बर गीरी की जाती रहे और अहले शाम को अपना दस्तो बाज़ू (क़रीबी) और अपना चश्मो गोश (देखना सुनना यानी उनकी ख़बर गीरी) बनाये रखे और उन्हें शाम के सूबे से बाहर ज़्यादा अरसे तक न रखा जाये ताकि उनमें दूसरे मक़ामात के

---

[1]तबरी जि/6, पेज/179
[2]तबरी जि/6, पेज/182
[3]तबरी जि/6, पेज/183

अख़लाक़ व अवसाफ़ सरायत (दाख़िल) न करें। उसके बाद यह बतला देना कि मुझे उसके खिलाफ़ सिर्फ़ चार आदमियों से ख़ौफ़ है। अव्वल हुसैन[अ०स०], दूसरे अब्दुल्लाह बिन उमर, तीसरे अब्दुर्रहमान बिन अबी बकर, और चौथे अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर।[1]

इस वसीयत से साफ़ ज़ाहिर है कि मुआविया बिस्तरे मर्ग पर भी अपने दिल में तमाम दर्द यज़ीद का लिये हुए थे। उनको न अपनी बीमारी का कोई ख़याल था न अपनी तकलीफ़ का कोई तसव्वुर, न अपने अन्जाम के मुतअल्लिक़ कोई फ़िक्र, उन्हें उस वक़्त भी ख़याल था, तसव्वुर था और फ़िक्र थी तो यज़ीद और सिर्फ़ यज़ीद की। और उसके साथ आख़िर वक़्त की पथराई हुई निगाहों में भी सूरतें थीं तो चार, जो यज़ीद के लिए उनके नज़दीक एक ख़तरे की हैसियत रखती थीं। जिनमें सबसे पहली तस्वीर थी हुसैन[अ०स०] की।

रजब सन 60 हिजरी में मुआविया दुनिया से रहलत कर गए।[2] अड़तीस बरस की उम्र में वह शाम के गवर्नर बने थे। 58 बरस की उम्र में वह खुद मुख़तार ख़लीफ़ा हुए और 78 बरस की उम्र में अब उनकी वफ़ात हुई।[3]

बाज़ मुअर्रिख़ीन (इतिहास कारों) के बयान के मुताबिक़ उनकी उम्र इससे कुछ कम 73 या 75 और बाज़ के नज़दीक इससे ज़्यादा पच्चासी साल की थी।[4]

यज़ीद को उसकी शिकार गाह में इस सानेहे की इत्तेलाअ् दी गई जिसको सुनकर वह दमिश्क़ पहुँचा। ऐसे वक़्त जब मुआविया दफ़्न भी किये जा चुके थे। बाप की बिछाई हुई मसनद उसके आने ही की मुन्तज़िर थी। वह तख़्ते ख़िलाफ़त पर मुतमक्किन (बैठा) हुआ और तमाम अहले शाम ने फ़ौरन उसकी बैयत कर ली।

---

[1]अख़बारूत्तुवाल, पेज/237, तबरी जि/6, पेज/180
[2]तबरी जि/6, पेज/180, इरशाद पेज/206
[3]किताबुल बिलदान
[4]तबरी जि/6, पेज/181

बारहवाँ बाब

यज़ीद तारीख़ें की रोशेनी में

यज़ीद की माँ मैसून बिन्ते बहदिल बिन अनीफ़ कलबिया[1] एक सहराई औरत थी जो शहरी ज़िन्दगी से नफ़रत करती थी मगर वह अपने हुस्नो जमाल की बदौलत मुआविया की बहुत मन्जूरे नज़र हो गई थी और उन्होंने उसके लिए गुता के मुक़ाबिल एक क़स्र तामीर कराया था। जहाँ से उस पुर नुज़हत (खूबसूरत) जगह की सैर दूर तक हो सकती थी। और इस क़स्र में बड़े आराइश के सामान और सोने चाँदी के बर्तन और दीबा–ए–रूमी (रेशमी) के रंगा रंग और मुनक़्क़श (दिलकश) फ़र्श मुहैया किये थे और बहुत सी हसीन व जमील कनीज़ें ख़िदमत के लिए दी थीं। इन शाहाना इन्तेज़ामात के साथ मैसून को इस महल में उतारा गया था मगर यह सब कुछ इस सहराई औरत की निगाह में ख़ाक था। इस लिए कि उसे तो अपना जंगल और उसमें चरती हुई भेड़, बकरियाँ याद आती थीं। एक दिन मुआविया के महल में आने का वक़्त था और मैसून एक बेहतरीन पोशाक पहन कर और क़ीमती ज़ेवरात पहन कर और खुशबू लगा कर कनीज़ों के झुरमुट में उस खिड़की के सामने बैठी थी जो कि गूता के मुर्ग़ज़ार (बाग़) की तरफ़ थी। उसको वहाँ के दरख़्त नज़र आ रहे थे और ताएरों (परिन्दों) के नग़मों की सदा और फूलों की खुशबू आ रही थी। उस वक़्त उसे अपना नज्द (आज का सऊदी) का बादिया (पडोसी) और हमजोलियाँ और सहेलियाँ याद आईं। जिसकी बिना पर वह बेसाख़्ता रोने लगी और ठंडी सांसें भरने लगी। एक ख़वास (क़रीबी) ने रोने का सबब दरयाफ़्ता किया। मैसून ने एक लम्बी साँस ली और कुछ अशआर पढ़े जिनका मज़मून यह था। ''यक़ीन समझो कि वह डेरा जिसमें चौबाई हवा के झोंके आते रहते हैं मुझे इस आलीशान महल से ज़्यादा महबूब है और वह बालों की एबा जो मेरे जिस्म पर होती थी इन बारीक और साफ़ पोशाक से ज़्यादा महबूब थी और

[1] तबरी जि/6, पेज/183, व जि/7, पेज/15

एक सूखी रोटी का टुकड़ा अपने झोंपड़े के कोने में बैठ कर खाना मुझे इन साफ़ और उमदा रोटियों से ज़्यादा मरगूब (बेहतर) था और वह दुर्राहाये कोह (क़िला नुमा पहाड़) में हवाओं के थपेड़े की सदा मेरे लिए तबलों की आवाज़ से ज़्यादा दिलकश थी और वह कुत्ता जो मेहमानों के आने के वक़्त भौंकता था इन ख़ूबसूरत सधी हुई मुर्ग़ाबियों से ज़्यादा महबूब था और वह सरकश ऊँट जो हौदजों (अमारी जिसमें औरतें सवार होती हैं) को लेकर चलता था मुझे इस ज़ीन व लजाम से आरास्ता ख़च्चर (गधे) से ज़्यादा पसन्द था, और मेरे क़ौम व क़बीले का एक दुबला पतला हक़ीर आदमी मुझे एक बदख़ू (बुरी आदत वाले) मुसटन्डे से ज़्यादा महबूब था।

जब मुआविया आये तो उस ख़वास ने यह क़िस्सा मुआविया से दोहराया या यह कि मुआविया ने मैसून को यह अशआर पढ़ते ख़ुद सुन लिया। बहरहाल उनको बड़ा ग़ुस्सा आया और उन्होंने कहा कि सब तो सब उसने मुझको सख़्त बदख़ू मुसन्डा बनाया। मैं उसको तीन तलाक़ देता हूँ। जाओ उससे कहो कि वह जो कुछ महल में साज़ व सामान है सब कुछ ले ले और चली जाये, चुनाँनचे उसे नज्द में उसके अज़ीज़ों के यहाँ भेजवा दिया गया। इस हालत में कि यज़ीद उसके पेट में था।[1]सन 22 हिजरी में यज़ीद का तवल्लुद (पैदा) हुआ।[2] दो बरस के बाद जब मुआविया को इसकी इत्तेला हुई तो उन्होंने उसको वहाँ से बुलवा लिया।[3] नौजवानी ही की उम्र से वह फ़िस्क़ो फ़ुजूर (अय्याशी) और लहो लअ्ब (खेलकूद) में मुब्तिला हो गया और सिन के साथ साथ उसके इन अवसाफ़ में भी तरक़्क़ी होती गई। चुनाँनचे मुख़तलिफ़ जानवरों के साथ उसके रकीक हरकात (बुरे कामों) का तारीख़ में मुख़तलिफ़ सूरतों से चर्चा मौजूद है।

अल्लामा दमीरी ने लुग़त "महज़" के तहत लिखा है कि सब से पहले उसको घोड़े पर सवार यज़ीद बिन मुआविया ने किया है।[4] दूसरे मक़ाम पर लिखा है कि यज़ीद के एक बन्दर को गधे पर बैठने की मश्क़ कराई गई थी और घुड़ दौड़ में उसका बड़े शहसवारों से मुक़ाबला कराया जाता था और एक मर्तबा वह तमाम शहसवारों से सबक़त ले गया तो यज़ीद ने इस बारे में शेअ्र

---

[1]हैयातुल हैवान जि/2, पेज/207

[2]तबरी जि/4, पेज/259

[3]हयातुल हैवान, जि/2, पेज/207

[4]हयातुल हैवान जि/2, पेज/186

कहे जिनका मज़मून यह था कि कोई मेरी तरफ़ से कह दे इस बन्दर से जो एक गधी की पुश्त पर बैठ कर घोड़ों से आगे निकल गया कि ऐ अबू क़ैस जब तू उस पर सवार हुआ कर तो उससे लिपटा रहा कर क्योंकि अगर तू मर गया तो इस गधी से कोई बाज़ पुर्स भी न हो सकेगी।[1]

यज़ीद ने अपने बन्दर की कुन्नियत (लक़ब) अबू क़ैस क़रार दी थी और अपने साग़र की बची हुई शराब उसे पिलाया करता था और कहा करता था कि यह बनी इस्राईल का एक बुज़ुर्ग है जिसने गुनाह किया था तो वह मस्ख़ (तब्दील) हो गया और वह उसको एक गधी पर सवार करता था जो उसी मक़्सद से सधाई गई थी और घुड़ दौड़ के मैदान में वह उसे घोड़ों के साथ छोड़ देता था। एक रोज़ गधी आगे बढ़ गई तो यज़ीद बहुत ख़ुश हुआ और यह शेअ्र पढ़े।

''ऐ अबू क़ैस उसकी मेहार से लिपटा रहा कर, अगर तू गिर पड़ा तो उस पर कोई ज़िम्मेदारी न होगी। इस गधी ने यह कारेनुमायाँ किया है कि वह तमाम घोड़ों से आगे निकल गई है।''[2]

यह तो उसके लग़ो अफ़आल (बेहूदा आमाल) थे। इसके अलावा शराब ख़्वारी उसकी ज़रबुल मसल (अपनी मिसाल आप) थी। चुनानचे अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर ने नाम ही उसका ''सुकरान'' यानी बदमस्त रख लिया था।[3] वह किसी मौक़े पर मसलहतन भी इस आदत को तर्क करने पर तैयार न होता था। चुनाँनचे वली अहदी के दौर में मुआविया के हुक्म से वह मक्का व मदीना में अपना असरो रूसूख़ जमाने के लिए हज को गया तो मदीन–ए–रसूल[स0अ0] में पहुँच कर भी मुसाहिबों के झमघटे में शराब का दौर ज़रूर चलाया।[4]

वाक़दी ने अब्दुल्लाह बिन हन्ज़ला ग़सीलुल मलाएका (सहाबिये रसूल जिनको मलाएका ने ग़ुस्ल दिया) की ज़बानी नक़्ल किया है कि ख़ुदा की क़सम हमको यज़ीद की हुकूमत में यह ख़ौफ़ हो गया था कि अब आसमान से हम पर पत्थर बरसेंगे। वह ऐसा शख़्स था जो अपनी सौतेली माओं और बेटियों

---

[1]हयातुल हैवान, जि/2, पेज/201

[2]तारीख़ इब्ने गूती

[3]अख़बारूत्तुवाल, पेज/261

[4]कामिल जि/1, पेज/63

और बहनों तक को न छोड़ता था और शराब आज़ादी से पीता था और नमाज़ को तर्क करता था।[1]

इतना ही नहीं कि वह अमली हैसियत से एक लाउबाली और गुनहगार शख़्स था बल्कि उसके ख़यालात भी ऐसे ही थे। वह अपने अफ़आल पर मुन्फ़इल नहीं होता था (यानी अपने किए पर पछतावा नहीं होना) बल्कि उन पर नाज़ाँ था। इस का मुज़ाहरा उसके दीवान के उन अशआर से होता है जिन में उसने अहकामे शरीअत का मज़ाक़ उड़ाया है बल्कि क़ुरआन व हदीस के साथ तमस्ख़ुर (मज़ाक़) किया है। यह ठीक है कि अशआर में अक्सर बातें ग़ैर वाक़ई भी नज़्म हो जाती हैं और उनके बयानात अक्सर तख़ैयुली (ख़याली) पैराए रखते हैं मगर इसमें भी कोई शक नहीं कि ख़यालात वैसे ही दिमाग़ में आते हैं और अशआर वैसे ही तराविश (निकलते हैं) करते हैं जैसा इन्सान का मज़ाक़े (ज़ौक़) तबियत होता है। एक दीनदार मुत्तक़ी और परहेज़गार शख़्स से मुमकिन नहीं है कि वह अशआर में ख़ुदा या रसूल या अइम्मा–ए–दीन के साथ इस तरह की जसारतें करे जो इन्तेहाई हिक़ारत आमेज़ हों। यज़ीद के अशआर इसी तरह के हैं।

वह सिर्फ़ लज़ाएज़ से मुतमत्ते (लुत्फ़ अन्दोज़) नहीं होता था बल्कि नज़रया भी यही रखता था। देखा जाये तो उमर ख़ैयाम का यह फ़लसफ़ा कि आख़िर में फ़ना होना है इस लिए जितना मुमकिन हो दुनिया में मज़े लूट लो। ख़ैयाम से पहले यज़ीद के ज़हन में तशकील पा चुका था। चुनाँनचे वह कहता है:

اقول الصحب ضمت الكاس شمدهم | وداعی مباباتالهدی یترنم
خذوابنصیب من نعیم ولذة | فکل وان طال الهدییتصرّم

"उन साथियों से जिन्हें साग़रो शराब ने एक मरकज़ पर जमा कर दिया है और जिनके सामने इश्क़ो मुहब्बत के मुहर्रिकात (हरकत करने वाले) नग़मा सराई करते हैं मेरा यह क़ौल है कि जितना मुमकिन हो ऐश व लज़्ज़त से बहरावर (डूबेहुए) हो लो क्योंकि कितनी ही मुद्दत तूलानी हो आख़िर में तो ख़त्म ही होना है।"[2]

---

[1]सवाएक़े मुहर्रिक़ा पेज/135
[2]सवाएक़े मुहर्रिक़ा पेज/132

नमाज़ और शराब ख़ोरी का मवाज़िना (मुक़ाबला) करते हुए उसने एक शेअ्र में कहाः

ماقال ربک ویل الالیٰ شربوا
بل قال ربک ویل اللمصلین

''यानी खुदा ने शराबख़्वारों को अज़ाब से डराने के लिए ''वैलुश्शारेबीन''(लानत) कहीं नहीं कहा बल्कि कुरआन में नमाज़ गुज़ारों को ''वैलुल लिलमुसल्लीन'' (वाये हो ऐसे नमाज़ियों पर) कहा है।''

एक जगह उसने शराब के बारे में इस तरह कहा है।

فان حرمت یوما علیٰ دین احمد
فخذحا علیٰ دین المسیح ابن مریم

यानी अगर दीने अहमद में शराब पीने को हराम समझा गया है तो ख़ैर दीने मसीह पर हो कर ही पी लो।'' उसने आख़ेरत की नेमतों का मवाज़ना नमाज़ व शराब से करते हुए यूँ कहा है।

معشر الندّمانقوموا	واسمعوا صوت الاغانی
واشربوکاسمدام	واترکواذکر المعانی
شغلتنی نعمۃ العید	ان من صوت الاذان
وتعوّضت عن الحو	رعجوزانیالدّنان

''ऐ हरीफ़ाने शराब (शराबी साथियों) उठो और गानो की सदा सुनो, साग़रे शराब पियो और दूसरी बातों का ज़िक्र छोड़ दो, मुझको सितार और सारंगी के नग़मों से अज़ान की आवाज़ सुनने की फुरसत नहीं और हूरों के एवज़ मैं ने शीशा की परी को पसन्द कर लिया है।''

यूँ तो यह अशआर तफ़रीहे तबा का ज़रिया भी बन सकते हैं मगर उनमें हूरो कुसूर की ख़बरों का मज़हका ज़रूर मुज़मर (छुपा) है। इतना ही नहीं बल्कि उसने हश्रो नश्र (आख़िरत) के इन्कार को बिल्कुल सराहत (साफ़ साफ़) के साथ ज़ाहिर कर दिया है। अपने इन अशआर में।

علیۃ هاتی واعلنی وترنّمی	بذالک انی لاحب التناجیا
حدیث ابی سفیان قدماسمابها	الیٰ احد حتی اقام البواکیا
الاهات سقینی علیٰ ذالک قهوة	تخیرها العنی کرماشامیا
اذامانطرنانی امور قدیمۃ	وجدنا حلالاشربها متوالیا
وان مت یاام الاحیم فانکحی	ولاناملی لعد الفراق تلاقیا

فان الذی حدثت عن یومابعثنا	احادیث طسم تجعلالقلب ساهیا
ولابدّلی من ان ازورمحمّدا	بشمولۃ صفراء تروی عظامیا

"ऐ नाज़नीन महबूबा मुझे सुना और बलन्द आवाज़ से सुना और गा कर पढ़, मुझे चुपके चुपके गुफ़्तगू अच्छी नहीं मालूम होती। सुना अबू सुफ़ियान का वह पुराना क़िस्सा, ओहद में उसका कारनामा जहाँ उसने दुश्मनों के घर में मातम बरपा कर दिया था। हाँ उसी अफ़साने के साथ मुझे शराब पिलाती जा, वह शराब जिसे शाम के बहुत मुन्तख़ब अंगूर से बनाया गया हो। हम जब क़दीमी अमल दरआमद पर नज़र डालते हैं तो हमें उसका पीना हलाल ही नज़र आता है और मैं मर जाऊँ ऐ नाज़नीन महबूबा तो तू किसी और से निकाह कर लेना और यह उम्मीद न करना कि इस जुदाई के बाद कभी फिर मुलाक़ात होगी। दूसरी ज़िन्दगी के मुतअल्लिक़ तूने जो क़िस्से सुने होंगे वह पारीना क़िस्से (पुराने) हैं जो इन्सान के दिल को नादानी में मुब्तिला करते हैं। यह यक़ीनी है कि मैं मुहम्मद[स0अ0] का सामना करूँगा ऐसी शराब के नशे में मस्त रह कर जिस का असर मेरी हडडियों तक पहुँच गया हो।"

इन अशआर से साफ़ ज़ाहिर है कि उसके दिल में जाहलियत के ख़यालात और बद्र व ओहद का मुशरिकाना जज़्बा और हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] से ज़िद और कद (दुश्मनी) का जज़्बा मौजूद था। इनके साथ आगे चल कर वह अशआर भी आयेंगे जो उसने क़त्ले हुसैन[अ0स0] के बाद और अहलेबैत[अ0स0] के शाम में वारिद होने के वक़्त कहे हैं तो वह भी उन्हीं ख़यालात के हामिल नज़र आयेंगे। इस सबके बावजूद यह सियासते दुनिया की सितम ज़रीफ़ी नही तो और क्या था कि ऐसा शख़्स इस्लामी ख़लीफ़ा और एक हैसियत से जानशीने रसूल[स0अ0] और अमीरूल मोमिनीन बन कर बैठ गया था और मुसलमानों की अक्सरीयत उसकी इस हैसियत को तस्लीम कर रही थी। उसका असर आम मुसलमानों के अख़लाक़ पर क्या पड़ सकता, सिवा इसके कि उनमें भी मज़हबी बेहिसी बल्कि मज़हब को निगाहे हिक़ारत से देखने का जज़्बा और वही ऐश व निशात की गर्म बाज़ारी पैदा हो जाती, चुनानचे ऐसा ही हुआ।

तेरहवाँ बाब

इमाम हुसैन[अ०स०] के बलन्द अख़्लाक़ व कमालात और गराँ क़द्र मक़ूलात

अरब के एक फ़लसफ़ी शायर ने कहा है। "ان العظائم کفوحا العظمآء" बड़े कारनामों के लिए बड़े ही नुफ़ूस दरकार होते हैं।" एक दूसरे शायर ने कहा है:

علیٰ قدر اهل العزم تاتی العزائم | وتاتی علیٰ قدر الکرام المکارم
ویکبرفی عین الصغیر صغارها | وتصغرفی عین العظیم العظائم

"यानी साहिबाने इरादा की शख़सियत के मुताबिक़ ही होते हैं उनके इरादे और बुज़ुर्ग मर्तबा नुफ़ूस की मुनासिबत ही से होती हैं उनकी बुज़ुर्गियाँ, छोटे आदमी की निगाह में छोटा सा काम भी बड़ा मालूम होता है। इसलिए अव्वल तो वह उसके करने की हिम्मत नहीं करता और अगर कर भी लेता है तो उसको अपना सबसे बड़ा कारनामा समझ कर उस पर नाज़ाँ हो जाता है और बड़े की निगाह में बड़ा काम भी छोटा मालूम होता है इस लिए वह उसे कर गुज़रता है और उस पर भी उसका दिल नहीं भरता बल्कि उससे भी बड़े कारनामे के लिए तैयार रहता है।"

इस नुक़्त–ए नज़र से देखा जाता है तो मुजाहिद–ए–करबला ऐसे अज़ीमुश्शान कारनामे का हामिल होना ही हुसैन[अ०स०] के नफ़्से बुज़ुर्गी और उनके किरदार की रिफ़अत के मुतअल्लिक़ वह सब कुछ बतला देता है जिसका शायद पूरे तौर पर अन्दाज़ा करना और फिर उसे वाज़ेह तौर पर अलफ़ाज़ के ज़रिये से पेश करना मुअर्रीख़ीन (इतिहास कारों) के तसव्वुर और तहरीर की ताक़तों से बाहर था।

हक़ीक़त यह है कि वाक़ेय–ए–करबला के नादिर खुसूसियात आलमे वकूअ(वजूद) में आ ही न सकते थे। अगर उसके अन्जाम देने के लिए हुसैन[अ०स०] के ऐसे बदलन्द नफ़्स का इन्सान मौजूद न होता और वाक़ेय–ए–करबला में अज़्मत, अहमियत और नतीजे के लिहाज़ से यह तासीर

पैदा हो ही नहीं सकती थी अगर उसका तअल्लुक़ हुसैन[अ0स0] ऐसी अज़ीमुल मरतबत ज़ात के साथ न होता।

यूँ तो वाक़ेय–ए–करबला ख़ुद ही ऐसी नादिर ख़ुसूसियात रखता है कि बहैसियत वाक़ेय–ए–करबला उसकी मिसाल कोई मिल ही नहीं सकती लेकिन उन ख़ुसूसियात समैत भी उसकी तासीर का बड़ा तअल्लुक़ उस चीज़ के साथ है कि वह हुसैन[अ0स0] ऐसी बलन्द हस्ती के साथ मुतअल्लिक़ है। कोई मामूली शख़्स ऐसा कर ही नहीं सकता था और बफ़र्ज़े मुहाल करता भी तो उसकी यह तासीर नही हो सकती थी। इसलिए वाक़–ए–करबला का वक़ूअ भी हुसैन[अ0स0] के नफ़्स की इन्तेहाई अज़मत का सुबूत है और उसकी वह तासीर भी जो आलमे इस्लाम में पैदा हुई हुसैन[अ0स0] के नफ़्स की रिफ़अत व बलन्दी और आपकी शख़सियत की बरतरी की दलील है।

मगर यह नुक़ता भी पेशे नज़र रखना ज़रूरी है कि शख़सियत और किरदार का बाहमी तअल्लुक़ एक मुतआकिस (अलग) नतीजा रखता है यानी किसी ख़ास अमली कारनामे में अहमियत और तासीर पैदा होती है। शख़सियत की रिफ़अत (बलन्दी) व शोहरत और सर बलन्दी से, और फिर उस इन्सान की शख़सियत व अज़मत में इज़ाफ़ा हो जाता है उस किरदार से। इसलिए कोई शुबहा नहीं है कि अगरचे वाक़ेय–ए–करबला का वजूद में आना और फिर उसमें यह तासीर पैदा होना मुमकिन न था बग़ैर इमाम हुसैन[अ0स0] के। मगर इमाम हुसैन[अ0स0] की शख़सियत की हमागीरी और रहनुमायाने आलम में आपकी इम्तियाज़ी फ़ौक़ियत (बलन्दी) के आफ़ताब का बिला तफ़रीक़े मज़हबो मिल्लत हर वाक़िफ़ और मुन्सिफ़ (इन्साफ़ पसन्द) शख़्स की निगाह में ख़त्ते निस्फ़ुन्नहार (हद्दे कमाल) पर पहुँचना भी वाक़ेय–ए–करबला के सबब से था, यही वजह है कि वाक़ेय–ए–करबला के दौरान में आपकी सीरत के ख़त्तो ख़ाल अपने छोटे छोटे जुज़ियात (वाक़ेआत) के साथ महफ़ूज़ हैं। सबब इसका साफ़ ज़ाहिर है। वाक़ेय–ए–करबला के पहले इमामे हुसैन[अ0स0] को मुअर्रीख़ीन की निगाह बस उस हद तक देख सकती थी जितना कि आपके बड़े भाई इमाम हसन[अ0स0] या आपकी औलाद में उन इमामों को वह देख सकी, जिन में से हर एक तक़वा, इस्मत, और पाकबाज़ी का मुजस्समा था। जैसे उनके औसाफ़ व किरदार के मुतअल्लिक़ कभी इजमाल (मुख़तसर) और कभी कुछ तफ़सील के साथ बाज़ वाक़ेयात, सख़ावत, इबादत, रियाज़त, व हिल्म (बरदाश्त) वग़ैरह का तज़किरा है। उसी तरह इमाम हुसैन[अ0स0] के मुतअल्लिक़

भी जस्ता जस्ता (थोड़े थोड़े) इस क़िस्म के मुख़तलिफ़ वाक़ेयात और हालात का तज़किरा सफ़हाते तारीख़ पर पाया जाता है। उस वक़्त के तारीख़ी वाक़ेयात महफ़ूज़ करने वालों को सन 60 हिजरी के पहले तक क्या मालूम था कि आप एक ऐसा अज़ीम कारनामा अन्जाम देने वाले हैं जिसकी मिसाल तारीख़ के सफ़हात पर नापैद होगी ताकि वह इब्तिदा–ए–उम्र से आपकी ज़िन्दगी के हर जिज़ये (हिस्से) को महफ़ूज़ रखने की कोशिश करते और उन्हें सीना ब सीना महफ़ूज़ करके लब ब लब मुन्तक़िल करते हुए किताबों के दामन तक पहुँचाते।

लेकिन एक तरफ़ तो वाकेय़–ए–करबला के दौरान मे तमहीदी (शुरूआती) या ज़िमनी तौर पर तारीख़ ने जो मुख़तलिफ़ अख़लाक़ी वक़ेयात और हालात हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के बयान कर दिये हैं वह आपकी सीरत व किरदार का एक आईना पेश करते हैं, दूसरी तरफ़ आपकी साबिक़ा ज़िन्दगी के मुतअल्लिक़ जिन रिवायात को तारीख़ ने हम तक पहुँचाया है उन से भी आपकी अज़मत और अवसाफ़ व कमालात के मुतअल्लिक़ एक रौशन मुरक़्क़ा हमारी आँखों के सामने आ जाता है जिससे मालूम होता है कि हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] सिर्फ़ एक मज़लूम और सितम रसीदा, शहीद होने के लिहाज़ ही से दुनिया के कुलूब (दिलों) का मरकज़ नहीं हैं बल्कि आपके ज़ाती ख़ुसूसियात और अवसाफ़ व कमालात भी आपको दुनिया का क़िब्ला बनाने के लिए काफ़ी थे जिनसे आप इन्सानियत की मेराज व बलन्दी में सबसे ज़्यादा रफ़ीअ् (बुलन्द) दर्जे पर नज़र आते हैं।

ज़ाहरी हैसियत से माहरीने नफ़सियात के नुक़त–ए–नज़र से शख़सियतों की तशकील (बनने) के असबाब हस्बेज़ैल होते हैं।

पहले ख़ानदानी खुसूसियात और बुज़ुर्गों के क़दीम रिवायात। दूसरे माहौल और तालीम व तरबियत। तीसरे ज़िन्दगी के अहम तजुरबात। पहली चीज़ वह है जो इन्सान के ख़ून में दौड़ कर उसकी सलाहियत और इस्तेदाद (ताक़त)और फ़ितरी क़ाबलियतों की तश्कील करती है। दूसरी चीज़ उन सलाहियतों को फ़ेलियत (काम) के दर्जे से क़रीब तर पहुँचाने का काम अन्जाम देती है या बसा अवक़ात (कभी कभी) फ़ेलियत में ले आती है। और तीसरी चीज़ उन फ़ेअ्ली कमालात में पुख़्तगी पैदा करके मलक–ए–ज़ाती बनाती और उन में इस्तेहकाम (मज़बूती) पैदा करती है। हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] में तीनों बातें ब–दर्जा–ए अतम (पूरी तरह) पाई जाती हैं। आपके ख़ानदादी ख़ुसूसियात

वह थे जिनकी नज़ीर दूसरे शख़्स में पाई न जाती थी और यह ख़ुसूसियत वह थी जिसके लिहाज़ से आपके मुख़ालिफ़ गिरोह को अपनी फ़ौक़ियत साबित करने के लिए कोई दलील न मिलती थी सिवा ज़ुल्मो जब्र और क़हर व इस्तिबदाद (सख़्ती) के। उन्हें एक ख़ास एहसासे कमतरी के साथ आपके बलन्द ख़ुसूसियात को ख़ुद अपनी ज़बान पर लाना पड़ता था और जवाब देने ही के इरादे से उनका एतेराफ़ करना पड़ता था। चुनाँनचे यज़ीद ने भी अपने दरबार में इसका इक़रार किया कि बेशक उनकी माँ मेरी माँ से बेहतर और उनके नाना मेरे नाना से बेहतर थे।[1] इन ख़ानदानी ख़ुसूसियात के साथ जो ज़ाहरी असबाब की बिना पर हुस्ने फ़ितरत के ज़ामिन हैं हुसैन[अ०स०] ने तरबियत ऐसी बलन्द पाई थी जिससे इन्सान के अख़लाक़ व अवसाफ़ में बलन्दी पैदा होना लाज़मी है। इसके अलावा आपको मुख़तलिफ़ हालात और मुतज़ाद (मुख़तलिफ़) वाक़ेयात के ऐसे दौर से गुज़रना पड़ा था जिसमें इन्सान को जज़्बाते नफ़्स के ख़िलाफ़ अक़्ल की ताक़त से काम लेना पड़ता है इसलिए नफ़्स में पुख़्ता कारी, तदब्बुर (बलन्द फ़िक्री) और इस्तेक़लाल (साबित क़दमी) पैदा होना लाज़मी है।

इन वाक़ेयात से एक ऐसा शख़्स भी जो इमाम हुसैन[अ०स०] की बहैसियत एक मासूम ज़ात के मारिफ़त न रखता हो, यह मानने के लिए मजबूर है कि हुसैन[अ०स०] कोई जज़्बाती इन्सान न थे। वह मुतहम्मिल (बरदाश्त) और बुर्दबार थे। और कभी ग़ुस्से और जोश में आकर कोई ऐसा काम न करते थे जो नज़्मो ज़ब्त और सुकून के ख़िलाफ़ हो। सख़्त से सख़्त मवाक़े पर ख़ामोशी आपका एक मुस्तक़िल किरदार बन गई थी। बशर्तेकि उस ख़ामोशी से उन मुक़ासिद को कोई ज़रर (नुक़सान) न पहुँचे जिनके वह ख़ुद और उनके नाना, बाप और भाई मुहाफ़िज़ रहे थे। हर शख़्स समझ सकता है कि ऐसी सुल्ह कुल मुतहम्मिल और अमन पसन्द ज़ात किसी ऐसे इक़दाम के लिए तैयार नहीं हो सकती जिस में वह और उसके तमाम साथी एक दम तहे तेग़ हो जायें। जब तक ऐसे अहम और ग़ैर मामूली असबाब पैदा न हो जायें जिन के बाद वह ऐसा कर गुज़रना ख़ालिक़ की तरफ़ से अपना फ़र्ज़ समझे। चुनानचे जब ऐसी सूरतें पैदा हो जाती हैं तो वह ऐसा कर गुज़रता है और इससे उसके नफ़्स की इरादी ताक़त और अमली कुव्वत की पुख़्तगी और अपने ज़ाती जज़्बात को

[1]तबरी, जि/6, पेज/266

फ़राएज़ के मुक़ाबले में फ़ना कर देने की वह बलन्द मन्ज़िल ज़ाहिर होती है जिस पर हर इन्सान नहीं पहुँच सकता।

नफ़सानियत की फ़ना और फ़र्ज़ शनासी का मलेका यही वह एक जामे और वसी मफ़हूम (खुलासा) है जिसके तहत में इन्सानी किरदार के तमाम मुज़ाहरात (ज़ाहिर होना) जुज़्ई व कुल्ली (मुख़तसर व पूरे) तौर पर दाख़िल हो जाते हैं मगर हज़रत हुसैन[अ0स0] के कमालात व अवसाफ़ की तशरीह़ के लिए जब अहले मारिफ़त ने क़लम उठाया तो उस पर इजमाली तब्सरे के लिए भी बलन्द तरीन अलफ़ाज़ तलाश करना पड़े और तफ़सील के मौक़े पर भी ज़र्रीं रिवायात सामने आये।

इब्ने अबी शैबा मशहूर मुहद्दिस (हदीसों को जमा करने वाले) ने इमाम हुसैन[अ0स0] का हाल दर्ज करते हुए लिखा है।

كان عالما بالقرآن عاملا عليہ زاهدا تقيا ورعا جوادا فصيحا بليغا عارفا باللہ ودليلا علیٰ ذاتہ تعالیٰ

आप कुरआन के आलिम और उस पर आमिल, ज़ोहद व तक़वा के जौहर के हामिल, पाकीज़ा ख़िसाल, परहेज़गार, सख़ी, शीरीं बयान और शेवा ज़बान खुदा की मारिफ़त रखने वाले और ज़ाते इलाही का एक सुबूत थे।''

आख़िरी फ़िक़रे से ज़ाहिर है कि लिखने वाला पहले तो अवसाफ़ के इज़हार में ब–मजबूरी इन अलफ़ाज़ को सर्फ़ करता रहा जो मामूली दरजे के उलमा और जुह्हाद (परहेज़गार) के मुतअल्लिक़ भी सर्फ़ होते रहते हैं। फिर उसका हौसला–ए–इज़हार उन अलफ़ाज़ की कोताही से तंगी करने लगा और उसने आख़िरी अलफ़ाज़ में सिफ़ाते इन्सानी की मेराजे कमाल का पता दे दिया कि वह अपने ख़ालिक़ के अवसाफ़ का मज़हर बन जाये। अल्लामा इब्ने अरबी ने इसी लिए पहले ही कोताह दामने अलफ़ाज़ के दफ़्तर को तह ही रखना मुनासिब समझा और उन्होंने कहा कि ''كان الحسين السبط آيۃ من آيات اللہ'' सिबते रसूल इमाम हुसैन[अ0स0] खुदा की निशानियों में से एक बड़ी निशानी थे।'' यह इख़्तेसार बयाने अवसाफ़ में वह होता है जो हज़ार तफ़सीलों से बढ़कर फ़ायदा देता है।

हुसैन[अ0स0] बेशक ज़ाते इलाही का सुबूत और उसकी बड़ी निशानी थे। इसी लिए खुदा को न मानने वालों का भी हुसैन[अ0स0] को देख कर दिल चाहने लगता है कि खुदा को मान लें या मानने लगते हैं।

जैसा कि ''जोश मलीहाबादी'' ने कहा है:

हाँ वह हुसैन जिसका अबद आशिना सिबात
कहता है गाह गाह हकीमों से भी यह बात
यानी दुरूने परद–ए–सद रंगे काएनात
एक कार साज़ ज़हन है एक ज़ी शऊर ज़ात
सजदों से खींचता है जो मसजूद की तरफ़
तन्हा जोइक इशारा है माबूद की तरफ़

इबादत आपकी यानी वह जिसे आम तौर पर इबादत समझा जाता है वरना हक़ीक़त के लिहाज़ से तो आपका हर अमल रिज़ा–ए–परवरदिगार की ग़रज़ से और फ़र्ज़ के एहसास का नतीजा होता था। इसलिए कोई हरकत व सुकून भी आपका इबादत से बाहर न था मगर उस महदूद मफ़हूम के लिहाज़ से भी जिसके एतेबार से लोग इन्सान को आबिद कहते हैं आपकी इबादत दुनिया के लिए एक बेमिसाल नमूना थी। रात दिन की नमाज़ गुज़ारी और मुसलसल रोज़ादारी के अलावा 25 हज आपने पापियादा (पैदल) किये।[1]

इन तमाम हजों के वाक़ेयात और ज़माने की तईईन (तहक़ीक़) से हमारे मौजूदा मालूमात कोताह हैं। एक मर्तबा के सफ़रे हज का तज़किरा यह मिलता है कि ख़लीफ़–ए–सालिस के ज़माने में इमाम हुसैन[अ0स0] अपने वालिदे बुज़ुर्गवार जनाबे अमीर[अ0स0] की मईयत (साथ) में हज के लिए मुतवज्जेह हुए मगर आप सक़िया और एरज के दरमियान थे कि बीमार पड़ गए। अब्दुल्लाह बिन जाफ़र आपको उठा कर अपने साथ ले गए हज़रत अली[अ0स0] शायद कुछ आगे बढ़ चुके थे। आपको भी ख़बर दी गई। आप असमा बिन्ते उमैस को लेकर तशरीफ़ लाये तक़रीबन बीस दिन तक और एक रिवायत के मुताबिक़ चालीस दिन तक तीमार दारी होती रही। तब आप सेहतयाब हो कर मदीने वापस आये।[2] लेकिन यह वाक़ेया अगर दुरूस्त हो तो इस तादाद से ख़ारिज होगा। हाँ एक मर्तबा का यह तज़किरा है कि आप और आपके भाई इमाम हसन[अ0स0] दोनो शाहज़ादे पियादा (पैदल) हज के लिए जा रहे थे। इत्तेफ़ाक़ से रास्ते में हाजियों का क़ाफ़िला भी उन तक पहुँच गया। अब जो उन शाहज़ादों को लोगों ने पियादा देखा तो हर शख़्स जिसकी नज़र पड़ती वह फ़ौरन उनके एहतेराम के लिहाज़ से सवारी से उतर पड़ता। कुछ देर तो लोग साथ साथ पियादा चलते रहे। आख़िर ताक़ते रफ़्तार ने जवाब दिया। सब मिलकर सअ्द

---

[1].तहज़ीबुल असमा नूदी जि/2
[2]तफ़सीरे मजमउल बयान तबरी, जि/2, पेज/240

बिन अबी विक़ास के पास आये जो उस क़ाफ़िले में सिन रसीदा (बूढ़े) सहाबी थे। उनसे आकर कहा कि अब तो रास्ता चलना हम लोगों पर बहुत बार है मगर यह अच्छा नहीं मालूम होता कि हम लोग सवार हों और यह दोनों शहज़ादे पापियादा (पैदल) रस्ता तय करें। सअ्द इमाम हसन[अ0स0] की ख़िदमत में हाज़िर हुए और कहा कि आपके साथ वालों में से बाज़ पर पियादा (पैदल) चलना निहायत शाक़ (दुशवार) हो रहा है। मगर लोग जब आप दोनों बुज़ुर्गों को पियादा चलते देखते हैं तो उनका दिल नहीं चाहता कि वह सवार हो कर रास्ता चलें। इसलिए बेहतर मालूम होता है कि अब आप दोनों हज़रात सवार हो जायें। इमाम हसन[अ0स0] ने फ़रमाया कि यह तो हो नहीं सकता क्योंकि हम ने अपने ऊपर फ़र्ज़ यही क़रार दिया है कि हम ख़ान–ए–काबा की तरफ़ अपने पैरों से चल कर जायें। मगर लोगों को तकलीफ़ देना भी हमें गवारा नहीं है इस लिए हम इस रास्ते को छोड़े देते हैं। चुनानचे वह दोनों बुज़ुर्गवार शाहराह (Main Road) से हट कर दूसरे रास्ते से रवाना हो गए।[1] एक मर्तबा के हज का तज़किरा है कि आप के भतीजे अब्दुर्रहमान बिन हसन[अ0स0] आपके साथ थे और हालते एहराम में अबवा के मक़ाम पर उनकी वफ़ात हो गई।[2]

इबादते इलाही के साथ जो दिली वाबस्तगी थी उसका अन्दाज़ा आपको इमाम हुसैन[अ0स0] के उन अलफ़ाज़ से भी हो सकता है जो 9 मुहर्रम की सेहपहर को आपने एक शब की मोहलत तलब करने के मौक़े पर इरशाद फ़रमाये थे। आपने कहा कि इस शब को हम इबादत व ज़िक्रे इलाही में बसर कर लें। खुदा ही जानता है कि मुझे उसकी इबादत व ज़िक्र से कितनी मुहब्बत है।[3] चुनाँनचे यह शब आपने और आपके साथियों ने इस तरह गुज़ारी की لهم دويّ كد ويّ النحل यानी उनके तस्बीह व तहलील और ज़िक्रो मुनाजात की आवाज़ रात के तारीक सन्नाटे में इस तरह गूँज रही थी कि जैसे शहद की मक्खी के छत्ते से आवाज़ बलन्द होती है। और रोज़े आशूरा ऐसे सख़्त वक़्त में नमाज़ ब–जमाअत अदा की जब कि मौत का बाज़ार गर्म था। करबला की ज़मीन पर ख़ून की बारिश अलग थी। तीरों की बारिश अलग थी और गर्मी से आग अलग बरस रही थी। मरग इस मौक़े पर ज़ोहर की नमाज़ जमाअत के साथ यूँ अदा हुई कि दो जाँ निसारों को मुहाफ़िज़त के लिए सामने खड़ा

---

[1]अल इरशाद पेज/266

[2]अल इरशाद पेज/203

[3]अल इरशाद पेज/243

किया कि जो तीर आये उसे अपने सीने पर रोकें। इधर नमाज़ तमाम हुई और उधर उनमें से एक सहाबी सईद बिन अब्दुल्लाह हनफ़ी ज़ख़्मों से चूर हो कर ज़मीन पर गिरे। इस तरह हुसैन[अ0स0] ने ख़ालिक़ की इबादत और फ़रीज़–ए–नमाज़ की अहमियत दुनिया में साबित की।

इसी के साथ आप फ़य्याज़ थे। और ख़ल्क़े ख़ुदा को फ़ायदा पहुँचाने की फ़िक्र रखते थे। इसके वाक़ेयात तारीख़ में बकसरत मिलते हैं।

ख़ुद रसूल अल्लाह[स0अ0] ने अपने इस नवासे के अन्दर बचपने ही से इस सिफ़त को कुछ ऐसा नुमायाँ पाया कि इरशाद फ़रमायाः

اماالحسن فان لہ ہیبتی وسود دی وامّاالحسین فان لہ جودی وشجاعتی

"यानी हसन के लिए मेरा रोअ्ब व दाब और शाने सरदारी है और हुसैन[अ0स0] में मेरी सख़ावत और मेरी बहादुरी।[1] यूँ तो हुसैन[अ0स0] औसाफ़े रसूल[स0अ0] के वारिस थे ही लेकिन ख़ुसूसियत से अपनी सख़ावत व शजाअत बख़्शने से ज़ाहिर होता है कि हज़रत के यह औसाफ़ दीगर औसाफ़ से ज़रूर कुछ इम्तियाज़ रखते हैं।

ख़िदमते ख़ल्क़ और नौए इन्सानी की हमदर्दी के बेहतरीन जज़्बे के साथ साथ आपने इस की भी तल्क़ीन फ़रमाई है कि इस बारे में हिफ़ज़े मराबित (मर्तबों को लिहाज़) का ख़याल रखना चाहिए। यानी साएल जितना सिफ़ात के एतेबार से क़ाबिले इज़्ज़त हो और इल्मो मारिफ़त में बलन्द दर्जा रखता हो उतना उसके साथ सुलूक बेहतर किया जाये। इसका बेहतरीन सुबूत यह वाक़ेया है कि एक आराबी (देहाती) इमाम हुसैन[अ0स0] की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और तस्लीम बजा लाया और अर्ज़े हाल करते हुए कहने लगा कि मैं ने आपके जद्दे बुज़ुर्गवार को यह फ़रमाते हुए सुना है कि जब कोई हाजत पेश करना हो तो चार क़िस्म के आदमियों में से किसी एक के सामने पेश करना। या तो शरीफ़ुन्नफ़्स अरब या सख़ी सरदार या हामिले क़ुरआन या वजीह व शकील (ख़ुबसूरत) इन्सान। आप में यह चारों सिफ़तें जमा हैं। अरब क़ौम, उसको तो शरफ़ आपके जद्दे बुज़ुर्गवार से हासिल हुआ। और सख़ावत, यह आपका शेवा और ख़सलत है। और क़ुरआन, वह आप ही के घर में नाज़िल हुआ और ख़ूबसूरती, उसके मुतअल्लिक़ मैं ने आपके जद्दे बुज़ुर्गवार को फ़रमाते हुए सुना कि अगर मुझे देखना हो तो हसन[अ0स0] व हुसैन[अ0स0] को देख लेना। यह पुर मारिफ़त तक़रीर सुनकर हज़रत ने फ़रमाया कि तुम्हारी हाजत

---

[1] इरशाद पेज/291

क्या है? उसने अपनी हाजत ज़मीन पर लिख दी। आपने फ़रमाया कि मैंने अपने वालिदे बुज़ुर्गवार का यह क़ौल सुना है कि हर इन्सान की क़द्र व मन्ज़िलत वही है कि जो उसमें हुनर मौजूद है, और मैंने अपने जद्दे बुज़ुर्गवार का इरशाद यह सुना है कि एहसान बक़द्रे मारिफ़त होना चाहिए। इसलिए मैं तुम से तीन सवाल दरयाफ़्त करता हूँ। अगर तुमने एक सवाल का जवाब ठीक दिया तो तुमको मैं एक तिहाई माल दे दूँगा। अगर दो जवाब तुम ने ठीक दिये तो दो तिहाई माल दूँगा और अगर तुमने तीनों सवालों का जवाब दुरूस्त दिया तो जो कुछ मेरे पास मौजूद है वह सब मैं तुम्हें दे दूँगा। मेरे पास माले दुनिया से इस वक़्त यह एक थैली है, ज़रे नक़्द (नक़्दी पैसा) की जो इराक़ से भेजी गई है। उसने कहा। पूछिये? अल्लाह मेरी मदद करेगा। आपने फ़रमाया। बताओ कौन सा अमल सबसे बेहतर है? उसने कहा अल्लाह पर ईमान लाना। पूछा कि अच्छा बन्दे की निजात का ज़रिया हलाकत से क्या है? उसने कहा अल्लाह पर भरोसा रखना हज़रत ने फ़रमाया। इन्सान की ज़ीनत क्या है? उसने कहा इल्म जिसके साथ अक़्ल मौजूद हो। फ़रमाया अगर यह न हो? उसने कहा फिर माल हो जिसके साथ सख़ावत हो। फ़रमाया। अगर यह भी न हो? उसने कहा फिर फ़क़ीरी हो जिसके साथ सब्र मौजूद हो। हज़रत ने फ़रमाया और अगर यह भी न हो तो? उसने कहा, तो फिर एक बिजली गिरे और उस शख़्स को जला कर ख़ाकिस्तर कर दे। हज़रत हँसने लगे और वह पूरी थैली उसकी जानिब फेंक दी।[1]

यह तर्ज़े अमल गुरबा और मसाकीन को मालूमात मज़हबी हासिल करने का बेहतरीन मुहर्रिक (तरीक़ा) था और इस ज़रिये से अवाम में उलूम व मआरिफ़ की इशाअत होती थी। यह इस लिए था कि आप खुद अपने तमाम सिफ़ाते जलीला के साथ साथ आलिम थे। ऐसे जिनसे लोग मज़हबी मसाएल और अहम मुशकिलात में रूजू करते थे। अरब की मसल है। الناس اعداء لما جهلوا "लोग दुश्मन होते हैं उस चीज़ के जिसको वह न जानते हों।" रोऊसा (अमीर) और हुक्काम जो खुद इल्मो हुनर से बेबहरा हुआ करते हैं। अपनी इस कमज़ोरी पर पर्दा डालने के लिए आम अफ़राद की इल्मी सतह को पस्त रखने की फ़िक्र करते और लोगों की नज़र में इल्मो हुनर की क़द्रो क़ीमत घटाने की कोशिश करते हैं लेकिन इस्लाम के हक़ीक़ी रहनुमा हमेशा

[1]तफ़सीरे कबीर पेज/272, ग़रायबुल कुरआन जि/1, पेज/136

मुसलमानों की इल्मी सतह के बलन्द करने में मुनहमिक (लगे) रहे। हज़रत अली[अ०स०] की ज़िन्दगी इसी में गुज़री और आपके फ़रज़न्द इसी रास्ते पर क़ायम रहे।

अलावा उन ख़तबों और अशआर के जो आपकी ज़बानी मन्कूल (नक़्ल) हैं और जो इल्मे इलाहियात (ख़ुदा का इल्म) और मआरिफ़े हक़्क़हू (अल्लाह की मारिफ़त) के ख़ज़ानादार हैं या उन दुआओं और मुनाजातों के जो आपकी ज़बान से निकली हैं ओर जिन में से बाज़ का मजमूआ ''सहीफ़–ए हुसैनिया'' के नाम से इस वक़्त भी मौजूद है और ख़ालिक़ व मख़लूक़ के बाहमी रब्त की बे नज़ीर आइनादार हैं अगर जवामे हदीस (हदीसों के ज़ख़ीरों) की सैर की जाये तो उन में मसाएले फ़क़ीह के बारे में कसीर अहादीस आपसे मन्कूल मिलेंगे।

उस वक़्त भी जब आप अहले हरम को लेकर मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा से बरामद हुए हैं और सफ़रे गुरबत इख़्तियार किया है तो रास्ते में फ़रज़दक़ बिन ग़ालिब शायर से मुलाक़ात हुई और उसने कुछ मसाएल आप से नज़्र और मनासिके हज के मुतअल्लिक़ दरयाफ़्त किये और उनका जवाब हासिल किया।[1]

इसी का नतीजा है कि करबला में आपके असहाब की फ़ेहरिस्त पर नज़र डालने से मालूम होता है कि वह अवाम नहीं थे बल्कि उस वक़्त की इस्लामी जमाअत की पूरी रूह और इल्मो अमल का मुकम्मल ख़ज़ाना था जो हुसैन[अ०स०] पर निसार हो रहा था। उन में हाफ़िज़ाने कुरआन भी थे। आलिमाने किताब भी और हामिलाने हदीस (हदीसों के जानकार) भी। उनके जज़्ब और कशिश का मरकज़ कोई हो ही नहीं सकता सिवा ऐसी ज़ात के जो ख़ुद इन सिफ़ात में बलन्द तर जज़्बा रखती हो। बल्कि जो आपके ख़ानदानी मुख़ालिफ़ थे वह भी आपकी बुलन्दी–ए मर्तबा और बरतरी–ए–सिफ़ात के क़ायल थे। चुनानचे एक मर्तबा मस्जिदे नबवी में एक मजमा था जिसमें अबू सईद ख़दरी, और अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस भी मौजूद थे। उधर से हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] का गुज़र हुआ और आप ने तालीमे इस्लाम के मुताबिक़ मजमे को सलाम किया। सब ने जवाब दिया। उस वक़्त अम्र बिन आस के फ़रज़न्द अब्दुल्लाह चुप रहे। जब सब जवाब दे कर ख़ामोश हो गए तो उन्होंने आवाज़ बलन्द की और कहा व अलैकस्सलामो व रहमतुल्लाहे व बरकातुहू। फिर मजमे की तरफ़ मुख़ातब हो कर कहा, क्या मैं आप लोगों को बतलाऊँ कि अहले ज़मीन में

---

[1]इरशाद पेज / 228

सबसे ज़्यादा महबूब शख़्स अहले आसमान का कौन है? सबने कहा, ज़रूर बतलाइये। उन्होंने कहा वह यही रास्ते से गुज़रने वाला है। उन्होंने मुझसे जंग सिफ़्फ़ीन के बाद से अब तक बात नहीं की और अगर यह मुझसे किसी तरह राज़ी हो जायें तो यह मेरे लिये सुर्ख़ रंग के ऊँटों से ज़्यादा महबूब चीज़ होगी।[1]

यह अब्दुल्लाह ख़ानदाने बनू उमैया में ज़ोहदो तक़्वा और इबादत व रियाज़त में मशहूर थे मगर जंग सिफ़्फ़ीन में अपने बाप अम्र बिन आस के साथ हज़रत अली[अ0स0] से जंग करने के लिए आ गए थे। उस वक़्त से हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने उनसे बात करना छोड़ दी थी, मगर इसके बावजूद उनके दिल पर हज़रत के बलन्द औसाफ़ का इस दर्जा असर क़ायम था।

रास्तबाज़ी (सच्चाई) में दाख़िल है। अख़लाक़ी जुरअत, हुसैन[अ0स0] में अख़लाक़ी जुरअत ऐसी थी कि बचपने में ख़लीफ़–ए–दोम को मिम्बर पर टोक दिया और फ़रमाया ''उन्ज़िल अन मजलिसे अबी।'' उतर पड़ो मेरे बाप की जगह से।'' हज़रत उमर ने कहा। सच कहते हो साहबज़ादे, तुम्हारे ही बाप का मिम्बर है। ख़ुदा की क़सम मेरे बाप का मिम्बर नहीं।

रास्त बाज़ी व रास्त किरदारी का खुला हुआ नमूना यह था कि आपने मारक–ए–करबला के पहले मक्का से रवान्गी के बाद अपनी जमाअत की तादाद को क़ायम रखने के लिए कभी आइन्दा के ख़तरात को पोशीदा नहीं किया। बल्कि बराबर सूरते हाल से मुत्तेला करते रहे और बार बार आइन्दा के ख़तरात को यक़ीनी बना कर साथ वालों की हिफ़ज़ते जान व माल के लिए अलग हो जाने का मशवरा दिया और यह तरीक़ा उस वक़्त तक जारी रखा जब तक कि किसी एक शख़्स के भी ग़लत फ़हमी में मुब्तिला होने का इम्कान समझा जा सकता था।

आप अम्न पसन्द भी ऐसे थे कि आख़िर वक़्त तक दुश्मन से सुलह करने की ख़ुद अपनी तरफ़ से कोशिश जारी रखी मगर उसके साथ अज़्मो इस्तिक़लाल और हिम्मत ऐसी रखते थे कि जान दे दी मगर जो रास्ता पहले दिन सही समझ कर इख़्तियार कर लिया था उससे ज़र्रा भर भी न हटे।

उन्होंने बहैसियत एक फ़रज़न्द के बाप की इताअत की और छोटे भाई हो कर भाई की इताअत की। इस तरह कि उनकी वफ़ादाराना इताअत में कभी कमज़ोरी नज़र न आई और फिर बहैसियत एक सरदार के करबला के वाक़ेये

---

[1]असदुल ग़ाबा जि/3, पेज/235

में एक पूरी जमाअत की क़यादत की। इस तरह कि उनके नज़्मे क़यादत की मिसाल मुशकिल से मिलती है। इसके साथ आपकी निगाह ने मरदुम शनासी (इन्सानों की पहचान) का वह हैरत अंगेज़ नमूना पेश किया कि इतने सख़्त और दुशवार गुज़ार रास्ते के लिए जिन साथियों को मुन्तख़ब करके अपने साथ ले लिया था उनमें से एक ने भी वफ़ादारी और जान निसारी में कमी न की। और सब यक (एक) जान व यक (एक) दिल हो कर मक़सदे हक़ के लिए कोशाँ रहे। यहाँ तक कि जानें कुर्बान कर दीं।

इमाम हुसैन अ०स० के मक़ूलात

बलन्द मर्तबा अफ़राद में भी बेश्तर वही अफ़राद होते हैं जिनके अक़्वाल को उनके आमाल पर नुमायाँ फ़ौक़ियत हासिल होती है मगर हुसैन अ०स० का किरदार बज़ाते खुद इतना बलन्द था कि उसने दुनिया की ज़बान और उसके क़लम की तमाम तर तवज्जोह को अपने लिए मख़सूस कर लिया। लिहाज़ा आपके मक़ूलात (अक़्वाल) को यकजा करने की ज़्यादा कोशिश नहीं की गई। फिर भी आपके मक़ूलात मुतफ़र्रिक़ तौर से मुख़्तलिफ़ किताबों में कुछ न कुछ मिल ही जाते हैं और वह बड़ी हद तक आपकी ज़िन्दगी के मुख़्तलिफ़ रुख़ों की तरजुमानी करते नज़र आते हैं। उनमें नज़्म भी हैं और नस्र भी।

चुनानचे आपने फ़रमाया है कि:

1. من جادسادومن بخل ذل "जिसने दिया लिया, उसने सरदारी पाई और जिसने कन्जूसी की उसने ज़िल्लत उठाई।"

2. اجودالناس من اعطیٰ من لایرجوه "सख़ी वही है जिसने उसको भी दिया जो उससे कोई तवक़्क़ो वाबस्ता नहीं रख सकता हो।"

3. من انعم الله منکم فلیتعم علیٰ غیره ۔ "जिसको ख़ुदा ने दिया है वह औरों को भी दे।"

4. حوائج الناس الیکم من نعم الله علیکم- "अहले हाजत का तुम्हारे पास आना भी तुम पर ख़ुदा की नेअ्मतों में से है।

5.

اغن عن المخلوق بالخالق	تفن عن الکاذب والصادق
واسترزق الرحمٰن من فضله	فلیس غیرالله من رازق
من ظنّ ان الناس یغنونهٗ	فلیس بالرحمٰن بالواثق
اوظن انّ الناس یکنونه	ذلّت به النعلان من حالق

''ख़ुदा से लौ लगा कर मख़लूक़ से बेनियाज़ हो जाओ तो फिर किसी झूटे सच्चे की तुम्हें परवा न रहेगी। माँगना हो तो ख़ुदा ही से माँगो। ग़ैर ख़ुदा रोटी देने वाला नहीं है। जिसका ख़याल हो कि लोग उसको ग़नी कर देंगे उसको ख़ुदा पर एतेमाद नहीं और जो यह समझता हो कि लोग उसके लिए काफ़ी हैं वह यक़ीनन बड़ी पस्ती में गिरने वाला है।''

6.

كلّما زيد صاحب المال مالا | زيد فی همّه رفی الاشغال

''इधर तो माल वालों के माल बढ़ते हैं और उधर उनके अफ़कार व अशग़ाल (मसरूफ़ियत) में इज़ाफ़ा होता है।''

7. من وصل الی الله انقطع عن غیره ''जो ख़ुदा से मुत्तसिल (क़रीब) हुआ उसके ग़ैर से जुदा हो गया।''

इब्ने कसीर ने ''बिदायतुन निहाया'' में इस्हाक़ बिन इब्राहीम की रिवायत से नक़्ल किया है कि इमाम हुसैन[अ०स०] ने जन्नतुल बक़ी में क़ुबूरे शोहदा की ज़ियारत की और हस्बे ज़ैल अशआर पढ़ें

نادیت سکان القبور ذاستکو | فاجابنی عن صمتحم ترب الهشا
قالت اتدری ماصنعت لساکنی | مزقت لحمهم وخرّقت الکساء
وحشرت اعنیهم ترابابعدما | کانت تاذی بالیسیر من القذا
اماالعظام فاننی مزقتها | حتی تباینت المفاصل والشویٔ
قطعت ذامن ذاومن هذا کذا | فترکتها ممایطول بهاالنبلیٔ

''मैं ने क़ब्रों के रहने वालों को आवाज़ दी तो वह ख़ामोश रहे मगर मुझे जवाब दिया उनकी ख़ामोशी पर ख़ाके मरक़द ने कि क्या तुम्हें मालूम है कि मैंने अपने रहने वालों के साथ क्या सूलूक किया है? मैंने उनके गोश्त को टुकड़े टुकड़े और खाल को पारा पारा कर दिया है और उनकी आँखों के अन्दर मिट्टी भर दी है हालाँकि इसके पहले ज़रा सा तिन्का पड़ जाता था उनकी आँख में तो चैन न आता था। रह गईं हड्डियाँ, वह जुदा जुदा हो गईं। यहाँ तक कि जोड़ बन्द साफ़ ज़ाहिर हैं। मैं ने इसको उससे और उसको इससे अलग कर दिया है। यहाँ तक कि बोसीदगी व कोहनगी (पुराने पन) के आसार उनसे हुवेदा (ज़ाहिर) हो गए हैं।''

ذهب الذین احبهم | وبقیت فیمن لا احبّه
فیمن اراہ یسبّنی | ظہرالمغیب ولا اسبّه
یبغی فسادی مااستطاع | وامرہ ممّا اربّه
حنقایدبّ الی الضرّا | و ذاک ممّا لاادبّه
ویریٰ ذباب الشرّ من | حولی یطن ولایذبه
واذا خبا وعزالصدر | رفلا یزال به یشبّه
فلایعیبح بعقله | افلا یثوب الیه لبّه
افلا یریٰ ان فعله | مما یسورالیه غبّه
حسبی بربّی کافیا | مااخشٰی والبغی حبه
ولقد من یبغی علیه | فما کفاہ اللہ ربه

"गुज़र गए वह अफ़राद जिनको मैं महबूब रखता था। और अब मैं रह गया हूँ ऐसे लोगों में जो मुझे किसी तरह पसन्द नहीं। उनका किरदार यह है कि मैं उन्हें ज़रा भी बुरा भला नहीं कहता। मगर वह पीठ पीछे मुझे गालियाँ देते रहते हैं और जहाँ तक मुमकिन होता है वह मेरे नुक़सान के दरपय रहते हैं दराँहालेकि मैं उनको फ़ायदा पहुँचाता रहता हूँ। वह गिर्दो पेश शरारतों के मगस (शहद की मक्खी) उड़ते देखते हैं मगर इतना नहीं करते कि उन्हें हटा दें बल्कि जब दिलों में अदावत की आग बुझने लगी है तो वह उसे और हवा दे देते हैं। क्या यह मुमकिन नहीं कि वह अपनी समझ से काम लें? क्या ऐसा न होगा कि उनकी तरफ़ अक़्ल वापस आये? क्या वह यह नहीं समझते कि उनका यह तर्ज़े अमल नतीजतन ख़ुद उन्हीं के लिए तबाह कुन साबित होगा। मेरे लिये मेरा परवादिगार काफ़ी है जिसके होते हुए मुझको कोई अन्देशा नहीं। नामुमकिन है कि किसी पर ज़ुल्मो सितम किया जाये और ख़ुदा उसकी मदद न करे।"

इब्ने सबाग़ मालकी ने "फ़ुसूले मुहिम्मा" में अली बिन ईसा अरबली ने "कश्फ़ुल गुम्मा" में इब्ने ख़िशाब की रिवायत से हस्बेज़ैल अशआर नक़्ल किये हैं:

اذا ماعضک الدهر | فلاتجنح الیٰ خلق
ولاتسأل سوی اللہ | تعالیٰ قاسم الرزق

فلوعشت وطوّفت	من الغرب الى المشرق
لما صادفت من يقد	ران يسعد اويشقى

"जब ज़माने के दाँत तुम्हें ज़ख़्मी करें तो ख़ल्क़े ख़ुदा की तरफ़ कभी न झुको और सिवाये ख़ुदाये बरतर के जो रिज़्क़ का तक़सीम करने वाला है किसी से सवाल न करो इसलिए कि मग़रिब से मशरिक़ तक चक्कर लगाने के बाद भी तुम को कोई शख़्स ऐसा न मिलगा जो मुक़द्दर को बना बिगाड़ सकता हो।"

وان تكن الدنيا تعد نفيسة	فدار ثواب الله اعلىٰ وانبل
وان تكن الابدان للموت انشأت	فقتل امرئ بالسّيف فى الله افضل
وان تكن الارزاق قسما مقدرا	فقلة حرص الرء فى الرزق اجمل
وان تكن الاموال للترک جمعها	فما بال متروک به المرء يبخل

"अगर यह फ़र्ज़ भी कर लिया जाये कि दुनिया कोई अच्छी जगह है तब भी ख़ुदा के अज्रो सवाब का महल ज़्यादा बलन्द व बरतर है और जबकि यह सही है कि अजसाम (जिसमों) पर मौत का तारी होना लाज़िम है तो इन्सान का राहे ख़ुदा में तहेतेग़ कर दिया जाना ज़्यादा बेहतर है। और जब कि यह हक़ीक़त है कि रिज़्क़ में हर एक का हिस्सा मुऐय्यन है तो उसके बारे में हवस से काम न लेना ही इन्सान के लिए मुनासिब है। और जब कि यह यक़ीनी है कि अमवाल जमा होते हैं बाद में छोड़ जाने के लिए तो क्या यह हिमाक़त (बेवकूफ़ी) न होगी कि ऐसी चीज़ के बारे में इन्सान बुख़्ल से काम ले।"

एक शख़्स ने हज़रत को लिखा कि मुझे दो जुमलों में मौएज़ा (नसीहत) फ़रमाइये। आपने तहरीर फ़रमायाः

من حال وامراً بمعصية الله كان افوت لما يرجوواسرع لمجئ ما يحذر

"जो शख़्स अल्लाह की नाफ़रमानी करके किसी मक़सद को हासिल करना चाहेगा अपने तवक़्क़ुआत(उम्मीदों) में नाकाम और ख़तरात से ज़्यादा नज़दीक साबित होगा।"

मुनदर्जा बाला (ऊपर लिखे हुए) मक़ालात और अशआर को नज़रे ग़ाएर (तवज्जो) से देखने पर हस्बेज़ैल तालीमात उनमें नुमायाँ तौर पर मौजूद पाये जाते हैं।

1.ज़ाते इलाही पर तवक्कुलः यानी हमको किसी नफ़े की उम्मीद, किसी ज़रर (नुक़सान) से तहफ़्फ़ुज़ की तवक़्क़ो और किसी ख़्वाहिश की तकमील का आसरा अल्लाह के ग़ैर से न रखना चाहिये। यह वह दुशवार मन्ज़िल है कि कहने को जो भी चाहे कह दे लेकिन हक़ीक़तन अमली हैसियत से इस राह में जो भी क़दम रखे वह मासिवल्लाह (सिवा अल्लाह से) बे नियाज़ा हो जाये।

इन्सान सच्चाई के रास्ते से अलग होता हैं ज़्यादा तर तमा (लालच) माल व ज़र की बदौलत या फिर ख़तर–ए–इमरोज़ (आज के दिन) और और अन्देश–ए–फ़र्दा (कल) के सबब से मगर जब यह ख़याल पूरे तौर पर किसी के दिल व दिमाग़ पर छा जाये कि ख़ुदा की मशीयत के ख़िलाफ़ न कोई नफ़ा पहुँचा सकता है न नुक़सान, तो फिर दुनिया की कोई ताक़त उसे राहे हक़ से मुन्हरिफ़ नहीं कर सकती।

मलहूज़ (याद) रहे कि अल्लाह अपने मानने वालों के सही अक़ीदे के मुताबिक़ वह पाक व मुनज्ज़ा ज़ात है जो सिर्फ़ नेकी को पसन्द करती है और बुराई से नफ़रत रखती है। लिहाज़ा जब कोई ऐसी बुज़र्ग व बरतर ज़ात को अपने तफ़क्कुरात (फ़िक्र) व एहसासात का मरकज़ बना लेगा तो उसके लिए नामुमकिन है कि भूल कर भी वह बुराई या ज़ुल्म के क़रीब जाये। चुनाँनचे इमाम हुसैन[अ0स0] की जगह अगर कोई ऐसा शख़्स होता जो दुनियवी नफ़ा और नुक़सान की परवा करता या किसी माद्दी ताक़त (दुनियावी) को क़िब्ला–ए–हाजात समझता या उसके इक़तेदार से मरऊब किया जा सकता तो बिलफ़र्ज़ वह यज़ीद की बैयत शुरू में न भी करता तो उस वक़्त तो ज़रूर कर लेता कि जब हुकूमते बातिल का हज़ारों का लश्कर उसके ख़िलाफ़ सफ़ बस्ता होता और उनके ज़ुल्मो तशद्दुद की बिजलियाँ आँखों के सामने कौंदंने लगतीं मगर हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0], आप तो दुनिया की किसी ताक़त और नेअ्मत को कुछ समझते ही न थे इसलिए राहे हक़ से आपको कोई शै हटा ही नहीं सकती थी।

2. ख़ल्क़े ख़ुदा की बहरहाल बही ख़्वाही(बेहतरी) और फ़ायदा रसानी की फ़िक्र होना जिसका बलन्द मेयार यह हो कि उस बारे में अपने और पराये, दोस्त और दुश्मन की तफ़रीक़ को भी काम में न लाया जाये।

यह बात उस सूरत में पैदा ही नहीं हो सकती कि जब हमारे तअल्लुक़ात दूसरों के साथ माद्दी बुनियादों पर क़ायम हों इसलिए कि ऐसी सूरत में तबई मैलानात (हम मिज़ाज) व रूजहानात की बिना पर नज़दीक व दूर और

मुवाफ़िक़ व मुख़ालिफ़ के इम्तियाज़ात का बरूए कार (सामने) आना लाज़मी है। अलबत्ता यह बात उस वक़्त हो सकती है कि जब हमारा तअल्लुक़ दूसरों के साथ इस मुशतरक (एक जैसे) रिश्ते की बिना पर हो जो हम सबको एक ख़ालिक़ के साथ वाबस्ता कर देता है और जिसके लिहाज़ से तमाम अफ़रादे इन्सानी एक सिलसिल–ए–वहदत में मुन्सलिक हो जाते हैं। इस सूरत में हम इस क़ाबिल हो सकेंगे कि सही माना में ग़रज़े ख़िल्क़त को समझते हुए उमूमी तौर पर तमाम ख़ल्क़ (अल्लाह के बन्दों) को अपनी ज़ात से ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा पहुँचाने की कोशिश करें और उसको अपने ऊपर ख़ुदा का एक एहसान समझें कि उसने हमारे ज़रिये से दूसरों को फ़ायदा पहुँचाया। इसका नतीजा यह होगा कि ऐसे लोगों पर भी एहसान किया जायेगा जो आम आदात व ख़साएल की बिना पर उससे तवक़्क़ो न रखते हों। मसलन एक दुश्मन अपने दुश्मन से कब उसकी उम्मीद कर सकता है कि वह उसके साथ कोई अच्छा सुलूक करेगा मगर बलन्द मेयार फ़ैय्याज़ी का यही है कि उसको भी अपने इनआम से महरूम न किया जाये।

3. माद्दी ज़िन्दगी के तारीक पहलूओं पर तवज्जोहः उनका लिहाज़ रखने से तमाम लज़ाएज़े (लज्ज़तें) दुनिया हमारी नज़र में हेच (कम) हो जायेंगे और हम अल्लाह के साथ वाबस्तगी पैदा करके नेकी के रास्ते पर क़ायम रहने ही को अपनी बेहतरीन कामयाबी समझने लगेंगे।

मजमूई हैसियत से मज़कूर–ए–बाला तमाम तालीमात में वज़न पैदा हुआ है। हुसैन[अ0स0] के अमल और बलन्दी–ए–किरदार से जिसने उनमें से हर हर मक़ूला (क़ौल) और तालीम को चलती फिरती तस्वीर की शक्ल में आँखों के सामने पेश कर दिया। इस तरह कि यह मक़ूलात सिर्फ़ आप के ख़यालात ही के हामिल नहीं रहे कि एक सच्चे अमली इन्सान की तारीख़े ज़िन्दगी बन गए।

इमाम हुसैन[अ0स0] के इस तरह के अक़वाल आपकी ज़िन्दगी के किसी हंगामी या इत्तफ़ाक़ी मौक़े से मुतअल्लिक़ न थे बल्की आपके रोज़मर्रा के निज़ामे ज़िन्दगी का एक जुज़ थे। चुनाँनचे रोज़ाना की नमाज़ों में जो मुख़तलिफ़ क़ुनूत आप पढ़ा करते थे वह भी इसी तरह के मज़ामीन पर मुशतमिल होते थे। उनमें से एक क़ुनूत के अलफ़ाज़ दर्जज़ैल हैं:

اللّھم منک البدء ولک المشیئۃ ولک الحول ولک القوۃ ۔ اللھم وانّی مع ذلک کلہ عائذ بک لائذ بحولک وقوتک راض بحکمک الذی سبق الیّ فی علمک جاربحیث اجریتنی قاصد ما اممتنی غیر ضنین بنسی فیما یرضیک عنّی اذبہ قد رضیتنی ولا قاصر بجھدی

عمـا اليـہ نـدبتنی مسـارع لمـا عرفتنـی شـارع فیمـا اشـرعتنی مستبصـر فیمـا بصـرتنی مـراع مـا ارعیتنـی فـلا تخلنـی مـن رعایتـک ولا تخرجنـی مـن عنایتـک لاتقعـد نـی عـن حولـک ولا تخرجنـی مـن مقصـد انـال بـہ ارادتـک واجعـل علـی البصـیرۃ مـدرجتی وعلـی الھدایتـہ محجتـی وعلـی الرشـاد مسـلکی حتـیٰ تنیلنـی امنیّتـی ومحـلّ بـی علـیٰ مابہ اردتنی ولہ خلقتنی والیہ اویت بی۔

"ख़ुदा वन्दा! तेरी ही तरफ़ से इनआम व एहसान की इब्तेदा है और जो कुछ मशीयत और ताक़त व कुव्वत है वह सिर्फ़ तेरी है। इस सब के होते हुए मैं तेरी ही तरफ़ पनाह लेता हूँ और तेरी ही कुव्वत व ताक़त का सहारा ढूँढता हूँ और तेरे उस फ़ैसले पर राज़ी हूँ जो मेरे बारे में तू पहले ही कर चुका है। मैं चलने वाला हूँ उसी रास्ते पर जिस पर कि मुझे तूने चलाया है और क़स्द रखता हूँ वही जो तेरी मर्ज़ी के मुताबिक़ हो और उन उमूर के मुतअल्लिक़ जो तेरी रज़ा मन्दी का बाइस हो सकते हैं। अपने नफ़्स की ज़रा भी रिआयत नहीं करता। न मैं अपनी तरफ़ से तेरे अहकाम की तामील में जिद्दो जोहद (कोशिश) के सिलसिले में कोई कोताही होने देता हूँ, बल्कि तेज़ी से चलता हूँ उसी रास्ते पर जिसकी तूने मुझे हिदायत की, और ओहदा बरआ (ज़िम्मेदारी से सुबुकदोश) होता हूँ मैं उन फ़राएज़ से जिनका तूने मुझे मुहाफ़िज़ क़रार दिया है। अब तू भी मुझे अपनी हिमायत में रख और अपनी नज़रे रहमत से मुझे अलाहिदा (अलग) न कर और अपनी ताक़त की इमदाद से मुझे महरूम न कर और उस मक़सद से अलग न कर जिसके मातहत मैं तेरी मशीयत को पूरा करना चाहता हूँ, और बसीरत पर क़रार दे मेरी रफ़तार को और हिदायत पर मेरे मसलक को और सही मन्ज़िल की सिम्त मेरी रास्ते को, यहाँ तक कि मुझे पहुँचा तू मेरी आरज़ू तक, और मुझे उतार तू उसी मन्ज़िल पर जिसका तूने मेरे लिए इरादा किया और जिसके लिए तूने मुझे पैदा किया और जिसकी तरफ़ तूने मुझे मुतवज्जेह किया।"[1]

क्या इस कुनूत के अलफ़ाज़ ज़ाहिर बज़ाहिर आपके किसी अज़्मे मुस्तक़िल (ठोस इरादे) की तरजुमानी नहीं करते? क्या इन से मुजमल तौर पर यह वाज़ेह नहीं होता कि आप बस किसी ख़ास मक़सद की ख़ातिर अपनी ज़िन्दगी को वक़्फ़ किये हुए थे। और यह कि आपकी ज़िन्दगी का हर लम्हा ख़ालिक़ के इशारों का ताबे था।

[1]नहजुद दावात पेज/70–71

सन 60 हिजरी तक यह अल्फ़ाज़ क़ौल थे। और सन 61 हिजरी में वह अमल बनकर आँखों के सामने आगए। यह दुआ भी हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] की है जो आप कुनूत में पढ़ते थे:

اللّٰھم من أویٰ الی ماوی فأنت ماویٰ ومن لجأ الیٰ ملجأ فانت ملجای واحرسنی فی بلوای من افتتان الامتحان ولمّة الشیطان بعظمتک التی لا یشوبھا ولع نفس بتفتین ولا وارد طیف تبظنین ولا یلّم بھا فرح حتیٰ تقلبنی الیک بارادتک غیر ظنین ولا مظنون ولا مراب ولا مرتاب۔

"ख़ुदा वन्दा तेरे सिवा किसी की तरफ़ अगर कोई पनाह लेता है तो लिया करे। मेरा पनाह देने वाला तो सिर्फ़ तू है। तू अपनी इस अज़मत के साथ जिस पर न किसी की नफ़सानी ख़्वाहिश असर अन्दाज़ हो सकती है और न बद्ज़नी, (दूरी) और न उस में बदगुमानी और किसी वक़्ती ख़ुश मिज़ाजी का दख़ल है। आज़माइश के मौक़े पर मुझे महफ़ूज़ रख, फ़ितने में मुब्तिला होने और शैतानी जमाअत से मरऊब (झूकाओ) हो जाने से। यहाँ तक कि तेरी तरफ़ मेरी बाज़गश्त (वापसी) हो। तेरे मन्शा के मुताबिक़। इस तरह कि न मेरे दिल में बुरे ख़यालात हों और न दूसरे मेरी निसबत (मेरे बारे में) बुरे ख़यालात क़ायम कर सकें। न दूसरों के मुतअल्लिक़ मैं किसी शक में मुब्तिला हूँ और ने मेरे मुतल्लिक़ दूसरों को शक हो सके।"[1]

आप सुबह व शाम दोनों वक़्त हस्बेज़ैल दुआ पढ़ा करते थे।

اللھم انی اسلمت نفسی الیک ووجھت وجھی الیک وفوّضت امری الیک اللھم انک تکفینی من کل احد ولا یکفینی منک احد۔

"ख़ुदा वन्दा मैं तेरे सिपुर्द किये हुए हूँ अपने नफ़्स को और तेरी तरफ़ मोड़े हुए हूँ अपने रूख़ को और दिये हुए हूँ अपने को तेरे हाथ में। ख़ुदा वन्दा तू हर दूसरे शख़्स के शर से महफ़ूज़ रख सकता है मुझको लेकिन तेरा ग़ैर मुझको तेरे क़हर से नहीं बचा सकता।[2]

भला जिस शख़्स का मुस्तक़िल अक़ीदा यह हो और जिसकी ज़िन्दगी का नस्बुल ऐन (तरीक़ा) यह हो जिसने रात दिन इसी को सोचा हो और उसी को अपनी ज़बान से दोहराता जा रहा हो वह कहीं मुमकिन है कि किसी तागूती

---

[1] नहजुद दावात पेज/73

[2] नहजुद दावात पेज/241

(बातिल) ताक़त से दब जाये और खुदाए क़ादिर व तवाना को भूल कर दुनयवी जबरूत के सामने सरे तस्लीम ख़म कर दे। यज़ीद, हुसैन[अ0स0] से इसी का तो तालिब था कि ''आप खुदा के रास्ते से हट कर शैतान के रास्ते पर उसके साथ हो जायें।'' मगर हुसैन ने जो अपने जान व रूह को कुल्लियतन खुदा के हवाले कर चुके थे उसको ठुकरा दिया।

इसलिए कि आपको यक़ीने कामिल था कि यज़ीद मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जब तलवारें आपके जिस्मे अतहर के टुकड़े टुकड़े कर रही थीं उस वक़्त भी आप अपने इसी यक़ीन पर क़ायम थे। चुनाँनचे जब मारेक–ए–करबला के नताएज दुनिया की आँखों के सामने आ गए तो आलमे ज़ाहिर में सबको उसका मुशाहिदा हो गया कि हुसैन[अ0स0] का ख़याल हर्फ़ बहर्फ़ सही था। इसलिए कि कहने को ख़ून बहा हुसैन[अ0स0] और अन्सारे हुसैन[अ0स0] की गर्दनों से, मगर अस्ल शहरग क़ता हुई यज़ीद के एक़तिदार की। हुसैन[अ0स0] ज़िन्द–ए–जावेद हो गए और यज़ीद सही माना में हलाक व फ़ना हुआ, जो नतीजा था महज़ हुसैन[अ0स0] की उस कुव्वते इरादी का जिसका मुज़ाहरा आपके अक़वाल बराबर करते रहते थे।

लज़्ज़ते हयाते दुनिया से सरशार तुनक ज़रफ़ों (कम ज़रफ़ों) के नज़दीक अपने मुख़ालिफ़ को धमकाने का सबसे बड़ा ज़रिया मौत का तसव्वुर पैदा कर देना है मगर वह अफ़राद जो राहे हक़ में मौत आने को मआले ज़िन्दगी समझते हों इस धमकाने से कब मुतअस्सिर हो सकते हैं।?

हुसैन[अ0स0] का फ़लसफ़–ए–ज़िन्दगी वही था जिसकी इमाम हुसैन[अ0स0] को आपके वालिदे बुजुर्गवार हज़रत अली इब्ने अबी तालिब[अ0स0] की तरफ़ से मख़सूस वसीयत हुई थी कि '' اصبرعلى الحق وان كان مرّا ''। सच्चाई कितनी ही तल्ख़ (कड़वा) क्यों न हो उस पर क़ायम रहो और हर मुशकिल का मुक़ाबला करो।'' यही वसीयत हुसैन[अ0स0] ने अपने फ़रज़न्द ज़ैनुल आबेदीन[अ0स0] को की और उसी पर वह खुद मुकम्मल तौर से कारबन्द रहे।[1]

---

[1]काफ़ी, जि/1, पेज/412

चौदहवाँ बाब

यज़ीद का बैयत पर इसरार और हुसैन[अ०स०] का इन्कार

तख़्ते ख़िलाफ़त पर बैठने के बाद यज़ीद के लिए ऐशो आराम की कमी न थी। दुनिया तमाम ज़ेबो ज़ीनत (ख़ूबसूरती) के साथ उसके सामने मौजूद थी और ताज व तख़्त, माल व दौलत, हश्मो ख़ेदम (नौकर चाकर) और ऐश परस्ती व शहवत रानी (बदकारी) के तमाम असबाब पूरी फ़रावानी के साथ मुहैय्या थे। लेकिन एक ख़याल था जो उसके दिल व दिमाग़ को परेशान किये हुए था और उसकी नज़रों में उस तमाम जाहो हशम को ख़ाक सियाह बनाए हुए था और वह उन चन्द आदमियों का बैयत से इन्कार था कि जिन में अव्वल दर्जा की शख़सियत हुसैन इब्ने अली[अ०स०] की थी यज़ीद के नफ़सियात उसके किसी तरह मुतहम्मिल (बरदाश्त) हो ही नही सकते थें जवानी का नशा और फिर शराब की तरंग, बे मेहनत व मशक़्क़त के हासिल शुदा सलतनत का गुरूर। अपने बाप की कोशिशों की कामयाबी का घमण्ड और तमाम मुल्के अरब के सरे इताअत ख़म हो जाने का गुर्रा (घमण्ड)। ना आज़मूदा कारी (नातजरबा कारी), ना आक़िबत अन्देशी (दूर अन्देशी), सियासियाते हुकूमत से नाशनासी और नज़्मे सलतनत से बे ख़बरी। उसके बाद मरने वाले बाप का मरते मरते उसी बात को करना और नफ़स के आख़िरी आमद व शुद (सांस के आख़री लम्हों) तक उसी फ़िक्र व इज़्तेराब की कशमकश में मुब्तिला रहना। यह वह बाते थीं कि जिनकी वजह से यज़ीद को यह कद (दुश्मनी) हो गई थी कि उन उंगलियों पर गिने जाने वाले अशख़ास से जल्द अज़ जल्द बैयत हासिल कर ली जाये। कोई शक नहीं कि उन सब की और बिलखुसूस इमाम हुसैन[अ०स०] की बैयत से अलाहिदगी और ख़ामोशी मुआविया को भी उतनी ही शाक़ थी जितनी यज़ीद को। मगर मुआविया को तशद्दुद के नतीजे का अन्दाज़ा था और यज़ीद को न था।यह कहा जा सकता है कि अगर मुआविया की ज़िन्दगी और तूलानी भी होती तो उनकी तरफ़ से ऐसा ग़ैर वाक़े तर्ज़े अमल न इख़्तियार किया जाता जैसा यज़ीद की तरफ़ से इख़्तियार किया गया। मगर वाक़ेयात यह कहने पर

मजबूर करते हैं कि मुआविया का रवैय्या यज़ीद के आइन्दा इक़दामात में हिम्मत इफ़ज़ाई का बाइस ज़रूर हुआ। मिसाल के तौर पर मुआविया का मदीना पहुंचने के वक़्त हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] को इन अलफ़ाज़ से मुख़ातब करना कि "तुम एक कुर्बानी का दुम्बा हो जिसका खून जोश खा रहा है। क़सम है खुदा की यह खून ज़रूर गिराया जायेगा।"

यज़ीद अपनी ज़ेहनियत के मुताबिक़ इससे यही नतीजा निकाल सकता था कि मेरे बाप का इरादा इस दुश्मने सलतनत के साथ इस तरह का था जिसे उन्होंने क़सम खा कर ज़ाहिर किया था। और उन्हें उसकी तक्मील का मौक़ा नहीं मिला। फिर "*अगर पिदर नतवानद पिसर तमाम कुनद*" यानी अगर बाप न कर सका तो बेटे ने कर दिया। खुसूसन जबकि आख़िर वक़्त तक मुआविया अपने बाद होने वाले ख़लीफ़ा को इन ही चन्द मुन्केरीने बैयत (बैयत से इन्कार करने वाले) के ख़त्रे की तरफ़ बार बार मुतवज्जेह भी करते रहे। यक़ीनी गुज़िश्ता धमकी से जो ख़याल यज़ीद के दिमाग़ में पैदा हो चुका था उसके साथ यह आख़िरी वक़्त की वसीयतें यही असर पैदा कर सकती थीं कि यज़ीद अपना सब से पहला नस्बुल ऐन और मक़सदे ज़िन्दगी अपने बाप के बाद उसी को क़रार दे ले कि ख़तरे को किसी तरह दूर किया जाये और बाप का जो मक़्सद था और जिसकी तकमील का उन्हें मौक़ा न मिल सका अब उसको पाये तकमील तक पहुँचाया जाये। चुनाँनचे यज़ीद ने तख़्ते सलतनत पर क़दम रखते ही सबसे पहला जो सियासी काम किया वह यही कि अपने चचाज़ाद भाई वलीद बिन अतबा बिन अबी सुफ़ियान को जो मरवान की माज़ूली[1] के बाद उस ज़माने में मदीने का हाकिम था ख़त लिखा कि ख़लीफ़–ए–वक़्त यज़ीद की तरफ़ से वलीद बिन अतबा को मालूम हो कि मुआविया एक खुदा के बन्दे थे जिन्हें उसने इज़्ज़त दी और सलतनत अता की और अपनी नेअ्मतों से माला माल किया। वह जब तक मुक़द्दर में था ज़िन्दा रहे और जब उम्र पूरी हो गई तो दुनिया से रूख़्सत हो गए। खुदा उन पर रहमत नाज़िल करे कि उन्होंने क़ाबिले तारीफ़ ज़िन्दगी गुज़ारी और परहेज़गारी व नेकूकारी के साथ आलमे आख़िरत को सिधारे। वस्सलाम।

---

[1]मरवान एक मर्तबा मुआविया की तरफ़ से मदीने का हाकिम आठ बरस दो महीने तक रहा और फिर रबीउल अव्वल सन 49 हिजरी में माज़ूल किया गया और सईद बिन आस को हाकिमे मदीना मुक़र्रर किया गया। (तबरी जि/6, पेज/138) दोबारा सन 54 हिजरी में सईद की माज़ूली के बाद मरवान को हाकिमे मदीना मुक़र्रर किया गया। (तबरी जि/6, पेज/164) फिर सन 57 हिजरी या एक क़ौल के मुताबिक़ सन 58 हिजरी में उसे माज़ूल किया गया और वलीद बिन अतबा को हाकिमे मदीना बनाया गया।(तबरी जि/6, पेज/172)

उस ख़त में तो सिर्फ़ मुआविया के वफ़ात की इत्तेला है। ऐसे रसमी अलफ़ाज़ में जो उमूमन ख़बरे वफ़ात के तौर पर लिखे जाया करते थे मगर उसके साथ ही एक और छोटा सा पर्चा भी वलीद को भेजा गया। उसका मज़मून यह था कि "हुसैन[अ0स0] और अब्दुल्लाह बिन उमर और अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर को बैयत पर सख़्ती से मजबूर करो और बग़ैर बैयत लिये हुए उन्हें ज़रा सा भी मौक़ा न दो। वस्सलाम।[1]

यह ख़त है कि जिसमें शुरू ही से सख़्तगीरी का उन्सुर (इशारा) नुमायाँ है। और मालूम होता है कि अब सूरते हाल ख़ामोशी के हुदूद पर बाक़ी नही रह सकती। यानी हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] का यह लाएह–ए–अमल (काम का तरीक़ा) कि हम शरीके ज़ुल्म न हों और यज़ीद की ख़िलाफ़त को तस्लीम करके उसके अफ़आल व आमाल की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर न लें लेकिन उसके साथ हम अपनी तरफ़ से कोई ऐसा इक़दाम न करें कि मुल्क के अमनो अमान को सदमा पहुँचे और शोरिश व हँगामा बरपा हो। यह मन्फ़ी तर्ज़े अमल (Negative Rde) निभाना नामुमकिन है। अब तो अमल की मन्ज़िल है। या तो मुख़ततिम (Final) इक़रार या मुख़ततिम इन्कार। मगर इन्कार ऐसा जिसमें नताएज की एक दुनिया पोशीदा है।

यज़ीद का ख़त वलीद को पहुँचा। वलीद अबू सुफ़ियान का पोता और मुआविया का भतीजा सही लेकिन वह एक हद तक इमाम हुसैन[अ0स0] की अज़मत व शख़सियत से मुतअस्सिर था। उसमें बज़ाहिर इतनी सफ़्फ़ाकी (ज़ालिम) और सितम केशी (सितम ढाने वाला) भी न थी कि एक बेगुनाह का खून बहाते हुए उसको लज़्ज़त महसूस हो। यज़ीद के फ़रमाने शाही ने उसके बातनी जज़्बात में एक तलातुम (हलचल) पैदा कर दिया वह इस शिश व पन्ज (कशमकश) में पड़ गया कि यज़ीद के इस हुक्म को किस तरह अन्जाम दिया जाये। लिहाज़ा उसने मरवान बिन हेकम से जो उस वक़्त मदीने में मौजूद था मशवरा किया। हालाँकि इससे पहले वलीद के मदीने की हुकूमत पर आने के वक़्त से उसमें और मरवान में इस हद तक कशीदगी हो गई थी कि मरवान ने वलीद के यहाँ की आमदो रफ़्त (आना जाना) तर्क कर दी मगर इस वक़्त वलीद को ज़रूरत यही मालूम हुई कि मरवान को मशवरा में ज़रूर शरीक करे शायद इसी लिए कि कहीं जो तर्ज़े अमल वह इख़्तियार करना चाहता है अमवी सियासत के ख़िलाफ़ न हो और मरवान उसके ख़िलाफ़ जासूसी या चुग़लख़ोरी

---

[1]तबरी जि/6, पेज/188

का काम अन्जाम न दे। मरवान ने जो रसूल अल्लाह[स0अ0] के ज़माने ही में ऐसी शरारतें कर चुका था कि रसूल अल्लाह[स0अ0] ने उसको और उसके बाप को मदीने से बाहर निकाल दिया था, कहा कि अब्दुल्लाह बिन उमर और अब्दुर्रहमान बिन अबी बकर की तुम फ़िक्र न करो। वह तो तालिबे ख़िलाफ़त होंगे नहीं। हाँ हुसैन बिन अली[अ0स0] और अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर को पाबन्द बनाना ज़रूरी है। लिहाज़ा तुम अभी उन लोगों को बुलवा भेजो और वफ़ाते मुआविया की ख़बर फैलने के क़ब्ल ही उनसे बैयते यज़ीद का मुतालिबा करो और अगर वह बैयत न करें तो क़त्ल कर दो। इस लिए कि अगर उन्हें मुआविया के इन्तेक़ाल की ख़बर हो गई फिर एक एक तरफ़ खड़ा हो जायेगा और एलानिया मुख़ालिफ़त करना और ख़ुद अपनी तरफ़ लोगों को दावत देना शुरू कर देगा।[1]

वलीद महसूस करता था कि इस पूरे मशवरे पर वह अमल नहीं कर सकता, ताहम उसने उसी वक़्त अब्दुल्लाह बिन उमर बिन उसमान को जो एक कमसिन लड़का था हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] और अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर को बुलाने के लिए भेजा। यह दोनों आदमी उस वक़्त मस्जिदे नबवी में बैठे हुए थे और बवक़्ते वाहिद दोनों को यह पैग़ाम पहुँचा कि अमीर ने आपको बुलाया है। यह वक़्त ऐसा था कि इस वक़्त वलीद कभी बाहर न बैठता था। और लोगों की मुलाक़ात न होती थी। उन हज़रात ने कहा कि तुम चलो हम आते हैं। आदमी वापस गया। अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर ने कहा, कि यह वलीद के बैठने का वक़्त नहीं है, इस वक़्त बुलाने का क्या सबब हो सकता है? कुछ आपके ख़याल में आता है यह क्या बात है? इमाम हुसैन[अ0स0] ने फ़रमायाः मेरा ख़याल है कि उनका ज़ुल्म का देवता दुनिया से उठ गया है और हमें इस वक़्त सिर्फ़ बैयत के लिए बुलाया गया है कि लोगों में अभी ख़बर फूटने न पाये और हम लोग पाबन्द कर लिये जायें। अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर ने कहा ख़याल तो मेरा भी यही है। फिर अब क्या करना चाहिए? इमाम ने फ़रमायाः मैं तो अभी अपने ख़ानदान के जवाँमर्दों को जमा करता हूँ और उन सब के साथ वहाँ जाता हूँ। उन लोगों को दरवाज़े पर खड़ा कर दूँगा और मैं अन्दर जाऊँगा। अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर ने कहा, मुझे इसमें आपकी जान का अन्देशा है। कहीं आप क़त्ल न कर दिये जायें। आपने फ़रमायाः मैं जाऊँगा तो कुछ समझ के जाऊँगा। इतना सामान कर लूँगा कि मुझे ख़तरा बाक़ी न रहे।

[1]अख़बारूत्तवाल, पेज/229

इमाम हुसैन[अ०स०] अपने मकान पर तशरीफ़ ले गए। और अइज़्ज़ा और मख़सूसीन (ख़ास ख़ास लोगों) को जमा कर के उनके साथ वलीद के दरवाज़े पर पहुँचे। असहाब से फ़रमाया कि तुम दरवाज़े पर ठहरो और मैं अन्दर जाता हूँ। अगर मैं तुम्हें बुलाऊँ या तुम सुनो कि वलीद की आवाज़ बलन्द हूई तो सब के सब अन्दर चले आना और अगर ऐसा न हो तो तुम सब ठहरे रहना। यहाँ तक कि मैं वापस आऊँ। हज़रत अन्दर तशरीफ़ ले गए। वलीद और मरवान आज ख़िलाफ़े मामूल पास पास बैठे हुए थे और एक ख़ामोशी छाई हुई थी। इमाम हुसैन[अ०स०] ने फ़रमायाः "इत्तफ़ाक़ व इत्तेहाद बनिसबत निज़ा (झगड़ा) व इख़तेलाफ़ के बेहतर है। खुदा तुम दोनों के तअल्लुक़ात को खुशगवार बनाये।" इसका कोई जवाब नहीं मिला और आप बैठ गए। वलीद ने यज़ीद का ख़त पढ़ कर सुनाया। ग़ालिबन वही हिस्सा जिसमें मुआविया की वफ़ात का तज़किरा था और उसके बाद बैयते यज़ीद का मुतालिबा किया। इमाम[अ०स०] ने फ़रमायाः "इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजेऊन।"[1] (यह वह फ़िक़रा है जो हर मुसीबत के मौक़े पर कहा जाता है।) खुदा तुम लोगों को इस मुसीबत में सब्र अता करे। बैयत के बारे में यह है कि मेरे ऐसे शख़्स की बैयत को मख़्फ़ी तौर (ख़ामोशी से) से तो ग़ालिबन तुम काफ़ी न समझोगे जब तक कि ऐलानिया बैयत न हो और आमतौर से लोगों को इसका इल्म न हो। वलीद ने कहा, बेशक। आपने फ़रमायाः तो फिर जब मजमये आम में वफ़ाते मुआविया का एलान करो और तमाम लोगों से यज़ीद की बैयत लो उसी वक़्त मुझसे भी कहना ताकि यकसूई (एक होकर) के साथ इस क़ज़िये (झगड़े) का फ़ैसला हो जाये।[2] वलीद शायद अपने मक़ाम पर यह समझे हुए था कि इमाम हुसैन[अ०स०] यज़ीद की बैयत का सवाल सुनते ही फ़ौरन मुख़ालिफ़त पर तैयार हो जायेंगे और बहुत सख़्ती के साथ जवाब देंगे और इस सूरत में उसे फ़िक्र होगी कि मुझे यज़ीद के हुक्म की तामील के लिए क्या सूरत इख़्तियार करना पड़ेगी। अब उसने जो आपसे इस तरह का मुलाएम अन्दाज़ का जवाब सुना तो वह उसे ग़नीमत समझा और खुश हो कर उसने कहा "बेहतर" आप वापस जाईये। और सब के साथ फिर आइयेगा।" मरवान अभी तक ख़ामोश बैठा सूरते हाल का मुशाहिदा कर रहा था। अब जो उसने वलीद का यह नर्म तर्ज़े अमल देखा तो बेइख़्तियार बोल उठा। "वलीद क्या ग़ज़ब करते हो। अगर

---

[1]हम अल्लाह के हैं और अल्लाह की तरफ़ पलट कर जाना है। सूरए बक़रा/156)

[2]तबरी जि/6, पेज/184, अख़बारूत्तवाल पेज/229

हुसैन[अ०स०] इस वक़्त तुम्हारे हाथ से निकल गए और बैयत न की तो फिर ऐसा मौक़ा हासिल न होगा। जब तक कि बहुत से लोग तरफ़ैन (दोनों तरफ़) के क़त्ल न हो लें। बेहतर है कि अभी इनको गिरफ़तार कर लो और तुम्हारे घर से जाने न पायें जब तक कि बैयत न कर लें या क़त्ल न कर दिये जायें।''

यह सुनकर इमाम हुसैन[अ०स०] को ग़ुस्सा आ गया और यह कहते हुए उठ खड़े हुए कि ''क्या मजाल है तेरी या वलीद की जो मुझे क़त्ल करे। ग़लत कहा तूने बख़ुदा और गुनहगार हुआ।'' यह फ़रमा कर आप बाहर निकल आये और अपने असहाब की मईयत (साथ) में घर वापस तशरीफ़ ले गए।[1] मरवान ने वलीद से कहाः ''तुमने मेरा कहा न माना। अब ऐसा मौक़ा हाथ न आयेगा।'' मरवान यह किसी और से कहो! तुम ने मुझे वह सूरत बताई थी जिस में मेरे मज़हब की मौत थी। ख़ुदा की क़सम मुझे यह पसन्द नहीं कि तमाम शर्क़ व ग़र्ब (पूरब पक्षिम) का माल व दौलत मेरे क़ब्ज़े में दे दिया जाये फिर भी मैं हुसैन[अ०स०] को क़त्ल करूँ। सुबहानल्लाह। मैं हुसैन को क़त्ल करूँ? सिर्फ़ इतनी बात पर कि वह कहते हैं कि मैं बैयत नहीं करूँगा। ख़ुदा की क़सम मुझे यक़ीन है कि जो शख़्स हुसैन[अ०स०] के ख़ून का मुजरिम होगा वह ख़ुदा के यहाँ रोज़े क़यामत मीज़ाने अमल में इन्तेहाई सुबुक (हलका) होगा।[2]

मरवान ने कहा कि अच्छा यह अक़ीदा तुम्हारा है तो बेशक तुम ने बहुत अच्छा किया।[3]

बहुत मुमकिन है कि इसके बाद मरवान ने वलीद की शिकायत यज़ीद को लिख भेजी हो और उस तमाम रूदाद की इत्तेला दी हो। और उसी का नतीजा हो कि उसके बाद वलीद मदीने की गुवर्नरी से हटा दिया गया हो। और उमर बिन सईदुल अशदक़ को मदीने का गवर्नर मुक़र्रर कर दिया गया।

यह इसकी एक दलील है कि ख़त में बैयत न करने की सूरत में हुसैन[अ०स०] के क़त्ल के मुतअल्लिक़ ज़रूर लिखा था। ज़ाहरी असबाब की बिना पर भी कोई शक नहीं हो सकता कि हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] ने उसी वक़्त सूरते हाल की नज़ाकत का पूरा एहसास कर लिया और यक़ीनन उसके बाद जो कुछ तय किया वह तमाम नताएज सोच लेने के बाद, आप ने यह तय कर लिया कि मैं यज़ीद की बैयत हरगिज़ नहीं करूँगा। अभी तक दुनिया नफ़ी

---

[1]तबरी जि/6, पेज/189

[2]अख़बारूत्तुवाल पेज/229

[3]तबरी जि/6, पेज/190

(इन्कार) के मानी नहीं समझ सकती थी क्योंकि इन्कारे बैयत की सूरत में उन तशद्‌दुद के दर्जों का अन्दाज़ा नहीं कर सकती थी जो बाद में इमाम हुसैन[अ0स0] के सामने आये लेकिन हुसैन[अ0स0] जिस वक़्त कह रहे थे कि मैं बैयत नहीं करूँगा उस वक़्त वह बैयत न करने का मुआविज़े में ज़ुल्म व तशद्‌दुद के तमाम इमकानात पर ग़ौर करके और अपने नफ़्स की क़ुव्वते बर्दाश्त का पूरा जाएज़ा लेकर कामिल एतेमाद के साथ बैयत की नफ़ी कर रहे थे और इसी लिए आप देखेंगे कि तशद्‌दुद अपनी आख़िरी हद पर पहुँच गया मगर हुसैन[अ0स0] के सब्र व बर्दाश्त की क़ुव्वत ख़त्म न हो सकी। वह अपनी बात पर आख़िर तक क़ायम रहे। उसी अज़्मो इस्तिक़लाल (हिम्मत व जवाँ मर्दी) के साथ जिसको उन्होंने पहले दिन तय कर लिया था।

यहाँ पर यह बहस पूरे तौर पर साफ़ हो जानी चाहिए कि आख़िर यज़ीद की रसमी बैयत इख़्तियार कर लेना कौन सा ऐसा नाक़ाबिले बर्दाश्त अम्र था जिसे हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] किसी सूरत से गवारा नहीं करते थे। इस के लिए एक नज़र हुसैन[अ0स0] की उन ज़िम्मेदारियों पर डालना होगी जो ख़ानदाने रसूल[स0अ0] के उस वक़्त सब से बड़े ज़िम्मेदार रूक्न होने के एतेबार से उन पर आएद थीं और उन क़दीम रिवायात को देखना होगा जो इस्लाम की हक़्क़ानियत की हिफ़ाज़त के लिए इमाम हुसैन[अ0स0] के आबाओ अजदाद की ज़ात से वाबस्ता रही थीं और जिनके उस वक़्त हुसैन[अ0स0] ज़िम्मेदार थे और फिर यह देखना होगा कि उस वक़्त हुसैन[अ0स0] अपने फ़र्ज़ की तकमील किस तरह कर सकते थे। यह भी समझना होगा कि यज़ीद को हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] से बैयत लेने के लिए इस क़द्र कदो काविश की ज़रूरत क्या थी? जबकि जमहूरियत के उसूल पर अक्सर अफ़राद का किसी हुकूमत को क़ुबूल कर लेना आईनी तौर पर उसके मुसल्लम हो जाने के लिए काफ़ी और अक़ल्लियत की राय नाक़ाबिले एतेबार है। उसके साथ यह कोई क़ानून नहीं कि अक़ल्लियत को जबरी तौर पर अपनी राय बदलने के लिए मजबूर किया जाये जबकि उसकी तरफ़ से अमली तौर पर कोई शोरिश अंगेज़ी न की जा रही हो। ख़िलाफ़त के हर दौर में कुछ लोग ऐसे रहे जिन्हों ने बैयत नहीं की थी। ख़ुद हज़रत अली इब्ने अबी तालिब[अ0स0] के ज़मान–ए–ख़िलाफ़त में हिसान बिन साबित, काब बिन मालिक, और ज़ैद बिन साबित वग़ैरह कई आदमी ऐसे थे जिन्हों ने आपकी बैयत से किनारा कशी की थी। मगर सिर्फ़ बैयत न करना कोई क़ाबिले सज़ा जुर्म नहीं समझा गया। यह भी अन्दाज़ा किया जा सकता है

कि मुआविया ने मक्के और मदीने में चाहे कितनी ही बड़ी कॉनफ्रेंस यज़ीद की बैयत लेने के लिए मुन्अक़िद की हो लेकिन यक़ीनन मक्के और मदीने की मरदुम शुमारी के एतेबार से सैकड़ों हज़ारों आदमी ऐसे रह गए होंगे जो घरों में बैठे होंगे और जिन्हों ने यज़ीद की बैयत नहीं की होगी लेकिन किसी के लिए बैयत की ज़िद नहीं की गई और सलतनत को उनसे काविश पैदा नहीं हुई। फिर एक हुसैन[अ०स०] में क्या बात ऐसी थी कि आप से बैयत हासिल कर लेने के लिए सलतनते शाम की पूरी मशीनरी हरकत में आये और शाही जबरूत (घमण्ड) की तमाम ताक़त सर्फ़ कर दी जाये। मानना पड़ेगा कि हुसैन[अ०स०] से बैयत बहैसियते मुल्के अरब के एक फ़र्द के नहीं तलब की जा रही थी बल्कि इस बिना पर कि एक फ़र्द एक जमाअत या क़ौम बन जाती है। नुमाइन्दगी के एतेबार से हक़ीक़त में हुसैन फ़क़त हुसैन ही न थे वह तो उस वक़्त ख़ानदाने रिसालत की बुजुर्ग तरीन हस्ती होने के लिहाज़ से उस विरसे के हामिल थे जो दीने ख़ुदा की सही मानी में हिफ़ाज़त से मुतअल्लिक़ था और जो पैग़म्बरे इस्लाम[स०अ०] के बाद उनके अहलेबैत[अ०स०] में यके बाद दीगरे मुन्तक़िल हो रहा था और इसी लिए ख़ानदाने रसूल या ख़ानदाने अली[अ०स०] में मुहम्मद बिन हनफ़ीया भी तो थे। अब्दुल्लाह बिन जाफ़र भी तो थे। हज़रत अब्बास बिन अली और उनके भाई भी तो थे। कोई शक नहीं कि उन में से किसी ने यज़ीद की बैयत नहीं की मगर तारीख़ नहीं बता सकती कि उनमें से किसी से भी बैयत तलब की गई हो। सिर्फ़ इस लिए कि उन में से किसी को हुसैन[अ०स०] की मौजूदगी में वह ज़िम्मेदाराना हैसियत हासिल न थी जो हुसैन[अ०स०] को हासिल थी।

यज़ीद को हुसैन[अ०स०] से बैयत हासिल करने की कोई ज़रूरत न होती अगर वह सिर्फ़ दुनियवी क़िस्म की एक सलतनत का दावेदार होता। मगर वह जिस क़िस्म की सलतनत के मालिक होने का मुद्दई (दावेदार) था वह तो ख़िलाफ़ते इस्लामिया वाली हुकूमत थी जो रसूल अल्लाह[स०अ०] की जानशीनी की मुरादिफ़ (जैसी) समझी जाती थी। उसका नुस्बुल ऐन यह था कि बादशाह मज़हब के जुज़ व कुल (हर चीज़) का मालिक हो और मज़हबी क़वानीन बादशाह की ख़्वाहिशों के पाबन्द हों। उसके लिए ज़रूरत थी कि वह पैग़म्बरे इस्लाम[स०अ०] के मज़हबी वारिस से अपनी हुकूमत तस्लीम कराये और वह ख़ूब जानता था कि उस विरासत के हामिल इस वक़्त सिर्फ़ हुसैन[अ०स०] की ज़ात है इसलिए वह लाज़िम समझता था कि आप से अपनी बैयत हासिल करे।

हुसैन समझते थे कि अगर इस वक़्त मेरे भाई हज़रत इमाम हसन[अ0स0] ज़िन्दा होते तो बैयत की ख़्वाहिश उन से की जाती मुझ से न की जाती। अगर मेरे पिदरे बुज़ुर्गवार हज़रत अली[अ0स0] होते तो झगड़ा उनसे किया जाता, मुझसे न किया जाता और अगर मेरे जद्दे बुज़ुर्गवार रसूल अल्लाहस[0अ0] होते तो अपनी हुकूमत के जवाज़ की तस्दीक़ उनसे हासिल करने की कोशिश होती मुझ से न होती। मगर अब तो वह देख रहे थे कि मेरे नाना रसूल अल्लाह[स0अ0] नहीं हैं, मेरे बाबा अलीये मुरतज़ा नहीं हैं और मेरे भाई हसने मुजतबा भी नहीं हैं। अब तो मैं हूँ। इस लिए मुझ से बैयत तलब की जा रही है। इस सूरत में अगर मैं ने बैयत कर ली तो वह ऐसा है जैसे मेरे भाई हसन होते और वह बैयत कर लेते, मेरे बाबा अली होते और वह सरे तस्लीम ख़म कर देते। और मेरे नाना रसूल अल्लाह होते और वह इस हुकूमत को जाएज़ तस्लीम कर लेतै। उन्होंने सख़्त एहसासे ज़िम्मेदारी की बिना पर तमाम मुशकिलात को बर्दाश्त करना गवारा कर लिया और यह तय किया कि मैं बैयत नहीं करूँगा।

यह इज़्ज़ते नफ़्स, शरफ़े हक़ और वक़ारे दीनी का सवाल था और पहले ही दिन आपने इस मरहले में आख़िर तक साबित क़दम रहने का अज़्म कर लिया था जिसका आख़िरी नतीजा भी मालूम था। इसका आपने कोई बलन्द बांग एलान नहीं किया, तब भी आपकी ज़बान से निकले हुए अलफ़ाज़ सुनने वालों को इसका पता दे रहे थे। चुनानचे अबू सईद मक़बरी का बयान है कि मैंने इमाम हुसैन[अ0स0] को मदीने की मस्जिद में दाख़िल होते हुए देखा। आपके साथ उस वक़्त दो आदमी थे जिनके काँधे पर बारी बारी हाथ रख कर चल रहे थे। और आपकी ज़बान पर इब्ने मुफ़तरिग़ के यह अशआर थे।

لاذعرت التسوام فی فلق الصبح مغیراولادعیت یزیدا

یوم اعطی من المهابة ضیما والمنایا یرصدننی ان احیدا

"इनका मतलब यह हुआ कि खुदा वह दिन न लाये कि मौत की ताक़तें कमीनगाहों से हमला करके मुझे मेरे रास्ते से हटाने की कोशिश करें और मैं उनके ख़ौफ़ से ज़िल्लत को बर्दाश्त कर लूँ।"

अबू सईद का बयान है कि इन अशआर को सुन कर उसी वक़्त मेरी समझ में आया कि आप किसी ख़ास इक़दाम का इरादा रखते हैं।

दो ही दिन गुज़रे थे कि मालूम हुआ आप मक्के की तरफ़ रवाना हो गए।[1]

पन्द्रहवाँ बाब

इमाम हसन[अ०स०] की ख़ामोशी और इमाम हुसैन[अ०स०] का एक़दाम

इस मक़ाम पर अक्सर यह सवाल पेश किया जाता है कि आख़िर हज़रत इमाम हसन[अ0स0] ने भी तो यज़ीद के बाप मुआविया से मुसालिहत (सुल्ह) कर ली थी। उसी तरह अगर इमाम हुसैन[अ0स0] सुल्ह कर लेते तो क्या हर्ज था? बज़ाहिर दोनों भाईयों के तर्ज़े अमल में इख़तिलाफ़ है और उसी से सलतनते बनी उमैया के हवा ख़्वाहों (चापलूसों) ने दोनों भाईयों के इख़तिलाफ़े राय की हिकायतें भी तस्नीफ़ (लिखी) की हैं लेकिन तारीख़ी वाक़ेयात की रफ़तार का बग़ौर मुतालिया इस इख़तिलाफ़े तबियत के सवाल और उस ख़याल की कोई गुन्जाइश बाक़ी नहीं रखता।

हक़ीक़त यह है कि हालात मुख़तलिफ़ होते हैं और उन हालात के लिहाज़ से फ़राएज़ का तक़ाज़ा भी मुख़तलिफ़ हो जाता है। इबनाए ज़माना (ज़माने के रंग में रंगा हुआ) ज़्यादा तर जज़्बात के पाबन्द होते हैं और जज़्बात अकसर इफ़रात व तफ़रीत (हालात के तहत) की बिना पर हद्दे एतेदाल (एतेदाल की हद) से बढ़े हुए होते हैं लेकिन अख़लाक़े इन्सानी में कामिल अशख़ास हर मौक़े पर फ़र्ज़ का अन्दाज़ा करते हैं। उन्हें इससे बहेस नहीं होती कि वह इबनाये ज़माना के जज़्बात के मुताबिक़ हैं या मुख़ालिफ़ इस लिए उनका तर्ज़े अमल अक्सर आम अफ़रादे इन्सानी को मुतज़ाद (उलटा) नज़र आता है और अक्सर उन पर दोनों तरह के मोतरिज़ (एतेराज़) पाये जाते हैं। कभी उन पर इक़दाम पसन्द तबाए (जंग पसन्द तबियत) एतेराज़ करते हैं और कभी रजअत पसन्द (सुलह पसन्द) तबीअतें मोतरिज़ होती हैं लेकिन वह उन

---

[1]तबरी जि/6, पेज/191

एतेराज़ात की कोई परवा नहीं करते और अपने मसलक के पाबन्द रहते हैं। इस लिए कि वही उनके नज़दीक फ़र्ज़ का तक़ाज़ा होता है।

यही सूरत हमको पैग़म्बरे इस्लाम के तर्ज़े अमल के मुतअल्लिक़ मिलती है। यही अलीये मुरतज़ा[अ०स०] की सीरत और यही उनके बाद हसन और हुसैन[अ०स०] के तर्ज़े अमल के मुतअल्लिक़ नज़र आती है।

वाक़ेया यह है कि हसने मुजतबा की सुल्ह जिसके वाक़ेयात का तज़किरा पहले हो चुका है। वही मुजाहिद–ए–करबला की तम्हीद थी इस लिए कि हर इक़दाम जो अपने वक़्त पर हो वह मुफ़ीद, नतीजाख़ेज़, और मुअस्सिर होता है। लेकिन अगर वक़्त से पहले अमल में लाया जाये तो वह नतीजतन मुफ़ीद होने के बजाए मुज़िर (नुक़सान) साबित होता है बल्कि अपने मुरतकिब (अमल में लाने वाले) को अक्सर हमेशा के लिए मूरिदे इलज़ाम बना देता है।

वाक़ेयात की रफ़तार यक्साँ हालत पर नहीं रहती बल्कि तदरीजी (धीरे धीरे) हैसियत से तरक़्क़ी करती है और उनका तरीक़–ए–इलाज भी उसी एतेबार से मुख़तलिफ़ होता है। मिसाल के तौर पर ज़ख़्म रसीदा पके हुए जुज़वे बदन हाथ या पैर का इलाज करो, फाहे लगाओ, मरहम बदलो ज़रूरत हो तो बार बार नशतर दिलवाओ फिर अगर न अच्छा हो और उसकी सम्मियत (ज़हर) के जिस्म में सरायत करने का ख़ौफ़ हो तो उसे काट कर भी फेंक दो किसी को एतेराज़ का हक़ न होगा, लेकिन अगर ज़ख़्म पैदा होने के साथ ही और कोई इलाज मुआलिजा करने के पहले ही काट डालते तो ज़रूर मूरिदे इलज़ाम होते और आम तौर पर बेअक़्ल समझे जाते हालाँकि यह तर्ज़े अमल वही है जो बाद में इख़्तियार किये जाने पर ममदूह (तारीफ़) व मुस्तहसन (अच्छा) क़रार पायेगा।

दुशवार गुज़ार हालात की इस्लाह के लिए क़ुर्बानी और वह भी जान की क़ुर्बानी कामयाब, और मुअस्सिर (असर रखने वाली) तरीन हरबा है लेकिन सब से आख़िरी, जब तमाम वसाएल और ज़राए ख़त्म हो जायें और कोई तदबीर कारगर न हो उसी वक़्त उसका दर्जा है। वह जहाँ तक आख़री रहे वहीं तक मुअस्सिर है और उससे पहले अमल में आ जाये तो जल्द बाज़ी ग़ैर मौक़ा शिनासी और नाआक़िबत अन्देशी वग़ैरह का इलज़ाम आ जाना ज़रूरी है जिसके बाद उसको हक़ बजानिब नहीं समझा जा सकता और उसी के साथ उसकी कामयाबी और तासीर रूख़्सत।

हालात की इस्लाह के लिए एहतिजाज और इस्तेग़ासा (फ़रयादरस) मसालिहत और मुआहिद–ए–मवद्दत (मेल मुलाप और मुहब्बत) यह ऐसी चीज़ें हैं जिनका इख़्तियार किया जाना इब्तेदाई हुदूद में ज़रूरी है बेशक जब यह सब ज़राएइख़्तियार किये जाने पर नाकाम साबित हों तो फिर अरबी मसल "من جَرَّبَ المجَرَّب حلّتْ بہ الندامۃ" और फ़ारसी मसल आज़मूदा रा आज़मूदन जेहल अस्त।" आज़माए हुए को आज़माना जेहालत है। के मुताबिक़ इन्सान उन ज़राए का मुतालिबा न हो सकेगा। और उसकी रफ़्तार अमल को आगे बढ़कर दूसरे इक़दाम तक पहुँचने का हक़ होगा। यही तदरीजी (रफ़्ता रफ़्ता) रफ़्तारइक़दामे अमल में जब तक क़ायम है कामयाबी की तवक़्क़ो है वरना नही। एक बात हो जाने पर पहले ही दिन मरने मारने पर आमादा हो जाने वाला मग़ज़ूबुल ग़ज़ब (जो ग़ज़ब के दबाव में हो) कहा जायेगा। वह किसी तारीफ़ का मुस्तहक़ नहीं। बरख़िलाफ़ इसके अगर तमाम ज़राए व असबाब से इतमामे हुज्जत के बाद इन्सान किसी अहम मक़्सद के लिए जान देने पर तैयार हो जाये तो फ़िदाकारी व जान निसारी और मुअस्सिर क़ुर्बानी क़रार पायेगी।एक इन्सान अगर अपने आमाल व अफ़आल में तवाज़ुन (बराबरी) को मलहूज़ (ख़याल) सामने रखता है और अपनी कारगुज़ारियों में सिर्फ़ जज़्बात का फ़रमाँबरदार नहीं बल्कि अक़ली ग़ौर व तदब्बुर का पाबन्द है तो उसे इस निज़ाम का पाबन्द होना ज़रूरी है। शाम की उमवी सलतनत के हाथों बेशक मज़हब ख़तरे में था और हक़ व रास्ती (सच्चाई) पामाल हो रही थी जिसकी इस्लाह के लिए क़ुर्बानी दरकार थी लेकिन इस क़ुर्बानी के हक़ बजानिब क़रार पाने के लिए दूसरे पुरअमन और सुलह परवर वसाएल व ज़राए सर्फ़ किये जाने की ज़रूरत थी। अगर इमाम हुसैन[अ0स0] बग़ैर किसी क़िस्म के साबिक़ा हालात के अचानक यज़ीद की बैयत से किनारा कशी करके बावजूद फ़ुक़दान आवानो व अन्सार (हामी और मददगार) मुख़ालिफ़त पर जिस का लाज़मी नतीजा आप का क़त्ल होना था तैयार हो जाते और ऐसा करते तो उन सवालों का पैदा होना नागुज़ीर था कि आख़िर इमाम ने इत्तेहादे अमल के साथ हालात की दुरूस्ती की कोशिश क्यों न की? मख़सूस शराएत के साथ सुलह करके उन मक़ासिद को क्यों न हासिल किया? कम से कम उमूरे सलतनत से बे तअल्लुक़ी इख़्तियार कर के मदीन–ए–रसूल[स0अ0] में क़याम पज़ीर क्यों न रहे और करबला आकर अपने को मुरिज़े ख़तर में किस लिए डाला?

इन सवालात के पैदा होने के बाद जिनका कोई सही हल भी बज़ाहिर मौजूद न होता यक़ीनी आपका क़त्ल होना सिर्फ़ जज़बात की कारफ़रमाई का नतीजा क़रार पाता और इसलिए न क़ाबिले सताइश होता और न मुअस्सर व कामयाब मगर यहाँ सूरते हाल यह थी कि इमाम हुसैन[अ0स0] का इक़दाम एक मुकम्मल निज़ाम के तहत में वाक़े हो रहा था जिसके लिए बरसों की तवील मुद्दत के हालात मौक़े को क़रीब ला रहे थे यहाँ तक कि सन 60 हिजरी से लेकर सन 61 हिजरी तक में इसका वक़्त आ गया।

शुरू शुरू में जनाबे अमीर[अ0स0] का अपने हुक़ूक़ की पामाली के बावजूद 25 साल ख़ामोश रहना उसके बाद लोगों के इन्तेहाई इसरार पर ख़िलाफ़त कुबूल करना और बनी उमय्या का आपके मुक़ाबले में बर सरे पैकार हो जाना, आपका शहीद होना और इमाम हसन[अ0स0] का मसनदे ख़िलाफ़त में मुतमक्किन होना(बैठना) लेकिन हालात की नासाज़गारी की वजह से सुल्ह कर लेना और मख़सूस शराएते मुआहिदा के साथ सल्तनत की ज़िम्मेदारियों से दस्तकश (अलग) हो कर दस बरस ख़ामोशी की ज़िन्दगी बसर करना और फिर दस ही बरस तक ख़ुद इमाम हुसैन[अ0स0] का भी अमली हैसियत से ख़ामोश रह कर हालात का मुतालेआ करते हुए अक्सर ज़बानी या मक्तूबी (ख़त के ज़रिये) एहतिजाज करते रहना लेकिन बावजूद इसके हालात का रू–ब–इस्लाह होने के बदले बद से बद तर होते जाना, शराएते मुआहिदा को ठुकरा दिया जाना, सुलहनामे की दफ़आत (शर्तों) का पामाल हो जाना, ज़बानी एहतेजाज व इस्तेग़ासे(फ़रयाद) पर कोई सुनवाई न होना बल्कि अपने इन्सानियत सोज़ और इस्लाम कश अफ़आल (इस्लाम मुख़ालिफ़ कामों) पर बीश अज़ बीश (बार बार) इसरार किया जाना और इस सिलसिले में पानी का सर से ऊँचा हो जाना और मुआमिलात का हद से गुज़र जाना वह था जिस ने इमाम हुसैन[अ0स0] के लिए इस अज़ीम इक़दाम का मौक़ा पैदा कर दिया था कि जो उन्होंने करबला की सर ज़मीन पर अन्जाम दिया।

हुसैन[अ0स0] के सामने अब सुलह का सवाल आ ही नहीं सकता था इसलिए कि सुलह की मन्ज़िल को इमाम हुसैन[अ0स0] तय कर चुके थे और अब शराएते सुलह की मुख़ालिफ़त ही वह सूरते हाल थी जो इमाम हुसैन[अ0स0] के सामने थी हालाँकि मुआविया अपने आमाल में बहरहाल कुछ न कुछ पर्दा रखने की कोशिश करते थे। फिर जब मुआविया के साथ मुसालिहत नतीजे में नाकाम रही तो यज़ीद के साथ मसालिहत के क्या मानी?

फिर इमाम हसन[अ0स0] ने जो सुलह की उसकी नौइयत तो यह थी कि पहले हज़रत इमाम हसन[अ0स0] मसनदे ख़िलाफ़त पर मुतमक्किन (बैठ) थे सुल्ह के ज़रिये से आपने हुकूमते ज़ाहरी को छोड़ दिया और मख़सूस शराएत के मा तहत मुआविया के सिपुर्द कर दिया मगर इसके मानी यह नहीं थे कि आपने ख़िलाफ़ते इलाहिया इमामत या तमद्दुने इस्लामी के बारे में अपने दीनी मसलक और मुआशरती (सोसाईटी) व इज्तेमाई उसूल से दस्तबरदारी (दूरी)इख़्तियार कर ली। यह सुलह उसके बाद से सिर्फ़ एक मुआहिद–ए–अदमे तअर्रूज़ (बराए नाम) की हैसियत रखती थी जिसकी वजह से रूहानियत का मरकज़ दुनियवी इक़्तेदार के मरकज़ से एक अरसे तक के लिए अलाहिदा हो गया और बस इसी लिए हज़रत इमाम हसन[अ0स0] की ज़िन्दगी इस मुआहिदा के बाद भी महफ़ूज़ नहीं रही। सल्तनते शाम इमाम हुसैन[अ0स0] से इस अदमे तअर्रूज़ पर इक्तेफ़ा करने वाली होती तो तलबे बैयत की ज़रूरत न थी क्योंकि अदमे तअर्रूज़ (बराए नाम) तो उन हज़रात की जानिब से क़ायम ही था। दमिश्क़ की सियासत अब इस पर रज़ा मन्द नहीं थी कि रूहानियत का मरकज़ माद्दी (दुनियावी) इक़्तेदार के मरकज़ से अलग दुनिया में मौजूद रहे। मुआविया का मुआहिदा वक़्ती तौर पर एक मजबूरी का नतीजा था। बग़ैर इसके हज़रत इमाम हसन[अ0स0] की तस्लीम शुदा हैसियत जो मुसलमानों में बा–एतेबारे हुकूमत हासिल थी ख़त्म नहीं हो सकती थी। उसके बाद उनको ख़ुद और उनके बाद यज़ीद को शिद्दत के साथ इसका एहसास था कि यह काँटा हमेशा के लिए रास्ते से निकल जाये। तस्ख़ीरे ममालिक (हुकूमत को राम कर लेना) और तसख़ीरे कुलूब (दिलों को राम करना) मुख़तलिफ़ चीज़ें हैं एक को दूसरे से कोई लगाव नहीं है। फ़ातहे ममालिक को फ़ातहे कुलूब (दिलों को फ़तह करने वाला) से हर वक़्त अन्देशा रहता है। यही ख़तरा था जिसकी वजह से अहलेबैते रसूल[स0अ0] सलतनते दमिश्क़ की नज़र में बहरहाल क़ाबिले मज़ाहमत थे ख़्वाह वह मज़ाहमत (रूकावट) करें या न करें।

इन हालात के होते हुए इमाम हुसैन[अ0स0] के लिए इस तरह की सुल्ह का कोई महल न था जैसी सुल्ह इमाम हसन[अ0स0] कर चुके थे। वह सुल्ह ऐसी थी कि अगर उस वक़्त ज़िम्मेदाराना हैसियत इमाम हुसैन[अ0स0] की होती तब आप भी उस सुल्ह के मसलक को इख़्तियार करके मुसलमानों में अमन क़ायम कर देते। आपके सामने था बैयत का सवाल। इसके मानी थे उस रूहानी मरकज़ की शिकस्त जिसके हुसैन[अ0स0] ज़िम्मेदार थे। इसके मानी थे उस तमद्दुन और

निज़ामे सियासत को कुबूल कर लेना जो सलातीने (हुकूमते) दमिश्क़ ने क़ायम किया था। यह ऐसी चीज़ थी जो आले मुहम्मद[स0अ0] के लिए किसी तरह क़ाबिले कुबूल नहीं हो सकती थी ख़्वाह हुसैन[अ0स0] होते या उनके बजाये उस वक़्त इमाम हसन[अ0स0] होते।

फिर साबिक़ (पहले के) ज़माने में तो खुलफ़ा अपने को किताब और सुननत का मुहाफ़िज़ ज़ाहिर किया करते थे और बैयत भी इसी पर ली जाती थी कि किताब और सुन्नत पर अमल होगा। मगर यज़ीद के दौर में सलतनत की मुतलकुल एनानी (बे लगामी) और खुद सरी इस दर्जा पर पहुँच गई थी कि बैयत ली जाती थी इस बात पर कि हम ख़लीफ़ा की मिलकियत हैं वह हमारे जान व माल और औलाद के साथ जो चाहे सुलूक कर सकता है। मदीने में यज़ीद बिन अब्दुल्लाह बिन रबिया बिन असवद इसी जुर्म पर क़त्ल किये गये कि वह किताब और सुन्नत पर बैयत करने के लिए तैयार थे। मगर मज़कूरा (ऊपर बयान किए हुए) अलफ़ाज़ में यज़ीद की गुलामी का इक़रार करने के लिए तैयार न थे।[1]

इन ही बातों का नतीजा था जैसा कि बाद में मालूम होगा कि इमाम हुसैन[अ0स0] को आपके इस इक़दाम के सिलसिले में मुख़तलिफ़ औक़ात (अलग अलग वक़्त) में बहुत से मशवरे दिये गए। यह कहा गया कि मदीने ही में क़याम कीजिये। यह कहा गया कि मक्के को मुस्तक़र (ठहरने की जगह) बनाए रखिये। यह कहा गया कि ताएफ़ या यमन की तरफ़ चले जाईये। यह कहा गया कि "कोहे अजा" (पहाड़ का नाम) में चल कर पनाह लीजिये। मगर यह किसी अज़ीज़ या दोस्त ने मशवरा नहीं दिया कि आप यज़ीद की बैयत कर लीजिये क्योंकि यह एक तस्लीम शुदा बात थी कि यज़ीद की बैयत इमाम हुसैन[अ0स0] के लिए किसी तरह मुमकिन नहीं।

यज़ीद की बैयत करने के मानी यह थे कि हुसैन[अ0स0] हर क़िस्म के शरीफ़ाना शऊर (फ़िक्र) और मुसलमानों के हर क़िस्म के हुकूक़ को बेच डालते। हुसैन[अ0स0] के लिए मुहाल था कि हुसैन[अ0स0] फ़ज़ीलत और ज़लालत को एक दर्जे में रखते।

अब्दुल्लाह बिन अब्बास, अब्दुर्रहमान बिन अबी बकर और अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर वग़ैरह ने भी यज़ीद की ख़िलाफ़त को पसन्द नहीं किया। इन सब ने मुआविया के सामने ही यह कह दिया था कि उनका यह तरीक़–ए–अमल

---

[1]अख़बारूत्तुवाल पेज/216

किसी तरह जाएज़ नहीं है। फिर हुसैन[अ0स0] हर दूसरे शख़्स से ज़्यादा इस्लाम का दर्द रखते थे।

हुसैन[अ0स0] ज़्यादा हक़ रखते थे कि वह यज़ीद के मुतालिबात को हिक़ारत की नज़र से देखें और हर क़िस्म की क़ुर्बानी इस्लाम की हिमायत में पेश करें।

सोलहवाँ बाब

हुसैनी मुवक़्क़िफ़ (नज़रिये) की तशरीह

जब कोई सूरत समझौते और मसालिहत की थी नहीं तो फिर अब क्या रह जाता है? जंग! मगर माद्दी तौर पर जंग करने का सवाल उस वक़्त पैदा ही नहीं हो सकता था। तारीख़ी सूरते हाल यह है कि उस वक़्त हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] की वफ़ात को बीस बरस गुज़र चुके थे बनी उमैया की ताक़त जो शाम में थी हज़रत अली[अ0स0] ही के ज़माने में इतनी मज़बूत हो गई थी कि हज़रत अली[अ0स0] की क़ुव्वत सिफ़्फ़ीन में गोया बराबर की टक्कर ले सकी और हज़रत इमाम हसन[अ0स0] को उससे मुक़ाबले में एक शदीद ख़ूँरेज़ी के आसार नज़र आये। जिसकी वजह से आपने सुलह करना बेहतर समझा हालाँकि उस वक़्त शिअ्याने अली[अ0स0] की जमीयत (ग्रूप) मुनज़्ज़म थी मगर अब बीस बरस की तूलानी मुद्दत गुज़रने पर वह जत्था प्रागन्दा (तितिर बितिर) हो चुका था। हज़ारों आदमियों के ज़मीर ख़रीदे जा चुके थे। बहुत से साबित क़दम लोगों के सर क़लम किये जा चुके थे और बहुत सों को जेलों में भरा जा चुका था। बक़िया लोग ख़ौफ़ व दहशत और बद दिली से इधर उधर परेशान व पाशान हो गए थे ऐसी सूरत में दमिश्क़ के शहनशाही इक़तेदार के मुक़ाबले में जंग का सवाल ही क्या पैदा हो सकता था? इसके अलावा आपका मक़सद जो यज़ीद के मुक़ाबले में था वह माद्दी जंग से हासिल भी नहीं हो सकता था इसकी तशरीह आइन्दा की जायेगी।

उसके बाद हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] बैयत से इन्कार कर रहे थे तो क्या करेंगे? इसे अगर हुसैन[अ0स0] करके न दिखलाते तो हमारी हरगिज़ समझ में न आता। हुसैन[अ0स0] ने यही तय किया कि वह जंग करेंगे मगर जंग का तरीक़ा

बदल दिया जितनी लड़ाईयाँ होती हैं उन में ताक़त का मुक़ाबला ताक़त से होता है। हुसैन[अ0स0] ने सबसे पहले यह नमूना पेश करना चाहा कि अब ताक़त का मुक़ाबला किरदार से करेंगे। आप ने यह तय किया कि आप इक़तेदार का मुक़ाबला बेबसी से, कसरत का मुक़ाबला क़िल्लत से और ज़ुल्म का मुक़ाबला मज़लूमियत के साथ करेंगे और यह वह तरीक़–ए–जंग था जिसका मुशाहिदा इससे पहले दुनिया ने नहीं किया था।

आप महसूस कर रहे थे कि तालीमाते इस्लाम पर ऐसा ग़िलाफ़ चढ़ गया है जिससे अइन्दा सदियों को और क़यामत तक आने वाली नसलों को पता भी नहीं चलेगा कि हक़ीक़तन वह तमद्दुन (रहन सहन), वह आईने मुआशिरत (दस्तूरे ज़िन्दगी) और वह निज़ामे ज़िन्दगी क्या था जिसे पैग़म्बरे इस्लाम[स0अ0] ने दुनिया के सामने पेश किया था।

यह ज़ाहिर है कि बाद की आने वाली नसलों के लिए साबिक़ा हालात मालूम करने का ज़रिया अगर कोई हो सकता है तो वह कुतुबे तवारीख़ (तारीख़ की किताबें)। यही तारीख़ की दूर बीन वह है जिसके ज़रिये से सदियों और हज़ारों बरस पहले के हालात का इन्सान मुतालिया (पढ़ना) करता है। इस्लामी दुनिया में सलातीने इस्लाम (हुकूमते इस्लाम) का शाहनशाही इक़तेदार इतना नुमायाँ था कि अगर इस्लामी तमद्दुन व तहज़ीब की जाँच के लिए कोई तालिबे तहक़ीक़ (तहक़ीक़ करने वाला) तारीख़ के अवराक़ पर नज़र डालता तो उसको इस्लाम की सर ज़मीन पर दमिश्क़ और बग़दाद के ऊँचे क़स्र नज़र आते। वह बड़े बड़े फाटक दिखाई देते जिन पर ज़रतार पर्दे पड़े हुए हैं वह ऐवाने (महल) जलवा दिखाते जहाँ दीवारों पर ज़रो जवाहर का काम बना हुआ है और सोने चाँदी के दरवाज़े हैं और अगर महल के अन्दर बारयाबी (इजाज़त) हो जाती तो ज़रो जवाहर से मुरस्सा (सजा हुआ) तख़्त नज़र आता और ज़र्री कमर गुलाम सफ़ बाँधे ईस्तादा (खड़े), मह जबीनों (खूबसूरत कनीज़ों) का झुरमुट, शराब के दौर, मुग़न्नी (गाने) की सदा और साज़ो तर्ब के नग़मों की गूँज ''पेशवा–ए–इस्लाम'' की बारगाह में नमाज़ का वक़्त आता है तो वह भी सलाम करता हुआ चला जाता है। मुअज़्ज़िन की सदा आती है। मगर निशात व तर्ब (ख़ुशी व सुरूर) के नक़्क़ार ख़ाने में तूती की आवाज़ बन कर सुनाई नहीं देती। जब वह नज़ारा देखता तो क्या यही राय क़ायम न करता कि इस्लाम का तमद्दुन यही है और यही वह तहज़ीब है जिस पर मुसलमान नाज़ाँ हैं। यक़ीनन ऐसा ही होता कि वहाँ का आईन (दस्तूर) व

निज़ाम बतौरे मिसाल पेश किया जाता। उनके अफ़आल मुसलमानों के अफ़आल बताए जाते और उनका किरदार ही एक ऐसा आईना होता जिसमें मुसलमानों की तस्वीर नज़र आती। कहाँ नज़र आते महल्ल–ए–बनी हाशिम के वह टूटे फूटे खंडर जिनमें कुछ बूढ़े कुछ जवान और कुछ बच्चे अपने ख़ालिक़ की याद में मसरूफ़ हैं। वह दरवाज़े जहाँ ग़रीब, मोहताज और मिसकीन आते हैं तो अपने सामने का खाना उठा कर दे दिया जाता है और खुद फ़ाक़े से दिन गुज़ारे जाते हैं। जहाँ गुलाम और कनीज़ से मसावियाना (बराबरी का) बर्ताव किया जाता है। कहाँ नज़र आते वह चेहरे जिन में मेहनत व मशक़्क़त बर्दाश्त करने से ज़र्दी छाई हुई होती है। वह होंट जो ज़िक्रे इलाही से खुश्क हो गए हों। वह अफ़राद जिनका नस्बुल ऐन (तरीक़ा) यह है कि किसी ग़रीब को उठाओ, कमज़ोर की मदद करो, किसी मोहताज व बेकस की दस्तगीरी (ख़बर) करो, किसी मज़लूम को ज़ुल्म से निजात दिलाओ और दुनिया को अपने अख़लाक़ से नमून–ए–जन्नत बनाओ।

बस हुसैन बिन अली[अ0स0] का मक़सद यह था और वह यज़ीद की बैयत का इन्कार करते हुए इसी पर कमर बस्ता (तैयार) हो गए थे कि तौ सही वह इन्सानियत की निगाह को उन ऊँचे मनाज़िर से हटा दें। उन क़सरों और मीनारों से मोड़ दें और इस्लामी उसूल की बर्क़ तजल्ली (रौशनी) को अमल की उस मेराज पर आँखों के सामने लायें कि नज़र उठते ही सब से पहले उस पर जा पड़े और उसी की चकम दमक में महो होजाये। उन्होंने चाहा कि अपने किरदार को ऐसी बलन्दी पर ले जायें जहाँ वह सितारे की तरह चमक उठे। सलातीने दुनिया के बड़े बड़े महल और मीनार नज़र न आयें बल्कि आपका किरदार नज़र आये। वह चाहते थे कि इन्सानियत के कानों को इस नक़्क़ार ख़ानये साज़ (रंग रेलियाँ) व नग़में से बहरा बना दें और हक़्क़ानियते इस्लाम की इस सुरीली और दिलकश आवाज़ से शनासा कर दें जो मौजूदा फ़िज़ा में सुनाई नहीं देती।

दूसरे लफ़ज़ों में आपका मतलब यह था कि एक मर्तबा दुनिया के सामने इस हक़ीक़त को पूरी शिद्दत व क़ूव्वत से पेश कर दें कि हुकूमत व शहनशाहियत और है और इस्लामी तहज़ीब व तमद्दुन और उसके उसूल और हैं।

हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] जिस मक़सद को ले कर उठ रहे थे वह अपनी नौइयत व खुसूसियत में कोई नया न था। वह तो वही था जिसे तमाम अम्बिया

ले कर आये थे और जिसके लिए तमाम मुसलेहीन (सुलह पसन्द) हमेशा कोशिश करते रहे मगर इसको जिस सूरत से आपने हासिल किया वह एक ऐसी मिसाल है जो न इससे पहले नज़र आई और न बाद को।

सियासियाते उमम (उम्मत) के वाक़िफ़ कार ख़ूब जानते हैं कि ज़ुल्म व जौर की ताक़त और शहनशाहियत जिस वक़्त अफ़रादे इन्सानी को अपने शिकन्जे में क़ैद रखना चाहती है तो कुछ ज़राएइख़्तियार करती है और उन तमाम ज़राए का अस्ली मक़सद दो चीज़ें होती हैं। एक यह कि अवाम से कुव्वते एहसास को सल्ब (छीन) किया जाये। दूसरे जुरअते इज़हार (ज़ुल्म के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने) को ख़त्म किया जाये। शाम की उमवी हुकूमत ने अपने इक़तेदार को क़ायम रखने के लिए इन ही दो बातों पर पूरी ताक़त सर्फ़ कर दी थी वरना मुसलमान जिनको पैग़म्बर ने मेहनत व मशक़्क़त के साथ उसूले इन्सानियत की तलक़ीन की हो और जिन्हों ने देखा हो कि पग़ैबर किस तरह माद्दी साज़ो सामान (ज़ाहरी चीज़ों) को हेच (गिरी हुई नज़र) समझते थे जिन्हों ने अपनी आँखों से मुशाहिदा किया हो कि पैग़म्बर[स0अ0] के दरवाज़े पर फटा हुआ पर्दा पड़ा रहता था जिन्हों ने देखा हो कि तीन तीन दिन तक पैग़म्बर[स0अ0] के घर से धुवाँ नहीं उठता, जितना रूप्या आता है ग़रीबों और मिसकीनों को दे दिया जाता था। वही क्यों कर इसको बर्दाश्त कर सकते कि बादशाह के ख़ज़ाने में ग़रीबों का ख़ून चूस कर रूपया जमा हो और उसको रंग रलियों में सर्फ़ किया जाये ख़लीफ़ा की बारगाह में रक़्स व सुरूर (नाच गाने) की महफ़िलें हों और शराब व कबाब के मशग़ले रहें। मुसलमान इसको सिर्फ़ ख़ामोशी से देखते ही न रहें बल्कि ऐसे शख़्स को पेशवा तस्लीम करें। यह फ़ितरत का इन्क़ेलाब मुसलमानों में किस तरह पैदा हो सकता था? सिर्फ़ कुव्वते एहसास ख़त्म होने और जुरअते इज़हार के सल्ब होने से।

कुव्वते एहसास ख़त्म करने की सूरतें बहुत सी हैं हर शख़्स समझ सकता है कि अवाम साहबे राय नहीं होते। उनके पास दिल होता है मगर दिमाग़ नहीं होता। दिमाग़ रखने वाले मुमताज़ अफ़राद और लीडर होते हैं। ख़ास ख़ास लीडरों को अपने हाथ में ले लिया जाये तो जिधर यह लीडर ले जाना चाहें अवाम बे ख़बरी के साथ उसी तरफ़ चले जायेंगे ख़्वाह यह रास्ता कितना ही ग़लत क्यों न हो। इसी बिना पर उमूमन जमहूरियतों (Democracy) में ज़ाहरी कसरते राय (Voting) हक़ीक़ी राय आम्मा (आम लोगों) की तरजुमान नहीं होती।

उमवी सियासत ने ख़वास (ख़ास ख़ास लोगों) को अपने क़ब्ज़े में किया। इस तरह कि जिसको ज़रा मुख़ालिफ़ाना रूजहान रखते हुए पाया उसकी जेब में अशरफ़ियों की एक थैली पहुँचा दी गई। अगर उसने कुबूल कर ली तो समझ लीजिये कि जितना उन अशरफ़ियों का वज़न था उतना ही उसकी मुख़ालिफ़त का सर झुक गया। "फिर छुटती नहीं है मुंह से यह काफ़िर लगी हुई।" जहाँ ख़याल पैदा हुआ कि अब की दफ़ा दो तोड़े मिले हैं इसके बाद बजाए दो के चार मिलेंगे। वहीं कुव्वते एहसास ख़त्म हो गई यानी यह ख़याल होने लगा कि दुनिया के लिए चाहे जैसे हों यह हुक्काम हमारे लिए तो बहुत अच्छे हैं। इस तरह बहुत से लोगों का ज़मीर ख़रीद लिया गया और बहुत से उसूल के पुख़्ता जिनके सर उठे ही रहे उनके सर और जिस्म में जुदाई पैदा कर दी गई और अगर यह हर्बा ख़तरनाक मालूम हुआ तो शहद का ऐसा जाम जो लब तक पहुँचते ही मौत की मीठी नींद सुला दे। नतीजा यह हुआ कि अवाम ने यह सोचना मौकूफ़ (छोड़) कर दिया कि हो क्या रहा है और बहुत से लोगों ने जब कुछ सोचा तो उन लोगों के अन्जाम को देखा जो उसके पहले कुछ सोच कर इख़तेलाफ़ का इज़हार कर चुके थे कि आज सफ़ह–ए–हस्ती उनके नक़्शे वजूद से ख़ाली है। इस तरह जुरअते इज़हार ख़त्म हुई।

यही दो चीज़ें ऐसी थीं जिनको अज़ सरे नौ पैदा करने का बेड़ा उठा कर हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] मैदान में आये। आपने सोचा कि कुव्वते एहसास क्यों कर पैदा की जाये? इसके लिए एक हाज़िक (होशियार, समझदार) तबीब की तरह मरज़ के सबब पर ग़ौर करने की ज़रूरत थी। आख़िर मुसलमानों की इस बेहिसी का सबब क्या है? क्या यह वाक़ई मुसलमान नहीं रहे? देखा तो अब भी लोग इस्लाम को मानते हैं और अपने को मुसलमान कहना फ़ख्र समझते हैं मगर इनके एहसासाते इस्लामी पर ग़शी छा गई है जैसे कोई आदमी बेहोश हो जाये तो उसमें नफ़्स की आमद व शुद (सांस का आना जाना) क़ायम रहती है जो ज़िन्दगी का पता देती है मगर आसारे ज़िन्दगी मफ़कूद (ख़त्म) होते ही एहसास और हरकते इरादी दोनों चीज़ें गुम होती हैं। इसी तरह उस वक़्त जाम–ए इस्लामिया में कलम–ए–तौहीद के नफ़्स की आमद व शुद है जो उनके ज़ाहरी तौर पर इस्लाम की दलील है मगर इस्लामी रूह काम कुछ नहीं कर रही है और एहसासाते इस्लामी फ़ना हो गए हैं। हर एक को मालूम होगा कि जब किसी को ग़श आ जाता है तो उसके चेहरे पर छींटा दिया जाता है। जितनी गहरी बेहोशी हो उतना ही तेज़ छींटा दिया जायेगा। इमाम हुसैन[अ0स0]

ने बस यही चाहा कि मुसलमानों के बेहोश एहसासात पर एक ऐसा तेज़ छींटा दे दें जिसके बाद वह फुरैरी लेकर आँख खोल दें और घबरा कर यह देखने लगें कि दुनिया में क्या हो रहा है? यह भी क़ाबिले ग़ौर अम्र था कि इस बेहोशी का सबब क्या है? यक़ीनन इसका सबब यह था कि वह जमाअत जो तालीमाते इस्लामी को मिटा रही है अगर साफ़ साफ़ कोई ग़ैर मुस्लिम जमाअत होती तो मुसलमान जल्दी से चौंक पड़ते लेकिन वह जमाअत जो उस वक़्त तालीमाते इस्लाम को बर्बाद कर रही है अपने चेहरे पर इस्मी व रस्मी (नाम व रसम) इस्लाम की नक़ाब डाले हुए थी और मुसलमानों की जमाअत में दाख़िल थी इसलिए मुसलमान बेदार नहीं होते थे। हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने यह इरादा कर लिया कि अपनी मुक़ाबिल जमाअत के चेहरों से इस्लाम की इस नक़ाब को उतार कर फेंक दें और दुनिया को दिखला दें कि इस नक़ाब के पीछे कैसे लोग छुपे हुए हैं और यह कि उनको इस्लाम से हक़ीक़तन कोई तअल्लुक़ नहीं है। इस तरह एक तो मौजूदा मुसलमान उनसे बेज़ार हो जायेंगे और उनके ख़िलाफ़ इन्क़ेलाब पैदा करने के लिए तैयार हो जायेंगे। दूसरे बाद में मुसलमानों के लिए उनके अफ़आल (काम) सनद न रहेंगे। जब मुसलमानों को उनके इस्लाम की सही तस्वीर मालूम हो जायेगी तो मुसलमान धोखा खा कर उनके दाम (जाल) में न फंस सकेंगे। नीज़ ग़ैर मुस्लिम दुनिया के सामने इस्लाम की जानिब से सफ़ाई पेश हो जाएगी। अगर बनी उमैया के औसाफ़ व अख़लाक़ को इस्लाम के ख़िलाफ़ पेश किया जायेगा तो मुसलमानों की गर्दनें झुकेंगी नहीं बल्कि हुसैन बिन अली[अ0स0] का किरदार मुसलमानों के सर को बलन्द करेगा कि अगर यज़ीद के अफ़आल को इस्लाम से कोई तअल्लुक़ होता तो पैग़म्बरे इस्लाम[स0अ0] का नवासा अपने को ख़तरे में क्यों डाल देता। यही मक़ासिद वह थे जो तमाम व कमाल माद्दी जंग से हासिल न हो सकते थे। माद्दी जंग से जो फ़तह हासिल होती है उससे अफ़राद अशख़ास (लोग) क़त्ल होते हैं मगर ज़ेहनियत क़त्ल नहीं होती। सलतनतों में इन्क़ेलाब हो सकता है मगर अफ़रादे जामेआ के एहसासात में इन्क़ेलाब नहीं होता। हुसैन बिन अली[अ0स0] अशख़ास को क़त्ल करने नहीं उठे थे। यज़ीद को हलाक करना नहीं चाहते थे। वह तो यज़ीदियत को क़त्ल करना चाहते थे। हो सकता था कि यज़ीद ख़त्म हो जाता और उसके तमाम उम्माल (सरकारी अफ़सरान) और फ़ौजी अफ़सर भी हलाक हो जाते फिर भी यह नहीं समझा जा सकता था कि यज़ीदियत ख़त्म हो गई और यज़ीदी मसलक फ़ना हो गया। ज़ेहनियत दुनिया

की जब माऊफ़ (बेकार) थी तो अगर असकरी (फ़ौजी) ताक़त लेकर जंग करते तो जो उसकी वाक़ई हैसियत थी उसके समझने वाले बहुत कम होते और यह समझने वाले ज़्यादा होते कि हुकूमत व सलतनत की ग़रज़ से दो बादशाहों की जंग है और सियासी हैसियत से यज़ीद का पल्ला गराँ (भारी) रहता इस लिए कि वह बादशाह तस्लीम किया जा चुका था। इस सूरत में अगर आपको फ़तह हासिल भी होती जो गुज़िश्ता असबाब की बिना पर बज़ाहिर ग़ैर मुमकिन थी तो उसका असर एक वक़्ती इन्क़ेलाबे सलतनत की सूरत से होता जिसका नतीजा देरपा (देर तक) न होता और बनी उमैया पर जो ज़ाहरी इस्लाम का पर्दा था वह उसी तरह पड़ा रहता और अगर कुछ लोग हुसैन[अ0स0] को हक़ पर समझते भी होते तो फ़रीक़ महारिब (जंग के मद्दे मुक़ाबिल) को ख़ता–ए–इज्तेहादी की सनद दे देते जैसा कि उससे पहले सिफ़्फ़ीन की जंग के मुतअल्लिक़ हो चुका था। इस सूरत में बनी उमैय्या के बातनी (अन्दरूनी) हालात का इस दर्जा इन्केशाफ़ कि जो उनसे हमदर्दी का कोई गोशा इन्सानियत के दिल में बाक़ी न रखे हरगिज़ नहीं हो सकता था और जब तक उनसे नफ़रत इन्तेहाई दर्जे पर पैदा न होती उस वक़्त तक इन इम्तियाज़ात व इक़दार की मुकम्मल शिकस्त नहीं हो सकती थी जिन्हें बनी उमैय्या ने अमली तौर पर क़ायम करना चाहा था।

अगर इमाम हुसैन[अ0स0] ताक़त के ज़रिये से यज़ीद की ताक़त को शिकस्त देते तो फिर भी दुनिया इस चीज़ को न समझती कि हक़्क़ानियत और हुकूमत दो अलग चीज़ें हैं। हुसैन बिन अली[अ0स0] की फ़तह वैसी फ़तह समझी जाती जो बादशाहों की फ़तह होती है। यानी अगर आप यज़ीद को शिकस्त देकर सलतनत पर क़ाबू हासिल कर लेते तो आपकी सलतनत को दुनिया सलतनत ही समझती इस्लाम की हक़ीक़त न समझती। हालाँकि तारीख़ी हालात बतलाते हैं कि इस तरह की मुकम्मल फ़तह आप को कभी हासिल ही नहीं हो सकती थी। बड़ी से बड़ी माद्दी कामयाबी भी आपकी महदूद हैसियत रखती। यानी इस सूरत में कि जब कूफ़े में हालात साज़गार होते और सब लोग आपकी हुकूमत तस्लीम कर लेते तो ज़्यादा से ज़्यादा वही होता जो हज़रत अली[अ0स0] को वक़्त से मजबूर हो कर करना पड़ा था यानी इराक़ व हिजाज़ (आज का सऊदी) वग़ैरह की हुकूमत इमाम हुसैन[अ0स0] के पास और शाम की हुकूमत यज़ीद के पास होती। दोनों तरफ़ की हुकूमतों में मुक़ाबला होता और मुसलमानों की ताक़तें आपस में लड़ कर पाश पाश (टुकड़े टुकड़े) होती रहतीं।

मगर इमाम हुसैन[अ0स0] ऐसी कामयाबी हासिल करना चाहते थे जो न बएतेबारे हुदूदे ममलिकत (महदूद) हो और न बएतेबारे हुदूदे ज़माना महदूद। (न एक हुकूमत की हद तक महदूद और न एक ज़माने की हद तकमहदूद)

मुमकिन है यह सवाल उठाया जाये कि हुसैन[अ0स0] के वाक़ेय–ए–शहादत के बाद भी तो बहुत से सलातीन (बादशाह) इन्हीं अफ़आल के मुरतकिब होते रहे जिनका यज़ीद इरतेकाब (काम) करता था मगर याद रखना चाहिए कि हुसैनी मुक़ाविमत (उसूलों) ने इस्लाम के तमद्दुन और उसूल को इतना नुमायाँ कर दिया कि अब उसके ख़िलाफ़ जो अफ़आल होते हैं वह इन्फ़ेरादी और शख़्सी जराएम की हैसियत रखते हैं और उन्हें आईनी और मज़हबी दर्जा नहीं हासिल होता यानी यह ख़तरा अब हमेशा के लिए दूर हो गया है कि उन्हीं को इस्लाम का मुस्तक़िल उसूल और तरीक़े मुआशिरत (समाज का हिस्सा) समझ लिया जाये क्योंकि इमाम हुसैन[अ0स0] ने इस्लाम की आईनी अज़मत का न मिटने वाला नक़्श क़ायम कर दिया है।

गुज़िश्ता बयानात से साफ़ ज़ाहिर हो गया कि हुसैन इब्ने अली[अ0स0] के लिए अपने मक़सद के हुसूल का सिर्फ़ एक ही ज़रिया था और वही जिसे उन्होंने इख़्तियार किया और उसके सिवा कोई दूसरा ज़रिया न था।

आप उस रास्ते में मौत के इस्तेक़बाल पर हमेशा से तय्यार थे जो आपके अलफ़ाज़ और मुख़ातिबात (ख़ुतबों) से ज़ाहिर था।

चुनाँनचे मक्का से रवानगी के वक़्त अपने ख़ुतबे में आपने इरशाद किया कि "मौत इन्सान की गर्दन से उसी तरह वाबस्ता है जैसे गुलूबन्द जवान औरत की गर्दन से।" बादियुन नज़र (शुरू) में तो आप को इससे सिर्फ़ इतना ज़ाहिर करना मक़सूद था कि इन्सान के गले में मौत का फन्दा पड़ा हुआ है और बहरहाल इसको एक न एक दिन इस दारे फ़ानी से रूख़्सत होना है मगर आपने इस तल्ख़ हक़ीक़त का कुछ ऐसे दिलकश अन्दाज़ से तज़किरा फ़रमाया है जिससे साफ़ महसूस होता है कि आप के नज़दीक मौत कोई नागवार शै नहीं बल्कि हसीन व दीदा ज़ेब चीज़ है। यह आम क़ायदा है कि इन्सान की जैसी ज़ेहनियत होती है। वैसे ही अलफ़ाज़ उसकी ज़बान पर आते हैं। चूँकि हुसैन उस घराने के एक फ़र्द थे जिसके अफ़राद उमूमी हैसियत से मौत को कभी ख़ातिर में लाते ही नहीं थे और आपके पेशे नज़र बक़ा–ए–हक़्क़ानियत का अहम तरीन मक़सद भी था लिहाज़ा आपके तअस्सुरात इस बारे में बहुत ज़्यादा क़वी थे।

चुनाँनचे मक्के से रवानगी के बाद पहली ही मन्ज़िल पर जब आपकी फ़रज़दक़ शायर से मुलाक़ात हुई और उन्होंने कूफ़े की हालत आप से बयान की कि "लोगों के दिल तो आपकी तरफ़ ज़रूर हैं मगर तलवारें उनकी बनी उमैय्या के साथ होंगी।" तो आप ने फ़रमायाः "तुम सच कहते हो, लेकिन हर बात खुदा के हाथ में है और वह जो चाहता है करता है और हर दिन वह एक निहायत नया करिश्मा कुदरत का दिखाता है। खुदा की तक़दीर अगर हमारी ख़्वाहिश के मुताबिक़ हुई तो हम खुदा की हम्द करेंगे और अदाए शुक्र के लिए उसी से मदद के तालिब होंगे और क़ज़ाए इलाही हमारे सद्दे राह (रूकावट) हुई तो इन्सान के लिए यही क्या कम है कि उसकी नियत में सच्चाई और उसके ज़मीर में पारसाई (पाकीज़गी) का ख़याल बाक़ी रहे। [1]

इराक़ के रास्ते में हुर के साथ जो आपकी गुफ़तगू हुई थी वह भी आपके इसी मुस्तक़िल नज़रिये के मातहेत थी यानी यह कि हुर ने कहा कि मैं आपको खुदा का वास्ता देता हूँ आप अपने ऊपर रहम करें, इस लिए कि अगर आपने जंग की तो आप यक़ीनन क़त्ल कर दिये जायेंगे और आप तबाह होंगे। तो आप ने जवाब दिया कि तुम मुझे मौत से डराते हो? क्या तुम इससे ज़्यादा कुछ कर सकते हो कि मुझे क़त्ल कर डालो?

उसके बाद आपने क़बील–ए ओस के एक शायर का यह शेअ्र पढ़ा कि:

سا مضی ومابالموت عار علی الفتیٰ

اذا مانوی حقا وجاحد مسلما

"मैं अपने इरादे पर क़ायम रहूँगा और मौत से दोचार होने में जवानमर्दी के लिए कोई आर व नंग नहीं है जबकि उसकी नियत में सच्चाई हो और वह राहे हक़ में जिहाद कर रहा हो।"[2]

ब–ज़ाहिर अजीब चीज़ है, इन्सानी निगाह में आख़िरी और इन्तेहाई अन्जाम क़त्ल होना है लेकिन हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] फ़रमाते हैं कि "क्या इससे ज़्यादा तुम कुछ कर सकते हो कि मुझे क़त्ल कर डालो।" यानी आप क़त्ल होने को एक दरमियानी मन्ज़िल क़रार देकर आख़िरी मेयार फ़तह व शिकस्त का कुछ और क़रार दे रहे हैं।

---

[1]इरशाद पेज / 228

[2]इरशाद पेज / 236–237

"जूहसम" (इराक़ का शहर) ही के मक़ाम पर जब हुर का लश्कर इमाम[अ0स0] की मज़ाहेमत के लिए आचुका है तो हज़रत ने अपने असहाब के सामने ख़ुतबा इरशाद किया जिसमें हम्दो सनाए बारी के बाद फ़रमायाः

"सूरते हाल जो पेश आई है वह तुम देख रहे हो और यक़ीनन दुनिया का रंग बदल गया है और उसकी नेकी रूख़्सत हो चुकी है और उसमें कुछ रह नहीं गया है। सिवाए थोड़े हिस्से के जो पानी बहने के बाद बर्तन में बच रहता है। और एक पस्त ज़िन्दगी मिस्ल ज़हरीली घास के। क्या तुम नहीं देखते कि हक़ पर अमल नहीं होता और बातिल से अलाहदगी नहीं इख़्तियार की जाती। इस सूरत में मोमिन यक़ीनन ख़ुदा की मुलाक़ात का आरज़ूमन्द होता है। मेरे नज़दीक तो मौत की सूरत में शहादत की सी नेअ्मत है और ज़िन्दा रहना उन ज़ालिमों के साथ वबाले जान है।"[1]

इसी के साथ, आपने हुक्काम और अवाम के हुक़ूक़ व फ़राएज़ के हुदूद क़ायम कर दिये और बताया कि हुकूमत अवाम की ज़ेहनी व अमली तरक़्क़ी और दीन के अहकाम नाफ़िज़ करने के लिए है और वह उस वक़्त तक क़ाबिले एहतेराम है जब तक अवाम की ज़िन्दगी को उससे फ़ाएदा पहुँच रहा हो। एक मौक़े पर आप ने हाकिम के औसाफ़ इन अल्फ़ाज़ में बयान फ़रमाएः "हाकिम के लिए ज़रूरी है कि इस्लामी दस्तूर पर चलता हो। अदल व इन्साफ़ से पेश आता हो। हक़ का पाबन्द हो और रज़ाये इलाही में अपने नफ़्स को मुक़य्यद (बांधे) किये हुए हो।"[2]और जिस हुकूमत के ख़िलाफ़ आप एहतेजाज करते रहे उसके तर्ज़े अमल पर तबसेरा करते हुए कई बार इज़हारे ख़याल किया। हुर के लश्कर के सामने आपने फ़रमायाः "रसूल अल्लाह[स0अ0] ने फ़रमाया है कि जो ज़ालिम बादशाह को देखे कि वह अहदे ख़ुदा और सुन्नते रसूल की मुख़ालिफ़त कर रहा है और बन्दगाने ख़ुदा के साथ ज़ुल्मो तअद्दी (सख़्ती) से पेश आता है और वह क़ौल या फ़ेअ्ल से उस ज़ालिम को न रोके तो ख़ुदा उसे भी उस चीरा दस्त (सरकश) बादशाह के ज़ुमरे (साथ) में शुमार करेगा। देखो मौजूदा हुकूमत शैतान की हलीफ़ (क़रीबी) बन गई है और ख़ुदा की फ़रमाँ बरदारी से रूगर्दानी कर रही है। फ़ितना व फ़साद बरपा कर रखा हे और हुदूद व आईन (दस्तूर) को बेकार बना दिया है। मुल्क के सारे सरमाए (दौलत) को अपनी मिलकियत बना लिया है।"

---

[1]तबरी जि/6, पेज/229

[2]इरशाद पेज/210

उमरे साद के लश्कर से ख़िताब कर के फ़रमायाः तुम देखते नहीं कि हुकूमत हक़ पर अमल नहीं कर रही है और बातिल से बाज़ नहीं आती। यह वह वक़्त है कि मोमिन को मौत की तमन्ना करना चाहिए। मैं तो इस माहौल में मौत को अपने लिए आसूदगी और नेक बख़्ती और ज़ालिमों के साथ ज़िन्दगी को सरासर तकलीफ़ समझता हूँ।''

शबे आशूर के खुतबे में आवान व अन्सार (मददगार, दोस्त) को मुख़ातब करके फ़रमायाः ''मैं बाइज़्ज़त मर जाने को ज़िन्दगी समझता हूँ, और ज़िल्लत की ज़िन्दगी बसर करने को मौत ख़याल करता हूँ।''

करबला में रोज़े आशूरा के खुतबे में आप ने फ़रमायाः ''खुदा की क़सम मैं ज़िल्लत के साथ अपने को तुम्हारे क़ब्ज़े में न दूँगा और न गुलामों की तरह तुम्हारे सामने से भागूँगा।'' यह था बहादुरी और जाँबाज़ी की मौत का ऐलान।

फिर इरशाद फ़रमायाः

''मैं पनाह माँगता हूँ ऐसे हर शख़्स से जो नुख़ूवत (घमण्ड) व गुरूर रखता हो और रोज़े क़यामत पर ईमान न रखता हो।[1] मौत इज़्ज़त के साथ बेहतर है उस ज़िन्दगी से जो ज़िल्लत के साथ हो।'' पहले फ़िक़रे में जब्बारो सरकश यज़ीद के जबरूते सलतनत की तहक़ीर (ज़लील) है और दूसरे फ़िक़रे में इसकी तशरीह है। इसकी तशरीह है कि माद्दी (ज़ाहरी) ताक़त के आगे बलन्द मक़ासिद के ख़िलाफ़ सर झुका देना इज़्ज़ते इन्सानी के ख़िलाफ़ है और उस ज़िन्दगी से जो इस तरह हो मौत बेहतर है।

[1] इरशाद पेज/248

सत्तरहवाँ बाब

हरमे रसूल[स०अ०] से सफ़र और हरमे ख़ुदा में पनाह

वलीद से गुफ़्तगू के बाद वह वक़्त आ गया कि जब इमाम ने मदीने को तर्क करना (छोड़ना) ही अपने लिए ज़रूरी समझा।

यह ख़याल करना कि आप मदीने ही में क़याम फ़रमाते तो मदीने वाले आपकी हिफ़ाज़त में कोई दक़ीक़ा (कमी) उठा न रखते, तारीख़ के मुसलसल वाक़ेयात से बेख़बरी या उनके नताएज से ग़फ़लत का मुज़ाहरा होगा।

वफ़ाते रसूले ख़ुदा[स0अ0] के बाद ही से मदीने पर कुछ ऐसे असरात छाये हुए नज़र आते हैं जिनकी बिना पर यह तवक़्क़ुआत ग़लत साबित होते हैं।

आख़िर यह मदीना ही तो था जहाँ वफ़ाते रसूले ख़ुदा[स0अ0] के बाद ही हज़रत फ़ातिमा ज़हरा पर मसाएब की यूरिश थी मगर अहले मदीना की तरफ़ से उनके साथ हमदर्दी का कोई मुज़ाहरा कहीं तारीख़ में नज़र नहीं आता।

फिर वह मदीना ही था जहाँ हज़रत अली[अ0स0] ने गूनागूँ (तरह तरह की) दिल शिकन हालात में पच्चीस बरस तक मुक़ाबला किया मगर अहले मदीना ने उनके साथ किसी भी मुहब्बत व ग़म ख़्वारी का सुबूत नहीं दिया।

उसके बाद उसी मदीने में वह मौक़ा आँखों के सामने आया कि हज़रत इमाम हसन[अ0स0] के जनाज़े को रौज़–ए–रसूल[स0अ0] पर ले जाने में मज़ाहमत की गई मगर मदीने के लोगों ने ज़र्रा भर भी उस पर एहतेजाज नहीं किया। क्या यह वाक़ेया ऐसा अहम न था कि मदीने के जिस्म में अगर रूह होती तो उसमें हरकत पैदा होती और किसी क़िस्म के एहसास का मुज़ाहरा किया जाता।?

यह तो करबला के पहले के कुछ नमूने हैं और ख़ुद सन 61 हिजरी में हैरत अंगेज़ मगर नाक़ाबिले इन्कार सूरत से अहले मदीना की ख़ानदाने रसूल[स0अ0] के बारे में बेहिसी का सुबूत यह है कि हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] जब शहीद हो गए और आपके दर्दनाक मसाएब व मज़ालिम का बतफ़्सील एहले मदीना को हाल मालूम हो गया तब भी अहले मदीना ने ख़ूने हुसैन[अ0स0] के

इन्तेक़ाम के लिए किसी बेचैनी का मुज़ाहरा नहीं किया और बावजूदेकि इराक़ में तलातुम हो रहा था हिजाज़ इस बारे में बिल्कुल ख़ामोश था।

वह तो इमाम हुसैन[अ०स०] की क़ुर्बानी का तबई (Natural) असर था कि यज़ीद की बद आमालियों पर निगाहें मुतवज्जेह हो गईं और फिर दूसरे साल यज़ीद के अफ़आल व आमाल के तफ़सीली हालात मालूम होने के बाद उन्होंने एलाने मुख़ालिफ़त कर दिया जिसके नतीजे में वाक़ेय–ए–हर्रा ज़ुहूर पज़ीर (अमल में आया) हुआ जिसकी इजमाली तफ़सील अपने महल पर बाद को आयेगी मगर ख़ुद क़त्ले हुसैन[अ०स०] का जुर्म उनको इतना अहम मालूम न हुआ कि वह इसकी बिना पर यज़ीद के मुक़ाबले के लिए खड़े हो जाते।

फिर उसके बाद वाक़ेआत का एक तवील सिलसिला है जिस में सादाते बनी फ़ातिमा पर बनी उमैया के आख़िरी दम तक और फिर बनी अब्बास के दौरे हुकूमत में कैसे कैसे हौलनाक मज़ालिम होते रहे मगर अहले मदीना ने कभी उनकी कोई इमदाद नहीं की। हज़रत इमाम ज़ैनुल आबेदीन[अ०स०] से लेकर इमाम अली नक़ी[अ०स०] तक तमाम वह मुक़द्दस हस्तियाँ जो अपने वक़्त में ख़ानदाने रसूल[स०अ०] की चश्मो चराग़ और तालीमाते इस्लाम की मुहाफ़िज़ थीं अपने अपने इब्तेदाई दौरे हयात में इसी मदीने में मुक़ीम थीं। फिर यहीं किसी को ज़हर दिया गया किसी को मुक़य्यद कर के जिला वतन किया गया। किसी को बजब्र मदीने से बुलाया गया मगर क्या कभी मदीने ने उनकी हिफ़ाज़त की कोशिश तो दरकिनार उस पर उफ़ भी की? कभी नहीं।

क्या इन मा क़ब्ल (पहले के) और बाद के वाक़ेआत को पेशे नज़र रखने के बाद फिर यह तसव्वुर सही होगा कि इमाम हुसैन[अ०स०] मदीने में क़याम फ़रमाते तो मदीने वाले आपकी हिफ़ाज़त में जान लड़ा देते? हरगिज़ नहीं।

आम तौर से अहले जिहाज़ (सऊदी) के मुतअल्लिक़ दानिश्मन्दाना अरब की राय यही थी कि वह मुशकिलात में साबित क़दम बहुत कम रह सकते हैं। चुनानचे जब मुआविया ने इब्ने अलकवा से मुख़्तलिफ़ अरब ममालिक के मुतअल्लिक़ राये दरयाफ़्त की और उसमें अहले हिजाज़ के मुतअल्लिक़ पुछा तो उसने कहा ''फ़ितना अंगेज़ी (झगड़ा) में सब से आगे मगर उसके नताएज के बरदाश्त करने में बहुत कमज़ोर और मुहिम्मात के सर करने में (तहरीक को कामयाब बनाने में)नाकारा।''[1]

---

[1]किताबुल बुलदान पेज/125

इस सूरत में हालात और बाद के वाक़ेआत बतलाते हैं कि अगर इमाम हुसैन[अ0स0] आक़िबत अन्देशी (अन्जाम से बाख़बर) कर के मदीन–ए–रसूल को ख़ाली न कर देते तो मरवान जिस ने वलीद को क़त्ले हुसैन[अ0स0] का मशवरा दिया था और वलीद के इस मशवरे पर अमल न करने से सख़्त बरहम हुआ था वही वलीद के मुलाएम तर्ज़े अमल की इत्तेला यज़ीद को देता और उस वक़्त यज़ीद का इताब नामा वलीद के पास आता तो या तो खुद वलीद ही को फिर उमरे सअ्द की तरह बावजूद अपने ज़मीर की मुख़ालिफ़त के माल व जाहे दुनिया की तमा (लालच) और सितवते (सख़्ती) हुकूमत के ख़ौफ़ से हुसैन[अ0स0] के ख़िलाफ़ इक़दाम करना पड़ता या कूफ़े के नोमान बिन बशीर की तरह उसको माज़ूल करके मरवान बिनुल हकम या उसी के मिस्ल किसी दूसरे सफ़्फ़ाक और सख़्त तरीन दुश्मने अहलेबैत[अ0स0] को मदीने का हाकिम मुक़र्रर किया जाता और फ़रज़न्दे रसूल[स0अ0] के ख़ून से मदीन–ए रसूल की ज़मीन को गुलरंग बना दिया जाता।

यह ख़तरा बिल्कुल यक़ीनी था और उसने फ़ेअ्ली (practicaly) हैसियत इख़्तियार कर ली थी। उस ख़त से जो वलीद ने यज़ीद के नाम लिखा जिसका मज़मून यह था किः ''ख़लीफ़तुल मुसलिमीन यज़ीद की ख़िदमत में वलीद बिन अतबा की जानिब से गुज़ारिश है कि इमाम हुसैन बिन अली[अ0स0] आपकी ख़िलाफ़त को तस्लीम नहीं करते और न वह आपकी बैयत पर तैयार हैं। अब आपकी जो राय हो।'' इसके जवाब में यज़ीद ने लिखा कि ''इस मेरे ख़त की तामील जल्द करना कि तमाम उन मुमताज़ (ख़ास) अफ़राद की जिन्हों ने मेरी बैयत कर ली है और जिन्हों ने बैयत नहीं की है मुकम्मल फ़ेहरिस्त जल्द भेजो। लेकिन इस जवाब के साथ हुसैन बिन अली[अ0स0] का सर मौजूद हो।'' इस हुक्म की गर्मी के मुक़ाबले में वलीद कहाँ ठहर सकता था? वह तो इत्तेफ़ाक़ से उस ख़त के आने से पहले ही हज़रत हुसैन[अ0स0] मदीने से रवाना हो चुके थे इस लिए वलीद तामीले हुक्म से मजबूर रहा। मगर उसके बाद भी वलीद मातूब (सज़ा पाने से) होने से नहीं बचा और माहे रमज़ान में उसे माज़ूल (हटा) करके अम्र बिन सईद ही को जो अभी तक हाकिमे मक्का था मदीने का भी हाकिम मुक़र्रर कर दिया गया।[1]

फिर अगर हज़रत हुसैन[अ0स0] मदीने में शहीद होते तो क्या आपकी शहादत इसी नुमायाँ हैसियत के साथ होती जिस तरह करबला जा कर हुई?

---

[1]तबरी जि/6, पेज/191

सियासते हुकूमत का यह तक़ाज़ा हरगिज़ न होता बल्कि उसे तरह तरह के लिबास पहनाये जाते। या तो इमाम हसन[अ0स0] की शहादत की तरह कोई "जोअ्दा बिन्ते अशअस" फ़राहम की जाती या हज़रत अली[अ0स0] की तरह कोई "इब्ने मुलजिम" की तरह का ख़ार्जी (गुमराह) जिसके बाद भी हुकूमते दमिश्क़ का दामन इस इलज़ाम से बरी ही साबित किया जाता। इस सूरत में हुसैन[अ0स0] वाक़ई क़त्ल होते यानी वह दुनिया से जाते भी और सल्तनते दमिश्क़ के चेहरे पर इस्लाम व इन्सानियत की नक़ाब फिर भी पड़ी रहती।

हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] इसके लिए हरगिज़ तैयार न थे। तदब्बुर का इक़्तेज़ा (समझदारी का तक़ाज़ा) था कि मदीने में क़याम उसी वक़्त किया जाता जब मदीने में क़याम मुमकिन हो और जब बैयत नहीं करना थी तो अपने उसूल, अपने मक़सद और अपनी क़ुर्बानी को उसी उफ़ुक़ (बलन्दी) पर ले जा कर पेश करना चाहिए था जिस पर आप करबला के मैदान में उन्हें ले जा सके। बेशक यह सफ़र कोई मामूली सफ़र न था। वह करबला की मन्ज़िल का पहला मरहला या आख़िरत के सफ़र का पहला क़दम था इस लिए वह रात हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने पूरी जाग कर बसर की और उसे अपने नाना (हज़रत रसूले ख़ुदा) माँ (हज़रत फ़ातिमा ज़हरा[स0अ0] और भाई (हज़रत हसने मुजतबा) के मुक़द्दस मज़ारात से रूख़्सत होने में सर्फ़ किया।

रात ख़त्म न हुई थी कि आप मदीने से रवाना हो गए। मदीने की सुबह आज बे रौनक़ थी। इस लिए कि हक़ीक़ी आफ़ताब उसका आँखों से ओझल हो चुका था और रसूल की क़ब्र बेचिराग़ थी। इस लिए कि रसूल[स0अ0] का नूर दीदा आज सहराए ग़ुरबत में गामज़न था।

सन 61 हि0 माहे रजब की अठ्ठाईस तारीख़ इतवार की रात थी जब इमाम हुसैन[अ0स0] मदीने से रवाना हुए।[1] उस वक़्त आपकी ज़बान पर क़ुरआन की यह आयत थी।[2] "فَخَرَجَ مِنْهَا خَائِفًا يَتَرَقَّبُ قَالَ رَبِّ نَجِّنِي مِنَ الْقَوْمِ الظَّالِمِينَ" इस आयत में हज़रत मूसा[अ0स0] का ज़िक्र है उस वक़्त का जब वह फ़िरऔन के ज़ुल्म व तशद्दुद से बेज़ार हो कर मिस्र से बाहर निकले हैं। रवानगी के बाद इमाम हुसैन[अ0स0] शाहराहे आम से मक्के की तरफ़ रवाना हुए। हलाँकि इब्ने ज़ुबैर इसके पहले शाहराहे आम को छोड़ कर ग़ैर मारूफ़ रास्तों से मक्के की तरफ़ रवाना हो चुके थे। यही मशवरा आपको भी दिया गया मगर आप अपनी

---

[1]तबरी जि/6, पेज/190 व 215, इरशाद पेज/207

[2]तबरी जि/6, पेज/191–126

मदीने से रवानगी को फ़रार की हैसियत देने पर तैयार नहीं थे। आप ने उस मशवरे पर अमल करने से इन्कार कर दिया और कहा कि नहीं मैं तो उसी रास्ते से जाऊँगा। फिर ख़ुदा को जो मन्ज़ूर हो।[1]

आप ने अपने दादा अबू तालिब[अ0स0] की तमाम औलाद को अपने साथ लिया जिन में आपकी दो बहनें हज़रत ज़ैनब और उम्मे कुलसूम भी थी। इसके अलावा सब भाई भतीजे और मुतअल्लिक़ीन आपके साथ थे। सिवा मुहम्मद बिन हनफ़िया के।[2]जो किसी मजबूरी या मसलहत से मदीने में छोड़ दिये गए और उम्मे हानी बिन्ते अबू तालिब पीराना साली (बुढ़ापे) की वजह से न जा सकी थीं। पस उनके अलावा औलादे अबू तालिब में से कोई भी हुसैन[अ0स0] से जुदा नहीं हुआ और एक तारीख़ी हक़ीक़त है कि हुसैन[अ0स0] के साथ बनी हाशिम में से सिवा औलादे अबू तालिब के किसी और सिलसिले का एक शख़्स भी मैदाने करबला में नज़र नहीं आता।

इस तर्ज़े अमल से भी कि आप ने सिर्फ़ अपने घर वालों को साथ लिया। साफ़ नुमायाँ था कि आप जंग के इरादे से रवाना नहीं हो रहे हैं। मदीने से बाहर निकलने के बाद इमाम हुसैन[अ0स0] ने मक्क–ए मुअज़्ज़िमा की तरफ़ रूख़ किया। इस लिए कि मक्के में अरब के क़दीम रिवायात और नीज़ इस्लाम के मख़सूस तालीमात की बिना पर किसी जानवर तक का क़त्ल बल्कि घास तक का भी उखाड़ना जाएज़ नहीं।[3]इमाम हुसैन[अ0स0] ने यहाँ पहुंच कर अपने को ज़ाहरी तौर से एक महफ़ूज़ आग़ोश की पनाह में डाल दिया और यहाँ रह कर आप ख़ामोशी की ज़िन्दगी गुज़ारने लगे। न उमूरे सलतनत से ग़रज़ और न मुहम्माते मुल्की (मुल्क के कामों) से कोई तअल्लुक़। आप ने मक्का पहुँच कर भी न कहीं ख़ुतूत व रसाएल रवाना किये और न मुख़तलिफ़ अतराफ़ व जवानिब (आस पास) के लोगों को अपनी नुसरत की तरफ़ दावत दी। यह भी आप के मक़सद के तऐयुन के लिए आपके किरदार का एक अहम जुज़ है। आप का मक्के में वुरूद (दाख़िल) शबे जुमा 3/शाबान सन 60 हिजरी को हुआ।[4]उस वक़्त आपकी ज़बान पर क़ुरआन की यह आयत थी।[5]

---

[1]तबरी जि/6, पेज/196
[2]अख़बारूत तुवाल पेज230, तबरी जि/6, पेज/190
[3]सही बुख़ारी जि/2, पेज/40, सही मुस्लिम जि/1, पेज/438–439
[4]तबरी जि/6, पेज/215, इरशाद पेज/208
[5]तबरी जि/6, पेज/220

यह भी "وَلَمَّا تَوَجَّهَ تِلْقَاءَ مَدْيَنَ قَالَ عَسَى رَبِّى أَنْ يَہْدِيَنِى سَوَاءَ السَّبِيلْ" हज़रत मूसा[अ०स०] के वाक़ेये से मुतअल्लिक़ है जब उन्होंने मदायन (इराक़ का शहर) में पनाह ली थी।

आप ने मक्के में पहुँच कर शेअ्बे अली में क़याम किया। अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर आपसे दो एक दिन पहले पहुंच चुके थे। उनके मक्के में अचानक पहुँचने के साथ लोग उनके गिर्द जमा हो गए थे और उन्हें एक मरकज़ियत सी हासिल हो गई थी लेकिन जब हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] के मक्का में पहुँचने के साथ लोगों ने अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर को छोड़ दिया और अब वह हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] के गिर्दो पेश रहने लगे। इस बात से अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर को यकगूने नागवारी पैदा हुई और उन्हें अन्दाज़ा हो गया कि हुसैन[अ०स०] की मौजूदगी में उनका कोई असर क़ायम नहीं हो सकता। मसलहते वक़्त की बिना पर वह भी सुबह व शाम दोनों वक़्त इमाम हुसैन[अ०स०] के पास आने जाने लगे।[1]

जब मुआविया की वफ़ात हुई है तो मदीने में वलीद बिन अतबा बिन अबी सुफ़ियान की हुकूमत थी और मक्के में यहिया बिन हकीम बिन सफ़वान बिन उमय्या और कूफ़े में नोअ्मान बिन बशीर अन्सारी और बसरा में उबैदुल्लाह बिन ज़ियादा गवर्नर था।

मालूम होता है कि हुकूमते दमिश्क़ को यहिया बिन हकीम पर इतमिनान न था चुनाँनचे हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] के मक्के में पहुँचने के बाद यहिया बिन हकीम को माज़ूल (हटा) किया गया और अम्र बिन सईद बिन आस बिन उमय्या को गुवर्नर मुक़र्रर किया गया।[2] फिर जब वलीद के तर्ज़े अमल की इत्तेला और शायद मरवान की तरफ़ से रिपोर्ट यज़ीद को पहुँची तो वलीद के बजाए भी उसी अम्र बिन सईद को मुक़र्रर किया गया मगर यह बाद की बात है। बाद में यह भी ज़ाहिर होगा कि कूफ़े की गवर्नर की पॉलीसी भी हुकूमते दमिश्क़ को नागवार साबित हुई और वहाँ भी तब्दीली की ज़रूरत पेश आई। उसकी वजह सिर्फ़ यह थी कि इमाम हुसैन[अ०स०] के मुआमिले में यज़ीद का तर्ज़े अमल इतना ग़ैर मुन्सिफ़ाना और जारिहाना था कि उसे अपने मक़सद की तकमील के लिए आदमी न मिलते थे। और ख़ुद उसके गवर्नर उसके अहकाम की तामील (हुक्म पर अमल) उसकी ख़्वाहिश के मुताबिक़ न कर सकते थे।

---

[1] अख़बारूत तुवाल पेज/230
[2] अख़बारूत तुवाल पेज/230

सूरते हाल से ज़ाहिर है कि उम्माले हुकूमत (सरकारी मुलाज़िम) में से जो भी हुसैन[अ0स0] के साथ ज़रा मराआत (नर्मी) बरतने का रूजहान ज़ाहिर करता था वह फ़ौरन हटा दिया जाता था। तलाश थी ऐसे लोगों की जो अहलेबैते रसूल[स0अ0] के साथ किसी मराआत (नर्मी) की जगह अपने दिल में न रखते हों। उसके बाद भी क्या कहा जा सकता है कि हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के साथ जो कुछ भी तशद्दुद हुआ उसकी ज़िम्मेदारी यज़ीद पर नहीं बल्कि उम्माले हुकूमत पर थी?

उस वक़्त इमाम हुसैन[अ0स0] का मक्क–ए–मुअज़्ज़मा में क़याम एक पनाहगज़ीं (Refugee) की हैसियत से था और यही मशवरा था जो आपको मदीने की रवानगी के वक़्त आपके भाई मुहम्मदे हनफ़िया ने दिया था जिसे आपने पसन्द किया था। मक्के में हालात के नासाज़गार होने की सूरत में क्या होगा? उस के मुतअल्लिक़ मुहम्मद बिन हनफ़िया की राय यह थी कि अगर वहाँ के हालात आपके मुवाफ़िक़ न हों तो आप निकल जाईयेगा, रेगिस्तानी सहराओं में और पहाड़ों के दामनों में, और एक शहर से दूसरे शहर में मुन्तक़िल होते रहियेगा। यहाँ तक कि लोगों के हालात का आख़िरी नतीजा सामने आये और उस वक़्त कोई क़तई राय क़ायम कीजिये।[1]

आपका क़याम मक्के में ज़ाहरी तौर पर मुस्तक़िल हैसियत रखता था और कोई ख़ास मक़सद आपके पेशे नज़र नहीं था। सिवा एक पुर अमन ज़िन्दगी के जिसे "जियो और जीने दो।" ही के लफ़्ज़ों में अदा किया जा सकता है। यहाँ आप ने न तो अपनी मुवाफ़िक़त में कोई अस्करी (फ़ौजी) ताक़त फ़राहम की, और न जमहूर (Public) को यज़ीद के ख़िलाफ़ मुशतइल किया। तक़रीर और तहरीर किसी हैसियत से भी ऐसी कोई कोशिश साबित नहीं की जा सकती।

[1]इरशाद पेज/207–208, तबरी जि/6, पेज/161

अट्ठारहवाँ बाब

दावते अहले कूफ़ा और सिफ़ारते मुस्लिम बिन अक़ील

कूफ़े की दाग़बेल फ़ुरात और हीरा के बीच में उस वक़्त हुई जब सन 14 हिजरी से सन 16 हिजरी तक क़ादसिया और दूसरे महाज़ों पर ईरानियों के मुक़ाबले में फ़ुतूहात के बाद[1] मुसलमानों की फ़ौज ने इराक़ में सुकूनत इख़्तियार की और मदाएन की आबो हवा उनको रास न आई और सईद बिन अबी विक़ास की हिदायत के मातहत यह जगह तलाश की गई और यहाँ मस्जिद और मुसलमानों के क़याम के लिए मकानात की बुनियाद डाली गई।[2]

सन 17 हिजरी में सअ्द बिन अबी विक़ास अपनी फ़ौज के साथ मदाएन में मुन्तक़िल हुए और इस जगह आकर मुक़ीम हुए।

कूफ़ा, अरबी ज़बान में उस जगह को कहते हैं जहाँ संगरेज़े और रेग (बालू) मख़लूत (मिली) हों। चूँकि यह जगह इसी क़िस्म की थी। इस लिए इसका नाम कूफ़ा हुआ।[3]

दूसरी तरफ़ समन्दर के किनारे उस ज़मीन पर जो "अरज़ुल हिन्द" (हिन्द की ज़मीन) कहलाती थी एक दूसरे शहर की बिना (बुनियाद) क़ायम की गई जिस का नाम बसरा हुआ और इस तरह इराक़ के उन दोनों शहरों कूफ़ा और बसरा की आबादी बिल्कुल एक साथ शुरू हुई।[4]

इब्तिदाअन सलीटों के मकान बनाये गए और छप्पर डाले गए। फिर उसी साल दोनों जगह आतिश ज़दगी वाक़े हुई(आग लग गई)। जिस में यह मकानात जल गए। तो ईंटों के मकानात की तामीर हुई।[5]

---

[1]जि/4, पेज/148

[2]तबरी जि/4, पेज/142

[3]तबरी जि/4, पेज/189

[4]तबरी जि/4, पेज/149

[5]तबरी जि/4, पेज/1191

कूफ़े की आबादी उसी वक़्त से कि जब वह आबाद किया गया एक लाख फ़ौजियों की थी।[1]

जब जनाबे अमीर[अ0स0] तख़्ते ख़िलाफ़त पर मुतमक्किन (बैठे) हुए और तलहा व ज़ुबैर (आएशा के भानजे) ने आयशा को साथ लेकर आपके ख़िलाफ़ फ़ौज कशी की तो उन्होंने अपनी सरगरमियों का मरकज़ इराक़ को क़रार दिया इस लिए हज़रत अमीर[अ0स0] को उनके तदारूक के लिए इराक़ आना पड़ा और जंगे जमल वाक़े हुई। इस मुक़ाबले में बसरा वालों ने तलहा और ज़ुबैर का साथ दिया था और कूफ़े के लोग हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के साथ रहे। उसके बाद हज़रत अली[अ0स0] ने उसी को अपना पाय–ए–तख़्त (राजधानी) रखा।

बारह रजब सन 36 हिजरी को पहला वह दिन था जब आप कूफ़े में तशरीफ़ लाये। लोगों ने कहा कि क़स्र में क़याम फ़रमाईये जहाँ अब तक हाकिम क़याम किया करते थे। आप ने उसे नापसन्द किया और मक़ामे "रहबा" के एक मकान में सुकूनत इख़्तियार फ़रमाई।[2]

उसके बाद ज़्यादा तर अहले कूफ़ा ही थे जिन्हों ने आपके साथ सिफ़्फ़ीन और नहरवान में भी मुख़ालिफ़ीन का मुक़ाबला किया। इसी लिए वह शिया–ए अली" कहलाये। हालाँकि मज़हबी तौर पर उन में से अक्सर इस मानी में शिया न थे कि वह हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] को ख़लीफ़–ए–बिला फ़स्ल जानते हों और आप के क़ब्ल दूसरे ख़ुलफ़ा को तस्लीम न करते हों। मगर "शिया–ए–बनी उमय्या" के मुक़ाबले में वह अपने को शिय–ए–अली कहना फ़ख़्र समझते थे।

यह वह वक़्त था कि कूफ़ा ऐसे शिअ्याने अहलेबैत से छलक रहा था लेकिन उधर मुआविया का ममालिके इस्लामिया पर तसल्लुत हुआ और कूफ़े पर ज़ियाद बिन अबीह की हुकूमत हुई। इधर अहले कूफ़ा पर मज़ालिम के पहाड़ टूट पड़े और इराक़ की ज़मीन उनके लिए तंग हो गई। जो लोग मुहिब्बे अली[अ0स0] समझे जा सकते थे उनका हर नफ़्स आइन्दा आने वाले ख़तरात की पेशिनगोई करता और हर दक़ीक़ा व सानिया (हर घड़ी) अपने आख़िरी होने का पैग़ाम देता था।

---

[1]तबरी जि/4, पेज/162

[2]अख़बारूत तुवाल, पेज/154

यह सूरते हाल दो एक माह, दो एक साल नहीं बल्कि बीस साल तक क़ायम रही। इस सूरत में नामुमकिन था कि कूफ़े के अन्दर शिय–ए–अली के लिए कोई नुमायाँ हैसियत हासिल रहती बल्कि मारे जाने, सूली पाने और जिला वतन होने के बाद जो बचे खुचे थोड़े से अशख़ास मौजूद थे वह गोशों के अन्दर और पर्दों के पीछे ज़िन्दगी बसर करने पर मजबूर थे और दोस्ती–ए–अहलेबैत का नाम भी ज़बान पर लाना उनके इस्तेहक़ाक़े क़त्ल (यानी क़त्ल किये जाने) की दस्तावेज़ ख़याल किया जाता था और इस शिकन्जे के अन्दर शिइय्यत (शियों) एक मख़सूस क़लीलुत तादाद (कम) जमाअत में मख़्फ़ी (छुपी हुई) हैसियत से मुक़य्यद थी और वह जमाअत इराक़ व हिजाज़ (सऊदी) वग़ैरह के मुख़तलिफ़ शहरों में गुमनामी की ज़िन्दगी बसर कर रही थी। रूउस–ए–अशायर (क़बीले के रईस) और शुयूख़े क़बाएल(सरदार) ज़िम्मेदार व बा एतेबार अशख़ास सब हुकूमते वक़्त के साख़्ता व परदाख़्ता (वफ़ादार) थे। रह गई आम ख़िलक़त जिस पर इन्क़ेलाबात का दारोमदार होता है वह बिला इस्तेसना (बग़ैर फ़र्क़ के) हर मुल्क में "हर कसे सिक्का ज़नद ख़ुतबा बनामश ख़्वानन्द।" के मुताबिक़ हवा के रूख़ पर उड़ने वाली और ज़माने के ग़ैर मामूली हवादिस से तेज़ी के साथ रंग बदलने वाली हुआ करती है। उन में एक ऐसा अचानक वाक़ेया जिस में जोश पैदा करने की सलाहियत हो वह इन्क़ेलाब पैदा कर सकता है। जो बरसों की दावते तबलीग़ पैदा नहीं करती। उसके नमूने हुकूमतों के तग़ैय्युर व तबद्दुल (बदलना) और सलातीन (बादशाहों) के अज़ल (बेकार) व नसब (बुत) की सूरत में हमेशा नज़र से गुज़रते रहते हैं और वह अक्सर उसी क़िस्म की नागहानी सूरतों का नतीजा होते हैं।

बेशक बीस साल तक सूरते हाल एक तरह रहने का सबब यह था कि उस मुद्दत में कोई ताज़ा हादिसा रूनुमा नहीं हुआ जो रूजहानाते तबई से टकरा कर उनको सैलाब की तरह किसी ख़ास तरफ़ मुतवज्जेह कर सके।

सन 60 हिजरी के रजब का महीना था जब मुआविया ने इन्तेक़ाल किया और उनका नामज़द कर्दा जानशीन उनका बेटा यज़ीद हुआ। ऐसे ही मवाक़े वह होते हैं जो पुरसुकून फ़िज़ा में तमुव्वुज (हलचल) और मुतमइन सतह में तलातुम (शोर) पैदा कर दते हैं। फ़ितरतन हर शख़्स साबिक़ फ़रमाँरवा के बाद अपने जदीद वालि–ए–सलतनत के मालिक की साबिक़ा ज़िन्दगी और उसके अख़लाक़ व आदात और ज़ाती खुसूसियात के मुतअल्लिक़ मालूमात हासिल

करने में लज़्ज़त महसूस करता है और बयक वक़्त मुख़तलिफ़ हल्क़ों में यही चर्चे शुरू हो जाते हैं।

यज़ीद के अख़लाक़ व आदात, उसकी मय नोशी (शराब पीना) और शहवत रानी (सेक्सी मिज़ाज), उसकी तिफ़लाना जवानी (बचपन भरी) और लहव लाअ्ब (नाच गाने) में सरगर्मी, अहकामे शरीया से आज़ादी और नफ़सानी ख़्वाहिशों की परस्तारी ऐसी न थी जो मख़फ़ी (छुपी हुई) हैसियत रखती हो।

जानने वालों को याद आ गया और अन्जाम का नक़्शा आँखों में फिरने लगा और न जानने वालों को पूछ गछ में मालूम हो गया कि हमारा होने वाला ख़लीफ़ा व मालिके सलतनत इन सिफ़ात व आदात का शख़्स है।

इसका नतीजा यह था कि बिला तख़्सीस (फ़र्क़) फ़िरक़ा व मज़हब एक आम बेचैनी, इज़्तेराब और नफ़रत व बेज़ारी ख़ल्क़े ख़ुदा में फैल गई और उसी के साथ आँखें गर्दिश करने लगीं कि कौन है जो इस सख़्त वक़्त पर काम आये और वक़्त की ज़िम्मेदारियों को अपने काँधे पर उठा कर मिल्लते इस्लामिया को इस बदकिरदार ख़लीफ़ा से छुटकारा दिलाये।

इसी के साथ यह ख़बरें भी मुशतहर (फैल) हुईं कि हुसैन बिन अली[अ0स0] ने यज़ीद की ख़िलाफ़त तस्लीम करने से इन्कार कर दिया है। और वह इसी लिए मदीने से हिजरत करके मक्क–ए–मुअज़्ज़मा आ गए हैं और यह तय कर लिया है कि जो कुछ भी हो यज़ीद की बैयत न करेंगे। उस वक़्त दोस्ताने अली[अ0स0] की उस क़लील जमाअत को जो बीस बरस की तवील मुद्दत तक तरह तरह के सब्र आज़मा मसाएब बर्दाश्त करते करते आजिज़ आ चुकी थी और हर आन हज़रते अहदियत की जानिब से कशाइश (सख़तियों से निजात) की मुन्तज़िर थी अपनी मायूसियों की मुद्दत से छाई हुई तारीक घटा में उम्मीद की शुआयें नज़र आने लगीं और उनके ज़मीर ने आवाज़ दी कि इस मौक़े से बेहतर कोई मौक़ा न मिलेगा और इस वक़्त का सुकूत (ख़ामोशी) ख़ुद कुशी का मुरादिफ़ (बराबर) होगा।

यह सोच कर वह सब सुलैमान बिन सुरदे ख़ेज़ाई सहाबिये रसूल[स0अ0] के घर में मुजतमा (जमा) हुए। सिन रसीदा और तजुर्बेकार सुलैमान ने जो पैग़म्बरे ख़ुदा की आँखें देखे हुए और हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के साथ मारके झेले हुए थे मजमे को इन अलफ़ाज़ में मुख़ातब कियाः

''आपको मालूम होना चाहिए कि मुआविया का इन्तेक़ाल हुआ और इमाम हुसैन[अ0स0] ने यज़ीद की बैयत से इन्कार किया है और वह मक्क–ए–मुअज़्ज़मा

चले गए हैं। आप लोग उनके और उनके पिदरे बुज़ुर्गवार के शिया हैं। अगर आप इस बात का यक़ीन रखते हैं कि उनकी नुसरत व मदद में और उनके दुश्मनों से जंग में कोताही न होगी तो बिस्मिल्लाह, उनको ख़त लिखये और अगर सुस्ती और कमज़ोरी का अन्देशा हो तो बराए ख़ुदा एक शख़्स को फ़रेब देकर उसकी जान को ख़तरे में न डालिये।"[1]

अलफ़ाज़ से ज़ाहिर है कि सुलैमान एक मुक़र्रिर की तरह गरजते बरस्ते अलफ़ाज़ से वक़्ती जोश को उभार कर अपने मक़सद को हासिल करना नहीं चाह रहे हैं बल्कि वह ख़ुद मजमे से उसके मौजूदा जोशो वलवले की आख़िरी थाह और मौक़–ए–इक़दाम (मौक़ पर कारवाई) पर उसकी इन्तेहाई कारफ़रमाई का जाएज़ा लेना और उसी के साथ उनको मौक़े की नज़ाकत और आइन्दा के ख़तरात का अन्दाज़ा करा देना चाहते हैं। मगर यह अम्र फ़ित्री (नेचुरल बात) है कि जज़बात की तुग़यानी (बहाव) में इन्सान को अपनी ताक़त का अन्दाज़ा मुशकिल से होता है और वह अक्सर अवाक़िब की फ़िक्र और सख़्त मवाक़े पर अपने सिबात व इस्तेक़लाल (साबित क़दमी) की तशख़ीस (जांचने) में ग़लती कर जाता है। मजमे के अन्दर उनके बढ़ते हुए जोश में सुलैमान के अल्फ़ाज़ ने वह काम किया जो पानी का छींटा भड़कते हुए आग के शोलों में। एक मर्तबा सब बोल उठे, नहीं, नहीं, हम यक़ीनन उनके दुश्मनों से जंग करेंगे और अपने को हज़रत के क़दमों पर निसार कर देंगे।[2]

यह जीमयत कितनी थी? इसका अन्दाज़ा इस से हो सकता है कि वह किसी मैदान या आली शान क़स्र के वसीअ् सहेन में नहीं बल्कि अरबी साख़्त के मुख़तसर मकानात में से जिनके नमूने आज तक अरबिस्तान में नज़र आते हैं। एक मकान यानी सुलैमान बिन सुर्द के घर में मुजतमा (जमा) हो गई थी। फिर उन में भी यह यक़ीन नहीं किया जा सकता कि वह सब सच्चे और रासिख़ुल (मज़बूत) अक़ीदा हज़रत अली[अ०स०] को वसी–ए–रसूल[स०अ०] और इमामे बरहक़ समझने वाले शिया ही थे।

मज़कूर–ए–बाला (ऊपर बयान किए हुए) सवाल व जवाब के अलफ़ाज़ में बेशक सच्चाई का जौहर नज़र आ रहा है और वह यक़ीनन बोलने वालों के बातनी ज़मायर (ज़मीरों) की मुख़लिसाना तरजुमानी कर रहे हैं। लेकिन उन में

---

[1]तबरी जि/6, पेज/197, इरशाद पेज/208

[2]तबरी जि/6, पेज/197

से हर शख़्स आने वाले नागहानी इन्क़ेलाबात का कहाँ तक मुक़ाबला कर सकेगा? इसका फ़ैसला मुस्तक़्बिल ही के हाथ है।

सुलैमान बिन सुरद की हुज्जत तमाम हो चुकी थी। चुनाँनचे इमाम हुसैन अ० के नाम बाईं उनवान लिखा गया।

"यह ख़त है हुसैन बिन अली[अ०स०] की तरफ़ सुलैमान बिन सुर्द, मुसय्यब बिन नजबा, रिफ़ाआ बिन शद्दाद, हबीब बिन मज़ाहिर और दीगर दोस्तों की तरफ़ से मोमिनीन व मुसलमीन अहले कूफ़ा में से।" उसके बाद मुआविया के इन्तेक़ाल और यज़ीद की वली अहदी पर अपने ख़यालात का इज़हार किया गया था। फिर लिखा था कि हमारे सर पर कोई इमाम नहीं है। लिहाज़ा आप तशरीफ़ लाईये। शायद आपकी वजह से हम हक़ की नुसरत पर यक दिल हो सकें। और दमिश्क़ का गवर्नर नोमान बिन बशीर दारूल अमारा में मौजूद है मगर हम उसके साथ नमाज़े जुमा में शरीक नहीं होते। न ईदगाह जाते हैं। अगर हम को ख़बर मालूम हो जायेगी कि आप तशरीफ़ ला रहे हैं तो हम उसको यहाँ से लिकाल कर शाम जाने पर मजबूर कर देंगे। वस्सलाम।

इस ख़त को अब्दुल्लाह बिन सबीअ् हमदानी और अब्दुल्लाह बिन वाल के हाथ रवाना किया गया और यह सब से पहला ख़त था जो इमाम हुसैन[अ०स०] को मक्क–ए–मुअज़्ज़मा में दसवीं माहे रज़मान को मिला। जीमयत मुन्तशिर (मजमा छटा) हुई और अब उन में से हर एक ने अपने हल्क़–ए–असर में इस तहरीक को फैलाना शुरू किया और दो ही दिन के अरसे में 53 अर्ज़दाश्तें (ख़ुतूत) तैयार हो गईं जो एक दो तीन चार आदमियों के दस्तख़त से थीं और यह सब खुतूत क़ैस बिन मुस्हर सैदावी और अब्दुर्रहमान बिन अब्दुल्लाह बिन कुदन अरहबी और अम्मार बिन उबैद सलूबी के हाथ रवाना किये गए।[1]इसी इज़्तेराब और रूहानी तलातुम के सबब जो यज़ीद की ख़िलाफ़त के बाइस आम तौर पर पैदा हुआ था और जिस में किसी मज़हब व मसलक का इफ़्तेराक़ न था। उन हज़रात की मज़कूर–ए–बाला तजवीज़ का हर तरफ़ ख़ैर मक़दम किया गया और वह लोग जो शिइय्यत का जज़्बा न रखते थे वह भी ख़ास हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] के साथ किसी अक़ीदत की वजह से नहीं बल्कि इस ख़याल से कि यज़ीद ऐसे शराबख़्वार व फ़ासिक़ से आप यक़ीनन बेहतर हैं। इस तजवीज़ के गर्मजोशी से मुअय्यद (ताईद करने वाले) नज़र आने लगे जिसको देख कर उन अफ़राद को जो हक़ीक़तन इस तजवीज़ के मुहर्रिक

[1]तबरी जि/6, पेज/197

(जुड़े) थे यह यक़ीन पैदा हो गया कि राए आम्मा (आम राय) हमारे साथ है लेकिन यह फ़रेबे नज़र (आँखों का धोखा) था। आम ख़िलक़त इस तहरीक से हमदर्दी में वैसी ही थी जैसे आँधी के रूख़ पर उड़ते हुए परिन्द। इस ग़लत फ़हमी का यह नतीजा हुआ कि या तो पहले ख़त के यह अल्फ़ाज़ कि ''शायद ख़ुदा आपके ज़रिये से हमारी शीराज़ा बन्दी करे।'' बीम व रजा (ख़ौफ़ व उम्मीद) का इज़हार कर रहे थे। या अब दो ही रोज़ के बाद जो ख़त लिखा गया उस में पुर ज़ोर अल्फ़ाज़ सर्फ़ किये जाने लगे कि ''तशरीफ़ लाइये जल्द, इस लिए कि लोग आपके मुन्तज़िर हैं और आपके सिवा किसी की इमामत तस्लीम करने पर आमादा नहीं हैं। लिहाज़ा जल्दी कीजिये, जल्दी। वस्सलाम।'' इस ख़त को हानी बिन हानी सबीई और सईद बन अब्दुल्लाह हनफ़ी के ज़रिये रवाना किया गया।[1]

राय अम्मा की कूव्वत और हवा के मौजूदा रूख़ का इस से अन्दाज़ा हो जाता है कि वह सरदाराने क़बाएल जो यज़ीद के ख़ास आदमी थे और जिन्हें इस तहरीक के मुहर्रिकीन ने अपने साथ नहीं लिया था उन्होंने भी सियासत का तक़ाज़ा यही समझा कि इस आवाज़ में आवाज़ मिला दें। चुनाँनचे इजतिमाई कारवाईयों से अलाहिदा और इस ख़त के बाद जो अपने मज़मून के एतेबार से बिल्कुल आख़िरी कहा जा सकता है। एक ख़त कूफ़े से और लिखा गया जिसके अल्फ़ाज़ यह थे:

''खेतियाँ लहलहा रही हैं, मेवे दरख़्तों में रसीदा हैं और तालाब लबरेज़, पस जब आप चाहें तशरीफ़ लायें। एक ऐसे लशकर की जानिब जो आपकी इमदाद के लिए बिल्कुल आरास्ता मौजूद है। वस्सलाम।''

इस पर मुन्दर्जा ज़ैल सात आदमियों के दस्तख़त थे। शबस बिन रबई, हिजार बिन अबजर, यज़ीद बिन हारिस, यज़ीद बिन रवीम, अज़रह बिन क़ैस, अम्र बिन हज्जाज ज़ुबैदी, मुहम्मद बिन उमैर तमीमी।[2]

यह ख़त लबो लहजे के ऐतिबार से गुज़िश्ता ख़ुतूत से बिल्कुल मुख़तलिफ़ था इनमें अपनी दोस्ती व इख़लास के इज़हारात थे और हिदायत की ख़्वाहिश थी। यहाँ माद्दी ताक़त की पेशकश और मुनाफ़े दुनिया की नुमाइश थी जो एक तरफ़ लिखने वालों की माद्दी ज़हनियत की तरजुमान और दूसरी तरफ़ मकतूब अलैह (लिखने वाले) के मिज़ाक़े तबियत (मिज़ाज) से अजनबियत और

---

[1]तबरी जि/6, पेज/197

[2]तबरी जि/6, पेज/197, इरशाद पेज/210

ना शिनासी की दलील है। चुनाँनचे इस आख़िरी ख़त के लिखने वाले तक़रीबन सब के सब वाक़ेय–ए–करबला में हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] से लड़ने के लिए मौजूद थे। मुमकिन है कि इस आख़िरी ख़त के लिखने में कोई ख़ास साज़िश मुज़मर (पोशीदा) हो और अगर ऐसा नही तो उससे इस मौक़े की राय अम्मा (आम राय) का अन्दाज़ा होता है कि उन लोगों को भी यह ज़रूरत पड़ गई थी कि हम भी इस तहरीक में शामिल हो कर आइन्दा के लिए अपने मुस्तक़्बिल को महफ़ूज़ बना लें। दीनवरी का बयान है कि यह सब क़ासिद और उनके साथ के खुतूत ताबड़ तोड़ दो दिन के अन्दर इमाम हुसैन[अ०स०] को पहुँचे और उसके बाद चन्द दिन में तो खुतूत की तादाद इतनी हो गई कि उन से दो खुरजियाँ भर गईं।[1]

गुज़िश्ता तक़रीर में सुलैमान बिन सुर्द की और उसके बाद के वाक़ेयात उन सब के मुतालिये से हस्बे ज़ैल नताएज साफ़ तौर पर बरामद होते हैं।

1. इमाम हुसैन[अ०स०] की बैयते यज़ीद से किनारा कशी और मदीने से रवानगी किसी ख़ारजी तहरीक और अहले कूफ़ा के साथ किसी मुतक़द्दम–ए–गुफ़्त व शुनीद (होने वाली बात चीत) का नतीजा न थी।
2. हज़रत को मदीने से रवानगी के मौक़े पर ज़ाहरी असबाब की बिना पर यह ख़याल भी न था कि आप कूफ़े तशरीफ़ ले जायेंगे।
3. आप ने मक्के पहुँचने के बाद भी खुद अपनी जानिब से किसी क़िस्म की तहरीक अहले कूफ़ा से नहीं की और न वहाँ अपने मक़ासिद की तबलीग़ के लिए कोई ख़त भेजा।

मगर अब जबकि कूफ़े से खुद यह आवाज़ें बलन्द हैं कि आप हमारे यहाँ आइये हम आप की नुसरत व मदद के लिए तय्यार हैं। हम आपको इमाम जानते हैं और आप से हिदायत के तालिब हें। यह दो एक आवाज़ें नहीं बल्कि कूफ़ा भर यही चिल्ला रहा है। चाहे वह दोस्त हों या दुश्मन।

यहाँ तक कि दो खुर्जियाँ (बोरियाँ) खुतूत से भर गईं जिसका ज़िक्र पहले हो चुका है। अब मौक़े की हालत का तक़ाज़ा क्या है? हज़रत इमाम हुसैन को उन खुतूत के बाद क्या करना चाहिए?

सूरते हाल यह है कि आप यज़ीद से बैयत जैसा कि अब तक नहीं की आइन्दा भी करना नहीं चाहते। मदीने में क़यामे यज़ीद के उस तहदीदी (सख़्ती भरे) हुक्म की बिना पर कि आप से बैयत ली जाये या क़त्ल कर दिये जायें,

---

[1]अख़बारूत तुवाल, पेज/231

नामुमकिन हो चुका है। मक्क–ए–मुअज़्ज़मा में क़याम वक़्ती हैसियत से अमन का ज़रिया सही लेकिन ताबके? जबकि यज़ीद के अख़लाक़ व आदात और अहकामे मज़हबी के मुक़ाबले में खुद सरी से यह तवक़्क़ो बईद थी कि वह मक्क–ए–मुअज़्ज़मा के मज़हबी एहतेराम का लिहाज़ करेगा बल्कि यह ख़तरा बहुत क़रीब था कि मक्के में आप का क़याम इस का बाइस होगा कि वहीं मक्के में आप के ख़िलाफ़ फ़ौज कशी हो और मक्के में न तो कोई फ़ौजी ताक़त ऐसी है जो आपकी हिफ़ाज़त कर सके और न आप मक्के में क़याम करके हरमे खुदा के अन्दर खूँरेज़ी होने के खुद बाइस बनना चाहते हैं।

इसके अलावा बावजूदेकि रसूल के नवासे की महाजिरत (सफ़र) मदीने से मशहूर हो चुकी है मगर ''ताएफ़'' हो या ''यमन'', ''बसरा'' हो या ''यमामा'' कहीं से कोई आवाज़ ऐसी बलन्द नहीं होती कि हम आपकी मदद के लिए हाज़िर हैं और आपकी हिफ़ाज़त के लिए आमादा।

ऐसे सख़्त और नाजुक मौक़े पर अरब के आबाद तरीन ख़ित्त–ए मुल्क (इराक़) और उसके भी अहम मरकज़ (कूफ़े) से यह तहरीक होती है कि आप यहाँ तशरीफ़ लायें हम आपकी हिफ़ाज़त व हिमायत के लिए हर तरह तैयार हैं, और सिर्फ़ मामूली सी तहरीक नहीं बल्कि पचपन अर्ज़दाश्तें और दो खुरजीन भर के खुतूत और सात क़ासिद यके बाद दीगरे रवाना किये जाते हैं और लिखने वालों में बहुत ऐसे अशख़ास भी हैं जिनकी मुहब्बत पर आपको भरोसा है। जैसे हबीब इब्ने मज़ाहिर, सुलैमान बिन सुरदे, रिफ़आ बिन शद्दाद वग़ैरह। इन हालात में ज़ाहिर है कि इमाम हुसैन[अ०स०] को क्या करना चाहिए था। क्या आपके लिए मुनासिब था कि इस दावत को मुस्तरद (ठुकरा) कर देते?

हक़ीक़त यह है कि मक्क–ए–मुअज़्ज़मा के क़याम की सूरत में भी हज़रत का शहीद होना यक़ीनी था जैसे अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर पर इसी मक्के में फ़ौज कशी हुई और वहीं क़त्ल किये गए। इसी तरह आप पर भी फ़ौज कशी होती और यहीं महसूर हो कर आपको शहीद होना पड़ता। इस सूरत में जबकि अहले कूफ़ा की जानिब से इतने इसरार व ताकीद के साथ आपको दावत दी जा रही थी और आपकी नुसरत का वादा किया जा रहा था, आप इस दावत को ठुकरा कर मक्के में क़याम करते और शहीद किये जाते तो यही लोग जो आप पर अब एतेराज़ करते हैं कि आप कूफ़े क्यों गए? यही कहने उठ खड़े होते कि यह कौन सी अक़्ल मन्दी थी कि एक इतने बड़े ख़ित्ते और

वाद–ए नुसरत को रद कर दिया जहाँ कि लोग आपके वालिदे बुज़ुर्गवार की भी नुसरत कर चुके थे और खुद आपकी भी मुहब्बत का दम भरते थे।

उस वक़्त बजानो दिल (दिलो जान से) आपकी हिमायत का वादा कर रहे थे और सैकड़ों अर्ज़दाश्तें भेज कर आप से क़यादत व हिदायत के तालिब थे। और नादिर मौक़े को हाथ से देकर मक्का में क़याम रखा जहाँ कि ज़मीन बे आबो गियाह (बे पानी व सबज़ा), जहाँ के रहने वाले पस्त हौसला व बे उमंग और जहाँ की फ़िज़ा बेमहरो वफ़ा, यहाँ तक कि खुद भी क़त्ल हुए और मक्क–ए मुअज़्ज़िमा की हुरमत को भी बरबाद कराया। इन सूरतों में ज़ाहिर है कि अक़्ल व तदब्बुर का इक़तिज़ा (तक़ाज़ा) यही था कि उन बुलाने वालों की आवज़ पर लब्बैक कही जाये। उनकी नुसरत के वादों को आज़माया जाये और अगर वह सच्चे न भी साबित हों तब भी उन पर इतमामे हुज्जत किया जाये।

बेशक थे ऐसे लोग जो आपको जाने से मना करते थे और उनका ख़याल था कि इराक़ वालों के वादे का कोई एतेबार नहीं मगर वह इस पहलू को नज़र अन्दाज़ किये हुए थे कि मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा में आपका क़याम आपको क़त्ल से बचा न सकता था बल्कि हक़ीक़तन अगर मवाज़ना (मुक़ाबला) किया जाता तो मौजूदा हालात के लिहाज़ से मक्के में क़याम की सूरत में आपका क़त्ल किया जाना यक़ीनी और कूफ़े की रवानगी की सूरत में मशकूक था इस लिए कि ज़ाहरी असबाब व इलल (सबब) के मा तहत अहले कूफ़ा के मवाईद (वादों) के ग़लत होने का कोई सुबूत नहीं था बल्कि यह ख़याल सिर्फ़ उनकी ज़ाती उफ़तादे तबा (मिज़ाज) के मुताअल्लिक़ एक ग़ैर मुतयक़्क़न (ग़ैर यक़ीनी) हुक्म बल्कि बद गुमानी की हैसियत रखता था। इस सूरत में अगर आप मक्के में शहीद हो जाते तो दुनिया के अन्दर आपकी शहादत से कोई हमदर्दी का जज़्बा पैदा न होता लेकिन अब जबकि अहले कूफ़ा की इन तमाम ख़्वाहिशों पर लब्बैक कहते हुए नौए इन्सानी के इतने अफ़राद की दरख़्वास्तों को मन्ज़ूर करते हुए रवाना हो रहे हैं तो अब अगर आप शहीद भी हो गए तो एक बड़े इन्सानी फ़र्ज़ को अदा करते हुए और अख़लाक़ व मुरव्वत की एक आला मिसाल क़ायम करते हुए और कूफ़े के लोगों पर हुज्जत भी तमाम फ़रमाते हुए और हिफ़ाज़ते खुद इख़्तियारी के उसूल पर बहद्दे इम्कान अमल करते हुए और फिर अपने को मक्के से एलाहिदा (अलग) करके मक्के के एहतेराम को भी पूरे तौर से महफ़ूज़ करते हुए।

इसी लिए इमाम ने उन लोगों के जवाब में जो आपको इराक़ जाने से मना करते थे जैसे अब्दुल्लाह बिन अब्बास वग़ैरह कभी यह नहीं फ़रमाया कि मुझे इराक़ के लोगों पर इतमीनान है और अगर मैं वहाँ जाऊँगा तो ज़रूर वह मेरी मदद करेंगे, हरगिज़ नहीं, बल्कि आप ने ज़्यादा तर अहले इराक़ के मुतअल्लिक़ उनकी बेइतमीनानी और अदमे एतेमाद (भरोसा न होना) के बारे में अपनी राय को महफ़ूज़ रखते हुए अपने इरादा पर मुबहम (पोशीदा) व मुजमल (तफ़सील) तौर पर क़ायम रहने का इज़हार फ़रमाया जैसा कि इब्ने अब्बास से गुफ़्तगू के मौक़े पर[1] और कभी, साफ़ कह दिया कि मैं यहाँ रहूँगा तो भी क़त्ल हूँगा और ख़ान–ए–काबा का एहतेराम मेरे सबब से ज़ायल (बरबाद) होगा जैसा कि एक मर्तबा अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर से फ़रमायाः मुझे मालूम है कि यहाँ एक शख़्स मेंढे (भेड़) की तरह ज़िबह होगा जिस से यहाँ की हुरमत ज़ायल (बरबाद) होगी। मैं वह मेंढा नहीं बनना चाहता।[2]

दूसरे मौक़े पर जब इब्ने ज़ुबैर ने आप से चुपके चुपके कान में कुछ कहा तो इब्ने ज़ुबैर के जाने के बाद अपने कुछ मख़सूसीन से फ़रमाया। जानते हो इब्ने ज़ुबैर ने क्या कहा? इब्ने ज़ुबैर ने कहा कि आप मक्के में क़याम फ़रमाइये और बाहर न जाइये। उसके बाद आप ने फ़रमायाः ख़ुदा की क़सम मैं एक बालिश्त भर मक्के के हुदूद से बाहर क़त्ल किया जाऊँ। मुझे ज़्यादा पसन्द है इससे कि एक बालिश्त भर मक्का के हुदूद के अन्दर मारा जाऊँ। और क़सम ख़ुदा की अगर मैं किसी जानवर के सूराख़ में जा कर रहूँ तब भी यह लोग मुझको वहाँ से बाहर ले आयेंगे। यहाँ तक कि जैसे चाहते हैं मेरे साथ सुलूक करें। ख़ुदा की क़सम मुझ पर यह लोग तअद्दी (ज़ुल्मो सितम) करेंगे जैसे यहूद ने रोज़े शम्बा के बारे में ज़ुल्म व तअद्दी से काम लिया।[3]

इन हालात में ज़ाहरी असबाब की बिना पर आप के लिए कूफ़े को तशरीफ़ ले जाना नागुज़ीर (ज़रूरी) था और आपके लिए अहले कूफ़े की दरख़्वास्त को मुस्तरद (नज़र अन्दाज़) करना मुनासिब न था। फिर भी आप ने बहस्बे ज़ाहिर असबाब (ज़ाहरी हालात की वजह से) एहतेयाती तदबीर यह इख़्तियार फ़रमाई की अपने चचा ज़ाद भाई मुस्लिम बिन अक़ील को जो

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/243

[2]तबरी जि/6, पेज/217

[3]तबरी जि/6, पेज/217

मदीनेसे आपके साथ आये थे।[1] अपना नुमाइन्दा बना कर हालात का मुशाहिदा करने के लिए कूफ़े जाने पर मामूर फ़रमाया।[2]और उसके लिए आप ने एक ख़त अहले कूफ़ा के नाम लिख कर हानी बिन हानी और सईद बिन अब्दुल्लाह के सिपुर्द किया जो अहले कूफ़ा के आख़िरी क़ासिद थे और उन्हें हुक्म दिया कि वह जनाबे मुस्लिम[अ0स0] के आगे रवाना हों।

इस ख़त का मतलब यह था कि हानी और सईद तुम्हारे ख़ुतूत लेकर पहुँचे और यह दोनों शख़्स तुम्हारे सब से आख़िरी क़ासिद (Messenger) हैं जो मेरे पास आये हैं। जो कुछ तुम ने लिखा है मैं ने ग़ौर से पढ़ा और समझा। तुम में से अक्सर का क़ौल यह है कि हमारे सर पर कोई इमाम नहीं है। आप आइये। शायद ख़ुदा हम को आपकी बदौलत हक़ पर मुजतमा (इकट्ठा) कर दे। अच्छा तो मैं तुम्हारी जानिब अपने भाई, चचा के बेटे और मख़सूस मोतमिद (भरोसे मन्द) को रवाना करता हूँ और उन्हें हुक्म देता हूँ कि वह मुझको तुम्हारे हालात के मुतअल्लिक़ इत्तेला दें। अगर उन्होंने इत्तेला दी कि तुम्हारी जमाअत और अहले हल व अक़्द (ज़िम्मेदार अफ़राद) इस अम्र पर जिसे तुम ने अपने ख़ुतूत में ज़ाहिर किया है मुत्तफ़िक़ (एक जुट) हैं तो मैं अनक़रीब तुम्हारी तरफ़ आता हूँ और वाज़ेह रहे कि इमाम के मानी नहीं सिवा इसके कि जो किताबे इलाही पर आमिल (अमल करने वाला) अदालत का पाबन्द, हक़ का मुत्तबेअ् (फ़रमाँबरदार) और अपनी ज़ात को ख़ुदा की मर्ज़ी पर वक़्फ़ किये हुए हो। वस्सलाम।[3]

इस ख़त की इबारत से ज़ाहिर है कि मुस्लिम बिन अक़ील को जंग पर मामूर नहीं किया गया था और न वह कूफ़े की तस्ख़ीर (अपनाने) की ग़रज़ से भेजे गए थे बल्कि वह सिर्फ़ एक नुमाइन्दे की हैसियत रखते थे कि कूफ़े की राय अम्मा और वहाँ के लोगों के हालात व ख़यालात का हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के मुतअल्लिक़ अन्दाज़ा कर के आप को उसकी इत्तेला दें। जनाबे मुस्लिम, क़ैस बिन मुसहर सैदावी और अब्दुर्रहमान बिन अब्दुल्लाह बिन कुदन अरहबी, अहले कूफ़े के नामा बरों (क़ासिदों) के साथ[4]हुक्मे इमाम की तामील में मक्के से रवाना हुए और पहले मदीन–ए–रसूल गए। वहाँ मस्जिदे पैग़म्बर में

---

[1]अख़बारूत तुवाल, पेज/132

[2]तबरी जि/6, पेज/194, अख़बारूत तुवाल पेज/232

[3]तबरी जि/6, पेज/197–198, व पेज/210–211

[4]तबरी जि/6, पेज/298

नमाज़ पढ़ी। फिर अज़ीज़ व अक़ारिब से रूख़्स हुए और क़बीला–ए–क़ैस में से दो अरबों को जो रास्ते से वाक़िफ़ थे अपने साथ लेकर कूफ़े की तरफ़ रवाना हुए। अजब इत्तेफ़ाक़ है कि दोनों रास्ते के माहिर होते हुए जब आप को लेकर चले तो एक दम रास्ता भूल गए। नतीजा यह हुआ कि रेगिस्तान में पड़ गए। प्यास का ग़लबा हुआ और इसी आलम में एक ऐसे मक़ाम पर पहुंच कर जहाँ से दूर मुसाफ़िरों के चलने की सड़क नज़र आ रही थी वह दोनों बिल्कुल बेहाल हो गए। उन्होंने हाथ से इशारा कर के सड़क का पता दिया और फिर उन में से एक[1] या दोनों[2] गिर कर हलाक हो गए। जनाबे मुस्लिम और उनके साथियों की हालत भी बहुत तबाह हो चुकी थी। मगर यह उनकी ग़ैर मामूली कुव्वते बर्दाश्त थी कि उन्होंने किसी न किसी तरह अपने को शाहराह तक पहुँचा दिया और बतने ख़ब्त (घाटी) के एक चश्मे पर जिसका नाम मुज़ैइक़ था क़याम करके वहाँ से इमाम हुसैन[अ0स0] की ख़िदमत में ख़त भेजा जिस में आग़ाज़े सफ़र के इस हादसे पर अपने ग़ैर मामूली तअस्सुरात का इज़हार करते हुए लिखा था कि मेरा दिल कूफ़े के सफ़र के लिए किसी तरह आमादा नहीं है मगर दोबारा इमाम के ताकीदी हुक्म ने मजबूर कर दिया और वह कूफ़े की तरफ़ रवाना हुए।[3] कूफ़े पहुँच कर हुक्मे इमाम के मुताबिक़ जनाबे मुस्लिम ने अमन पसन्दी से काम लिया। हाकिम दारुल अमारा (हाकिम का महल) में मौजूद था मगर मुस्लिम ने उससे कोई तअर्रूज़ (छेड़ छाड़) न किया। अगर कोई दूसरा शख़्स होता जिसे शोरिश अंगेज़ी मन्ज़ूर हो तो उसका पहला काम यह होता कि दारुल अमारा (हाकिम का महल) पर क़ब्ज़ा करे मगर मुस्लिम ने अपने अमल से ज़ाहिर कर दिया कि हमें तुम्हारी सलतनत से मतलब नहीं। तुम्हारी हुकूमत से कोई ग़रज़ नहीं। हमें तो सिर्फ़ तालिबाने हिदायत की तलाश और उनकी मज़हबी व अख़लाक़ी इस्लाह मद्दे नज़र है।

मुस्लिम के वुरूदे (दाख़िले) कूफ़ा के मुतअल्लिक़ हालात से अन्दाज़ा होता है कि सुलैमान बिन सुर्द ख़ेज़ाई उस वक़्त कूफ़े में मौजूद न थे वरना मुस्लिम उन ही के मकान पर क़याम करते इस लिए कि वह उनकी ही तहरीक के रूहे रवाँ (ख़ास) और उस जमाअत में सब से ज़्यादा साहिबे वजाहत और ज़ी

---

[1]तबरी जि/6, पेज/194

[2]तबरी जि/6, पेज/198, अख़बारूत तुवाल पेज/232

[3]अख़बारूत तुवाल पेज/232, तबरी जि/6, पेज/198

असर थें मजबूरन मुस्लिम ने मुख़तार बिन अबी उबैदा सक़फ़ी के घर में क़याम किया।[1]

कूफ़े में यह ख़बर तेज़ी के साथ फैल गई और लोग जूक़ दर जूक़ (कसरत से) आप के पास मुलाक़ात के लिए पहुँचने लगे। जब काफ़ी मजमा हो गया तो मुस्लिम ने इमाम हुसैन[अ0स0] का ख़त जो उस जमाअत के नाम था पढ़ कर सुनाया जिसको सुनकर हाज़रीन में काफ़ी जोश के आसार नमूदार हुए। आबिस बिन अबी शबीब शाकरी ने खड़े हो कर हम्दो सनाए इलाही के बाद अपने ज़ाती ख़याल को ज़ाहिर करते हुए कहाः "मुझको आम लोगों के मुतअल्लिक़ किसी इज़हारे राय का हक़ नहीं है और न मुझे यह मालूम है कि उनके दिलों में क्या है और मैं उनकी तरफ़ से वकालत करके आपको धोखे में मुबतिला नहीं करना चाहता मगर मैं वह ज़ाहिर करता हूँ जिसे मैं ने अपने दिल में ठान लिया है। खुदा की क़सम मैं जिस वक़्त भी आप दावत देंगे लब्बैक कहता हुआ हाज़िर हूँगा और आपके हमराह दुश्मनों से जंग करूँगा और उस वक़्त तक शमशीर ज़नी करूँगा कि इस ज़िन्दगी को ख़त्म कर के अपने ख़ुदा से मुलाक़ात करूँ और मेरा मक़सद इससे सिवा रज़ाये परवरदिगार के कुछ न होगा।"

यह तक़रीर ख़त्म होना थी कि हबीब इब्ने मज़ाहिर खड़े हुए और कहने लगे। "मरहबा, जज़ाकल्लाह। कितनी मुख़तसर लफ़्ज़ों में तुम ने हक़ीक़ते हाल को वाज़ेह किया है।" फिर मुस्लिम की तरफ़ ख़िताब कर के कहा। ख़ुदा की क़सम मेरा भी ज़ाती हैसियत से यही ख़याल है जिसको अब्बास बिन अबी शबीब ने अपने लफ़्ज़ों में ज़ाहिर किया। इसी से मिलती जुलती लफ़्ज़ों में सईद बिन अब्दुल्लाह हनफ़ी ने ताईद की जिस के बाद मजमा मुतफ़र्रिक़ (छट गया) हुआ।[2] ख़त के मज़मून की बिना पर उस कारवाई का मक़सद ज़ाहिर है। यानी यह अहदो पैमान इस ग़रज़ से न था कि मुस्लिम कोई जारिहाना इक़दाम करना चाहते थे। और उसके मुतअल्लिक़ यह लोग नुसरत और मदद का वादा कर रहे थे और न मौजूदा सूरते हाल की बिना पर यह ख़याल किसी दिमाग़ में जगह पा सकता था कि चन्द ही रोज़ में तने तनहा मुस्लिम के मुक़ाबले में

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/232, तबरी जि/6, पेज/199 व जि/7, पेज/58, इरशाद पेज/211, उस घर के निशानात ग़ालिबन चौथी हिजरी तक बाक़ी थे चुनानचे अबू हनीफ़ा देनवरी ने लिखा है कि अब यह घर "दारे मुसैय्यब" के नाम से मशहूर है। अख़बारूत तवाल पेज/232, तबरी ने लिखा है। "दारे मुस्लिम बिन मुसैय्यब, के नाम से मशहूर है। तबरी जि/6, पेज/199, दूसरी जगह "दारे मुस्लिम बिन मुसैयब" दर्ज है। तबरी जि/7, पेज/57)

[2]तबरी जि/6, पेज/199

फ़ौज कशी होगी और उसके लिए इस जमाअत को तैयार करना चाहिए। बल्कि यह अहदो पैमान सिर्फ़ इमाम हुसैन[अ0स0] की तशरीफ़ आवरी की पेश निहाद (पेश आने वाले) और उस मौक़े के लिए उन लोगों के अज़ाएम व नीयात (इरादों) के अन्दाज़े के तौर पर था।

मुस्लिम बिन अक़ील के वुरूद की ख़बर कूफ़े में आम तौर पर मशहूर हो ही चुकी थी और उस फ़िज़ा के लिहाज़ से जो इमाम हुसैन[अ0स0] को दावत देने की तहरीक के सिलसिले में इब्तेदा ही से कूफ़े में पैदा हो गई थी और जिस के असबाब वज़ाहत के साथ (साफ़ तौर से) दर्ज किये जा चुके हैं। हर शख़्स ने उस ख़बर का मसर्रत (खुशी) के साथ इस्तेक़बाल किया।

यज़ीद की ख़िलाफ़त से बसबब उसकी सियाह कारियों के बेज़ारी एक तरफ़, हज़रत हुसैन बिन अली[अ0स0] की हर दिलअज़ीज़ी न सिर्फ़ ख़ानदानी वजाहत के बाइस बल्कि अपने अख़लाक़ व कमालात के लिहाज़ से दूसरी जानिब, वह लोग कि जो मुस्लिम बिन अक़ील की तहरीक के मुबल्लिग़ व दाई (दावत देने वाले) थे उनकी ज़ाती वजाहत और तअल्लुक़ात तीसरी तरफ़, और "कुल्लो जदीदुन लज़ीज़। (नई चीज़ का मज़ा)" के तबई क़ानून के मुताबिक़ हर ताज़ा तहरीक में जो लज़्ज़त होती है वह चौथी जानिब इन तमाम असबाब की बिना पर हज़रत मुस्लिम के हाथ पर एक हफ़्ते के अन्दर बारह[1] या अठ्ठारह हज़ार[2] कूफ़ियों ने बैयत की लेकिन क्या यह सब दोस्ताने अली[अ0स0] थे? क्या कूफ़े में ज़ियाद व आले ज़ियाद की बीस साल हुकूमत के बाद जिस में खिंची हुई तलवारें और जल्लादों के हाथ बराबर अपनी सफ़्फ़ाकी दिखाते रहे हों और दस्त व पा (हाथ पैर), सर व ज़बान के क़ता व बुरीद (काटने) का सिलसिला बराबर जारी रहा हो, कूफ़े में इतनी तादाद में अली[अ0स0] के दोस्त मौजूद हो सकते थे? हरगिज़ नहीं। सच्चे शिया तो कूफ़े में पहले ही कम थे और जो थे भी वह मुआविया के क़त्लो ग़ारत के बाद तक़रीबन नीस्तो नाबूद हो चुके थे। उसके बाद थोड़े से छुपे छुपाए अफ़राद बाक़ी हो सकते हैं। वरना जितने थे वह वही अफ़राद थे जो हज़रत अली[अ0स0] को चौथा ख़लीफ़ा तस्लीम करके महज़ साथ होने की वजह से लुग़वी मानी (सिर्फ़ नाम) के एतेबार से शिया कहे जाते थे और वह भी अब ज़्यादा तादाद में बाक़ी न थे। इस सूरत में यह मानना नागुज़ीर है कि मज़कूर–ए–बाला सतही (सामने के) और आरज़ी

---

[1]तबरी जि/6, पेज/194

[2]तबरी जि/6, पेज/211

(वक़्ती) असबाब से जो राय आम्मा हमवार हुई हो उस में कोई वज़न नहीं हो सकता। बेशक जब इस तहरीक के इब्तेदाई मुहर्रिकीन (तहरीक से जुडे हुए) को राय आम्मा की नौइयत समझने में ग़लती हुई हालाँकि वह यहीं के रहे सहे परवरदा और तजुर्बा याफ़्ता थे तो जनाबे मुस्लिम को जो कि यहाँ परदेसी की हैसियत रखते थे, धोखा होना क़ाबिले तअज्जुब नहीं है।

मुस्लिम की तहरीक को चलाने वाले उनकी सदा पर सब से पहले लब्बैक कहने वाले और सब से पहले जलसे में जाँबाज़ी का इक़रार करने वाले और राय अम्मा को हमवार करके मुस्लिम की नुसरत व हिमायत पर आमादा करने वाले उन में से अक्सर बेशक सच्चे, ख़ालिस और मुख़लिस हमदर्द और दोस्त थे और उनका काम यही था कि वह शहर की फ़िज़ा को मुस्लिम के मुवाफ़िक़ बना दें। जिस में उनको बज़ाहिर ख़ातिर ख़्वाह कामयाबी हुई लेकिन आइन्दा के इन्क़ेलाबात कोई दूसरी सूरत पैदा न करेंगे। उसकी ज़िम्मेदारी किसी पर आएद नहीं हो सकती। बेशक उन क़लीलुत तादाद (कम लोग) ख़ालिस दोस्तों ने अपने इक़रार और अहदे जाँबाज़ी पर बेहतरीन तरीक़े से अमल किया और जो कहा था उसे कर दिखाया, जिस के मुशाहदे के लिए मुस्तक़्बिल का इन्तेज़ार करना चाहिए।

जनाबे मुस्लिम बिन अक़ील[अ0स0] को हालात ख़ुशगवार और मुताबिक़े क़ौलो क़रार (बात पर डटे) नज़र आये। इस लिए इमाम हुसैन[अ0स0] को ख़त लिख दिया कि जल्द तशरीफ़ लाईये। हालात साज़गार हैं और अहले कूफ़ा अपने क़ौल व क़रार पर क़ायम हैं।[1] मक़ामी हुकूमत का तर्ज़े अमल उनकी निस्बत रवादार न था। कूफ़े के हाकिम नोमान बिन बशीर ने मिम्बर पर जा कर एक तक़रीर की जिसका मज़मून यह था कि ऐ बन्दगाने खुदा फ़ितना व फ़साद और इफ़तेराक़ से परहेज़ करो। उससे ख़्वाह मख़्वाह जानें जाईंगी, ख़ून बहेंगे और माली तबाहियाँ होंगी जहाँ तक मेरा तअल्लुक़ है मैं जब तक कोई जारिहाना इक़दाम (सख़्त क़दम) मेरे ख़िलाफ़ न हो उस वक़्त तक कोई इक़दाम नहीं करूँगा।[2]कूफ़े में यह ख़बर गर्म थी कि अब बहुत जल्द ही हुसैन बिन अली तशरीफ़ लाने वाले हैं और इस वजह से हर तरफ़ एक ख़ास चहल पहल नज़र आती थी और हल्क़ा हल्क़ा (Grup.Grup) जमाअत दर जमाअत लोग बैठ कर उस पर इज़हारे ख़यालात करते थे और बेचैनी के साथ दीदा

---

[1]तबरी जि/6, पेज/211, अख़बारुत तुवाल पेज/243

[2]तबरी जि/6, पेज/199

बराह (रास्ता देखना) थे मगर कूफ़े के अन्दर एक ऐसी जमाअत मौजूद थी जो इन तमाम मन्सूबों को ख़ास सियाह बना देने पर तुली हुई थी और यह उमवी हुकूमत के ख़ैरख़्वाह वह लोग थे जिन्हें अन्देशा हुआ होगा कि हुसैन बिन अली अ0 के इक़्तेदार के बाद उन्हें अमवाले ख़ल्क़ (लोगों के माल) पर बे जा तसर्रूफ़ (ख़र्च) का मौक़ा बाक़ी न रहेगा। चुनाँनचे उन में से एक शख़्स बनी उमय्या के हलीफ़ (तरफ़दार) अब्दुल्लाह बिन मुस्लिम हज़रमी ने तो नोमान बिन बशीर की मज़कूरा बाला रवादाराना (नर्म) तक़रीर के बाद ही खड़े हो कर कह दिया कि यह आप का तरीक़–ए–कार सही नहीं है और आप कमज़ोरी दिखा रहे हैं जिस पर नोमान ने कहा कि "मैं अल्लाह की इताअत के लिए कमज़ोर साबित हूँ यह बेहतर है इससे कि मासियते इलाही करके ज़ोर आवर साबित हूँ।"[1]यह जवाब नोमान के ज़मीर की साफ़ तरजुमानी कर रहा था जिस के बाद फ़सादी अशख़ास को कुछ कहने का मौक़ा न था। इस लिए यहाँ से जाकर फ़ौरन अब्दुल्लाह बिन मुस्लिम ने [2]यज़ीद के नाम ख़त लिखा कि मुस्लिम बिन अक़ील कूफ़े आये हैं और उनके तरफ़दारों ने उनके हाथ पर हुसैन[अ0स0] की बैयत कर ली है। अगर आप को कूफ़ा अपने हाथ में रखना है तो यहाँ कोई मज़बूत आदमी भेजिये जो आपके फ़रमान के मुताबिक़ अमल कर सके। इस लिए कि नोमान बिन बशीर कमज़ोर शख़्स हैं या वह जान बूझ कर कमज़ोरी दिखा रहे हैं।"

अम्मारा बिन अक़बा और अमर बिन सअ्द ने भी ऐसे ही मज़मून के ख़ुतूत रवाना किये।[3]इन खुतूत के पहुँचने पर यज़ीद ने सरजौन बिन मन्सूर रूमी से मशवरा लिया। यह शख़्स ईसाई था जो मुआविया के ज़माने से मोहकम–ए–ख़िराज (Foreign ministry) में कातिब था।[4] यज़ीद उस वक़्त

---

[1]तबरी जि/6, पेज/199

[2]देनवरी ने इस ख़त लिखने की निसबत मुस्लिम बिन सईद हज़रमी और अम्मारा बिन अक़बा की तरफ़ दी है और कहा है कि यह दोनों यज़ीद बिन मुआविया के जासूस थे। अख़बारूत तुवाल, पेज/233

[3]तबरी जि/6, पेज/199, इरशाद पेज/211–212

[4]अलविज़रा वल किताब पेज/15, चूँकि उस ज़माने में कूफ़ा व बसरा और दमिश्क़ दोनों मरकज़ों में मालियात के मुतअल्लिक़ दो दफ़्तर थे, एक रिआया की मर्दुम शुमारी (Senses) का और उनके वज़ाएफ़ व इनआमात का, यहाँ काम अरबी में होता था और दूसरा आमदनी व ख़र्च के हिसाबात का। यह काम कूफ़ा व बसरा में अब तक फ़ारसी ज़बान में होता था और शाम में यह रूमी ज़बान में लिखा जाता था इस लिए इराक़ में यह दफ़्तर मुजूसियों (यहूदियों) और शाम में ईसाईयों के हाथ में था। चुनानचे उस दफ़्तर का मोहतमिमे आला (इन्चार्ज) दमिश्क़ में सरजौन था जो मुआविया के वक़्त से अब्दुल मलिक बिन मरवान के अहेद तक बराबर इस शोबे का ज़िम्मेदार रहा और उस ग़ुर्रे (डिपार्टमेन्ट) में कि यह काम बग़ैर हमारे हो ही नहीं सकता ऐसा महसूस होने लगा कि वह ख़लीफ़ा तक को ख़ातिर में नहीं लाता। इसी वजह से अब्दुल मलिक के ज़माने में इराक़ और दमिश्क़ के इन दोनों दफ़्तरों को भी अरबी में

तक इब्ने ज़ियाद से ख़फ़ा था क्योंकि उसका ख़याल था कि उसी की वजह से ज़ियाद ने मेरी वलीअहदी से इख़्तेलाफ़ किया था और यह कि शायद मुआविया के बजाए मेरे यह खुद ख़िलाफ़त का उम्मीदवार था इस लिए उसका अब तक यह इरादा था कि वह बसरा की हुकूमत से भी इब्ने ज़ियाद को माज़ूल कर देगा।[1] चुनानचे इब्ने ज़ियाद का नाम सुनते ही यज़ीद ने इन्कार किया और कहा नहीं। वह ठीक नहीं है। किसी और का नाम लो। सरजौन ने कहा। यह बताइये कि अगर मुआविया इस वक़्त ज़िन्दा होते और वह इस वक़्त आप को यही राय देते तो आप कुबूल करते? यज़ीद ने कहा। बेशक उनके कहने को ज़रूर कुबूल करता। यह सुन कर सरजौन ने एक तहरीर निकाली और कहा कि यह मुआविया का फ़रमान है जिस में इब्ने ज़ियाद को कूफ़े का हाकिम मुक़र्रर किया है। वह उसे भेजने न पाये कि इन्तेक़ाल हो गया। अब आप बसरा और कूफ़ा दोनों जगह की हुकूमत उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद के लिए क़रार दे दीजिये।

यज़ीद ने मुआविया की इस तहरीर के मुताबिक़ इब्ने ज़ियाद के नाम ख़त लिखा कि मुझे मेरे शियों ने कूफ़े से खुतूत लिखे हैं कि वहाँ पिसरे अक़ील ने आ कर लशकर जमा करना शुरू कर दिया है ताकि मुसलमानों में तफ़रेक़ा और फ़साद पैदा हो। तुम इस ख़त के पहुँचने के साथ ही उधर रवाना हो और मुस्लिम को क़ब्ज़े में ला कर क़ैद करो, क़त्ल करो या निकाल दो। वस्सलाम।"[2]

क़दीम मुअर्रिख़ (पुराने हिस्टोरियन) "जहशियारी" ने इस ख़त का मज़मून हस्बे ज़ैल लिखा है जिस के पस मन्ज़र में यज़ीद की इब्ने ज़ियाद से नाराज़गी को मलहूज़ (सामने) रखते हुए उस में तहदीदी (सख़्ती भरा) अन्दाज़ ज़्यादा नुमायाँ है।

"मालूम होना चाहिए कि जिस की एक वक़्त तारीफ़ें होती हैं वहीं दूसरे वक़्त सब्बो शत्म (बुरे अल्फ़ाज़) से याद किया जाता है और जिसे सब्बो शत्म

मुन्तक़िल किया गया। चुनानचे 78 हिजरी में हज्जाज बिन यूसुफ़ ने इराक़ के दफ़्तरों से मुजूसियों को निकाल कर उनको अरबी की तरफ़ मुन्तक़िल किया और तक़रीबन उसी ज़माने में अब्दुल मलिक के हुक्म से दमिश्क़ के दफ़्तर की ज़बान अरबी बनाई गई और सरजौन को ओहदे से बरतरफ़ कर दिया गया। (अलविज़रा वल किताब पेज/23–24) सरजौन ने उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद का नाम लिया। सबसे पहले ज़ियाद के मरने के बाद सन 54 हिजरी में उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद को मुआविया ने खुरासान का हाकिम क़रार दिया। उस वक़्त उसकी उम्र 25 बरस की थी। (तबरी जि/6, पेज/66) फिर सन 55 हिजरी में उसे बसरा का हाकिम क़रार दिया। पेज/168)

[1] तबरी जि/6, पेज/194

[2] इरशाद पेज/212, तबरी जि/6, पेज/200

से याद किया जाता है वही एक दम महल्ले तारीफ़ बन जाता है। इस वक़्त एक बड़ा मन्सब तुम्हारे सिपुर्द किया जा रहा है जिस से बढ़ कर तुम्हारे लिए कोई एज़ाज़ नहीं हो सकता और इत्तेफ़ाक़ से हुसैन[अ0स0] की मुहिम तुम्हारे ही दौर और तुम्हारे ही क़लमरूवे (गवर्नरी) ममलिकत के नसीब में आई है और तमाम उम्माले हुकूमत (कार फ़रमाओं) में तुम ही वह हो जो उस महल्ले आज़माइश में पड़े हो। अब या तो तुम्हारी शराफ़त पाय–ए सुबूत तक पहुँच जायेगी और या जैसे कभी थे वैसे ही गुलाम के गुलाम क़रार पा जाओगे। वस्सलाम।''[1]

इसके आख़िरी फ़िक़रे में तलमीह (सबक) वही ज़ियाद के मजहूलुन नसब(ना मालूम) होने और फिर मुआविया की नज़रे इनायत से फ़रज़न्दे अबू सुफ़ियान क़रार दिये जाने की तरफ़ है। इस ख़त के मज़मून से यह भी ज़ाहिर है कि वह सिर्फ़ मुस्लिम ही के बारे में इब्ने ज़ियाद को सरगर्मी की तहरीक नहीं कर रहा है बल्कि सख़्त व दुरशत (सख़्ती भरा) और ग़ैरत अंगेज़ अलफ़ाज़ में खुद हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के मुआमिले में इब्ने ज़ियाद को मज़बूत इक़दामात की तहरीक कर रहा है। जिस में ज़रा भी कोताही उसके सामने उसके तमाम मुस्तक़्बिल के तारीक बनाने की धमकियों का मरकज़ बना दी गई है।

बहरहाल इस ख़त को कूफ़े की हुकूमत के परवाने के साथ मुस्लिम बिन अम्र बाहली (कुतैबा बिन मुस्लिम की शख़सियत तारीख़ में मशहूर है। यह मुस्लिम बिन अम्र उसी का बाप था।[2] के हाथ इब्ने ज़ियाद के पास रवाना किया जिसको देखते ही उसने बसरा में अपने भाई उसमान बिन ज़ियाद को क़ायम मक़ाम बना कर खुद कूफ़ा जाने की तैयारी कर दी और मस्जिदे जामे में एक तहदीद आमेज़ (धमकी भरे) तक़रीर करने के बाद जिसमें ऐलान किया था कि अगर तुम में से किसी ने ज़रा भी मुख़ालिफ़त की तो मैं उसी को नहीं बल्कि उसके वुरसा (ख़ानदान वाले) को भी क़त्ल करा दूँगा और आस पास के आदमियों और ख़ता कार के साथ बे ख़ता को भी सज़ा देने में कमी न करूँगा।[3]

---

[1]अल–वज़रा वल किताब पेज/19

[2]अख़बारूत तुवाल, पेज/33

[3]अख़बारूत तुवाल, पेज/234

दूसरे दिन रवाना हो गया।[1] वह कोई और नहीं ज़ियाद बिन अबीह का बेटा और मुआविया का उनके इदआ (दावा) के मुताबिक़ भतीजा था। और यह पूरा ख़ानदान ही वह था जिस पर हीला (मक्कारी) व फ़रेब का ख़ातिमा था। चुनाँनचे सब से पहली बात इब्ने ज़ियाद ने यह की कि उसने अपनी नक़्लो हरकत को बिल्कुल सीग़–ए–राज़ में रखा ताकि उसका वरूद कूफ़े में अचानक हैसियत से हो और फिर जब कूफ़ा नज़दीक रह गया तो उसने अपनी वज़ा में तग़ैयुर पैदा (लिबास बदल) कर के एक सियाह अम्मामा सर पर बाँधा और चेहरे पर उसी तरीक़े से जो अरब क़ौम के बहादुरों का जंग वग़ैरह के मौक़ों पर दस्तूर था एक ढाठा बाँध लिया जिसकी बिना पर शनाख़्त नामुमकिन हो गई। एक मर्तबा शहर पनाह कूफ़े के अन्दर यह नक़शा नज़र आया कि आगे आगे अरबी घोड़े पर सवार एक रईसे क़ौम पूरे वक़ार व तमकनत (जाहो जलाल) के साथ सियाह अम्मामा सर पर बाँधे जो अशराफ़े अरब का इम्तियाज़ी निशान था और उसके पीछे एक शानदार क़ाफ़िला ज़ीन व लजाम, साज़ो सामान से आरास्ता आ रहा है। इस हशम व ख़दम (शानो शौकत) को देख कर उन तवक्क़ुआत की बिना पर जो पहले से क़ायम थे वही होना चाहिए था जो हुआ। यानी हर शख़्स यही समझा कि हज़रत हुसैन बिन अली[अ0स0] तशरीफ़ लाये हैं और इस क़ायम शुदा असर की बिना पर या मुतवक़्क़े जदीद (मुमकिना नय) इन्क़ेलाब से नफ़ाए दुनियवी हासिल करने की तमन्ना में जिस जमाअत की तरफ़ से उबैदुल्लाह का गुज़र होता वह बनज़रे ताज़ीम खड़े हो कर आदाब बजा लाती और ख़ुश आमदीद के मानी में यह अलफ़ाज़ ज़बान पर जारी करती। مرحبابک یابن رسول اللہ قدمت خیرمقد م इब्ने ज़ियाद किसी को कुछ जवाब न देता बल्कि आवाज़ों को सुनता, चेहरों को बग़ौर देखता, शक्लो शुमाएल (सूरतों) को पहचानता चला जा रहा था। यहाँ तक कि मजमा ज़्यादा हो गया और लोग इशतियाक़ से घरों से निकल आये और हर शख़्स फ़रज़न्दे रसूल[स0अ0] समझ कर आगे बढ़ने लगा और नौबत यह पहुँची कि राह चलने में रूकावट पैदा होने लगी। उस वक़्त मुस्लिम बिन अम्र बाहली ने जो इब्ने ज़ियाद के साथ था पुकार कर कहा। "रास्ता छोड़ दो। यह अमीर उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद हैं।"[2]

---

[1] तबरी जि/6, पेज/201, इरशाद पेज/212–213

[2] अख़बारूत तुवाल पेज/234, तबरी जि/6, पेज/201

न मालूम इन अलफ़ाज़ में कौन सा असर था कि बढ़ते हुए क़दम और उठते हुए हाथ और मसर्रत आमेज़ तराने सब मौकूफ़ (ठहेर) हो गए। एक सन्नाटा था जो छा गया और सारा मजमा तितर बितर हो गया। यहाँ तक कि जब इब्ने ज़ियाद दारुल अमारा में पहुँचा तो दस आदमियों से ज़्यादा उसके साथ न थे।[1]

इस मौक़े पर अहले कूफ़ा के फ़ित्री रूजहानात पर ग़ौर करने के बाद उनके बातनी इज़्तेराब का अन्दाज़ा करना चन्दाँ (कोई) दुश्वार नहीं। इस लिए कि हालात का ग़ैर मुतवक़्क़ा सूरत से ज़ुहूर पज़ीर (ज़ाहिर होना) होना बजाए ख़ुद सन्सनी पैदा कर देता है चेजाएकि सूरते हाल यह हो कि उन में से हर एक ने अपने ख़िलाफ़ ख़ुद जासूसी के काम को अन्जाम दिया यानी अपनी बातनी ख़यालात और हुसैन इब्ने अली[अ0स0] के साथ ख़ुलूस व अक़ीदत की ख़ुद इब्ने ज़ियाद के सामने बवक़्ते वुरूद (दाख़िल होते वक़्त) तरजुमानी कर दी और इब्ने ज़ियाद ने एक एक चेहरे और आवाज़ को पहचान लिया और फिर इब्ने ज़ियाद वही था जिस की और जिस के बाप की तलवार के नीचे बीस बरस तक इस तमाम ख़िलक़त की गर्दनें इस तरह ख़म रही हैं कि जिसको चाहा गिरफ़तार किया, सूली पर लटकाया, जल्लाद के हाथ से सर को क़लम करा दिया और ऐसे हैबत नाक मनाज़िर उन ही हाथों से आँखों के सामने आ चुके हैं जिनको सोच कर अब तक रोंगटे खड़े हो जाते और दिल हिल जाते होंगे। और अब वही सूरतें अपने और अपनी औलाद और अइज़्ज़ा व अक़ारिब के लिए पेशे नज़र हैं। क्या वह वजूह (सबब) ऐसे न थे जिनकी बिना पर दिल व दिमाग़ मुअत्तल (सुन), ताक़तें मुज़महिल और हिम्मतें पस्त हो जातीं और उन पर अज़ीम ख़ौफ़ व हिरास का ग़लबा हो जाता ख़ुसूसन जबकि ज़्यादा तर तादाद अवाम की थी जो वाक़ेआत व हालात को समझे बग़ैर हर नई आवाज़ पर लब्बैक कहने के शौक़ में शरीक हो गए थे।

इब्ने ज़ियाद ने मस्जिदे जामे में एक तहदीदी तक़रीर के साथ अपनी हुकूमत का ऐलान करने के बाद क़स्र में जा कर क़याम किया और नोमान बिन बशीर ने फ़ौरन क़स्र का तख़लिया (ख़ाली) करके कूफ़े से अपने वतन शाम की तरफ़ रवानगी इख़्तियार की।[2] इब्ने ज़ियाद ने उसके बाद तमाम महल्लाते

---

[1]तबरी जि/6, पेज/301

[2]अख़बारूत तुवाल पेज/234

(महल्लों) कूफ़ा के ज़िम्मेदार अशख़ास को जिन से अराफ़त का[1] मन्सब तअल्लुक़ रखता था बुला कर यह फ़रमान जारी किया कि जल्द से जल्द हर महल्ले की मरदुम शुमारी और जो लोग नौवारिद (नए आने वाले) हैं उनकी फ़ेहरिस्त और जिन लोगों से हुकूमते शाम को ख़तरा है उनके नाम इदारा–ए–हुकूमते महल्लिया में पेश कर दिये जायें और अगर वह किसी वजह से उन फ़ेहरिस्तों के तफ़सील वार तरतीब देने से माजूर हों तो ज़मानत दाख़िल करें उनके मोहल्ले में कोई मुतनफ़्फ़िुस (शख़्स) भी हाकिमे शाम की मुख़ालिफ़त पर आमादा न होगा और उसके ख़िलाफ़ ज़ाहिर हुआ तो उस मुख़तारे मुहल्ला को फ़ौरन उसके घर के दरवाज़े पर सूली दी जायेगी और उसके ख़ानदान से हमेशा के लिए इस मन्सब को अलाहिदा कर लिया जायेगा।[2]

यह मज़बूत तदबीर ऐसी न थी जिस की कामयाबी मुशतबह (जिस पर शक) हो। कूफ़े का चप्पा चप्पा जवासीस व मुख़बेरीन की कसरत से ग़ैर महफ़ूज़ नज़र आने लगा। अब हर शख़्स ख़ास अपने महल्ले में एक घर से दूसरे घर पर जाते डरता था और इस तरह दस पाँच आदमियों का भी एक जगह जमा हो कर किसी अम्र पर गुफ़्तगू करना और कोई क़रार दाद उस्तवार करना नामुमकिन हो गया।

यह पहला मौक़ा वह हो सकता था कि जब मुस्लिम बिन अक़ील को जान का अन्देशा और मक़सद की पामाली का एहसास हो जाता। अब आप का सिर्फ़ एक फ़र्ज़ रह गया था कि आप हिफ़ाज़ते ख़ुद इख़्तियारी के फ़रीज़े के मातहत जहाँ तक मुमकिन हो अपने तहफ़्फ़ुज़ के लिए एहतियाती तदाबीर अमल में लायें। उसके लिए आप को मुख़तार बिन अबी उबैदा का मकान जिस में आप अब तक मुक़ीम थे ग़ैर महफ़ूज़ मालूम हुआ। इस लिए कि आप का क़याम वहाँ मुशतहर (मशहूर) हो चुका था और फिर अगर कोई वक़्त आता तो वहाँ आपकी हिमायत करने वाला भी कोई न होता। मुख़तार बिन अबी उबैदा शरीफ़ क़ौम सही लेकिन सिर्फ़ एक ज़मींदार की हैसियत रखते थे वह किसी

---

[1]मुल्के अरब में यह तरीक़ा अब तक राएज है कि बड़े शहरों में हर महल्ले में एक मुख़तारे महल्ला होता है जो उस मुहल्ले की मरदुम शुमारी दारद व सादिर (आने जाने वाले), ज़ाईदा (ज़िन्दा) व मुर्दा, शादी शुदा व ग़ैर शादी शुदा वग़ैरह उमूर की तशरीह का मक़ामी हुकूमत की तरफ़ से ज़िम्मेदार होता है। उसी मन्सब को उस ज़माने में अराफ़त कहते थे)

[2]तबरी जि/6, पेज/201, इरशाद पेज/214

बड़े क़बीले के सरदार न थे इस के अलावा उस ख़ास मौक़े पर वह कूफ़े में मौजूद भी न थे।[1]

लिहाज़ा मुस्लिम ने अपने लिए इससे बेहतर कोई सूरत न देखी कि आप तारीकिए शब में हानी बिन उरवह के घर में मुन्तक़िल हो जायें।[2] यह क़बील–ए–मुराद व मुज़हज के सरदार थे और जब निकलते थे तो बारह हज़ार आहन (लोहा) पोश सवार उनके हमरकाब होते थे।

मुस्लिम ने हानी के घर में पनाह ले कर ज़ाहरी असबाब की बिना पर अपने को बारह हज़ार शमशीर ज़न बहादुरों के हलक़े में पहुँचा दिया जो बज़ाहिर आपकी हिफ़ाज़त का फ़र्ज़ बेहतरीन तरीक़े पर अदा कर सकते थे। हानी ने मुस्लिम को मख़फ़ी तौर पर अपने यहाँ रखा और सिवा मख़सूस अफ़राद जो महल्ले एतेमाद (भरोसा) थे किसी को इस राज़ की इत्तेला न दी। अब उन क़लीलुत तादाद दोस्ताने अहलेबैत[अ0स0] को जो इस तहरीक के दाई (जुड़े हुए) थे फ़िज़ा की नासाज़गारी का पूरा पूरा एहसास हो गया था मगर वह मुस्तक़िल मिज़ाजी के साथ सूरते हाल के मुक़ाबले पर आमादा हो गए और अब लाज़मी तौर पर नुक़त–ए–नज़र में तब्दीली हो गई। इसके पहले इमाम हुसैन[अ0स0] के ख़त के मुताबिक़ मुस्लिम की हैसियत सिर्फ़ एक पुरअमन नुमाइन्दे की थी जिस का मक़सद फ़क़त कूफ़े के लोगों से इमाम हुसैन[अ0स0] के लिए अहदे वफ़ादारी का उस्तवार करना था। चुनाँनचे इसके पहले हरगिज़ यह पता नहीं चलता कि कोई असलहे की फ़राहमी की कोशिश हो रही हो या जंग की तैयारी हो मगर अब नौइयत यह है कि यह यक़ीनी है कि अनक़रीब मुस्लिम के ख़िलाफ़ हुकूमत की तरफ़ से जारिहाना इक़दाम होगा और अब उस जमाअत को जो मुस्लिम के बुलाने की ज़िम्मेदार है उसके मुक़ाबले के लिए तैयार होना चाहिए। इससे यह नतीजा निकलता है अब यह जो कुछ हो रहा है वह उस हिदायत नामे के हुदूद से आगे जो मुस्लिम को इमाम हुसैन[अ0स0] की जानिब से दिया गया था। यह अब एक हँगामी सूरते हाल है जिसके लिए मुस्लिम और जमाअते कूफ़ा को बहरहाल मुनासिब तर्ज़े अमल इख़्तियार करना लाज़िम है चुनाँनचे मुस्लिम बिन औसजा असदी ने हज़रत मुस्लिम की तरफ़ से अब लोगों से हिफ़ाज़त व नुसरत का वादा लेना शुरू किया और अबू सुमामा

---

[1]तबरी जि/7, पेज/58

[2]अख़बारूत तुवाल पेज/235, तबरी जि/6, पेज/195–203, इरशाद पेज/213

साएदी फ़राहमिए सरमाया (रक़म) और जमा आवरी असलहा के ज़िम्मादार हुए।[1]

इब्ने ज़ियाद को जनाबे मुस्लिम की जाए क़याम का पता लगाने की बड़ी फ़िक्र थी। उसने मुस्लिम की सुराग़ रसानी के लिए अपने शामी ग़ुलाम ''मुआक़िल'' को तीन हज़ार दिरहम दे कर मुक़र्रर किया कि वह ख़ुफ़िया तरीक़े पर किसी न किसी तरह मुस्लिम का पता चलाये। मुआक़िल इस फ़िक्र में मस्जिदे जामे में आया। इत्तेफ़ाक़ से उस वक़्त मुस्लिम बिन औसजा एक रुक्ने मस्जिद के पास नमाज़ में मसरूफ़ थे। वह देर तक उनको देखता रहा और उसने अपने दिल में कहा (जिसे ख़ुद उसने बाद में बयान किया) कि यह शिया लोग नमाज़ें बकसरत पढ़ते हैं इस लिए हों न हों यह उन्हीं में से होंगे लिहाज़ा वह इन्तेज़ार में बैठा रहा।[2] जब मुस्ल्मि नमाज़ से फ़ारिग़ हुए तो वह उनके पास आ कर बैठा और कहा कि ''मैं शाम का रहने वाला ज़ुल कलाअ् का ग़ुलाम ख़ुदा के फ़ज़्ल से अहलेबैते रसूल का दोस्त हूँ। मुझे मालूम हुआ है कि उस ख़ानदान में से कोई बुज़ुर्ग आज कल कूफ़े में आये हुए हैं और लोगों से रसूले ख़ुदा[स0अ0] के नवासे की बैयत ले रहे हैं और यह तीन हज़ार दिरहम मेरे पास हैं। तो क्या आप मुझे उनका पता बता सकते हैं कि यह रक़म मैं उनकी ख़िदमत में हाज़िर कर दूँ जिसे वह अपनी मुहिम में सर्फ़ करें।''

मुस्लिम ने कहा कि आख़िर मस्जिद में दूसरे लोग भी हैं तुम मेरे ही पास उसके दरयाफ़्त करने को क्यों आये हो? उसने कहा कि सबब यह है कि मैंने आप में नेकूकारी और परहेज़गारी के आसार देखे तो यक़ीन हुआ कि आप ज़रूर दोस्ताने अहलेबैते रसूल[स0अ0] में से हैं। जनाबे मुस्लिम उसके फ़रेब में आ गए और कहा तुम ने ख़ूब पहचाना। मैं तुम्हारे ही भाईयों में से हूँ। मेरा नाम मुस्लिम बिन औसजा है। मुझे तुम्हारी मुलाक़ात से बहुत ख़ुशी हुई और इस बात से और ज़्यादा मसर्रत हासिल हुई कि तुम अपनी ख़्वाहिश में कामयाब हुए और तुम्हारे ज़रिये से अहलेबैते रसूल[स0अ0] को कुछ तक़वियत पहुँचेगी। बेशक यह अन्देशा होता है कि कहीं ज़ालिम इब्ने ज़ियाद को भी इसकी इत्तेला न हो जाये लिहाज़ा तुम मुझ से अहेद करो कि किसी से इसका इज़हार न करोगे।

---

[1]तबरी जि/5, पेज/204, इरशाद पेज/215

[2]अख़बारूत तुवाल पेज/236

चुनाँनचे काफ़ी इतमीनान और अहदो पैमान और राज़दारी के वादों के साथ मुस्लिम बिन औसजा ने इक़रार किया कि मैं कल तुम्हें जनाबे मुस्लिम बिन अक़ील की ख़िदमत में ले चलूँगा।

मआक़िल दूसरे दिन जनाबे मुस्लिम बिन औसजा के मकान पर आया और वह उसे हज़रत मुस्लिम बिन अक़ील के पास ले गए। उसने आपकी बैयत की और तीन हज़ार दिरहम जो लाया था आपकी ख़िदमत में पेश किये। उसके बाद मआक़िल की यह सूरत थी कि वह दिन भर जनाबे मुस्लिम के पास रहता और तमाम हालात मालूम करता था और रात को हर बात की इत्तेला इब्ने ज़ियाद को पहुँचा देता था।[1]

हानी के इब्ने ज़ियाद से बहुत क़दीम तअल्लुक़ात थे मगर सिर्फ़ अन्देशे पर कि कहीं इब्ने ज़ियाद को मुस्लिम के मेरे यहाँ क़याम की भनक न मिल गई हो वह आज कल इब्ने ज़ियाद की मुलाक़ात को जाने से परहेज़ करते थे और बीमारी के उज़्र के साथ ख़ाना नशीन हो गए थे।

इब्ने ज़ियाद को यह फ़िक्र हुई कि किसी तरह हानी को बुलाना चाहिए। चुनाँनचे उसने हानी बिन उरवा के पास मुलाक़ात का पैग़ाम भेजा।[2]हानी को उस वक़्त किसी वक़्ती ख़तरे का एहसास नहीं हुआ और उसी का नतीजा है कि इब्ने ज़ियाद के दावती पैग़ाम पर उन्होंने अपने बारह हज़ार जवानों में से किसी एक को भी वाक़ेये से इत्तेला देने की ज़रूरत महसूस नहीं की बल्कि खुद तने तनहा इब्ने ज़ियाद के पास चले गए। वहाँ पहुँचे तो पहले ही से इब्ने ज़ियाद का रंग बदला हुआ पाया। पहले तो सूरत देखते ही उसने अरब की एक मसल ज़बान पर जारी की कि ''راتتک بحائن رجلاہ'' जिसका मतलब यह हुआ कि हानी अपने पैरों से मौत की तरफ़ आ रहे हैं। फिर उसने शुरैह क़ाज़ी की तरफ़ रूख़ कर के यह शेअ्र पढ़ाः

عذ یرک من خلیلک من مراد
ارید حیٰوتہ ویرید قتلی

''यानी मैं तो उसकी ज़िन्दगी चाहता हूँ और वह मेरी जान लेने का दरपै है। खुदा ही समझे उस क़बील–ए–मुराद वाले तुम्हारे दोस्त से।''

इस से हानी समझ गए कि बज़ाहिर राज़ अफ़शा हो चुका है मगर उन्होंने कहाः ''क्यों अमीर क्या मुआमिला है?'' उसने बड़े गुस्से से कहा कि

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/237

[2]अख़बारूत तुवाल पेज/238, तबरी जि/6, पेज/204

''अरे कितने ग़ज़ब की बात है कि तुम ने अपने घर को ख़लीफ़–ए–वक़्त और तमाम मुसलमानों के ख़िलाफ़ साज़िशों का अड्डा बनाया है। तुम ने मुस्लिम बिन अक़ील को बुला कर अपने घर में रखा है। उनके लिए असलहा जमा कर रहे हो। अपने गर्दो पेश के घरों में उनकी मदद के लिए आदमी जमा कर रहे हो और समझते हो कि यह बातें सब मुझसे छिपी रहेंगी।''

हानी ने पहले इन बातों की सेहत से इन्कार किया मगर जब उसने मआक़िल को बुला कर सामने खड़ा कर दिया। और हानी को मालूम हुआ कि यह शख़्स जासूस है तो अब उनके पास कोई जवाब न था और थोड़ी देर के लिए वह मदहोश से हो गए। फिर उन्होंने अपने होश व हवास को जमा करके कहा। अब मुझसे अस्ल हक़ीक़त सुनिये। बावर कीजिये। बख़ुदा एक लफ़्ज़ भी ग़लत न कहूँगा। वाक़ेया यह है कि मैं ने मुस्लिम को न ख़ुद बुलाया और न मुझे उनकी तहरीक के मुतअल्लिक़ कोई इल्म था मगर वह ख़ुद मेरे पास आ गए और मेरे मकान पर क़याम के ख़्वाहिश मन्द हुए। अब मुझे शर्म दामनगीर हुई और इन्कार न बन पड़ा। इस तरह मैं ने उन्हें मेहमान कर लिया और पनाह दे दी। ताहम मैं आप से यह अहेद करता हूँ मैं आपके ख़िलाफ़ कोई जारिहाना इक़दाम नहीं करूँगा और अभी आ कर अपने को आपके हवाले कर दूँगा। मगर इतनी इजाज़त दे दीजिये कि मैं जा कर मुस्लिम से कह दूँ कि मेरे घर से निकल कर जहाँ चाहें चले जायें ताकि उनके पनाह देने की ज़िम्मेदारी से सुबुकदोश हो जाऊँ। फिर मुझे उनसे कोई मतलब न रहेगा।

इब्ने ज़ियाद ने कहा: ''नहीं जब तक उन्हें ख़ुद मेरे पास हाज़िर न करो तुम नहीं जा सकते।'' हानी ने कहा यह तो नहीं हो सकता कि मैं अपने मेहमान को बुला कर आपके सिपुर्द करूँ कि आप क़त्ल कर दें।''[1]

बात इतनी बढ़ी कि इब्ने ज़ियाद ने कहा: ''तुम को उन्हें लाना होगा।'' नहीं तो मैं तुम्हारा सर क़लम करा दूँगा।

हानी ने कहा: ''ऐसा हुआ तो आपके मकान के गिर्द बिजलियाँ कौंदती होंगी। उनका ख़याल था कि उनका क़बीला उनकी मदद करेगा। यह सुनना था कि इब्ने ज़ियाद को गुस्सा आया और कहा। ''अच्छा तुम बिजलियों से मुझे डराते हो। लाओ। उसे मेरे क़रीब लाओ। सिपाही दोड़ पड़े। हानी को ज़ालिम इब्ने ज़ियाद के क़रीब लाये। नतीजा यह था कि बूढ़े लेकिन बात के पक्के हानी का सर्द चेहरा छड़ी की ज़र्ब से खून में रंगीन हो गया। हानी बिल्कुल

---

[1]तबरी जि/2, पेज/205, इरशाद पेज/216, अल अख़बारूत तवाल पेज/238

निहत्ते थे। उन्होंने एक सिपाही की तलवार पर जो उनके पास खड़ा था हाथ डाला कि उससे छीन लें। इब्ने ज़ियाद ने कहाः "अच्छा अब तो तुम ख़ारजी क़रार पा गए। तुम्हारा खून हमारे लिए हलाल है।" जल्लाद बे दर्दी से उन्हें खींच कर ले गए और क़ैद ख़ाने में डाल दिया।[1]

बनी ज़ुबैदा का सरदार अम्र बिन हुज्जाज, हानी बिने उरवा का बरादरे निस्बती (ससुराली अज़ीज़ बहनोई) था।[2]

उसे इत्तेला हुई कि हानी क़त्ल कर डाले गए तो वह मुज़हज के बहुत से ज़िरह पोश सवार ले कर दारूल अमारा पर चढ़ दौड़ा और तलवारों की झंकार, घोड़ों की टापों की आवाज़ ने हानी के दिल में रिहाई की तवक़्क़ुआत पैदा कर दिये लेकिन अफ़सोस की शुरैह क़ाज़ी की फ़हमाइश और उसके कहने से हानी क़त्ल नहीं हुए हैं बल्कि बाज़ मसालेह (मसलहतों) से एक महदूद ज़माने तक नज़र बन्द कर दिये गए हैं। वह सब मुतमइन हो कर वापस गए।[3]

हज़रत मुस्लिम के लिए यह मौक़ा बहुत सख़्त था। उनका पनाह देने वाला, वफ़ादार और मुस्तक़िल मिज़ाज बहादुर हानी बिन उरवा उनकी वजह से ज़दो व कूब (पिटाई) की तौहीन आमेज़ तकलीफ़ बर्दाश्त करके दुश्मन के क़ैद ख़ाने में था और मुस्लिम के गिर्द घर में ख़ानदाने मुराद की औरतें नाला व शेवन (रोना पीटना) कर रही थीं।[4]क्या अब भी मुस्लिम बिन अक़ील छुपे बैठे रहते या इस वजह से कि यहाँ उनका क़याम मालूम हो गया है किसी दूसरे क़ाबिले एतेमाद शख़्स के यहाँ जा कर मख़्फ़ी (छुप) हो जाते? हरगिज़ नहीं। ग़ैरते बनी हाशिम का यह तक़ाज़ा न था। उन्होंने यह तय कर लिया कि हानी नहीं तो फिर मैं भी नहीं। तबरी ने साफ़ तौर पर तसरीह (बयान) की है कि मुस्लिम का जंग के लिए निकलना अपने साथियों की इत्तेला के बग़ैर था और कोई क़रारदाद उस दिन के मुतअल्लिक़ न हुई थी। वह एक मर्तबा उस वक़्त खड़े हो गए जब कि उनको मालूम हुआ कि हानी बिन उरवा मुरादी ज़दो कूब के बाद क़ैद किये गए हैं।[5]

---

[1]तबरी जि/6, पेज/206, इरशाद पेज/217

[2]तबरी जि/6, पेज/205

[3]तबरी जि/6, पेज/195–206–207, इरशाद पेज/217–218

[4]तबरी जि/6, पेज/207, इरशाद पेज/218

[5]तबरी जि/6, पेज/58

देनवरी का बयान है कि जनाबे हानी क़त्ल कर दिये गए और उनकी शहादत का हाल सुन कर जनाबे मुस्लिम बाहर निकले।[1] इब्ने ज़ियाद ने मस्जिद में आ कर फिर एक तहदीदी तक़रीर की। अभी वह मिम्बर से उतरा न था कि लोग दौड़ते हुए "बाबुत तमारीन" (मस्जिद का एक दरवाज़ा) से मस्जिद में दाख़िल हुए यह कहते हुए कि इब्ने अक़ील आ गए। इब्ने ज़ियाद घबरा कर मिम्बर से उतरा और तेज़ी के साथ क़स्र के अन्दर जा कर दरवाज़े क़स्र के बन्द कर लिये।[2]

वाक़ये की नागहानी हैसियत को देखते हुए अब यह तवक़्क़ो तो की ही नहीं जा सकती थी कि वह 18 हज़ार बैयत करने वाले सब मुस्लिम के गिर्द जमा हो जायेंगे और जंग में उनके साथ शिरकत करेंगे और फिर जबकि कूफ़े के महल्ले भी एक दूसरे से मुत्तसिल नहीं थे बल्कि काफ़ी फ़ासला रखते थे। हाँ यह मुहल्ला कि जिस में मुस्लिम का क़याम था। काफ़ी वुसअत रखता था और उसी के अतराफ़ में मुस्लिम के गिर्दा गिर्द चार हज़ार आदमी मौजूद थे और मुस्लिम की तरफ़ से जूँही "या मन्सूरे उम्मत" का नारा बलन्द किया गया जो उनका शेआर यानी इम्तेयाज़ी नार–ए–जंग था तो शर्मा शर्मी में वह चार हज़ार आदमी जमा हो गए लेकिन ज़ाहिर है कि इस महदूद वक़्त में जबकि जंग के पहले से कुछ आसार न थे वह शाही मुनज़्ज़म फ़ौज से कहाँ तक मुक़ाबले के लिए तैयारी कर सके होंगे। खुसूसन जबकि उन चार हज़ार में भी अक्सर ऐसे ही अवाम थे जो नताएज पर ग़ौर किये बग़ैर वक़्ती इक़दामात पर आमादा हो जाते हैं और जिनका हक़ीक़ी शिया–ए–आले रसूल[स0अ0] होना हरगिज़ साबित नहीं।

बहरहाल जनाबे मुस्लिम ने इस मुख़तसर लशकर को तरतीब दिया और पेश क़दमी शुरू की मगर जनाबे मुस्लिम दारूल अमारा तक पहुँचने भी न पाये थे कि वह लोग वापस जाना शुरू हो गए और पहुँचते पहुँचते सिर्फ़ तीन सौ रह गए।[3] लेकिन इब्ने ज़ियाद इस ख़याल से कि मुस्लिम के साथ कोई बड़ी जीमयत है क़स्र के अन्दर क़िला बन्द हो गया और मुस्लिम ने बनी मुराद की एक जमाअत को लिए हुए क़स्र का मुहासिरा कर लिया। रफ़्ता रफ़्ता दूसरे

---

[1] अख़बारूत तुवाल पेज / 239

[2] तबरी जि / 6, पेज / 207, इरशाद पेज / 218

[3] तबरी जि / 6, पेज / 207

लोग भी आते गए यहाँ तक कि मुस्लिम के पास काफ़ी जीमयत हो गई और ज़ोहर से शाम तक बराबर लड़ाई होती रही।[1]

मौजूदा जमियत को जो मुस्लिम के साथ मुहासरे में शरीक थी मुख़तलिफ़ क़बाएल (क़बीले की जमा) के मख़लूत (मिले जुले) मजमे पर मुशतमिल समझना चाहिए और क़बाएल के रूहे रवाँ शुयूख़ (सरदार) व अशराफ़े (ख़ास ख़ास) क़बाएल होते हैं जो हुकूमत के हवा ख़्वाह (चापलूस) और पाबन्दे फ़रमान थे और इब्ने ज़ियाद ने बर वक़्त पेश बन्दी यह की थी कि आज सुबह से शुयूख़ व अशराफ़ को बुला कर अपने पास ज़ेरे हिरासत रख लिया ताकि उनसे हस्बे मौक़ा काम निकाला जा सके। बावजूदये कि इब्ने ज़ियाद के पास महल में उस वक़्त कोई फ़ौज नहीं थी बल्कि क़स्रे हुकूमत में सिर्फ़ तीस पूलिस के सिपाही थे और बीस आदमी उसके मख़सूसीन और रूअसाए क़बाएल में से [2]या ज़्यादा से ज़्यादा दो सौ आदमी मौजूद थे।[3] इस लिए वह कोई मुक़ाबला नहीं कर सकता था। लेकिन एक तरफ़ उसने यह कोशिश की कि क़स्र का दरवाज़ा खुलने न पाये।[4]दूसरे कुछ आदमी इधर उधर भेज कर बाहर से सिपाही इकट्ठा करके यह इन्तेज़ाम किया कि शहर की नाका बन्दी की जाये यानी चौराहों और आम रास्तों पर पहरे बैठ जायें कि कोई शख़्स मुस्लिम की मदद को न आ सके और सूरते वाक़ेया की बिना पर यह अम्र लाज़िम था कि मुस्लिम की मदद को आने वाले मुजतमा हैसियत से किसी लशकर के साथ न आते बल्कि इक्का दुक्का जिस को ख़बर होती जाती वह तने तनहा या अपने भाई बन्दों के साथ मुस्लिम की शिरकत के लिए आता और वह फ़ौरन गिरफ़्तार हो जाता था। चुनाँनचे अब्दुल आला बिन यज़ीद कलबी अपने घराने के कुछ नौजवानों को साथ लिये आ रहे थे जिनको कसीर बिन शहाब ने गिरफ़्तार कर लिया और मुहल्ला बिनी अम्मारा की तरफ़ से अम्मारा बिन सलख़ब अज़दी ने हथियार जिस्म पर आरास्ता करके चाहा था कि मुस्लिम के पास आयें लेकिन मुहम्मद बिन अशअस ने गिरफ़्तार कर लिया।[5]यह दोनों जाँबाज़ मुस्लिम व हानी की शहादत के बाद पिसरे ज़ियाद के

---

[1]तबरी जि/6, पेज/207, इरशाद पेज/218
[2]तबरी जि/6, पेज/207, इरशाद पेज/219
[3]अख़बारूत तुवाल पेज/239
[4]तबरी जि/6, पेज/208
[5]तबरी जि/6, पेज/208

हुक्म से क़त्ल कर डाले गए।[1]इस तरह मुस्लिम से मुख़तलिफ़ अतराफ़ व जवानिब की मदद क़ता हो गई। चुनाँनचे हबीब इब्ने मुज़ाहिर, मुस्लिम बिन औसजा और अबू सुमामा साएदी ऐसे ख़ास लोग जो जनाबे मुस्लिम के पास पहुंचने से क़ासिर रह गए। इसके अलावा अशराफ़े क़बाएल को मजमा के मुन्तशिर करने का हुक्म दिया गया। वह लोग दारूल अमारा के बाला ख़ाने पर चढ़ गए और उन्होंने अपने क़बीले वालों को पुकार पुकार कर हमदर्दाना अन्दाज़ में क़समें खा खा कर यक़ीन दिलाया कि अनक़रीब मरकज़ी हुकूमत शाम की जानिब से बहुत बड़ी फ़ौजें आने वाली हैं और इस सूरत में तुम्हारे जान व माल व औलाद सब तल्फ़ (बरबाद) हो जायेंगे। दमिश्क़ से फ़ौजें आने की ख़बर हर तरफ़ फैला दी गईं जिसके बाद यह आलम हुआ कि औरतें अपने घरों से निकल निकल कर अपने बाप भाई के पास आतीं और कहती थीं कि चलो वापस चलो। दूसरे लोग काफ़ी हैं बाप या भाई अपने बेटे या भाई के पास आता और कहता था कि अरे कल दमिश्क़ से लशकर आ जायेगा तो फिर तुम क्या करोगे। चलो लड़ाई से हाथ उठाओ और मजबूर करके उसे अपने साथ ले जाता था। उसका नतीजा यह हुआ कि शाम होते होते सिर्फ़ तीस आदमी हज़रत मुस्लिम के पास रह गए। आप ने मस्जिद में जाकर नमाज़े मग़रिब पढ़ी। नमाज़ खत्म होने के बाद जब आप बाहर निकले तो रफ़्ता रफ़्ता वह बक़िया तीस भी चले गए।[2]अब मुस्लिम तनहा बाज़ारों में फिरने लगे और कोई इतना तक न था कि आपको रास्ता बता दे। आप तारीकिये शब में यूँही चले जा रहे थे यहाँ तक कि क़बील–ए–कन्दा में पहुँच गए।[3]उस क़बीले की औरत तौआ जो पहले मुहम्मद बिन अशअस की कनीज़ थी और उसके आज़ाद करने के बाद उसैद हज़रमी के निकाह में आई जिस से एक लड़का बिलाल पैदा हुआ। यह कहीं गया हुआ था और तौआ घर के दरवाज़े पर खड़ी उसका इन्तेज़ार कर रही थी। जनाबे मुस्लिम ने उसे देख कर बादे सलाम पानी पीने को माँगा। औरत खुदा तरस थी वह गई और पानी लाई जनाबे मुस्लिम बैठ गए और पानी पिया वह बर्तन रखने घर में गई। आई तो देखा कि यह फिर भी बैठे हैं। उसने कहाः "आप पानी पी चुके। अब अपने घर जाईये। मुस्लिम ख़ामोश रहे। उसने जब दोबारा और सह (तीसरी) बारा कहा तो मुस्लिम ने

---

[1]तबरी जि/6, पेज/214
[2]अख़बारूत तुवाल पेज/240
[3]अख़बारूत तुवाल पेज/140

जवाब दिया कि "ऐ कनीज़े ख़ुदा। मेरा इस शहर में कोई घर नहीं है। क्या तुम मुझे पनाह दे कर सवाब हासिल कर सकती हो। मुमकिन है कि इसके बाद मैं कभी इसका मुआवज़ा तुम्हारे साथ कर सकूँ। उसने हैरान हो कर पूछाः "आप हैं कौन? और वाक़ेया क्या है? फ़रमायाः मैं मुस्लिम बिन अक़ील हूँ। यहाँ के लोगों ने मेरे साथ ग़द्दारी की। मुझसे नुसरत के वादे किये और अब मेरा साथ छोड़ दिया।" उस ने कहाः अच्छा आप मुस्लिम हैं? कहाः "हाँ" मैं वही हूँ। यह सुनना था कि वह आपको अपने घर में ले गई और मकान के एक मख़सूस कमरे में आपके लिए फ़र्श बिछा दिया और खाना हाज़िर किया मगर आपने खाना नोश नहीं किया। थोड़ी देर में उसका लड़का आया और उसने माँ को एक कमरे में बार बार आते जाते देख कर सबब दरयाफ़्त किया और इख़फ़ा (छुपाने) की कोशिश महसूस करके ज़्यादा कद करने लगा यहाँ तक कि तौआ को वाक़ये का इज़हार करना पड़ा इस ताकीद के साथ कि इसका किसी से इज़हार न करना। वह सुन कर ख़ामोश हो गया और रात गुज़रने का इन्तेज़ार करने लगा।[1]

इधर इब्ने ज़ियाद ने जब देखा कि ख़तरा बज़ाहिर बिल्कुल नहीं रहा तो अपने आदमियों को हुक्म दिया, कि साएबानों में देखें, कहीं इब्ने अक़ील साथ वाले साएबानों में छुपे न हों। पूरे तौर पर इतमीनान कर लेने के बाद इब्ने ज़ियाद ने अम्र बिन नाफ़े को हुक्म दिया कि शहर में ऐलान कर दे कि आज इशा की नमाज़ के लिए हर शख़्स को मस्जिद में आना ज़रूरी है। कोई शख़्स नमाज़ के वक़्त अपने घर में न रहे। वरना उसके जान व माल की ज़िम्मेदारी अमीर के सर न होगी। थोड़ी देर में मस्जिद के अन्दर लोगों का हुजूम हो गया। इक़ामत कही गई और पिसरे ज़ियाद ने अपने दायें बायें मुहाफ़िज़ खड़े कर दिये। उस के बाद नमाज़ पढ़ाई। नमाज़ के बाद मिम्बर पर जा कर तक़रीर की कि इब्ने अक़ील ने जो मुख़ालिफ़त का हंगामा उठा रखा है, तुम ने देखा जिसके घर में इब्ने अक़ील को पायेंगे उसके जान व माल की ज़िम्मेदारी हम पर नहीं और जो उन्हें हमारे पास लायेगा उसको उनकी दियत (ख़ून बहा) दी जायेगी। उसके बाद हसीन बिन तमीम को हुक्म दिया कि तमाम शहर की ख़ाना तलाशी करे और इब्ने अक़ील का पता लगाये। और लोगों को अम्र बिन हरीस की ज़िम्मेदारी पर छोड़ कर ख़्वाब गाह में दाख़िल हो गया।[2]

---

[1]तबरी जि/6, पेज/209–210

[2]अख़बारूत तुवाल पेज/40

तौआ का लड़का बिलाल सुबह होते ही मुहम्मद बिन अशअस के नौ उम्र लड़के अब्दुर्रहमान के पास गया और उसे मुस्लिम के अपने घर में होने की इत्तेला दी और वह फ़ौरन अपने बाप के पास जो इब्ने ज़ियाद के दरबार में जा चुका था, पहुंचा और उसके ज़रिये इब्ने ज़ियाद को मुत्तेला किया।[1] इब्ने ज़ियाद ने मुहम्मद बिन अशअस की सरकरदगी में मुस्लिम की गिरफ़्तारी के लिए फ़ौज रवाना कर दी। हज़रत मुस्लिम ने जो घोड़ों की टापों की आवाज़ सुनी समझ गए कि फ़ौज मेरी गिरफ़्तारी के लिए आई है। तलवार ले कर हुजरे से बाहर निकले। इतनी देर में फ़ौजी घर के अन्दर दाख़िल हो गए। आप ने हमला किया और ऐसा सख़्त कि दुश्मनों को घर से बाहर निकाल दिया। वह दोबारा हुजूम करके अन्दर घुसे और आप ने दोबारा उन्हें बाहर कर दिया। बेशक उस हमले में बकर बिन हमरान अहमरी की तलवार से उन के ऊपर का लब क़ता (काट) हो गया और नीचे के लब पर भी ज़ख़्म आ गया और दो दाँत शिकस्ता हो गए फिर भी दुश्मनों को यह यक़ीन हो गया कि मुस्लिम पर यूँ फ़तह पाना मुशकिल है। लिहाज़ा वह मकान की छत पर चढ़ गए और पत्थर मारने लगे। इसके अलावा सेठों के मुठ्ठे आग से जला कर ऊपर से फेंकने लगे। जनाबे मुस्लिम ने यह बुज़दिलाना तरीक़–ए–जंग देखा तो आप तलवार खींचे हुए मकान से बाहर कूचे में आ गए। मुहम्मद बिन अशअस ने पुकार कर कहा कि आप के लिए अमान है। ख़्वाह मख़्वाह तलवार न चलाइये। आप ने जंग जारी रखी और रजज़ पढ़ने लगे। जिसका मज़मून यह था कि "मैं ने क़सम खाई है, न क़त्ल हूँगा मगर आज़ादी की हालत में, अगरचे मौत नागवार चीज़ है मगर बहरहाल वह एक न एक दिन तो हर शख़्स के लिए ज़रूरी है। मुझे तो यह अन्देशा है कि कहीं मुझ से झूठ न बोला जाये और धोखा न दिया जाये। मुहम्मद बिन अशअस ने कहा कि "नहीं आप से झूठ नहीं कहा जायेगा और न धोखा दिया जायेगा। इतमीनान रखिये।"[2]मुस्लिम जंग करके थक चुके थे और ज़ख़्मों से चूर थें उन्होंने पूछा क्या वाक़ई मुझे अमान है? उसने कहा "हाँ आप अमान में हैं।" जितने मुहम्मद बिन अशअस के साथी थे उन सब ने भी अमान का वादा किया, सिवा एक अम्र बिन उबैदुल्लाह बिन अब्बास सलमी के जिस ने कहा, मैं इस बारे में कुछ नहीं जानता और यह कह कर वह अलग हट गया। मुस्लिम ने कहा। देखो तुम ने मुझे अमान दी

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/241

[2]तबरी जि/6, पेज/210, इरशाद पेज/222

है। इस लिए मैं तलवार अपनी नियाम में रखता हूँ और अगर तुम अमान न देते तो मैं कभी अपने को तुम्हारे हवाले न करता। इतनी देर में एक मरकब लाया गया जिस पर मुस्लिम को सवार किया और सिपाहियों ने गिर्द हलक़ा करके आपकी तलवार कमर से निकाल ली। यह होना था कि मुस्लिम का दिल टूट गया और कहा। यह पहली ग़द्दारी है। मुहम्मद बिन अशअस ने कहाः "मुझे उम्मीद है कि तुम्हें कोई ख़तरा पेश न आयेगा।" मुस्लिम ने कहाः "अच्छा तो बस एक उम्मीद ही है और अमान का वादा तुम्हारा क्या हुआ? "इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजेऊन" "إنَّا لِلّٰهِ وَإنَّا إلَيْهِ رَاجِعون" यह कह कर रोने लगे। उम्र बिन अब्दुल्लाह बिन अब्बास सलमी जिस ने पहले ही वाद–ए–अमान से इन्कार किया था कहने लगा।

"जो ऐसी मुहिम के लिए खड़ा हुआ हो जिसके लिए तुम खड़े हुए थे उसे ख़तरा देख कर रोना तो नहीं चाहिए।" मुस्लिम ने कहा "वल्लाह मैं अपने लिये नहीं रोता। मैं तो हुसैन[अ0स0] और उनके साथियों के लिए रोता हूँ जो मेरे ख़त को देख कर कूफ़े की तरफ़ रवाना हो चुके होंगे।" फिर आप मुहम्मद बिन अशअस की तरफ़ मुतवज्जेह हुए। कहा। "ऐ अल्लाह के बन्दे! मुझे यक़ीन है कि तुम मुझे इज़्न दिलवाने से क़ासिर रहोगे। अब तुम इतना करना कि एक क़ासिद हुसैन[अ0स0] के पास भेज देना जो मेरी तरफ़ से उन से जा कर कह दे कि मैं तो दुश्मनों के हाथों गिरफ़्तार हूँ और यक़ीन है कि शाम होने के पहले तक क़त्ल हो चुकूँगा। मगर आप इधर आने का क़स्द न कीजिये। और अहले कूफ़ा के फ़रेब में न आइये। उनके तमाम वादे बिल्कुल ग़लत और क़ौल व क़रार झूठे हैं।" इब्ने अशअस ने वादा किया कि मैं ज़रूर क़ासिद रवाना करूँगा।" उसके बाद मुहम्मद बिन अशअस जनाबे मुस्लिम को ले कर दारूल अमारा के दरवाज़े पर पहुँचा और पहले खुद इजाज़त ले कर इब्ने ज़ियाद के पास गया। उससे तमाम जंग की कैफ़ियत और फिर वाद–ए–अमान पर मुस्लिम को साथ लाने का तज़किरा किया। इब्ने ज़ियाद ने कहा। अमान देने वाले तुम कौन थे? हम ने तुम्हें क्या इस लिए भेजा था कि तुम उन्हें अमान दो? हम ने तो इस लिए भेजा था कि उन्हें हमारे पास ले आओ।"

इब्ने अशअस में अब कहाँ जुरअत थी कि वह उसके बाद कुछ कहता, ख़ामोश रहा।[1]उस वक़्त दारूल अमारा के दरवाज़े पर बहुत से लोग इजाज़ते हुज़ूरी के इन्तेज़ार में मौजूद थे जिन में अम्मारा बिन अक़बा, अम्र बिन हरीस,

---

[1]तबरी जि/6, पेज/211

मुस्लिम बिन अम्र बाहली, और कसीर बिन शहाब मख़सूस लोग थे। और एक सुराही ठंडे पानी से भरी हुई दरवाज़े के क़रीब रखी हुई थी। जनाबे मुस्लिम बहुत प्यासे थे। उन्होंने कहा "थोड़ा सा पानी मुझे पिला दो।" मुस्लिम बिन अम्र ने बड़े सख़्त अलफ़ाज़ में पानी पिलाने से इन्कार किया। मगर अम्र बिन हरीस ने अपने गुलाम को हुक्म दिया कि वह मुस्लिम को पानी पिला दे। उसने गिलास पानी से भर कर मुस्लिम के सामने पेश किया मगर जनाबे मुस्लिम ने जब पानी पीना चाहा तो मुँह से ख़ून बहने लगा और पानी को रंगीन कर दिया। दो मर्तबा ऐसा ही हुआ। तीसरी दफ़ा दो दाँत टूट कर गिलास में गिर पड़े। जनाबे मुस्लिम ने मायूस हो कर गिलास हाथ से दे दिया और कहा "मालूम होता है पानी मेरी क़िसमत से उठ चुका है।" इतनी देर में इब्ने ज़ियाद का आदमी आया और मुस्लिम को अन्दर जाने के लिए कहा। जब आप इब्ने ज़ियाद के पास पहुंचे तो अमीर कह कर उसे सलाम नहीं किया। इब्ने ज़ियाद ने कहा "मुस्लिम अब तुम बच नहीं सकते। अभी क़त्ल किये जाओगे।" जनाबे मुस्लिम ने कहाः "मैं इसके लिए तो तैयार ही हूँ मगर मुझे इतना मौक़ा दिया जाये कि मैं किसी अपने शनासा से जो यहाँ हो कुछ वसीयत कर लूँ।" उसने कहाः "अच्छा जिस से चाहो वसीयत कर दो।" मुस्लिम ने गिर्दो पेश नज़र डाली तो उमर बिन सअ्द को पहचाना। आप ने उस से कहा कि तुम क़ुरैश के ख़ानदान से हो। मुझे इस वक़्त तुम से कुछ राज़ की बातें कहना हैं, ज़रा उन्हें सुन लो।" हुकूमते वक़्त का ख़ुशामदी सुनने के लिए तैयार न हुआ जिस पर खुद इब्ने ज़ियाद ने कहाः "आख़िर सुन लेने में तुम्हारा क्या हर्ज है। उस पर उमर सअ्द उठा और मुस्लिम के साथ थोड़ी दूर आगे बढ़ कर एक ऐसी जगह बैठ गया जहाँ इब्ने ज़ियाद की नज़र दोनों पर पड़ रही हो। जनाबे मुस्लिम ने कहा "मुझे एक बात यह कहना है कि मैं जब से कूफ़े में आया हूँ सात सौ दिरहम का मक़रूज़ हो गया हूँ। तुम मेरे बाद मेरी तलवार और ज़िरह फ़रोख़्त करके यह कर्ज़ा अदा कर देना। दूसरी बात यह है कि मेरे क़त्ल होने के बाद मेरी लाश इब्ने ज़ियाद से मांग लेना और उसे दफ़्न कर देना। तीसरे यह कि इमाम हुसैन[अ०स०] के पास किसी को भेज कर उसके ज़रिये से मेरे वाक़ेये की इत्तेला करा देना ताकि वह वापस चले जायें और अहले कूफ़ा के फ़रेब में मुबतिला न हों।"

मुस्लिम ने बतौरे राज़ यह बातें कहीं थीं मगर बद अहेद उमरे सअ्द ने इब्ने ज़ियाद के पास आ कर कहा आप जानते हैं मुस्लिम ने मुझ से क्या

कहा? यह यह बातें उन्होंने मुझ से की हैं। यह ऐसा शर्मनाक रवैया था जिसे इब्ने ज़ियाद ने भी बुरा जाना और अरब की यह मसल ज़बान पर जारी की कि *"ला–य़ख़ूनकल अमीन व ला किन क़द यूतमिनुल ख़ाएन।"* इमानतदार आदमी कभी ख़यानत नहीं करता। मगर कभी कभी ग़लती से ख़ाएन को अमानतदार बना दिया जाता है।[1]उसके बाद उस ने हर वसीयत के बारे में अपना फ़ैसला सुनाया। कहा "तुम्हारे माल से हमें मतलब नहीं। वह फ़रोख़्त हो कर तुम्हारा क़र्ज़ा अदा कर दिया जाये। और हुसैन[अ०स०] के बारे में यह है कि अगर वह हमारी तरफ़ न आये तो हमें उनसे कोई मतलब नहीं है मगर लाश, उसके बारे में हम कोई वादा करने के लिए तैयार नहीं क्योंकि तुम ने हमारी मुख़ालिफ़त की और रिआया में इन्तेशार पैदा किया लिहाज़ा हम तुम्हारी लाश के मुतअल्लिक़ किसी एहतेराम के ज़िम्मेदार नहीं हैं।[2]

इस वसीयत और उसके जवाब के बाद जो गुफ़्तगू जनाबे मुस्लिम और इब्ने ज़ियाद में हुई है वह ख़ास तौर पर देखने के क़ाबिल है। देखना चाहिए कि मुस्लिम पर जो बग़ावत का इलज़ाम आएद किया जाता है उसके बारे में मुस्लिम क्या जवाब देते हैं और अपने कूफ़े आने की नौइयत क्या बतलाते हैं।

इब्ने ज़ियाद ने कहा। इब्ने अक़ील! तुम यहाँ आये थे लोगों में तफ़रक़ा डालने और आपस में फ़साद कराने कि एक जमाअत दूसरी जमाअत पर हमले करे और ख़ाना जंगी हो।" मुस्लिम ने जवाब दिया और वह जवाब जिस ने आख़िर तक हुसैनी मुक़ावमत (Mission) की नौइयत को ज़ाहिर कर दिया। आप ने फ़रमाया कि नहीं। मैं इस लिए नहीं आया था बल्कि इस मुल्क वालों ने यह ज़ाहिर किया कि तुम्हारे बाप ने उनके नेक आदमियों को क़त्ल किया और उनके खून बहाये और उन में (इस्लाम की सादगी को मिटा कर) वह अफ़आल व अमाल राएज किये जो किसरा व क़ैसर (बादशाहों) की सुन्नत में दाख़िल थे तो हम आये। इस लिए कि उनके अख़लाक़ व आदात की इस्लाह करें और उनको अदालत व इन्साफ़ और तालीमाते कुरआन पर अमल पैरा होने की दावत दें।[3]

वाक़ेयतन चूँकि मुस्लिम का कोई तर्ज़े अमल उनके इस बयान के ख़िलाफ़ ज़ाहिर भी नहीं हुआ था। लिहाज़ा यह सफ़ाई बग़ावत के इलज़ाम से उनके

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/241–242

[2]तबरी जि/6, पेज/212

[3]तबरी जि/6, पेज/212, इरशाद पेज/225

बरी होने के लिए काफ़ी थी मगर इस्तिबदाद (ज़ुल्म) के सामने दलील व बुरहान काम नहीं दिया करता। इब्ने ज़ियाद ने हुक्म दिया कि उन्हें क़स्र के बाला ख़ाने पर ले जाया जाये वहाँ उनकी गर्दन क़लम की जाये और फिर सर के साथ ही जिस्म को नीचे गिरा दिया जाये और इसके लिए वही बकर बिन हमरान अहमरी[1] जिसकी तलवार से जनाबे मुस्लिम के लब व दहन पर ज़ख़्म आया था नामज़द किया गया।

जनाबे मुस्लिम इन्तेहाई सब्र व सुकून से तक्बीरो इस्तेग़फ़ार और सलवात के अवराद के साथ दारूल अमारा के कोठे पर तशरीफ़ ले गए और उनके सर को जुदा करके जिस्म को क़स्र से नीचे फेंक दिया गया।[2] रोज़े सह शम्बा (मंगल) 8/ ज़िलहिज्जा सन 60 हिजरी जनाबे मुस्लिम ने जंग शुरू की।[3] और रोज़े चहार शम्बा (बुध) 9/ज़िलहिज्जा को शहादत पाई।[4]

उसके बाद से शहर में ख़ौफ़ व दहशत की अमलदारी और रोब व हैबत का पूरा दौर दौरा था। लोग घरों से निकलना ख़तरनाक समझते थे इस लिए हर तरफ़ सन्नाटा था और एक को एक की ख़बर न थी।

इन्तेहा यह थी कि वही हानी बिन उरवा जिनके हमरिकाब 12 हज़ार मुसल्लह सवार होते थे और जिनके क़त्ल कर दिये जाने की ग़लत ख़बर पर दारूल अमारा खिंची हुई तलवारों के हलक़े में आ गया था रस्सियों में जकड़ कर बाज़ार में लाये जा रहे थे और वहाँ आवाज़ दे रहे थे कि ''कहाँ हैं मेरे क़बीले बनी मुज़हज के बहादुर! हाए अफ़सोस कि इस वक़्त बनी मुज़हज मुझे नज़र नहीं आते।'' लेकिन अफ़सोस कोई मुतनफ़्फ़िस (शख़्स) भी उनकी तरफ़ रूख़ करता नज़र न आता था।

यहाँ तक कि इब्ने ज़ियाद के तुर्की ग़ुलाम ने अपनी तलवार से उनके सर व तन में जुदाई कर दी।[5]

इब्ने ज़ियाद ने मुस्लिम व हानी के सरहाए बुरीदा हानी बिन अबी हबा हमदानी और ज़ुबैर बिन अरवह तमीमी के हाथ वाक़ये की मुख़तसर रूदाद के साथ रवाना किये और उन दोनों ने तफ़सीलात जा कर ज़बानी भी बयान

---

[1]देनवरी ने उसका नाम अहमर बिन बकीर लिखा है। अख़बारूत तुवाल पेज/242

[2]तबरी जि/6, पेज/213, इरशाद पेज/226

[3]तबरी जि/6, पेज/215

[4]इरशाद , देनवरी ने शहादते जनाबे मुस्लिम की तारीख़ सह शम्बा 3/ज़िलहिज्जा सन 60 हिजरी दर्ज की है। (अख़बारूत तुवाल पेज/242, यह दुरूस्त नहीं मालूम होती।)

[5]तबरी जि/6, पेज/213-214, इरशाद पेज/226

किये। यज़ीद ने जवाबन इस कारनामे पर बड़ी शाबाशी दी और लिखा कि तुम ने वही किया जिस की हमें तुम से उम्मीद थी। अब ख़ुद हुसैन बिन अली[अ0स0] के बारे में तुम्हारी कारगुज़ारी देखना है।[1]

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/242

उन्नीसवाँ बाब

मक्के से करबला तक

सफ़रे इमाम हुसैन[अ०स०] मनाज़िले सफ़र और करबला में वुरूद

कूफ़े में इन्क़ेलाब, मुस्लिम व हानी की शहादत, यह सब कुछ हो गया मगर ज़ाहिर है कि इस सब की इत्तेला बर वक़्त मक्के में क्यों कर पहुँच सकती थी। हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] को मुस्लिम का ख़त पहुँच चुका था कि यहाँ तशरीफ़ लाइये। सब आपकी इताअत के लिए तैयार हैं। यह ख़त जनाबे मुस्लिम ने आबिस बिन अबी शबीब शाकरी के हाथ [1]अपनी शहादत से सत्ताईस दिन पहले 12/ज़ीक़ादा को लिखा था।[2] इस ख़त के पहुँचने के बाद आप के लिए कूफ़े का सफ़र इख़्तियार करना ज़रूरी हो गया था। फिर भी आम हालात में इतनी जल्दी की ज़रूरत नहीं थी कि आप हज के दो एक दिन बाक़ी रहने के बावजूद हज को तर्क फ़रमा दें। और मक्के से निकल खड़े हों। यह ग़ैर मुतवक़्क़ा सूरत यक़ीनी तौर पर निहायत अहम हंगामी असबाब का पता देती है।

आपकी उफ़ताद तबियत (पुर सुकून) और ज़ौक़े इबादत का लाज़मी तक़ाज़ा भी यह था कि आप इस साल के हज को जो आपकी ज़िन्दगी में आख़िरी था मुकम्मल फ़रमा कर रवानगी का इरादा करते लेकिन एक दम हुआ यह कि हज की तकमील में दो दिन बाक़ी थे कि आप ने हज को उमरे से बदल कर मक्क–ए–मुअज़्ज़मा से रवानगी इख़्तियार फ़रमा ली।

इसके असबाब आम तौर पर लोगों के सामने कुछ न थे क्योंकि हरमे इलाही के अन्दर कोई फ़ौज व लशकर न था जिसे सब देखते मगर हाजियों के लिबास में फ़ौज के सिपाही आये हुए थे और उन्हें यह हिदायत थी कि हुसैन[अ०स०] जिस हाल में भी हों उनको गिरफ़्तार कर लो। यह राज़ उस वक़्त

---

[1]तबरी जि/6, पेज/211

[2]इरशाद पेज/230

खुला जब आप मक्के से बाहर आ चुके थे और फ़रज़दक़ शायर ने आप से रास्ते में मुलाक़ात की और पूछा कि फ़रज़न्दे रसूल इतनी जल्दी किस लिए कि हज भी न हो सका? इमाम[अ0स0] ने जवाब दिया कि "अगर मैं इतनी जल्दी न करता तो वहीं गिरफ़्तार कर लिया गया होता।"[1]बस यह चीज़ वह थी जिस ने इमाम हुसैन[अ0स0] को इराक़ की तरफ़ इस क़द्र ताजील (जल्दी) के साथ रवानगी पर मजबूर कर दिया।

नतीज–ए–आख़िर इमाम के पेशे नज़र था यानी शहादत, जिस पर आपकी वह तक़रीर गवाह है जो आप ने मक्क–ए–मुअज़्ज़मा से रवानगी के वक़्त फ़रमाई थी। आप ने कहा था कि "मौत फ़रज़न्दे आदम के गले का हार है, और मुझे अपने असलाफ़ की मुलाक़ात का इश्तियाक़ है, उतना ही जितना याक़ूब[अ0स0] को यूसुफ़[अ0स0] से मिलने का इश्तियाक़ था, और मेरे लिए बहुत अच्छी है वह जगह जहाँ मैं क़ुश्ता हो कर गिरूँगा, गोया मेरी आँखों में फिर रहा है वह समाँ कि मेरे जोड़ बन्द को सहराई दरिन्दे जुदा कर रहे हैं, कोई चार–ए कार नहीं उस दिन से जो ख़ते तक़दीर में गुज़र चुका। ख़ुदा की मर्ज़ी में हम अहलेबैत[अ0स0] की मर्ज़ी है। हम उसके इम्तिहान पर सब्र करते हैं और साबिरों के अज्र को हासिल करते हैं। रसूल[स0अ0] से उनके जिस्म के टुकड़े अलग नहीं हो सकते। जो शख़्स हमारे साथ अपनी जान की क़ुर्बानी पर आमादा और ख़ुदा से मुलाक़ात पर तैयार हो वह हमारे साथ सफ़र करे। मैं कल सुबह को इन्शाअल्लाह रवाना हो जाऊँगा। यह थी वह तक़रीर जो आप ने गिर्दो पेश के लोगों के सामने की थी। उस रात को जिसकी सुबह होते होते आप मक्के से रवाना हो गए। इसके अलावा एक वाक़ेया यह है कि असनाए सफ़र (सफ़र के दौरान) में आप हर मन्ज़िल पर जनाबे यहिया और उनकी शहादत को याद करते थे और फ़रमाते थे कि दुनिया की बे क़द्री के लिए अल्लाह के नज़दीक यह काफ़ी है कि इस दनिया में यहिया बिन ज़करिया का सर क़लम हो कर बनी इस्राईल के ज़िना कार के सामने बतौरे तोहफ़ा भेजा गया।[2]

यह भी हक़ीक़त में अपने मुस्तक़्बिल की तरफ़ एक इशारा ही था जो आप बार बार फ़रमा रहे थे। फिर भी आप के लिए अपने अमल को इम्कानी तहफ़्फ़ुज़ात के हुदूद से आगे बढ़ने देना रवा नहीं था। आपके लिए मक्के से

---

[1]तबरी जि/6, पेज/218

[2]इरशाद पेज/268

फ़ौरन अलाहिदगी इख़्तियार करना उन ख़तरात की बिना पर जो उस वक़्त वहाँ पैदा हो गए थे लाज़मी क़रार पा चुका था। उसके बाद आप कहाँ जाते? अक़्लन उसी जगह कि जहाँ के लोग इन्तेहाई इसरार के साथ आपको बुला रहे थे।

इस सूरत में किसी शख़्स का यह पहलू आपके सामने लाना कि इस में जान का ख़तरा है तहसीले हासिल और फ़ुज़ूल था।

जान का ख़तरा तो था ही मगर इस ख़तरे के होते हुए किसी ऐसी तरफ़ जाना क़रीने (मुनासिब) मसलहत हो सकता था जहाँ जाना "नाख़्वान्दा (बिन बुलाए) मेहमान" की हैसियत रखता हो या ऐसी जगह जहाँ के लोग इलहाह (मिन्नतें) व ज़ारी के साथ दावत दे रहे थे।

ख़तरे के मानी क्या हो सकते थे? यही कि जान जायेगी, मगर जान जाना तो नागुज़ीर (यक़ीनी) थी, फिर यह जान एक इन्सानी और मज़हबी फ़र्ज़ की अदाएगी के सिलसिले में क्यों न जाये जिसका नाम है वादा वफ़ाई। तालिबाने हिदायत पर इतमामे हुज्जत और ख़ल्क़े ख़ुदा की फ़रयाद रसी। इसी लिए जैसा कि पहले कहा जा चुका हे। हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने उन लोगों के ख़याल की कभी रद नहीं की जो अहले कूफ़ा पर बे–एतेमादी का इज़हार करते थे और यह नहीं कहा कि मुझे उनसे उम्मीद है कि वह अब की अपनी बात पर क़ायम रहेंगे मगर उसी के साथ आप ने हमेशा अपनी रवानगी को उनकी तरफ़ ज़रूरी बतलाया। जैसाकि फ़रज़दक़ से गुफ़्तगू में जिस का तज़किरा अभी आयेगा आप ने फ़रमायाः ख़ान–ए–काबा में गिरफ़्तारी का जो ख़तरा था। उसका एक हद तक यक़ीनी क़रीना सामने आ गया। उस वक़्त जब आपकी मक्के से रवानगी के मौक़े पर हाकिमे मक्का अम्र बिन सईद बिन आस की तरफ़ से एक फ़ौजी दस्ते ने यहिया इब्ने सईद की क़यादत में बैरूने शहर आ कर आप से मज़ाहमत की और आपको वापस ले जाना चाहा हज़रत ने वापस जाने से इन्कार किया और नतीजा यह हुआ कि तरफ़ैन में थोड़ी देरे आवेज़िश (बहसो तकरार) भी हुई मगर इमाम हुसैन[अ0स0] के साथ वाले पूरी बहादुरी के साथ मुक़बिल जमाअत की मज़ाहमत को रोकने पर तैयार थे इस लिए उन लोगों को हटने पर मजबूर होना पड़ा और क़ाफ़िला रवाना हो गया।[1]देनवरी ने लिखा है कि ख़ुद अम्र बिन सईद ने इस अन्देशे से कि सूरते हाल कुछ नाज़ुक न हो जाये अपने पुलिस ऑफ़ीसर को वापस आने की

[1]तबरी जि/6, पेज/217–218, इरशाद पेज/229

हिदायत भेज दी।[1]यह सह शम्बा (मंगल) 8/ज़िलहिज्जा सन 60 हिजरी का वाक़ेया है और उसी रोज़ कूफ़े में इब्ने ज़ियाद की फ़ौज से जनाबे मुस्लिम बिन अक़ील का मुक़ाबला हो रहा था और दूसरे दिन जबकि वह शहीद हुए हज़रत इमाम हुसेन[अ0स0] मक्के से निकल कर वादिय-ए-गुरबत (मुसाफ़िरत) में रास्ता तय फ़रमा रहे थे।[2]

आपके क़यामे मक्का के दौरान में अलावा आपके ख़ास ख़ास अज़ीज़ों के जो मदीने से साथ आये थे कुछ मख़सूस अफ़राद अहले हिजाज़ में से और कुछ अहले बसरा में से आपकी ख़िदमत में पहुँच गए थे। अब यह सब आपके साथ साथ रवाना हुए।[3]

मक्के से करबला तक के सफ़र में हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने जिन मन्ज़िलों में क़याम किया था उन की तफ़सील के मुतअल्लिक़ मुअररेख़ीन (इतिहास कारों) में इख़्तेलाफ़ है। जहाँ तक तारीख़ी वाक़ेयात की मदद से साबित होता है। उनकी तरतीब वाक़ेयात के साथ साथ हस्बे ज़ैल है।

1. **सफ़्फ़ाह:** यह मक्क-ए-मुअज़्ज़िमा से रवानगी के बाद पहली वह जगह है जिस का नाम मिलता है। यहाँ क़याम नहीं हुआ बल्कि रह गुज़र ही में फ़रज़दक़ बिन ग़ालिब शाएर से मुलाक़ात हुई।[4]और फ़रज़दक़ ने कूफ़े की हालत बयान की कि लोगों के दिल अपकी तरफ़ मगर तलवारें उनकी बनी उमैया के साथ होंगी। आप ने फ़रमायाः "तुम सच कहते हो लेकिन हर बात अल्लाह के हाथ में है। वह जो चाहता है करता है और हर दिन वह एक नया करिश्मा क़ुदरत का दिखाता है। अल्लाह की तक़दीर अगर हमारी दिली ख़्वाहिशों के मुताबिक़ हो तो हम उसका शुक्र करेंगे और अदा-ए-शुक्र के लिए उसी से मदद के तालिब होंगे और अगर क़ज़ा-ए-इलाही (मौत) हमारे मतलब में सद्दे राह (रूकावट) हुई तो इन्सान के लिए यही क्या कम है कि उसकी नियत में सच्चाई और उसके ज़मीर में पारसाई हो।[5]

इसके माना यह हुए कि मक़सद नेक हो और नियत बख़ैर, उसके बाद "हरचे बादा बाद।" (जो भी हो) इस से साफ़ ज़ाहिर है कि इमाम

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/244

[2]इरशाद पेज/228, देनवरी का बयान है कि जिस दिन जनाबे मुस्लिम की शहादत हुई उसी दिन इमाम हुसैन[अ0स0] मक्का से रवाना हुए। (अख़बारूत तुवाल पेज/243

[3]इरशाद पेज/228

[4]अख़बारूत तुवाल पेज/245

[5]तबरी जि/6, पेज/218, इरशाद पेज/228

हुसैन[अ0स0] किसी के वादों पर एतेमाद करके मन्ज़िले अमल में गामज़न नहीं हुए थे बल्कि महज़ अल्लाह के भरोसे पर उसके आयद कर्दा फ़र्ज़ की तकमील के लिए इम्तिहान गाहे अमल में आ गए थे।

2. **तन्ईम:** इस जगह यमन का एक क़ाफ़िला आता नज़र आया, जिस से हज़रत ने कुछ ऊँट अपने असबाब (सामान) और साथियों की सवारी के लिए किराए पर लिये और उनके मालिकों से फ़रमाया कि तुम में से जो इराक़ तक जाना चाहे उसे हम पूरा किराया देंगे और फिर कुछ इनआम भी अता करेंगे और जो रास्ते से वापस जाना चाहेगा उसे हम उतनी दूर का किराया दे कर वापस कर देंगे। चुनाँनचे कुछ लोग उन में से हज़रत के साथ इराक़ तक जाने के लिए तैयार हुए।[1]

इस से साबित होता है कि मक्क–ए मुअज़्ज़िमा से आपकी रवानगी अचानक बग़ैर किसी तैयारी के हुई थी इस लिए आप अपने साथियों के लिए मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा से बार बरादरी (बोझ उठाना) और सवारी का सामान भी पूरा मुहय्या नहीं फ़रमा सके थे।

इसी मन्ज़िल पर अब्दुल्लाह बिन जाफ़र और यहिया बिन सईद बिनुल आस ने इमाम से आकर मुलाक़ात की। वाक़ेया यह था कि जब इमाम हुसैन[अ0स0] मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा से रवाना हो रहे थे उस वक़्त अब्दुल्लाह बिन जाफ़र मदीने में थे। ज़ाहरी हालात की बिना पर इमाम का मदीने से आना उस ख़तरे के मातहत हुआ था कि वहाँ के हाकिम को यज़ीद का यह फ़रमान पहुँच चुका था कि अगर हुसैन[अ0स0] बैयत न करें तो उनका सर रवाना किया जाये और अब मक्के से रवानगी इस अन्देशे की वजह से हो रही थी कि वहाँ कुछ लोग हाजियों के लिबास में भेज दिये गए थे ताकि जिस तरह मुमकिन हो हुसैन[अ0स0] को क़त्ल कर डालें या गिरफ़्तार करके शाम की सम्त भेज दें। इस मौक़े पर अब्दुल्लाह बिन जाफ़र ने औन व मुहम्मद अपने दोनों फ़रज़न्दों के हाथ इमाम के नाम यह ख़त भेजा कि मैं आपको ख़ुदा का वासता देता हूँ कि आप मेरा ख़त देखते ही वहाँ से वापस आईये क्योंकि उस तरफ़ जिधर आप का क़स्द है मुझे आपकी हलाकत और आपके अहलेबैत के तबाह होने का अन्देशा है और अगर आप दुनिया से उठ गये तो ज़मीन की रौशनी रूख़्सत हो गई क्योंकि आप तालिबाने हिदायत के लिए निशाने राह और मोमिनीन की उम्मीदों का मरकज़ हैं। सफ़र में जल्दी न कीजिये। मैं ख़ुद इस ख़त के पीछे

---

[1] इरशाद पेज/249

आ रहा हूँ। औन व मुहम्मद यह ख़त ले कर इमाम के क़ाफ़िले से रास्ते में जाकर मुलहक़ (मिले) हुए। उसके बाद अब्दुल्लाह बिन जाफ़र, हाकिमे मदीना अम्र बिन सईद बिन आस के पास गए और उस से गुफ़्तगू करके एक अमान का परवाना इमाम हुसैन[अ0स0] के लिए हासिल करने में कामयाब हुए।[1]अब्दुल्लाह की ख़्वाहिश के मुताबिक़ अम्र बिन सईद ने उस पर मोहर की और अपने भाई यहिया बिन सईद को अब्दुल्लाह के साथ किया।

अब्दुल्लाह, यहिया के साथ उस तहरीर को लिये हुए मदीने से रवाना हुए और रास्ते में इमाम से मुलहक़ हो कर तहरीर आपके सामने पेश की। आप खूब जानते थे कि मरकज़ी हुकूमत की पॉलीसी के ख़िलाफ़ एक मक़ामी हाकिम के अमान नामे की क्या वुक़अत (हैसियत) है। आपने अब्दुल्लाह बिन जाफ़र की राय से इख़्तिलाफ़ किया और फ़रमाया कि मुझे अब यहाँ क़याम करना मुनासिब नहीं है और अम्र बिन सईद के नाम उस तहरीर का जवाब लिख कर उनके सिपुर्द किया।[2]अब्दुल्लाह कुछ मजबूरियों की वजह से उस सफ़र में साथ न जा सकते थे। उन्होंने औन व मुहम्मद को हज़रत के साथ रहने की हिदायत की और खुद मदीने वापस हुए।[3]

3. ज़ाते इराक़: शैख़ मुफ़ीद[र0ह0] ने अब्दुल्लाह बिन जाफ़र और यहिया बिन सईद की वापसी का ज़िक्र करने के बाद लिखा है कि हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] तेज़ी के साथ इराक़ की सम्त राह क़ता (रास्ता तय) करते रहे यहाँ तक कि ज़ाते इराक़ में पहुँच कर क़याम फ़रमाया।[4]

4. बतनुर्रमा और हाजिर: "बतनुर्रमा" एक वादी का नाम था जिसके एक मक़ाम का नाम "हाजिर" है। उस मन्ज़िल से आप ने क़ैस बिन मुसहर को जो अहले कूफ़ा के फ़रस्तादा आप के साथ साथ थे। अहले कूफ़ा के नाम ख़त दे कर रवाना फ़रमाया।[5] उस ख़त का मज़मून यह था।

---

[1]अम्र बिन सईद मक्का और मदीने का मुशतरिका हाकिम था। बज़ाहिर जिस वक़्त इमाम रवाना हुए उस वक़्त अम्र बिन सईद और उसका भाई यहिया बिन सईद दोनों मक्का में मौजूद थे और यहिया की क़यादत में एक दस्ते ने आ कर इमाम[अ0स0] का रास्ता रोका। उसके बाद इमाम इराक़ के रास्ते पर रवाना हुए और यह दोनों मदीना चले गए। वहाँ अब्दुल्लाह बिन जाफ़र ने अम्र बिन सईद से मुलाक़ात करके यह ख़त हासिल किया और यहिया बिन सईद के साथ इमाम से मन्ज़िले तनईम पर आकर मुलाक़ात की।)

[2]तबरी जि/6, पेज/219, इरशाद पेज/230

[3]इरशाद पेज/229

[4]इरशाद पेज/229

[5]अख़बारूत तुवाल पेज/245

"यह ख़त हुसैन इब्ने अली[अ०स०] का बरादराने ईमानी व इस्लामी के नाम। बादे सलाम और हम्दे इलाही के मालूम हो कि मुस्लिम बिन अक़ील के ख़त से मुझे तुम्हारे हालात और दुरूस्ती और मेरी नुसरत पर तुम लोगों की हम आहंगी (एक जुट) का इल्म हुआ जिस पर मैं ने खुदा से दुआ की कि वह हमारे मुआमले को बेहतरीन सूरत पर अन्जाम तक पहुँचाये और तुम को उसके मुतअल्लिक़ बेहतरीन अज्र अता फ़रमाये। मैं मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा से रोज़े शम्बा (हफ़्ता) 8/ज़िलहिज्जा को रवाना हो गया हूँ। जब मेरा ख़त तुम्हें पहुँचे तो इन्तेज़ामात मुकम्मल और तेज़ी से अपना निज़ाम दुरूस्त कर लेना क्योंकि चन्द ही रोज़ में मैं तुम्हारे यहाँ पहुंचने वाला हूँ। इन्शाअल्लाह। वस्सलाम।"[1]

बाज़ का क़ौल है कि उस ख़त को अब्दुल्लाह बिन यक़तीर के हाथ भेजा था।[2]इस ख़त के मज़मून और नौइयत से साफ़ ज़ाहिर है कि मक्के से निकलने के बाद यह सब से पहली मन्ज़िल ऐसी मन्ज़िल थी जहाँ इतमीनान की साँस ली जा सकती थी वरना उस ख़त को पहले ही रवाना कर दिया जाता।

क़ैस उस ख़त को लेकर कूफ़े की तरफ़ रवाना हुए मगर जब क़ादसिया पहुँचे तो हसीन की फ़ौज ने गिरफ़्तार कर लिया और उन्हें इब्ने ज़ियाद के पास भेज दिया। इब्ने ज़ियाद ने कहा कि अगर जान बचाना चाहते हो तो मिम्बर पर जा कर हुसैन बिन अली[अ०स०] के ख़िलाफ़ तक़रीर करो और उनकी मज़म्मत बयान करो। क़ैस यह सुनकर मिम्बर पर चले गए। मजमा हमा तन गोश (सुनने के लिए बेक़रार) था कि देखें हुसैन[अ०स०] का क़ासिद हुसैन के ख़िलाफ़ क्या कहता है मगर उन्होंने मक़सदे इमाम की इशाअत का यह एक मौक़ा पैदा किया था। हम्दो सनाए इलाही के बाद मजमे को मुख़ातिब किया और कहा:

"ऐयुहन्नास! (ऐ लोगे!) इस वक़्त ख़ल्क़े खुदा में बेहतरीन शख़्स हुसैन बिन अली[अ०स०] हैं जो रसूल की बेटी हज़रत फ़ातिमा ज़हरा[स०अ०] के फ़रज़न्द हैं। मैं उन्हीं का भेजा हुआ तुम्हारे पास आया हूँ। तुम्हारा फ़र्ज़ है कि उनकी नुसरत के लिए क़दम आगे बढ़ाओ और उनकी आवाज़ पर लब्बैक कहो।"

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/247, तबरी जि/5, पेज/223, इरशाद पेज/230
[2]इरशाद पेज/230

इब्ने ज़ियाद ग़ज़बनाक हुआ और उस ने हुक्म दिया कि उन्हें क़स्र के दरवाज़े से ज़मीन पर गिरा दो। बेरहमों ने उन्हें नीचे गिरा दिया जिस से उनके आज़ा चकना चूर हो गए।[1]

जब आप मन्ज़िल से आगे बढ़े तो एक चश्मे पर अब्दुल्लाह बिन मुतीअ् से मुलाक़ात हुई जो इराक़ से वापस हो रहे थे। उन्होंने भी आप से मक्का छोड़ने का सबब दरयाफ़्त किया और अहले कूफ़ा की दावत का हाल सुनकर दूसरे तमाम मशवरा देने वालों की तरह आपके कूफ़े जाने से इख़्तिलाफ़ किया।[2]

5. ज़रूद: इस मन्ज़िल के क़रीब जो चश्मा था उस पर ज़ुहैर बिनुल क़ैन का ख़ैमा नस्ब था। यह हज करके मक्के से वापस हुए थे और कूफ़े जा रहे थे।[3]शुरू में उनको ख़ानदाने रसूल से कोई अक़ीदत न थी बल्कि आम तौर पर वह अहले शाम के हम अक़ीदा समझे जाते थे जिसको उस ज़माने में ''उस्मानी'' मस्लक कहा जाता था। मगर इमाम हुसैन[अ0स0] की नब्बाज़ फ़ितरत (परखने की सलाहियत) व बसीरत उनकी बातनी इस्तेअ्दाद (अन्दरूनी सलाहियत) को देख रही थी। आप ने उनके पास पैग़ाम भेजा कि मैं तुम से मिलना चाहता हूँ। ख़ानदाने रसूल से जो वहशत आम तौर से उस गिरोह में पैदा कर दी गई थी उसकी बिना पर उन्होंने मिलने से इन्कार कर देना चाहा मगर उनकी बीवी ने जो उनके साथ थीं कहा कि वाह क्या ग़ज़ब की बात है कि रसूल का फ़रज़न्द तुम्हारे पास पैग़ामे मुलाक़ात भेजे और तुम मुस्तरद कर दो। इस बात से मुतअस्सिर हो कर यह इमाम हुसैन[अ0स0] के पास गए और कुछ इस तरह सफ़ाई से उनके सामने इमाम हुसैन[अ0स0] ने अपने मुआमिले को पेश किया कि वह हमा तन (दिल व जान से) आपके मुवाफ़िक़ हो गए और बड़े ख़ुश ख़ुश अपनी क़यामगाह पर पहुँच कर उन्होंने हुक्म दिया कि हमारा ख़ैमा यहाँ से उखाड़ कर असहाबे हुसैन[अ0स0] के ख़ैमों के पास लगा दिया जाये। उसके बाद उन्होंने अपनी बीवी को तलाक़ दे दी और उनसे कहा कि वह अपने भाई के साथ मैके चली जायें फिर साथियों से मुख़ातिब हो कर कहा कि ''मैं ने इमाम हुसैन[अ0स0]के साथ मरने का मज़बूत इरादा कर लिया है जो शख़्स तुम में से हमारे साथ शहीद होना चाहे वह मेरे साथ रहे और जो न

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/245, इरशाद पेज/230
[2]अख़बारूत तुवाल पेज/246, तबरी जि/6, पेज/224
[3]अख़बारूत तुवाल पेज/246, तबरी जि/6, पेज/224

चाहे वह यहीं से एलाहिदा हो जाये।" चुनानचे साथ वाले सब एलाहिदा हो गए।[1]

सूरते हाल से साफ़ ज़ाहिर है कि इमाम की गुफ़्तगू ज़ुहैर से कुछ ख़ुश आइन्द तवक़्क़ुआत या उम्मीद अफ़ज़ा तसव्वुरात पर मबनी न थी बल्कि सफ़ाई के साथ उस अन्जाम कार को इन्केशाफ़ कर दिया गया था जिस पर अभी तक आम निगाहों में तवक़्क़ुआत के पर्दे पड़े हुए थे। क्या इसके बाद भी यह समझा जा सकता है कि हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] किसी ग़लत फ़हमी में मुबतिला हो कर मन्ज़िले अमल में गामज़न हो रहे थे।

फिर भी चूँकि अवाम बिल्कुल ज़ाहिर बीन (जो ज़ाहिर है वही देखते हैं) होते हैं लिहाज़ा उन के तवक़्क़ुआत इमाम की निसबत बहुत ख़ुश आइन्द थे। वह समझते थे कि फ़रज़न्दे रसूल अपने बाप भाई के पाय–ए–तख़्त और इराक़ ऐसे मर्दुम ख़ेज़ (आबादी वाले) सूबे के सद्रे मरकज़ (Capital) कूफ़े की तरफ़ ख़ुद वहीं के बाशिन्दों के इसरार व तलब पर जा रहे हैं वहाँ पहुँच कर तख़्त व ताज, फ़ौज व लशकर और हशम व ख़ेदम (नौकर चाकर ग़ुलाम) सब कुछ मुहैया होगा। हज़रत शाहे इराक़ तस्लीम किये जायेंगे और आपकी ज़ात में इमामत व सलतनत दोश ब–दोश जमा होगी। इन ख़यालात को पेशे नज़र रख कर दुनिया के लालची लोग भी जुक़ दर जुक़ (ग़ौल के ग़ौल) आपके साथ शामिल हो रहे थे और रास्ते में आपको वह मुख़तसर क़ाफ़िला जो मक्के से निकलते वक़्त ख़ास ख़ास लोगों पर मुशतमिल था अब एक मुख़तसर लशकर की सूरत इख़्तियार कर चुका था और ऐसा मालूम होता था कि बेशक कोई बादशाह है जो अपने मरकज़े सलतनत की तरफ़ जा रहा है। लेकिन ज़ुरूद सब से पहला वह मक़ाम था जहाँ से रवाना होने पर परेशानी का आग़ाज़ हुआ जबकि अब्दुल्लाह बिन सुलैम और नदरी बिन मशमअल दोनों असदी शख़्सों ने जो मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा से फ़राग़ते हज के बाद बहुत तेज़ी से रवाना हो कर ज़ुरूद में हज़रत से मुलहक़ (मिल गए) हो गए थे। एक शख़्स को कूफ़े की तरफ़ से आते देखा। इमाम उसको देखते ही ठहर गए थे कि कुछ हालात कूफ़े का मालूम करें लेकिन उसने हुसैनी क़ाफ़िले को देख कर रूख़ दूसरी जानिब कर दिया। लिहाज़ा इमाम आगे बढ़ गए। उन दोनों असदी शख़्सों ने आपस में मशवरा किया कि उससे कुछ कूफ़े के हालात दरयाफ़्त करना चाहिये। चुनाँनचे यह दोनों क़ाफ़िले से जुदा हो कर इन्तेहाई

---

[1]तबरी जि/6, पेज/224, इरशाद पेज/231–232, अख़बारूत तुवाल पेज/246

तेज़ रफ़्तारी से उस जाने वाले तक पहुँच गए, और साहिब सलामत के बाद उसका क़ौम व क़बीला और नामो नसब दरयाफ़्त किया। मालूम हुआ कि बकीर बिन मशअबा असदी है तो उन्होंने भी अपना तआरूफ़ कराया और कहा कि हम भी क़बील–ए–बनी असद में से हैं। ज़रा तुम से अपने शहर की हालत दरयाफ़्त करना चाहते हैं। उसने कहाः ''हाँ सुनो मैं कूफ़े से बाहर नहीं आया था कि मुस्लिम बिन अक़ील और हानी बिन उरवा क़त्ल किये गए और मैं ने अपनी आँखों से देखा कि उनकी लाश के पावँ में रस्सी बाँध कर बाज़ार में घसीटा जा रहा है।[1]बड़ी वहशत नाक ख़बर थी। दोनों आदमियों ने सुन लिया और मौक़ा शनासी से काम ले कर उस वक़्त उसे दिल में रख लिया। यहाँ तक कि वक़्त उसके इज़हार की इजाज़त दे।

6. सअ्लबियाः इस मन्ज़िल पर दूसरे दिन शाम के वक़्त जब इमाम हुसैन[अ0स0] ने क़याम किया तो दोनों असदी आपकी ख़िदमत में हाज़िर हुए और तस्लीम बजा लाये। हज़रत ने सलाम का जवाब दिया। उन्होंने अर्ज़ किया कि हमें एक इत्तेला देना है। हुज़ूर फ़रमायें तो सब के सामने अर्ज़ करें। और अगर इरशाद हो तो इलाहिदा तख़लिये (अकेले) में कहें? हज़रत ने एक नज़र हाज़िरूल वक़्त अशख़ास पर डाली और फ़रमायाः ''इन लोगों से किसी राज़दारी की ज़रूरत नहीं।'' उन्होंने कहाः ''कि आप ने उस सवार को देखा था जो कल शाम के वक़्त आ रहा था?'' फ़रमायाः 'हाँ। और मैं ने उससे कुछ हालात भी दरयाफ़्त करना चाहे थे।'' उन्होंने कहाः '' कि हम ने हुज़ूर की मन्शा के मुताबिक़ उससे हालात दरयाफ़्त किये और वह हमारे ही क़बीले का आदमी है और बहुत समझदार, सच्चा और दानिशमन्द शख़्स है। उसने हम से बयान किया है कि वह कूफ़े से बाहर नहीं आया था कि मुस्लिम बिन अक़ील और हानी बिन उरवह दोनों शहीद कर दिये गए और उनकी लाशें बाज़ारों में फिराई गईं।''

''बिला शुबहा यह ख़बर इमाम हुसैन[अ0स0] के लिए बहुत अन्दोहनाक थी एक तरफ़ मुस्लिम की जुदाई का सदमा जो आपके चचाज़ाद भाई और मोअतमिदे (भरोसे मन्द) ख़ास थे दूसरी तरफ़ अपने मुस्तक़बिल के मुतअल्लिक़ ज़ाहरी तमाम उम्मीदों का ख़त्म हो जाना, लेकिन एक रईसे क़ौम और सरदार की हैसियत सख़्त मौक़े पर बहुत ज़िम्मेदाराना होती है इस लिए कि तमाम लोगों की नज़रें उसी पर होती हैं। अगर कहीं उसको इज़्तेराब हुआ तो फिर

[1]तबरी जि/6, पेज/225, इरशाद पेज/232

तमाम रूफ़का और साथियों पर मायूसी का छा जाना और इज़तेराब का पैदा हो जाना लाज़मी अम्र है। इसी लिए उस मौक़े पर जब यह अचानक ख़बर इमाम हुसैन[अ०स०] को पहुँची तो आप ने सिर्फ़ इतना किया कि चन्द बार कहाः ''رَحْمَةُ اللهِ عَلَيْهِمَا إِنَّا لِلّٰہِ وَإِنَّا إِلَيْهِ رَاجِعُوْنَ'' और बस ख़ामोश हो गए।[1]मतलब इसका यह हुआ कि उसी की राह में हम अपनी जानों को निसार करते हैं और वही मुआवेज़ा देने वाला है।

असदी जो एक रात तक इस वहशत नाक ख़बर को अपने दिल में रख कर उससे पूरा पूरा असर ले चुके थे और नताएज को हर तरह सोच कर दिल ही दिल में राय क़ायम कर चुके थे उन से अपने दिल की बात छुपाई न गई और वह बेसाख़्ता बोल उठे कि ''ख़ुदा का वास्ता अपनी और अपने घर भर की जान को ख़तरे में न डालिये। यहीं से वापस हो जाईये क्योंकि कूफ़े में आपका न कोई मददगार है न दोस्त बल्कि हमें ख़ौफ़ है कि पूरा कूफ़ा आपके खिलाफ़ ही होगा।'' हर शख़्स समझ सकता है कि एक हंगामी इज़तेराब और तअस्सुर के जज़बे से जो हमदर्दी का मशवरा दिया जाये उसका जवाब ज़्यादा सन्जीदा दलाएल का मुतहम्मिल नहीं हो सकता। अगरचे हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] ख़ुद पहले ही से अन्जाम पर मुत्तेला थे और आपका सफ़र जिन नताएज को पेशे नज़र रख कर था उन में इस ख़बर के आने से कोई तब्दीली नहीं हुई थी। लेकिन दूसरे अफ़राद के लिए वक़्ती जज़बात के मुक़ाबिल में अक़ली दलाएल के पेश करने का महल नहीं हुआ करता। इस लिए हज़रत ने उस हंगामी जज़बे के मातहत मशवरे का जवाब बिल्कुल मुतज़ाद एक फ़ित्री जज़्बे के एहसास से देना चाहा, और उसके लिए एक नज़र औलादे अक़ील पर डाली फ़रमाया तुम्हारी क्या राय है। मुस्लिम तो शहीद हो गये तमाम अक़ीली जवान खड़े हो गये और कहा ख़ुदा की क़सम हम तो वापस न होंगे जब तक मुस्लिम के ख़ून का बदला न ले लें या वहीं मौत का साग़र हम भी न चख लें जो मुस्लिम ने चखा।'' हज़रत मुतवज्जेह हुए दोनों असदियों की तरफ़ और फ़रमायाः ''जब यह न हुए तो हम ज़िन्दा रह कर क्या करेंगे।''[2]हाज़ेरीन में से एक शख़्स ने यह भी कहा कि ''आप की और मुस्लिम की बराबरी नहीं। आप

---

[1]देनवरी ने कलम–ए इस्तेरजा के बाद इन अलफ़ाज़ का इज़ाफ़ा किया है कि ''إِنَّا لِلّٰہِ نَحْتَسِبُ اَنْفُسَنَا '' यानी हम अल्लाह के यहाँ हिसाब करते हैं अपनी जानों का, इरशाद पेज/232

[2]अख़बारूत तुवाल पेज/246, तबरी जि/6, पेज/225, इरशाद पेज/223

कूफ़े में पहुँच जायेंतो कूफ़े के लोग आपकी मदद के लिए दौड़ पड़ेंगे।'' हज़रत ने उस ख़याल की कोई ताईद नहीं की और ख़ामोशी इख़्तियार फ़रमाई।[1]

रात यहीं गुज़ारी गई। सहर के वक़्त आइन्दा की मन्ज़िलों के लिए काफ़ी पानी साथ लेने के बाद आगे रवाना हुए यहाँ तक कि ज़बाला पहुंचे।[2]

7. ज़बाला: इस मन्ज़िल पर अयास बिन असल ताई जो शोअरा में से था मुहम्मद बिन अशअस का भेजा हुआ ख़त ले कर इमाम के पास पहुँचा। चूँकि जनाबे मुस्लिम ने दुश्मन के हाथों गिरफ़्तार होने और अपनी शहादत का यक़ीन हो चुकने के बाद यह वसीयत की थी कि मेरे बाद हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] को इत्तेला दे दी जाय कि कूफ़े की यह हालत है और आपके मददगार अब कूफ़े में मौजूद नहीं हैं। इस लिए आप अब यहाँ आने का इरादा न कीजिये चुनाँनचे यह ख़त भेजा गया और मन्ज़िले ज़बाला पर इमाम[अ0स0] के पास पहुंचा।[3]

उस क़ासिद ने यह भी इत्तेला दी की क़ैस बिन मुसहर क़त्ल कर दिये गए।[4]

क़राइन बतलाते हैं कि वह अफ़राद जिनकी मौजूदगी में जनाबे मुस्लिम की ख़बरे शहादत बयान की गई थी वाक़ई निहायत मख़सूस राज़दार हस्तियाँ थीं। इस लिए उस मजमे के रूबरू मुस्लिम की ख़बरे शहादत ज़ाहिर होने के बाद फिर भी आम अहले क़ाफ़िला से वह राज़ ही की हैसियत से मख़फ़ी रही मगर हज़रत ने अब इन वाक़ेयात को अहले क़ाफ़िला से मख़्फ़ी रखना मुनासिब नहीं समझा क्योंकि आप जानते थे कि रास्ते के बहुत से अरब आपके साथ इस ग़लत ख़याल के मातहत हो गए हैं कि आप एक ऐसे मुल्क की तरफ़ जा रहे हैं जहाँ लोग आप की सलतनत तस्लीम कर चुके हैं। लिहाज़ा आपको यह मन्ज़ूर न हुआ कि वह लोग ग़लत फ़हमी में मुबतिला रहें और हक़ीक़ते हाल से तारीकी में रहने की वजह से आप का साथ दें। आपको यक़ीन था कि जब आप सूरते हाल का इज़हार कर देंगे तो बस वही जाँ निसार आपके साथ रह जायेंगे जो हक़ीक़तन आपके मक़सद के साथ हमदर्दी रखते और आपकी

---

[1]तबरी जि/6, पेज/235, इरशाद पेज/233
[2]तबरी जि/6, पेज/211
[3]तबरी जि/6, पेज/203
[4]अख़बारूत तुवाल पेज/247

नुसरत में जान तक से हाथ धोना पसन्द करते हैं। चुनाँनचे आप ने हस्बे ज़ैल बयान के ज़रिये से तमाम अहले क़ाफ़िला को सूरते हाल से मुत्तेला फ़रमायाः

''हमें यह दर्दनाक ख़बर मालूम हुई है कि मुस्लिम बिन अक़ील और हानी बिन उरवा क़त्ल कर डाले गए और हमारी इताअत के दावेदारों ने हमारी नुसरत से हाथ उठा लिया इस लिए जो शख़्स तुम में से वापस जाना चाहे वह वापस चला जाये। हमारी तरफ़ से उस पर कोई ज़िम्मेदारी नहीं है। वस्सलाम।''

नतीजा वही हुआ जो मालूम था कि इस ऐलान के साथ ही लोग मुतफ़र्रिक़ होना शुरू हुए और तक़रीबन सब दायें बायें रवाना हो गए। यहाँ तक कि ज़्यादा तर वही लोग जो मदीने से आपके साथ आये थे बाक़ी रह गए।[1]

8. बत्ने अक़ीक़ः[2] इस मन्ज़िल पर क़बील–ए–अकरमा का एक शख़्स[3] अम्र बिन लौज़ान[4] मिला और उसने बताया कि इब्ने ज़ियाद की तरफ़ से ''क़ादसिया'' और ''अज़ीब'' के दरमियान नाका बन्दी हो गई है और उसने कहा कि बराए खुदा वापस जाइये। आप के सामने सिवा तलवार और नैज़ों के कोई चीज़ आने वाली नहीं है, और खुतूत लिखने वालों पर भरोसा न कीजिये। वही लोग सब से पहले आप से लड़ने के लिए आयेंगे। इमाम हुसैन[अ0स0] ने उसकी ख़ैर ख़्वाही पर उसे दुआये ख़ैर दी और आगे रवाना हुए।[5]

बज़ाहिर यह सुनने के बाद कि क़ादसिया के नाके पर फ़ौजों का पहरा है और वहाँ पहुंचना अपने को यक़ीनी तौर पर दुश्मन के हाथों में गिरफ़्तार करा देना है आप ने सिम्ते सफ़र में ज़रा तब्दीली फ़रमाई और इसी लिए क़ादसिया कि जिसका हर कूफ़े जाने वाले के महल्ले गुज़र में वाक़े (रास्ते में पड़ना) होना ज़रूरी था और जहाँ क़ैस बिन मुसहहर गिरफ़्तार किये गए थे आपके मनाज़िले सफ़र में वाक़े (सफ़र के रास्ते में नहीं पड़ा) नहीं हुआ और आपका उस फ़ौज से तसादुम नहीं हुआ जो हसीन की सरगर्दगी में क़ादसिया के हुदूद में मुक़ीम थी।

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/247, तबरी जि/6, पेज/246, इरशाद पेज/233

[2]शैख़ मुफ़ीद ने इस मन्ज़िल का नाम बतने अक़बा लिखा है।, इरशाद पेज/233

[3]अख़बारूत तुवाल पेज/247

[4]इरशाद पेज/233

[5]अख़बारूत तुवाल पेज/247, इरशाद पेज/233–234

9.**सरात**: बतने अक़ीक़ से रवाना हो कर इमाम ने यहाँ रात बसर की।[1]

10.**शिराफ़**: तबरी और शैख़ मुफ़ीद की तसरीह के मुताबिक़ सअ्लबिया व ज़बाला के बाद उस मन्ज़िल पर इमाम ने हुक्म दिया की पानी भर लो और मश्कें और छागलें पुर कर लो।[2]इस मन्ज़िल से आगे बढ़े और अब ग़ालिबन मुहर्रम सन 61 हिजरी का चाँद फ़लक पर नमूदार हो चुका है।

पहली तारीख़ दोपहर को इमाम हुसैन[अ0स0] का क़ाफ़िला मन्ज़िले शिराफ़ के हुदूद से आगे बढ़ा था और क़ादसिया से तीन मील के फ़ासले पर[3] कि आप के असहाब में किसी ने कहा "अल्लाहो अकबर" इमाम[अ0स0]ने फ़रमायाः बेशक अल्लाह सब से बड़ा है मगर इस वक़्त तकबीर करने की वजह? उसने कहा, मुझे ख़ुर्मे (खजूर) के दरख़्त दिखाई दे रहे हैं। इसके यह मानी हैं कि कोई आबादी नज़दीक है। असहाब में से कुछ लोगों ने कहा कि इस जगह तो कभी हम ने दरख़्ते ख़ुर्मा देखे नहीं। हज़रत ने फ़रमायाः फिर तुम ही देखो क्या दिखाई देता है? उन्होंने कहा हम को तो घोड़ों की गर्दनें[4]या कनोतियाँ (आँखें)[5] (आँखें)[5] नज़र आती हैं। हज़रत ने फ़रमायाः मैं भी यही देखता हूँ।

11.**जूहसम**: मुख़ालिफ़ फ़ौज को इधर मुतवज्जेह पाकर इमाम हुसैन[अ0स0] ने अपने असहाब से पूछा कि यहाँ कोई ऐसी महफ़ूज़ जगह है जिसे हम अपनी पुश्त पर क़रार दे कर दुश्मन से सामने की जानिब से मुक़ाबला करें। मतलब यह था कि चारों तरफ़ से घिरने का इमकान बाक़ी न रहे। लोगों ने कहा यह जूहसम[6] पहाड़ मौजूद है जो आपके बायें पहलू की तरफ़ है। आप उसकी तरफ़ मुतवज्जेह हो जाइये। अगर हम दुश्मन के पहले उस हद तक पहुँच गए तो मक़सद हासिल हो जायेगा। हज़रत ने उस राये को पसन्द फ़रमाया और बाईं तरफ़ का रूख़ किया। आने वाली सिपाह ने जो यह देखा तो उसने भी उसी तरफ़ का रूख़ कर दिया। मगर इमाम वहाँ पहले पहुँच गए थे। असहाब को हुक्म दिया कि ख़ेमे नस्ब कर दिये जायें। फ़ौरन तामील की गई। इतनी देर में वह फ़ौज भी क़रीब पहुँच गयी। मालूम हुआ कि हुर बिन यज़ीद रियाही

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/247

[2]तबरी जि/6, पेज/227, इरशाद पेज/233–234

[3]तबरी जि/6, पेज/220

[4]तबरी जि/6, पेज/227

[5]इरशाद पेज/234

[6]देनवरी ने जूजशम लिखा है। अख़बारूत तुवाल पेज/247

एक हज़ार की फ़ौज के साथ सद्दे राह होने के लिए आया है।[1]चूँकि इमाम कूफ़े के आम रास्ते पर नहीं जा रहे थे जो क़ादसिया से हो कर गुज़रता था इस लिए हसीन की फ़ौज से तसादुम न हुआ जो क़ादसिया में पड़ी हुई थी मगर जासूसों ने हसीन को आपके इस तरह बच कर आगे बढ़ जाने की इत्तेला दे दी थी इस लिए हसीन ने हुर को इस एक हज़ार फ़ौज के साथ आपका रास्ता रोकने के लिए आगे रवाना किया।[2] दोपहर का वक़्त और गर्मी का मौसम[3] इसके अलावा यह भी मालूम होता है कि आप नाका बन्दी पर मुऐय्यन फ़ौज के हलक़े से बहुत दूर दूर जा रहे थे इस लिए हुर को आप तक पहुंचने के लिए ग़ैर मामूली तगवुदू (मेहनत) करना पड़ी और रेगिस्तान में बग़ैर पानी साथ लिए हुए बहुत तेज़ चलना पड़ा इस लिए यहाँ पहुँचते पहुँचते फ़ौज के सवार और घोड़े सब ही की प्यास के मारे हालत तबाह थी।

इमाम अपने असहाब समेत अम्मामे सरों पर रखे, तलवारें हमाएल (लगाये) किये खड़े थे कि दुश्मन के हांपते काँपते हुए घोड़े और सवार सामने आ कर खड़े हो गए। आसार प्यास की शिद्दत के गवाह थे और सूरते सवाल। हुसैन अ0 एक हस्सास दिल रखते थे जिस में इन्सानी हमदर्दी कूट कूट कर भरी थी। आपके लिए दुश्मन की मौजूदा हालत नाक़ाबिले बर्दाश्त थी। आप ने अपने जवानों को हुक्म दिया कि उनको पानी पिलाओ और तमाम फ़ौज को पूरी तरह सेराब कर दो। हुक्म की देर थी इताअते इमाम पर कमर बस्ता जवान खड़े हो गए और सबको सेराब किया।[4]हालत यह थी कि प्याले, लगनें, तश्त पानी से भरते थे और घोड़ों के पास ले जाते थे। जब हर घोड़ा तीन, चार, पाँच दफ़ा पी कर मुँह हटा लेता था तब दूसरे घोड़े के पास ले जाते थे। यहाँ तक कि राबिक व मरकब (सवार और घोड़े) सब सेराब हो गए। अली बिन तआन महारबी हुर का एक साथी था। वह कहता है कि मेरी हालत प्यास से बहुत तबाह थी और सब से आख़िर में मैं पहुँचा। जब इमाम हुसैन[अ0स0] ने मेरी और घोड़े की प्यास को देखा, फ़रमायाः "राविया यानी शुतरे आबकश को बिठा लो (ऊँट पर पानी का ज़ख़ीरा)।" मेरी ज़बान में राविया मश्क को कहते थे इस लिए मैं उसके मानी न समझा। हज़रत ने फ़रमाया "जमल यानी ऊँट

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज / 247, तबरी जि / 6, पेज / 227

[2]तबरी जि / 6, पेज / 227–228

[3]अख़बारूत तुवाल पेज / 247

[4]अख़बारूत तुवाल पेज / 247, तबरी जि / 6, पेज / 227

को बिठा लो। मैं ने ऊँट को बिठाया। हज़रत ने फ़रमाया, अब पानी पियो। मगर मैं इतना बदहवास था कि जितना पीने की कोशिश करता पानी ज़मीन पर बहता और मुझ तक न पहुँचता। इमाम ने कहा मश्क के दहाने को अपनी तरफ़ मोड़ लो। फिर भी मेरी समझ में न आया। तब हज़रत खुद उठे और मश्क के दहाने को ठीक करके मुझे दिया। मैं ने खुद भी पानी पिया और अपने घोड़े को सेराब किया।[1]

इमाम हुसैन[अ0स0] की इस बलन्द ज़रफ़ी का जो असर मुख़ालिफ़ सरदार यानी हुर के दिल पर क़ायम हुआ उसके ज़ाहिर होने का अभी वक़्त न आया था लेकिन कम अज़ कम वह शशदर रह गया होगा कि इस एहसान के बाद अब उस बुजुर्ग फ़ितरत इन्सान से किस तरह गुफ़्तगू करूँ। इमाम ने भी अपने फ़ित्री इस्तेक़लाल (साबित क़दमी) व इतमीनान की वजह से उस वक़्त कुछ न पूछा कि तुम क्यों आये हो और क्या मतलब है? फ़ौजे हुर के सिपाही अपने घोड़ों के साय में बागें हाथों से पकड़े हुए बैठ गए।[2] यहाँ तक कि ज़ोहर की नमाज़ का वक़्त आया और इमाम हुसैन[अ0स0] ने हज्जाज बिन मसरूक़ जअ्फ़ी को अज़ान का हुक्म दिया और उन्होंने अज़ान कही। जब नमाज़े जमाअत की सफ़ें तैयार हो गई तो इमाम अपने नमाज़ के लिबास में ख़ैमे से बरामद हुए और इक़ामत का हुक्म दिया। उसके बाद आप ने हुर से फ़रमाया कि तुम हमारे साथ नमाज़ पढ़ोगे या अपने साथियों को अलग नमाज़ पढ़ाना चाहते हो? हुर ने कहा नहीं आप नमाज़ पढ़ाईये और हम सब आपके पीछे नमाज़ पढ़ेंगे। चुनाँनचे ऐसा ही हुआ और दोनों जमाअतों ने इमाम[अ0स0] के पीछे नमाज़ अदा की।[3]

नमाज़ के बाद हज़रत ने उस जमाअत की तरफ़ रूख़ किया और हम्दो सनाए इलाही के बाद हुर और उसकी फ़ौज को मुख़ातब करते हुए इरशाद किया " ऐ गिरोहे मरदुम! मैं खुदा की बारगाह में और तुम्हारे सामने अपनी सफ़ाई पेश करता हूँ। मैं तुम्हारी तरफ़ उस वक़्त तक नहीं आया जब तक कि तुम्हारे खुतूत मेरे पास नहीं गए कि आप हमारी तरफ़ आइये, हमारा कोई इमाम नहीं है, शायद खुदा आप के ज़रिये से हमें हिदायत पर मुजतमा (इकट्ठा) कर दे। अब अगर तुम अपनी बात पर क़ायम हो तो मैं आ ही गया

---

[1]तबरी जि/6, पेज/247, इरशाद पेज/234

[2]अख़बारूत तुवाल पेज/247

[3]अख़बारूत तुवाल पेज/247, तबरी जि/6, पेज/228

हूँ। अपने इरादे पर क़ायम रहूँ और अगर तुम मेरे आने से नाराज़ हो तो मैं वापस चला जाऊँ वहीं जहाँ से आया हूँ।" इस तक़रीर के बाद ख़ामोशी छाई और कोई जवाब नहीं मिला।[1] आख़िर हज़रत अपने ख़ैमे में तशरीफ़ ले गए और आपके असहाब आपके ख़ैमे में मुजतमा हो गए। हुर उस ख़ैमे में जो उसके लिए लगाया गया था दाख़िल हुआ और उसके कुछ साथी उसके पास जा कर बैठ गए। दूसरे लोग मुतफ़र्रिक़ तौर पर उसी मैदान में उसी शान से कि सिपाहियों ने अपने घोड़ों की बागें हाथों में ले लीं उन्हीं के साये में दोपहर का वक़्त गुज़रने तक बैठे रहे।[2] अस्र का वक़्त हुआ तो हज़रत ने अपने असहाब को हुक्म दिया कि रवानगी की तैयारी करो। फिर आप ने बाहर आकर अस्र की नमाज़ का ऐलान किया और इसी सूरत से हज़रत की इक़्तेदा में दोनों गिरोहों ने नमाज़ पढ़ी। नमाज़ के बाद आपने फिर मजमे की तरफ़ रूख़ किया और हम्दो सनाए इलाही के बाद फ़रमायाः "अगर तक़वा इख़्तियार करो और हक़दार का हक़ पहचानों तो ख़ुदा की रज़ा मन्दी हासिल करोगे। हक़ीक़तन हम अहलेबैत उम्मते इसलामिया की फ़रमाँरवाई के उन लोगों से ज़्यादा मुस्तहक़ हैं जो आज उस मन्सब के ग़लत दावेदार हैं और मुसलमानों पर सितम ढाते हैं लेकिन अगर तुम हम को नापसन्द करते हो और हमारे हक़ का इक़रार नहीं रखते हो और उस राय के ख़िलाफ़ हो जो तुम्हारे ख़ुतूत और क़ासिदों के बयानात से ज़ाहिर हो रही थी तो मैं वापस चला जाऊँगा।[3]

हुर की मोहरे ख़ामोशी टूटी और उस ने कहाः "हमें तो बख़ुदा ख़बर भी नहीं कि यह ख़ुतूत कैसे हैं? जिनका आप हवाला दे रहे हैं।

इमाम ने अक़बा बिन समआन से फ़रमाया लाओ वह थैले जिन में उन लोगों के ख़ुतूत भरे हुए हैं। अक़बा ने दो थैले ख़ुतूत से भरे हुए लाकर सामने रखे और उन में से ख़ुतूत निकाल कर फैला दिये। हुर ने कहा कि हम तो उन लोगों में से नहीं हैं जिन्हों ने आपको ख़ुतूत लिखे हैं। हम तो मामूर किये गए हैं। इस पर कि जहाँ भी आप मिल जायें फिर हम आपका साथ न छोड़ें। यहाँ तक कि आपको इब्ने ज़ियाद के पास पहुँचा दें। यह सुनना था कि इमाम ने ज़ोर से कहा कि "मौत तुम्हारे लिए उससे क़रीब तर साबित होगी।"[4]

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/248, तबरी जि/6, पेज/228

[2]तबरी जि/6, पेज/228

[3]तबरी जि/6, पेज/228, इरशाद पेज/235–236

[4]अख़बारूत तुवाल पेज/248, तबरी जि/6, पेज/228, इरशाद पेज/246

और उसके बाद आप ने कूफ़े जाने का इरादा कुल्लियतन (सिरे से) तर्क कर दिया यानी इसके पहले रास्ता बदलने के बाद भी आपका रूख़ कूफ़े ही की तरफ़ था। लेकिन अब कूफ़ा जाने के ख़याल ही को ज़हन से निकाल दिया उसके बाद आपने अपने असहाब के सामने एक खुतबा इरशाद फ़रमायाः जिस में हम्दो सनाए बारी के बाद फ़रमायाः "सूरते हाल जो पेश आई है वह तुम देख रहे हो यक़ीनन दुनिया का रंग बदल गया है और उसकी नेकी रूख़्सत हो चुकी है और उस में कुछ नहीं रह गया है। सिवा ऐसे थोड़े हिस्से के जो पानी के बहने के बाद किसी ज़र्फ़ में बच रहता है और एक पस्त ज़िन्दगी जो मिस्ल ज़हरीली घास के है। क्या तुम नहीं देखते कि हक़ पर अमल नहीं होता और बातिल से अलाहिदगी नहीं इख़्तियार की जाती। इस सूरत में मोमिन यक़ीनन खुदा की मुलाक़ात का आरज़ूमंद होता है। मेरे नज़दीक तो मौत की सूरत में शहादत की सी नेअ्मत है और ज़िन्दा रहना उन ज़ालिमों के दरमियान वबाले जान है।" इस खुतबे का मक़सद सिर्फ़ असहाब को अन्जामेकार की तरफ़ एक मरतबा फिर मुतवज्जेह करना और इस तरह उनको अपने अज़ाएम की पुख़्तगी का दोबारा जाएज़ा लेने की दावत देना ही क़रार दिया जा सकता था और इस लिए ज़रूरत थी कि इस तक़रीर को सुनकर असहाब की जानिब से खुलूसे नियत और पुख़्तगीए अज़्म का क़रार वाक़ई इज़हार कर दिया जाता। चुनाँनचे इमाम की तक़रीर ख़त्म होते ही ज़ुहैर बिन क़ैन खड़े हो गए और इस एहसास की बिना पर कि मैं इस जमाअत में ताज़ा शरीक हुआ हूँ इस लिए मुझे ऐसे मवाक़े पर सबक़त करने का हक़ हासिल नहीं है। दूसरे असहाब से इन अलफ़ाज़ में तक़रीर की इजाज़त चाही कि आप लोग पहले तक़रीर करेंगे या मैं कुछ कहूँ? सब ने कहा कि नहीं तुम तक़रीर करो। ज़ुहैर ने हम्दो सनाए इलाही के बाद कहाः

"अल्लाह आपको मक़सद तक पहुँचाये ऐ फ़रज़न्दे रसूल! हम ने आपके इरशाद को सुना बखुदा दुनिया अगर हमारे लिए हमेशा बाक़ी रहने वाली होती मगर जुदा होना उससे महज़ आपकी नुसरत और हमदर्दी की बिना पर होता तो भी हम आपका साथ देने को दुनिया में हमेशा क़याम पर तरजीह देते।"

यह सुनकर इमाम ने ज़ुहैर को दुआए ख़ैर दी और उनके खुलूस की तारीफ़ की।[1] उसके बाद नाफ़ेअ् बिन हिलाल जमली खड़े हुए और उन्होंने हस्बे ज़ैल पुर ज़ोर तक़रीर कीः

---

[1]तबरी जि/6, पेज/229

"फ़रज़न्दे रसूल! आप को मालूम है कि आप के जद्दे बुज़ुर्गवार के लिए भी यह मुमकिन नहीं हुआ कि लोगों को अपनी मुहब्बत घोल कर पिला दें और लोग हज़रत की इस तरह इताअत करने लगें जिस तरह कि हज़रत चाहते थे और हज़रत के साथ वालों में बहुत से मुनाफ़िक़ थे जो हज़रत से नुसरत का वादा करते थे मगर दिमाग़ में ग़द्दारी का ख़याल मुज़मर (पोशीदा) रखते थे। वह बातें तो ऐसी बनाते थे जो शहद से ज़्यादा शीरीं होतीं मगर किरदार से मुख़ालिफ़त करते ऐसी जो इन्तेहाई तल्ख़ साबित होती यहाँ तक कि रसूल अल्लाह[स0अ0] का इन्तेक़ाल हो गया उसके बाद आपके वालिदे बुज़ुर्गवार हज़रत अली[अ0स0] को भी इसी सूरत से दो चार होना पड़ा। कुछ लोग उनकी नुसरत पर मुत्तफ़िक़ हुए और उन्होंने उनका साथ देते हुए नाकिसीन (नालाएक़) व क़ासितीन (वादा तोड़ने वाले) व मारिक़ीन (गुमराह) (जमल, सिफ़्फ़ीन और नहरवान वालों) से जंग की और कुछ लोगों ने मुख़ालिफ़त की। यहाँ तक कि हज़रत की वफ़ात हो गई और आज हमारे सामने आपके लिए वही सूरत दरपेश है। लिहाज़ा जो शख़्स अपने अहद को तोड़ेगा और नीयत को ख़राब करेगा वह खुद अपना बुरा करेगा और खुदा आपको उससे लापरवा कर देगा। बिस्मिल्लाह चलिये। हम को लेकर ख़ैर व सलामती के साथ चाहे मशरिक़ की तरफ़ और चाहे मग़रिब की जानिब। हम बखुदा खुदा के मुक़र्रर फ़ैसले से ख़ौफ़ ज़दा नहीं हैं और न अपने रब की मुलाक़ात (मौत) से कराहत (पीछे हटते) रखते हैं। हम अपनी नियतों और एतेक़ादों पर क़ायम हैं। मवालात (दोस्ती) रखते हैं। उस शख़्स से जो आपके साथ मवालात (दोस्ती) रखे और दुश्मन हैं उसके जो आपसे दुश्मनी करे।"

फिर बुरैर बिन खुज़ैर हमदानी ने तक़रीर की:

"खुदा की क़सम ऐ फ़रज़न्दे रसूल! यह खुदा का हम पर एहसान है कि उसने हम को मौक़ा दिया इस बात का कि हम आपके सामने जंग करें और आपकी नुसरत के सिलसिले में हमारे आज़ा व जवारेह क़ता (जिस्म के टुकड़े) किये जायें यहाँ तक कि आपके जद्दे बुज़ुर्गवार रोज़े क़यामत हमारे शिफ़ाअत ख़्वाह हों क्योंकि वह जमाअत कभी नजात नहीं पा सकती जिस ने अपने नबी के नवासे को तहे तेग़ किया हो और वाए हो उन के लिए, वह खुदा को क्या मुँह दिखायेंगे और उनका क्या हाल होगा। उस दिन जब वह आतिशे जहन्नम में नाला व फ़रयाद करते होंगे।"[1]

---

[1]तबरी जि/6, पेज/269

इस गुफ़्तगू के बाद इमाम ने अपने असहाब से फ़रमाया कि अपनी सवारियों पर सवार हो जाओ और सब लोग यहाँ तक कि ख़वातीन भी अपनी अमारियों में सवार हो गईं। आप ने हुक्म दिया कि चलो जिस रास्ते से आये हैं उसी रास्ते पर वापस चलो। जब असहाब ने इरादा पलटने का किया हुर की सिपाह सामने आ कर सद्दे राह हुई। उस पर इमाम ने दरयाफ़्त किया कि "तुम्हारा मतलब क्या है?" हुर ने कहा "मैं चाहता हूँ कि आप को इब्ने ज़ियाद के पास ले जाऊँ।" हज़रत ने फ़रमायाः "खुदा की क़सम यह नहीं होगा।" हुर ने कहा "फिर मैं बखुदा आपको छोड़ूँगा भी नहीं।" यूँ ही तीन मर्तबा रद्दो बदल हुई।

आख़िर में हुर ने कहा "मैं आप से जंग करने पर मामूर नहीं हुआ हूँ। मुझे तो बस यह हुक्म हुआ है कि आपके साथ साथ रहूँ यहाँ तक कि आप कूफ़े पहुंचें। अब इस सूरत में कि आप कूफ़े जाने से ही इन्कार करते हैं तो एक ऐसा रास्ता इख़्तियार कीजिये जो न कूफ़े की तरफ़ जाता हो और न मदीने की तरफ़। बस मेरे और आपके दरमियान इन्साफ़ का यही एक तरीक़ा है। उस वक़्त तक कि जब तक मुझे हाकिम की राए मालूम हो।" हज़रत को हुर की यह बात माकूल मालूम हुई, और आप क़ादसिया व अज़ीब के रास्ते से बाईं सम्त की तरफ़ मुतवज्जेह हो गए और हुर भी आपके साथ साथ चला। तारीख़ में सराहत (साफ़) है कि यहाँ से अज़ीब तक 38 मील का फ़ासला था।[1]

रास्ते में इमाम हुसैन[अ०स०] और हुर के दरमियान जो गुफ़्तगू होती जाती थी वह भी बड़ी मानी खेज़ थी। हुर ने कहाः "मैं आपको खुदा का वास्ता देता हूँ कि आप अपने ऊपर रहम करें इस लिए कि अगर आप ने जंग की तो यक़ीनन आप क़त्ल कर दिये जायेंगे और तबाह होंगे।" हज़रत ने जवाब दियाः "क्या तुम मुझे मौत से डराते हो? क्या तुम इस से ज़्यादा कुछ कर सकते हो कि मुझे क़त्ल कर डालो?" उसके बाद हज़रत ने क़बील–ए ओस के एक शायर का वह शेअ्र पढ़ा जिसका मज़मून यह था किः मैं अपने इरादे पर क़ायम रहूँगा और मौत से दोचार होने में जवाँमर्दी के लिए कोई आर व नन्ग (शर्म) नहीं है जबकि उसकी नियत में सच्चाई हो और वह राहे हक़ में जिहाद कर रहा हो।"

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/248–249, तबरी जि/6, पेज/228–229, इरशाद पेज/236

हुर इस इन्तेहाई अज़्मो इस्तेक़लाल का इज़हार सुनकर हुसैनी क़ाफ़िला से कुछ दूर साथ साथ हो कर रास्ता तय करने लगा।[1]

12. **बैज़ाः** इस मक़ाम पर इमाम हुसैन[अ0स0] ने फ़ौजे हुर और अपने असहाब के सामने एक तक़रीर फ़रमाई जिस में इस्लाम के तालीमात के हवाले से अपने फ़राएज़ पर रौशनी डालते हुए फ़रमायाः "ऐयुहन्नास (ऐ लोगो!) पैग़म्बर इस्लाम ने फ़रमाया है कि जो शख़्स किसी बादशाह को देखे कि वह जुल्मो जौर करता है, मुहर्रमाते (हराम) इलाहिया को हलाल बनाये हुए है खुदाई अहदो पैमान को तोड़ देता है। सुन्नते रसूल की मुख़ालिफ़त करता है और बन्दगाने खुदा में मासियत (गुनाहों) का तर्ज़ इख़्तियार किये हुए है और यह शख़्स उन बातों को गवारा करे और इस्लाह की कोशिश न करे अपने क़ौल और अपने अमल से तो वह मुस्तहक़ होगा इसका कि अल्लाह उसको भी उसी बादशाह के दर्जे में महसूब (शुमार) करे।"

उसके बाद मौजूदा सूरते हाल पर तब्सेरे की हैसियत से फ़रमायाः

"तुम्हें मालूम होगा कि इन बनी उमैया ने इताअते शैतान को अपना रास्ता बना लिया और अल्लाह की इताअत से रूगर्दानी की है। मुसलमानों के अमवाल को अपना लिया है और हरामे खुदा को हलाल और हलाले खुदा को हराम क़रार दे लिया है। इस सूरत में मुझ से ज़्यादा किस पर यह फ़र्ज़ आयद होता है कि वह इस्लाह की कोशिश करे।"[2]

12. **अज़ीबुल हजानातः**[3] इस मन्ज़िल पर इमाम हुसैन[अ0स0] और हुर के लशकर ने एक तीर की मसाफ़त का फ़ासला दरमियान में छोड़ कर अलग अलग क़याम किया।[4] इसी असना में कूफ़े के पाँच आदमी अपने मरकबों पर सवार वारिद हुए जिन के साथ एक कोतल (ख़ास नाम) घोड़ा था। उनके रास्ता बताने वाले तिरिम्माह बिन अदी साथ थे।

यह पाँच आदमी अम्र बिन ख़ालिद असदी सैदावी, उनके ग़ुलाम सअ्द, मजमा बिन अब्दुल्लाह आएज़ी, उनके फ़रज़न्द आएज़ बिन मजमा, और जनादा बिन हारिस सलमानी थे। हुर ने जो इमाम की नक़लो हरकत का निगराँ था बढ़ कर कहा कि यह कूफ़े के लोग हैं और आपके साथ आने वालों में से नहीं

[1]तबरी जि/6, पेज/229, इरशाद पेज/236–237

[2]तबरी जि/6, पेज/229

[3]यह नाम इस मक़ाम का इस लिए हुआ कि नोमान बिन मुन्ज़िर बादशाह हीरा की हजाईन यानी ऊँटनियाँ इस मक़ाम पर चरा करती थीं। तबरी जि/6, पेज/230

[4]तबरी जि/6, पेज/230

हैं। लिहाज़ा मैं उन्हें क़ैद करूँगा। या कूफ़े वापस कर दूँगा।'' इमाम ने फ़रमायाः ''अब जब यह मेरे पास पहुंच गए हैं तो उनकी हिफ़ाज़त मेरे ज़िम्मे है और अब वह मेरे अन्सार व आवान (हामी) की जमाअत में दाख़िल हो गए हैं।'' हुर ख़ामोश हो गया।

हज़रत ने उनसे अहले कूफ़ा की कैफ़ियत दरयाफ़्त की। मजमा बिन अब्दुल्लाह आएज़ी ने कहा कि बड़े आदमियों को रिशवतें दी गई हैं और माल व दौलत से पुर कर दिया गया है। इस लिए वह सब आपके ख़िलाफ़ मुत्तफ़िक़ हैं। रह गए दूसरे लोग, उनके दिल आपकी तरफ़ मगर तलवारें उनकी आपके ख़िलाफ़ ही बलन्द होंगी। उन्होंने क़ैस बिन मुसहर की शहादत के हालात भी बयान किये जिस पर इमाम की आँखों में आँसू डबडबाने लगे और आपने क़ुरआन की आयत पढ़ी। '' فَمِنْهُمْ مَنْ قَضَى نَحْبَهُ وَمِنْهُمْ مَنْ يَنْتَظِرُ وَمَا بَدَّلُوا تَبْدِيلًا '' मतलब यह हुआ कि वह उस रास्ते पर चले गए और हमें भी उसी रास्ते पर जाना है तिरमाह ने इमाम से इब्ने ज़ियाद की अफ़वाज की कसरत बयान की और कहाः ''कूफ़े से बाहर निकलने के पहले में ने पुश्ते कूफ़ा पर इतना अज़ीम लशकर देखा है जितना आज तक तो मेरी नज़रों से नहीं गुज़रा था और मैं ने दरयाफ़्त किया तो बतलाया गया कि यह सब इस लिए इकट्ठे हैं कि उनका जाएज़ा लिया जायेगा और फिर यह हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] से मुक़ाबले के लिए रवाना होंगे।''

यह बयान करने के बाद उन्होंने कहा किः ''उस जमाअत से मुक़ाबला आपके लिए मुमकिन नहीं लिहाज़ा आप मेरे साथ कोहे अजा पर चलये जहाँ शाहाने ग़स्सान व हमीर और नोमान बिन मुन्ज़िर ऐसे ज़बरदस्त बादशाह तक हम पर क़ाबू नहीं पा सके, वहाँ मैं ज़िम्मेदारी लेता हूँ कि क़बील–ए–तय के बीस हज़ार सिपाही आपकी मदद के लिए तैयार होंगे।''

इमाम ने तिरमाह की मुख़लिसाना पेशकश पर उन्हें दुआए ख़ैर दी लेकिन उनके मशवरे पर अमल करने से माज़ूरी ज़ाहिर फ़रमाई।[1]

13. क़स्रे बनी मक़ातिल: अज़ीबुल हजनात से इमाम हुसैन[अ0स0] कूफ़े के रास्ते को छोड़ कर दाहने हाथ की सम्त रवाना हुए यहाँ तक कि क़स्रे बनी मक़ातिल पहुंचे। यहाँ पहुंच कर आप ने और साथ ही साथ हुर ने भी क़याम किया।[2]

---

[1]तबरी जि/6, पेज/22–23

[2]अख़बारूत तुवाल पेज/249

इसी मन्ज़िल पर कूफ़े के बहादुरों और शाहसवारों में से एक शख़्स उबैदुल्लाह बिन हुर जॉफ़ी क़याम पज़ीर था। हज़रत ने इतमामे हुज्जत के लिए उसे नुसरत की दावत दी। मगर उसकी क़िसमत में यह सआदत न थी और उसकी कुव्वते इरादी भी इस पुख़्तगी तक पहुँची हुई न थी इस लिए हीला हवाला करके इस मौक़े को हाथ से दे दिया।[1] जिस पर उसे उम्र भर अफ़सोस रहा और बाद में ख़ूने इमाम के इन्तेक़ाम लेने में शरीक हुआ।

यहाँ से रवानगी के क़ब्ल रात के आख़िरी हिस्से में हज़रत ने अपने क़ाफ़िले के जवानों को पानी भर कर साथ लेने का हुक्म दिया जिस की तामील हुई। फिर सब आगे रवाना हुए।[2] अभी थोड़ा रास्ता तय हुआ था कि इमाम पर कुछ गुनूदगी सी तारी हुई। आँख खुली तो आप फ़रमा रहे थे "इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजेऊन वल–हम्दो लिल्लाहि रब्बिल आलमीन।" दो तीन मर्तबा आप ने यही कलेमात ज़बाने मुबारक पर जारी फ़रमाये।

उस वक़्त आपके फ़रज़न्द अली अकबर घोड़ा बढ़ा कर आपके क़रीब आये और उस वक़्त इन कलेमात के ज़बान पर जारी करने का सबब दरयाफ़्त किया। हज़रत ने फ़रमायाः "अभी मेरी आँख लग गई थी। मैं ने एक सवार को देखा जो कह रहा था कि "यह लोग तो रास्ते पर जा रहे हैं और मौत उनकी तरफ़ आ रही है।" मैं समझता हूँ कि इस तरह हमारी मौत की इत्तेला दी गई है।" अली अकबर ने अर्ज़ किया कि बाबा "ख़ुदा आपको रंज की सूरत न दिखलाये, क्या हम हक़ पर नहीं हैं?" इमाम ने फ़रमायाः " क्यों नहीं क़सम उस ख़ुदा की जिस की जानिब तमाम ख़ल्क़ की बाज़गश्त है, हम हक़ पर हैं।" अली अकबर ने कहा "जब हम हक़ पर हैं तो फिर हमें मौत की क्या परवा है?" इमाम ने फ़रमायाः "बेटा तुम्हें ख़ुदा जज़ा–ए–ख़ैर दे बेहतरीन जज़ा जो किसी बेटे को उसके बाप की तरफ़ से मिल सकती हो।"[3] यह इज़्ज़ते नफ़्स, इतमीनाने क़ल्ब और सिबाते ज़मीर का अजब मुरक़्क़ा था।

13. **नैनवाः** क़ाफ़िला रास्ता क़ता (तय) कर रहा है। इमाम आगे बढ़ते जा रहे हैं और हुर की तरफ़ से भी कोई मज़ाहमत (रोक टोक) नहीं की जा रही है। यहाँ तक कि नैनवा की ज़मीन तक पहुँचना हुआ। यहाँ पर सवार मुसल्लेह (हथियार समेत) कूफ़े की तरफ़ से आता दिखाई दिया, और सब ठहर कर

---

[1] तबरी जि/6, पेज/231, अख़बारूत तुवाल पेज/249

[2] तबरी जि/6, पेज/231

[3] तबरी जि/6, पेज/231–232, इरशाद पेज/237

उसका इन्तेज़ार करने लगे। जब क़रीब पहुँचा तो उसने हुर और उसके असहाब को सलाम किया लेकिन हुसैन[अ०स०] और असहाबे हुसैन[अ०स०] को सलाम करना ज़रूरी नहीं समझा। यह इब्ने ज़ियाद का क़ासिद था जो हुर के नाम ख़त लाया था। उस ख़त में लिखा था कि तुम को लाज़िम है कि जहाँ पर तुम को यह ख़त पहुंचे वहाँ पर हुसैन को आगे बढ़ने से रोक दो और उन्हें ऐसी जगह क़याम करने पर मजबूर करो जहाँ आबो गियाह मौजूद न हो और न कोई क़िला या जाये पनाह हो। और मैंने अपने फ़रस्तादा (भेजने वालो) को हुक्म दे दिया है कि वह तुम्हारे साथ साथ रहे और तुम्हारी कारगुज़ारी की मुझे इत्तेला दे।[1] और तुम से जुदा न हो जब तक कि मेरे हुक्म की तामील न हो जाये। वस्सलाम।[2] इस से मालूम होता है कि इमाम के साथ हुर के रवादाराना बर्ताव की इत्तेला इब्ने ज़ियाद को हो गई। उसका इमाम के पीछे अपनी फ़ौज समेत नमाज़ पढ़ना और फिर कूफ़े ले जाने के मुतालबे से दस्त बरदार हो कर यह सूरत तजवीज़ करना कि मदीना और कूफ़े के अलावा दूसरा कोई रास्ता इख़्तियार किया जाये। यह बातें वह हो सकती हैं जिन से हुर की वफ़ादारी इब्ने ज़ियाद की निगाह में मशकूक बन जाये और शायद इसी बिना पर उसे ज़रूरत महसूस हुई कि वह अपने हुक्म की तामील में हुर की निगरानी अपने क़ासिद से कराये। हुर जो कुछ भी हो अभी तक दुनिया का बन्दा था इस लिए हज़ार नाचारी व मजबूरी और ना ख़्वास्तगी–ए–तबा (तबियत न चाहते हुए भी) के साथ सही मगर उसने इमाम और आपके असहाब के रूबरू आकर यह ऐलान किया कि यह अमीर इब्ने ज़ियाद का ख़त है। इस में मुझे हुक्म दिया गया है कि जहाँ भी मुझे यह ख़त पहुँचे वहीं पर मैं आपको उतरने पर मजबूर करूँ। और यह इब्ने ज़ियाद का क़ासिद है जिसे हुक्म है कि वह मुझ से बग़ैर इस हुक्म की तामील कराये हुए अलग ही न हो। इस तरह हुर ने वाक़ई सूरते हाल को सफ़ाई के साथ पेश कर दिया। उसके बाद इमाम ने न चाहा कि उसके ज़मीर की ताक़त का ज़्यादा इम्तिहान लिया जाये। आपने इतना कहा कि अच्छा हम को ज़रा आगे बढ़कर इस क़रिये (देहात, जगह) में क़याम करने दो जिस का नाम ग़ाज़रिया है या उस दूसरे क़रिये में जिस का नाम शफ़ीय्या है।[3] मगर हुर ने कहा कि मुझे इस का इख़्तियार नहीं है। मुझे

---

[1]अख़बारूत तुवाल, पेज/249–250

[2]तबरी जि/6 पेज/232, इरशाद पेज/238

[3]देनवरी ने सक़ीया लिखा है। अख़बारूत तुवाल पेज/250

तो हुक्म है कि मैं आपको खुश्क सहरा में उतारूँ जहाँ आबो गियाह न हो और यह शख़्स मुझ पर निगरान मुक़र्रर किया गया है कि यह मेरे तर्ज़े अमल की जा कर इत्तेला दे। इस जवाब पर असहाबे इमाम में जोश पैदा हो गया और ज़ुहैर बिन क़ैन ने कहा कि "फ़रज़न्दे रसूल! इनसे जंग कर लेना हमारे लिए आसान है बनिसबत उन लोगों से जंग करने के जो इनके बाद आयेंगे क्योंकि उसके बाद इतनी फ़ौजें आयेंगी कि उनके मुक़ाबले की हम में ताक़त न होगी।" मगर इमाम ने फ़रमाया कि नहीं, मैं जंग में इब्तेदा करना नहीं चहता।"[1]

आख़िर इमाम हुसैन[अ0स0] ने हुर से फ़रमाया कि अच्छा कुछ तो चलने दो, और हुर ख़ामोश हो गया।

14. **करबला:** इमाम ज़रा बाईं तरफ़ मुड़ कर थोड़ा सा चले थे कि सिपाहे हुर सामने आकर सद्दे राह हो गई और कहा कि बस यहीं उतर पड़ये। फ़ुरात यहाँ से दूर नहीं है। इमाम ने नाम पूछा, मालूम हुआ करबला। फ़रमाया: "अच्छा कर्बो बला की यही मन्ज़िल है।" यह कह कर घोड़े से उतर पड़े।[2] यह दूसरी मोहर्रम सन 61 हिजरी पन्जशम्बा (जुमरात) का दिन था।[3]

अब जबकि इमाम का सफ़र मन्ज़िले आख़िर तक पहुंच गया तो ज़रूरी मालूम होता है कि इस सफ़र के मुख़्तलिफ़ पहलूओं पर एक सैर हासिल तबसेरा कर दिया जाये ताकि उसकी अहमियत और ज़रूरत कुछ और वाज़ेह हो जाये।

यह तो पहले बयान हो चुका है कि इमाम का मक़सद यज़ीद से इस तरह की जंग करना न था जैसी दुनिया में हुआ करती हैं। आपको न सलतनत का हासिल करना मक़सूद था, न बराहे रास्त यज़ीद की सलतनत का ख़त्म करना बल्कि आप का मक़सद यह था कि मुसलमानों को ख़्वाबे ग़फ़लत से बेदार कर दें और उन में एक ऐसा इन्क़ेलाबे ज़ेहनी पैदा कर दें कि वह यज़ीदी किरदार को उसी अस्ली शक्ल में देखने लगें और उसके ज़ाहरी दावाये इस्लाम से धोखा न खायें। इसके लिए आप ने मदीने से रवानगी इख़्तियार की। जहाँ तक मदीने से निकलने का तअल्लुक़ है पूरे तौर से उस पर तबसेरा किया जा चुका है। अगर आप मदीने में क़याम करके और वहाँ रह

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/250, तबरी जि/6, पेज/232, इरशाद पेज/238–239

[2]तबरी जि/6, पेज/232, इरशाद पेज/239

[3]देनवरी ने चहारशम्बा (बुध) यकुम मोहर्रम लिखा है। अख़बारूत तुवाल पेज/251

कर यज़ीद के मुक़ाबले में जंग करते या क़ुर्बानी पेश करते तो उससे वह नौइयत पैदा न होती जो आपके मद्दे नज़र थी। या ज़हर काम करता और या तलवार, मगर तलवार कैसी, जिस की ज़िम्मेदारी किसी सूरत से सलतनते शाम पर आएद न हो सकती बल्कि कोई ख़ारजी निकलता इब्ने मुलजिम का सा जिस ने अली[अ0स0] को शहीद किया था या कोई तीर आता आदमी नहीं बल्कि जिन्नों की तरफ़ से जैसा कि इस्लामी तारीख़ में सअ्द बिन उबादा का शाम में ख़ातिमा हुआ था। यही होती हैं आम हुकूमतों की शोबदा कारियाँ (मक्कारियाँ) जिनका नाम दुनिया ने "सियासत" रखा है। हज़रत इमाम इस तरह की सियासत के गुरों को खूब समझते थे चाहे खुद अख़लाक़ी व इस्लामी पाबन्दियों की वजह से इख़्तियार न करें। उन्होंने मदीना इस लिए छोड़ा कि उनका वाक़ेय–ए–शहादत कोई अचानक और बे सान व गुमान का हादिसा न समझा जाये। जाकर क़याम किया, कहाँ? मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा में जो क़ल्बे जज़ीरतुल अरब (अरब का दिल) था और जहाँ हज के लिए बहर हाल हर तरफ़ से खिंच खिंच कर मुसलमान जमा होते थे। अलावह फ़रीज़–ए–हज के जो इस्लामी शरीयत की रू से हर मुस्ततीअ् (साहिबे हैसियत) मुसलमान पर वाजिब है। खुद अरब के क़दीम रिवायात और साबिक़ा अमल दर आमद की वजह से सदियों से क़ायम था अरब के इस ख़ित्ते को तमाम मुख़तलिफ़ुल ख़याल क़बाएल (अलग अलग ख़याल के क़बीले) अरब का महल्ले इज्तेमा (जमा होने की जगह) होना ज़रूरी था। वह मशहूर कॉन्फ्रेंसें जो शेअ्रो सुख़न और ख़रीदो फ़रोख़्त के लिए क़ायम होती थीं जिनको "असवाक़ुल अरब" (अरब के बाज़ार) कहा जाता था। ज़ीक़ादा से लेकर मोहर्रम तक मक्के व ताएफ़ और मदीने के दरमियान ही क़ायम होती थीं। इमाम हुसैन[अ0स0] की शख़सियत दुनियाए अरब में कोई अजनबियत न रखती थी अगरचे मज़हबी एहसासात मुर्दा हो गए थे और हज़रत को आपके पूरे मरातिब के साथ लोग न पहचानते थे लेकिन रसूल[स0अ0] के नवासे, सुलताने हिजाज़ (आज का सऊदी) व इराक़ के फ़रज़न्द, मुल्के अरब के सब से बड़े सख़ी जिसके दर से कोई साएल महरूम नहीं फिरा। बनी हाशिम के बुज़ुर्ग ख़ानदान और इस्लाम के सब से बड़े आलिम, यह उनवान वह थे जिनसे कोई भी नावाक़िफ़ नहीं था। हुसैन[अ0स0] ने यही ख़ास ज़माना कि जो तमाम क़बाएले अरब के इज्तेमा का था मक्का में अपने क़याम के लिए तजवीज़ किया। इमाम हुसैन[अ0स0] का यहाँ ख़ामोशी के साथ क़याम भी तमाम अतराफ़े मुल्क में आपकी बैयते यज़ीद से किनारा कशी के एलान के

लिए काफ़ी था और यही सब से बड़ी वह वजह थी जिसकी बिना पर आपकी ज़िन्दगी सियासते वक़्त के लिए यहाँ भी नाक़ाबिले बर्दाश्त साबित हुई। चुनानचे यज़ीद की तरफ़ से हाजियों के भेस में आदमी भेजे गए ताकि वह आपको गिरफ़्तार कर लें या क़त्ल कर दें।

इमाम हुसैन[अ0स0] जैसा कि आप ने मक्के से रवानगी के वक़्त फ़रमा दिया था यह न चाहते थे कि आप मक्के के अन्दर शहीद किये जायें जिसकी बिना पर ख़ान–ए–काबा की हुरमत ज़ाएल हो। फिर यह भी ज़ाहिर है कि ख़ान–ए काबा के गिर्दो पेश हज के ज़माने में हर क़िस्म के लोग हर तरफ़ से आये हुए होते हैं और इमाम हुसैन[अ0स0] के लिए यह ग़ैर मुमकिन था कि आप अरफ़ात, मिना, मशअ्र, मक़ाम हर जगह अपने साथ मुहाफ़िज़ रखते। ऐसी सूरत में बहुत आसान था कि हज्रे असवद के इस्तीलाम (चूमने) के वक़्त, अरफ़ात में वक़ूफ़ (ठहरने) की हालत में, मशअ्र की तरफ़ वापसी के दौरान में मिना में कुर्बानी के मौक़े पर, मक़ामे इब्राहीम[अ0स0] में नमाज़ पढ़ने की हालत में किसी वक़्त आप पर क़ातिलाना हमला हो जाता और क़ातिल मौजूदा हंगाम व अज़दहाम के अन्दर गुम हो जाते। उसके बाद कौन कह सकता था कि हुसैन[अ0स0] का क़ातिल हक़ीक़तन यज़ीद या उसका कोई फ़रस्तादा है।

इस शदीद ख़तरे की बिना पर इमाम हुसैन[अ0स0] ने मक्के को छोड़ा इस तरह कि हज को भी मुकम्मल न किया जिसका सबब वही हंगामी सूरते हाल थी जो पैदा हो गई थी मगर जैसा कि अल्लामा सैयद हैबतुद दीन शहरिस्तानी ने "नहज़तुल (इरादा) हुसैन" में लिखा है इस तरह दफ़अतन ऐसे मौक़े पर इमाम की रवानगी ने तमाम क़बाएले अरब के नुमाइन्दों में एक बिजली की सी लहर दौड़ा दी। और अगर कोई तारीख़ इस मौक़े की मुकम्मल उसी वक़्त क़लम्बन्द की गई होती तो उस में ज़रूर नज़र आता कि उस मौक़े पर किन ख़यालात का इज़हार किया जाता था। हुसैन बिन अली[अ0स0] कहाँ चले गए? हज भी न किया? आख़िर तमाम अहलो एयाल व अक़रबा के साथ अपने नाना की क़ब्र के जवार को क्यों छोड़ दिया?

"यज़ीद के ख़ौफ़ से।"

"क्यों? यज़ीद क्या चाहता है?"

"हुसैन[अ0स0] से बैयत का तालिब है।"

लाहौला वला कुव्वता। भला ऐसा क्यों कर हो सकता है? फ़रज़न्दे रसूल सा हक़ आशना यज़ीद ऐसे शराबख़्वार और ज़िना कार की बैयत करे। अच्छा

फिर मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा में क्यों क़याम न किया, किस लिए हज को भी मुकम्मल न किया?

"जान का ख़तरा था। शायद मक्के में हुसैन[अ0स0] को क़त्ल करने के लिए शाम से कुछ लोग भेजे गए थे।" तौबा। तौबा! इस से बढ़कर सफ़्फ़ाकी और ज़ुल्म क्या होगा? अरे फरज़न्दे रसूल को हरम में भी चैन न लेने दिया। कम व बेश इस क़िस्म के तज़किरे होंगे जो मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा और उसके अतराफ़ व जवानिब में अक्सर बाख़बर हलक़ों में बड़ी कूव्वत के साथ हो रहे होंगे। उस ज़माने में जब मुरासिलत (पैग़ाम) व मुख़बिरत (ख़बरों) के तरीक़े महदूद थे और तार, टेलीफ़ोन, रेडियों वग़ैरह ख़बर रसानी के ज़राए नायाब, (न थे) इस से बेहतर कोई सूरत वाक़ेआत की इशाअत के लिए नहीं हो सकती थी इसलिए कि बाद इख़्तेतामे हज जो शख़्स भी अपने शहर में वापस आता उसको ताज़ा वाक़ेआत के ज़िम्न में हुसैन[अ0स0] की नक़्लो हरकत और उसके असबाब व इलल (सबब) का बयान करना ज़रूरी था।

इसका मतलब यह नहीं कि इमाम की मुवाफ़िक़त में किसी लशकर के जमा होने का इम्कान पैदा हो गया था। बल्कि यह कि पहले से उन हालात की इशाअत हो जाने की वजह से आपकी शहादत ना मालूम असबाब व इलल (सबब) का नतीजा क़रार नहीं दी जा सकती और हुकूमते शाम को इसके मुतअल्लिक़ अपने सियासी मफ़ाद के लिहाज़ से मख़सूस वजूह (वजह) तराशने का मौक़ा नहीं मिल सका और इमाम हुसैन[अ0स0] की मज़लूमियत व हक़्क़ानियत पर पर्दा न डाला जा सका। लेकिन अगर ऐसा न होता तो सलतनते यज़ीद की तरफ़ से इमाम की शहादत को तरह तरह के लिबास पहनाये जाते, और आईन (क़ानून) व शआएरे (तरीक़े) इस्लाम के तहफ़्फ़ुज़ का वह बलन्द मक़ाम जो इमाम के पेशे नज़र था इतने कामयाब तरीक़े पर हासिल न होता। मगर यह इमाम के इन्तेहाई मुदब्बिराना तरीक़–ए–कार का नतीजा था कि इधर इमाम शहीद हुए और उधर तमाम दुनिया ने इस बात को तस्लीम कर लिया कि आप नाहक़ क़त्ल किये गए। शाम का हाकिम और उसके वुज़रा और हवा ख़्वाह (चापलूस) किसी तोहमत के तराशने का मौक़ा न पा सके। इस लिए कि इमाम हुसैन[अ0स0] ने अपनी नक़्लो हरकत के असबाब को अपनी शहादत के पहले ही आलमे इस्लाम में शाये करके दुश्मनों की ज़बानें बन्द कर दीं और अपनी हक़्क़ानियत के सामने दुनिया का सर ख़म करा लिया।

नतीजे के एतेबार से कहा जा सकता है कि हुसैन[अ0स0] का क़ाफ़िला जो मक्के से निकल कर जा रहा था एक ख़ामोश मुबल्लिग़ था। इस लिए कि हज की वजह से इराक़, यमन, ताएफ़ वग़ैरह सब तरफ़ से क़बाएल मक्के में आ रहे थे और इधर इमाम हुसैन[अ0स0] अपने अहले (फ़ैमली) अक़रबा (अज़ीज़) अन्सार व असहाब की जमाअत के साथ ख़ैमा व ख़रगाह (बड़ा ख़ैमा) तमाम असबाब साथ लिये एक क़ाफ़िले की सूरत में मक्के से जा रहे थे। आलमे मुसाफ़िरत में ज़िन्दगी गुज़ारने वाले वाक़िफ़ हैं कि रास्ते में चार पाँच आदमियों का भी क़ाफ़िला नज़र आये तो खोज पैदा हो जाती है कि यह कौन लोग हैं? कहाँ से आते हैं? और क्यों? फिर कहाँ इमाम हुसैन[अ0स0] और आपके असहाब व अन्सार का शानदार क़ाफ़िला, हज के सिर्फ़ दो दिन बाक़ी रहते हुए मक्क–ए–मुअज़्ज़मा की तरफ़ से आ रहा हो जबकि दुनिया मक्क–ए–मुअज़्ज़मा की तरफ़ हज के लिए जा रही हो। यह वजूह यक़ीनन जाज़िबे नज़र (क़ाबिले ग़ौर) और बाइसे तवज्जोह थे और एक अजनबी शख़्स को यह पूछना नागुज़ीर (यक़ीनन) था कि यह कौन जमाअत है? और कहाँ जा रही है? और इमाम हुसैन[अ0स0] का नाम मालूम होने पर इसी क़िस्म का मुकालमा जैसा ऊपर दर्ज हो चुका है, उनके दरमियान लाज़मी तौर पर शुरू हो जाता होगा। चुनानचे तारीख़ें शाहिद हैं कि फ़रज़दक़ की मुलाक़ात इमाम से यूंही हुई और अब्दुल्लाह बिन मुतीअ् और उमर बिन अब्दुर्ररहमान मख़ज़ूमी की भी कि वह मक्के की तरफ़ जा रहे थे और इमाम मक्के की तरफ़ से आ रहे थे इस से ज़ाहिर है कि हुसैन बिन अली[अ0स0] और हाशिमी जवानों का शानदार क़ाफ़िला जो ख़ान–ए–काबा को बमजबूरी छोड़ कर दश्ते ग़ुरबत में राह पैमा था दूर दूर के लोगों को हालात की तहक़ीक़ और हक़ीक़त समझने पर मजबूर कर देता था।

मक्के से निकलने के बाद आप ने कूफ़े का रूख़ किया। इस लिए कि अहले कूफ़ा के इन्तेहाई इसरार को अदमे एतेमाद (भरोसा न करने) की बिना पर मुस्तरद कर देना अख़लाक़ी व मज़हबी हैसियत से किसी तरह आपके नज़दीक मुनासिब न था ख़ुसूसन जबकि आप के मोतमद (भरोसे मन्द, ख़ास) सफ़ीर (मुस्लिम बिन अक़ील) ने वहाँ के हालात को क़ौल व क़रार के मुवाफ़िक़ पा कर आपको इसकी इत्तेलाअ् भी दे दी थी। जिसके बाद इमाम के लिए उनके मुतालिब–ए–हिदायत की आवाज़ पर लब्बैक कहते हुए इतमामे हुज्जत करना एक फ़रीज़ा था मगर इस ज़िम्न (सिलसिले) में उस इन्क़ेलाब के लिए

जो हज़रत की शहादत से पैदा होने वाला था कुछ मज़ीद असबाब का इज़ाफ़ा हो गया। ज़ाहिर है कि हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] वतन से बेबसी और बेकसी के साथ निकले थे। मक्के में भी कोई क़ाबिले इतमीनान हालत न थी मगर मक्के से आपका सफ़र इख़्तियार करना अहले कूफ़ा के मेहमान की हैसियत से था और अरब की ग़ैरत व हमियत का तक़ाज़ा मेहमान के बारे में ज़रबुल मसल (अरब की मेहमान नवाज़ी की मिसालें दी जाती हैं) की हैसियत रखता है। यह बिल्कुल सही है कि ऐन मौक़े पर अहले कूफ़ा कसरत के साथ इमाम हुसैन[अ0स0] की नुसरत के लिए नहीं पहुँच सके या नहीं पहुंचे मगर इन्सानी और अरबी फ़ितरत के लाज़मी नतीजे के तौर पर यह यक़ीनी था कि बाद को अहले कूफ़ा के दिल में एक अजीब बेक़रार एहसास पैदा होगा इसका कि हम ने बुलाया था और मदद न की और यही एहसास आगे बढ़ कर और परवरिश पाकर एक अज़ीम सैलाब की सूरत में उमडेगा जो उस सलतनत के बेड़े को हमेशा के लिए डुबो कर छोड़ेगा जिस का नतीजा होगा इमाम की फ़तह और दुश्मन की शिकस्त। बनी उमैया की अदावत और उनके वसी ज़राये हुकूमत को देखते हुए यह मानना पड़ेगा कि इमाम हुसैन[अ0स0] तो मुल्के अरब में जहाँ जाते आख़िर में शहीद होते लेकिन ज़ाहरी हैसियत से यह नतीजा मुरत्तब न होता जो कूफ़े की तरफ़ आने की सूरत में हुआ। वह लोग जो मुस्लिम की शहादत के बाद आपको वापसी का मशवरा दे रहे थे यक़ीनन नेक नीयत और अपने नुक़त–ए ख़याल के लिहाज़ से हक़ बजानिब भी होंगे मगर उन्हें हुसैनी इक़दाम की नौइयत का अन्दाज़ा न था। इराक़ का सफ़र इख़्तियार करना अगर कुछ खुशगवार तवक़्क़ुआत पर मबनी होता तो बेशक अब इस इरादे को बदल जाना चाहिए था इस लिए कि वह तवक्क़ुआत अब मायूसी से बदल गये थे लेकिन जबकि इमाम के सामने कोई उम्मीदों का सब्ज़ बाग़ नहीं था बल्कि इस हद से बढ़े हुए इसरार की पज़ीराई (तारीफ़) और ग़ैर मामूली तलब व दावत की कुबूलियत थी जिस से इतमामे हुज्जत का मक़सद पूरा होता था तो इस इरादे को इतने पर कि आपको मुस्लिम की ख़बरे शहादत मिल गई मुतज़लज़ल (डगमगाना) न होना चाहिए था। बल्कि इस्तेक़लाल व सिबाते क़दम, कोहे आसा (मिस्ल पहाड़ के) अज़्म और पुख़तगि–ए–इरादा, वादे की पाबन्दी और उसूल के तहफ़्फ़ुज़ का तक़ाज़ा यह था कि आप अमलन इसका सुबूत पेश कर देते कि आप अपने वादे पर क़ायम रहे। यहाँ तक कि आगे बढ़ने में ख़ूँरेज़ी और नक़्ज़े अम्ने आम्मा (अम्न के ख़तरे) के बाइस होने का

अन्देशा हो गया। इसके अलावा अभी मुस्लिम की शहादत के तफ़सीली हालात भी तो आम तौर पर लोगों को मालूम न थे और ज़ाहरी असबाब की बिना पर यह मुमकिन था कि वह बड़ी ख़ूँरेज़ लड़ाई के बाद शहीद हुए हों जिस में अहले कूफ़ा ने पूरे तौर पर दादे शजाअत दी हो लेकिन सरकारी फ़ौज के मुक़ाबले में सर बर (सामने न आये) न हुए हों और मुमकिन है उनके दिल में यह अरमान होता या बाद में कहने का मौक़ा मिलता कि अगर इमाम हुसैन[अ0स0] आ जाते तो हमें ताज़ा कूव्वत हासिल हो जाती और हालात का वरक़ बिल्कुल पलट जाता। इस सूरत में आपका यहीं से वापस हो जाना जबकि कूफ़े के बहुत से लोग गोया आप ही की ख़ातिर से एक बड़ी मुसीबत और कशमकश में मुबतिला हो चुके। बड़ी कमज़ोरी और कम हिम्मती का नमूना समझा जा सकता था। आपने इरादे में तबदीली की बस उस वक़्त जब हुर का लशकर आप से दो चार हुआ और यह मालूम हुआ कि वह आपको इब्ने ज़ियाद के पास ले जाने पर मामूर है। अब इमाम[अ0स0] ने अपना इरादा बदल दिया इस लिए कि अब आपका आगे बढ़ना दो ही सूरतों से हो सकता था। एक तो यह कि आप जंग आज़मायाना (मुकम्मल जंग की) सूरत से फ़ौजों को दरहम बरहम और रास्ते को साफ़ करते हुए कूफ़े पर हमला आवर होते और इब्ने ज़ियाद को कूफ़े से निकाल कर वहाँ अपनी अलमदारी क़ायम करते, दूसरे यह कि आप सब्र व ख़ामोशी के साथ जिस तरह अब तक आ रहे थे उसी तरह कूफ़े की तरफ़ अपनी रफ़्तार को जारी रखते।

दूसरी सूरत मौजूदा हालात में ग़ैर मुमकिन थी क्योंकि अब तक आपका आगे बढ़ना खुद मुख़ताराना हैसियत से और खुद अपने इरादे से था मगर हुर की फ़ौज के इस क़स्द से आने के बाद कि वह आपको कूफ़ा इब्ने ज़ियाद के पास ले जाये आपका ख़ामोशी के साथ आगे बढ़ना उस फ़ौज के हाथ में असीर होने और इब्ने ज़ियाद का क़ैदी बन जाने का मुरादिफ़ (जैसा) होता क्योंकि अभी यह हुर की सिपाह है और आगे बढ़ कर हसीन का फ़ौजी मरकज़ है और वहाँ से फिर अफ़वाज के मुहासरे (फ़ौजों के घिराव में) में इब्ने ज़ियाद के पास ले जाया जाना है जिसके बाद आपका मुआमला इब्ने ज़ियाद के हाथ में है।

इसी लिए आपने हुर के इस इज़हार का कि हम आपको इब्ने ज़ियाद के पास ले जाने के लिए आये हैं इन्तेहाई तुर्श जवाब दिया कि मौत तुम्हारे लिए उससे क़रीब तर साबित होगी।

बेशक पहली सूरत बाक़ी थी और वह यह कि आप कूफ़े पर हमला आवर होते और ग़नीम (दुश्मन) की फ़ौज को पसपा करके वहाँ अपना क़ब्ज़ा जमाते मगर एक तो ज़ाहरी असबाब की बिना पर आपके साथ मौजूदा फ़ौजी ताक़त ऐसी नहीं थी कि वह यज़ीद की मुनज़्ज़म अफ़वाज का मुक़ाबला कर सकती और बग़ैर ऐसी ताक़त के मौजूद हुए एक जगह घेर लिये जाने के बाद दिफ़ाई हैसियत से बहत्तर नुफ़ूस को साथ ले कर तीस हज़ार का मुक़ाबला कर लेना तो ऐन शजाअत व हिम्मत और क़ाबिले सताइश तरीक़–ए–कार है मगर इस क़लील तादाद के साथ ग़नीम (दुश्मन) पर जारिहाना तर्ज़ पर हमला आवर होना सिवाए तहव्वुर (बग़ैर सोचे समझे फट पड़ना) और ना आक़िबत अन्देशी (अन्जाम से बेख़बर) के और कुछ क़रार नहीं दिया जा सकता था। दूसरे यह आपके उस मसलक के ख़िलाफ़ है जो आप ने इख़्तियार कर रखा था कि आपकी इस मुक़ाविमत (अमल) में अवामी मुहाविरे (लोगों के कहने के मुताबिक़) के लिहाज़ से बग़ावत और शोरिश अंगेज़ी की सूरत पैदा न होने पाये। इसी लिए आप ने अपनी गुफ़्तगू में जो हुर के साथ हुई थी अपने इस नुक़्त–ए नज़र को वाज़ेह कर दिया था कि मैं बुलाया हुआ आया हूँ। अगर मेरा आना ना पसन्द है तो मैं वापस जाता हूँ।

चुनाँनचे फ़ौजे हुर की इस मज़ाहमत (रूकावट) के बाद आपने कूफ़े का ख़याल तर्क कर दिया और हुर की माकूल तजवीज़ के मुताबिक़ एक दूसरा रास्ता इख़्तियार फ़रमाया जिसने आगे बढ़ कर आपको मैदाने करबला में पहुंचा दिया।

और यही आप का अपनी तरफ़ से जंग की इबतिदा न करने का उसूल इसका भी बाइस हुआ कि जब करबला की सर ज़मीन पर पहुंच कर फ़ौजे हुर ने सख़्ती के साथ आगे बढ़ने से रोका तो आप ने वहीं पर ख़ैमे नस्ब करा लिये क्योंकि अब बग़ैर जंग किये हुए आगे बढ़ना मुमकिन न था फिर आगे बढ़ने की सूरत में अगर कोई अहम मरकज़ आपके पेशे नज़र होता जहाँ आप इतमीनान के साथ ज़िन्दगी बसर करें तो उन लोगों से अपने मक़सद में सद्दे राह होने की बिना पर जंग भी कर ली जाती लेकिन जब आपके पेशे नज़र ऐसा कोई ख़ास मरकज़ नहीं था तो सिर्फ़ इस बात पर जंग करना कि हम यहाँ नहीं ठहरेंगे बल्कि कुछ आगे जा कर ठहरेंगे, एक ला हासिल सी बात होती।

चुनाँनचे फ़ौजे मुख़ालिफ़ के मुतालबे पर आप ने करबला की सर ज़मीन पर फ़ुरात के किनारे से हट कर ख़ैमे नस्ब कर लिये। जिस ज़मीन को अब करबला कहा जाता है। यह हक़ीक़तन मजमूआ है चन्द ज़मीनों और क़रियों (क़सबों) का जो उस ज़माने में बिल्कुल पास पास वाक़े थे। उसकी मिसाल ज़मींदारियों और जागीरों और मवाज़आत (गाँव) की हैसियत से हर मुल्क में मौजूद है और ख़ुसूसियत से अरब में ऐसा पाया जाता था कि छोटे छोटे क़तआते अर्ज़ (ज़मीन के हिस्से) के मुस्तक़िल नाम होते थे जिन्हें अगर एक की ख़ुसूसियत के लिहाज़ से देखा जाता तो वह कई मक़ाम मुतसव्वुर (ख़याल किये जाते थे) होते थे और अगर उनके बाहमी क़ुर्ब (एक दूसरे से क़रीब) पर नज़र की जाती तो वह सब एक क़रार पाते थे और इस तरह एक जगह का वाक़ेया दूसरी जगह की तरफ़ मन्सूब किया जा सकता था।

जैसा कि अल्लामा सैयद हैबतुद दीन शहरिस्तानी ने नहज़तुल हुसैन में लिखा है, वाक़ेय–ए–करबला के महल्ले वुक़ूअ् (जिस जगह वाक़ेआ रूनुमा हो) के मा तहत जो बहुत से नाम गोश ज़द (कानों में रचे बसे) हैं, करबला, नैनवा, ग़ाज़रिया, शत्ते फ़ुरात उन्हें एक ही जगह के मुतअद्दिद नाम नहीं समझना चाहिए बल्कि वह मुतअद्दिद जगहें थीं जो बाहमी क़ुर्ब (एक दूसरे से क़रीब) की वजह से एक ही समझी जा सकती थीं और इस लिए महल्ले वक़ू वाक़ेये के एतेबार से हर एक का नाम तआरूफ़ के मौक़े पर ज़िक्र किया जाना सही क़रार पाता था।

नैनवा:[1] यह एक क़रिया (गाँव) था जिसे मौजूदा ज़माने के सद्द–ए–हिन्दिया के क़रीब समझना चहिए। इसके पहलू में ग़ाज़रिया'' था यह क़बील–ए–बनी असद की एक शाख़ बनी ग़ाज़रिया की तरफ़ निसबत रखता था और उन ही का मुहल्ले सुकूनत (रहने की जगह) था। यह ग़ालिबन वह ज़मीन है जो अब हुसैनिया के नाम से मशहूर है। उसी जगह एक क़रिया शफ़िया था और यहीं पर एक क़तए ज़मीन ''कर्बला'' (तशदीदे लाम के साथ) पाया जाता था। वह अब मौजूदा शहर करबला के मशरक़ी (पूरबी) हिस्से में जुनूब की तरफ़ वाक़े है। इसके मुत्तसिल ''अक़्रबाबिल'' नाम का क़रिया था जो ग़ाज़रिया के शुमाल मग़रिब में वाक़े था। वहाँ अब खंडर हैं जिन में बहुत अहम आसारे क़दीमा के इन्केशाफ़ की उम्मीद की जाती है। और यह बिल्कुल दरिया–ए–फ़ुरात के किनारे पर था। और अपने क़ुदरती महल्ले वुक़ूअ् यानी

---

[1] .(नून के क़सरे के साथ)

टीलों में घिरे होने की वजह से एक क़िले की हैसियत रखता है। उसके मुक़ाबिल ग़ाज़रिया के दूसरी जानिब ''नवादीस'' का मक़ाम था जो मुसलमानों के फ़ुतूहात के क़ब्ल एक उमूमी क़ब्रिस्तान की हैसियत रखता था। उसके वसत (बीच) में ज़मीन ''हीर'' थी जो अब हायर के नाम से मारूफ़ है और जहाँ हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] की क़ब्रे मुबारक है। हीर एक वसी मैदान की हैसियत रखता था जो तीन तरफ़ से मुत्तसिल और पहलू ब पहलू टीलों से घिरा हुआ है। उन टीलों का सिलसिला शिमाल मशरिक़ (पूरब में बायीं तरफ़) की तरफ़ से जिधर हरमे हुसैनी का ''बाबुस सद्र (Main Gate)'' और मनार–ए–अब्द'' है शुरू होकर ग़र्ब (पश्छिम) की जानिब ''बाबे ज़ैनबिया'' के हुदूद तक पहुंचता था और वहाँ से पेचीदा होकर जुनूब (दक्खिन) की तरफ़ दरे क़िब्ला के मक़ाम तक आ कर ख़त्म होता था। उन मुत्तसिल (मिले) टीलों के इजतेमा से एक निस्फ़ दायरे (Half Sarcle) की शक्ल बनती थी जो ''नून'' की सूरत समझी जा सकती है। इस दायरे में दाख़िल होने का रास्ता मशरेक़ी (पूरबी) जिहत (सिम्त) में उस जानिब था जिधर रौज़–ए–हज़रत अब्बास[अ0स0] में जाने का रास्ता है।

तहक़ीक़ाती इन्केशाफ़ से अब तक यह बात पाई जाती है कि उन मकानात के आसार जो क़ब्रे इमाम हुसैन[अ0स0] के गिर्द हैं, शिमाली (उत्तरी) और मग़रिबी (वश्चिमी) जानिब ज़मीन की क़दीमी बलन्दी के क़रीने मौजूद हैं और मशरक़ी जानिब सिवा नर्म मिट्टी के जो पस्ती की तरफ़ मायल (नीचाई पर है) है। कुछ नज़र नहीं आता। इस से मालूम होता है कि उस मक़ाम की क़दीमी सूरत ऐसी ही थी कि शर्क़ (पूरब) की जानिब से हमवार और शिमाल और मग़रिब की जानिब हिलाली (चाँद की) शक्ल के तौर पर बलन्द थी। यही हिलाली दायरा वह था जिस में इमाम हुसैन[अ0स0] को घेर कर शहीद किया गया था। फ़ुरात की असली नहर जिसे हमारी ज़बान के एतेबार से दरिया–ए–फ़ुरात कहा जाता है उसका बराहे रास्त कोई तअल्लुक़ करबला की ज़मीन से न था। इस का ख़ते सैर (रास्ता) हिल्लाह, मुसैयब वग़ैरह मक़ामात से होता हुआ कूफ़े के बैरूनी हिस्सों की जानिब जाता था। करबला और उसके दरमियान बड़ा फ़ासला था लेकिन इस नहर या दरया–ए–फ़ुरात की एक छोटी शाख़ मक़ामे रिज़वानिया के पास से निकल कर जुदा होती थी जो करबला के शिमाल मशरिक़ की जानिब के रेगिस्तानों और नशेबों से होती हुई उस मक़ाम से हो कर गुज़रती थी जहाँ अलमदारे हुसैन अबुल फ़ज़लिल अब्बास की क़ब्र है।

और उसके बाद मौजूदा मक़ाम हिन्दिया की तरफ़ से होती हुई उस मक़ाम के शिमाल मग़रबी जानिब जिसका नाम ''क़रिय–ए–ज़ुलकिफ़्ल'' है अस्ल दरया–ए–फ़ुरात से मिल जाती थी। यह छोटी नहर ''अलक़मा'' के नाम से मौसूम थी और उसे अपनी अस्ल के एतेबार से फ़ुरात भी कह दिया जाता था। ''तिफ़'' के माना हैं ''नहर का किनारा'' ख़ुसूसियत से दरया–ए–फ़ुरात के उस किनारे को जो जुनूबी पहलू में बसरा से हबत तक था तिफ़ कहा जाता था और उसी मुनासिबत से ''फ़ुराते सग़ीर'' यानी नहरे अलक़मा के उस किनारे को जिस में करबला वाक़े था तिफ़ कहा जाने लगा। और इसी वजह से वाक़–ए–करबला को ''वाक़ेयतुत तिफ़'' कहा जाता है। और करबला को शत्ते फ़ुरात के नाम से भी इसी वजह से याद किया जाता है।

बीसवाँ बाब

यज़ीदी हुकूमत की सरगर्मी और करबला में फ़ौजों की आमद

मुस्लिम बिन अक़ील की शहादत के बाद कूफ़े में सख़्त गीरी इन्तेहा को पहुँच गई। इब्ने ज़ियादा को अन्देशा था कि कहीं ऐसा न हो कि मुस्लिम की बैयत करने वाले जो उनकी इमदाद से क़ासिर रहे वह अब अपनी कुव्वतों को मुजतमा करके कोई इन्क़ेलाब पैदा करें लिहाज़ा उस ने तलाश करके जिन जिन अशख़ास को हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] का हमदर्द समझा जा सकता था या उन पर ऐसा शुबहा भी हो सकता था उन्हें क़त्ल या क़ैद करना शुरू कर दिया।

मीसमे तम्मार और रशीद हुजरी उसी दौरान शहीद किये गए।

मुख़तार बिन अबू उबैदा जो मुस्लिम के जिहाद के ज़माने में कूफ़े के अन्दर मौजूद न थे और उसी दिन इत्तेला पा कर आये लेकिन ऐसे वक़्त पहुँचे कि मुस्लिम शहीद हो चुके थे और उम्र बिन हरीस ने रायते अमान बलन्द (अमान देने का वादा) किया था कि जो शख़्स उसके नीचे चला आयेगा उसका जान व माल महफ़ूज़ रहेगा। चुनाँनचे मुख़तार मौक़े की नज़ाकत को महसूस करते हुए उस झण्डे के नीचे चले गए मगर उन्हें उस पर भी अमान न मिल सकी और वह पा ब–ज़ंजीर करके क़ैद ख़ाने भेज दिये गए। इसी तरह अब्दुल्लाह बिन हारिस बिन नौफ़िल और दीगर अशख़ास।

उधर यज़ीद को दमिश्क़ में जनाबे मुस्लिम के क़त्ल की ख़बर के साथ ही हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] की मक्के से रवानगी की इत्तेला पहुँची तो उसने इब्ने ज़ियाद को ख़त लिखाः

''मुझे ख़बर मिली है कि हुसैन बिन अली इराक़ की तरफ़ मुतवज्जेह हो चुके हैं लिहाज़ा तुम को लाज़िम है कि होशियारी के साथ जासूस मुक़र्रर करो, मोर्चे मज़बूत करो और किसी शख़्स पर वहमो गुमान भी हो तो उसका तदारूक (तोड़) करो और फ़ौरन गिरफ़्तार कर लो।''

अब क्या था, जेल ख़ाने क़ैदियों से छलकने लगे जिसका इज़हार ख़ुद इब्ने ज़ियाद ने उसके बाद इन अलफ़ाज़ में किया कि "कोई ऐसा शख़्स नहीं जिस पर गुमान हो सकता था कि वह हुकूमत की मुख़ालिफ़त करेगा मगर यह कि वह क़ैद ख़ाने के अन्दर है।"

शहर के अन्दरूनी हालात पर इस तरह क़ाबू पाने के बाद उसने बाहर की तरफ़ तवज्जो की इस लिए कि उसे अन्देशा था कि कहीं बसरा व मदाएन और दीगर अतराफ़ के लोग इमाम हुसैन[अ0स0] की मदद के लिए न आ जायें। उसके लिए हुदूद (सरहदों) की नाका बन्दी हुई और क़ादसिया में जो हिजाज़ व इराक़ व शाम के ख़ुतूत सेर (एक जगह) का महल्ले इजतेमा था चार हज़ार सवारों के साथ हसीन बिन तमीम को जो अब तक कोतवाले शहेर की हैसियत रखता था मुक़र्रर किया गया और वाक़ेसा से लेकर क़तक़ताना लअलअ् और ख़ुफ़ान और अतराफ़ व जवानिब (दोनों तरफ़) में जो शाम व बसरा के रास्ते थे सब पर लशकर फैला दिया गया। यहाँ तक कि न कोई शख़्स आ सकता था और न जा सकता था।[1] चुनाँनचे क़ैस बिन मुसहर सैदावी जो इमाम हुसैन[अ0स0] का फ़रस्तादा (क़ासिद) ख़त अहले कूफ़ा के नाम ले जा रहे थे उसी क़ादसिया में पहुँच कर हसीन के हाथों शहीद हुए और जब इमाम ने बतने अक़ीक़ के बाद यह सुन कर कि फ़ौज सद्दे राह है सम्ते सफ़र में तब्दीली फ़रमाई तो हुरएक हज़ार के लशकर के साथ उसी फ़ौज में से भेजा गया जो क़ादसिया में हसीन की सरकर्दगी में मौजूद थी। जब हुर ने इब्ने ज़ियाद के ख़त की तामील करते हुए हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] को करबला में उतरने पर मजबूर कर दिया तो उसने इब्ने ज़ियाद को इसकी इत्तेला दी। यह वक़्त वह था कि मुल्के अजम (ईरान) में बग़ावत हो गई थी और "दस्तबा"[2] के मक़ाम पर क़बील–ए दैलम ने क़बज़ा कर लिया था। उस बग़ावत को फ़रू (ख़त्म) करने के लिए मशहूर फ़ातहे इराक़ साद बिन अबी वक़ास के बेटे उम्र बिन सअ्द को चार हज़ार फ़ौज का सरदार बनाया गया था और उसके लिए रय (तेहरान)और

---

[1]तबरी जि/6, पेज/222–223, अख़बारूत तुवाल पेज/243

[2]दस्तबा का नाम तारीख़ में हमादान और रय (तेहरान) की फ़तह के साथ साथ आता है। नईम बिन मक़रन ने उन मक़ामात को सन 22 हिजरी या 23 हिजरी में फ़तह किया। दस्तबा चन्द अहले कूफ़ा में तक़सीम कर दिया गया जिनके नाम यह हैं। इसमतह बिन अब्दुल्लाह ज़बी, मोहलल बिन ज़ैद ताई, सम्माक बिन अब्द अबी, सम्माक बिन मख़रमा असदी और सम्माक बिन ख़रशा अन्सारी। यह लोग मुसलमानों में सबसे पहले दस्तबा की छावनियों के वाली हुए और उन्होंने दैलम से जंग की। एक क़ौल यह है कि रय को क़र्जा बिन काब ने फ़तह किया। (तबरी जि/4, पेज/251) दस्तबा हमादान का जुज़ था और वहाँ की छावनियाँ हमादान तक फैली हुई थीं। (तबरी जि/4, पेज/252) नईम ने फ़तह करने के बाद रय का क़दीम शहर बरबाद कर दिया और उससे हट कर नये शहर की बुनियाद क़ायम हुई। (पेज/253)

सरहदे दस्तबा व दैलम की हुकूमत का परवाना लिख दिया गया था। चुनाँनचे यह फ़ौज ईरान जाने के लिए बाहर निकल भी चुकी थी।[1] और उम्र बिन सअ्द उस फ़ौज को साथ लिये कूफ़े के बाहर मक़ाम ''हम्माम आईन'' पर ख़ैमा ज़न था और अनक़रीब आगे बढ़ने वाला था।[2] अब इमाम हुसैन[अ0स0] की मोहिम जो दरपेश हुई तो इब्ने ज़ियाद ने उम्र बिन सअ्द को हुक्म दिया कि पहले इस मोहिम को सर करे और फिर उन की तरफ़ रवाना हो।[3]

उमरे सअ्द सहाबी तो नहीं मगर आम मुसलमानों की इस्तेलाह के मुताबिक़ ताबेई (हदीसें कोड करने वाला) ज़रूर था। ऐन ख़लीफ़–ए दोम उमर बिन ख़त्ताब के इन्तेक़ाल के दिन उसकी पैदाइश हुई थी।[4]और उसके सिने तमीज़ तक पहुँचने तक बहुत से सहाब–ए–रसूल मौजूद थे। यक़ीनी उनकी ज़बानी उसने वह अहादीस भी सुने होंगे जो पैग़म्बरे इस्लाम [स0] ने हुसैन [अ0] के बारे में फ़रमाए थे। नीज़ इमाम हुसैन [अ0] के साथ रसूल [स0] की इन्तेहाई मुहब्बत के वाक़ेआत उसके गोश ज़द (सुने होंगे) हुए होंगे। फिर हज़रत अली बिन अबी तालिब [अ0] के ज़मान–ए–ख़िलाफ़त में जब कि इमाम हुसैन[अ0स0] भी कूफ़े में मौजूद थे उमर बिन सअ्द का कुछ ऐसा कमसिनी और बे शऊरी का दौर न था। उसे यक़ीनी क़रीब से हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के महासिने ज़ात (ज़ाती ख़ूबियाँ) और बलन्द औसाफ़ व अख़लाक़ के मुशाहिदे का मौक़ा मिला होगा और जब से आप मदीने तशरीफ़ ले गए थे तो अब तक बीस बरस की मुद्दत में आने जाने वालों की ज़बान से उसने इमाम के ज़ोहदो तक़वा, इबादत व रियाज़त और ख़ुश अख़लाक़ी व सख़ावत के कितने ही वाक़ेयात ज़रूर सुने होंगे।

शायद इन्हीं उमूर का नतीजा था कि वह हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] से जंग को पसन्द न करता था और उसे एक गुनाह ख़याल करता था। चुनाँनचे उसने इन्कार किया और कहा कि मुझे माफ़ कर दीजिये तो बेहतर है। इब्ने ज़ियाद ने जवाब दिया कि अच्छा तो हमारा परवान–ए–हुकूमते रय का वापस कर दो। यह मुआमिला सख़्त था। उमरे सअ्द को रय की हुकूमत दिल से अज़ीज़ थी। जाह (हुकूमत) तलबी और हक़ शनासी के जज़्बों में कशमकश हुई। यहाँ तक

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/251

[2]तबरी जि/6, पेज/232

[3]तबरी जि/6, पेज/233

[4]तक़रीबुत तहज़ीब, पेज/190

कि उसे यकसूई (राय) हासिल करने के लिए एक दिन की मोहलत मांगना पड़ी। मोहलत मिली और उमरे सअ्द ने अपने मख़सूस अहबाब व अइज़्ज़ा से मशवरा किया। सब ने मुख़ालिफ़त की और इस मुहिम के लिए जाने से मना किया। हमज़ा बिन मुग़ीरा शैबा ने जो उसका भान्जा था हस्बे ज़ैल तक़रीर की: ''आप हुसैन[अ0स0] से जंग करने को न जाइये और गुनहगार होने के साथ साथ रिश्त–ए–क़राबत को क़ता (क़रीबी रिश्तों को तोड़ने) करने के मुरतकिब न होइये। ख़ुदा की क़सम अगर तमाम दुनिया का माल व दौलत और आलम भर की सलतनत आपके क़ब्ज़े में हो और फिर वह निकल जाये तो बेहतर है इससे कि आप हुसैन[अ0स0] के ख़ून का बार अपनी गर्दन पर लें।[1]

यह वह पहलू था जिसे उसके सच्चे मुशीर कार पेश कर रहे थे लेकिन दूसरी तरफ़ उसका जाह तलबी का जज़बा रह रह कर रय की हुकूमत का ख़याल दिला रहा था। वह एक दिमाग़ी कशमकश में मुबतिला था जिसे शब के तारीक पर्दे में उसके यह अशआर ज़ाहिर कर रहे थे।

ااترک ملک الری والرّی رغبتہ ام ارجع مذموما بقتل حسین

وفی قتلہ النار التی لیس د ونہا حجاب وملک الری قرۃ عینی

(यानी) क्या मैं रय की हुकूमत छोड़ दूँ दराँहालेकि वह मुझे दिल से पसन्द है। या मैं हुसैन[अ0स0] को क़त्ल करके तौक़े मज़म्मत में गिरफ़तार हूँ? उनको क़त्ल करने में दोज़ख़ की आग है जिसके मुतअल्लिक़ शक व शुबहे की गुन्जाइश नहीं और रय का मुल्क मेरी आँखों की ठंडक है।[2]

बाज़ मुअर्रिख़ीन इसके साथ मज़ीद अशआर और नक़्ल करते हैं जिनका मज़मून यह है कि हुसैन[अ0स0] के क़त्ल का जो कुछ जुर्म है उसका नतीजा मरने के बाद नुमायाँ होगा जो मालूम नहीं सही भी है या नहीं। फिर रय की नक़्द हुकूमत को छोड़ कर आख़िरत के राहत व आराम की उम्मीद बाँधना किस समझदार आदमी का काम हो सकता है।

ग़ालिबन इन अशआर की रिवायत सही है। इस लिए कि नतीजतन उमर बिन सअ्द के अमल से उसकी तस्दीक़ होती है। नतीजा यही था कि दुनिया की वक़्ती दिल फ़रेबी ग़ालिब आई और उसने फ़रज़न्दे रसूल से जंग करने पर कमर बाँध ली मगर एक आख़िरी बार ज़मीर की चुटकियों ने उसे फिर आमादा किया कि वह इब्ने ज़ियाद से कमज़ोर अलफ़ाज़ में सही माज़िरत कर ले।

---

[1]तबरी जि/6, पेज/133

[2]किताबुल बिलदान, पेज/271

चुनाँनचे उसने आकर कहा कि आप मुझको दस्तबा और दैलम के हुदूद की तरफ़ जाने पर मामूर कर चुके हैं। लोगों को इसका इल्म भी हो गया है और मेरी फ़ौज वालों ने भी वहीं जाने की तैयारी की है। बेहतर है कि आप मुझको उधर ही रवाना कीजिये और हुसैन इब्ने अली[अ0स0] के साथ जंग करने के लिए किसी और को अशराफ़े अहले कूफ़ा में से जो किसी तरह शख़सियत व शोहरत और फ़न्ने सिपहगिरी व महारते जंग में मुझसे कम नहीं रवाना कर दीजिये। चुनाँनचे उसने चन्द आदमियों के सरदाराने अहले कूफ़ा में से नाम भी ले दिये मगर इब्ने ज़ियाद बरहम हो गया और उसने कहा कि तुम्हें सरदाराने कूफ़ा के नाम मुझे गिनवाने की ज़रूरत नहीं है। मुझे अगर किसी को भेजना होगा तो तुम से मशवरा ले कर नहीं भेजूँगा। तुम तो अपने मुतअल्लिक़ कहो कि तुम्हें जाना है या नहीं? अगर नहीं जाना है तो हमारा परवान–ए–हुकूमत रय का वापस करो। उमरे सअ्द ने समझ लिया कि बग़ैर क़ुर्बानी के इस जुर्म से छुटकारा मिलना मुमकिन नहीं और क़ुर्बानी के लिए उसका नफ़्स तैयार नहीं होता था। आख़िर उसने इक़रार कर लिया कि अच्छा मैं ही जाऊँगा। चुनाँनचे वही चार हज़ार की फ़ौज जो मुल्के ईरान जाने पर कमर बस्ता थी करबला की तरफ़ रवाना हो गई और उमरे सअ्द उस फ़ौज के साथ इमाम हुसैन[अ0स0] के वरूदे करबला के दूसरे ही दिन[1] यानी तीसरी मुहर्रम को यहाँ पहुँच गया।

करबला में हुर के साथ एक हज़ार की फ़ौज पहले ही से मौजूद थी। अब उमरे सअ्द की फ़ौज मिला कर पाँच हज़ार हुई। इमाम हुसैन[अ0स0] और उनकी मुख़तसर जमाअत के लिए ज़ाहरी हैसियत में इतना लशकर बहुत था मगर इमाम हुसैन[अ0स0] की ख़ानदानी शजाअत और उनकी सच्चाई की ताक़त का इब्ने ज़ियाद के दिल पर इतना रोब था कि वह फ़ौज की ज़्यादा से ज़्यादा मिक़दार को भी कम समझता रहा। चुनाँनचे हसीन बिन तमीम कोतवाल शहरे कूफ़ा की सरदारी में क़ादसिया के नाके पर जो बाक़ी तीन हज़ार फ़ौज थी वह पूरी की पूरी करबला की तरफ़ मुन्तक़िल कर दी गई। उसके बाद कूफ़े में आम भर्ती का एलान कर दिया गया और इब्ने ज़ियाद खुद कूफ़े से बाहर निकल कर "नख़ीला" में जो करबला के रास्ते पर था आ कर ख़ैमा ज़न हो गया ताकि अपने सामने अफ़वाज का मुआएना करके पै दर पै करबला की जानिब रवाना करे और बड़े बड़े सरदाराने कूफ़ा हिजार बिन अबहर, शबस बिन रबई, अम्र बिन हज्जाज वग़ैरह को मामूर किया गया कि वह अपनी अपनी

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/251, तबरी जि/6, पेज/233

जमाअत के साथ करबला रवाना हों। उनमें से हर एक कसीर फ़ौज के साथ रवाना होता था। उनमें से किसी एक का कोई उज़्र भी सुना नहीं जाता था। चुनाँनचे शबस ने बीमारी का उज़्र किया था लेकिन इब्ने ज़ियाद ने कहाः तुम बीमार बन रहे हो, अगर तुम हमारी इताअत में हो तो हमारे दुश्मन से जंग के लिए रवाना हो। मजबूरन शबस भी रवाना हुआ। बाज़ अशख़ास ऐसे थे कि इब्ने ज़ियाद को अपनी सूरत दिखा कर फिर कूफ़े वापस चले जाते थे। जब इब्ने ज़ियाद को इसका इल्म हुआ तो उसने सवेद बिन अब्दुर्रहमान मन्क़री को कुछ सवारों के साथ कूफ़े रवाना किया कि जो शख़्स कूफ़े में नज़र आये और वह अभी तक हुसैन[अ0स0] से जंग करने को नहीं रवाना हुआ उसे गिरफ़्तार करके मेरे पास लाओ। चुनाँनचे सवेद ने कूफ़े के क़बीलों में गर्दिश की। इत्तेफ़ाक़ से एक शख़्स शाम का रहने वाला अपने किसी मतरूका (जाएदाद) के झगड़े में कूफ़े आया था। सवेद ने उसे पकड़ कर इब्ने ज़ियाद के पास भेज दिया। उसकी गर्दन मार दी गई। इस वाक़ेये से तमाम लोगों पर दहशत तारी हो गई और सब इमाम हुसैन[अ0स0] से जंग के लिए निकल खड़े हुए। [1]उसके बाद तारीख़ के लिहाज़ से मरदुम शुमारी की ज़रूरत नहीं और न उलमा के अक़वाल देखने की हाजत कि बीस हज़ार थे जिसे इब्ने ताऊस ने तरजीह दी है। या तीस हज़ार जिसको अल्लामा मजलिसी ने माना है। या पैंतीस हज़ार जैसा कि इब्ने शहर आशोब ने लिखा है, या एक लाख तक मुताबिक़ बाज़ अहले मक़ातिल की तहरीर के बल्कि गुज़िश्ता इन्तेज़ामात ही से ज़ाहिर है कि कूफ़े की तमाम क़ाबिले जंग आबादी करबला में उंडेल दी गई थी। जिसके बाद करबला की ज़मीन फ़ौजों की कसरत से मौजें मारने लगी थी।

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/252

इक्कीसवाँ बाब

अन्सारे हुसैन[अ०स०], उनकी क़िल्लते तादाद और उसके असबाब

साबिक़ा अबवाब (पिछले हिस्से) में उन वाक़ेयात व हालात का तज़किरा हो चुका है जिन से मालूम होता है कि कूफ़े की उस जमाअत में से जो हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] की हमदर्द थी और जिन्हें आपकी नुसरत का फ़रीज़ा महसूस हो सकता था एक कसीर तादाद पा बजंजीर कर ली गई थी। नीज़ हुदूद (उस पर से सरहदों) की नाका बन्दी[1]ने अतराफ़ व जवानिब के रहे सहे अशख़ास के लिए हज़रत तक पहुँचना दुशवार से दुशवार तर बना दिया था और कूफ़े से अगर कोई आने का क़स्द करता तो नख़ीला में जहाँ इब्ने ज़ियाद ने अपना पड़ाव डाला था गिरफ़्तार कर लिया जाता और किसी दूसरी तरफ़ से आना चाहता तो क़ादसिया व ख़ुफ़ान व क़तक़ताना, लअलअ् (यह सब कूफ़े के आस पास की जगहों के नाम हैं) वग़ैरह की किसी न किसी मन्ज़िल पर वह मुक़ैय्यद हो जाता।

इसके अलावा करबला में आपका वरूद अचानक तौर पर था इस लिए अतराफ़ व जवानिब में इसकी इत्तेला तक मुमकिन न थी जबकि बाद के वाक़ेयात बताते हैं कि उस वक़्त तक भी कि जब इमाम हुसैन[अ०स०] शहीद हो चुके हैं और असीरों को कूफ़े ले जाया गया है बहुत से अशख़ास इन वाक़ेआत से बे ख़बर थे ऐसी सूरत में यह मुमकिन ही न था कि आपके पास कोई बड़ी जमियत नुसरत के लिए पहुँच जाती। खुसूसन जबकि आप ने पहले ही से अपने साथ तादाद बढ़ाने की कोई कोशिश भी न फ़रमाई थी। फिर भी मज़कूरा बाला तमाम मुशकिलात के बावजूद शिअयाने कूफ़ा की वफ़ादारी और उलुलअज़्मी (पुख़्ता इरादे) का एक बड़ा तारीख़ी कारनामा यह है कि वह अफ़राद जो इमाम हुसैन[अ०स०] के कूफ़े की तरफ़ तशरीफ़ लाने की तहरीक के

---

[1]तबरी जि/6, पेज/222

ज़िम्मेदार थे जिन्हों ने हज़रत मुस्लिम बिन अक़ील से उनके वरूद (आने) के मौक़े पर पहले जलसे में वफ़ादारी का इक़रार व जाँबाज़ी का अहद किया था वह किसी न किसी तरह हुसैन बिन अली[अ0स0] तक पहुँच गए और अपनी जानें आपके क़दमों पर निसार कर दीं। और जो लोग उस जमाअत में से इमाम हुसैन[अ0स0] की नुसरत के लिए न पहुँचे या न पहुँच सके उन में से भी किसी मुतनफ़्फ़िस (शख़्स) की इमाम हुसैन[अ0स0] के ख़िलाफ़ मारिक–ए–करबला में मौजूदगी हरगिज़ पाई नहीं जाती। बल्कि कुछ कमज़ोर अज़्म व ईमान रखने वाले अशख़ास जो बज़ाहिर ज़ईफुल उम्र भी थे इस लिए इब्ने ज़ियाद की फ़ौज में जाने से भी मुसतस्ना (अलग) हो सके थे उस वक़्त जब करबला में जिहाद हो रहा था, बैरूने कूफ़ा टीले पर खड़े हुए आँसू बहा रहे थे और दुआयें मांग रहे थे कि खुदा वन्दा अपनी नुसरत नाज़िल फ़रमा अहले बैते रसूल[स0अ0] और उनके अन्सार पर, जिन्हें इस तरह देख कर रावी को गुस्सा आया और कहा कि ऐ कम बख़्तो तुम्हारे जज़बात यह हैं तो आख़िर खुद जा कर नुसरत क्यों नहीं करते?[1]

मगर यह तवक़्क़ो हर शख़्स से करना कि वह अज़्मो हिम्मत में मुस्लिम बिन औसजा और हबीब इब्ने मज़ाहिर ही साबित हो एक दूर अज़ कार (नामुमकिन) बात है। बहरहाल उन कमज़ोर नुफ़ूस वाले अफ़राद के बिल मुक़ाबिल उन पुर जिगर और बावफ़ा अफ़राद की तादाद जिन्हों ने इमाम हुसैन[अ0स0] का इस नाज़ुक मुवक़्क़िफ़ (हालात) में साथ दिया, और वह कूफ़े ही के बाशिन्दे थे बजाये खुद क़लील होने के बावजूद तारीख़े आलम के तजरेबात को सामने रखते हुए हरगिज़ कम नहीं है।

यही वह पहलू है जिसे अहले कूफ़ा की हिमायत में पेश किया गया। उस वक़्त जब अबुल अब्बास सुफ़्फ़ाह के सामने अबू बकर हज़ली बसरी और इब्ने एयाश में बसरा और कूफ़े की बाहमी (आपसी) फ़ज़ीलत के बारे में मुनाज़ेरा हुआ और इब्ने एयाश ने शजाअत के तज़किरे में कुछ शहसवाराने कूफ़ा के नाम लिए और अबू बकर हज़ली ने दुखती हुई रग को दबाते हुए कहा कि ''कूफ़े वालों कि बहादुरी का क्या कहना कि उन में जितने भी थे वह या इमाम हुसैन[अ0स0] और उनके अक़रबा व अन्सार के क़ातिल थे या अदमे तआउन (साथ न देने)करने वाले या उनका माल व असबाब लूटने वाले या उनकी लाशों को पामाल करने वाले।'' यह सुनकर इब्ने एयाश ने कहा कि जो फ़ख़्र का पहलू है

[1]तारीख़े तबरी जि/6, पेज/222

वह तुम ने छोड़ दिया और ताने देने पर उतर आये। तुम ने इमाम हुसैन[अ०स०] के वालिदे बुज़ुर्गवार हज़रत अली इब्ने अबी तालिब[अ०स०] को क़त्ल किया (इब्ने मुलजिम बसरा का रहने वाला था) रह गए अहले कूफ़ा उनमें से हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] के साथ रोज़े शहादत चालीस आदमी थे जबकि आपके सिपाहियों की मजमूई तादाद तक़रीबन सत्तर थी और कूफ़े के यह जितने आदमी थे उन में से कोई एक भी ज़िन्दा वापस नहीं गया बल्कि सब ने इमाम पर अपनी जान निसार की और हर एक ने क़त्ल होने से पहले कुछ न कुछ अपने दुश्मनों को क़त्ल भी किया।[1]

हक़ीक़त यह है कि फ़ौजे उमरे सअ्द में कूफ़े के अवाम थे और अतराफ़ व जवानिब के क़बाएल (आस पास के इलाक़े के लोग) जिनका मसलक सिर्फ़ इताअते शुयूख़ (हज़रत अबू बकर और हज़रत उमर के मानने वाले) से था और कुछ नहीं। उन में से अक्सर का नस्बुल ऐन क़त्ले इमाम हुसैन[अ०स०] में सिर्फ़ हुक्मे हाकिम की तामील और अपनी फ़ौजी ज़िम्मेदारी का पूरा करना और जाएज़ा व इनआम की हवस थी और कुछ ऐसे भी थे जो हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] से जंग करने पर खुशी से रज़ामन्द न थे मगर उन में इतनी कुव्वते इरादी न थी कि वह हुकूमत के ख़िलाफ़ अपने इख़्तियार से काम लें। नीज़ यह भी मुमकिन है कि उन में बहुत से ऐसे जवान और नौ उम्र भी हों जो हुसैन[अ०स०] की शख़सियत से आगाह ही न हों। और वह सिर्फ़ समझते हों कि हम को हाकिम की तरफ़ से एक बाग़ी से मुक़ाबला करने के लिए रवाना किया गया है। इस के बरख़िलाफ़ हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] के साथ कूफ़े के जितने आदमी थे वह वहाँ की ख़िलक़त (लोगों) के दिल व दिमाग़ थे। वह वह थे जो दुनिया के तमाम मुहर्रिकात (तहरीकों) के मुक़ाबिल में अपने शऊर और इरादे के मालिक साबित हुए और यह बहुत बड़ी बात है। उन में से बहुत सों से कूफ़े के अवाम वाक़िफ़ भी थे और उनकी शख़सियत से मुतअस्सिर होते थे और उनके लिए यह अजीब मुअम्मा बन गया था कि ऐसे आबिद व ज़ाहिद और परहेज़गार लोग आज किस तरह मैदाने जंग में आ गए हैं।? उन शख़सियतों का फ़ौजे मुख़ालिफ़ के अफ़राद पर इतना ज़बरदस्त असर पड़ रहा था कि उनके दिलों की ताक़त ने जवाब दे दिया था। वाक़–ए करबला की जंग में बारहा (कई बार) तारीख़ के अवराक़ पर नज़र आता है कि फ़ौजे मुख़ालिफ़ ने हुसैनी मुजाहदीन के सामने से फ़रार किया। हक़ीक़तन यह फ़रार

[1]किताबुल बिलदान पेज/172

माद्दी कूव्वत की कमी का नतीजा नहीं बल्कि उन में सबसे ज़्यादा ज़मीर की कमज़ोरी का दख़ल था।

दर हक़ीक़त यह एक मारे बाँधे का सौदा था जो किया जा रहा था, जिसके लिए आख़िर वक़्त तक फ़ौज की अकसरियत सिपरअन्दाख़्ता (हारी हुई) साबित हो रही थी और कुछ अफ़सराने फ़ौज की ज़बरदस्तियाँ और जाएज़ा व इन्आम वग़ैरह के तरग़ीबात (लालच) और इताबे हुकूमत के ताज़ियाने ही थे जो उनके जज़बाते सिदाक़त की कमज़ोरी के बाइस उनके रूकते हुए क़दमों को बार बार आगे बढ़ाते थे। उसके बरख़िलाफ़ हुसैनी सिपाहियों का ज़ब्त व निज़ाम एक बे मिसाल नमूना है। यहाँ न बढ़ने के मौक़े पर क़दम पीछे हटने का इमकान था, न बे मौक़ा क़दम आगे बढ़ने का सवाल। उनका कोई इक़दाम जोश के मातहत नहीं होता था बल्कि वह बराबर अपने सालार के इशारे के मुन्तज़िर रहते थे और जिस वक़्त तक इमाम इतमामे हुज्जत की मन्ज़िलों को ख़त्म करके जंग के इक़दाम को हक़ बजानिब न समझ लें। उस वक़्त तक एक सिपाही भी ऐसा न था जो हुसैनी निज़ाम के ख़ेलाफ़ ख़ुदराई (अपनी राय) या ख़ुदसरी (अपनी मर्ज़ी) से काम ले। यह बात सिर्फ़ इस लिए थी कि यह जितने अफ़राद थे सब आरिफ़े हक़ (हक़ को पहचानने वाले) इमाम के तरबियत याफ़्ता और साहिबे अख़्लाक़ थे।

बाईसवाँ बाब

सुलह की बातें

उमरे सअ्द चाहता तो था ही कि किसी तरह इस जुर्मे अज़ीम से जिस में वह हिर्से दुनिया की बदौलत अपने हाथों गिरफ़्तार होने जा रहा है छुटकारा हासिल करे चुनाँनचे उसने करबला आकर एक कोशिश मुआमिलात के सुलझाने की शुरू की। इस तरह कि अज़रा बिन क़ैस अहमसी को बुला कर यह चाहा कि वह इमाम हुसैन[अ0स0] के पास जा कर आपके मक़सदे तशरीफ़ आवरी को मालूम करे मगर अज़रा यह उन सात आदमियों में से था जिन्हों ने वक़्ती सियासत से मुतअस्सिर हो कर जमाअते शिया के खुतूत जाने के बाद अपनी जानिब से इमाम हुसैन[अ0स0] को एक दावती ख़त लिख दिया था। इसलिए उसको आपके पास जाने और इस क़िस्म की गुफ़्तगू करने से हिजाब दामनगीर हुआ और उसने इन्कार कर दिया कि मैं नहीं जाऊँगा। दूसरे ऐसे अशख़ास को भी जो खुतूत लिख चुके थे जाने में इसी सूरत से तवक़्क़ुफ़ (हिचकिचाहट) हुआ और आख़िर कसीर बिन अब्दुल्लाह शअ्बी एक दुरूश्त ख़ू और सख़्त आदमी यह कहता हुआ सामने आया कि मैं जाने के लिए तैयार हूँ बल्कि मुझे हुसैन[अ0स0] के क़त्ल करने के लिए कहा जाये तो उस में भी उज़्र नहीं है। उमरे सअ्द ने कहा नहीं, यह मतलब नहीं है तुम बस जाकर इतना दरयाफ़्त कर लो कि आप इस मुल्क में किस लिए आये हैं? कसीर ख़ैमागाहे हुसैनी की तरफ़ रवाना हुआ। बहादुर अबू सुमामा साएदी ने जो शायद उस वक़्त ख़ैम–ए–इमाम हुसैन[अ0स0] पर पहरा दे रहे थे उसे दूर से देख लिया और इमाम[अ0स0] से अर्ज़ किया कि आपकी तरफ़ बदतरीन ख़ल्क (इन्सान) और इन्तेहाई सफ़्फ़ाक (ज़ालिम) व ख़ूँरेज़ शख़्स आ रहा है। उसके बाद वह खुद आगे बढ़ गए और उन्होंने कसीर को रोक कर हथियार खोल कर रख देने का मुतालबा किया। उसने कहा नहीं, यह नहीं हो सकता। मैं पैग़ाम लेकर आया हूँ। अगर मुझे मौक़ा दो तो मैं पैग़ाम पहुँचा दूँ। नहींतो वापस जाऊँ। अबू सुमामा ने कहा, अच्छा मैं तुम्हारी तलवार के क़ब्ज़े पर हाथ रखे रहूंगा और

इस तरह तुमको इमाम की ख़िदमत में ले जाऊँगा। कसीर ने उसे भी मन्ज़ूर न किया और कहा, मेरी तलवार को तो तुम हाथ भी नहीं लगा सकते। अबू सुमामा ने कहा कि अच्छा फिर अपना पैग़ाम तुम मुझसे कह दो। मैं उसका जवाब इमाम से ला दूँगा। इस तरह गुफ़्तगू बढ़ते बढ़ते बिल आख़िर सख़्त कलामी की नौबत आगई और कसीर ने वापस जा कर उमरे सअ्द को अपनी सरगुज़श्त (हालात) से मुत्तेला कर दिया।

अब उसने कुर्रा बिन क़ैस हन्ज़ली को बुलाया और उससे कहा कि तुम जाकर हुसैन[अ0स0] से दरयाफ़्त करो कि वह इस सरज़मीन पर किस लिए आये हैं।[1] चुनाँनचे कुर्रा बिन क़ैस रवाना हुआ। इमाम ने जो उसे आते देखा तो दरयाफ़्त फ़रमाया कि तुम लोग इसे पहचानते हो? हबीब बिन मज़ाहिर ने कहा, जी हाँ। यह क़बील–ए–हन्ज़ला का एक शख़्स है। बनी तमीम में से और ननिहाल की तरफ़ से हमारा अज़ीज़ होता है। मैं एक अरसे से इसको जानता हूँ और मेरे ख़याल में यह सन्जीदा व फ़रज़ाना (अक़्लमन्द) शख़्स था। मुझे यह ख़याल न था कि यह इस मौक़े पर जंग के लिए हमारे मुक़ाबिल में आयेगा। इतनी देरे में वह आगया और इमाम की ख़िदमत में तस्लीम बजा लाते हुए उसने उमरे सअ्द का पैग़ाम पहुँचाया। वही कि आपकी तशरीफ़ आवरी का मक़सद क्या है? हज़रत ने फ़रमायाः "मुझको तुम्हारे शहर के लोगों ने लिखा था कि मैं आऊँ। लेकिन अब जबकि वह मेरा आना नापसन्द करते हैं तो मैं वापस चला जाऊँगा।" जवाब इतमामे हुज्जत के मक़सद का हामिल और सुलह पसन्दी के मुताबिक़ होने के साथ साथ बिल्कुल साफ़ था। क़ासिद वापस जाने लगा। हबीब इब्ने मुज़ाहिर को मौक़ा तबलीग़ का मिल गया। कहने लगे "ऐ कुर्रा बिन क़ैस ज़ालिम जमाअत की तरफ़ कहाँ जाते हो, आओ और इस मज़लूम की मदद करो जिसके बुज़ुर्गों की बदौलत तुम्हारी और हमारी हिदायत हुई है।" कुर्रा ने कहा, मैं जो पैग़ाम लाया था उसका जवाब पहुँचा दूँ, फिर ग़ौर करूँगा कि मुझे क्या करना चाहिए। उसने जाकर उमरे सअ्द से जवाब इमाम हुसैन[अ0स0] का बयान किया। उस जवाब से उसे तवक़्क़ो पैदा हुई कि अब सुलह हो जायेगी लिहाज़ा उसने उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद के नाम ख़त लिया कि "मैंने यहाँ पहुँचकर हुसैन[अ0स0] के पास अपना नुमाइन्दा भेजा और उसके ज़रिये से दरयाफ़्त किया कि वह इधर क्यों आये हैं? क्या चाहते हैं और क्या मुतालेबा रखते हैं? उन्होंने कहा कि इस मुल्क के लोगों ने मुझको लिखा

---

[1]तबरी जि/6, पेज/233, देनवरी ने कुर्रा बिन सुफ़यान हन्ज़ली दर्ज किया है। अख़बारूत तुवाल पेज/251

था और मेरे पास उनके क़ासिद (Messenger) गए थे और मुझे इधर आने की दावत दी थी। लेकिन अब जबकि वह मेरा आना ना पसन्द करते हैं और उनके ख़यालात में तबदीली हो गई है तो मैं जहाँ से आया हूँ उधर ही वापस चला जाऊँगा।''

ख़त पहुँचा। इब्ने ज़ियाद ने पढ़ा और गुरूर व तकब्बुर, फ़िरऔनियत और ज़ुल्म व सफ़्फ़ाकी के जज़्बे के मातहत उसने यह शेअ्र पढ़कर अपनी तारीक ज़हनियत का सुबूत दिया।

يرجوالنجاة ولات حين مناص

الآن اذ علقت مخالبنابه

(यानी) अब जबकि हमारे चुंगल उन तक पहुँच गए हैं तो वह नजात के तालिब हैं। हरगिज़ नही अब वह हमसे बच कर कहाँ जायेंगे।''

उसने उमरे सअ्द को लिखाः ''ख़त पहुँचा और हाल मालूम हुआ। तुम हुसैन[अ0स0] के सामने यह सवाल पेश करो कि वह और उनके तमाम असहाब यज़ीद बिन मुआविया की बैयत कर लें। जब वह ऐसा कर चुकेंगे तो फिर हम राय क़ायम करेंगे।''[1]

इस ख़त से उमरे सअ्द की उम्मीदों की दुनिया में एक दफ़ा फिर तारीकी छा गई। उस ख़त के उनवान में इब्ने ज़ियाद की मुफ़सिद (फ़सादी) और फ़ितना पसन्द ज़हनियत का पूरा पूरा सुबूत मौजूद था। अव्वल बैयते यज़ीद का इमाम हुसैन[अ0स0] से मुतालिबा ही ऐसा था जिसका असर कुबूल करना आपके लिए नामुमकिन था। फिर उस पर तुर्रा यह कि बफ़रज़े मुहाल बैयत कर लेने की सूरत में भी हुकूमत की तरफ़ से किसी ख़ुशगवार नतीजे का वादा न था बल्कि यह कहा जा रहा था कि हम फिर राय क़ायम करेंगे। इसके यही माना हो सकते थे कि उसके बाद भी हुकूमत इमाम हुसैन[अ0स0] के गुज़िश्ता इन्कारे बैयत की बिना पर आपके लिए कुछ सज़ा तजवीज़ करने का हक़ रखेगी।

ख़त का अन्दाज बताता है कि इब्ने ज़ियाद हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के इतमामे हुज्जत पर मबनी जवाब की सही नौइयत को नहीं समझा और उसने ख़याल किया कि फ़ौज की कसरत को देख कर आप डर गए हैं। इसलिए कि मैं जहाँ से आया हूँ वहीं वापस चला जाऊँगा। मगर उमरे सअ्द हुसैन[अ0स0]और

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/252

उनके असहाब के तेवरों को क़रीब से देख रहा था और समझता था कि आपका जवाब सिर्फ़ अमन पसन्दी और सलामत रवी का नतीजा है किसी हैबत और ख़ौफ़ पर मबनी नहीं है। इसलिए उसने इब्ने ज़ियाद के इस ख़त को बिल्कुल नामाक़ूल समझते हुए कहाः "मुझे पहले ही अन्देशा था कि अमीर इब्ने ज़ियाद अमन व सुकून के ख़्वाहाँ नहीं हैं।"[1]

फिर भी उसने यह किया कि इब्ने ज़ियाद का ख़त इमाम हुसैन[अ०स०] के पास भेज दिया। इमाम हुसैन[अ०स०] ने वही कहा जो उमरे सअ्द समझ चुका था। यानी "यह हरगिज़ नहीं हो सकता।" ज़्यादा से ज़्यादा मौत ही तो है। मैं उसका ख़ैर मक़दम करने के लिए तैयार हूँ।[2] उमरे सअ्द ने यह जवाब इमाम हुसैन[अ०स०] का इब्ने ज़ियाद के पास भेज दिया।

---

[1]तबरी जि/6, पेज/234, इरशाद पेज/239–240, अख़बारूत तुवाल पेज/251

[2]अख़बारूत तुवाल पेज/252

तेईसवाँ बाब

बन्दिशे आब और ग़लब–ए–तशनगी

हक़ीक़ते अम्र यह है कि इमाम हुसैन[अ0स0] और आपके असहाब व अक़रूबा यहाँ तक कि अतफ़ाले खुर्द साल (कमसिन बच्चों) पर पानी बन्द करने का इन्तेज़ाम दूसरी मुहर्रम ही को हो गया था। उस ख़त के ज़रिये से जो इब्ने ज़ियाद ने हुर बिन यज़ीद रियाही के पास भेजा था और जिसमें साफ़ साफ़ लिखा था कि हुसैन[अ0स0] के साथ सख़्ती से पेश आओ। और उन्हें एक ऐसी जगह क़याम करने पर मजबूर करो जहाँ पानी मौजूद न हो। उस हुक्म के निफ़ाज़ में इतना एहतिमाम था कि क़ासिद (दूत) को यह हिदायत कर दी गई थी कि वह हुर से उस वक़्त तक जुदा न हो जब तक कि उस हुक्म की तामील न हो जाये। चुनाँनचे हुर ने इमाम के सामने अपनी मजबूरी का इज़हार करके हज़रत को करबला में ऐसे ही बेआब मक़ाम पर क़याम के लिए मजबूर किया।[1] इसका तज़किरा तफ़सील के साथ पहले हो चुका है।

उसके बाद अब सूरते हाल यह थी कि इमाम हुसैन[अ0स0] आपके असहाब व अइज़्ज़ा, मुख़द्दिराते इस्मत (औरतें) और अतफ़ाल (बच्चे) उन सबके ख़ैमे नहर से दूर जलती हुई रेत पर थे। सहरा–ए–अरब का सूरज दिन भर अपनी पूरी कुव्वत से उन ख़याम पर चमकता था जिसके अन्दर रहने वाले यक़ीनन तमाज़ते अफ़ताब शिद्दत के साथ महसूस कर सकते थे। नहरे फ़ुरात फ़ासले पर रवाँ थी और वहाँ दुश्मन फ़ौज का क़याम था।

कोई नहीं कह सकता कि इब्ने ज़ियाद के ख़त के जिस जुज़्व (हिस्से) पर हर देखने वाले की नज़र सबसे पहले पड़ती है और जिसे हुर ने भी ख़ास अहमियत दी ''बे आब मक़ाम'' (जहाँ पानी न हो) उसके मक़सद की तरफ़ खुद इब्ने ज़ियाद की फ़ौज के सिपाहियों की नज़र न गई होगी जबकि हमारा

---

[1] अख़बारूत तुवाल पेज/249–250, तबरी जि/6, पेज/232, इरशाद पेज/213, कामिल इब्ने असीर जि/4, पेज/26, अबुल फ़िदा जि/1, पेज/190

मुशहिदा यह है कि हुकूमत के इक़्तेदारे आला वाले अफ़राद फ़रीक़े (गिरोह) मुख़ालिफ़ के साथ जिस सख़्तगीरी का हुक्म नहीं भी देते, छोटे दर्जे के उम्माल (सरकारी लोग) और सिपाही बर बिनाये तअस्सुब और नीज़ अपने बड़ों को उनके मुख़ालिफ़ के साथ सख़्ती करके ख़ुश करने के लिए उसके लिए भी तैयार हो जाते हैं। चेजाएकि हाकिम की तरफ़ से शिद्दत के साथ सख़्ती करने का हुक्म और फिर साफ़ साफ़ पानी से दूर रखने का फ़रमान भी हो गया हो। उसके बाद यह किसी तरह समझा ही नहीं जा सकता कि अब हुसैन[अ०स०] और असहाबे हुसैन[अ०स०] के लिए पानी बा–इतमीनान व सुकून और बिल्कुल बा–आसानी बग़ैर किसी रूकावट के हासिल हो जाता होगा।

हाँ मुमकिन है हुर अपनी ज़ात से सख़्ती न करता हो चूंकि वह पहले ही इमाम की हक़्क़ानियत से कुछ मुतअस्सिर ज़रूर था मगर जब अभी वह ''बाज़माना बसाज़'' पर आमिल (हाकिम के हुक्म पर अमल करने वाला) था और हुकूमते वक़्त की मुख़ालिफ़त पर खुल कर आमादा न था तो दूसरे सिपाहियों को वह साफ़ साफ़ सख़्ती व दरूशती से बाज़ भी न रख सकता था फिर यह तो दो एक दिन की बात थी कि हुर सालारे फ़ौज था। उसके बाद उमरे सअ्द आ गया और मज़ीद फ़ौजें करबला में जमा हो गईं जिसके बाद हुर की कोई अहम हैसियत बाक़ी नहीं रही थी और न उसकी आवाज़ कोई आवाज़ समझी जा सकती थी इसलिए यक़ीनन उन दिनों में असहाबे इमाम के लिए पानी तक पहुँचना और पानी भर कर लाना हर मर्तबा एक ख़तरा और कशमकश का मुक़ाबला करना था जिसे उसी वक़्त इख़्तियार किया जाता होगा जब बच्चों की प्यास बहुत बढ़ जाये या पूरी जमाअत पर प्यास का शदीद ग़लबा हो। चुनाँनचे इस सिलसिले में बाज़ वक़्त जंग भी हो गई है और जंग करके पानी हासिल किया गया है।[1]

सातवीं मुहर्रम को वह ख़ास तारीख़ थी जब इब्ने ज़ियाद का दूसरा ख़त उमरे सअ्द के पास पहुँचा। उसका मज़मून यह था कि:

''हुसैन और उनके असहाब पर पानी बन्द कर दो, इस तरह कि उन्हें एक क़तरा भी पानी मिलने न पाये जैसा कि उस्मान बिन अफ़्फ़ान के साथ सुलूक किया गया था।[2]

---

[1]अल–इमामत वल–सियासत इब्ने क़तीबा पेज/187

[2]अख़बारूत तुवाल पेज/252, तबरी जि/6, पेज/234, इरशाद पेज/216

उमरे सअ्द ने उस ख़त को देखते ही अम्र बिन हज्जा ज़ुबैदी को पाँच सौ सवारों की फ़ौज के साथ घाट पर मुक़र्रर कर दिया। और यह ताकीद कर दी कि एक क़तरा ख़यामे हुसैनी की तरफ़ जाने न पाए।

तारीख़ में तसरीह है कि यह इमाम हुसैन[अ0स0] की शहादत से तीन रोज़ क़ब्ल का वाक़ेया है।[1]

पानी की इस बन्दिश के बाद जमाअते हुसैनी के तमाम अफ़राद और बिल खुसूसन सग़ीर अतफ़ाल (छोटे बच्चों) पर प्यास का शदीद ग़ल्बा हो गया।[2]

फिर दुश्मन की यह तंग ज़रफ़ी थी कि इस ज़ुल्मो तशद्दुद के साथ ज़ख़्मे ज़बान भी लगाए जा रहे थे। जैसे यह फ़िक़रा कि "हुसैन[अ0स0]! देखते हो यह पानी नीला नीला आसमानी रंगत का किस तरह बह रहा है। मगर तुम मरते दम तक उसमें से एक क़तरा भी नहीं पा सकते।"[3]

और यह कि "ऐ हुसैन! यह पानी मौजूद है। जिसमें कुत्ते तक मुँह डालते हैं और इराक़ के सुवर गधे भेड़िये तक इसमें से पीते हैं। मगर तुम इसमें से बखुदा एक क़तरा चख भी नहीं सकते।[4]

बईद नहीं है कि फ़ौजे यज़ीदी का ख़याल यह हो कि जमाअते हुसैनी से किसी जंग की ज़रूरत ही न पड़ेगी। प्यास की शिद्दत ही उनके ख़त्म करने के लिए काफ़ी होगी। चुनाँन्चे एक मौक़े पर जब हज़रत ने इतमामे हुज्जत के लिए खुतबा पढ़ा और पैग़म्बरे इस्लाम के साथ अपने खुसूसी तअल्लुक़ का इज़हार करके उन नाम निहाद मुसलमानों में एहसासे फ़र्ज़ पैदा करने की कोशिश फ़रमाई तो उसके जवाब में कहा गया कि "हम यह सब जानते हैं मगर उसके बावजूद तुम को छोड़ेंगे नहीं। यहाँ तक कि प्यास की शिद्दत की वजह से ही तुम दुनिया से रूख़्सत हो जाओ।[5]

हालाँकि हुसैनी असहाब ने अपनी शजाअत से यह सुबूत दे दिया कि हम अब भी जब चाहें तुम्हें घाट से हटा कर पानी हासिल कर लें। चुनाँनचे हज़रत

---

1 अख़बारूत तुवाल पेज/252, तबरी जि/6, पेज/234, इरशाद, कामिल इब्ने असीर जि/4, पेज/27, तज़किरा–ए–ख़वासुल उम्मा सिब्ते इब्ने जूज़ी, पेज/140

2 लुहूफ़ सैयद इब्ने ताऊस

3 तबरी जि/4, पेज/234, इब्ने असीर जि/4, पेज/27, इरशाद, तज़किरा सिब्ते इब्ने जूज़ी पेज/42

4 तज़किरा पेज/141

5 लुहूफ़ इब्ने ताऊस)

अबुल फ़ज़लिल अब्बास के सातवीं के बाद भी जिहाद करके पानी लाने का तज़किरा तारीख़ में मिलता है।[1]

ग़ालिबन आठवीं शब का वाक़ेया है उसके बाद आठवीं, नवीं, और दसवीं तीन दिन की मुसलसल प्यास फिर भी मुसल्लम तौर पर क़ायम रहती है।

यह अक़रबा व अन्सारे हुसैनी की यादगार वफ़ादारी है कि बग़ैर इमाम के उनमें से एक ने भी बावजूद नहर तक पहुँच जाने के लब तर नहीं किये और साफ़ कह दिया कि यह नामुमकिन है कि हम पानी पियें और हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] प्यासे रहें।[2] और यह इमाम की बलन्द नज़री थी कि पानी के हासिल करने पर अपनी ताक़त सर्फ़ नहीं की बल्कि तीन दिन तक सिर्फ़ इतमामे हुज्जत के तौर पर उनके ज़मीर के बेदार करने की कोशिश ''सवाले आब'' की सूरत में करते रहे और असहाब को भी इसकी इजाज़त अता फ़रमाई। चुनाँनचे शिद्दते अतश का आलम देखते हुए बुरैर हमदानी ने इजाज़त चाही कि मैं इब्ने सअ्द के पास जाकर पानी के बाब में गुफ़्तगू करूँ मुमकिन है कि उस पर कुछ असर हो। हज़रत ने फ़रमायाः तुम्हें इख़्तियार है। बुरैर, उमरे सअ्द के पास गए और कहाः ''तुम कैसे मुसलमान हो कि आले रसूल के क़त्ल पर तैयार होकर आये हो। फिर उस पर तुर्रा यह है कि यह आबे फ़ुरात है जिसमें से इराक़ के कुत्ते और सुवर तक पानी पीते हैं मगर यह हुसैन हैं और उनके अहले हरम और अइज़्ज़ा और अक़ारिब कि प्यास से हलाक हो रहे हैं और उन्हें फ़ुरात के पानी तक पहुँचने नहीं दिया जाता।''

उमरे सअ्द ने जवाब में गोया इक़रारे जुर्म करते हुए यह उज़्र पेश किया कि ''क्या करूँ, रय की हुकमूत मुझसे जाती रहेगी अगर इब्ने ज़ियाद के ख़िलाफ़ करूँ और रय की हुकूमत का तर्क करना मेरे लिए किसी तरह मुमकिन नहीं है।''[3]

सुबहे आशूर जब हुर बिन यज़ीद लशकरे शाम से जुदा होकर जमाअते हुसैनी की तरफ़ गए तो उन्हें सबसे ज़्यादा फ़ौजे यज़ीदी के जिस ज़ुल्म व तअद्दी का एहसास हुआ वह पानी का बन्द करना था। और होना भी चाहिए था इस लिए कि इमाम हुसैन[अ0स0] ने इसके पहले हुर और उसकी जमाअत को इन्तेहाई तशनगी के आलम में सेराब किया था। फिर यह कि उसी ने इब्ने

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/252, तबरी जि/6, पेज/224

[2]तबरी जि/6, पेज/234

[3]कशफ़ुल गुम्मा पेज/189

ज़ियाद के हुक्म से ख़्यामे हुसैनी को नहर के किनारे बरपा न होने दिया इसलिए कि एक तरह बन्दिशे आब का वह अपने को ज़िम्मदार समझते थे। चुनाँनचे उन्होंने इमाम हुसैन[अ0स0] से अफ़ुव (माफ़ी) क़ुसूर कराने के बाद फ़ौजे मुख़लिफ़ के सामने जो तक़रीर की उसमें इन्तेहाई पुर असर अन्दाज़ में जमाअते हुसैनी और बिल ख़ुसूस ख़्वातीन व अतफ़ाल की अतश का बयान और बन्दिशे आब पर एतेराज़ किया है।

उसका तफ़सीली तज़किरा आइन्दा आयेगा।

जब इस इतमामे हुज्जत और मौएज़ा (तब्लीग़) व नसीहत का उस सितमगार और क़सीयुल क़ल्ब (सख़्त दिल) फ़ौज पर कोई असर न हुआ तो इमाम हुसैन[अ0स0] और आपके साथ के हर बच्चे ने अपने अमल से साबित कर दिया कि राहे हक़ पर उनके क़याम और सिबात व इस्तेक़लाल (हिम्मत) में किसी तशद्दुद और ईज़ा रसानी से ज़र्रा भर कमी नहीं हो सकती। उन्होंने शिद्दते तशनगी की तकलीफ़ को बर्दाश्त किया और तीन दिन की प्यास के आलम में फ़रीज़–ए–जिहाद को पूरे तौर से अदा करने के साथ शहादत का ख़ैर मक़दम किया।

चौबीसवाँ बाब

सुल्ह की आख़री कोशिश और उसका अन्जाम

हुसैन[अ0स0] अपने दामन पर यह धब्बा लेना नहीं चाहते थे कि आप मुसलमानों के दरमियान ख़ूँरेज़ी को पसन्द करते हैं। इसलिए आपने इतमामे हुज्जत के लिए दोबारा ख़ुद अपनी जानिब से सुलह की गुफ़्तगू का आग़ाज़ फ़रमाया। इस तरह कि अम्र बिन क़र्ज़ाह बिन कअ्ब अन्सारी को उमर बिन सअ्द के पास भेजा कि आज शब को मुझसे दोनों तरफ़ के लशकरों के दरमियान मिल लेना है। चुनाँनचे उमरे सअ्द कोई बीस सवार अपने साथ लेकर निकला और इमाम भी उतने ही साथियों के साथ तशरीफ़ ले गए मगर जब क़रीब पहुँचे तो आप ने अपने साथियों को हटा दिया जिसके बाद इब्ने सअ्द ने भी अपने साथियों से अलाहिदगी इख़्तियार की। यह मुकालिमा (बात चीत) बड़ी रात गए तक जारी रहा जिसके बाद इमाम अपने ख़याम की तरफ़ वापस हुए और इब्ने सअ्द अपने लशकर गाह की तरफ़ चला गया।[1]

यह तमाम गुफ़्तगू सग़ी–ए–राज़ में थी। मुख़तसर तौर पर इतना मालूम हो सका कि इमाम हुसैन[अ0स0] इस पर आमादा थे कि इराक़ में क़याम के ख़याल को तर्क कर देंगे और अगर ज़रूरत समझी जाए तो अरब का मुल्क भी छोड़ देंगे और किसी दूर दराज़ मक़ाम पर चले जायेंगे।[2]

हक़ीक़त के लिहाज़ से इस सूरत में भी इमाम हुसैन[अ0स0] की फ़तह थी यानी आपका मुल्क तर्क करना भी उस मक़सद का एक एलान था जिसकी ख़ातिर आपको जान देना पड़ी फिर भी आपका रवैया इतना नर्म और सुलझा हुआ था कि यज़ीदी फ़ौज के अफ़सर उमरे सअ्द ने साफ़ एतेराफ़ कर लिया कि आप सुलह के रास्ते पर गामज़न हैं और उसने बहुत ख़ुश होकर इब्ने ज़ियाद को ख़त लिखा और हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] की इस शर्ते मुसालिहत

---

[1]तबरी जि/6, पेज/235

[2]तबरी जि/6, पेज/235

(सुल्ह) से इत्तेला दी। इन अलफ़ाज़ के साथ कि ''अलहम्दु लिल्लाह फ़ितने की आग सर्द हो गई और मुसलमानों का शीराज़ा मुजतमा रहने की सूरत पैदा हो गई (यानी बिखरने से बच गया) और उम्मते इस्लामी का मुआमिला रू–ब–इस्लाह (हल) हो गया। आख़िर में उसने अपनी राय भी लिखी कि मेरे नज़दीक अब मुख़ासिमत (लड़ाई) की कोई वजह नहीं है और अब इस मुआमिला को ख़त्म होना चाहिए।''[1]

कहा जाता है कि इब्ने ज़ियाद ने भी इस राय को मन्ज़ूर करना चाहा कि उमरे सअ्द का यह ख़त बहुत ख़ैर ख़्वाहाना है। मगर शिम्र[2] बिगड़ गया और कहने लगा। ''भला ऐसा मौक़ा जिसके हाथ आये वह उसे छोड़ दे।'' हुसैन[अ0स0] आपके पास पहलू में आ गए हैं अगर आज वह चले गए और उन्होंने आपकी इताअत इख़्तियार न की तो फिर याद रखिये कि क़ूव्वत व इज़्ज़त उन ही का हक़ होगा और कमज़ोरी व आजज़ी आपका हिस्सा। मेरी राय में उनकी यह ख़्वाहिश कभी मन्ज़ूर न करना चाहिए क्योंकि यह बड़ी ज़िल्लत की बात और कमज़ोरी की निशानी है। बेशक उन्हें ग़ैर मशरूत (बग़ैर शर्त के) तौर पर हथियार डाल देना और आपके सामने सरे तस्लीम ख़म कर देना चाहिए। फिर अगर आप उन्हें उनके जुर्म की सज़ा में क़त्ल करना चाहें तो आपको हक़ इसका है और अगर माफ़ कर दें तो इसका भी इख़्तियार है। रह गया उमरे सअ्द, उसका क्या ज़िक्र, मैं ने तो सुना है कि पूरी पूरी रातें वह हुसैन[अ0स0] के साथ बातों में गुज़ार देता है।[3]

यह खुशामद आमेज़, ग़ैरत अंगेज़, मुफ़सिदा परदाज़ (भड़काऊ अन्दाज़) और फ़ितना परवर तक़रीर वह थी जिससे एक तरफ़ तो तफ़व्वुक़ तलबी (खुद को बलन्द समझना) और ज़फ़र अन्जामी (फ़तह का ख़्वाब) के जज़्बे में हरकत पैदा हुई। दूसरी तरफ़ अनानियत, ग़ुरूर और खुद बीनी (सुलह नामा रद करने का इरादा) की रग में जुम्बिश हुई और तीसरी तरफ़ इब्ने सअ्द की तरफ़ से बदगुमानी हो गई और वह ख़ुलूस और ख़ैर ख़्वाही का क़रीना जो उसकी तहरीर में पाया जाता था नीस्तो नाबूद हो गया। शिम्र बड़ा ख़ैर ख़्वाह दोस्त और सच्चा मुशीरे कार शुमार किया जाने लगा और उमरे सअ्द पर ग़ुस्सा

---

[1]तबरी जि/6, पेज/235–236, इरशाद पेज/241

[2]शिम्र का असली नाम शरजील बिन अम्र बिन मुआविया, वह बनी आमिर बिन सअ्सा में आले वहीद कलाबी में से था। अख़बारुत तुवाल, पेज/233–253

[3]तबरी जि/6, पेज/236

आने लगा कि वह लड़ने गया था और रात रात भर बैठकर दुश्मन से बातें करता है, हुसैन[अ0स0] से मिल गया है और हमको ख़्वाह मख़्वाह धोखा देता है। फिर ऐसे मुशतबह (शक वाला) शख़्स का सरदारे लशकर बाक़ी रखना कैसा? यक़ीनन शिम्र को भेजा जाए ताकि इब्ने सअ्द के तर्ज़े अमल का तदारूक और हुसैन[अ0स0] के साथ हर क़िस्म की मुसालिहाना गुफ़्तगू का सद्दे बाब (सुलह की बात बन्द हो सके) कर सके। चुनाँनचे इब्ने ज़ियाद ने उसी दिमाग़ी उलझन के आलम में उमरे सअ्द के नाम ख़त लिखा। ''मैंने तुमको हुसैन की जानिब इसलिए नहीं भेजा है कि तुम उनके साथ मुराआत (नर्मी) करो या उनके साथ मुआमलात को तूल दो या उनको ज़िन्दगी की उम्मीदें दिलाओ या मेरे पास उनकी सिफ़ारिश करने बैठो, देखों अगर हुसैन[अ0स0] और उनके असहाब मेरे हुक्म के सामने सरे तस्लीम ख़त करें और अपने को मेरे रहमो करम पर छोड़ दे तो उनको ख़ामोशी के साथ मेरे पास भेज दो और अगर वह इन्कार करें तो उन पर हमला करो।[1] उन्हें क़त्ल कर दो और उनके आज़ा व जवारेह को क़ता (जिस्म के टुकड़े टुकड़े करो) करो क्योंकि वह इसी के मुस्तहक़ हैं।'' इतना ही नहीं बल्कि इस्लाम के नाम को बदनाम, इन्सानियत की पेशानी को अरक़े इन्फ़ेआल (शर्म के पसीने) से तर और तारीख़ को हमेशा के लिए अंगुश्त बदन्दान (हसरत व अफ़सोस) करने वाले यह अलफ़ाज़ थे जो किसी और की निसबत नहीं रसूले इस्लाम के सबसे प्यारे रास्तबाज़ (सच्चे) नवासे हुसैन[अ0] की निसबत लिखे जा रहे थे कि अगर हुसैन क़त्ल हो जायें तो उनके सीने और पुश्त को घोड़ों की टापों से पामाल कराना। क्योंकि वह सलतनत के बाग़ी, मुख़ालिफ़ और हरीफ़ हैं। मेरा यह मक़सद नहीं है कि इससे मौत के बाद उनको कोई नुक़सान पहुँचेगा। लेकिन यह ज़बान से कह चुका हूँ कि अगर हुसैन[अ0स0] को क़त्ल किया तो उनके साथ यह सुलूक करूँगा। अगर तुमने इन अहकाम का इजरा (अमल) किया तो ख़ैर तुम्हें मुआवेज़ा मिलेगा जो एक वफ़ादार फ़रमाँबरदार को मिलना चाहिए। और अगर तुम्हें यह मन्जूर न हो तो लशकर की सरदारी से अलाहिदा हो जाओ। और इस मन्सब को शिम्र के सिपुर्द कर दो। जिसे हमने पूरे तौर से मुनासिब हिदायतें कर दी हैं।'' इसलिए यह ख़त शिम्र के सिपुर्द किया और ज़बानी भी उससे कह दिया कि अगर उमरे सअ्द इस हुक्म की तामील न करे तो माज़ूल (हटा दिया जायेगा) तसव्वुर होगा और तुम उसकी जगह सरदारे लशकर क़रार पाओगे। तुम

---

[1]अख़बारूत तुवाल, पेज / 253

हुसैन[अ०स०] से जंग करना और उमरे सअ्द को भी क़त्ल करके उसका सर मेरे पास भेज देना।[1]

यह ताजीली (जल्द बाज़ी) और तम्बीही (सख़्ती भरा) हुक्म नाम शिम्र के हाथ उमरे सअ्द के पास भेज दिया गया। अब जंग का इलतवा (टालना), ग़ैर मुमकिन सा हो गया। खुद उमरे सअ्द को इसका ख़ूब अन्दाज़ा था कि हुसैन[अ०स०] यज़ीद की बैयत या इब्ने ज़ियाद की ग़ैर मशरूत (बग़ैर शर्त) इताअत पर हरगिज़ आमादा न होंगे। इसलिए जूँही उसे इब्ने ज़ियाद का ख़त शिम्र के हाथ पहुँचा और उसने खोल कर उसे पढ़ा फ़ौरन शिम्र से कहने लगा। "कम बख़्त यह तूने क्या किया? खुदा तुझसे समझे, खुदा तुझे ग़ारत करे और इस पैग़ाम को ग़ारत करे जो तू मेरे पास लाया है। बखुदा मैं समझता हूँ कि तूने ही इब्ने ज़ियाद को मेरे मशवरे पर अमल करने से रोक दिया और इस बात को बिगाड़ दिया जिसके बन जाने की उम्मीद थी। खुदा की क़सम हुसैन कभी अपने को इब्ने ज़ियाद के रहमो करम पर छोड़ना पसन्द न करेंगे। यक़ीनन हुसैन[अ०स०] अपने बाप का दिल अपने सीने में रखते हैं।[2] शिम्र ने कहाः "इन बातों को जाने दो। यह बताओ कि अब क्या करोगे? अपने अमीर के हुक्म पर अमल या सरदारी को मेरे सिपुर्द करोगे।?"

कमज़ोर दिल और दुनिया पर जान देने वाला उमरे सअ्द अपनी तमाम क़ल्बी कैफ़ियतों और ज़मीर की हिदायतों को उस वक़्त भूल जाता था जब दुनिया के वक़ती ऐज़ाज़ (मन्सब) और जाह व सरवत (शान व दौलत) के उसके हाथ से जाने का सवाल पेश होता था और इस तरह वह दुनिया के इश्क़ में अपनी तमाम विजदानी कैफ़ियतों (ज़मीर) के पामाल कर देने पर इस हद तक तैयार हो जाता था कि उसके ज़ैल में उसको बड़े से बड़े जुर्म का इरतिकाब भी गवारा हो जाता था। ख़तरा बिल्कुल क़रीब और उसका रक़ीबे सरदार शिम्र सामने मौजूद था और सिर्फ़ एक हाँ या नहीं का जवाब वह था कि जिस पर तमाम उसकी आइन्दा ज़िन्दगी का दारो मदार था। जिसमें फ़क़त सरदारी रहने या न रहने का सवाल ही न था बल्कि इब्ने ज़ियाद के सरीही (खुला हुआ) हुक्म के मुताबिक़ जान जाने का अन्देशा भी था इसके लिए तो वैसे ही जज़बा–ए–हक़ पसन्दी की ज़रूरत थी जो राहे हक़ के फ़िदाकारों में हुआ करता है मगर उमरे सअ्द इस जज़्बे से आरी (ख़ाली) और सिबात व

---

[1]तबरी जि/6, पेज/236, इरशाद पेज/241–242

[2]इरशाद पेज/242

इस्तेक़लाल (साबित क़दमी, मज़बूत इरादे) से ख़ाली था लिहाज़ा शिम्र के इस सवाल पर उसे कह देना पड़ा कि नहीं मैं ही इस मुहिम को सर करूँगा।[1] हाँ तुम्हें प्यादों का अफ़सर बनाए देता हूँ।[2] उसके बाद से शिम्र का वजूद इसके लिए सूहाने रूह (तकलीफ़ देह) साबित हो रहा था। इब्ने ज़ियाद की बदगुमानी उसकी निसबत ज़ाहिर हो चुकी थी लिहाज़ा उसे अपनी वफ़ादारी और ख़ैर ख़्वाही का सुबूत फ़राहम करना था। उसके लिए जंग में ज़रा भी ताख़ीर उसके नज़दीक मुनासिब न थी।

चुनाँनचे उसने उसी वक़्त हमले की तैयारी का हुक्म जारी कर दिया और रोज़े पंजशम्बा (जुमेरात) नवीं तारीख़ की शाम होने नहीं पाई थी कि इमाम हुसैन[अ0स0] पर हमला कर दिया। यह हमला बिल्कुल बग़ैर इत्तेला था। इमाम हुसैन[अ0स0] अस्र की नमाज़ के बाद ख़ैमे के दरवाज़े पर तलवार का सहारा लिए घुटनों पर सर रखे बैठे थे और आपकी आँख लग गई थी कि एक मर्तबा घोड़ों की टापों और फ़ौज के गुल की आवाज़ जनाबे ज़ैनब के कान में गई। आप घबरा कर पर्दे के पास आईं और इमाम हुसैन[अ0स0] को मुख़ातब किया कि देखिये फ़ौजे दुशमन की आवाज़ें बहुत नज़दीक से आ रही हैं। आप ने सर उठाया और फ़रमाया मैंने अभी ख़्वाब में देखा रसूल अल्लाह को, हज़रत ने मुझसे फ़रमाया कि तुम अनक़रीब हमारे पास आया चाहते हो। इधर अचानक दुश्मनों के हमले से ज़ैनब का दिल परेशान था ही। इधर जो इमाम ने यह ख़्वाब बयान किया तो जनाबे ज़ैनब मुज़तरिब हो गईं। दोनों हाथों से मुँह पीट लिया और कहाः "अरे ग़ज़ब!" इमाम ने बहन को तस्कीन दी। फ़रमायाः "ऐ बहन ग़ज़ब तुम्हारे दुश्मनों के लिए। ख़ामोश रहो। ख़ुदा मालिक है।" अभी यह गुफ़्तगू हो रही थी कि अबुल फ़ज़लिल अब्बास ने आकर इत्तेला दी कि फ़ौजे आदा ने चढ़ाई कर दी है। हज़रत यह सुनकर अपनी जगह से उठ खड़े हुए और फ़रमाया कि अब्बास सवार हो जाओ और उनसे पूछो कि इस वक़्त हमले का सबब क्या है? जनाबे अब्बास[अ0स0] बीस सवारों के साथ तशरीफ़ ले गए और आपने फ़ौजे मुख़ालिफ़ से ख़िताब करते हुए दरयाफ़्त किया कि तुम्हारी राय में क्यों तब्दीली हुई और अब तुम क्या चाहते हो? जवाब मिला कि "अमीर इब्ने ज़ियाद का हुक्म आया है कि तुम लोगों से अमीर की इताअत क़ुबूल करने का मुतालिबा किया जाए और नहीं तो फिर जंग शुरू कर दी जाए।"

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/253

[2]तबरी जि/6, पेज/236–237

आपने फ़रमाया कि अच्छा फिर जल्दी न करो। मैं इमाम के पास जाकर तुम्हारा मुतालबा पेश करता हूँ। उसके बाद जैसा कुछ इमाम फ़रमायेंगे उससे तुमको मुत्तेला कर दूँगा। जनाबे अब्बास घोड़े को सरपट दौड़ाते हुए इमाम हुसैन[अ0स0] की ख़िदमत में वापस गए और आपको वाक़ेए की इत्तेला दी।[1] हज़रत ने फ़रमाया अगर मुमकिन हो तो आजकी शब की उनसे मोहलत हासिल कर लो ताकि आज रात भर हम इबादते इलाही और दुआ व इस्तेग़फ़ार में बसर कर लें। अल्लाह ही वाक़िफ़ है कि मैं उसकी नमाज़ व इबादत, तिलावते क़ुरआन और दुआ व इस्तेग़फ़ार से कितनी मुहब्बत रखता हूँ।[2] इधर इस दौरान में हबीब बिन मज़ाहिर और ज़ुहैर बिन क़ैन फ़ौजे मुख़लिफ़ से गुफ़्तगू और हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] पर बिला वजह ज़ुल्मो सितम करने पर उनको क़ाएल माक़ूल करते रहे यहाँ तक कि जनाबे अब्बास वापस आए और इमाम के इरशाद के मुताबिक़ उनसे एक रात की मोहलत तलब की।[3] उमरे सअ्द गुज़िश्ता वाक़ेआत की बिना पर शिम्र की मौजूदगी को अपने लिए इन्तेहाई ख़तरनाक समझता था। इसलिए अब वह इमाम हुसैन[अ0स0] के मुतअल्लिक़ ख़्वाह मख़्वाह भी तशद्दुद से काम लेना चहाता था। लिहाज़ा वह शिम्र की तरफ़ मुतवज्जेह हुआ और कहा, तुम्हारी इस बारे में क्या राय है? शिम्र ने जवाब दिया कि जैसा आप मुनासिब समझें। इसलिए कि आप अफ़सर हैं और आपकी राय मोतबर है।

उमरे सअ्द ने समझ लिया कि शिम्र का यह जवाब तन्ज़िया अन्दाज़ का हामिल है, उसने कहा "मैं चाहता हूँ कि मोहलत न दी जाए।" मगर चूँकि दर अस्ल उसका ज़मीर उसके ख़िलाफ़ था इसलिए अब वह मुतवज्जा हुआ दूसरे सरदारों की तरफ़ और उनसे दरयाफ़्त किया कि क्यों तुम्हारी क्या राय है। अम्र बिन हज्जाज ज़ुबैदी, हानी बिन उरवा के बरादरे निस्बती (ससुराली रिश्तेदार साढ़ू) ने जो उनके क़त्ल की ख़बर सुनकर फ़ौज लेकर दारूल अमारा पर चढ़ दौड़ा था, कहा "सुबहानल्लाह! अगर यह लोग क़बील–ए–तुर्क व दैलम से भी होते और इतनी मुराआत (मोहलत) के तालिब होते तो तुम्हें उनके साथ यह मुराआत लाज़िम थी।" क़ैस बिन अशअस ने भी यही मशवरा

---

[1]तबरी जि/6, पेज/238
[2]तबरी जि/6, पेज/237–238, इरशाद पेज/242–243
[3]तबरी जि/6, पेज/238

दिया कि मोहलत देनी चाहिए।[1] हज़रत अब्बास[अ०स०] के ज़ब्तो सब्र का बे नज़ीर नमूना था कि यह तमाम गुफ़्तगूएं आपस में होती रहीं और आप ख़ामोश नतीजे के मुन्तज़िर खड़े रहे। आख़िर को मोहलत का मसअला तय पाया और जनाबे अब्बास वापस हुए। इस तरह कि आपके साथ उमरे सअ्द की तरफ़ का एक नुमाइन्दा भी था और उसने आकर कहा कि हम आपको कल तक की मोहलत देते हैं। अगर कल आपने हथियार डाल दिए तो हम आपको अपने अमीर उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद के पास भेज देंगे और आपने इन्कार किया तो फिर जंग यक़ीनी होगी।"[2]

---

[1]तबरी जि/6, पेज/238, इरशाद पेज/143

[2]इरशाद पेज/143

पच्चीसवाँ बाब

शबेआशूर यानी मुहर्रम की दसवीं रात

कोशिश के साथ इस रात की मोहलत इसलिए नहीं ली गई थी कि जंग की कोई ख़ास तैयारी कर ली जाए, न यह कि कहीं से किसी इमदाद के आने की कल तक उम्मीद हो और न यह कि इमाम चाहते थे कि अपने अहलेबैत और पसमान्दगान (अज़ीज़ों) को आइन्दा के लिए कुछ वसीयतें फ़रमा दें और उन्हें आइन्दा के लिए तैयार कर दें। या अपने बाद उनकी हिफ़ाज़त का कोई सामन करना मन्जूर था। उनमें से कोई बात न थी। बल्कि एक तो मक़सद इस मोहलत का वही था जो खुद आपने जनाबे अब्बास[अ0स0] से ज़ाहिर फ़रमा दिया था उस वक़्त जब उन्हें मोहलत के लिए भेजा है, वह यह था कि हम आज की रात अपने परवरदिगार की खूब इबादत कर लें और दुआ व इस्तेग़फ़ार में मसरूफ़ रहें। चुनाँनचे आपने और आपके असहाब ने तमाम शब इस आलम में गुज़ारी कि वह मुसलसल नमाज़ और दुआ और इस्तेग़फ़ार और बारगाहे इलाही में तज़र्रो व ज़ारी (गिरया) में मसरूफ़ थे।[1]

दूसरी बड़ी मसलहत इस एक शब की मोहलत में यह मुज़मर (पोशीदा) थी कि आप ख़तरे के यक़ीनी होने के बाद अपने साथियों को अपनी अपनी तबियतों के तौल लेने का मौक़ा देना चाहते थे और एक बार और यह कह देना चाहते थे कि जो आपका साथ छोड़ कर जाना चाहता हो वह चला जाए। ताकि ऐन मौक़े पर कोई एक मुतनफ़्फ़िस (शख़्स) भी ऐसा बाक़ी न रहने पाए जो ख़तरे के हँगामी होने की वजह से बादिले नाख़्वास्ता (न चाहते हुए) आपका साथ देने पर मजबूर हुआ हो। चुनाँनचे आपने शाम होते होते अपने साथियों को मुजतमा (जमा) करके यह खुतबा इरशाद फ़रमायाः "तमाम तारीफ़ें खुदा के लिए हैं। राहत व तकलीफ़ हर हाल में उसका शुक्र है। बारे इलाहा तेरा शुक्र है कि तूने हमको नुबूवत की इज़्ज़त अता की। कुरआन का इल्म

[1]तबरी जि/6, पेज/240

दिया। दीनी मालूमात का ख़ज़ाना मरहमत फ़रमाया और हमें गोश शुनुअ् (बेहतरीन सुनने वाला), चश्मे बीना (बेहतरीन देखने वाला) और दिले दाना (समझदार) की नेअ्मतों से माला माल किया।''

उसके बाद हज़रत ने फ़रमायाः ''मालूम होना चाहिए कि मैं दुनिया में किसी के साथियों को अपने साथियों से ज़्यादा बावफ़ा और उनसे बेहतर नहीं जानता और न अपने अइज़्ज़ा से ज़्यादा नेकूकार और अदाए हक़ करने वाले अइज़्ज़ा किसी के मुझे मालूम हैं। खुदा तुम सबको मेरी तरफ़ से जज़ाए ख़ैर दे। आगाह हो कि दुश्मन कल ज़रूर जंग करेगा। मैं बख़ुशी इजाज़त देता हूँ कि जहाँ तुम्हारा जी चाहे चले जाओ। मैं बैयत की ज़िम्मेदारी तुम से हटाता हूँ। रात का पर्दा पड़ा चाहता है उसी को अपना मरकब बना कर रवाना हो जाओ। तुम ही को मैं जाने के लिए नहीं कहता बल्कि हर एक तुम में से मेरे अज़ीज़ों में से भी एक एक शख़्स का हाथ पकड़ ले और अपने साथ लेता जाए। इसलिए कि यह लोग सिर्फ़ मेरे तालिब हैं, अगर मुझे क़त्ल कर डालें तो फिर किसी दूसरे की तरफ़ मुतवज्जेह नहीं होंगे।''[1]

इस तक़रीर को सुनकर सबसे पहले हज़रत अबुल फ़ज़लिल अब्बास खड़े हुए और कहा ''किस लिए हम ऐसा करें? क्या इस लिए कि आपके बाद हम ज़िन्दा रहें? हरगिज़ नहीं, खुदा हमको यह रोज़े बद नसीब न करे।'' दूसरे तमाम अइज़्ज़ा भी हज़रत अब्बास के साथ हम आवाज़ (एक आवाज़) हुए और मुत्तफ़िक़ुल लहजा होकर यही अलफ़ाज़ ज़बान पर जारी किए जिसके बाद इमाम ने ख़ास तौर से औलादे अक़ील की तरफ़ मुतवज्जेह होकर फ़रमायाः तुम्हारे लिए तो मुस्लिम का क़त्ल हो चुकना बहुत काफ़ी है। तुम चले जाओ मैं तुम्हें इजाज़त देता हूँ'' उन सब ने मुत्तफ़िक़ुल लहजा हो कर कहा। ''हम ऐसा नहीं करेंगे। आपके बाद ज़िन्दा रहने का कोई मज़ा नहीं।''

उसके बाद असहाब में से मुस्लिम बिन औसजा खड़े हुए, कहा कि ''हम आपको छोड़ दें? यह नहीं हो सकता। खुदा की क़सम मैं इन दुश्मनों से नैज़े के साथ जंग करूँगा। यहाँ तक कि मेरा नैज़ा उनके सीनों में टूट जाए और तलवार चलाऊँगा जब तक कि उसका क़ब्ज़ा मेरे हाथ में ठहर सके और मैं आप से किसी तरह जुदा न हूँगा। अगर हथियार न होंगे कि जिनसे जंग करूँ तो मैं उन्हें पत्थर मारूँगा और आपकी हिमायत करूँगा यहाँ तक कि आपके क़दमों पर इस जान को निसार कर दूँ।'' उसके बाद सईद बिन अब्दुल्लाह

---

[1]इरशाद पेज/ 243–244, तबरी जि/6, पेज/238

बिन हनफ़ी ने कहाः "बख़ुदा हम आपका साथ नहीं छोड़ेंगे जब तक कि ख़ुदा की बारगाह में यह साबित न कर लें कि हम ने रिसालतमाब[स0अ0] के ग़ाएबाना (ग़ैर मौजूदा) हक़ को आपके बारे में अदा कर दिया।

बख़ुदा अगर मुझे यह मालूम हो कि मैं क़त्ल हूँगा फिर ज़िन्दा किया जाऊँगा, फिर जीते जी जला दिया जाऊँगा, फिर मेरी ख़ाक हवा में मुन्तशिर की जाएगी और ऐसा ही मेरे साथ सत्तर मर्तबा होगा तब भी मैं आपका साथ न छोडूँगा जब तक कि आख़री मर्तबा भी आपके क़दमों पर मौत न आ जाए। चेजाएकि यह तो एक मर्तबा का क़त्ल होना है और उसके बाद वह दाईमी इज़्ज़त है जो कभी ख़त्म होने वाली नहीं।" ज़ुहैर बिन क़ैन ने कहाः "बख़ुदा मेरी तो आरज़ू यह है कि मैं क़त्ल किया जाऊँ फिर ज़िन्दा हूँ और फिर क़त्ल किया जाऊँ, ऐसा ही हज़ार मर्तबा हो मगर किसी तरह आपसे और आपके ख़ानदान के नौजवानों से यह मुसीबत दफ़ा हो जाए।" दीगर असहाब ने भी मिलते जुलते अलफ़ाज़ में इसी क़िस्म के जज़्बात का इज़हार किया और सबका मुत्तफ़िक़ुल लहजा (एक आवाज़ में) मतलब यही था कि यह ग़ैर मुमकिन है कि हम आपसे जुदा हो जायें बल्कि अपनी जानें आप पर फ़िदा कर देंगे। हाँ जब हम मर जाये तो फिर चाहे जो हो हम तो अपना फ़र्ज़ अदा कर चुके होंगे।[1] इमाम ने दुआये ख़ैर दी और अपने ख़ैमे में वापस तशरीफ़ ले गए।[2]

यह था मुजाहिदे करबला की हक़्क़ानियत का एक बेमिसाल मुज़ाहरा। आप ज़ोरे तक़रीर से जोशो ख़रोश पैदा करने वाले बयानात और ख़ुश आइन्द (अच्छे दिनों) व दिल फ़रेब तवक़्क़ुआत (उम्मीदों) से अपने साथ वालों को साथ रखना नहीं चाह रहे थे बल्कि उनके सामने हक़ीक़ते हाल को वाज़ेह करके ग़लत फ़हमियों को दूर कर रहे थे। यह कोशिश शबे आशूर ही तक नहीं रही बल्कि इसका आपकी जानिब से मुज़ाहरा रोज़े आशूर भी हुआ। इस तरह कि जब बशर बिन अम्र हज़रमी को जो अन्सारे इमाम में से एक थे। यह ख़बर पहुँची कि उनका फ़रज़न्द "अम्र" रय (तेहरान) की सरहद पर क़ैद हो गया है उन्होंने कहा कि ख़ुदा पर छोड़ता हूँ उसको भी और अपने आपको भी। बेशक अगर मुझे ज़िन्दा रहना होता तो यह पसन्द न करता कि वह क़ैद में रहे।" इमाम को इसकी ख़बर हुई तो आपने फ़रमाया कि तुम मेरी बैयत से आज़ाद

---

[1]तबरी जि/6, पेज/239

[2]इरशाद पेज/244

हो, जाओ और अपने फ़रज़न्द की रिहाई की फ़िक्र करो। वफ़ादार मुजाहिद ने जवाब दिया कि "मुझे जीते जी दरिन्दे खा जायें अगर मैं आपसे जुदा हूँ।" यह भला क्योंकर हो सकता है।" हज़रत ने फ़रमाया "अच्छा अपने फ़रज़न्द मुहम्मद को भेज दो और यह कपड़े उसको दे दो कि उनकी क़ीमत से अपने भाई की रिहाई का सामान कर सके।" आपने पाँच कपड़े मरहमत किए जिनकी क़ीमत हज़ार अशरफ़ी के क़रीब थी। उसके बाद जितने जाँनिसार इमाम के साथ रह गए थे वह वही हो सकते थे जो मौत को अपने लिए यक़ीनी समझते हुए दिल व जान से मक़सदे हुसैन[अ0स0] की हिमायत के लिए आमादा थे और उनके किरदार में कमज़ोरी के शाएबे का इम्कान भी न था।

तीसरी मसलहत इस एक रात की मोहलत की यह हो सकती थी कि आप दुश्मन को एक मौक़ा और अपने किरदार के जाएज़ा लेने का देना चाहते थे ताकि अगर किसी में सलाहियत राहे रास्त पर आने की हो तो वह आ जाए। चुनाँनचे उमरे सअ्द की फ़ौज का एक बड़ा अफ़सर हुर बिन यज़ीद रियाही जो सबसे पहले हुसैन[अ0स0] को घेर कर करबला में लाने का ज़िम्मेदार था अपने ज़मीर की हिदायत की बिना पर फ़ौजे मुख़ालिफ़ से अलाहिदा हो कर असहाबे हुसैन[अ0स0] में दाख़िल हो गया और उसने भी आपकी नुसरत में अपनी जान दी। इस तरह और भी चन्द सिपाही नुसरते बातिल को छोड़ कर नुसरते हक़ पर आमादा हो गए।

हक़ीक़त में एक दाई–ए–हक़ (हक़ की दावत देने वाला) की बड़ी कामयाबी यही क़रार पा सकती है कि वह किसी एक मुतनफ़्फ़िस (शख़्स) को ही सही हक़ीक़ी मानी में राहे हिदायत दिखा सके और हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] की यह एक बड़ी कामयाबी इस रात की मोहलत का नतीजा थी जो आपने दुश्मन से माँग कर हासिल की थी।

गुज़िश्ता ख़ुतबे के बाद तमाम रात इमाम और असहाबे इमाम ने इबादते ख़ालिक़ में बसर की। उसके साथ आपने जंग के हंगाम के लिए इम्कानी हद तक तहफ़्फ़ुज़ी तदाबीर भी किए। आपने अपने असहाब को हुक्म दिया कि वह ख़ैमों को बिल्कुल एक दूसरे के साथ मिला दें और हर ख़ैमे की तनाब को दूसरे ख़ैमें से बाँध दें।[1]

इसके अलावा आपने पुश्त (पीछे) की जानिब एक ऐसे नशेब को जो एक नाली की तरह से था खुदवा कर ख़न्दक़ (गढ़ा) तैयार करा दी और उसमें

---

[1]इरशाद पेज/245

लकड़ियाँ जमा करा दीं कि जब उनमें आग दी जाए तो उस तरफ़ से दुश्मन के हमले का अन्देशा न रहे।

यह तैयारियाँ शबे आशूर मुकम्मल हो गईं और सुबह को उस ख़न्दक़ में आग रौशन कर दी गई इस तरह फ़ौजे दुश्मन को बिल्कुल घेर कर चारों तरफ़ से हमला करने का मौक़ा बाक़ी न रहा।

छब्बीसवाँ बाब

दवसीं मुहर्रम सन 61 हिजरी
इतमामे हुज्जत और आग़ाज़े हर्ब (जंग)

आशूर की रात अपनी तमाम कैफ़ियतों समेत ख़त्म हुई। यक़ीन करना चाहिए कि इस शब करबला के मैदान में किसी की आँख लगने न पाई होगी। इस तरफ़ इबादते ख़ुदा इशतियाक़े शहादत, बीबियों में बेताबी बच्चों में परेशानी और सबसे बढ़कर प्यास का ग़लबा और उस तरफ़ जंग की तैयारी, असलहों की दुरूस्ती तदाबीरे जंग के मुतअल्लिक़ मशवरे और अपने ज़ालिमाना इरादों की तकमील के लिए सुबह का इन्तेज़ार।

बहरहाल रात ख़त्म हुई और सपेद–ए–सहरी (सुबह) नमूदार हुआ। हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने असहाब व अक़रबा के साथ नमाज़े सुबह बाजमाअत अदा की, वह नमाज़ जिसके ताक़ीबात में करबला का जिहाद था।

आलमे इन्सानी दिल व जिगर के मेयार को पेशे निगाह रखते हुए ज़ाहिरबीं (ज़ाहिरी नज़र रखने वाले) अफ़राद ख़याल कर सकते हैं कि उस वक़्त असहाबे हुसैन[अ0स0] पर अजीब हिरास का आलम तारी होगा। सामने नज़र जाती होगी तो उनको दुश्मन की फ़ौज का अज़ीम समन्दर मौजें लेता नज़र आता होगा और अपनी हस्ती उसमें हुबाब (पानी का बुलबुला) की सी नज़र आ रही होगी मगर नहीं हक़ीक़तन ऐसा नहीं था। उनके दिल इतमीनान से मामूर थे। उनके सीनों में ख़ुशी और मसर्रत की लहरें थीं और उनके चेहरों पर फ़रहत व इम्बिसात (चेहरे खिले हुए) की सुर्ख़ी थी। वह जैसे कभी ख़ुश नहीं थे वैसे आज ख़ुश नज़र आ रहे थे जैसे पुर मज़ाक़ बातें कभी न करते थे वैसी आज कर रहे थे।

चुनाँनचे अब्दुर्रहमान बिन अब्देअक़्बा अन्सारी और बुरैर बिन ख़ज़ीर हमदानी का वाक़ेया है कि बुरैर ने अब्दुर्रहमान से मज़ाक़ किया तो अब्दुर्रहमान ने कहा "छोड़ो इन बातों को। यह वक़्त ऐसी बातों का नहीं है। बुरैर ने जवाब

दिया कि "ख़ुदा की क़सम मेरे क़ौम व क़बीले वाले अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं कि मुझे जवानी से लेकर इस उम्र तक कभी मज़ाक़ से दिलचस्पी नहीं रही। मगर मेरा दिल इस वक़्त मुस्तक़बिल के तसव्वुर से महज़ूज़ (ख़ुश) हो रहा है। ख़ुदा की क़सम हमारे और सआदते अबदी (आख़िरत) के दरमियान बस अब इतना फ़ासिला है कि यह दुश्मनाने दीन तलवारें लेकर हम पर टूट पड़ें और मुझे तो तमन्ना है कि किसी तरह वह वक़्त जल्द आए कि उनकी तलवारें हम पर पड़ने लगें।"[1]

बेशक यह हक़्क़ानियत पर ऐतेमाद और उख़रवी (आख़िरत) कामयाबी के कामिल यक़ीन ही का नतीजा हो सकता है।

यही चीज़ कमज़ोर दिल में ताक़त पैदा करती और मायूसियों की ज़ुलमत (अन्धेरे) में उम्मीद की शमा रौशन करती है।

इतनी देर में फ़ौजे मुख़ालिफ़ मैदाने जंग में आ गई। परे जमाए गए और लशकर की तरतीब हुई। मैमना पर अम्र बिन हज्जा ज़ुबैदी, मैसरा पर शिम्र बिन ज़िल जौशन, सवारों का सरदार अज़रा बिन क़ैस अहमसी और प्यादों का अफ़सर शबस बिन रबई यरबूई और अलम उमरे सअ्द ने अपने ग़ुलाम वरीद के सिपुर्द किया।[2]

इमाम हुसैन[अ0स0] भी मैदाने जिहाद में आ गए। यक़ीनन तारीख़ एक ऐसे सिपह सालार की मिसाल पेश करने से क़ासिर है जिसने ऐसी छोटी सी जमाअत को कम अज़ कम बीस तीस हज़ार फ़ौज के मुक़ाबले में जंग के लिए खड़ा किया हो।

एक तारीख़ी सराहत के मुताबिक़ यह बत्तीस (घोड़े सवार) सवार और चालीस प्यादों (पैदल) से ज़्यादा नहीं थे।[3]

और इसी लिए शोहदा–ए–करबला के लिए बहत्तर की लफ़्ज़ ज़बान ज़द ख़लाएक़ (लोगों की ज़बान पर है) है।

मगर करबला के हालाते जंग और मुजाहदीन के नामों की तफ़सील और दूसरे मुतअल्लिक़ा वाक़ेयात से यह समझा जा सकता है कि यह तादाद सौ से ज़्यादा और दो सौ से कम थी।[4] मुमकिन है कि आम तौर पर तारीख़ में जो

---

[1] तबरी जि/6, पेज/241

[2] अख़बारूत तुवाल पेज/254, तबरी जि/6, पेज/241, इरशाद पेज/246

[3] अख़बारूत तुवाल पेज/254, तबरी जि/6, पेज/241, इरशाद पेज/246

[4] (अम्मार दहनी की रिवायत अबू जाफ़र से इसके मुताबिक़ है। उसमें है कि जमाअते हुसैनी 40 सवारों और सौ प्यादों पर मुशतमिल थी। (तबरी जि/6, पेज/220

तादाद दर्ज और उमूमन ज़ाबने ज़दे ख़ल्क़ (लोगों की ज़बान पर) है और जो इस किताब में भी बाज़ जगह नज़र आएगी उन जाँबाज़ों की हो जो फ़ौजी अन्दाज़ पर तरबियत याफ़्ता थे लेकिन सिलसिल–ए–जिहाद में बहुत से ऐसे अफ़राद भी मैदान में आ गए जो फ़ौजी हैसियत से सिपाही न समझे जा सकते थे।

मैदाने जंग में आने के बाद पहले इमाम ने अपने हाथ दरगाहे अहदियत में बलन्द किए और यह मुनाजात ज़बान पर जारी की। क्या निसबत दी जा सकती है नबीए खुदा हज़रत ईसा[अ0स0] की आवाज़ को जो बाईबिल (अहदे जदीद) की नक़्ल के मुताबिक़ सलीब पर बलन्द हुई थी। इस अन्दाज़ से कि ايلی ايلی ما سبقتنی "ऐ खुदा तूने मुझे क्यों छोड़ दिया।" फ़रज़न्दे रसूल[स0अ0] इमाम हुसैन[अ0स0] की उस मुनाजात के साथ जो इस सैलाबे मुसीबत के अन्दर आपके लबों पर जारी हो रही थी।

खुदा वन्दा! तू मेरा सहारा है हर तकलीफ़ में और मेरा क़िब्ल–ए–उम्मीद है हर सख़्ती में और तुझ पर मुझे हर मुहिम में जो दरपेश हो भरोसा है। कितने ही सदमे ऐसे हैं जिनके बर्दाश्त करने से दिल कमज़ोर साबित होता है और हीला (बहाने) व तदबीर की राहें बन्द नज़र आती हैं। दोस्त उनमें साथ छोड़ देते और दुश्मन उनमें तानाज़नी करने लगते हैं। मैं उनको तेरे हुज़ूर में पेश करता और तेरी बारगाह में अर्ज़े मारूज़ (पेश) करता हूँ इसलिए कि मैं तुझे छोड़ कर किसी और से लौ लगाना ही नहीं जानता तू इस तकलीफ़ को दूर करता और उसका तदारूक करता है। यक़ीनन तू ही हर नेअ्मत का मालिक और एहसान का मरकज़ और हर मतलब के लिए आख़री जाएपनाह है।"[1]

उसके बाद आपने अपने छोटे से लश्कर को तरतीब दिया। मैमने पर ज़ुहैर बिन क़ैन, मैसरे पर हबीब इब्ने मुज़ाहिर और अलमदार अब्बास बिन अली[अ0स0] क़रार दिए गए।[2]

चूँकि इमाम हुसैन[अ0स0] की जद्दो जेहद का मक़सद यह था कि दीन व आईने शरीअत की हक़्क़ानियत को ज़ाहिर करते हुए अपने दुश्मन की सीरत व किरदार के मुतअल्लिक़ दुनिया के सामने इस हक़ीक़त को साबित कर दें कि उसे इस्लाम से दूर का भी कोई तअल्लुक़ नहीं है इस के लिए ज़रूरत थी कि

---

[1]तबरी जि/6, पेज/241, इरशाद पेज/246

[2]तबरी जि/6, पेज/241, इरशाद पेज/246, अख़बारूत तुवाल पेज/253

एक तो आपके किरदार में कोई ऐसा शाएबा भी न आने पाए जो आपके ख़िलाफ़ तशद्दुद के जवाज़ की दलील बन सके। इसी लिए आपने मुसालिहत (सुल्ह) की गुफ़्तगूएं कीं। मुल्के अरब को छोड़ने और दरबदरी की ज़िन्दगी बसर करने पर आमादगी ज़ाहिर की और असबाबे इश्तेआल (भड़काने वाली हरकतों) पैदा किए जाने के बावजूद भी अपने साथियों को जंग में सबक़त (पहल) से रोके रखा और लड़ाई की मुकम्मल तैयारी हो चुकने के बाद भी अपनी तरफ़ से पहल न होने दी। चुनाँनचे सुब्हे आशूर अभी जब ख़यामे इमाम के साथ ख़न्दक़ में आग भड़क रही थी तो उधर का एक सवार सर से पैर तक लोहे में ग़र्क़ इस तरफ़ से गुज़रा और उस ख़न्दक़ की आग को शोलावर देखकर एक इन्तेहाई इशतेआल अंगेज़ जुमला कहा। मालूम हुआ कि शिम्र बिन ज़िल जौशन है। मुस्लिम बिन औसजा ने इमाम से अर्ज़ किया कि इजाज़त हो तो उसको तीर का निशाना बना लूँ क्योंकि यह बड़ा फ़ासिक़ व फ़ाजिर शख़्स है और इस वक़्त बिल्कुल तीर की ज़द पर है। हज़रत ने फ़रमायाः "नहीं ऐसा न करो मैं जंग में पहल नहीं करना चाहता।"[1]

याद रखना चाहिए कि यह एक तीर जो उस वक़्त कमान से रिहा हो जाता नौईयते जंग को तब्दील कर देता। इमाम [अ0] ने इसका सख़्ती के साथ लिहाज़ रखा।

दूसरे इसकी ज़रूरत थी कि आपके ख़िलाफ़ दुश्मन के तर्ज़े अमल में तावील (बहाने) की कोई गुन्जाइश बाक़ी न रह जाये। सबसे बड़ी तावील किसी नारवा (ग़ैर मुनासिब) अमल के मुतअल्लिक़ उसका बेख़बरी और नावाक़फ़ियत (ना मालूमी) पर महमूल (तसव्वुर) किया जाना है। बनी उमैया ने अपने हुदूदे ममलिकत में यह प्रोपिगन्डा किया था कि पैग़म्बरे इस्लाम[स0अ0] ने अपने बाद कोई औलाद नहीं छोड़ी और हम उनके वारिसे जाएज़ हैं। इसके लिए ज़रूरत थी कि इमाम हुसैन[अ0स0] अपने नामो नसब और ख़ानदानी ख़ुसूसियात नीज़ अपने बारे में इस्लामी रिवायात को फ़ौजे मुख़ालिफ़ पर इस तरह वाज़ेह कर दें कि उनमें से किसी एक फ़र्द के लिए भी ना वाक़फ़ियत के उज़्र (बहाने) की गुन्जाइश बाक़ी न रह जाए और आपके ख़िलाफ़ जो ज़ुल्म हो रहा है उसके जुर्म की अहमियत हर एक पर बिल्कुल रौशन हो जाए। और उनमें से हर एक न ख़ुद अपने नफ़्स को धोखा दे सके और न दूसरों को उनकी निसबत किसी हुस्ने ज़न (अच्छा गुमान) "या अमल बर सेहत (यज़ीद के मुतअल्लिक़ अच्छे

---

[1] तबरी जि/6, पेज/242

गुमान या हुसैन [अ0] से जंग को जाएज़ समझे)'' का रास्ता मिल सके। इमाम हुसैन [अ0] देख चुके थे कि उनसे पहले उनके वालिद हज़रत अली [अ0] का मुक़ाबला किया गया और उस मुक़ाबले को ''ख़ताए इज्तेहादी (मामूली ग़लती)'' का पर्दा डाल कर क़ाबिले मुआफ़ी समझ लिया गया। हुसैन[अ0स0] के ख़िलाफ़ तलवार उठाने वालों के अमल में अगर कहीं से इस तरह की गुन्जाइश होती तो सादा लौह अफ़राद या हवा ख़्वाहाने (चापलूस) बनी उमैया इससे फ़ाएदा उठाने से चूकते थोड़े ही और इस मक़सद और मफ़ादे दीनी को सख़्त नुक़सान पहुँच जाता। इससे तहफ़्फ़ुज़ (बचाओ) के लिए इमाम हुसैन[अ0स0] ने वह सब कुछ किया जिस ''इतमामे हुज्जत'' के नाम से ताबीर किया जाता है। जिसके बाद दुश्मन के ''इसरारे गुनाह'' या बातिल पर ज़िद की हैसियत इतनी नुमायाँ हो गई कि किसी तावील या हिमायत का मौक़ा बाक़ी न रहा।

तारीख़ी बयानात से ज़ाहिर होता है कि सुब्हे आशूर दोनों तरफ़ की सफ़ बन्दी हो चुकने के बाद काफ़ी वक़्त तक आग़ाज़े जंग नहीं हुआ। इसका सबब यही मालूम होता है कि दुश्मन इसका मौक़ा ढूँढ रहा था कि किसी सूरत से हुसैनी जमाअत की तरफ़ से कोई ऐसा इक़दाम हो जो बिनाए जंग (जंग का बहाना) बन सके और इमाम हुसैन[अ0स0] का मन्शा यह था कि मेरी तरफ़ से आग़ाज़े जंग होने न पाए बल्कि उसके बर ख़िलाफ़ आपने दुश्मन को राहे रास्त पर लाने की पुर अम्न कोशिश करके चाहा कि इतमामे हुज्जत फ़रमायें इस लिए आपने नाक़ा (ऊँट) तलब फ़रमाया और उस पर सवार हुए। क़ुरआन अपने सामने रखा।[1]

फिर सुफ़ूफ़े (सफ़ों) दुश्मन के क़रीब आकर बलन्द आवाज़ से इरशाद फ़रमायाः ''ऐ गिरोहे मरदुम (लोगो!) मेरी बात सुनो जल्दी से काम न लो। यहाँ तक कि मुझ पर जो तुम्हारा हक़ है उसके मातहेत तुमको नसीहत व हिदायत का फ़र्ज़ अदा कर दूँ और तुम्हारे सामने यह हक़ीक़ते हाल बयान कर दूँ कि मैं तुम्हारी जानिब क्यों आया? अगर तुम ने मेरे बयान को सही समझते हुए तस्लीम कर लिया और मेरे साथ इन्साफ़ से काम लिया तो यह तुम्हारी ख़ुश क़िस्मती होगी और तुम्हें मालूम होगा कि तुम्हें मेरी मुख़ालिफ़त की कोई वजह हो ही नहीं सकती और अगर तुमने मेरे बयान को क़ुबूल न किया और इन्साफ़ से काम न लिया तो शौक़ से मुजतमा (जमा) कर लो अपनी ताक़तों को और इकट्ठा करलो जिस जिस को चाहो अपने हम ख़यालों में से और कोई

---

[1]तबरी जि/6, पेज/241

कोशिश उठा न रखो, फिर पूरी ताक़त से बग़ैर एक दम की भी मोहलत दिए हुए मेरा ख़ातिमा कर दो। मेरे लिए वह परवरदिगार काफ़ी है जिसने क़ुरआन को नाज़िल किया और वही अपने नेक आमाल बन्दों का मददगार है।'' इमाम हुसैन[अ0स0] की आवाज़ ख़ैमे में पहुँचना थी कि अहले हरम में गिरया व बुका का शोर बलन्द हुआ। हज़रत ने अब्बास[अ0स0] व अली अकबर[अ0स0] को भेजा कि उन्हें ख़ामोश करो। रोने का वक़्त बात को आएगा। जब आवाज़ गिरया की मौक़ूफ़ (रूक) हो गई तो हज़रत ने हम्दे इलाही अदा फ़रमाई और ख़ुदा के औसाफ़ ज़िक्र फ़रमाए फिर जनाबे रिसालतमाब[स0अ0] पर दुरूद भेजा और आँहज़रत के औसाफ़ व फ़ज़ाएल देर तक बयान फ़रमाते रहे। रावी का बयान है कि मैंने हुसैन[अ0स0] के पहले और हुसैन[अ0स0] के बाद कोई मुतकल्लिम (बोलने वाला) नहीं देखा जो फ़साहत व बलाग़त में आपसे बढ़ा हुआ हो। हम्द व सलवात अदा करने के बाद हज़रत ने फ़रमायाः ''ज़रा मेरे नाम व नसब पर ग़ौर करो और देखो तो मैं कौन हूँ फिर अपने गरीबानों में मुँह डालो। ग़ौर करो कि तुम्हारे लिए मेरे ख़ून का बहाना और मेरी हतके हुरमत (बेइज़्ज़ती) करना जाएज़ है? क्या मैं तुम्हारे नबी का नवासा नहीं हूँ और उनके वसी, उनके चचाज़ाद भाई और उन पर सबसे पहले ईमान लाने वाले और उनकी तस्दीक़ करने वाले का फ़रज़न्द? क्या हमज़ा सय्यदुश शोहदा मेरे बाप के चचा और जाफ़रे तैयार ख़ुद मेरे ही चचा नहीं थे? क्या यह हदीस जो ज़बान ज़दे ख़लाएक़ (हर एक की ज़बान पर है) है तुम्हारे गोश ज़द (तुम ने नहीं सुनी) नहीं हुई कि हज़रत रसूले ख़ुदा[स0अ0] ने मेरे और मेरे भाई के बारे में फ़रमाया था कि यह दोनों जवानाने अहले जन्नत के सरदार हैं? अगर तुम मेरी बात को सच समझते हो और हक़ीक़तन वह सच ही है, इसलिए कि कभी मैंने ग़लत बात नहीं कही, फिर तो कोई बात नहीं और अगर तुम मेरी बात को ग़लत समझो तो इस्लामी दुनिया में अभी हैं ऐसे अशख़ास जिनसे अगर तुम पूछो तो वह बतला देंगे। पूछ लो जाबिर बिन अब्दुल्लाह अन्सारी से, अबू सईद ख़दरी से, सहल बिन सअ्द साएदी से, ज़ैद बिन अरक़म से, अनस बिन मालिक से। वह तुम्हें बताएंगे कि उन्होंने रिसालतमाब[स0अ0] से अपने कानों से इस हदीस को सुना है। फिर क्या यह तुम्हें मेरी ख़ूँरेज़ी से रोकने के लिए काफ़ी नहीं है।[1] इस मौक़े पर शिम्र आपका कलाम क़ता करते हुए बोल उठा कि ''मैं अल्लाह की इबादत एक हर्फ़ पर करता हूँ। अगर मेरी समझ में आता हो कि तुम क्या कह रहे

[1]तबरी जि/6, पेज/242

हो।'' (कुरआन में मुनाफ़क़ीन की निसबत आया है ومن الناس من يعبد الله على حرف लिहाज़ा उसका मक़सूद था कि मैं मुसलमान नहीं, मुनाफ़िक़ हूँ अगर कुछ समझता हूँ कि आप क्या कह रहे हैं।)

असहाब ख़ामोश खड़े हुए इमाम की तक़रीर सुन रहे थे उन्हें शिम्र की यह बदतमीज़ी और हज़रत के खुतबे में मुदाख़िलत सख़्त नागवार हुई। हबीब बिन मज़ाहिर ने पुकार कर जवाब दियाः ''बखुदा मैं जानता हूँ कि तू खुदा की इबादत सत्तर हरफ़ों पर करता है। (यानी इन्तेहाई मक्कार और इबादत के मुआमले में फ़रेबी है) और मैं गवाही इसकी भी देता हूँ कि तू सच कहता है तेरी कुछ समझ में नहीं आता कि हज़रत क्या कह रहे हैं। खुदा ने तेरे दिल पर मोहर लगा दी है।'' इमाम ने फिर सिलसिल–ए–तक़रीर जारी फ़रमाया। अगर तुम्हें इस हदीस की सेहत में फिर भी शक है तो क्या इसमें भी शक है कि मैं तुम्हारे रसूल का नवासा हूँ। खुदा की क़सम मशरिक़ व मग़रिब के आलम में कोई भी नबी का नवासा मेरे सिवा मौजूद नहीं है न तुम में और न तुम्हारे सिवा दूसरे अक़वाम में और मैं तो खुद तुम्हारे ही नबी का नवासा हूँ। ज़रा बताओ तो सही कि मेरे क़त्ल पर तुम किस लिए आमादा हुए हो? क्या किसी अपने मक़तूल का क़िसास लेना चाहते हो जिसे मैं ने क़त्ल कर दिया हो? या किसी अपने माल का मुतालबा रखते हो जिसे मैंने तल्फ़ (ले लिया) किया हो? या किसी ज़ख़्म का बदला चाहते हो जो मेरे हाथ से किसी को लगा हो?'' एक ख़ामोशी सी छाई रही और उनमें से किसी से कुछ जवाब देते न बन पड़ा।[1]देखिए तो कि एक इन्सान एक तरफ़ और हज़ारों ज़बानें दूसरी तरफ़, बेशक हक़ में ऐसी ताक़त होना चाहिए और एक इन्सान अपनी सच्चाई और हुस्ने अमल पर इतना एतेमाद रखता हो। हुसैन[अ0स0] उस वक़्त जबकि अपना कोई गवाह न था और मजमा दुश्मन था मजमे से अपनी बे जुर्मी का इक़रार ले रहे थे। तमाम लशकर को दावत दी जा रही थी कि कोई शख़्स किसी जुर्म का पता दे दे। होता कोई जुर्म किसी की निगाह में तो उस तीस हज़ार के मजमे में कोई ज़बान खोलता क्या दुनिया की कोई माद्दी ताक़त ज़बानों को रोकने वाली थी? मगर मालूम होता है कि सच्चाई की ताक़त थी जो दहनों पर क़ुफ़्ल (ताला) और ज़बानों पर गिरह लगाए हुए थी जिसका नतीजा यह था कि एक यको तन्हा इन्सान हज़ारों आदमियों को मुख़ातब कर रहा था और किसी को उसके ख़िलाफ़ ज़बान कुशाई की जुरअत न थी।

---

[1]तबरी जि/6, पेज/244, इरशाद पेज/248

फ़ौजे मुख़ालिफ़ के सुकूत को मुलाहिज़ा फ़रमाने के बाद आपने नाम बनाम उन लोगों को पुकारा जिनके इस ख़त पर दस्तख़त मौजूद थे और यह लोग मामूली दर्जे के सिपाही भी न थे बल्कि उनमें से हर एक कम अज़ कम हज़ार पाँच सौ आदमियों का सरदार था। आपने फ़रमायाः "ऐ शब्स बिन रबई, ऐ हिजार बिन अबजर, ऐ क़ैस बिन अशअस, ऐ यज़ीद बिन हारिस क्या तुमने मुझे नहीं लिखा था कि खेतियाँ लहलहा रही हैं, चश्मे पानी से छलक रहे हैं। आईये लशकर आपकी मदद के लिए तैयार हैं।"[1] अब मुआमला उन अशख़ास के लिए इन्तेहाई नाजुक था। चार आदमियों की बाबत नाम ले ले कर यह इन्केशाफ़ (ज़ाहिर) किया जा रहा था कि उन्होंने भी आपको ख़त भेजा था। गोया यज़ीदी अफ़वाज और उनके सालार उमरे सअ्द के सामने उन लोगों की साज़िश, दो रंगी और हुकूमत से एक तरह की बग़ावत का सुबूत मुहैया किया जा रहा था हालाँकि वह कूफ़े के सर बर आवुर्दा (नामवर) अशख़ास थे और इब्ने ज़ियाद की तरफ़ से बड़े बड़े मुअज़्ज़िज़ (इज़्ज़तदार) ओहदों पर फ़ाएज़ थे। उन्होंने तो वह ख़त जैसा पहले बताया जा चुका है महज़ साज़िशी अन्दाज़ में हवा के रूख़ को देख कर लिखा था। इस ख़याल से कि हुसैन[अ0स0] के नाम इतनी कसरत से खुतूत आ रहे हैं और बुलाया जा रहा है। अगर कहीं हुसैन[अ0स0] आ गए और फ़िज़ा उनके मुवाफ़िक़ रही तो हमारे लिए भी जगह बाक़ी रहना चाहिए इसलिए उन्होंने यह ख़त लिखा मगर उस वक़्त इतने गवाहों के सामने उनकी साज़िश मुन्कशिफ़ (खुल) हो रही थी और अन्देशा था कि वाक़–ए–करबला के बाद इब्ने ज़ियाद के हाथ से उन लोगों का फ़ैसला हो जाए और सलतनते बनी उमैया की जानिब से रान्द–ए–दरगाह (निकाल दिये) क़रार पा जायें इसलिए बरबिनाए ज़रूरत उनको इस मौक़े पर बेग़ैरती के साथ बोलना नागुज़ीर था। चुनाँनचे उन्होंने अपनी तहरीरों से इन्कार किया और कहा "हम ने इस तरह के खुतूत नहीं लिखे थे।" इमाम ने फ़रमाया "अल्लाहो अकबर! इतना खुला हुआ हक़ीक़त से इन्कार! तुमने ख़त लिखा था और ज़रूर लिखा था। अच्छा बफ़र्ज़े मुहाल नहीं भी लिखा था और तुम लोग मेरा आना हक़ीक़तन नहीं भी चाहते थे तो मुझे वापस चला जाने दो किसी ऐसी जगह जहाँ मैं अमनो अमान की ज़िन्दगी गुज़ार सकूँ।" क़ैस बिन अशअस ने (जिसकी बहन जोअ्दा बिन्ते अशअस ने हुकूमते शाम के साथ साज़िश में शरीक हो कर इमाम हसन[अ0स0] को ज़हर दिया था और जिसका भाई मुहम्मद

---

[1]तबरी जि/6, पेज/243, इरशाद पेज/248

बिन अशअस हज़रत मुस्लिम के क़त्ल का ज़िम्मादार था) पुकार कर कहा ''आप यज़ीद की बैयत क्यों नहीं कर लेते?'' हज़रत ने फ़रमायाः ''तुम ऐसा क्यों न कहोगे तुम मुहम्मद बिन अशअस ही के तो भाई हो। क्या तुम इतने को काफ़ी नहीं समझते कि मुस्लिम बिन अक़ील के ख़ून की ज़िम्मेदारी तुम पर है। ख़ुदा की क़सम मैं ज़िल्लत के साथ अपना हाथ तुम्हारे हाथ में न दूँगा और न ग़ुलामों की तरह ख़तरे से अपनी जान बचा कर भागूंगा।''

फ़ौजे मुख़ालिफ़ के मुतअस्सिर होने की पहले ही से उम्मीद न थी। अपना फ़र्ज़ पूरा करना था वह पूरा हो गया। हज़रत ने नाक़ा (ऊँट) को बिठा दिया। उतर पड़े और उक़बा बिन समआन को हुक्म दिया कि उसे बाँध दें।[1]

चूँकि असहाबे हुसैन[अ0स0] आपके मक़सद से वाक़फ़ियत हासिल कर चुके थे इसलिए वह भी मसलके हुसैनी ही को पेशे नज़र रखने की कोशिश करते थे और अफ़वाजे यज़ीद की अकसरियत अवाम अहले कूफ़ा के मुमताज़ अफ़राद की तक़रीरों का उन पर काफ़ी असर हो सकता था। फिर उनमें भी हबीब बिन मज़ाहिर वग़ैरह जो हमेशा से शिय–ए–अली होने की हैसियत से मशहूर थे और हज़रत को कूफ़े की जानिब दावत देने वालों में से थे। हवाख़्वाहाने (दोस्त) बनी उमय्या के लिए उनकी तक़रीर ऐसी मुअस्सिर न हो सकती थी जैसी ज़ुहैर बिन क़ैन की जो कि अभी क़रीबी ज़माने तक ''उसमानी'' गिरोह में शुमार होते थे और अब मक्के व करबला के रास्ते ही में इमाम के पास आकर शरीक हुए थे इसलिए फ़ौजे मुख़ालिफ़ के सामने सबसे ज़्यादा तक़रीरें उन्होंने की हैं जिनका ज़ाहरी हैसियत से उस वक़्त कोई नतीजा मुरत्तब हुआ हो या नहीं लेकिन यही नतीजा क्या कम है कि अफ़वाजे मुख़ालिफ़ पर हर मुमकिन ज़रिये से इतमामे हुज्जत हो गया। चुनाँनचे इमाम हुसैन[अ0स0] के मज़कूर–ए–बाला ख़ुतबे के बाद ज़ुहैर बिन क़ैन घोड़े पर सवार, सर से पावँ तक लोहे में ग़र्क़ सफ़ से बाहर निकले। पुकार कर कहा ''कूफ़े वालो ख़ुदा के अज़ाब से डरो। एक मुसलमान की गर्दन पर उसके इस्लामी भाई का यह हक़ है कि वह उसे ख़ैर ख़्वाहाना (अच्छी) नसीहत करे और हम आपस में भाई भाई उस वक़्त तक हैं और एक ही मिल्लत के ताबेअ् की हैसियत रखते हैं जब तक कि हमारे दरमियान तलवार चलने नहीं लगी है। यानी जब तक बाक़ाएदा जंग शुरू नहीं हो जाती हम में और तुम में रिश्त–ए–उख़ूवत (भाई चारगी) क़ायम है और तुम अभी हमारी तरफ़ से

---

[1]तबरी जि/6, पेज/243, इरशाद पेज/248

नसीहत के मुस्तहक़ हो। बेशक जब तलवार चलने लगेगी तो यह रिश्ता ख़ुद बख़ुद टूट जाएगा और हम अलाहिदा अलाहिदा मिल्लतों के ताबेअ् (मानने वाले) क़रार पा जायेंगे। यक़ीनन अल्लाह ने हमारी और तुम्हारी आज़माइश की है। अपने नबी मुहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] की औलाद के ज़रिए से ताकि वह देखें कि हम उनके साथ क्या करते हैं और तुम क्या सुलूक करते हो। हम तुम सबको दावत देते हैं कि उनकी मदद करो और उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद का साथ छोड़ो। यज़ीद और इब्ने ज़ियाद से तुमको उनकी हुकूमत के तमाम दौर में भी सिवा बुराई के कोई अच्छा सुलूक नज़र न आयेगा। वह तुम्हारी आँखों में सलाईयाँ फिरवाते, तुम्हारे हाथ पावँ क़ता कराते। तुमको सूलियाँ दिलवाते और तुम्हारे नेक अमाल हुफ़्फ़ाज़े (हाफ़िज़) क़ुरआन मसलन हुज्र बिन अदी और उनके हमराहियों और हानी बिन उरवा वग़ैरह के ऐसे अशख़ास को क़त्ल करते रहे हैं।[1]

मज़मून के लिहाज़ से इमाम हुसैन[अ0स0] के ख़ुतबे और ज़ुहैर बिन क़ैन की तक़रीर में बहुत नुमायाँ फ़र्क़ है। इसका अन्दाज़ा ख़ास तौर पर इन्फ़ेरादी हैसियत (अपनी तरफ़ से) से हक़ीक़ते हाल को वाज़ेह करने और अपनी शख़सियत के तआरूफ़ पर मबनी मालूम होता है। और उसमें मौजूदा हुकूमत के मुतअल्लिक़ एक सियासी तबसेरा है जिसमें यज़ीद से ज़्यादा इब्ने ज़ियाद की हुकूमत के किरदार पर तबसेरा किया गया। इस मसलहत से कि मुख़ातब कूफ़ा के बाशिन्दे थे और उनको बराहे रास्त इब्ने ज़ियाद के मज़ालिम से साबिक़ा पड़ रहा था। ग़ालिबन यही वजह थी कि ज़ुहैर बिन क़ैन को अपनी तक़रीर के सिलसिले में सख़्त मज़ाहमत से दो चार होना पड़ा। इस तरह कि इब्ने ज़ियाद के हवाख़्वाहों (दोस्तों) और ख़ुशामदियों ने ख़ुद ज़ुहैर की मज़म्मत और इब्ने ज़ियाद की मदह शुरू कर दी और कहा हम उस वक़्त तक दम न लेंगे जब तक तुम्हारे सरदार और उनके साथियों को क़त्ल न कर लें। या गिरफ़्तार करके उनको इब्ने ज़ियाद के पास न ले जायें। ज़ुहैर उसके बाद भी ख़ामोश न हुए और उनको हिदायत करते रहे। यहाँ तक कि शिम्र ने तीर लगाया और कहा ''बस ख़ामोश। ख़ुदा तेरी ज़बान को चुप करे।'' मगर ज़ुहैर ने तीर की भी कोई परवाह नहीं की और वह शिम्र से मसरूफ़े कलाम हो गए। शिम्र के उस कहने पर कि ''देखो थोड़ी देरे में तुम और तुम्हारे सरदार सब क़त्ल हुआ चाहते हैं।'' ज़ुहैर ने बड़ी जिगर दारी और क़ुव्वते ईमानी के साथ

[1]तबरी जि/6, पेज/243

जवाब दिया "तू मुझे मौत से ख़ौफ़ दिलाता है? ख़ुदा की क़सम उनके साथ मरना मुझे तुम लोगों के साथ ज़िन्दगी–ए–जावेद हासिल करने से ज़्यादा महबूब है।" उसके बाद फिर वह लशकरे मुख़ालिफ़ की तरफ़ मुख़ातब हुए और कहा "ऐ अल्लाह के बन्दो! ऐसे बन्दगाने ज़र (दौलत के पुजारी) के कहने में न आओ। ख़ुदा की क़सम पैग़म्बरे ख़ुदा की शिफ़ाअत उन लोगों को कभी नसीब नहीं हो सकती जिन्हों ने पैग़म्बरे ख़ुदा की औलाद का ख़ून बहाया हो और उनके मददगारों को क़त्ल किया हो।" इमाम हुसैन[अ0स0] ने यह देख कर कि बातों का जवाब तीर से दिया जा रहा है और इतमामे हुज्जत का फ़र्ज़ अदा हो चुका है किसी से पुकार कर कहलाया कि ज़ुहैर! वापस चले आओ, अगर मोमिने आले फ़िरऔन ने अपनी क़ौम को नसीहत करके अपने फ़र्ज़ को अदा कर दिया था तो यक़ीनन तुम भी अपना फ़र्ज़ पूरा कर चुके और नसीहत का हक़ अदा कर दिया। मगर नसीहत व तबलीग़ का कोई फ़ाएदा भी तो हो।[1]इस आवाज़ को सुनकर ज़ुहैर वापस चले आये।

इन मुसलेहाना (सुलह) रूजहानात, इन हक़ीक़त रेज़ बयानात और बसीरत अफ़रोज़ नसाएह (नसीहतें) व इज़हारात का कोई असर हो रहा था या नहीं। यह अम्र बिल्कुल तारीकी में था, जब तक कि हुर के बातिन ने पर्दा उलट कर अपने को ज़ाहिर नहीं किया। हमारी किताब के नाज़रीन के लिए यह नाम कोई अजनबी हैसियत नहीं रखता। यही हुर वह था जिसने एक हज़ार फ़ौज की जमीयत के साथ आकर कूफ़े के रास्ते में इमाम हुसैन[अ0स0] को रोका था जो आपको घेर कर करबला लाया था और जिसने इब्ने ज़ियाद का ख़त आने के बाद इतनी सख़्ती बरती थी कि ख़्यामे हुसैनी को दरया के किनारे बरपा न होने दिया था। उसके बाद मुहर्रम की दूसरी तारीख़ से दसवीं तक उसकी क्या हालत रही थी इसका बाद की सूरते हाल और ख़ुद हुर के अक़वाल से पता चलता है कि जिस वक़्त से वह इमाम हुसैन[अ0स0] को करबला में पहुँचा कर इब्ने ज़ियाद को मुत्तेला कर चुका उस वक़्त से बराबर ख़ामोशी के आलम में मगर बेचैनी के साथ हालात का बग़ौर मुशाहिदा कर रहा था।

इसके क़ब्ल उसने रास्ते ही में इस तरह की सिलसिला जुम्बानी (कोशिश) करना चाही थी कि किसी तरह इमाम हुसैन[अ0स0] और यज़ीद या इब्ने ज़ियाद के दरमियान कुछ ख़त व किताबत हो और मुआमिलात रू बइस्लाह हो जायें। उसके बाद मैदाने करबला में पहुँचने के बाद भी उसे यह तवक़्क़ो (उम्मीद) थी

---

[1]तबरी जि/6, पेज/243–244

कि बीच में कोई ऐसा मुशतरिका (आपस में) नुक़ता पैदा हो जायेगा। जहाँ इमाम और उनके मुख़ालिफ़ मुजतमा हो जायें और जंग की सूरत पेश न आये। उसे कूफ़े से मुतवातिर फ़ौजें आने से इन्तेशार ज़रूर पैदा होता होगा। मगर उमर बिन सअ्द का तर्ज़े अमल उसके लिए उम्मीद अफ़ज़ा था जो ख़ुद सुलह की गुफ़्तगूएं कर रहा था और यह चाहता था कि किसी तरह जंग न हो। ऐसा भी वक़्त आया जब सिलसिल–ए–गुफ़्तगू ऐसे नुक़ते पर पहुंचा जहाँ उमरे सअ्द तक ने यह तय कर लिया कि अब मुआमला यकसू (सुलझ) हो गया और मुक़ाबले की ज़रूरत बाक़ी नहीं रही। फिर ऐसी सूरत में हुर को यह समझने की क्या वजह थी कि जंग ज़रूर होगी। वह देख रहा था कि इमाम का तर्ज़े अमल रवादाराना है। आप अपनी जानिब से माक़ूल शराएत पेश कर रहे हैं जिन पर सुलह न होने की कोई वजह नहीं। यह तवक़्क़ुआत थे जो उसके दिल व दिमाग़ पर नवीं मुहर्रम की सह पहर तक छाये रहे होंगे मगर 9 मुहर्रम की शाम को यह सब उम्मीदें मुन्क़ता हो गईं। इब्ने ज़ियाद के उस ख़त से जो शिम्र बिन ज़ील जौशन के हाथ उमरे सअ्द के पास पहुँचा जिसके बाद उमरे सअ्द मजबूर था कि वह उसी वक़्त हुसैनी जमाअत पर हमला आवर हो और बदिक़्क़त तमाम हुसैन[अ0स0] और असहाबे हुसैन[अ0स0] को सिर्फ़ एक शब की मोहलत इबाते ख़ुदा के लिए देना मन्ज़ूर करे। यक़ीनन यह वह वक़्त था कि जब हक़ीक़तन हुर के सामने इमाम हुसैन[अ0स0] से खुल कर जंग करने और आपके क़त्ले नाहक़ में शिरकत करने का सवाल सरीही (साफ़) तौर पर पैदा हो गया और उसको यह नज़र आने लगा था कि मैं ने इससे पहले हुसैन[अ0स0] के ख़िलाफ़ जितने भी इक़दामात किए थे वह उस मज़लूम मुक़द्दस हस्ती को फ़ना की मन्ज़िल से क़रीब करने के सामन थे। उसकी ज़िम्मेदारी मुझ पर है और उसके बाद फिर अब क्या मुझको उससे बड़े इक़दामात में शिरकत करना चाहिए? क्या मैं हुसैन[अ0स0] के ख़ून में अपने हाथों को रंगीन कर सकता हूँ? उसका ज़मीर सख़्ती से इन्कार करता था कि हरगिज़ नहीं। मुझसे यह नहीं हो सकता। उसे अब सब कुछ याद आता होगा कि हुसैन वह थे जिन्हों ने उस सख़्त मौक़े पर मुझे और मेरी तमाम फ़ौज को पानी से सेराब किया था। अब उन पर और उनके नन्हें नन्हें बच्चों तक पर पानी बन्द है और यह बड़ी हद तक मेरी ही वजह से, इसलिए कि मैंने ही उन्हें इस बेआबो गयाह (बग़ैर पानी व हरयाली) मक़ाम पर उतरने के लिए मजबूर किया। यह सोच कर उसके क़ल्ब में ख़ुद अपनी हस्ती से इन्तेक़ाम लेने का जज़्बा पैदा होता होगा या कम

अज़ कम उसकी किसी सूरत से तलाफ़ी की सूरतों पर ग़ौर करते हुए वह ख़याल करता होगा कि अगर मैं हुसैन[अ०स०] के पास जाकर अपनी इस ख़ता को मुआफ़ करने की दरख़्वास्त करूँ तो क्या इतना बड़ा जुर्म दुनिया में मुआफ़ी के क़ाबिल भी है? फिर अगर हुसैन[अ०स०] ने मेरी ख़ता को माफ़ न किया तो मैं कहाँ का रहा? न दुनिया मिली न आख़िरत। फिर भी उसका ज़मीर कहता होगा कि चलकर माफ़ी माँगना तो चाहिए अपना इम्कानी फ़र्ज़ तो बहरहाल अन्जाम देना ज़रूरी है। फिर मैं जब अपनी जान उनके क़दमों पर डाल दूँगा तो वह करीमुन नफ़्स हैं ज़रूर माफ़ कर देंगे। क़राएन (हालात) की बिना पर यक़ीन किया जा सकता है कि यह ख़यालात थे जो उसके दिमाग़ में एक तलातुम बरपा किए हुए थे और वह शबे आशूर ही थी जिसकी सियाही के बेपनाह समन्दर में उसकी ख़यालात की कश्ती थपेड़े खा रही थी।

हू मारता हुआ जंगल और रात का सन्नाटा! सफ़ह–ए–तारीख़ भी सुनसान है। कौन मुअर्रिख़ है जो उस मारके की दास्तान क़लमबन्द करे जो हुर के दिल व दिमाग़ में बरपा था। बेशक सच्चा शाएर अक्सर हक़ीक़त की तरजुमानी करता है। मीर अनीस[अ०र०] और उनके ख़ानदान के दूसरे बाकमाल मरसिया गोयों ने जिस तरह उस रात को हुर की हालत की ख़याली तस्वीर कशी की है। वह यक़ीनन एक ऐसा बयाने हाल है जिसकी रिवायत ख़ामोश फ़ितरत के वास्ते से शाएर के दिल तक पहुँची है और वाक़ेआत के क़राएन उसकी तस्दीक़ करते हैं।

बहर सूरत रात किसी तरह गुज़री और सुबह हुई। हुर को फिर भी यह देखना है कि अब क्या होता है। क्या वाक़ई जंग ही होगी या कोई और सूरत रूनुमा होगी। उसने इन्तेहाई सब्रो ज़ब्त के साथ देखा कि अफ़वाज की तरतीब हुई। उसे यह भी मालूम हुआ कि वह एक हिस्सा फ़ौज का अफ़सर क़रार दिया गया है। उसने इमाम का बेनज़ीर मुअस्सिर खुतबा सुना जिसने उसके दिल में घर कर लिया। मगर फिर उसने इन्तेज़ार किया कि उसका असर फ़ौजे मुख़ालिफ़ पर क्या पड़ता है। इसी असना में ज़ुहैर बिन क़ैन ने बढ़कर तक़रीर की और नासिहाना (नसीहत वाले) अन्दाज़ में अहले कूफ़ा को मुख़ातब किया। इन तमाम बातों के बाद भी उसे महसूस हुआ कि अफ़वाजे यज़ीद के इरादों में कोई तबदीली नहीं हुई है और वह जंग पर आमादा हैं। बस उसके बाद हुर के सब्रो ज़ब्त का पैमाना छलक गया और वह ख़याल जो उसके दिल में परवरिश पा रहा था अब राज़दारी के हुदूद से आगे बढ़ गया। वह उमरे

सअ्द के पास आया और कहा "क्या तुम इनसे वाक़ई जंग करोगे।?"[1] इसी एक सवाल के अन्दाज़ में वह सब कैफ़ियतें मुज़मर थीं जिन में हुर कई रोज़ से दिल ही दिल में ग़लतान व हैजान (डूबा हुआ और परेशान) था। उसे यह यक़ीन आने के क़ाबिल बात ही नहीं मालूम होती थी कि फ़रज़न्दे रसूल से जंग अमली शक्ल भी इख़्तियार करेगी। वह सब कुछ देख रहा है आसारो क़राएन को जंग के क़तई पा रहा है मगर फिर भी इसकी आरज़ू रखता है कि यह सब नुमाइशी हो और उसको वाक़ेईयत (हक़ीक़त) से कोई वासता न हो। उमर बिन सअ्द उसके ज़मीर के अन्दरूनी कैफ़ियात से बिल्कुल बेगाना था। उसने हुर के सवाल का फ़ौजी अन्दाज़ में बड़े इतमीनान के साथ जवाब दिया। "हाँ क़सम बख़ुदा, ऐसी जंग जिसका बहुत अदना नतीजा यह समझना चाहिए कि सरों की बारिश हो और हाथ क़लम होकर ज़मीन पर गिरें।" हुर ने कहा "क्या इतनी सूरतें मसालिहत की जो हुसैन[अ0स0] ने पेश कीं उनमें से कोई तुम लोगों के नज़दीक मन्ज़ूरी के क़ाबिल नहीं है?"[2]इस सवाल से साफ़ ज़ाहिर है कि वह सुलह की गुफ़्तगू को पूरे ग़ौर से नतीजे की जुस्तजू के साथ सुन रहा था और यह यक़ीन रखता था कि इन सूरतों में से कोई ज़रूर मान ली जाएगी। उमर बिन सअ्द ने कहा कि "ख़ुदा की क़सम अगर मुआमला मेरे हाथ में होता तो मैं ज़रूर मन्ज़ूर कर लेता मगर क्या करूँ? तुम्हारा हाकिम नहीं मानता।"[3] उमरे सअ्द का यह जवाब ख़ुद कमज़ोरी का पहलू लिए हुए था और उसका उनवान हुर की राय और ख़याल को मज़ीद तक़वियत देने वाला था इसलिए कि वह तस्लीम कर रहा था कि हुसैन[अ0स0] का मसलक सुलह जूई (दिल से सुलह) का हामिल है और इब्ने ज़ियाद की हटधर्मी है कि वह क़त्ल से कम किसी बात पर रज़ा मन्द नहीं। उसके बाद हुर ने कुछ गुफ़्तगू करना बेकार समझा और अब वह वक़्त आ गया था कि वह अपने इस फ़ैसले को जो बहुत मुशकिल से उसके दिलो दिमाग़ के इन्तेहाई कशमकश के नतीजे में तय पा सका था अमली लिबास पहनाए।

हुर को यह अन्देशा क़तई था कि अगर फ़ौज से निकलने के पहले यह ज़ाहिर हो गया कि मेरी नीयत कुछ और है तो मुझे फ़ौरन गिरफ़्तार कर लिया जाएगा और मैं अपने मक़सद में कामयाब न हो सकूँगा। इसलिए ज़ाहिर है कि

---

[1]तबरी जि/6, पेज/244

[2]तबरी जि/6, पेज/244

[3]तबरी जि/6, पेज/244

वह उस वक़्त बहुत एहतेयात से काम ले रहा होगा। उसके क़बीले का एक शख़्स क़ुर्रा बिन क़ैस उस वक़्त उसके नज़दीक था।[1] ग़ालिबन यह वही शख़्स है जो उमरे सअ्द का पैग़ाम लेकर इमाम की ख़िदमत में गया था और हबीब बिन मज़ाहिर के नसीहत करने पर उसने कहा था कि मैं जो पैग़ाम लाया हूँ जाकर उसका जवाब दे दूँ तो फिर ग़ौर करूँगा कि ख़ुद मुझे किसका साथ देना चाहिए। हुर को उसका अपने पास रहना नागवार हो रहा था, वह चाहता था कि यह किसी तरह मेरे पास से हट जाए मगर कुछ बनता न था। आख़िर उसने पूछा कि क़ुर्रा! तुम ने आज अपने घोड़े को पानी नहीं पिलाया? उसने कहा "नहीं अभी नहीं।" कहा "फिर पिलाओगे नहीं?"[2] इन्सान का चेहरा उसकी बात चीत, उसके चेहरे का रंग सब ही उसके ख़िलाफ़ जासूसी करते हैं। हुर लाख छुपाए मगर दिल का इज़्तेराब छिपने की चीज़ नहीं। क़ुर्रा कुछ न समझा हो इतना तो ज़रूर समझ लिया कि यह मुझे अपने पास से टालना चाहते हैं। बाद में उसका बयान था कि अगर हुर मुझ से बतला देते कि मैं इमाम हुसैन[अ0स0] की तरफ़ जा रहा हूँ तो मैं भी यक़ीनन उनके साथ हो लेता और निकल जाता।[3] मगर यह कहने की बातें हैं और ख़्वाह मख़्वाह के उज़्र हैं जो एहसासे गुनाह पर वक़्त निकलने के बाद पेश किए जाते हैं। अगर ऐसी अख़्लाक़ी जुरअत उसमें मौजूद होती तो हुर के बे कहे चले जाने पर भी क़ुर्रा के लिए रास्ता बन्द नहीं हो गया था। वह जाना चाहता तो चला जाता। बहरहाल यह महसूस होते हुए कि हुर को मेरा अपने पास रहना नागवार है उसने उसके पास से हट जाना ही मुनासिब समझा। हुर ने अपने ख़याल के मुताबिक़ उसको हटा कर एक रूकावट को अपने रास्ते से दूर कर दिया और आहिस्ता आहिस्ता घोड़ा अपना जमाअते हुसैनी की तरफ़ बढ़ाना शुरू किया। नफ़्सियाती हैसियत से क़यास किया जा सकता है कि उस वक़्त उसका दिल धड़क रहा होगा। उसके सीने में तूफ़ान बरपा होगा और यक़ीनन वह महसूस कर रहा होगा कि अब मैं कहीं और हूँ। उस पर उस वक़्त एक ख़ुद फ़रामोशी और मदहोशी का आलम तारी होगा। उस वक़्त किसी का टोक देना। मुआज़अल्लाह।

---

[1]तबरी जि/6, पेज/244

[2]तबरी जि/6, पेज/244

[3]तबरी जि/6, पेज/244

महाजिर बिन औस उसके क़बीले का एक शख़्स कहने लगा। "क्यों हुर! क्या इरादा है? क्या हमला करना चाहते हो।?[1] हुर उसका क्या जवाब देता? उसने फिर भी सुकूत करके पर्दा दारी की कोशिश की। कुछ जवाब नहीं दिया। मगर जिस्म में लरज़ा सा पैदा हो गया महाजिर ने कहा "हुर तुम्हारी यह क्या हालत है?" मैंने तुम्हारी यह कैफ़ियत कभी नहीं देखी। मुझसे पूछा जाता कि कूफ़े में सबसे ज़्यादा बहादुर कौन है तो मैं तुम्हारे सिवा किसी का नाम न लेता। मगर इस वक़्त मैं तुम्हारी अजीब हालत देख रहा हूँ। आख़िर इसका सबब क्या है? यह सुनकर हुर ने मज़ीद राज़दारी की कोशिश को बेसूद समझा कहा मेरे सामने इस वक़्त बहिश्त व दोज़ख़ का सवाल है मैं तो बहिश्त पर किसी चीज़ को मुक़द्दम न समझूँगा। चाहे मेरे टुकड़े टुकड़े कर दिए जायें और मुझे आग में जला दिया जाये।" यह कहते कहते उसने घोड़े को चाबुक लगाया और असहाबे हुसैन[अ०स०] की तरफ़ पहुँच गया।[2]

इस मौक़े पर शायद हुर को अन्देशा हुआ कि उसके इस तरह बेतहाशा घोड़ा उड़ाये हुए आने से कहीं अन्सारे इमाम को परेशानी न पैदा हो और उसकी मज़ाहमत न की जाये इसलिए उसने उनके क़रीब पहुंचते ही अपनी सिपर को पलट कर हाथ में ले लिया।[3] यह तर्ज़े अमल अरब के दस्तूर के मुताबिक़ था इसलिए कि जब किसी को हमला करना मक़सूद हो तो उसके एक हाथ में खींची हुए तलवार और दूसरे हाथ में हिफ़ाज़त के लिए सिपर होती थी लेकिन अगर कोई तलवार नियाम में रखे और पलटी हुई सिपर को हाथ में लिए आता दिखाई दे तो यह समझा जाता था कि वह अमान का तालिब है या कुछ पैग़ाम लेकर आ रहा है।[4] हुर ने इस तरह असहाबे हुसैन[अ०स०] पर वाज़ेह कर दिया कि वह जंग का इरादा नहीं रखता है। चुनाँनचे बिला रोक टोक वह सीधा इमाम के सामने आया और कहने लगा, फ़रज़न्दे रसूल[स०अ०]! मेरी जान आप पर फ़िदा, मैं वही गुनाहगार हूँ जिसने आपको वापस जाने से रोका। रास्ते में आपके साथ साथ रहा और आपको इस जगह ठहरने पर मजबूर किया। क़सम है उस ख़ुदा की जिसके सिवा कोई माबूदे बरहक़ नहीं कि मुझे यह गुमान हरगिज़ नहीं था कि यह लोग आपके तमाम शराएत

---

[1]तबरी जि/6, पेज/244
[2]तबरी जि/6, पेज/244
[3]तबरी जि/6, पेज/222
[4]अबसारूल ऐन, पेज/119

को जो आप पेश करंगे मुस्तरद कर देंगे और नौबत यहाँ तक पहुंचेगी। मैंने अपने दिल में ख़याल किया था कि क्या हरज है, मैं किसी हद तक उन लोगों का साथ दूँ और मालूम न हो कि मैं उनकी इताअत से बाहर हूँ। फिर यह लोग उन शराएत को तो क़ुबूल ही कर लेंगे जो इमाम उनके सामने पेश करेंगे। बख़ुदा अगर मुझे यह इल्म होता कि यह लोग उन शराएत को आपके मन्ज़ूर नहीं करेंगे तो मैं कभी आपके साथ यह तर्ज़े अमल इख़्तियार न करता। अच्छा अब मैं हाज़िर हुआ हूँ इन्तेहाई शर्मसारी के साथ तौबा करता हुआ अपने गुनाह से ख़दुा की बारगाह में इस ग़रज़ से कि जान व दिल से आपका शरीके मुसीबत हूँ। यहाँ तक कि आपके क़दमों पर निसार हो जाऊँ। क्या इस तरह मेरी तौबा क़ुबूल हो सकती है।'' हज़रत ने बिला तवक़्क़ुफ़ फ़रमायाः ''हाँ हाँ! ख़ुदा तुम्हारी तौबा क़ुबूल करेगा और तुम्हें बख़्श देगा। मुबारक हो। वाक़ई तुम हुर (आज़ाद मन्श (मिज़ाज)) हो। वैसी ही जैसा तुम्हारी माँ ने नाम रखा है। तुम आज़ाद हो इन्शा अल्लाह दुनिया में भी और आख़िरत में भी।[1] घोड़े से उतरो।'' हुर ने कहा ''मेरा आप की नुसरत में घोड़े पर सवार रहना नीचे उतरने से बेहतर है। चाहता हूँ थोड़ी देर उनसे जंग कर लूँ, फिर तो (मर कर) घोड़े से नीचे उतरना ही है।'' इमाम ने यह देखकर कि हुर को जिहाद का वलवला है। फ़रमाया ''अच्छा जो तुम्हारी ख़ुशी हो वह करो। ख़ुदा अपनी रहमत तुम्हारे शामिले हाल रखे।''[2]वह ज़ब्त बहुत कर चुका था। इमाम से ख़ता मुआफ़ करा के उसका दिल बढ़ चुका था। अब उसे हक़ महसूस होता था कि वह अफ़वाजे यज़ीद के सामने जाकर उनको भी हक़ के रास्ते पर आ जाने की दावत दे। चुनाँनचे वह फ़ौरन मैदान में आ गया। पहले तो उसने मुलायम अलफ़ाज़ में सुफ़ूफ़े (सफ़ों) अहले कूफ़ा से तख़ातुब (मुख़तिब) करते हुए फ़रमायाः भाईयो! आख़िर हुसैन[अ०स०] की उन बातों में से जिनको वह पेश करते हैं किसी एक बात को तुम क्यों नहीं मन्ज़ूर कर लेते ताकि तुम्हें उनके मुक़ाबले में जंग करने से निजात मिले। लश्करियों ने कहा अमीर उमरे सअ्द मौजूद हैं जो कुछ तुम्हें कहना है उनसे कहो।

हुर ने उमरे सअ्द से मुख़ातब होकर फिर वही अलफ़ाज़ कहे और वैसा ही जवाब मिला। जो इसके क़ब्ल मिल चुका था कि ''अगर मुझ से मुमकिन होता तो मैं ज़रूर ऐसा करता।'' यह सुनकर हुर को ग़ुस्सा आ गया, इतने

---

[1]तबरी जि/6, पेज/242, अल अख़बारूत तुवाल पेज/254

[2]तबरी जि/6, पेज/254, इरशाद पेज/229

तल्ख़ अलफ़ाज़ में जिसका उसे खुद उसी फ़ौज के एक नुमायाँ अफ़सर होने की बिना पर पूरे तौर से हक़ हासिल था। उसने कहा "ऐ कूफ़े वालो खुदा तुम्हें ग़ारत करे। तुमने उस बुज़ुर्गवार को बुलाया और जब वह आया तो तुमने उसे दुश्मन के सिपुर्द कर दिया। तुमने ख़याल ज़ाहिर किया था कि तुम उन पर जान निसार करोगे फिर तुम ने खुद उन पर चढ़ाई कर दी और उनके क़त्ल पर आमादा हो गए। तुमने उनके नफ़्स की अमादो शुद को मसदूद (आना जाना बन्द) कर रखा है और गला घोटने पर आमादा हो और चारों तरफ़ से उन्हें घेर रखा है। तुमने उनको खुदा की चौड़ी चकली ज़मीन में जिधर वह अमन का रास्ता पायें उधर जाने से रोक दिया है। और वह तुम्हारे हाथ में क़ैदी के मिस्ल हो गए हैं और बेबस कर दिए गए हैं और तुम ने उनको, उनके अहले हरम और बच्चों को और उनके असहाब को फ़ुरात के इस बहते हुए पानी से रोक दिया है जिसको यहूदी मजूसी और नसरानी तक पीते हैं और इराक़ के सुवर और कुत्ते तक उसमें लोटते हैं मगर यह लोग हैं कि प्यास की शिद्दत ने उनको जाँ बलब कर रखा है। हक़ीक़तन क्या बुरा वह सुलूक है जो तुमने मुहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] के बाद उनकी औलाद के साथ जाएज़ रखा है। तुमको खुदा उस शिद्दत वाली प्यास के दिन सेराब न करे अगर तुम आज अभी इसी दम तौबा न कर लो और अपने तर्ज़े अमल से पशेमान होकर बाज़ न आ जाओ।"

हुर की तक़रीर दुश्मन के मफ़ाद के ख़िलाफ़ बहुत ख़तरनाक साबित हो सकती थी। इसलिए तीर अन्दाज़ों को हुक्म दिया गया और उन्होंने कुछ तीर चलाये। यह देखकर हुर ने तक़रीर मौक़ूफ़ (रोकी) कर दी और चूँकि जंग बाक़ाएदा शुरू न हुई थी वह वापस आकर इमाम के सामने खड़े हो गए।[1]

जैसा कि शबे आशूर की मोहलत पर बहस के सिलसिले में कहा जा चुका है यह इमाम हुसैन[अ0स0] की एक बहुत बड़ी फ़तह थी जो ऐन मौक़–ए–जंग पर खुद आपकी आँखों के सामने और आपके दुश्मनों की निगाहों के सामने ज़ाहिर हो गई क्योंकि हर शख़्स अन्दाज़ा कर सकता है कि जिस क़द्र हिम्मत बढ़ाने और दिलों को अपनी तरफ़ जज़्ब करने के माद्दी असबाब हो सकते हैं सब फ़ौजे यज़ीद की तरफ़ थे। कसरते तादाद ताक़त व कुव्वत, यक़ीन कामयाबी, आसाइश व राहत, आब व ग़िज़ा का इतमीनान, फिर जाएज़ा व इन्आम और बारगाहे हुकूमत में तक़र्रुब (कुरबत) के तवक़्क़ुआत (अच्छी

---

[1]तबरी जि/6, पेज/245, इरशाद पेज/250

उम्मीदें) उसके बरखिलाफ़ जितने हिम्मत शिकन और जी छुड़ाने वाले असबाब हो सकते हैं वह सब असहाबे हुसैन[अ0स0] में मुजतमा थे। क़िल्लते तादाद, बेकसी व बेबसी, यक़ीने बरबादी और तीन दिन की भूख प्यास और हुकूमत का एताब जिसका नतीजा अपने ही लिए नहीं बल्कि अपने बाद अपने पसमान्दगान और औलाद के लिए भी हिम्मत शिकन और ताक़त रुबा (जवाब देने के लिए) होने के लिए काफ़ी है। इस सबके बावजूद तारीख़ यह बताने से आजिज़ है कि उनमें से कोई एक मालूमली सिपाही बल्कि बच्चा भी अलग होकर फ़ौजे मुख़ालिफ़ से जाकर मिला हो। न हुसैन[अ0स0] की ज़िन्दगी में और न हुसैन[अ0स0] के बाद। उसके बरख़िलाफ़ फ़ौजे मुख़ालिफ़ का कोई मालूमी शख़्स नहीं बल्कि एक नुमायाँ अफ़सर जंग शुरू होने से क़ब्ल ही उधर से टूट कर इधर आ गया। यह वह ग़ैर मालूमी फ़तह थी जिसने फ़ौजे मुख़ालिफ़ को दंग कर दिया और शायद फ़ौज का रंग बे रंग पा कर ही सालारे फ़ौज ने मज़ीद ताख़ीर को ख़तरनाक पाया।

अब धूप काफ़ी चढ़ चुकी थी और दिन का अच्छा ख़ासा हिस्सा गुज़र गया था। उमरे सअ्द ने लशकर को आगे बढ़ाया और अपने ग़ुलाम वरीद को जो अलमबरदारे लशकर था आवाज़ दी कि झण्डा अपना मेरे क़रीब लाओ। वरीद रायते जंग (नैज़ा जंग का निशान) लिए उसके पास आकर खड़ा हो गया। उमरे सअ्द ने तीर अपना चिल्ल–ए–कमान में जोड़ कर फ़ौजे हुसैनी की तरफ़ रिहा किया और लशकरे यज़ीद को मुख़ातब करते हुए पुकार कर कहा। ''गवाह रहना कि सब से पहला तीर हमने लगाया है।''[1]

सिपह सालारे लशकर इन अलफ़ाज़ को अपनी ज़बान पर जारी करते हुए तीर रिहा करे और लशकरियों में जोश व ख़रोश पैदा न हो, यह नामुमकिन है। यक़ीनन हज़ारों कमानें कड़कीं, हज़ारों चिल्ले खिंचे और हज़ारों तीर रवाना हो गए।

नहीं समझा जा सकता कि हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के साथ वाली क़लील जमाअत इस अचानक हमले का मुक़ाबला करने के लिए किसी तरीक़े पर तैयार हो सकती थी मगर उन्हें तैयारी की ज़रूरत ही क्या थी। उनके तने हुए सीने तीरों के इस्तेक़बाल के लिए मौजूद और उनके दिल व जिगर, शौक़े शहादत में नावकों (ज़ख़्मों) को हाथों हाथ लेने पर आमादा थे।

---

[1]तबरी जि/6, पेज/242, इरशाद पेज/250

यज़ीदी लशकर वालों को अन्दाज़ा था और ख़ूब अन्दाज़ा कि अगर हुसैनी जमाअत से वह कितनी ही मुख़्तसर क्यों न सही दस्त बदस्त मुक़ाबला किया गया तो करबला की जंग सिर्फ़ आशूर के दिन ख़त्म नहीं हो सकेगी और वह इसको भी अच्छी तरह समझते थे कि जंग का तूल खींचना उनके लिए इन्तेहाई अन्देशा का बाइस है। इसलिए कि इमाम की मक्के से रवानगी की इत्तेलाअ् बसरे में हो चुकी है और वहाँ से मदद पहुँचने की तवक़्क़ो है। कूफ़े के बहुत से अफ़राद जो अभी तक नहीं पहुँच सके हैं। यक़ीनन मौक़े के मुन्तज़िर और नुसरते हुसैन[अ0स0] के लिए बेचैन होंगे। नीज़ यह भी कि ईरान कुछ दूर नहीं है और वहाँ के भी कुछ अफ़राद का इमाम हुसैन[अ0स0] के साथ अक़ीदत रखना यक़ीनी है। ख़ुसूसन जबकि उनके साथ अली बिन हुसैन[अ0स0] भी मौजूद हैं जो ननहियाली रिश्ते से ममलिकते ईरान के शहज़ादे की हैसियत रखते हैं। लिहाज़ा बहुत इम्कान है कि क़ौमी तअस्सुब ही ईरानियों को हुसैन[अ0स0] की हिमायत पर आमादा कर दे। यह भी ख़याल हो सकता था कि एजा व सलमा पहाड़ी भी बहुत फ़ासले पर नहीं हैं जहाँ का क़बील–ए–तय काफ़ी अहमियत व ताक़त का मालिक है और तिरिम्माह बिन अदी, इमाम हुसैन[अ0स0] से यह वादा भी कर चुके हैं कि अगर आप अपने को वहाँ पहुँचा दें तो आपकी मदद के लिए हज़ारों जवान क़बील–ए–तय के बिल्कुल तैयार पाए जायेंगे। फिर ख़ुद तिरिम्माह सहराए करबला के क़रीब हज़रत से यह कह कर रूख़्सत हुए हैं कि मेरा कुछ ग़ल्ला है उसे घर पर रख आऊँ तो आता हूँ। मुमकिन है वह आये तो अपने साथ कुछ जवानाने तय को भी लेते हुए आयें। बहरहाल असबाब कुछ भी हों मगर बज़ाहिर फ़ौजे यज़ीद को बहुत जल्दी थी और वह चाहती थी कि यह मुहिम जल्दी सर हो जाये मगर तीरों की इस इब्तेदाई बारिश से जमाअते हुसैनी को कोई ख़ास नुक़सान नहीं पहुँचा। बेशक वह अमली तौर पर एक जंग का इक़दाम था जिसकी इब्तेदा फ़ौजे दुश्मन की तरफ़ से हो गई और यह एक आख़री हुज्जत थी जिसके तमाम होने के इमाम मुन्तज़िर थे।

चुनानचे बग़ैर किसी हिरास और परेशानी के इमाम मुतवज्जेह हुए अपने असहाब की तरफ़ फ़रमायाः "खड़े हो जाओ मौत के इस्तेक़बाल के लिए जो बहरहाल ज़रूरी है ख़ुदा अपनी रहमत तुम्हारे शामिले हाल रखे यह तीर नहीं बल्कि दुश्मन के क़ासिद हैं जो तुम्हारी तरफ़ रवाना किये गए हैं।"

असहाबे हुसैन[अ०स०] जो हैरतअंगेज़ ज़ब्त व तन्ज़ीम के साथ तीरों की इस बारिश के बाद भी अपनी अपनी जगह बरक़रार थे और किसी क़िस्म का इन्तेशार उनमें पैदा नहीं हुआ था। इमाम की जानिब से इन अलफ़ाज़ में इज़्ने जिहाद पाते ही फ़ौरन मुस्तइद हो गए और उन्होंने तीरों का जवाब तीरों से दिया जिसके मानी सिर्फ़ मुक़ाबले के लिए अपनी आमादगी का इज़हार था। वरना ज़ाहिर है कि हज़ारों तीरों के मुक़ाबले में सौ दो सौ तीरों के इधर से भी चले जाने से अफ़वाजे मुख़ालिफ़ को कोई ख़ास नुक़सान पहुँच नहीं सकता था उनकी यह तीरों की सख़्त बारिश इन मुट्ठी भर इन्सानों को मरऊब नहीं कर सकी और उन्हें बहरहाल इनसे जान तोड़ मुक़ाबला करना पड़ेगा। जिस में हथियार से ज़्यादा दिल की ताक़त की ज़रूरत है और ज़मीर के तज़लज़ुल (डगमगाने) से यही पहलू फ़ौजे यज़ीदी का इन्तेहाई कमज़ोर साबित हो रहा था।

सत्ताईसवाँ बाब

अन्सारे इमाम के हालात और हैरतअंगेज़ कुर्बानियाँ

चूँकि आग़ाज़े जंग के साथ साथ अन्सारे हुसैन[अ०स०] के मुजाहिदाना ख़िदमात का अमली सिलसिला शुरू हो गया था। इसलिए इस ज़िक्र के साथ बेहतर मालूम होता है कि असहाब व अन्सार के मुख़तसर हालाते ज़िन्दगी और खुसूसियाते शख़्सी का भी जहाँ तक कि इल्म हो सका है तआरूफ़ होता चले इसलिए वाक़ेयात की तारीख़ी तरतीब को मद्दे नज़र रखते हुए जिन अन्सार के कारनामे आँखों के सामने आए हैं उनके मुख़तसर हालात सिलसिले के साथ दर्ज किए जाते हैं। इन्हीं हालात के ज़ैल में जंग के तफ़सीलात और वाक़ेयात की तरतीब का भी बयान होता जायेगा। अगरचे शोहदा–ए–करबला के हालात के मुतअल्लिक़ अरबी में ''अबसारूल ऐन फ़ी अन्सारल हुसैन'' उर्दू में ''शोहदा–ए–करबला'' के तीन हिस्से मतबूआ (छपी) इमामिया मिशन लखनऊ जामे व मुसतनद किताबें मौजूद हैं मगर इस ग़रज़ से कि ज़ेरे नज़र किताब इस हैसियत से तश्ना न रह जाये यहाँ उन हालात का लुब्बे लुबाब (खुलासा) वाक़याती तरतीब के साथ पेश किया जा रहा है जो लोग मज़ीद तहक़ीक़ व तफ़सील या मुख़तलिफ़ रिवायात पर बहस व मुबाहिसे के तलबगार हों वह मज़कूरा किताबों का मुतालिआ फ़रमा सकते हैं।

(1) अब्दुल्लाह बिन उमैर कल्बी

आग़ाज़े जंग के बाद असहाबे हुसैन[अ०स०] में सबसे पहले मैदाने कारज़ार में यही आए थे।

इनका पूरा नाम व नसबः अबू वहब अब्दुल्लाह बिन उमैर बिन अब्बास बिन अब्दे क़ैस बिन अलीम बिन ख़बाब अल–कलबी अल अलीमी था। कूफ़े के रहने वाले थे और क़बील–ए–हमादान के ''बिअरजअद'' नाम के कूँवें के पास अपने ज़ाती मकान में सुकूनत रखते थे।[1] यह मक़ाम कूफ़े की गुंजान आबादी

---

[1]तबरी जि/6, पेज/245

से बिल्कुल बाहर उन बाग़ाते खुरमा (खुजूर के बाग़) के क़रीब था जो ''नख़ीला'' के हुदूद में वाक़े थे। उनके साथ उनकी रफ़ीक़े हयात (बीवी) रहती थीं जो क़बील–ए–नम्र बिन क़ासित से थीं और उम्मे वहब बिन्ते अब्द के नाम से याद की जाती थीं। अहले सैर का क़ौल है कि वह बड़े सूरमा, बहादुर और शरीफ़ थे। शैख़ तूसी ने किताबुर्रिजाल में उनका असहाबे हज़रत अली[अ०स०] में तज़किरा किया है। कूफ़े में जनाबे मुस्लिम बिन अक़ील की शहादत हो चुकने पर जब इब्ने ज़ियाद ने क़त्ले हुसैन[अ०स०] की तैयारी शुरू की उस ज़माने में अब्दुल्लाह बिन उमैर बैरूने शहर (शहर के बाहर) अपने मकान ही में मुक़ीम और मौजूदा सूरते हाल से बिल्कुल बेख़बर थे। जब इमाम हुसैन[अ०स०] करबला पहुँच गए और इब्ने ज़ियाद ने अपना लश्कर नख़ीला में क़रार दिया ताकि वहाँ फ़ौजों का मुआएना करने के बाद करबला की जानिब रवाना करे तो उस ग़ैर मामूली सूरते हाल की तरफ़ अब्दुल्लाह बिन उमैर को भी तवज्जोह हुई और उन्होंने लोगों से वाक़ेयात की नौइयत दरयाफ़्त की। उन्हें बताया गया कि यह फ़ौजें दुख़तरे रसूल फ़ातिमा ज़हरा[स०अ०] के फ़रज़न्द हुसैन[अ०स०] से जंग करने के लिए भेजी जा रही हैं। यह सुनना था कि बहादुर अब्दुल्लाह के ईमानी जज़्बे में तलातुम पैदा हुआ। उन्होंने ख़याल किया कि मुझे मुश्रेकीन से जिहाद करने की हसरत रही है। उन लोगों से जिहाद करना जो अपने रसूल के नवासे के साथ जंग कर रहे हों? यक़ीनन अल्लाह के नज़दीक मुश्रेकीन के साथ जिहाद करने से कम दर्जा नहीं रखता होगा।

यह बात दिल में ठान कर वह अपनी ज़ौजा के पास गए और उन्हें अपने इरादे से मुत्तेला किया। पाक अक़ीदा और पुर हौसला बीबी ने आतिशे शौक़ को और हवा दी। इस तरह कि उन्होंने कहा तुम भी जाओ और मुझे भी अपने साथ ले चलो। चुनाँनचे रात के वक़्त दोनों रवाना हुए और करबला पहुँच कर अन्सारे हुसैन[अ०स०] के साथ मुलहक़ (मिल) हो गए।

उस वक़्त जब फ़ौजे उमरे सअ्द की जानिब से तीरों की बारिश हो चुकी थी जो पैग़ामे जंग की हैसियत रखती थी तो यसार और सालिम दोनों ज़ियाद और इब्ने ज़ियाद के गुलाम मैदाने जंग में आये और मबारिज़ (लड़ने के लिए आमादा हुए) तलब हुए। फ़ौजे हुसैनी में से हबीब बिन मज़ाहिर और बुरैर बिन ख़ज़ीर जोश में भरे हुए आगे बढ़े मगर इमाम ने उनको रोक दिया। बस अब्दुल्लाह बिन उमैर को तो वलवल–ए–जिहाद था ही वह खड़े हो गए और इजाज़ते जंग चाही। इमाम ने सर से पैर तक उन पर नज़र डाली और गन्दुमी

रंग, लम्बा क़द, मज़बूत कलाईयाँ और बाज़ू कुशादा पुश्त और सीना मुलाहिज़ा करते हुए बतौरे खुद फ़रमायाः "बहादुर और जंग आज़मा जवान मालूम होता है? फिर फ़रमायाः "जाओ अगर तुम्हारा दिल चाहता है।" अब्दुल्लाह मैदाने जंग में आए। फ़रीक़े मुख़ालिफ़ ने नाम व नसब पूछा और उन्होंने बताया। उसने कहा हम तुमको नहीं पहचानते। हमारे मुक़ाबले में ज़ुहैर बिन क़ैन या हबीब बिन मज़ाहिर या बुरैर बिन ख़ज़ीर को आना चाहिए। बस यह सुनकर अब्दुल्लाह को गुस्सा आया उसका जवाब सख़्त अलफ़ाज़ में देते हुए उन्होंने हमला करके पहले वार में यसार का काम तमाम कर दिया। अब्दुल्लाह उसकी तरफ़ मुतवज्जेह ही थे कि सालिम ने तलवार का वार किया जो सर पर आ चुका था जब उनको ख़बर हुई। बहादुर ने बायें हाथ को सिपर बना दिया जिससे उस हाथ की उंगलियाँ क़ता हो गईं। मगर अब्दुल्लाह ने इतनी देर में पलट कर एक ज़र्बे शमशीर में उसका भी ख़ातिमा किया।[1] ज़ख़्म खुर्दगी के गुस्से और अपने दोनों हरीफ़ों पर फ़तह पाने के जोश से मुतअस्सिर होकर अब्दुल्लाह बिन उमैर रजज़ पढ़ने लगे जिसका मफ़हूम यह था कि "अगर मुझे न पहचानते हो तो पहचान लो कि मैं क़बील–ए–कल्ब का सपूत हूँ। मेरे हसब व नसब के लिए इतना काफ़ी है कि ख़ानदाने अलीम में मेरा घराना है। मैं एक सख़्त मिज़ाज और दुरूश्तख़ू (सख़्त मिज़ाज) इन्सान हूँ और मुसीबत के वक़्त पस्त हिम्मती से काम लेने वाला नहीं हूँ। ऐ उम्मे वहब मैं ज़िम्मेदारी करता हूँ तुझसे कि मैं उनमें बढ़ बढ़ कर नैज़े लगाऊँगा। और तलवारें मारूँगा। और इस तरह की शमशीर ज़नी करूँगा जो खुदा पर ईमान रखने वाले जवाँ हिम्मत इन्सान के शायाने शान हो।[2]

मुमकिन है कि यह बहादुराने अरब की इस आम रस्म की बिना पर हो कि वह अपने कारनामों का गवाह अपनी शरीके ज़िन्दगी ख़वातीन को बनाया करते थे। मगर अब्दुल्लाह की ज़ौजा आम औरतों के मिस्ल न थीं। वह अपने सीने में शेराना दिल रखती थीं और उस दिल में ईमाम की ग़ैर मामूली तड़प के साथ अपने शौहर से बेइन्तेहा मुहब्बत भी थी मुमकिन है कि जब उन्होंने अपने शौहर से फ़रमाइश की थी कि मुझे भी अपने साथ ले चलो तो उसी वक़्त वह यह नियत रखती हों कि मैं भी शौहर के साथ मैदाने जंग में दादे शजाअत दूँगी और उस वक़्त तक शायद वह अपने क़ल्बी जज़बात को

---

[1]तबरी जि/6, पेज/245–246, इरशाद पेज/250

[2]तबरी जि/6, पेज/246

इन्तेहाई बेचैनी के बावजूद रोकती रही हों अहले हरम और उनकी हमराही ख़वातीन को देखकर जो अहकामे इस्लाम के तहत मैदाने जंग से किनाराकश रहते हुए ख़ैमों में जाँगुज़ीं थीं।

मगर अब्दुल्लाह बिन उमैर का मैदाने जंग में मज़कूर–ए–बाला अशआर पढ़ना जो एक तरफ़ वलवल–ए–जंग के मज़हर, दूसरी तरफ़ जोशे ईमान का मुरक़्क़ा और तीसरी तरफ़ क़ल्बी वारदात (दिल पर गुज़रने वाले हालात) और तअल्लुक़े रूहानी के तरजुमान थे और उनसे यह पता चलता था कि वह इस हर्बो ज़र्ब (शदीद जंग) के आलम में भी अपनी शरीके हयात की याद अपने दिल में और उसकी तस्वीर अपनी आँखों में लिए हुए हैं। और उसके साथ ही साथ अपनी शजाअत और सर फ़रोशी (जान कुरबान करने) की दाद उससे लेना चाहते हैं। बस यह असबाब थे जिनकी बिना पर उन अशआर ने ''उम्मे वहब'' के ज़ब्तो सब्र के लिए ''बर्क़े ख़िरमन (बिजली कौंदने)'' का काम किया और वह बेतहाशा एक गुर्ज़ हाथ में लेकर मैदाने जंग में आ गईं और पुकार कर कहने लगीं कि मेरे माँ बाप दोनों तुम पर निसार, औलादे रसूल की नुसरत में कोताही न होने पाए।[1]

दीलेर व ग़यूर अब्दुल्लाह के लिए यह मन्ज़र इन्तेहाई सब्र शिकन (बर्दाश्त के बाहर) साबित हुआ। वह फ़ौरन ज़ौजा के पास आये और चाहा कि उन्हें ख़ैमे की तरफ़ पहुँचा दें मगर वह बातों में आने वाली न थीं। अब्दुल्लाह बिन उमैर के एक हाथ में तलवार थी जिससे दुश्मन का ख़ून टपक रहा था और दूसरे हाथ की उंगलियाँ कट चुकी थीं जिनसे ख़ुद लहू जारी था। फिर भी उन्होंने कोशिश की कि वह अपनी क़ूव्वत से उन्हें ख़ैमे की तरफ़ वापस कर दें मगर जोश में भरी बहादुर ख़ातून ने अपना दामन अब्दुल्लाह के हाथ से छुड़ा लिया और कहने लगीं कि मैं तुम्हें छोड़ूँगी नहीं जब तक कि तुम्हारे साथ मैं भी क़त्ल न हो जाऊँ। इमाम हुसैन[अ0स0] ने यह मुलाहिज़ा फ़रमा कर उनको आवाज़ दी कि अल्लाह तुम दोनों को जज़ाए ख़ैर दे। ऐ मोमिना अहले हरम के पास वापस जाओ और उनके साथ बैठी रहो क्योंकि औरतों पर से जिहाद साक़ित है।''

ईमान और इताअते इमाम का एहसास था जो बेपनाह जज़्ब–ए–उलफ़त और जोशे क़ुर्बानी पर ग़ालिब आया और उम्मे वहब ख़वातीन के पास वापस

---

[1]तबरी जि/6, पेज/246

चली गईं।[1] और उसके बाद अब्दुल्लाह बिन उमैर भी सफ़े मुजाहदीन में वापस आ गए उसके बाद वह मैसरा के हमले में शरीक हुए और मुस्लिम बिन औसजा के बाद शहादत पाई जिसकी तफ़सील बाद में आएगी।

(2) हुर बिन यज़ीद रियाही

नाम व नसबः हुर बिन यज़ीद बिन नाजिया बिन क़ाअ्नब बिन एताब बिन हरमी बिन रियाह बिन यरबूअ् बिन हनज़ला बिन मालिक बिन ज़ैद मनात बिन तमीम अल–तमीमी अर–यरबूई अल–रियाही। यह ख़ानदाने अरब में क़दीमी इज़्ज़त का मालिक था। एताब जो हुर की चौथी पुश्त में है नोमान बिन मुन्ज़र मुल्के हीरा के मख़सूसीन में वह दर्जा रखता था कि घोड़े पर उसके ''रदीफ़'' (चलते घोड़े पर) की सूरत से सवार होता था। एताब के दो फ़रज़न्द थे क़ैस और क़अ्नब। बाप के इन्तेक़ाल के बाद यह मन्सब क़ैस को हासिल हुआ। बनी शैदान ने उससे मुनाज़िअत (लड़ाई) की जिसके नतीजे में ''यौमुत तोहफ़ा'' की ख़ूँरेज़ जंग वाके हुई। क़ैस के सिलसिले में अख़वस शायर एक सहाबी थे जिनका नाम व नसब ''ज़ैद बिन अम्र बिन क़ैस बिन एताब था। तबक़े के लिहाज़ से वह हुर के बाप यज़ीद के चचाज़ाद भाई और हुर के रिश्ते के चचा होते थे।

हुर कूफ़े के रूउसा (मालदार) में से थे और इब्ने ज़ियाद की फ़ौज के अफ़सर की हैसियत रखते थे और क़ादसिया की फ़ौज जो नाकाबन्दी के लिए तैनात थी उसमें यह भी दाख़िल थे उसके बाद उनका इमाम हुसैन[अ0स0] को रोकने के लिए भेजा जाना इमाम का उनकी तमाम फ़ौज को शिद्दत से प्यासा देखकर अपने साथ का कुल पानी पिलाना और इमाम से उनकी गुफ़्तगू और आपके इराद–ए–रवानगी के मौक़े पर सद्दे राह (रास्ता रोकना) होना। और आपको घेर कर मैदाने करबला तक लाना और इब्ने ज़ियादा का ख़त पाकर आपको यहाँ क़याम करने पर मजबूर करना। उसके बाद सुब्हे आशूर उनका लशकरे यज़ीद से अलाहिदा होकर असहाबे हुसैन[अ0स0] में शामिल होना यह तमाम वाक़ेआत इस किताब में पहले बयान हो चुके हैं।

आग़ाज़े जंग के बाद जब अब्दुल्लाह बिन उमैर कल्बी एक कारे नुमायाँ अन्जाम दे चुके यानी दस्त बदस्त लड़ाई में उन्होंने यसार और सालिम को क़त्ल कर दिया तो उस शिकस्त के ग़ुस्से में बरअफ़रोख़्ता (बेक़ाबू) होकर अम्र

---

[1] तबरी जि/6, पेज/246

बिन हज्जाज ने जो मैमना लशकरे यज़ीद पर था मजमूई (पूरी) क़ूव्वत से हुसैनी जमाअत पर हमला कर दिया।

उस सख़्त मौक़े पर हुसैनी मुजाहिदों ने घुटने अपने ज़मीन पर टेक दिये और नैज़ों की अनियाँ सामने कर दीं जिनसे दुश्मन के घोड़े अपनी जगह ठहर गए और आगे न बढ़ सके उसके बाद जब वह लोग वापस होने लगे तो उन्होंने उनको तीरों का निशाना बनाया जिससे चन्द आदमी उनमें क़त्ल और चन्द ज़ख़्मी हुए।[1]

जंग की इस शिद्दत को देखकर बज़ाहिर हुर को ख़याल हुआ कि कहीं कोई नासिरे हुसैन मुझसे पहले न क़त्ल हो जाए। यह सोच कर उन्होंने ख़िदमते इमाम में अर्ज़ किया:

''फ़रज़न्दे रसूल[स0अ0] चूँकि सबसे पहले आपसे लड़ने को आया था लिहाज़ा चाहता हूँ कि आप मुझे इजाज़त दें कि सबसे पहले मैं ही आपके क़दमों पर निसार हूँ। और इस तरह दुनिया से जाकर आपके जद्दे बुज़ुर्गवार की दस्त बोसी का शरफ़ हासिल करूँ।'' इमाम ने इजाज़त दे दी और हुर मैदाने जंग में पहुंचे और कुछ अशआर रजज़ में पढ़ने लगे। जिसका मफ़हूम यह था कि ''मैं हुर हूँ और मेहमानों का पनाह देने वाला हूँ। मैं तुम्हारी गर्दनों पर तलवारें मारूँगा। उस इमाम की जानिब से जो सर ज़मीने मक्का का सबसे बेहतर रहने वाला है। मैं तुम को तहे तेग़ करूँगा और ज़रा भी उसको ज़ुल्म नहीं समझूँगा।'' इस रजज़ के बाद उन्होंने हमला करते हुए शमशीर ज़नी शुरू कर दी। इसके पहले जब हुर लशकरे उमरे सअ्द से जुदा होकर असहाबे हुसैन[अ0स0] में शामिल हुए थे तो यज़ीदी लशकर के एक सिपाही यज़ीद बिन सुफ़ियान तमीमी ने कहा था कि ''बख़ुदा अगर मैं हुर को देख लेता उस वक़्त जब वह लशकर से निकल कर जा रहा था तो एक नैज़े में उसका काम तमाम कर देता।'' अब जो हुर तने तन्हा इतने बड़े लशकर के मुक़ाबले में जंग कर रहे थे, आगे बढ़ बढ़के तलवारें लगा रहे थे और अन्तर का यह शेअ्र उनकी ज़बान पर था कि:

مازلت ارميهم ثبغرة نحره
ولبانہ حتى تسربل بالدم

---

[1]तबरी जि/6, पेज/246, इरशाद पेज/250

(यानी) मैं बराबर उन पर फेंकता रहा अपने घोड़े की गर्दन और उसके सीने को यहाँ तक कि उस घोड़े ने सर से पावँ तक ख़ून की चादरें ओढ़ लीं।[1]

और यह शेअ्र हक़ीक़तन उनके हस्बे हाल था क्योंकि उनका घोड़ा जख़्मी हो चुका था। उसके सर व चेहरे पर तलवारें पड़ चुकी थीं और ख़ून बह रहा था। उस वक़्त हसीन बिन तमीम ने जो क़ादसिया की नाका बन्दी पर मामूर फ़ौज का अफ़सर था। यज़ीद बिन सुफ़ियान से कहा कि देखो हुर ही तो है जिसके क़त्ल करने की तुम आरज़ू रखते थे। उसने कहा "अच्छा" यह कहकर वह बाहर निकला और पुकारा हुर क्या मुक़ाबला मन्जूर है? हुर ने कहा "हाँ ज़रूर" और यह कहते ही सामने आ गया। ख़ुद हसीन का क़ौल नक़्ल किया जाता है कि बस यह मालूम हुआ जैसे यज़ीद की जान हुर के क़ब्ज़े में थी। चुनाँनचे वह दम के दम में क़त्ल हो गया।[2] यह ऐसा पुरहैबत मन्ज़र था कि दुश्मन का पराबन्द हो गया और हुर के मुक़ाबले को फिर कोई न निकला। आख़िर वह अपने घोड़े को जो बुरी तरह ज़ख़्मी हो चुका था मोड़ कर अपने मरकज़ की तरफ़ वापस हो गए।

उसके बाद फिर वह जंगे मग़लूबा में शरीक हुए और ज़ोहर की नमाज़ का वक़्त आने के बाद शहीद हुए। तफ़सील उसकी बाद में दर्ज की जाएगी।

(3) मुस्लिम बिन औसजा असदी

असहाबे हुसैन में मुमताज़ हैसियत रखते थे।

नाम व नसबः अबू हजल मुस्लिम बिन औसजा बिन सअ्द बिन सालबा बिन दूदान बिन असद बिन ख़ज़ीमा असदी सअ्दी। मुमताज़ व मुअज़्ज़िज़ अशराफ़े अरब में से, सरदारे क़ौम, आबिद (इबादत गुज़ार) व तहज्जुद गुज़ार (नमाज़े शब के पाबन्द) थे। और उन्होंने रसूल[स0अ0] की ज़ियारत की थी। शअ्बी ऐसे मुहद्दिस (हदीस कोड करने वाले) ने उनसे रिवायते अहादीस की है। इन तमाम ख़ुसूसियात के साथ वह फ़ारस (घुड़ सवारी में माहिर) भी थे। और मैदाने कारज़ार में उन्होंने कारहाए नुमायाँ अन्जाम दिए थे। सन 20 हिजरी में जब हुज़ैफ़ा बिन यमान की सरकर्दगी में फ़ौजे इस्लाम ने ईरान के तुरकिस्तानी इलाक़े आज़रबाईजान को फ़तह किया था तो उसमें मुस्लिम बिन औसजा भी

---

[1]तबरी जि/6, पेज/248, इरशाद पेज/251

[2]तबरी जि/6, पेज/248–249

शरीक थे और उन्होंने जंग में बहुत से मुशरेकीन को क़त्ल भी किया था। मैदाने करबला में वह सिन रसीदा और ज़ईफ़ुल उम्र हो चुके थे।

मुजाहिद–ए–हुसैनी से मुतअल्लिक़ उनके ख़िदमात का सिलसिला आशूर–ए–मुहर्रम के बहुत पहले से शुरू हो चुका था। चुनाँनचे जब इब्ने ज़ियाद के कूफ़े पर मुसल्लत होने के बाद मुस्लिम बिन अक़ील हानी के घर में फ़रोकश (रूके) हुए और उन्होंने बैयत करने वालों की अज़ सरेनौ (नय सिरे से) तन्ज़ीम शुरू की थी तो मुस्लिम बिन औसजा उनके नुमाइन्द–ए ख़ास की हैसियत से उनकी बैयत और अहले बैते रसूल के साथ वफ़ादारी का अहदो पैमान लेते थे मगर शहादते जनाबे मुस्लिम बिन अक़ील के बाद पता नहीं चलता कि वह कहाँ गए और फिर किस तरह इमाम हुसैन[अ0स0] की ख़िदमत में पहुँच गए।

शबे आशूर हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने जो तारीख़ी ख़ुतबा इरशाद फ़रमाया था जिसका माहसल (निचोड़) यह था कि तुम सब मुझे छोड़ करअलाहिदा हो जाओ और मुझे तनहा उनसे मुक़ाबला करने दो उसके जवाब में अज़ीज़ों के बाद सबसे पहले मुस्लिम बिन औसजा ही खड़े हुए थे और तारीख़े इन्सानी के लिए यादगार जोश और खुलूस में भरे हुए यह अलफ़ाज़ कहे थे कि "भला हम और आपको छोड़ कर चले जायें और ख़ुदा के सामने जवाब देही का सामान न करें। यह नहीं हो सकता। बख़ुदा मैं इतना लडूँगा कि उनके सीनों में अपने नैज़े को तोड़ दूँगा। और तलवारें लगाऊँगा। जब तक कि उसका क़ब्ज़ा मेरे हाथ में संभल सकेगा। मगर आपसे कभी जुदा न हूंगा। यहाँ तक कि अगर मेरे पास हथियार न होंगे जिनसे जंग कर सकूँ तो उन्हें पत्थर मारूँगा, आपकी नुसरत में, यहाँ तक कि आप ही के साथ रहते हुए दुनिया से चला जाऊँ।"

सुब्हे आशूर शिम्र ने ख़यामे हुसैनी की पुश्त पर ख़न्दक़ में आग के शोले भड़कते देखकर जो गुस्ताख़ी का तख़ातुब (जुमला अदा) किया था। उसके जवाब में भी मुस्लिम बिन औसजा ने ग़ैज़ में आकर उसको अपने तीर का निशाना बनाना चाहा था। मगर इमाम के मानेअ् (मना करने पर) होने की वजह से ख़ामोश हो गए थे।

अब जंग छिड़ने के बाद कहाँ मुमकिन था कि मारिक–ए–कारज़ार में वह किसी से पीछे रह जाते, वह बुढ़े ज़रूर थे मगर नुसरते हुसैन[अ0स0] में उनका

जोश व वलवला जवानों से बदरजहा बढ़ा हुआ था। इसीका नतीजा था कि असहाबे इमाम में सबसे पहले वही दर्ज–ए शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

उस वक़्त जब अब्दुल्लाह बिन उमैर दस्त बदस्त जंग कर चुके और हुर भी मैदाने जंग में दादे शजाअत दे चुके तो नाफ़ेअ् बिन हिलाल जमली ने आगे बढ़कर लड़ना शुरू किया और वह कहते जाते थे कि "मैं क़बील–ए–बनी जमल" से हूँ। अली[अ०स०] के दीन पर हूँ।" उनके मुक़ाबले पर एक शख़्स आया जिसका नाम मज़ाहिम बिन हरीस था उसने कहा कि "मैं उसमान के दीन पर हूँ।" नाफ़ेअ् ने ग़ुस्से में भरे हुए जवाब के साथ उस पर हमला किया और उसको क़त्ल कर दिया।[1]

उन पैहम नुक़सानात से जो अफ़वाजे मुख़ालिफ़ को बराबर हो रहे थे, सरदाराने लशकरे यज़ीद परेशान हो गए। अम्र बिन हुज्जाज ने जो उसके पहले ही एक हमला करके नाकाम वापस जा चुका था। ज़ोर से अपनी फ़ौज को ललकारा और बलन्द आवाज़ से कहा "बेवक़ूफ़ो! तुम जानते भी हो कि किससे जंग कर रहे हो यह मुलक के ख़ास शहसवार और जानों पर खेले हुए अफ़राद हैं। तुम में से कोई शख़्स इन्फ़ेरादी तौर पर उनसे जंग के लिए न निकले। हाँ चूँकि उनकी तादाद बहुत कम है, इसलिए यह बहुत थोड़ी देर ज़िन्दा रह सकते हैं। अगर तुम सब मिलकर फ़क़त पत्थर ही उन पर बरसाओ तो भी उनको क़त्ल कर सकते हो।"

यह मशवरा कि दस्त बदस्त जंग न की जाए। उमरे सअ्द को भी पसन्द आया और तमाम लशकर में फ़रमान जारी कर दिया गया कि कोई शख़्स मबारिज़ तलबी (अकेले जंग) के लिए मैदान में न निकले। फिर अम्र बिन हुज्जाज ने आगे बढ़कर तमाम लशकर में जोश पैदा कराने के ख़याल से एक तक़रीर की और कहा "ऐ अहले कूफ़ा इताअत और वफ़ादारी के पाबन्द रहो। और अपनी जमाअत से अलग न हो और ज़रा भी शक व शुबहा न करो उन लोगों के क़त्ल के बारे में जो दीन से निकल गए हैं और इमामे वक़्त यज़ीद के मुख़ालिफ़ हैं।"

इमाम हुसैन[अ०स०] ने यह गुमराह कुन अलफ़ाज़ सुनकर जवाब देना ज़रूरी समझा और इरशाद किया कि "ओ अम्र बिन हुज्जाज तू लोगों को मेरे ख़िलाफ़ आमादा करता है! क्या हम दीन से निकल गए हैं और तुम दीन पर क़ायम हो? क़सम बख़ुदा अनक़रीब उस वक़्त जबकि तुम्हारी जानें इन जिस्मों से

---

[1]तबरी जि/6, पेज/449, इरशाद पेज/251

जुदा होंगी और तुम अपने आमाल पर दुनिया से जाओगे। मालूम होगा कि कौन दीन से निकला था और कौन आतिशे जहन्नम में जलने का मुस्तहक़ था।

बहर तौर अम्र व बिन हुज्जाज ने अपनी फ़ौज को आमादा कर ही लिया था। चुनाँनचे उसने पूरे जोशो ख़रोश से मैमना की फ़ौज के साथ फ़ुरात की जानिब से जमाअते हुसैनी पर हमला किया। उस जमाअत के छोटे से मैसरा ने ऐसी पामर्दी से मुक़ाबला किया कि दुश्मन को फिर वापस होना पड़ा मगर गुबार का दामन चाक हुआ तो मुस्लिम बिन औसजा ख़ाक व ख़ून में ग़लताँ नज़र आये। इमाम हुसैन[अ०स०] फ़ौरन मुस्लिम बिन औसजा के सिरहाने पहुँचे जबकि उनमें रमक़े जान बाक़ी थी आपने उनके लिए दुआ–ए ख़ैर करते हुए इस आयत की तिलावत फ़रमाईः '' فَمِنهُم مَن قَضى نَحبَهُ وَمِنهُم مَن يَنتَظِرُ وَما بَدَّلوا تَبديلاً
''यानी कुछ जाने वाले गुज़र गए और कुछ वक़्त के मुन्तज़िर हैं मगर कोई अपनी बात से हटा नहीं।''

हबीब बिन मज़ाहिर जो इमाम के साथ साथ थे मुस्लिम बिन औसजा के क़रीब गए और उनसे कहा कि तुम्हारा साथ छूटने का बड़ा सदमा है। मगर मैं तुम्हें जन्नत की मुबारकबाद देता हूँ। मुस्लिम ने कमज़ोर आवाज़ में जवाब दिया। ''तुम्हें भी हर तरह की ख़ैरो बरकत की मुबारकबाद क़ुबूल हो।'' हबीब ने कहा अगर मुझे यक़ीन न होता कि मैं भी अनक़रीब तुम्हारे पीछे पीछे आता हूँ तो कहता कुछ वसीयत करो और मैं उस वसीयत को पूरा करूँ।'' मुस्लिम ने जवाब में हुसैन[अ०स०] की तरफ़ इशारा करते हुए कहा वसीयत जो कुछ भी है वह इसी ज़ात से मुतअल्लिक़ है। मतलब यह था कि तुम भी उन ही पर अपनी जान निसार करना। हबीब ने कहा ''ज़रूर ख़ुदा की क़सम ऐसा ही होगा।''

अम्र बिन हज्जाज के साथ की बदहवास फ़ौज उस मुख़्तसर सी जमाअत के मुक़ाबले की ताब न लाकर बेतहाशा भागी थी।

उसे ख़बर भी न थी कि कौन क़त्ल होगया मगर मुस्लिम बिन औसजा के साथ उनके अहलो एयाल मौजूद थे। जब उनकी शहादत की ख़बर ख़ैमे में पहुँची तो एक कनीज़ ने चीख़ मार कर कहा।

''हाये इब्ने औसजा। हाये मेरा आक़ा।'' इस आवाज़ को सुनकर लश्करे मुख़ालिफ़ में ख़ुशियाँ होने लगीं कि हमने मुस्लिम बिन औसजा को क़त्ल किया।'' उस पर शबस बिन रबई को गुस्सा आ गया और उसने कहा ''ग़ज़ब

की बात है कि मुस्लिम बिन औसजा का सा शख़्स क़त्ल हुआ और तुम लोग ख़ुशियाँ मनाओ। बख़ुदा मैंने ख़िदमते इस्लाम में उस शख़्स के कारनामे देखे हैं। आज़र बाईजान की जंग में मेरा चश्मदीद वाक़ेया है कि अभी मुसलमानों के लश्कर की पूरी सफ़ बन्दी भी न होने पाई थी कि उस बहादुर ने छे आदमी फ़ौजे मुशरकीन के क़त्ल कर दिए थे। ऐसा शख़्स तुम्हारे हाथ से मारा जाए और तुम खुश हो?[1]

ज़ाहिर बीं (ज़ाहिरी निगाह रखने वालों) निगाहों को यह बातें मामूली मालूम होती होंगी मगर हक़ीक़तन यह इमाम हुसैन[अ०स०] की हक़्क़ानियत के वह सरीही (खुले हुए) अलामात थे जो दौराने जंग में बराबर आँखों के सामने आ रहे थे।

अब्दुल्लाह बिन उमैर की शहादत

बहरहाल उस दूसरे इजतेमाई हमले की इस कामयाबी ने जो क़त्ले मुस्लिम की सूरत में ज़ाहिर हुई थी लशकरे मुख़ालिफ़ का दिल बढ़ा दिया। इसलिए उसके बाद शिम्र बिन ज़िल जौशन ने मैसर–ए–फ़ौज को लेकर हुसैनी मैसरा पर हमला किया और उस तरफ़ भी असहाबे हुसैन[अ०स०] ने बड़ी पामर्दी से मुक़ाबला किया। उस मौक़े पर अब्दुल्लाह बिन उमैर ने जिनके हालात पहले बयान हो चुके हैं। बड़ी जाँफ़िशानी से काम लिया और दो सिपाही दुश्मन के फिर क़त्ल किए मगर उसके बाद वह हानी बिन सबीत हज़रमी और बकीर बिन हैई तमीमी के हाथ से दर्जे–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए। तबरी ने तसरीह की है कि वह असहाबे हुसैन[अ०स०] में दूसरे मक़्तूल थे।[2]

ज़ौज–ए–अब्दुल्लाह बिन उमैर जिन्हों ने अपनी ज़िन्दगी की तमाम काएनात को अपने जज़्ब–ए–ईमानी पर क़ुर्बान कर दिया था, यह मालूम करके उनका अज़ीज़ शैहर हमेशा के लिए उनसे जुदा हो गया और वह करबला की तप्ती ज़मीन पर अपने ख़ून की सुर्ख़ चादर ओढ़े मौत की नींद सो रहा है एक मर्तबा फिर बेचैन होकर इस इरादे से नहीं कि वह जंग करेंगी या अपने शौहर के ख़ून का बदला लेंगी बल्कि सिर्फ़ इसलिए कि वह अपने शौहर की लाश को देख लें, मैदान में पहुँचीं। वह शौहर के सिरहाने बैठकर उनके चेहरे से गर्दो ग़ुबार साफ़ करती और कहती जाती थीं कि "तुम्हें जन्नत मुबाकर हो,

---

[1]तबरी जि/6, पेज/449
[2]तबरी जि/6, पेज/249

बहिश्त की सैर करना मुबारक हो। मगर दुश्मन का ज़ुल्म व तशद्दुद इस हद पर था कि शिम्र ने अपने गुलाम को जिसका नाम रूस्तम था आवाज़ दी कि उसका भी काम तमाम कर दे, वह बढ़ा और उसने उन सितम रसीदा और दिल ख़स्ता ख़ातून के सर पर एक ऐसा गुर्ज़ मारा कि वह शहीद हो गईं।[1] और इस तरह करबला के ख़ूनी मुरक़्क़े में एक क़ाबिले एहतेराम ख़ातून का मुक़द्दस लहू भी शामिल हो गया।

(4) बुरैर बिन ख़ज़ीर हमदानी

सिन रसीदा ताबेई, (हदीस नक़्ल करने वाले) इबादत गुज़ार, और हाफ़िज़े क़ुरआन, हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के असहाब में से, कूफ़े के बाशिन्दे और क़बील–ए–हमदान के अशराफ़ में से, अबू इस्हाक़ हमदानी सबई मशहूर मुहद्दिस (हदीस लिखने वाले) व हाफ़िज़ के ममलू (भरे हुए) थे। मस्जिदे कूफ़ा में लोगों को क़रआन की तालीम देते थे। लोग उनको सय्यदुल क़ुर्रा हुफ़्फ़ाज़े (हाफ़िज़ की जमा) क़ुरआन का सरदार) कहते थे। रास्ते में कहीं पर पहुँच कर हुसैन[अ0स0] के साथ हो गए और हुर की मुलाक़ात के बाद जो खुतबा इमाम ने इरशाद फ़रमाया था उसके जवाब में ज़ुहैर बिन क़ैन और नाफ़ेअ् बिन हिलाल की तक़रीरों के बाद उन्होंने भी एक मुख़तसर सी तक़रीर की थी जिसका ज़िक्र पहले हो चुका है। अब्दुर्रहमान बिन अब्दरबा से उनकी इतमीनानी गुफ़्तगू का तज़किरा भी इसके क़ब्ल इस किताब में आचुका है। जब बुरैर ने कुछ मिज़ाह (मज़ाक़) किया और अब्दुर्रहमान ने कहा: यह मज़ाक़ का वक़्त नहीं है तो बुरैर ने जवाब दिया कि ख़ुदा की क़सम मेरे क़ौम व क़बीले वाले इससे वाक़िफ़ हैं कि मुझे जवानी से लेकर इस उम्र तक कभी मज़ाक़ से दिलचस्पी नहीं रही मगर इस वक़्त तो अपने मुस्तक़बिल के तसव्वुर से मेरी ख़ुशी की इन्तेहा नहीं कि इधर मैदाने जंग में तलवार चली और बस नतीजे में हमारे लिए आख़िरत की ज़िन्दगी और सआदत नसीब हुई।

इससे बुरैर के शौक़े शहादत का पूरा अन्दाज़ा हो जाता है। इसी जज़्ब–ए–बेक़रार का नतीजा था कि वह जंग में सबक़त करना चाहते थे। चुनाँनचे सबसे पहले जो दो गुलाम ज़ियाद व इब्ने ज़ियाद के लशकरे यज़ीद से निकले और उन्होंने मुबारिज़ तलबी (मैदान में आने की दावत दी) की तो हबीब और बुरैर खड़े हो गए थे मगर इमाम ने उनको रोक दिया था। जमाअते हुसैनी में उनका नुमायाँ हैसियत रखना इससे भी ज़ाहिर है कि जब अब्दुल्लाह

---

[1]तबरी जि/6, पेज/251

बिन उमैर मैदान में गए तो उन दोनों ग़ुलामों ने कहा कि हम तुमको नहीं जानते, हमारे मुक़ाबले के लिए ज़ुहैर बिन क़ैन या हबीब बिन मज़ाहिर या बुरैर बिन ख़ज़ीर को आना चाहिए। गुज़िश्ता जंगे मग़लूबा के बाद दस्त बदस्त मुक़ाबले के लिए यज़ीद बिन माअ्क़िल लश्करे यज़ीद में से मैदाने जंग में आया। उससे और बुरैर से पुरानी मुलाक़ात थी और मज़हबी नोक झोंक भी हुआ करती थी। इसलिए उसने मैदाने जंग में बुरैर को आवाज़ दी कि "देखा तुमने, खुदा ने तुम्हारे साथ क्या सुलूक किया।" बुरैर ने कहा "खुदा ने मेरे साथ तो बड़ा अच्छा सुलूक किया। हाँ तू अपनी कह कि बड़ा बद नसीब साबित हो रहा है।" यज़ीद बिन माअ्क़िल ने जवाब दिया। झूठ कहते हो हालाँकि इसके पहले तुम्हें झूठ बोलने की कभी आदत नहीं थी। ख़ैर यह बताओ कि तुम्हें याद है! एक दिन हम और तुम बनी लौज़ान के कूचे से होकर गुज़र रहे थे और तुम कह रहे थे कि उसमान गुनहगार थे और मुआविया खुद गुमराह और दूसरों को गुमराह करने वाला है और इमामे बरहक़ बस अली बिन अबी तालिब हैं।" बुरैर ने कहा कि मैं अब भी अपने इसी ख़याल पर क़ायम हूँ" यज़ीद ने कहा " अच्छा इस पर तैयार हो कि मैं तुमसे मुबाहला करूँ और हम तुम दोनों मिलकर खुदा से दुआ करें कि वह झूठे पर लानत करे और जो हक़ पर हो उसके हाथ से बातिल परस्त को क़त्ल करा दें फिर मैं तुमसे जंग करूँ।" यज़ीद बिन माअ्क़िल ने इसको मन्ज़ूर कर लिया। दोनों फ़ौजों की आँखें लड़ी थीं, दोनों ने आमने सामने खड़े होकर हाथ आसमान की तरफ़ उठाए और खुदा से दुआ की। फिर जंग में मशग़ूल हो गए। बस सिर्फ़ दो ज़र्बों की रद्दो बदल होने पाई, इस तरह कि पहले यज़ीद ने तलवार लगाई जो बुरैर पर उचटती हुई पड़ी और कोई सदमा उन्हें नहीं पहुँचा। फिर बुरैर ने तलवार मारी जो ख़ोद को काटती हुई उसके दिमाग़ तक पहुँची और वह घोड़े से ज़मीन पर गिर पड़ा इस हालत से कि बुरैर की तलवार उसके कास–ए–सर में दर आई हुई थी और वह उसे बाहर खींच रहे थे। इसी हालत में रज़ी बिन मन्क़ज़ अब्दी ने उन पर हमला कर दिया वह बुरैर से लिपट गया और कुश्ती लड़ने लगा। बुरैर उसको गिरा कर सीने पर सवार हो गए। कमीना और बुज़दिल दुश्मन चीख़ उठा और पुकारने लगा "कहाँ हैं जंगजू पहलवान, कहाँ हैं मुदाफ़ियत (बचाने) करने वाले जवान, दफ़अतन (अचानक) काअ्ब बिन जाबिर बिन अम्र अज़दी बुरैर पर हमला करने के लिए आगे बढ़ा लश्करे यज़ीद के दूसरे सिपाहियों ने उसको मना भी किया कि यह बुरैर

हाफ़िज़े क़ुरआन हैं, जो मस्जिद में हिफ़्ज़े क़ुरआन कराया करते थे। मगर उसने न माना और पुश्त की जानिब से बुरैर पर नैज़े का वार कर दिया जो सीने से पार हो गया। और बुरैर ज़मीन पर गिर गए। फिर उसने वार लगा कर बुरैर का काम तमाम कर दिया।[1]

(5) मुन्जह बिन सहम

जमाअते हुसैनी में आज़ाद अफ़राद के साथ साथ ग़ुलामों की नुमाइन्दगी भी काफ़ी थी। उनमें सबसे पहले सिलसिल–ए शोहदा में जिनका नाम आता है वह मुनजह हैं।

शैख़ुत ताइफ़ाह ने किताबुर रिजाल में उनका असहाबे इमाम हुसैन[अ0स0] में शुमार किया है। ज़महशरी ने रबीउल अबरार में लिखा है कि हसीना हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] की कनीज़ थी जिसे आपने नौफ़िल बिन हारिस बिन अब्दुल मुत्तलिब से ख़रीद फ़रमाया था। और उसकी शादी सहम से कर दी थी। इस तरह मुनजह की विलादत हुई और चूँकि यह कनीज़ अली बिन हुसैन (ज़ैनुल आबेदीन[अ0स0]) के घर में ख़िदमात अन्जाम देती थी इस लिए हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] इराक़ की तरफ़ रवाना हुए तो वह अपने फ़रज़न्द मुनजह समेत आपके हमराह आई करबला में उनकी शहादत अवाएले (शुरू) जंग में ही वाक़ेअ् हुई और वह हिसान बिन बक्र हन्ज़ली के हाथ से क़त्ल हुए।

(6) उमर बिन ख़ालिद

पूरा नाम उमर बिन ख़ालिद बिन हकीम बिन हज़ामुल असदी अल–सैदावी था। कूफ़े के अशराफ़ में से और अहलेबैते रसूल के सच्चे मुहिब थे। शुरू में मुस्लिम बिन अक़ील की नुसरत के लिए निकले थे मगर जब अहले कूफ़ा ने उनका साथ छोड़ दिया और कामयाबी की कोई सूरत नज़र न आई तो यह भी रूपोश हो गए यहाँ तक कि इमाम हुसैन[अ0स0] इराक़ के हुदूद में पहुँचे और आपने क़ैस बिन मुसहर सैदावी को अपनी आमद की इत्तेला के साथ कूफ़े रवाना किया क़ैस रास्ते में गिरफ़्तार हो गए और उनके क़त्ल का हुक्म हुआ मगर उन्होंने मरते मरते हुसैन की सिफ़ारत के हक़ को अदा कर दिया यह एलान करके कि इमाम हुसैन[अ0स0] मक़ामे हाजिर तक पहुँच गए हैं, जिसको जाना हो उनके पास चला जाए। यह ख़बर उमर बिन ख़ालिद को पहुँची तो वह अपने ग़ुलाम सअ्द और तीन दूसरे हमराहियों के साथ ग़ैर मारूफ़ रास्ते से

---

[1]तबरी जि/6, पेज/47

होकर बहुत तेज़ रफ़्तारी के साथ मन्ज़िले "अज़ीबुल हजानात" पर इमाम हुसैन[अ०स०] की ख़िदमत में पहुँच गए।

जैसाकि हुर बिन यज़ीद रियाही इमाम की नक़्लो हरकत की निगरानी के लिए पहुँच चुका था चुनाँनचे हुर ने मुदाख़िलत की और कहा कि यह लोग आपके साथ नहीं आए थे, इसलिए या तो मैं इन्हें गिरफ़्तार करूँगा या कूफ़े वापस। मगर इमाम ने फ़रमाया "अब जबकि यह मेरे पास पहुँच गए और मेरी अमान में आ गए तो मैं इन्हें तुम्हारे सिपुर्द नहीं कर सकता।"

रोज़े आशूर जंग छिड़ने के बाद यह और इनके साथी वह पाँच आदमी थे जिन्हों ने बयक वक़्त फ़ौजे दुश्मन पर हमला किया और लशकर में घुसकर शमशीर ज़नी करने लगे। लश्करे यज़ीद ने उन बहादुरों को चारों तरफ़ से घेर लिया और जमाअते हुसैनी से बिल्कुल जुदा कर दिया। यह देखकर इमाम हुसैन[अ०स०] ने अपने भाई अबुल फ़ज़लिल अब्बास को उनकी मदद के लिए भेजा। आपने जाकर तने तन्हा फ़ौज पर हमला किया और तलवार चलाना शुरू की यहाँ तक कि लश्कर को मुन्तशिर कर दिया ओर उन ज़ख़्मी बहादुरों को दुश्मन के हलक़े से निकाल कर अपनी जमाअत की तरफ़ वापस ले चले। अभी रास्ता पूरा तय नहीं हुआ था कि दुश्मन तआक़ुब के लिए आते नज़र आए। अब्बास[अ०स०] ने उन बहादुरों को अपने आगे किया और आप ख़ुद बग़रज़े हिफ़ाज़त पीछे हो गए ताकि उनको कोई गज़न्द न पहुँचने पाए। मगर दुश्मन के क़रीब पहुँचते ही ज़ख़्मी बहादुरों के जोश की इन्तेहा न रही और वह अब्बास[अ०स०] की हिफ़ाज़त से निकल कर दुश्मनों पर झपट पड़े और बावजूदेकि ज़ख़्मों से बिल्कुल बे हाल थे लेकिन जान तोड़ कर शमशीर ज़नी की और आख़िर एक ही जगह पर गिर कर शहीद हो गए।[1] अब्बास ने मजबूरन इमाम की ख़िदमत में वापस आकर इस वाक़ेए की इत्तेला दी। हज़रत ने चन्द बार उन बहादुरों के लिए दरगाहे बारी से रहमत तलब की।

(7) सअ्द मौली उमर बिन ख़ालिद

शरीफ़ुन नफ़्स और बलन्द हिम्मत ग़ुलाम थे। जिन्हों ने अपने मालिक अम्र बिन ख़ालिद सैदावी का आख़िर वक़्त तक साथ दिया। वह अपने मालिक के साथ उसी मुख़्तसर क़ाफ़िले में आकर असहाबे हुसैन[अ०स०] से मुलहक़ (मिल गए) हुए थे जो मन्ज़िले अज़ीबुल हजानात पर ख़िदमते इमाम में पहुँचा और जंग में भी वह अपने हमराहियों के जत्थे में दर्ज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

---

[1] तबरी जि/6, पेज/255

(8) मजमाअ् बिन अब्दुल्लाह

नाम व नसबः मजमाअ् बिन अब्दुल्लाह बिन मजमाअ् बिन मालिक बिनअयास बिन अब्दे मनात बिन सअ्दुल अशीरातुल मुज़जही अल आऐज़ी।

वह ताबेईन में से थे रसूल अल्लाह स0अ0 के ज़माने में मुतवल्लिद (पैदा) हुए थे उनके बाप ने रसूल अल्लाह स0अ0 की सोहबत के शरफ़ को हासिल किया था और खुद मजमाअ् हज़रत अली बिन अबी तालिब अ0स0 के असहाब में दाख़िल थे। चुनाँनचे जंगे सिफ़्फ़ीन के वाक़ेआत के ज़ैल में उनका तज़किरा पाया जाता है। यह भी उन पाँच अशख़ास में से थे जो मन्ज़िले अज़ीबुल हजनात पर इमाम हुसैन अ0स0 की ख़िदमत में हाज़िर हुए थे और जब आपने उनसे कूफ़े की हालत के मुतअल्लिक़ दरयाफ़्त फ़रमाया तो मजमा ने हस्बे ज़ैल अलफ़ाज़ में अहले कूफ़ा की तस्वीर कशी की थी। ''बड़े बड़े आदमियों को तो बड़ी रिशवतें दी गई हैं और गठरियाँ भर भर कर मालो दौलत अता किया गया है ताकि वह मुवाफ़िक़ रहें और ख़ैर ख़्वाही करते रहें इसलिए वह सब मुत्तफ़िक़ (एक) हैं आपके ख़िलाफ़ और अवाम, उनके दिल तो आपकी तरफ़ झुकते हैं मगर तलवारें उनकी कुल आपके ख़िलाफ़ खिंची हुई होंगी।''

रोज़े आशूरा उन्होंने अपने जत्थे के साथ दुश्मन से जंग की और दरज–ए–शहादत हासिल किया।

(9) आएज़ बिन मजमअ्

मजमअ् बिन अब्दुल्लाह आएज़ी के फ़रज़न्द थे। अपने बाप के साथ मन्ज़िले अज़ीबुल हजनात पर इमाम हुसैन अ0स0 की क़दम बोसी का शरफ़ हासिल किया था और उन्हीं के साथ अपने जत्थे में रहते हुए जंग में शिरकत की और शहीद हुए।

(10) जुनादा बिन हारिस सलमानी

सलमान क़बील–ए–मुराद की एक शाख़ और मुराद क़बील–ए–मुज़हज का एक शोअ्बा है। जनादा बिन हारिस कूफ़े के बाशिन्दे और ''मशाहीर (मशहूर की जमा) शिया में से थे।'' अहदे रसूल अल्लाह स0अ0 का इदराक (हासिल किया) किया। फिर हज़रत अली बिन अबी तालिब अ0स0 के साथ रहे और जंगे सिफ़्फ़ीन में जिहाद किया। शैख़ तूसी ने किताबुर रिजाल में उनका नाम असहाबे हुसैन अ0स0 में दर्ज किया है।

जब मुस्लिम बिन अक़ील कूफ़े में इमाम हुसैन अ0स0 की बैयत ले रहे थे तो जुनादा ने वफ़ादारी के साथ बैयत की और मुस्लिम के साथ जिहाद में शरीक

भी हुए मगर जब फ़िज़ा मुस्लिम के ख़िलाफ़ हो गयी तो वह भी मिस्ले दीगर अशख़ास के मख़फ़ी (छुप) हो गए और आख़िर उसी जत्थे में जो मन्ज़िले अज़ीबुल हजानात में ख़िदमते इमाम में पहुँचा था वह भी हाज़िर हुए और उसी जत्थे के साथ रह कर जंग भी की और दर्जा–ए–शहादत हासिल किया।

(11) जुनदब बिन हजीर कन्दी ख़ूलानी

कूफ़े के बाशिन्दे और मुमताज़ शिइयी अफ़राद में से थे। हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] की सोहबत से शरफ़याब हुए और जंगे सिफ़्फ़ीन में कन्दा और अज़्द के रिसालों के अफ़सर थे। जब इमाम हुसैन[अ0स0] कूफ़े की सिम्त राह पैमा (रास्ते में) थे तो हुर की मुलाक़ात से पहले ही वह ख़िदमते इमाम में पहुँच कर हमराही के शरफ़ से बहरायाब हुए(फ़ौजे हुसैनी का हिस्सा है) और रोज़े आशूर जंग के इब्तेदाई हंगाम में जंग करके शहीद हुए।

(12) यज़ीद बिन ज़ियाद बिन महासिर अबूश शअसा कन्दी बहदली

शिअ़याने कूफ़ा में से, शरीफ़, बहादुर और जंग आज़मा थे। इमाम हुसैन[अ0स0] की ख़िदमत में हुर की मुलाक़ात से पहले हाज़िर हुए और फिर हमराह हमरिकाब रहे थे। जब करबला की सर ज़मीन के क़रीब पहुंच कर हुर के पास इब्ने ज़ियाद का क़ासिद यह ख़त लाया था कि जहाँ यह ख़त पहुंचे वहीं हुसैन[अ0स0] को उतरने पर मजबूर किया जाये। तो अबुश शअ़सा ने उस क़ासिद को पहचाना था कि वह मालिक बिन नस्र बदी है। चूंकि वह भी क़बील–ए–कन्दा से था। इसलिए अबुश शअ़सा ने उसको नसीहत करना ज़रूरी मसझते हुए उससे कहा कि यह तूने क्या ग़ज़ब किया। इस काम के लिए तू आया? उसने कहा ''मैंने अपने इमाम की इताअत के हक़ को पूरा किया। अबुश शअ़सा ने जवाब दिया कि तूने ख़ुदा की तो नाफ़रमानी की और अपने इमाम की इताअत, यक़ीनन तूने इस तरह अपने नफ़्स की हलाकत का सामान किया और हमेशा के लिए नंगो आर (ज़लील) और आतिशे जहन्नम का मुस्तहक़ बना। ख़ुदा वन्दे आलम ने यह फ़रमाया है कि कुछ इमाम ऐसे हैं जो आतिशे जहन्नम की तरफ़ दावत देते हैं और रोज़े क़यामत उनकी कोई फ़रयाद रसी नहीं होगी, बेशक तेरा इमाम ऐसा ही है।''

वह बहुत बड़े तीर अन्दाज़ थे। रोज़े आशूर अपने घुटने टेक कर इमाम के सामने बैठ गए और आठ तीर लगाये जिन में से पांच तीर ठीक निशाने पर पड़े और पाँच आदमियों को दुश्मनों में से हलाक किया। जब तीर ख़त्म हो गए तो वह तलवार लेकर मैदान में आये और यह रजज़ पढ़ी।

"मैं यज़ीद हूँ और मेरे बाप महासिर थे मैं शेरे बीशा (जंगल के शेर) से ज़्यादा बहादुर हूँ, ख़ुदावन्दा गवाह रहना कि मैं हुसैन[अ0स0] का नासिर और इब्ने ज़ियाद से बे तअल्लुक़ी इख़्तियार करने वाला हूँ।"

आख़िर दरज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

तारीख़ में तसरीह (साफ़) है कि वह इब्तेदा–ए–जंग के शोहदा में से हैं।[1]

---

[1]तबरी जि/6, पेज/255

हमला-ए-ऊला

हक़ीक़तन तारीख़ का यह यादगार और हैरत अंगेज़ वाक़ेया है कि तीस हज़ार फ़ौज के मुक़ाबले पर बहत्तर या ज़्यादा से ज़्यादा सौ डेढ़ सौ नुफ़ूस हों और वह भी तीन दिन के भूखे प्यासे और उसके बावजूद वह फ़ौजे कसीर इस जमाअते क़लील (मुख़तसर) से नुक़सान पर नुक़सान और शिकस्त पर शिकस्त उठाये और उनके बनाये कुछ न बने सुबह से दोपहर के क़रीब तक का वक़्त आ जाये और हुसैनी जमाअत की सफ़ मिस्ल एक मज़बूत और मोहकम आहनी (लोहे की) दीवार के सामने मौजूद है इसके बरख़िलाफ़ अफ़वाजे यज़ीद में इज़तेराब, बद नज़मी (अफ़रा तफ़री) के आसार नुमायाँ हों और वह किसी एक तरीक़–ए–जंग पर क़ायम न रह सकें। रावी का बयान है कि असहाबे हुसैन[अ0स0] ने सख़्त जंग की और उनमें के सवारों ने जो तादाद में सिर्फ़ बत्तीस थे लशकरे यज़ीद पर ताबड़ तोड़ हमले किए और वह जिस सफ़ पर हमला करते थे उसको मुन्तशिर कर देते थे।[1] चुनाँनचे जब गुर्रा बिन क़ैस ने जो लशकरे यज़ीद के सवारों की फ़ौज का अफ़सर था यह देखा तो उसने उमर बिन सअ्द के पास अब्दुर्रहमान बिन हसीन को यह पैग़ाम देकर भेजा कि "आप देखते हैं कि आज सुबह से इस छोटी सी जमाअत के हाथों मेरी फ़ौज कीक्या हालत है? अब आप प्यादों की फ़ौज और तीर अन्दाज़ों के दस्तों को भेजिए कि वह मुक़ाबला करें।" लशकरे यज़ीद के लिए किस दर्जा शर्म का मक़ाम था कि उसके सवारों का अफ़सर हिम्मत हार चुका था और खुले हुए अलफ़ाज़ में इक़रारे शिकस्त कर लिया। उसके बाद प्यादों (पैदल फ़ौज) की तरफ़ रूजू किया गया और शबस बिन रबई को जो प्यादा फ़ौज का अफ़सर था। उमरे सअ्द का यह तहदीदी (सख़्ती भरा) पैग़ाम पहुँचा कि "तुम आगे क्यों नहीं बढ़ते? मगर उसने हिक़ारत आमेज़ जवाब दिया कि "अफ़सोस है इस मुहिम को सर करने के लिए सवारों की इतनी बड़ी फ़ौज नाकाफ़ी समझी जाये

---

[1]तबरी जि/6, पेज/250, इरशाद पेज/252

और मेरे ऐसे बड़े सरदार को ज़हमत दी जाये और फिर तीर अन्दाज़ों की भी ज़रूरत महसूस हो रही हो! क्या मेरे सिवा कोई और इस मुहिम को सर करने के लिए नहीं मिलता? यह सुनकर मजबूरन उमरे सअ्द ने हसीन बिन तमीम को उसी फ़ौज के साथ जो क़ादसिया की सरहद में नाका बन्दी की ग़रज़ से तैनात रह चुकी थी पाँच सौ तीर अन्दाज़ों के इज़ाफ़े के साथ मामूर किया कि वह आगे बढ़े और ख़ैम–ए–हुसैनी के नज़दीक जाकर पास से उन पर तीरों का मेंह बरसाये।[1]

फ़न्ने जंग के वाक़िफ़ कार अच्छी तरह जानते हैं कि तीरोंकी ज़द के लिए एक महदूद फ़ासला दरमियान में होना ज़रूरी है। मुक़र्ररा फ़ासिले से ज़्यादा पर तीर अन्दाज़ी एक तरह से हवाई फ़ायरों की हैसियत रखती है जिससे गज़न्द (नुक़सान) (तकलीफ़) न पहुंचने का क़वी (पूरा) इमकान होता है। मगर थोड़ी मसाफ़त से तीरों की हंगामा ख़ेज़ बारिश एक बेपनाह हमला है जिससे महफ़ूज़ रहने के लिए न फ़ुनूने जंग काम दे सकते हैं, न शजाअत व जुरअत। इसीलिए यह एक मुसल्लेमा हक़ीक़त है कि यह बुज़दिलाना तरीक़–ए–जंग है और शजाआने रोज़गार (बहादुरों) के लिए नंग (बहादुरों के लिए बाइसे शर्म)। यह ज़ाहिर है कि अस्ल लशकर गाह दो मुताख़ासिम (दुश्मन) फ़रीक़ों के एक दूसरे से काफ़ी फ़ासले पर होते हैं यक़ीनन उसी सूरत पर करबला में भी थे।

दोनों लशकरों की सफ़ आराई भी इस तरीक़े पर होती है कि दरमियान में काफ़ी वसीअ् मुसाफ़ (दूरी) बाक़ी रहे और यह मसाफ़त भी कुछ कम नहीं होती है। पहली मर्तबा के तीरों की बारिश का उनवान यह था कि उमरे सअ्द ने अपने लशकर ही से जिसकी सफ़ आराई हो चुकी थी तीर चलाया और उसी के साथ उसके लशकर वालों ने भी तीर रिहा किये लिहाज़ा उन तीरों से जमाअते हुसैनी का कोई ख़ास नुक़सान नहीं हुआ था और न होना चाहिए था सिवाए इसके कि उनके ज़रिये से ऐलाने जंग हो गया।

और अमली तौर से हर्बो ज़र्ब (जंग) शुरू हो गई। मगर इस वक़्त जिस तरीक़े से तीर अन्दाज़ी मक़सूद थी उसकी नौईयत बिल्कुल मुख़तलिफ़ थी। इसलिए कि इस मर्तबा पूरे तौर से जमाअते हुसैनी को ज़द पर लाकर तीर बरसाए जा रहे थे। ज़ाहिर है कि तीर की ज़द से ढाल या नैज़ा व शमशीर के ज़रिये से तहफ़्फ़ुज़ मुमकिन नहीं है। अलबत्ता तीर को ख़ाली देकर उससे

---

[1]तबरी जि/6, पेज/250

बचा जा सकता है मगर यह उसी वक़्त कारगर हो सकता है जब इधर उधर तीरों की ज़द से ख़ाली जगह मौजूद हो लेकिन तसव्वुर में इस मन्ज़र को सामने लाया जाये कि सिर्फ़ सौ डेढ़ सौ नुफ़ूस (लोगों) पर मुशतमिल जमाअते हुसैनी सफ़ बाँधे ईस्तादा (खड़े हैं) और उनके मुक़ाबले में हज़ारों की तादाद में एक फ़ौज आकर खड़ी हो जाती है और तीर बरसाना शुरू करती है। तो वह कितनी ज़्यादा दूर तक फैली हुई होगी। और जब उसकी तरफ़ से एक मर्तबा मजमूई तौर पर यक जेहत (एक साथ) और हम आहंग होकर एक निशाने पर एक ही मरकज़ को सामने रखे हुए बहुत दूर से नहीं बल्कि क़रीब से तीर बरसाये जा रहे हैं तो क्या इस में कोई शक हो सकता है कि उन तीरों ने एक अज़ीम सैलाब एक बड़े तूफ़ान, एक तेज़ आँधी या लोहे की एक चादर की तरह चप व रास्त (दायें बायें) हर तरफ़ से इस मुख़तसर जमाअत को ढाँप लिया होगा। और उसके जिस्म का कोई हिस्सा ऐसा बाक़ी न होगा जो उन तीरों की ज़द में न आता हो। मगर अन्सारे हुसैन[अ0स0] ने इस बेपनाह तीरों के सैलाब का यूँ मुक़ाबला किया कि तलवारें सूंत लीं और लोहे की उन चादरों को अपने सीनों से रेलते हुए दुश्मन की फ़ौज पर जा पड़े और उसमें दर आकर (दाख़िल हो कर) शमशीर ज़नी करने लगे।

यही वह अज़ीमुश्शान हमला और घमसान की जंग है जो तारीख़ों में "हमल–ए–ऊला" के नाम से मज़कूर है और यह ज़ोहर से एक घण्टा क़ब्ल का वाक़ेया था।

असहाबे हुसैन[अ0स0] ने फिर दुश्मन को शिकस्त दी और फ़ौज को पसपा किया मगर इस हमले का नतीजा खुद जमाअते हुसैनी के लिए भी बहुत दर्द अंगेज़ साबित हुआ। चुनाँनचे जिस वक़्त मैदान साफ़ हुआ और गर्दो ग़ुबार दूर हुआ तो मालूम हुआ कि यह मुख़तसर तादाद और ज़्यादा मुख़तसर हो चुकी थी इसलिए कि पचास आदमी अन्सारे हुसैन[अ0स0] में से दर्जा–ए शहादत पर फ़ायज़ हुए थे। जिन में से बाज़ तीरों का निशाना बनाये गए थे। और बाज़ जंगे मग़लूबा में शहीद किए गए थे। इसके अलावा जितने घोड़े असहाबे हुसैन[अ0स0] की सवारी में थे वह सब भी ख़त्म कर दिए गए थे और चन्द असहाबे हुसैन[अ0स0] भी जो सवार थे अब प्यादा (बग़ैर घोड़े के) हो गए थे।[1]

चुनाँनचे हुर बिन यज़ीद रियाही भी जिनका घोड़ा इसके पहले ही ज़ख़्मी हो चुका था अब प्यादा हो गए जिसका तज़केरा उनके दुश्मन ऐयूब बिन

---

[1]तबरी जि/6, पेज/250, इरशाद पेज/252

मशरह ख़ीवानी ने इस तरह किया है कि मैं ही वह शख़्स था जिसने हुर के घोड़े को पै (पैर काट दिए) किया। बस मैं ने एक तीर ऐसा लगया कि फ़रस थर्रा कर ज़मीन पर गिर गया। और हुर शेर के मानिन्द जस्त करके उसकी पुश्त से अलाहिदा हुए। तलवार हाथ में लिए हुए और इस मज़मून का शेअ्र पढ़ रहे थे कि "अगर तुम ने मेरा घोड़ा पै कर डाला तो कोई हरज नहीं, मैं एक शरीफ़ इन्सान का फ़रज़न्द हूँ और शेर से ज़्यादा शजाअत का मालिक हूँ।" दूसरे एक मुशहिद (चश्मे दीद) का बयान है कि उनका सा मैं ने दूसरा कोई शमशीर ज़नी करने वाला नहीं देखा।[1]

इस हमले के ज़ैल में जो पचास अन्सारे हुसैन[अ०स०] शहीद हुए उन में नहीं कहा जा सकता कि कौन पहले शहीद हुआ और कौन बाद को, इसलिए उनके हालात हुरूफ़े तहज्जी (Alfabets) की तरतीब से दर्ज किए जाते हैं।

(13) अदहम बिन उमय्या अबदी बसरी

क़बील–ए–अब्दे क़ैस से बसरा के बाशिन्दे थे। बसरा में एक ख़ातून थीं मारिया बिन्ते मुनक़िज़ अबदिया जो शिय–ए–अली और मुहिब्बे अहलेबैते नुबूवत थीं और उनके मकान पर अक्सर शिअ्याने अली[अ०स०] का इजतिमाअ् होता रहता था। जब इमाम हुसैन[अ०स०] ने मक्क–ए–मुअज़्ज़मा से कूफ़े की रवानगी का क़स्द किया और इब्ने ज़ियाद बसरे से कूफ़े की गवर्नरी पर मामूर हुआ और बसरा के नये गवर्नर की जानिब से नाका बन्दी का इन्तेज़ाम हुआ ताकि कोई शख़्स नुसरते हुसैन[अ०स०] के लिए बसरा से न जाने पाये तो मारिया अबदिया के मकान पर यज़ीद बिन सबीत क़ैसी ने नुसरते हुसैन[अ०स०] की ग़रज़ से कूफ़े की तरफ़ जाने का अज़्म ज़ाहिर किया। चूँकि सरीही (साफ़) तौर पर उनका यह मक़सद ख़तरे से ख़ाली न था कुछ ज़्यादा अशख़ास उनके इस अज़्म से हम आहंग (राज़ी) न हुए फिर भी यज़ीद बिन शबीत के दो फ़रज़न्द और चार दूसरे अफ़राद वह थे जिन्हों ने उनके साथ इत्तेहादे अमल किया। चुनाँनचे उन सब ने अपनी जानों पर खेल कर मक़ामे अबतह पर जो कि मक्क–ए–मुअज़्ज़मा ही के हुदूद में था। इमाम की हमराही इख़्तियार की। उन ही चार अशख़ास में एक अदहाम बिन उमय्या भी थे जो रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में दरज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

[1]तबरी जि/6, पेज/250

(14) उमय्या बिन सअ्द बिन ज़ैद ताई

क़बील–ए–तय के बहादुर, जंग आज़मा और शहसवार थे। हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के असहाब में महसूब (शुमार) होते थे। आपके साथ जंगे सिफ़्फ़ीन में शिरकत भी की थी। और कारे नुमायाँ अन्जाम दिया था। उसके बाद उनका कूफ़े में क़याम रहा। जब इमाम हुसैन[अ0स0] के करबला में पहुँचने की ख़बर हुई तो गुफ़्तगू–ए–सुलह के दौरान में किसी उनवान से कूफ़े से करबला पहुँचे और इमाम[अ0स0] की हमराही इख़्तियार की, यहाँ तक कि रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(15) जाबिर बिन हुज्जाज तैमी

क़बील–ए तैमुल्लाह बिन सअ्लबा में से, आमिर बिन नहशल तैमी के आज़ाद कर्दा गुलाम थे। कूफ़े के बाशिन्दे और शहसवार थे। पहले मुस्लिम बिन अक़ील की हिमायत के लिए कमर बस्ता हुए थे मगर हालात के नासाज़गार साबित होने के बाद मिस्ल दूसरे बहुत से अफ़राद के वह भी अपने क़बीले में रूपोश (छुप) हो गए थे। जब इमाम के करबला में वारिद होने की इत्तेलाअ् हुई तो वह उमरे सअ्द की फ़ौज के साथ करबला पहुँचे और ख़ुफ़िया तरीक़े पर उससे अलाहिदा होकर अन्सारे इमाम हुसैन[अ0स0] में शामिल हो गए। और हमला–ए ऊला में शहीद हुए।

(16) जबलह बिन अली शैबानी

कूफ़े के बाशिन्दे, बहादुर और शुजाअ् थे। जंगे सिफ़्फ़ीन में हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के साथ जिहाद में शरीक हुए थे। हज़रत मुस्लिम बिन अक़ील[अ0स0] की नुसरत के लिए भी कमर बस्ता हुए थे मगर हालात की नासाज़गारी के बाद वह भी अपने क़बीले में रूपोश हो गए। और जब इमाम हुसैन[अ0स0] करबला में पहुँच चुके तो वह भी किसी न किसी सूरत से कूफ़े से आकर अन्सारे हुसैनी में शामिल हुए और हमल–ए–ऊला में दर्ज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

(17) जुनादा बिन कअ्ब बिन हारिस अन्सारी ख़ज़रजी

इमाम हुसैन[अ0स0] की हमराही में मक्क–ए–मुअज़्ज़मा से मुतअल्लक़ीन समेत आए थे। और हमल–ए–ऊला में जंग करके शहीद हुए।

(18) जुवैन बिन मालिक बिन क़ैस बिन सअ्लबा तैमी

क़बील–ए–बनी तैम में सुकूनत रखते थे। इसलिए उसी क़बीले की तरफ़ मन्सूब होते थे। और जब कूफ़े के तमाम क़बाएल इमाम हुसैन[अ0स0] के ख़िलाफ़

जंग करने के लिए भेजे जा रहे थे तो वह भी क़बील–ए–बनी तैम के साथ उमरे सअ्द की फ़ौज में शामिल हो कर मैदाने करबला तक पहुँचे और जब इमाम हुसैन[अ०स०] के पेश कर्दा शराएत सुलह ना मन्जूर कर दिये गए और जंग का होना क़तई क़रार पाया गया तो वह उसी क़बीले के चन्द दूसरे अफ़राद के साथ शब के वक़्त उमरे सअ्द की फ़ौज से जुदा होकर रूफ़क़ा–ए–इमाम की जानिब आ गए और हमल–ए–ऊला में दर्ज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

(19) हारिस बिन उमरउल कैस बिन आबिस कन्दी

शजाआने रोज़गार (बहादुरों) में से और आबिद (इबादत गुज़ार) व ज़ाहिद (परहेज़गार) थे। अक्सर लड़ाईयों में कारे नुमायाँ अन्जाम दे चुके थे। उनके मज़हबी एहसास और सिबातो इस्तेक़लाल (हिम्मत, साबित क़दमी) का इस वाक़्ये से अन्दाज़ा हो जाता है कि वह क़िला–ए बजर का मुहासिरा करने वालों में शामिल थे जब मुरतदीन (दीन से फिरे हुए) को इस क़िले से बाहर निकाल कर क़त्ल किया जाने लगा।

तो हारिस ने अपने हक़ीक़ी चचा पर हमला किया। उसने कहा "मैं तो तुम्हारा चचा हूँ" हारिस ने जवाब दिया कि मगर अल्लाह मेरा परवरदिगार है और उसका हुक्म मुक़द्दम है।" यह कह कर उसे क़त्ल कर डाला।

करबला में वह भी उमरे सअ्द की फ़ौज में दाख़िल हो कर पहुंचे थे लेकिन शराएते सुलह के ना मन्जूर होने के बाद उससे इलाहिदा होकर असहाबे हुसैन[अ०स०] के साथ हो गए और रोज़े आशूर हमला–ए ऊला में शहीद हुए।

(20) हारिस बिन बिनहॉन

इनके वालिद बिनहान हज़रत हमज़ा बिन अब्दुल मुत्तलिब के गुलाम व बहादुर व शहसवार थे। जंगे ओहद में हमज़ा की शहादत वाक़े हुई।

उसके दो बरस बाद बिनहान ने दुनिया से रेहलत की उसके बाद से हारिस ने जनाबे अमीर[अ०स०] की ख़िदमत में रहना इख़्तियार किया और फिर इमाम हसन[अ०स०] और इमाम हुसैन[अ०स०] की ख़िदमत में रहे। जब हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] ने मदीने से हिजरत फ़रमाई तो हारिस भी हमराह रहे और रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(21) हुबाब बिन हारिस

इब्ने शहर आशोब ने हमला–ए ऊला में उनका भी नाम दर्ज किया है। हालात बिल्कुल मालूम नहीं हुए।

(22) हुबाब बिन आमिर बिन काअ्ब तैमीः

क़बील–ए–तैमुल्लात बिन सअ्लबा में से कूफ़े के बाशिन्दे, शिय–ए–अली थे और मुस्लिम बिन अक़ील की बैयत की थी। जनाबे मुस्लिम की शहादत के बाद वह अपने क़बीले में पोशीदा हो गए। जब इमाम हुसैन[अ0स0] की कूफ़े की जानिब रवानगी की इत्तेला उनको हुई तो वह ख़ुफ़िया तौर पर कूफ़े से बाहर निकले और राह में इमाम हुसैन[अ0स0] की ख़िदमत में पहुँच कर हमराह रिकाब हुए यहाँ तक कि रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(23) हबशा बिन क़ैस नहमी

पूरा नाम व नसब हबशा बिन क़ैस बिन सलमा बिन तरीफ़ बिन अबान बिन सलमा बिन हारिसे हमदानी नहमी था। हाफ़िज़ इब्ने हज्र का बयान है कि उनके दादा सलमा बिन तरीफ़ सहाब–ए–पैग़म्बर में से थे और ख़ुद हबशा बिन क़ैस राविये हदीस थे। रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(24) हुज्जाज बिन ज़ैद सअ्दी तमीमी

क़बील–ए–बनी सअ्द बिन तैम में से बसरा के बाशिन्दे थे। इमाम हुसैन[अ0स0] ने मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा से रवानगी के मौक़े पर चन्द ख़त रूअसाए बसरा के नाम रवाना फ़रमाये थे जिन में से एक मस्ऊद बिन अम्र अज़दी के नाम था। मस्ऊद ने अपने क़बीले के तमाम अक़वाम बनी तमीम। बनी हन्ज़ला, बनी सअ्द और बनी आमिर को मुजतमा करके एक तक़रीर की जिस में उनको नुसरते इमाम हुसैन[अ0स0] पर आमादा करना चाहा। जिसके नतीजे में एक जमाअत ने नुसरते इमाम का वादा किया। मस्ऊद ने एक ख़त इमाम के नाम तहरीर किया जिस में हज़रत की तशरीफ़ आवरी इराक़ पर इज़हारे मसर्रत करते हुए यह लिखा था कि मैंने बनी तमीम और बनी सअ्द को तमामतर आपकी नुसरत पर आमादा कर लिया है और वह सब आप पर अपनी जान निसार करेंगे। यह ख़त हुज्जाज बिन ज़ैद सअ्दी के हाथ रवाना किया गया था। चुनाँनचे वह करबला में आकर इमाम की ख़िदमत में हाज़िर हुए और रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(25) हल्लास बिन अम्र अज़दी रासबी

असहाबे हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] में से थे और हज़रत के ज़मान–ए–ख़िलाफ़त में कूफ़े में पुलिस के अफ़सर की हैसियत रखते थे। वह मैदाने करबला में उमरे सअ्द की फ़ौज के साथ आये थे मगर गुफ़्तगू–ए

मुसालिहत के नाकाम होने पर मख़्फ़ी (छुप कर) तरीक़े से शब के वक़्त असहाबे हुसैन[अ0स0] में शामिल हो गए और हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(26) हन्ज़ला बिन उमर शैबानी

इब्ने शहर आशोब ने उनका भी नाम हमल–ए–ऊला के शोहदा में ज़िक्र किया है। हालात मालूम नहीं।

(27) ज़ाहिर बिन अम्र असलमी किन्दी

असहाबे रसूल[स0अ0] में से राविये हदीस थे और बैयते रिज़वान (मस्जिदे शजरा मदीने में रसूल अल्लाह[स0अ0] के हाथ पर बैयत करने वाले) के शरफ़ से बहरा अन्दोज़ (शरफ़याब) हुए थे। सुलहे हुदैबिया के बाद जंगे ख़ैबर में शरीके जिहाद भी हुए थे। शजाअत उनकी मुमताज़ सिफ़त और नुमायाँ जौहर था और अहले बैते रसूल[स0अ0] की मुहब्बत उनके लिए सरनाम–ए–एज़ाज़, जब ज़ियाद बिन अबीह मुआविया की तरफ़ से कूफ़े का गवर्नर था और अम्र बिन हुमुक़ खुज़ाई ने उसकी मुख़ालिफ़त का अलम बलन्द किया था तो ''ज़ाहिर'' भी उनके साथ थे जब मुआविया ने अम्र बिन हुमुक़ खुज़ाई की गिरफ़्तारी का हुक्म भेजा तो ''ज़ाहिर'' के नाम भी वारन्ट जारी हुआ था। मगर वह रूपोश हो गए और क़ब्ज़े में न आ सके।

सन 60 हिजरी में हज्जे बैतुल्लाहिल हराम से शरफ़याब हुए इसी सिलसिले में इमाम हुसैन[अ0स0] से मुलाक़ात हुई और वह असहाबे हुसैन[अ0स0] में शामिल हो गए।

यहाँ तक कि हज़रत की हमराही में करबला आये और रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में शहीद हुए। असहाबे अइम्मा में से मुहम्मद बिन सनान ज़ाहरी मुतवफ़्फ़ी सन 220 हिजरी जो इमाम रज़ा[अ0स0] और इमाम मुहम्मद तक़ी[अ0स0] के रूवात (रावी, रिवायत करने वाले) में से थे उन्हीं ज़ाहिर की नस्ल से थे।

(28) ज़ुहैर बिन बशरे ख़सअमी

हमल–ए ऊला के शोहदा में इनका भी शुमार है। हालात मालूम नहीं।

(29) ज़ुहैर बिन सुलैम बिन अम्र अज़दी

शबे आशूर जब लशकरे यज़ीद ने इमाम हुसैन[अ0स0] को शहीद करने का क़तई फ़ैसला कर लिया तो वह वहाँ से निकल कर असहाबे हुसैन[अ0स0] की तरफ़ आ गए और आपकी नुसरत करते हुए हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(30) सालिम मौला आमिर बिन मुस्लिमुल अबदी

अपने मालिक के साथ उसी क़ाफ़ेले मे जो यज़ीद बिन शुबैत क़ैसी के साथ बसरे से मक़ामे अबतह में पहुँचा था। इमाम हुसैन[अ0स0] की ख़िदमत में हाज़िर हुए और रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(31) सलीम

इमाम हसन[अ0स0] के बावफ़ा ग़ुलाम थे और करबला में नुसरते इमाम हुसैन[अ0स0] का हक़ अदा करते हुए हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(32) सवार बिन अबी उमैर नहमी

पूरा नाम व नसब सवार बिन मुन्अम बिन आबिस उमैर बिन नहमुल हमदानी अन–नहमी। रावियाने अहादीस में से थे। इमाम हुसैन[अ0स0] के करबला में पहुँचने के बाद गुफ़्तगूए सुलह के दौरान में करबला पहुँचे थे। रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में नुसरते हुसैन[अ0स0] में जंग का शरफ़ हासिल किया। यहाँ तक कि ज़ख़्मी हो कर गिर गए।

दुश्मन उनको गिरफ़्तार करके उमरे सअ्द के पास ले गए, उसने चाहा कि उनको क़त्ल करा दे मगर उनके हम क़बीला सिपाही मानेअ् (रूकावट) हुए और उन्हें बचा कर अपने साथ ले गए लेकिन वह ज़ख़्मी इतने हो चुके थे कि जानबर न हो सके और छेः महीने तक उन्हीं ज़ख़्मों के तकालीफ़ में मुबतिला रहने के बाद इन्तेक़ाल किया।

(33) सैफ़ बिन मालिके अबदी

क़बील–ए–अब्द क़ैस से बसरा के बाशिन्दे और उन शीअ्याने अली[अ0स0] में से थे जो मारिया बिन्ते मुनक़ज़ अबदिया के मकान पर मुजतमा हुआ करते थे। यज़ीद बिन सबीत क़ैसी के साथ नुसरते इमाम हुसैन[अ0स0] के लिए रवाना हुए और मक़ामे अबतह पर आपकी ख़िदमत में हाज़िर हुए और हमल–ए–ऊला में दर्जा–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

(34)शबीब बिन अब्दुल्लाह

हारिस बिन सरीअ् हमदानी जाबरी के ग़ुलाम, सहाबी–ए–रसूल[स0अ0] और हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के साथ जमल, सिफ़्फ़ीन और नहरवान की तीनों लड़ाईयों में शिरकत का शरफ़ हासिल किए हुए थे। कूफ़े के बाशिन्दे थे और करबला में सैफ़ बिन हारिस बिन सरीअ् और मालिक बिन अब्द बिन

सरीअ् दोनों अपने आक़ा ज़ादों की मईयत (साथ) में इमाम हुसैन[अ0स0] की ख़िदमत में पहुँचे थे रोज़े आशूरा हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(35) शबीब बिन अब्दुल्लाह नहशली

तबक़–ए–ताबेईन (सहाबिये रसूल से मुलाक़ात करने वाला) में से हज़रत अली[अ0स0] के असहाब में महसूब (शुमार) होते थे। और आपके साथ तीनों लड़ाईयों में शरीक हुए थे। फिर इमाम हसन[अ0स0] और उनके बाद इमाम हुसैन[अ0स0] के असहाब में और आपके मख़सूसीन में समझे जाते थे। जब इमाम हुसैन[अ0स0] ने मदीने को छोड़ा और सफ़रे गुरबत इख़्तियार किया तो शबीब बिन अब्दुल्लाह वहीं से आपके हमराहे रिकाब रहे। यहाँ तक कि करबला में आपके साथ हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(36) ज़रग़ामा बिन मालिक तग़लबी

इन्हों ने कूफ़े में मुस्लिम बिन अक़ील[अ0स0] की बैयत की और उनके शहीद होने के बाद वह भी रूपोश हो गए। फिर उमरे सअ्द की फ़ौज के साथ मैदाने करबला में पहुंचे और पोशीदा तरीक़े पर असहाबे हुसैन[अ0स0] से मुलहक़ हो गए। यहाँ तक कि हमल–ए–ऊला में दर्ज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

(37) आमिर बिन मुस्लिम अबदी बसरी

बसरा के बशिन्दे, उन्हीं शिअ्याने अली[अ0स0] में से थे जो मारिया बिन मुन्क़ज़ के मकान में जमा हुआ करते थे। यज़ीद इब्ने सबीत क़ैसी के साथ वह भी नुसरते इमाम के लिए रवाना हुए और मक़ामे अबतह पर आपकी ख़िदमत में पहुँचे फिर रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(38) एबाद बिन मुहाजिर बिन अबिल महाजिर जहनी

मक्के से कूफ़े के रास्ते में अरब के उन सहराई क़ाबाएल में से जिनकी तरफ़ से गुज़र होता था बहुत से लोग खुश आइन्द दुनयवी तवक़्क़ुआत (अच्छे दिनों की उम्मीदों) को पेशे नज़र रखकर उस क़ाफ़िले के साथ हो जाते थे। चुनाँनचे ''मियाह जहनिया'' नाम के चश्मों के पास से क़बील–ए–जहीना के बहुत से लोग इसी तरह आपके साथ हो गए थे। उन ही में से एबाद बिन महाजिर भी थे। जब मुस्लिम व हानी के शहीद हो जाने की ख़बर सुनने के बाद इमाम हुसैन[अ0स0] ने मन्ज़िले ज़िबाला पर लोगों को हक़ीक़ी सूरते हाल से मुत्तेला फ़रमाते हुए अन्जाम से नावाक़िफ़ अफ़राद को अपने क़ाफ़ेले से जुदा होने की हिदायत फ़रमाई और उसके नतीजे में सिवाए उन जान निसारों के जो आपके साथ मदीने से आये थे तक़रीबन सब मुन्तशिर हो गए तो एबाद

बिन महाजिर उन गिन्ती के बावफ़ा अफ़राद में से थे जिन्हों ने इमाम का साथ छोड़ना पसन्द नहीं किया और वह हज़रत के साथ रहे यहाँ तक कि वह रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में दरज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

(39) अब्दुर्रहमान बिन अब्दे रब अन्सारी ख़ज़रजी

सहाब–ए–रसूल में से हदीसे ग़दीर के रावी और शाहिद (गवाह) थे।[1]

हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ०स०] के मख़सूस शागिर्द थे। हज़रत ने खुद उनको कुरआन की तालीम दी और उनकी तरबियत भी फ़रमाई थी। वह इमाम हुसैन [अ०स०] के साथ मक्के से रवाना हुए और मैदाने करबला तक बराबर हमराहे रिकाब रहे। सुबहे आशूर इन ही से बुरैर की मिज़ाहिया गुफ़्तगू हुई थी जिसका तज़किरा पहले हो चुका है, इन्हों ने भी हमल–ए–ऊला में दर्ज–ए–शहादत हासिल किया।

(40) अब्दुर्रहमान बिन अब्दुल्लाह बिन कुदन अरहबी

तब्क़–ए–ताबेईन में से मुअज़्ज़िज़ (इज़्ज़तदार) बहादुर और जंग आज़मा थे। कूफ़े से जो दूसरा वफ़्द (गिरोह) इमाम हुसैन[अ०स०] के पास भेजा गया था जिसके साथ तक़रीबन 53/अर्ज़दाश्तें (खुतूत) इमाम की ख़िदमत में इरसाल की गई थीं जिनमें से हर एक दो तीन और चार दस्तख़तों से थी, उस वफ़्द में क़ैस बिन मुसहर सैदावी और अम्मारा बिन उबैद सलूली के साथ अब्दुर्रहमान बिन अब्दुल्लाह भी थे। उसके बाद इमाम हुसैन[अ०स०] ने मुस्लिम बिन अक़ील को कूफ़े भेजा तो अम्मारा और अब्दुर्रहमान को उनके साथ कर दिया उसके बाद अब्दुर्रहमान बिन अब्दुल्लाह किसी न किसी तरह कूफ़े से निकल कर मैदाने करबला तक पहुँचे और इमाम हुसैन[अ०स०] के असहाब में दाख़िल हो गए यहाँ तक कि हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(41) अब्दुर्रहमान बिन मसऊद

वह मसऊद बिन हज्जाज तैमी के फ़रज़न्द थे जिनका तज़किरा सिलसिल–ए–शोहदा में बाद को आयेगा। दोनों बाप बेटे उमरे सअ्द की फ़ौज के साथ आये थे और मुहर्रम की सातवीं तारीख़ इमाम की ख़िदमत में सलाम करने के क़स्द (इरादे) से हाज़िर हुए, फिर वापस नहीं गए। अब्दुर्रहमान रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

---

[1]जरीद असमाद–उस–सहाबा अल–ज़हबी पेज/277

(42) अब्दुल्लाह बिन बशर ख़सअ्मी

पूरा नाम व नसबः हस्बज़ैल था। अब्दुल्लाह बिन बशर बिन रबिया बिन अम्र बिन मनारा बिन उमैर बिन आमिर बिन रीशा बिन मालिक बिन वाहिब बिन जलीहा बिन कल्ब बिन रबिया बिन अफ़रस बिन ख़लफ़ बिन अक़्बल बिन इनमार अल ख़तई।

इनके बाप बशर बिन रबिया अपने ज़माने के मशहूर रोज़गार और मैदाने जंग के नबर्दआज़मा (जंग में आज़माये हुए) शहसवारों में से थे। कूफ़े का मशहूर एहाता जो ''जब्बान–ए–बशर'' कहलाता था उन ही के नाम से मन्सूब था। जंगे क़ादसिया के ज़ैल में उनका नाम सफ़हाते तारीख़ पर नुमायाँ है। उनके फ़रज़न्द अब्दुल्लाह सिफ़ाते शुजाअत व जुरअत व नाम आवरी में उन ही के क़दम ब–क़दम थे। मैदाने करबला में फ़ौजे उमरे सअ्द के साथ पहुँच कर खुफ़िया तरीक़े पर अन्सारे हुसैन[अ0स0] में शामिल हो गए। यहाँ तक कि हमल–ए–ऊला में दर्ज–ए–शहादत हासिल किया।

(43) अब्दुल्लाह बिन यज़ीद बिन सबीत क़ैसी

यज़ीद बिन सबीत के दस बेटे थे। चुनाँनचे उन्होंने उन दसों के सामने नुसरते हुसैन[अ0स0] का सवाल पेश किया। लेकिन उनमें से सिर्फ़ दो थे जिन्हों ने इस अहम इरादे में बाप का साथ दिया। उन ही दो में एक अब्दुल्लाह थे चुनाँनचे वह अपने बाप की हमराही मे बसरा से निकले और मक़ामे अबतह पर पहुँच कर ख़िदमते इमाम में हाज़िर हुए। रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(44) उबैदुल्लाह बिन यज़ीद बिन सबीत क़ैसी

यह यज़ीद बिन सबीत के दूसरे फ़रज़न्द थे जिन्हों ने नुसरते हुसैन[अ0स0] के तहिय्या में उनका साथ दिया और यह भी हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(45) अक़्बा बिन सल्लत जहनी

''मियाहे जेहनिया'' के आराब (रेगिस्तान) में से जो असनाए राह (बीच रास्ते) से क़ाफ़िल–ए हुसैनी के साथ हो गए थे। एक वह भी थे और मन्ज़िले ज़ुबाला में इमाम हुसैन[अ0स0] के हक़ीक़ते हाल के इज़हार पर मुशतमिल खुत्बे को सुनकर जब सिवाए ख़ास जाँ निसारों के और सब ने अपनी अपनी राह ली तो वह इमाम के साथ ही रहे यहाँ तक कि रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(46) अम्मारा बिन अबी सलामा दालानी

नाम व नसब: अम्मारा बिन अबी सलामा बिन अब्दुल्लाह बिन इमरान बिन रास बिन दालान हमदानी। हाफ़िज़ इब्ने हजर लिखते हैं कि उन्होंने रिसालत माब[स0अ0] के ज़माने का इदराक (देखा) किया था और अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के साथ जमल, सिफ़्फ़ीन और नहरवान की लड़ाईयों में शिरकत की थी करबला में इमाम हुसैन[अ0स0] के साथ हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(47) अम्मार बिन हस्सान ताई

नाम व नसब: अम्मार बिन हस्सान बिन शरीह बिन सअ्द बिन हारिसा बिन लाम बिन अम्र बिन ज़रीफ़ बिन अम्र बिन सुमामा बिन जहल बिन जज़्आन बिन सअ्द बिन तय मख़सूस व मुमताज़ शिअ्याने अली[अ0स0] में से। मशहूर बहादुर व जंग आज़मा थे। उनके बाप हस्सान बिन शरीह हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के असहाब में से थे और जंगे सिफ़्फ़ीन में आप ही की नुसरत में शहीद हुए। अम्मार इमाम हुसैन[अ0स0] के साथ मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा से आये थे। और रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में शहीद हुए। उनकी औलाद में से अब्दुल्लाह बिन अहमद बिन आमिर बिन सुलैमान बिन सालेह बिन वहब बिन अम्मार बिन हस्सान बिन शरीह ताई जलीलुल क़द्र आलिम और फ़क़ीह थे जो अपने वालिद के ज़रिये इमाम रज़ा[अ0स0] से रिवायत करते थे और किताबुल क़ज़ाया वल–अहकाम के मुसन्निफ़ थे।

(48) अम्र बिन ज़बीया बिन क़ैस बिन सअ्लबा ज़बई तैमी

बहादुर, शहसवार और जंग के मैदान में कारे नुमायाँ अन्जाम दिये हुए थे। उमरे सअ्द की फ़ौज के साथ मैदाने करबला में पहुँचे फिर अन्सारे इमाम हुसैन[अ0स0] में शामिल हो गए। और हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(49) इमरान बिन कअ्ब बिन हारिस अशजई

इनका शुमार भी हमल–ए–ऊला के शोहदा में है। हालात मालूम नहीं।

(50) क़ारिब मौलल हुसैन[अ०स०]

क़ारिब बिन अब्दुल्लाह बिन अरीक़त लैसी दुऐली। इनकी माँ फ़क़ीहा इमाम हुसैन[अ0स0] की हरम सरा में रबाब मादरे सकीना की कनीज़ थीं। और उनकी शादी अब्दुल्लाह बिन अरीक़त के साथ हुई और इस तरह क़ारिब की विलादत हुई थी वह अपनी माँ की हमराही में इमाम हुसैन[अ0स0] के साथ मदीने से मक्का और फिर वहाँ से मैदाने करबला तक पहुँचे और रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(51) क़ासित बिन ज़ुहैर बिन हारिस तग़लबी

वह और उनके दो भाई मुक़सत और करदूस हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के असहाब में से थे और आपके साथ लड़ाईयों में शरीक हुए थे। फिर इमाम हसन[अ0स0] के साथ रहे। यहाँ तक कि आपने हिजाज़ (आज का सऊदी) की तरफ़ मुराजेअत (वापस हुए) फ़रमाई। उसके बाद वह तीनों भाई कूफ़े में क़याम पज़ीर रहे। यहाँ तक कि जब इमाम[अ0स0] करबला में वारिद हुए तो वह तीनों भाई किसी न किसी तरह इमाम हुसैन[अ0स0] की ख़िदमत में पहुंचे और रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(52) क़ासिम बिन हबीब बिन अबी बशर अज़्दी

कूफ़े के शिअ्याने अली[अ0स0] में से बहादुर, दीलेर और शहसवार थे। उमरे सअ्द की फ़ौज के साथ करबला पहुँचे, फिर पोशीदा तरीक़े पर इमाम के अन्सार से मुलहक़ हो गए और रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में दरज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

(53) करदूस बिन ज़ुहैर बिन हारिस तग़लबी

वह और उनके भाई क़ासित बिन ज़ुहैर और दूसरे भाई मुक़सित तीनों असहाबे हज़रत अली[अ0स0] में से थे। और आपके साथ लड़ाईयों में शिरकत की थी। करबला में ख़ुफ़िया तरीक़े पर ख़िदमते हुसैन[अ0स0] में पहुंचे और हमल–ए–ऊला में दर्ज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

(54) कनाना बिन अतीक़ तग़लगी

कनाना बिन अतीक़ बिन मुआविया बिन जमाआ बिन क़ैस तग़लगी कूफ़ी शुजाआने रोज़गार में से आबिद व ज़ाहिद और हाफ़िज़े क़ुरआन थे। लड़ाई ठनने से पहले मैदाने करबला में ख़िदमते इमाम हुसैन[अ0स0] में पहुँचे और रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(55) मजमा बिन ज़ियाद बिन अम्र जहनी

''मियाहे जेहनिया'' (पानी का चश्मा) के आराब (सहराई) में से थे जो असनाए राह (रास्ते के दरमियान) में इमाम[अ0स0] के साथ हो गए थे और जब मन्ज़िले ज़ुबाला में इमाम के खुतबे को सुनकर सिवाए मख़सूस जान निसारों के दूसरे तमाम लोग मुतफ़र्रिक़ (अलग) हो गए तो मजमा बिन ज़ियाद इमाम[अ0स0] के हमराह ही रहे और रोज़े आशूर पहले उनका घोड़ा ज़ख़्मी हो कर पै हुआ फिर चन्द आदमियों को क़त्ल करके वह दुश्मनों में घिर गए और हमल–ए–ऊला में दर्ज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

(56) मसऊद बिन हुज्जाज तैमी

कूफ़े के बड़े मशहूर शिय–ए–अली[अ0स0] और लड़ाईयों में काम किए हुए थे। अपने फ़रज़न्द अब्दुर्रहमान बिन मसऊद के साथ उमरे सअ्द की फ़ौज में मैदाने करबला तक पहुंचे और सातवीं मुहर्रम को इमाम की ख़िदमत में सलाम करने के लिए हाज़िर हुए तो फिर वापस नहीं गए। रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(57) मुस्लिम बिन कसीर सदफ़ी अज़्दी

क़बील–ए–अज़्दशुनूह, में से ''आरज'' यानी लंग था। उन्होंने रिसालत माब[स0अ0] का इदराक (रसूल के दौर के थे) किया था। जंगे जमल में हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] की नुसरत में शरीके जंग थे कि पिंडली पर तीर पड़ा जिसका असर रहा। कूफ़े से नुसरते इमाम हुसैन[अ0स0] का तहय्या करके रवाना हुए और करबला में पहुँच कर आपसे क़दमबोस हुए। हमल–ए–ऊला में दर्ज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

(58) मुक़सित बिन ज़ुहैर बिन हारिस तग़लबी

वह और उनके दो भाई क़ासित और कुरदूस असहाबे हज़रत अली[अ0स0] में से थे और आपके साथ लड़ाईयों में शरीक हुए थे वह सब मैदाने करबला में खुफ़िया तरीक़े पर इमाम हुसैन[अ0स0] की ख़िदमत में पहुँचे और हमल–ए–ऊला में दर्ज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

(59) मुनीअ् बिन ज़ियाद

इनका भी शुमार हमल–ए–ऊला के शोहदा में है। हालात मालूम नहीं।

(60) नर्सह बिन अबी नीज़र

अबू नज़ीर नज्जाशी बादशाहे हबशा (आज का Ethopia) या किसी और मुल्के अजम के बादशाह की नस्ल से थे। बचपने में दीने इस्लाम से मुशर्रफ़ होने का शौक़ पैदा हुआ। रसूल अल्लाह की ख़िदमत में पहुँचे और मज़हबे इस्लाम इख़्तियार किया तो आँहज़रत[स0अ0] ने उनकी तरबियत फ़रमाई और आपकी वफ़ात के बाद वह हज़रत अली[अ0स0] की ख़िदमत में रहे और आपके ममलूका (मिलकियत) एक नख़लिस्तान (खुजूर का बाग़) में इस्लाह व तरबियत के काम पर मामूर हुए।

उनके फ़रज़न्द नस्र ने अपनी कमसिनी और नौजवानी का ज़माना हज़रत अलीअ0स0 और इमाम हसन[अ0स0] के साथ और बक़िया ज़िन्दगी का दौर इमाम हुसैन[अ0स0] की ख़िदमत में गुज़ारा। यहाँ तक कि सफ़रे इराक़ में आपके साथ

मदीना से मक्का और मक्का से करबला पहुँचे। हमल–ए–ऊला में पहले उनका घोड़ा काम आया फिर वह खुद दरज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

(61) नोअ्मान बिन अम्र अज़्दी

कूफ़े के बाशिन्दे, असहाबे हज़रत अली[अ0स0] में से थे और आपके साथ जंग सिफ़्फ़ीन में शरीक भी हुए थे। वह और उनके भाई हिलास बिन अम्र अज़्दी करबला में उमरे सअ्द की फ़ौज के साथ पहुँचे थे और शराएते सुलह मुस्तरद होने पर असहाबे हुसैन[अ0स0] से मुलहक़ हो गए यहाँ तक कि हमल–ए–ऊला में दर्ज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

(62) नईम बिन उजलान अन्सारी

नाम व नसबः नईम बिन उजलान बिन नोअ्मान बिन आमिर बिन ज़रीक़ अल–अन्सारी अल–ख़ज़रजी वह और उनके दो भाई नज़्र और नोअ्मान असहाबे हज़रत अली[अ0स0] में से थे और जंगे सिफ़्फ़ीन में कारे नुमायाँ अन्जाम दिये थे और तीनों शुजाआने रोज़गार और शोअ्रा (शाएर थे) में शुमार होते थे।

नोअ्मान बिन उजलान को हज़रत अली[अ0स0] ने अम्र बिन अबी सलमा मख़्ज़ूमी को माज़ूल फ़रमा के बहरैन का हाकिम मुक़र्रर किया था।

नज़्र और नोमान दोनों ने इमाम हसन[अ0स0] की ख़िलाफ़त के ज़माने में इन्तेक़ाल किया और नईम कूफ़े में मुक़ीम रहे। जब इमाम हुसैन[अ0स0] सरज़मीने इराक़ पर पहुँचे तो वह कूफ़े से किसी न किसी तरह निकल कर आपकी ख़िदमत में पहुँच गए और रोज़े आशूर हमल–ए–ऊला में शहीद हुए।

(यहाँ पर हमल–ए–ऊला के पचास शोहदा की तादाद पूरी हो गई। अब उन अफ़राद का तज़किरा किया जायेगा जो हमल–ए–ऊला के बाद से नमाज़े ज़ोहर तक शहीद हुए थे।)

ख़ैमागाहे हुसैनी पर हुजूम

जब तक हुसैनी जमाअत अपनी मुख़तसर तादाद में सही पूरी मौजूद थी। उस वक़्त तक दुश्मनों के लिए आगे बढ़ना मुमकिन न हो सका। लेकिन अब जब हमल–ए–ऊला के ज़ैल में पचास नुफ़ूस उस जमाअत के यकबारगी (एक साथ) शहीद हो गए और जितने अन्सारे हुसैन[अ0स0] बाक़ी रह भी गए उनमें से किसी के पास सवारी के लिए घोड़ा न रहा तो अब लश्करे मुख़ालिफ़ को जुरअत हुई कि वह ख़यामे हुसैनी का रूख़ करे इस मौक़े पर हुसैन[अ0स0] के असहाब की तादाद बहुत कम हो चुकी थी। मगर फिर भी उनकी शुजाअत का आलम यह था कि तारीख़ का बयान है "उन्होंने जंग की यहाँ तक कि दोपहर का वक़्त हो गया। सख़्त तरीन दुनिया की जंग जो ख़ल्क़े ख़ुदा में कभी किसी की नज़र से गुज़री हो।"

यज़ीदी लश्कर की कोशिश थी कि वह किसी तरह पसे पुश्त से पहुँच कर उन बहादुरों को घेरे में लेले मगर पुश्त की जानिब उनके ख़ैमे थे जिन्हें इमाम के हुक्म से इस तरह एक दूसरे से मुत्तसिल और तन्नाब अन्दर तन्नाब (ख़ैमे की रस्सी) कर दिया गया था कि उन्होंने एक मज़बूत दीवार और हिसार की शक्ल इख़्तियार कर ली थी। इसलिए उस तरफ़ से हमला ग़ैर मुमकिन था। उमरे सअ्द ने यह देखा तो हुक्म दिया कि तन्नाबें काट कर ख़ैमों को उनके चप व रास्त (दायें बायें) से गिरा दिया जाये ताकि पूरे तौर से मुहासरा करना मुमकिन हो सके। असहाबे हुसैन[अ0स0] ने जो यह देखा तो मुतफ़र्रिक़ तौर पर अपने अपने ख़ैमों के अन्दर दाख़िल हो कर मुन्तज़िर रहे यहाँ तक कि जब किसी ख़ैमे में कोई दाख़िल होता कि तन्नाबें काट कर उसको गिराये तो फ़ौरन वह क़त्ल कर दिया जाता और उसकी लाश बाहर फेंक दी जाती। जब उमरे सअ्द को अपनी इस तदबीर में भी नाकामी हुई तो उसने कहा कि अच्छा! किसी ख़ैमे के अन्दर जाकर गिराने की कोशिश न करो बल्कि उन सब ख़ैमों में आग लगा दो।[1]

---

[1]तबरी जि/6, पेज/250

ज़ाहिर है कि इमाम हुसैन[अ०स०] का ख़ैमा और हरम सराए इसमत आपके असहाब के मुसलसल ख़ैमों की क़तार से एलाहिदा थे दुश्मन के सिपाही जब उन ख़ैमों में आग लगाने लगे तो इमाम ने फ़रमाया कि आग लगा लेने दो इसलिए कि जब वह आग लगा देंगे और शोले भड़कने लगेंगे तो फिर भी वह इस तरफ़ से तुम पर हमला न कर सकेंगे। और जो उनका मक़सद है वह पूरा न होगा। चुनानचे असहाबे हुसैन[अ०स०] ने मुदाफ़िअत छोड़ दी और लशकर आग लगाने में कामयाब हो गया, मगर नतीजे ने ज़ाहिर कर दिया कि उमरे सअ्द ने तदबीरे जंग के लिहाज़ से ग़लती की और इमाम हुसैन[अ०स०] की राय दुश्मनों के तजुरबे में भी बिल्कुल साएब (दुरूस्त) साबित हुई यानी आग लगा देने से दुश्मन के लिए इस तरफ़ का रास्ता बन्द हो गया और उसके बाद भी मुक़ाबला सामने ही की जानिब से किया जा सका। इस तदबीर के भी नाकामयाब साबित होने पर कमीना तीनत शिम्र बरअफ़रोख़्ता (चिराग़ पा) हो गया और उसने हमला करके ख़ास ख़ैम–ए–हुसैन[अ०स०] पर नैज़ा मारते हुए कहा कि आग लाओ ताकि मैं इस ख़ैमे को उसके रहने वालों समेत जला दूँ। इस आवाज़ के सुनने से हरम सराये इसमत में एक शोर नालओ फ़रयाद का बलन्द हुआ। इमाम हुसैन[अ०स०] ने उसको ललकार कर फ़रमाया कि ''ऐ शिम्र तू आग इसलिए मंगा रहा है कि मेरे ख़ैमे को मेरे अहलो अयाल समेत जला दे। खुदा तुझे आग से जलना नसीब करे।'' लश्करे यज़ीद के दूसरे सरदारों ने भी शिम्र को मना किया और शब्स बिन रबई ने शिम्र के पास जाकर कहा ''मैंने आज तक ऐसी शर्मनाक बात नहीं सुनी जैसी तुम ज़बान से निकाल रहे हो और न उससे बदतर इक़दाम देखा जिसका तुमने इरादा किया है। तुम औरतों को ख़ौफ़ज़दा करते हो?।'' उन सबकी मुख़ालिफ़त से मरऊब होकर शिम्र अपने इरादे से बाज़ आकर ख़ैमे के दरवाज़े से हट गया।

इतनी देर में जुहैर बिन क़ैन ने दस बहादुर साथियों को साथ लेकर हमला कर दिया इतना सख़्त हमला कि शिम्र और उसके साथ वाली फ़ौज को ख़ैमों के पास से दूर कर दिया और अबू ग़ज़–ए–ज़बाबी को जो शिम्र का ख़ास आदमी था क़त्ल कर दिया। अफ़वाजे यज़ीद ने जो अपने एक सरबरआवुर्दा (ख़ास) साथी को इस हमले में क़त्ल होते देखा तो वह पूरे जोशो ख़रोश के साथ उन दसों आदमियों पर टूट पड़े और सख़्त ख़ूँरेज़ लड़ाई हुई मगर उन बहादुरों ने भी बड़ी पामर्दी से मुक़ाबला किया जिसके नतीजे में दुश्मन को शिकस्त हुई।

फिर कसरत और क़िल्लत का मुक़ाबला ही क्या? सूरत यह थी कि इस मुख़तसर जमाअत में के एक दो भी क़त्ल होते थे तो उससे नुमायाँ कमी ज़ाहिर होने लगती थी बरख़िलाफ़ अफ़वाजे यज़ीद के जो कसीर तादाद में थे इसलिए जितने भी क़त्ल होते कुछ पता न चलता था।[1]

जो असहाबे हुसैन[अ0स0] उसके बाद से दोपहर के वक़्त तक नमाज़े ज़ोहर के हंगामे से पहले शहीद हुए, उनके नाम तारीख़ में हस्बे ज़ैल मिलते हैं।

(63) बक्र बिन हैई तैमी

उमरे सअ्द की फ़ौज के साथ करबला आये थे मगर जंग छिड़ने के बाद तौफ़ीक़े इलाही दस्तगीर हुई और इमाम हुसैन[अ0स0] की तरफ़ आकर शरीके जिहाद हुए और हमल–ए–ऊला के बाद दर्जे–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

(64) अम्र बिन जुनादा बिन कअ्ब ख़ज़रजी

इनके बाप जुनादा बिन कअ्ब का तज़किरा हमल–ए–ऊला के मक़्तूलीन में हो चुका है। अम्र बिन जुनादा का वाक़ेय–ए–करबला में नौ या दस बरस का सिन था। उनकी माँ बहरिया बिन्ते मसऊद थीं जो अपने शौहर के साथ मैदाने करबला में मौजूद थीं। जब जुनादा दरज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हो चुके तो उनकी बेवा ने यतीम बच्चे को हिदायत की कि वह भी जाये और इमाम हुसैन[अ0स0] की नुसरत में जंग करे। बच्चा ख़िदमते इमाम में आया और तालिबे इजाज़त हुआ। आप ने इजाज़त देने से इन्कार किया। बच्चे ने फिर रूख़सत तलब की आपने असहाब की तरफ़ रूख़ करके फ़रमाया, अभी तो इसका बाप मारिक–ए–जंग में क़त्ल हो चुका है। अब अगर यह भी क़त्ल हो गया तो इसकी माँ के दिल पर क्या गुज़रेगी, यह सुनकर बच्चे ने कहा कि आक़ा मेरी माँ ने ही तो मुझे भेजा है और उन्होंने ही मुझे यह जंग का लिबास पहनाया है। बहरतौर इजाज़त हासिल करके बच्चा मैदान में आया और लड़कर क़त्ल हुआ। अफ़वाजे यज़ीद में के किसी बेरहम ने बच्चे का सर काट कर जमाअते हुसैनी की तरफ़ फेंक दिया। शेर दिल माँ ने बच्चे का सर उठा लिया और कहा "शाबाश! बेटा शाबाश तूने इमाम पर निसार होकर मेरा दिल ख़ुश और मेरी आँखों को ख़ुन्क (ठंडक) किया।" फिर उसने सर को फ़ौजे दुश्मन की तरफ़ फेंक दिया और ख़ुद एक गुर्ज़े आहनी लेकर दुश्मनों पर हमला आवर हुई। मगर इमाम ने उसे गवारा न किया और उसको ख़ैमे की जानिब वापस फ़रमा दिया।

---

[1]तबरी जि/6, पेज/251

ज़ोहर का हंगाम और नमाज़े जोहर का हंगाम

लश्करे यज़ीद को अब यह फ़िक्र थी कि किसी तरह मुहिम जल्द सर हो जाये इसी आलम में ज़ोहर का वक़्त हो गया। इधर अबू समामा अम्र बिन अब्दुल्लाह साएदी ने इमाम की ख़िदमत में अर्ज़ किया कि "मौला यह लोग अब आपके बिल्कुल क़रीब आ गए हैं और यह यक़ीनी है कि आप पर आँच आने से पहले मैं क़त्ल हो जाऊँगा। मैं चाहाता हूँ कि इस नमाज़ को कि जिसका वक़्त आ गया है आपके साथ पढ़ लूँ। और उसके बाद ख़ुदा की बारगाह में जाऊँ।" इमाम ने आसमान पर नज़र करते हुए फ़रमायाः "तुमने नमाज़ को याद किया। ख़ुदा तुमको नमाज़ गुज़ारों और याद रखने वालों में महसूब (शुमार) करे। हाँ यह नमाज़ का अव्वल वक़्त है।" फिर आपने फ़रमायाः "उन लोगों से कहो कि इतनी देर जंग से हाथ रोक लें कि हम नमाज़ पढ़ लें।"[1]

अल्लाह अल्लाह! रसूल अल्लाह का फ़रज़न्द जिसके घर से नमाज़ की बुनियाद क़ायम हुई वह नमाज़ की ख़्वाहिश करे और वह पूरी न की जाये बल्कि मोहलत के सवाल पर हसीन बिन तमीम सफ़ से बाहर निकले और कहे कि "तुम्हारी नमाज़ क़ुबूल नहीं है।"[2]

(65) हबीब बिन मज़ाहिर असदी

नाम व नसबः हबीब बिन मज़ाहिर बिन रूआब बिन अशतर बिन खुजूवान बिन फ़क़स बिन तरीफ़ बिन अम्र बिन क़ैस बिन हारिस बिन सअ्लबा बिन दौरान बिन असद। कुन्नियत अबुल क़ासिम अरब के मशहूर शहसवार रबीया बिन ख़ौत बिन रूआब के चचाज़ाद भाई थे। इब्ने कलबी की रिवायत के मुताबिक़ सहाबी थे। और रसूले अकरम[स0अ0] की ज़ियारत से मुशर्रफ़ हुए थे। शैख़ तूसी ने उन्हें असहाबे हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] फिर असहाबे हसन और असहाबे हुसैन[अ0स0] में दर्ज किया है।

हबीब बिन मज़ाहिर, मीसमे तम्मार और रूशैद हुजरी की तरह हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के उन सहाब–ए–बा इख़्तेसास (ख़ास लोगों में) में से थे जिन्हें आपने ख़ासतौर से उलूमे बातनी और असरार (ग़ैब की ख़बरें) की तालीम दी थी।

सबसे पहले जब मुआविया के इन्तेक़ाल की ख़बर कूफ़े में पहुँची थी और इमाम हुसैन[अ0स0] को कूफ़े की तरफ़ बुलाने का ख़याल बाज़ दिमाग़ों में पैदा

---

[1]तबरी जि/1, पेज/251

[2]तबरी जि/6, पेज/251

हुआ था तो सुलैमान बिन सुर्द ख़ुज़ाई के मकान पर शीअयाने कूफ़े का इजतेमा हुआ था। उस जलसे की रूदाद से ज़ाहिर होता है कि इस मौक़े पर हबीब बिन मज़ाहिर भी मौजूद थे। सिर्फ़ मौजूद ही नहीं थे बल्कि वह उस जमाअत में नुमायाँ और ज़िम्मेदाराना हैसियत रखते थे। चुनाँनचे जो पहला ख़त इमाम हुसैन[अ०स०] के नाम शीअयाने कूफ़े की तरफ़ से भेजा गया था उसमें सुलैमान बिन सुर्द वग़ैरह के साथ उनका नाम भी ख़ुसूसियत के साथ सब्त था और जब मुस्लिम बिन अक़ील कूफ़े में वारिद होकर मुख़तार बिन अबी उबैदा सक़फ़ी के मकान में फ़ुरोकश (ठहरे) हुए थे तो सबसे पहला इजतेमा शियों का जो हुआ था उसमें जनाबे मुस्लिम ने इमाम हुसैन[अ०स०] का ख़त पढ़कर सुनाया था उस मौक़े पर सबसे पहली तक़रीर आबिस बिन अबी शबीब शाकरी ने की थी और उसकी ताईद हबीब बिन मज़ाहिर ने की थी जिसका ख़ुलासा यह था कि हम दूसरे लोगों के मुतअल्लिक़ ज़िम्मेदारी नहीं लेते मगर जहाँ तक हमारी ज़ात का तअल्लुक़ है हर तरह इमदाद के लिए आमादा हैं।

मैदाने करबला में हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] के पास पहुँचने के बाद वह बराबर ऐसे मौक़े के मुन्तज़िर रहते थे कि दुश्मन के साथ गुफ़्तो शुनीद के ज़रिये नसीहत के फ़र्ज़ को अन्जाम दे सकें। चुनानचे जब उमर बिन सअ्द ने क़ुर्रा बिन क़ैस हन्ज़ली को इमाम हुसैन[अ०स०] के पास बसीग़–ए–मुरासिलत (ख़ामोशी से गुफ़्तगू के लिए) भेजा था और क़ुर्रा बिन क़ैस ने इमाम के पास आकर उमरे सअ्द का पैग़ाम पहुँचा कर वापस जाना चाहा था तो हबीब ने कहा था "क़ुर्रा बिन क़ैस ज़ालिम जमाअत की तरफ़ कहाँ जा रहे हो इस बुज़ुर्ग की नुसरत करो जिसके नाना की बदौलत ख़ुदा ने तुमको और हमको इस्लाम की इज़्ज़त अता की।" क़ुर्रा ने कहा था "मैं जाकर पैग़ाम का जवाब कह दूँ तो फिर इस मसले पर ग़ौर करूँगा।[1]

इस तक़रीर का असर क़ुर्रा के दिल पर ज़रूर हुआ था। चुनाँनचे बाद में वह कहा करता था कि अगर हुर जाते वक़्त अपना इरादा मुझ पर ज़ाहिर कर देते तो मैं भी उनके साथ नुसरते हुसैन[अ०स०] के लिए चला जाता।[2] इस तअस्सुफ़ (अफ़सोस) और इज़हारे रंज से ज़ाहिर है कि दिल उसका एहसास से मामूर हो चुका था और ज़मीर आमादा कर रहा था मगर उसमें क़ूव्वते इरादी इतनी न थी कि वह हुर की तरह इस ख़याल को अमली जामा

---

[1]इरशाद पेज/240
[2]इरशाद पेज/249

(हक़ीक़त में बदल देना) पहना सकता वह इसके लिए सहारे का मोहताज था और यह उसकी अमली कमज़ोरी थी कि सहारा न मिलने से उसके क़दम रुक गए।

नवीं तारीख़ की शाम को जब अफ़वाजे यज़ीद ने दफ़अतन (अचानक) जमाअते हुसैनी पर हमला कर दिया और इमाम ने अबुल फ़ज़लिल अब्बास को मक़सद दरयाफ़्त करने के लिए भेजा। और जनाबे अब्बास बीस सवारों के साथ जिनमें ज़ुहैर बिन क़ैन और हबीब बिन मज़ाहिर भी थे उनके सामने गए और पूछा कि इस बे वक़्त इक़दाम का क्या मन्शा है और जवाब मिला कि इब्ने ज़ियाद का हुक्म आया है कि या तुम से बैयत ली जाये और या जंग की जाये।

जनाबे अब्बास[अ०स०] यह कहकर कि मैं इमाम से दरयाफ़्त कर लूँ। तो आकर तुमको जवाब दूँ इमाम की ख़िदमत में वापस गए।

और दूसरे असहाब वहीं खड़े रहे तो उस वक़्फ़े को भी हबीब ने बेकार न जाने दिया। ज़ुहैर बिन क़ैन से कहा कि "उन लोगों से तुम कुछ गुफ़्तगू करो और नहीं तो मैं कुछ बातचीत करूँ।" ज़ुहैर ने कहा "नहीं आप ही गुफ़्तगू कीजिए।" उस वक़्त हबीब ने मुख़ालिफ़ मजमा को मुख़ातब करते हुए हस्बे ज़ैल तक़रीर की "सोचो तो! कितना बुरा अन्जाम होगा पेशे ख़ुदा उस जमाअत का जो उसके सामने जाएगी इस हालत में कि उसने औलादे रसूल का ख़ून बहाया हो और मुल्क के उन इबादत गुज़ारों को क़त्ल किया हो जो पिछले पहर से उठने वाले और कसरत से ज़िक्रे इलाही करने वाले हों।"

अरज़ा बिन क़ैस ने जो एक ख़फ़ीफ़ुल हरकात (दरमियानी) मसख़रा इन्सान था बात काटने के लिए पुकार कर कहा "हबीब! तुम अपनी तरफ़ हर मौक़े पर इशारा करते रहते हो कि मैं बड़ा इबादत गुज़ार हूँ।" यह बे मौक़ा मुदाख़िलत सुनकर ज़ुहैर को गुस्सा आ गया और उन्होंने कहा "अरज़ा! इसमें शक ही क्या है? बिला शुबहा हबीब का नफ़्स ऐसा है जिसका ख़ुदा ने तज़किया किया है और उसको सही रास्ते पर चलने की तौफ़ीक़ अता की है।[1]

शबे आशूर हबीब बिन मज़ाहिर ने इमाम हुसैन[अ०स०] से इजाज़त चाही कि वह जाकर क़बील–ए–बनी असद से जो अतराफ़ में मुक़ीम हैं आपकी नुसरत की ख़्वाहिश करें। चुनाँनचे इमाम ने इजाज़त दे दी और हबीब ने बनी असद के मजमे में जाकर वाज़ो नसीहत के ज़रिये उन्हें नुसरते इमाम के फ़रीज़े की

---

[1]तबरी जि/6, पेज/237

तरफ़ तवज्जो दिलाई। जिसपर सबसे पहले अब्दुल्लाह बिन बशीर असदी ने लब्बैक कही और फिर दूसरे लोग भी आमादा होकर हबीब के साथ जमाअते हुसैनी की तरफ़ रवाना हुए। मगर यह कि इस वाक़ए की ख़बर उमरे सअ्द को हो गई और उसने पाँच सौ सवार सद्दे राह होने के लिए भेज दिए जिनके मुक़ाबले की यह जमाअत ताब न लासकी और सब लोग वापस चले गए नाचार हबीब ख़िदमते इमाम में तनहा वापस पहुंचे।

सुबहे आशूरा जब इमाम हुसैन[अ०स०] ने अपना तारीख़ी ख़ुतबा इरशाद किया था और शिम्र ने इन्तेहाई बेशर्मी, बेहयाई और कमीना फ़ित्री से आपकी तक़रीर में मुदाख़िलत की और कहा कि मैं मुनाफ़िक़ हूँ और ख़ुदा की इबादत एक हर्फ़ पर करता हूँ (यानी सिर्फ़ ज़ुबानी) अगर कुछ मेरी समझ में आ रहा हो कि आप क्या कहते हैं।'' तो हबीब बिन मज़ाहिर ही थे जिन्हों ने इस गुस्ताख़ी का जवाब दिया यह कह कर ब–ख़ुदा मैं समझता हूँ कि तू ख़ुदा की सत्तर हरफ़ों की इबादत करता है (यानी तेरी इबादत मुख़लिसाना हैसियत से यकरंग नहीं बल्कि हफ़ताद (70 सत्तर) रंग है।) और मैं इस बात की भी गवाही देता हूँ कि तू सच कहता है। तेरी कुछ समझ में नहीं आता कि इमाम क्या फ़रमाते हैं क्योंकि तेरे दिल पर मोहर लग चुकी है।[1]

फिर जब इमाम ने अपनी मुख़तसर जमाअत को तरतीब दिया तो मैसरे का सरदार हबीब बिन मज़ाहिर को क़रार दिया।[2]

जब मुस्लिम बिन औसजा मजरूह (ज़ख़्मी) होकर गिरे और इमाम हुसैन[अ०स०] उनके सिरहाने तशरीफ़ ले गए तो हबीब ने जो आपके साथ साथ थे मुस्लिम को उनकी शहादत पर मुबारकबाद देने के बाद कहा कि अगर मुझे यह यक़ीन न होता कि मैं भी बहुत जल्द तुमसे आकर मिलता हूँ तो कहता कि कुछ वसीयत करो ताकि मैं उस वसीयत को पूरा करूँ और इस तरह जो तुम्हारी क़राबत और मज़हबी ख़ुसूसियत का हक़ है उसको अदा करूँ। जवाब में मुस्लिम ने इमाम हुसैन[अ०स०] की तरफ़ इशारा करते हुए कहा ''और तो कुछ नहीं वसीयत बस यह है कि इनकी नुसरत से हाथ न उठाना'' ज़ाहिर है कि उस वसीयत ने हबीब के दहकते हुए जज़्ब–ए–क़ुर्बानी के लिए हवा से कुछ कम काम न दिया होगा।

---

[1]इरशाद पेज/248

[2]इरशाद पेज/246

फिर कहाँ मुमकिन था कि हसीन बिन तमीम के उस गुस्ताख़ाना कलाम को जो उसने हुसैन[अ०स०] की जानिब से, नमाज़े ज़ोहर के लिए इलतवाए (जंग रोकने) जंग की ख़्वाहिश पर किया था वह ठंडे दिल से गवारा कर लेते? चुनाँनचे उन्होंने बेताब होकर कहा "क़ुबूल नहीं है रसूल अल्लाह के फ़रज़न्द की नमाज़ तेरे ख़याल में क़ुबूल नहीं है और तेरी नमाज़ क़ुबूल है?! हसीन ने यह सुनकर हमला कर दिया और हबीब भी मुक़ाबले पर आ गए और उन्होंने उसके घोड़े के मुँह पर तलवार मारी जिससे वह अलिफ़ (खड़ा) हो गया और हसीन ज़मीन पर गिर गया। मगर उसके साथियों ने बढ़कर उसे अपने हलक़े में ले लिया और हबीब के हाथ से बचा कर ले गए।

अब हबीब मैदाने जंग में आ ही चुके थे। ईमान का जोश और शुजाअत की उमंग। दुश्मन की जुरअत व जसारत का गुस्सा और उसके ज़िन्दा निकल जाने का रंज। चुनाँनचे वह इस मज़मून का शेअ्र पढ़ने लगेः

"मैं क़सम खाकर कहता हूँ कि हम अगर तादाद में तुम्हारे बराबर होते या तुम्हारे आधे भी होते तो तुम हमारे सामने से यक़ीनी भाग जाते। ऐ बदतरीन ख़लाएक़ हसब व नसब और अख़लाक़ के लिहाज़ से।"[1]

फिरउन्होंने दूसरे शेअ्र पढ़े जिनका मज़मून यह थाः

मैं हबीब हूँ और मेरे बाप का नाम मज़ाहिर है। मैदाने जंग और भड़कती हुई लड़ाई के हंगाम का शहसवार हूँ तुम्हारी तादाद हमसे ज़्यादा है और लड़ाई का सामान तुम्हारे पास फ़रावाँ है मगर हम अपनी बात के ज़्यादा धनी और मुशकिलात के ज़्यादा बर्दाश्त करने वाले हैं। इसके अलावा हुज्जत हमारी बाला, (यानी हमारा इमाम बलन्द) हक़ीक़त नुमायाँ, फ़राएज़ की पाबन्दी ज़्यादा और दामन साफ़ है।[2]

इन अशआर में हबीब ने असहाबे हुसैन[अ०स०] के किरदार और उन नफ़्सीयाती ख़वास (क़ुदरती खुसूसियात) को जो उनके सिबात व इस्तेक़लाल के ज़िम्मेदार थे साफ़ तौर पर बयान किया है।

हबीब ने सख़्त जंग की यहाँ तक कि एक तमीमी पहलवान ने जिसका नाम बुदैल बिन सरीम था हबीब पर हमला किया हबीब ने एक ज़र्ब शमशीर में उसका काम तमाम किया। लेकिन उसी के साथ बनी तमीम के एक दूसरे शख़्स ने उन पर नैज़े का वार कर दिया जिससे वह ज़मीन पर आ रहे। अभी

---

[1]तबरी जि/6, पेज/251

[2]तबरी जि/6, पेज/251

वह उठना ही चाहते थे कि उनके पहले के शिकस्त ख़ुर्दा हरीफ़ हसीन बिन तमीम ने उनके सर पर तलवार लगाई जिससे वह बेजान होकर गिर गए वह तमीमी जिसके नैज़े के वार ने हबीब को ज़मीन पर गिराया था उनका सर काटने के लिए क़रीब आया तो हसीन ने कहा कि ''मैं उनके क़त्ल में शरीक हूँ।'' तमीमी ने कहा ''नहीं, काम मैंने तमाम किया है। आख़िर हसीन ने कहा कि ''मुझे इतना कर लेने दो कि मैं उनका सर अपने घोड़े की गर्दन में बाँध कर एक दफ़ा लश्कर में गर्दिश कर लूँ ताकि लोग देख लें कि मैंने उनके क़त्ल में शिरकत की है। फिर तुम उसको ले लेना और इब्ने ज़ियाद के पास ले जाना, वहाँ से जो इनआम मिलेगा उसमें मैं हिस्सा नहीं लूँगा।'' पहले तमीमी ने इन्कार किया मगर लोगों के कहने सुनने से राज़ी हो गया। इस तरह गोया उस पहली शिकस्त की ख़िफ़्फ़त मिटाई जो उसे हबीब के मुक़ाबले में हासिल हो चुकी थी।

हबीब की शहादत का इमाम हुसैन[अ0स0] पर ख़ास असर हुआ।[1]

हुर की श हादत

हुर बिन यज़ीद रियाही ने जिनके हालात में पहले दर्ज हो चुका है कि वह हमल–ए–ऊला में अपने घोड़े के पै होने के बाद प्यादा हो चुके थे और उसके पहले कई मर्तबा लड़ भी चुके थे। अब हबीब की शहादत के बाद और मज़बूत इरादा कर लिया कि वह शरफ़े शहादत को हासिल करके रहेंगे। चुनाँनचे उन्होंने मैंदान में निकल कर यह रजज़ पढ़ना शुरू किया। ''मैं क़सम खाता हूँ कि क़त्ल न हूँगा जब तक दुश्मन को क़त्ल न कर लूँ। और मारा न जाऊँगा। मगर पेश क़दमी की हालत में। मैं आज तलवारें लगाऊँगा फ़ैसला कुन तलवारें। न मेरे क़दम पीछे हटेंगे और न कमज़ोरी का इज़हार होगा।'' कभी कहते थे:

''मैं शमशीर ज़नी करूँगा उस बेहतरीन ख़लाएक़ की तरफ़ से जिसके क़याम ने सरज़मीने हरम को इज़्ज़त बख़्शी।'' मालूम नहीं इमाम का इशारा था

---

[1]तबरी जि/6, पेज/252, जब शहादते इमाम हुसैन[अ0स0] के बाद फ़ौज वाले कूफ़े वापस हुए तो हबीब का सर उनके तमीमी क़ातिल ने लेकर अपने घोड़े की गर्दन में आवेज़ाँ, (लटकाया) कर लिया। और इस तरह इब्ने ज़ियाद के महल की तरफ़ चला। रास्ते में हबीब के फ़रज़न्द क़ासिम की नज़र उसपर पड़ी तो वह उस शख़्स के साथ हो लिए और उससे मिन्नत समाजत के साथ कहा कि यह मेरे बाप का सर है मुझे दे दो कि मैं दफ़न कर दूँ। उसने इन्कार किया और कहा यह क्योंकर मुमकिन हो सकता है। मुझे तो अमीर इब्ने ज़ियाद से इनआम लेना है। बच्चा बेबसी के साथ रोकर रह गया और वक़्त का मुन्तज़िर हो गया। मुसअब बिन ज़ुहैर के अहदे हुकूमत में जब बाजमीरा (मुक़ाम) पर फ़ौज कशी हुई है तो यह तमीमी ज़ालिम भी फ़ौज में था। उस दौरान में एक दिन क़ासिम बिन हबीब ने मौक़ा पाकर उसे क़त्ल कर दिया। 2 (तबरी जि/6, पेज/252

या ख़ुद अपनी ख़्वाहिश से ज़ुहैर बिन क़ैन ने हुर के साथ मिलकर जिहाद शुरू किया। हालत यह थी कि जब एक घिर जाता था तो दूसरा बढ़कर उसको छुड़ाने की कोशिश करता था। थोड़ी देर यही सूरत क़ायम रही लेकिन उसके बाद प्यादों की फ़ौज ने हुर को सख़्ती से घेर लिया।[1] और ज़ुहैर की मुदाफ़िअत नाकाम रही। बहुत से लोग टूट पड़े और अय्यूब बिन मसरह के साथ एक और शख़्स ने कूफ़े के शहसवारों में से मिलकर हुर को शहीद किया।[2] इमाम ने अपने इस नासिर की यह क़द्र की कि जब उसकी लाश मैदान से उठाकर लाई गई और हज़रत के सामने रखी गई तो आप ख़ाको खून हुर के चेहरे से साफ़ करते जाते थे और फ़रमाते थे तुम बेशक हुर (ब–मानी आज़ाद) हो। तुम्हारे वालिदैन ने तुम्हारा नाम हुर बहुत ठीक रखा था। तुम दुनिया में भी हुर हो और आख़िरत में भी हुर।'' मतलब यह था कि इन्सान की हुर्रियत व शराफ़त का जौहर उसके अफ़आल ही से नुमायाँ होता है। दुनयावी ख़्वाहिशों की क़ैदो बन्द में गिरफ़्तार और हवा व हवस में असीर होकर हक़ व नाहक़ के इम्तियाज़ को मिटा देने वाला हरगिज़ हुर्रियत ज़मीर और शराफ़ते नफ़्स के जौहर का मालिक नहीं हो सकता। यक़ीनन हुर ने तमाम दुनयावी तवक़्क़ुआत (उम्मीदों) को ठुकरा कर हक़ के रास्ते पर क़दम रखा तो वह हुर साबित हुए और हुर्रियत के अस्ल जौहर को उन्होंने अपने अमल से नुमाया कर दिया।

(66) अबू सुमामा साएदी

नाम व नसबः अम्र बिन अब्दुल्लाह कअ़ब अस–साएद बिन शरजील बिन शराहील बिन अम्र बिन हशम बिन हाशिद बिन जशम बिन हैज़ून बिन औफ़ बिन हमदान अल हमदानी अस–साएदी। अबू सुमामा उनकी कुन्नियत थी। वह अरब के शहसवारों में से और शिइय्याने अली[अ0स0] के मुमताज़ अफ़राद में से थे।[3] हज़रत अली[अ0स0] की सोहबत से शरफ़याब हुए थे और आपके साथ तमाम लड़ाईयों में शरीक हुए थे। आपके बाद इमाम हसन[अ0स0] की सोहबत इख़्तियार की थी मगर हसन[अ0स0] की मदीने की रवानगी के बाद उन्होंने कूफ़े ही में क़याम बाक़ी रखा।

---

[1]तबरी जि/6, पेज/252

[2]तबरी जि/6, पेज/204, इरशाद पेज/215

[3]तबरी जि/6, पेज/204, इरशाद पेज/215

जब मुस्लिम बिन अक़ील इमाम हुसैन[अ०स०] के नुमाइन्दे की हैसियत से कूफ़े आये तो अबू सुमामा ने गर्म जोशी के साथ उनकी ताईद की और जब कूफ़े पर इब्ने ज़ियाद का तसल्लुत हुआ और जनाबे मुस्लिम को ख़ूँरेज़ी के आसार नज़र आये तो उन्होंने अबू सुमामा को यह ख़िदमत सिपुर्द की कि वह ज़रे इआनत (जमा की हुई रक़म) अपने पास जमा किया करें और अस्लेह–ए–जंग (हथियार) ख़रीदें इसलिए कि वह इस अम्र में बड़ी वाक़फ़ियत रखते थे।

जनाबे मुस्लिम की शहादत के बाद अबू सुमामा मख़्फ़ी (पोशीदा) तौर से कूफ़े से निकलकर नाफ़े बिन हिलाल के साथ इराक़ के रास्ते में जमाअते हुसैनी से मुलहक़ हुए।

उनकी वफ़ादारी और फ़िदाकारी का यह यादगार वाक़ेया था कि जब उमर बिन सअ्द ने कसीर बिन अब्दुल्लाह को पैग़ाम देकर इमाम हुसैन[अ०स०] के पास भेजा तो अबू सुमामा ने उससे कहा कि अपनी तलवार बाहर रख दो जब वह इस पर तैयार होते दिखाई नहीं दिया तो उन्होंने कहा कि अच्छा मैं तुम्हारी तलवार के क़ब्ज़े पर हाथ रखे रहूँगा। चूँकि उसने यह भी मनजूर न किया। इसलिए उसे वापस जाना पड़ा और उमरे सअ्द को दूसरा क़ासिद भेजना पड़ा। जिसने पैग़ाम रसानी के फ़र्ज़ को अन्जाम दिया।

ज़ोहर की नमाज़ का वक़्त आने पर उनकी फ़र्ज़ शनासी का बेहतरीन नमूना था कि उस सख़्त मौक़े पर भी उनके दिल में यह ख़्वाहिश जागुज़ीं थी कि मैं नमाज़े जमाअत इमाम की इक़तेदा में पढ़ लूँ फिर ख़ुदा की बारगाह में जाऊँ। इमाम हुसैन[अ०स०] इस पर इतना ख़ुश हुए कि आपने उनको दुआ दी। फ़रमाया कि तुमने इस वक़्त नमाज़ को याद किया। ख़ुदा तुमको नमाज़ गुज़ारों में महसूब (शुमार) करे।''

उसके बाद इमाम ने असहाब से फ़रमाया कि उन लोगों से कहो कि इतनी देर जंग से हाथ रोक लें कि हम नमाज़ पढ़ लें। इसी इलतवा के सवाल पर हंगामा हो गया था। जिसमें हबीब बिन मज़ाहिर और हुर दरज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए। जैसाकि तारीख़ से पता चलता है यह सोच कर निहायत तकलीफ़ होती है कि अबू सुमामा की यह तमन्ना कि वह नमाज़े ज़ोहर इमाम की इक़तेदा में अदा कर लें पूरी नहीं हुई बल्कि इसी हंगामे में अपने क़बीले के एक शख़्स के हाथ से जो फ़ौजे यज़ीद में था वह शहीद हुए।

नमाज़े ज़ोहर

जंग मुलतवी नहीं हुई थी। ऐसे मौक़े के लिए शरअ् (शरीअत) ने मख़सूस हुक्म ''नमाज़े ख़ौफ़'' का दिया है जिसके मानी यह हैं कि फ़ौज के दो हिस्से हो जायें। एक हिस्सा दुश्मन से मुक़ाबला करे और दूसरा हिस्सा नमाज़ में शरीक हो। वह एक रकअ्त इमाम के साथ पढ़े और बाक़ी नमाज़ तख़्फ़ीफ़ के साथ फ़ुरादा पढ़कर तमाम करे और जब यह नमाज़ ख़त्म करके जाए और दुश्मन के सामने खड़ा हो जाए तो वह पहला हिस्सा फ़ौज का मैदाने जंग से आकर नमाज़ में शरीक हो, मगर यह तो उस वक़्त हो सकता है जब फ़ौज की इतनी तादाद हो कि उसके ऐसे दो हिस्से हो सकते हों कि उनमें का एक दुश्मन के साथ इतनी देर मुक़ावमत (दिफ़ाअ्) कर सके कि दूसरा हिस्सा वापस आये मगर यहाँ तो जमाअते हुसैनी की मजमूई तादाद भी अफ़वाजे मुख़ालिफ़ की कसरत को देखते हुए गोया कि न होने के बराबर थी मगर इमाम ने उनकी शुजाअत पर एतेमादे कामिल रखते हुए ज़ुहैर बिन क़ैन और सईद बिन अब्दुल्लाह हनफ़ी से फ़रमाया कि तुम दोनो मेरे सामने खड़े हो जाओ कि मैं नमाज़े ज़ोहर पढ़ लूँ। चुनाँनचे यह दोनों जाँ निसार असहाब की तक़रीबन निस्फ़ (आधी) जमाअत के साथ आगे बढ़े और अपने इमाम के सीना सिपर होकर खड़े हो गए यहाँ तक कि हज़रत ने नमाज़े ख़ौफ़ अदा की।[1]

(67) सईद बिन अब्दुल्लाह हनफ़ी

कूफ़े के मुअज़्ज़ि शिअयाने अली[अ०स०] में से थे और शुजाअत व इबादत की सिफ़त से मौसूफ़ थे। अहले कूफ़ा के जो दावती ख़ुतूत इमाम के पास मक्के भेजे गए थे उनमें के सबसे आख़री ख़त को लेकर आपकी ख़िदमत में पहुँचने वाले हानी बिन हानी शबीई और सईद बिन अब्दुल्लाह हनफ़ी थे।[2] हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] ने उन ख़ुतूत का जवाब भी उन्हीं दोनों के सिपुर्द किया था। चुनाँनचे अपने ख़त में उनके नामों का हवाला भी दिया था। इस तरह कि ''हानी और सईद मेरे पास तुम्हारा ख़त लेकर आए और यह दोनों सबसे आख़री तुम्हारे नुमाइन्दे थे जो मेरे पास पहुँचे।'' उसके बाद आपने तहरीर फ़रमाया था कि ''मैं तुम्हारी जानिब अपने चचाज़ाद भाई और मोअ्तमद (भरोसे

---

[1] तबरी जि/6, पेज/252, इरशाद पेज/252

[2] इरशाद, पेज/209

मन्द) अज़ीज़ मुस्लिम बिन अक़ील को भेजता हूँ।'' यह दोनों उस ख़त को लेकर हज़रत मुस्लिम के आगे रवाना हो गए।[1]

जब मुस्लिम बिन अक़ील कूफ़े में वारिद होकर मुख़तार के मकान में फ़रोकश (ठहरे) हुए और कूफ़े वाले आपके पास जमा हुए थे और आपने इमाम हुसैन[अ0स0] का ख़त पढ़कर सुनाया था तो आबिस बिन अबी शबीब शाकरी और हबीब बिन मज़ाहिर के बाद सईद बिन अब्दुल्लाह हनफ़ी खड़े हुए थे और उन्होंने भी नुसरत व वफ़ादारी का अहद किया था।

शबे आशूर जब इमाम हुसैन[अ0स0] ने अपना तारीख़ी ख़ुतबा इरशाद किया था कि मैं अपनी बैयत से तुम्हें आज़ाद करता हूँ। तुम्हारा जहाँ जी चाहे चले जाओ तो असहाब में से मुस्लिम बिन औसजा के बाद सईद खड़े हो गए थे। और उन्होंने यह जोशो वलवले से भरे हुए अलफ़ाज़ कहे थे कि ''ख़ुदा की क़सम हम आपका साथ हरगिज़ नहीं छोड़ेंगे। ब–ख़ुदा अगर मैं क़त्ल किया जाऊँ, फिर ज़िन्दा किया जाऊँ, फिर जीते जी जला दिया जाऊँ फिर मेरी ख़ाक को हवा में मुन्तशिर की जाए और मेरे साथ सत्तर मर्तबा ऐसा ही सुलूक हो तो भी मैं आपसे जुदा न हूँगा। यहाँ तक कि आख़री मर्तबा भी मौत मुझे आप ही के क़दमों पर आए।''

सईद के लिए अपनी वफ़ादारी व जाँनिसारी के दावों के पूरा कर दिखाने का अब मौक़ा आ गया कि जब इमाम हुसैन[अ0स0] नमाज़े ज़ोहर में मसरूफ़ थे और आपने सईद और ज़ुहैर बिन क़ैन को ब–तौरे मुहाफ़िज़ अपने सामने खड़ा किया था। सईद ने यह सूरत इख़्तियार की कि वह ख़ास हज़रत के सामने खड़े थे और जो तीर आपकी तरफ़ आने लगता था उसे बढ़कर अपने ऊपर रोकते थे, यहाँ तक कि ज़ख़्मों की कसरत से ज़मीन पर गिर कर जाँ बहक़ तस्लीम हुए।[2] इस हालत में कि तेरह (13) तीर उनके जिस्म में पैवस्त थे।

(68) ज़ुहैर बिन क़ैन बिन कैस बिजली

अशराफ़े अरब में से, कूफ़े के बाशिन्दे, बहादुर थे और मुतअद्दिद (बहुत सी) लड़ाईयों में शरीक हो चुके थे। जमल और सिफ़्फ़ीन की लड़ाईयों के बाद से मुसलमान ''उसमानी'' और ''अलवी'' नाम की दो जमाअतों में तक़सीम हो चुके थे। जो लोग मुआविया के तरफ़दार थे उनको ''उसमानी'' कहा जाता था और जो हज़रत अली[अ0स0] की तरफ़ थे वह ''अलवी'' कहलाते थे। ज़ुहैर आम

---

[1] इरशाद, पेज/210

[2] तबरी जि/6, पेज/252

तौर पर ''उसमानी'' जमाअत से मुतअल्लिक़ समझे जाते थे और ब–ज़ाहिर वह अहलेबैते नबवी के साथ कोई ख़ास तअल्लुक़ न रखते थे।

ज़ुहैर सन 60 हिजरी में अपने अहलो अयाल के साथ मनासिके हज बजा लाने के बाद कूफ़े की सिम्त वापस जा रहे थे कि इमाम हुसैन[अ0स0] का साथ हो गया। अगरचे ज़ुहैर ब–ज़ाहिर इमाम हुसैन[अ0स0] के साथ कोई ख़ास अक़ीदत न रखते थे ताहम ऐसा मालूम होता है कि वह आपकी ख़ानदानी वजाहत से मरऊब ज़रूर थे यानी उन्हें यह एहतेमाल (ख़याल) था कि अगर हुसैन[अ0स0] मुझको नुसरत की दावत देंगे तो मेरे लिए रद करना उसका मुमकिन न होगा। उसी का नतीजा था कि वह हुसैनी क़ाफ़िले से दूर दूर रहते थे। मगर इमाम हुसैन[अ0स0] उनकी फ़ित्री सलाहियतों से वाक़िफ़ थे इसलिए मन्ज़िले ज़रूद पर इमाम ने ज़ुहैर को बुला भेजा जिसके बाद से ज़ुहैर बिल्कुल हुसैन[अ0स0] के साथ थे।[1]

ज़ूहसम के मक़ाम पर जब हुर का लश्कर हुसैनी क़ाफ़िले के सद्दे राह (रूकावट) होने की ग़रज़ से आ चुका था तो इमाम ने अपने असहाब को मुख़ातब करके जो खुतबा इरशाद किया था उसके जवाब में ज़ुहैर ने वालिहाना (जोश) अन्दाज़ से फ़िदाकाराना जज़बात का इज़हार किया था।

उसके बाद जब हुर ने इमाम को करबला पहुंच कर रोकना चाहा था और नहर के क़रीब ख़ैमे बरपा करने देने से भी इन्कार किया था तो ज़ुहैर ने कहा था कि हमें इतनी फ़ौज से जंग कर लेने दीजिए। इसलिए कि इसके बाद इतना लशकर आएगा कि उससे मुक़ाबला करने की हम में ताक़त न होगी। उसके जवाब में इमाम ने फ़रमाया था कि मैं जंग में इबतेदा नहीं करना चाहता।[2]

फिर नवीं तारीख़ की शाम को अफ़वाजे यज़ीद के ग़ैर मुतवक़्क़ा (अचानक) हमले के मौक़े पर जब अबुल फ़ज़लिल अब्बास[अ0स0] बाद इस्तिफ़सारे हाल (पूछने के लिए) इमाम से सूरते हाल बयान करने गए।[3]

हबीब बिन मज़ाहिर ने अफ़वाजे मुख़ालिफ़ को वाज़ो पन्द शुरू किया था और अज़रह बिन क़ैस ने बद–तहज़ीबी के साथ दौराने कलाम में मुदाख़िलत की थी तो ज़ुहैर ने उसका जवाब दिया था कि बेशक हबीब के नफ़्स का खुदा

---

[1]इस वाक़ेये की तफ़सील पहले बयान हो चुकी है

[2]तफ़सील साबिक़ में बयान हो चुकी है

[3]तबरी जि/6, पेज/237

ने तज़किया किया है और उसकी रहनुमाई की है। ऐ अज़रा मैं तुमको नसीहत करता हूँ और अल्लाह का वासता देता हूँ कि तुम उस जमाअत के साथ शरीक न हो जो गुमराही की हिमायत कर रही है। और पाक नुफ़ूस को क़त्ल करती है। ज़ुहैर की यह आवाज़ तअज्जुब के साथ सुनी गई थी और अज़रा ने उन्हें पहचान कर कहा था कि ''ज़ुहैर तुम इस घराने के शिया नहीं थे। तुम तो उसमानी गिरोह में से थे।'' और ज़ुहैर ने कहा था ''कि इस वक़्त मेरे यहाँ खड़े होने से तो तुमको समझ ही लेना चाहिए कि मैं शियाए अली[अ0स0] हूँ। ख़ुदा की क़सम मैंने न हुसैन[अ0स0] को कभी ख़त लिखा था न कोई क़ासिद भेजा था और न नुसरत का वादा किया था लेकिन रास्ते में इत्तेफ़ाक़ से मेरा और उनका साथ हो गया। जब मैंने उन्हें देखा तो रसूल अल्लाह[स0अ0] याद आ गए और उनकी ख़ानदानी ख़ुसूसियत का मुझे ख़याल आ गया और मुझे एहसास हुआ कि हक़ीक़तन वह दुश्मनों के ज़ुल्म व तअद्दी (सख़्ती) में मुबतिला हैं। बस मैंने तय कर लिया कि मुझे उनकी मदद करना चाहिए और उनकी जमाअत में दाख़िल होकर अपनी जान उन पर फ़िदा करना चाहिए, ख़ुदा व रसूल के उस हक़ को अदा करने के लिए, जिसे तुम लोगों ने ज़ाया व बरबाद कर दिया है।[1]

फिर शबे आशूर जब इमाम हुसैन[अ0स0] ने असहाब को जमा किया था और उन्हें अपनी बैयत की ज़िम्मेदारियों से सुबुकदोश करने का एलान किया था तो असहाब में से मुस्लिम बिन औसजा और सईद बिन अब्दुल्लाह के बाद ज़ुहैर ने भी तक़रीर की थी और कहा था ''ब–ख़ुदा मैं पसन्द करता हूँ कि एक दफ़ा क़त्ल हूँ, फिर ज़िन्दा हूँ फिर क़त्ल हूँ। यूँ ही हज़ार दफ़ा हो लेकिन आप और नीज़ आपके ख़ानदान के यह जवान क़त्ल होने से महफ़ूज़ रह जायें।[2]

सुबहे आशूर जब इमाम हुसैन[अ0स0] ने अपनी मुख़तसर फ़ौज को तरतीब दिया था तो ज़ुहैर बिन क़ैन को मैमना का अफ़सर मुक़र्रर किया था और ज़ुहैर ने मैदान में निकल कर फ़ौजे मुख़ालिफ़ के सामने एक मारिका आरा तक़रीर भी की थी फिर जब लड़ाई शुरू हो गई थी और अफ़वाजे मुख़ालिफ़ के सुफ़ूफ़ (सफ़ की जमा) में से यसार और सालिम मैदाने जंग में आए और अब्दुल्लाह बिन उमैरे कलबी मुक़ाबले के लिए निकले थे तो उन दोनों ने कहा था कि ''हम तुमको नहीं पहचानते। हमारे मुक़ाबले के लिए ज़ुहैर बिन क़ैन या हबीब

---

[1]तबरी जि/6, पेज/237

[2]इरशाद, पेज/244

बिन मज़ाहिर या बुरैर बिन ख़ुज़ैर को आना चाहिए।'' इस वाक़ये से ज़ाहिर हो जाता है कि ज़ुहैर फ़ौजे हुसैनी के उन नुमायाँ अफ़राद में से थे जो दुश्मनों के नज़दीक मुमताज़ हैसियत के मालिक समझे जाते थे।

उनकी शुजाअत के कारनामे सुबहे आशूर से हंगामे ज़ोहर तक मुतअद्दिद बार ज़ाहिर हो चुके थे। चुनाँनचे ज़ोहर के पहले जब शिम्र ने मख़सूस ख़ैम–ए–हुसैनी पर हमला किया और अपना नैज़ा ख़ैमे पर मार कर कहा था कि ''आग लाओ मैं इस ख़ैमे को उसके रहने वालों समेत जला दूँ तो ज़ुहैर ने अपने दस बाहदुर साथियों के साथ हमला करके उसकी फ़ौज को पसपा कर दिया।[1] फिर जब हबीब शहीद हो चुके और हुर मैदाने जंग में आए तो ज़ुहैर ने हुर के साथ मिलकर जंग की उसके बाद इमाम हुसैन[अ0स0] ने सईद बिन अब्दुल्लाह और ज़ुहैर को मामूर किया कि तुम मेरी हिफ़ाज़त करो यहाँ तक कि मैं नमाज़े ज़ोहर अदा कर लूँ। चुनाँनचे सईद बिन अब्दुल्लाह नमाज़ तमाम होते होते इतने ज़ख़्मी हो गए कि वह जानबर न हो सके। और ज़ुहैर के भी दस्तो बाज़ू जवाब दे चुके थे फिर भी नमाज़े ज़ोहर के बाद जब दुश्मन बहुत क़रीब आ गए थे तो ज़ुहैर बिन क़ैन ने अपनी आख़री जंग की। उस वक़्त वह बड़े जोश के साथ कह रहे थे:

''मैं ज़ुहैर हूँ और क़ैन का फ़रज़न्द हूँ। मैं अपनी तलवार से दुश्मनों को हुसैन[अ0स0] के पास से दूर करूँगा।'' यूँ ही थोड़ी देर तक वह शमशीर ज़नी करते रहे। आख़िर कसीर बिन अब्दुल्लाह शअ्बी और महाजिर बिन औस दोनों ने एक साथ उन पर हमला किया और उन्हीं के हाथ से वह दरज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।[2]

(69) सलमान बिन मज़ारिब बिन क़ैस अल–बिजली

ज़ुहैन बिन क़ैन के चचाज़ाद भाई थे, ज़ुहैर बिन क़ैन के साथ सन 60 हिजरी में हज को गए थे। वापसी में जब ज़ुहैर इमाम की नुसरत के ख़याल से आपके साथ हो लिए तो सलमान ने भी उनका साथ दिया। रोज़े आशूर ज़ोहर के बाद शहीद हुए।

(70) अम्र बिन क़र्ज़ा बिन कअ्ब अन्सारी

नाम व नसब: अम्र बिन क़र्ज़ा बिन कअ्ब बिन अम्र बिन आएज़ बिन ज़ैद बिन मनात बिन सअ्लबा बिन कअ्ब बिन अल–ख़ज़रज अन्सारी। उनके

---

[1]इरशाद, पेज/252

[2]तबरी जि/6, पेज/252–253

वालिद क़र्ज़ा बिन कअ्ब असहाबे रसूल अल्लाह[स0अ0] में से थे। जंगे ओहद और उसके बाद की लड़ाईयों में शरीक हुए थे।

सन 23 हिजरी में ख़लीफ़–ए–दोम के ज़माने में ''रिया'' उनके हाथों पर फ़तह हुआ था। और हज़रत अली[अ0स0] ने अपनी ख़िलाफ़त के ज़माने में उनको कूफ़े का हाकिम मुक़र्रर किया था। फिर जब आप जंगे सिफ़्फ़ीन के लिए जाने लगे थे तो उनको अपने साथ ले गए थे और कूफ़े की हुकूमत अबू मसऊद बदरी के सिपुर्द की थी। क़र्ज़ा सब लड़ाईयों में हज़रत अली[अ0स0] के साथ रहे और आप ही के ज़मान–ए–ख़िलाफ़त में कूफ़े में उनका इन्तेक़ाल हुआ और आप ही ने उनकी नमाज़े जनाज़ा पढ़ाई। एक क़ौल यह है कि मुआविया के इबतेदाई ज़माने में जब मुग़ीरा बिन शअ्बा कूफ़े का हाकिम था, उन्होंने इन्तेक़ाल किया।

उनके दो फ़रज़न्द थे अम्र और अली। करबला में अम्र इमाम हुसैन[अ0स0] की तरफ़ थे। ग़ालिबन बड़े यही थे। इसलिए कि उनके वालिद क़र्ज़ा बिन कअ्ब की कुन्नियत (बेटे के नाम से बाप को पुकारना कुन्नियत कहलाता है जैसे इमाम हुसैन[अ0स0] अबू अब्दिल्लाह) उन ही के नाम पर अबू अम्र थी और उनका छोटा भाई अली लश्करे यज़ीद में था।

अम्र बिन क़र्ज़ा कूफ़े ही में रहते थे। वह इमाम की ख़िदमत में मैदाने करबला में पहुँचे थे मुहर्रम की इबतेदाई तारीख़ों में जब जंग होने का क़तई फ़ैसला न हुआ था। इमाम ने उनको उमरे सअ्द के पास यह पैग़ाम देकर भेजा था कि तुम मुझसे शब के वक़्त दोनों लश्करों के दरमियान मुलाक़ात करो।''

रोज़े आशूर नमाज़े ज़ोहर के बाद जब तमाम असहाब में जज़्ब–ए–फ़िदाकारी तेज़ हो गया था और शम्ए इमाम के परवाने जाँनिसारी में एक दूसरे पर सबक़त कर रहे थे अम्र बिन क़र्ज़ा ने जंग करना शुरू की। वह इस मज़मून के शेअ्र पढ़ रहे थे।

''तमाम अन्सार की जमाअत जानती है कि मैं ज़िम्मेदारी के हुदूद की हिफ़ाज़त करूँगा। ऐसे जवाँ मर्द इन्सान की तरह शमशीर ज़नी करते हुए जो पीछे हटने वाला न हो। हुसैन[अ0स0] पर मेरी जान और मेरा घर बार सब फ़िदा हो।''

कुछ देर तलवार चलाने के बाद फिर अम्र इमाम के सामने आकर खड़े हो गए जो तीर आता उसे अपने ऊपर रोकते और जो वार होता ख़ुद सिपर बन

जाते। आख़िर ज़ख़्मों से चूर हो गए और इमाम से मुख़ातब होकर कहा "क्यों! फ़रज़न्दे रसूल मैंने फ़र्ज़ को अदा किया।" आपने फ़रमायाः "हाँ तुम जन्नत में मेरे आगे जाओगे, रसूले ख़ुदा[स0अ0] को मेरा सलाम पहुंचा देना। और कहना कि मैं भी अन्क़रीब आता हूँ।" बहादुर जाँबाज़ ज़ख़्मों की कसरत से ज़मीन पर गिरा और जाँ बहक़ तस्लीम हुआ।

उनका भाई अली बिन क़र्ज़ा जो फ़ौजे उमरे सअ्द में था सफ़ से बाहर निकला और इमाम को नाशाइस्ता अलफ़ाज़ से मुख़ातब करते हुए कहा कि तुमने मेरे भाई को गुमराह किया और वरग़ला कर क़त्ल करा दिया।" इमाम ने फ़रमायाः "ख़ुदा ने तेरे भाई को गुमराह नहीं किया बल्कि उसकी हिदायत की और गुमराही में तुझे छोड़ दिया है।" उसने कहा "ख़ुदा मुझे ग़ारत करे, अगर मैं तुम्हें क़त्ल न करूँ या इस कोशिश में ख़ुद हलाक न हो जाऊँ। यह कह कर उसने हमला किया। नाफ़ेअ् बिन हिलाल ने आगे बढ़कर उस पर नैज़े का वार किया जिससे वह गिर गया।[1]

(71) नाफ़ेअ् बिन हिलाले जमली

नाम व नसबः नाफ़ेअ् बिन हिलाल बिन नाफ़ेअ् बिन हम्बल बिन सअ्दुल अशीरा बिन मुज़हज अपने क़बीले के सरदार और बहादुर शख़्स थे। हाफ़िज़े क़ुरआन भी थे। अमीरूल मोमिनीन हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के असहाब में से और अहादीस के हामिल (हदीसें हिफ़्ज़ थीं) थे आपके साथ जमल, सिफ़्फ़ीन और नहरवान की लड़ाईयों में शरीक भी हुए थे। इराक़ की तरफ़ इमाम की रवानगी की इत्तेला पाकर कूफ़े से रवाना हुए थे और रास्ते में जमाअते हुसैनी से मुलहक़ हुए थे उस वक़्त जबकि जनाबे मुस्लिम की ख़बरे शहादत भी न आई थी। उनका एक घोड़ा जिसका नाम "कामिल" था कूफ़े में रह गया था और उसके मुतअल्लिक़ उन्होंने हिदायत कर दी थी कि वह बाद में उनके पास पहुंचा दिया जाए। चुनाँनचे अज़ीबुल हजानात में अम्र बिन ख़ालिद सैदावी, मजमा बिन अब्दुल्लाह आएज़ी और जुनादा बिन हारिस सलमानी वग़ैरह पाँच आदमियों का जो क़ाफ़िला हुसैनी जमाअत से मुलहक़ हुआ था उसके साथ यह घोड़ा भी था।

हुर से मुलाक़ात और गुफ़्तगू के बाद ज़ूहसम में इमाम ने जो ख़ुतबा पढ़ा था, उसके जवाब में उन्होंने पुरज़ोर तक़रीर की थी।

---

[1]तबरी जि/6, पेज/248

करबला में जब नहर पर दुश्मनों की मज़ाहमत शुरू हुई और इमाम और उनके साथियों पर प्यास का ग़लबा हुआ इमाम हुसैन[अ0स0] ने अपने भाई अबुल फ़ज़लिल अब्बास को पानी लाने पर मामूर किया। जनाबे अब्बास[अ0स0] बीस सवारों और बीस प्यादों के साथ बीस मश्कीज़े लेकर आगे बढ़े और नहर के क़रीब पहुँचे तो नाफ़ेअ् बिल हिलाल ने अलम अपने हाथ में लिया और सबसे आगे हो गए। अम्र बिन हज्जाज ज़ुबैदी ने जो नहर का मुहाफ़िज़ था टोका और कहा कौन है जो नहर पर जा रहा है चूँकि अम्र बिन हज्जाज क़बील–ए–ज़ुबैदा से था जो ''मुज़हज'' और ''मुराद'' की एक शाख़ है और क़बील–ए–जमल जिससे नाफ़ेअ् थे, यह भी मुराद की एक शाख़, इसलिए नाफ़ेअ् ने जब अपना नाम बताया और क़बीलो का पता देते हुए कहा कि हम पानी पीने आए हैं तो अम्र ने कहा ''तुम शौक़ से पियो। तुम्हें पीना गवारा हो।'' नाफ़ेअ् ने जवाब में कहा ''मैं अकेला थोड़ी पियूँगा। दर सूरतेकि हुसैन[अ0स0] और उनके सब असहाब प्यासे हों।'' यह सुनते ही फ़ौजे मुख़ालिफ़ आगे बढ़ी यह कहती हुई कि ''यह तो मुमकिन ही नहीं कि उन तक पानी पहुँच सके। हम यहाँ मुक़र्रर इसी लिए किए गए हैं कि पानी का एक क़तरा भी जमाअते हुसैनी तक न जाने दें।'' नाफ़ेअ् उन लोगों से गुफ़्तगू के लिए आगे बढ़े और उन्होंने अपने साथियों से कहा कि तुम लोग तेज़ी से मशकें पानी से भर लो। चुनाँनचे साथियों ने जल्दी जल्दी पानी भर लिया और जब उधर से निगहबानों की फ़ौज आगे बढ़ी तो अबुल फ़ज़लिल अब्बास[अ0स0] के साथ नाफ़ेअ् बिन हिलाल और दूसरे बहादुरों ने उसका मुक़ाबला करके पीछे हटा दिया। इस दौरान में वह लोग जो मश्कें लिए हुए थे साहिल से ऊपर आ गए थे। चुनानचे बहादुरों ने उनको ख़यामे हुसैनी की तरफ़ रवाना कर दिया और ख़ुद वहीं खड़े रहे। पासबानों ने फिर बढ़कर हमला किया।

इस मौक़े पर नाफ़ेअ् बिन हिलाल ने अम्र बिन हज्जाज की फ़ौज में से एक शख़्स पर जो क़बील–ए–सदा से था नैज़े का वार किया जिससे बाद में वह हलाक हो गया। बहरतौर असहाबे हुसैनी पानी लेकर ख़यामे हुसैनी तक पहुंच गए।[1]जो इतनी बड़ी जमाअत के लिए जिनके साथ घोड़े भी थे सिर्फ़ ज़रा ही देर तक के लिए तसकीने अतश का बाइस हो सकता था।

रोज़े आशूर जंग छिड़ने के बाद ही से नाफ़ेअ् का वलवल–ए–जंग काम करने लगा था। चुनाँनचे अफ़वाजे मुख़ालिफ़ के एक पहलवान मज़ाहम बिन

---

[1]तबरी जि/6, पेज/234–235

हरीस के साथ उनका दस्त ब–दस्त कामयाब मुक़ाबला हुआ था। उसके बाद अम्र बिन कर्ज़ा की शहादत के मौक़े पर जब उनके भाई अली बिन क़र्ज़ा ने इमाम की शान में गुस्ताख़ाना कलमात कहे और हमला किया था तो नाफ़ेअ् ने उसका मुक़ाबला करके उसे मग़लूब किया था।

नाफ़ेअ् तीर अन्दाज़ी में बड़े मुशताक़ और यगान–ए–रोज़गार (नामवर) थे उन्होंने अपने तीरों के सूफ़ार (मुंह पर, ऊपरी हिस्सा) पर अपना नाम लिख दिया था। और तीरों को ज़हर में बुझा लिया था। चुनाँनचे ज़ोहर के बाद उन्होंने तीर लगाना शुरू किए। वह कहते जाते थे कि "मैं जमली हूँ और अली[अ०स०] के दीन पर हूँ।" और अफ़वाजे मुख़ालिफ़ के बारह आदमियों को इस तरह क़त्ल किया और बहुत सों को ज़ख़्मी। यहाँ तक कि दुश्मनों ने उनको चारों तरफ़ से घेर कर मारना शुरू किया जिससे दोनों बाज़ू उनके शिकस्ता हो गए। और वह गिरफ़्तार कर लिए गए। शिम्र सिपाहियों की एक जमीअत के साथ उनको पकड़ कर उमरे सअ्द के पास ले गया। इस हालत में कि उनकी डाढ़ी से ख़ून टपक रहा था। उनको देखकर उसने कहा "नाफ़ेअ् यह तुम ने अपने नफ़्स के साथ क्या सुलूक किया?" नाफ़ेअ् ने कहा "मेरे ज़मीर से खुदा वाक़िफ़ है। खुदा की क़सम मैंने बारह आदमी तुम में से जान से मारे हैं और ज़ख़मियों की तादाद उसके अलावा है। मुझे मुसर्रत है कि मैंने अपने फ़र्ज़ के अदा करने में कोताही नहीं की। और अगर मेरे बाज़ू टूट न जाते तो तुम मुझे इस तरह हरगिज़ गिरफ़्तार न कर सकते।" शिम्र ने कहा कि इस शख़्स को ज़िन्दा नहीं छोड़ना चाहिए। उमरे सअ्द ने जवाब दिया कि तुम गिरफ़्तार कर के लाए हो तुमको इख़्तियार है।" शिम्र तलवार खींच कर बढ़ा तो नाफ़ेअ् ने कहा "अगर तू मुसलमान होता तो कभी हम लोगों के ख़ून में हाथ न भरता। खुदा का शुक्र है कि उसने हम लोगों की मौत बदतरीने ख़लाएक़ अफ़राद के हाथों क़रार दी।" शिम्र ने तलवार लगाई। नाफ़ेअ् शहीद हुए। पस्त हौसला और कमीना फ़ितरत शिम्र उस ज़ख़्मी और मजबूर मुजाहिद को क़त्ल करके फ़तह मन्दी का एहसास करने लगा। और रजज़ के अशआर ज़बान पर जारी करके हुसैन[अ०स०] के बाक़ी मान्दा असहाब पर हमला आवर हुआ।[1]

(72) श शौज़ब बिन अब्दुल्लाह

हमदान की एक शाख़ क़बील–ए–शकिर के गुलाम ज़ादों से आबिस बिन शबीब शाकरी से वाबस्ता थे। शिअयाने कूफ़ा में अपने औसाफ़ की बिना पर

[1] तबरी जि/6, पेज/253

नुमायाँ हैसियत रखते थे और एक तरफ़ तो मैदाने जंग के शहसवार थे दूसरी तरफ़ अहादीस के हाफ़िज़ और हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] से इस्तेफ़ादा किए हुए थे और कूफ़े में इस बाब में मरजईयत रखते थे, लोग उनसे अहादीस हासिल करने आया करते थे।

जब आबिस, मुस्लिम बिन अक़ील का ख़त लेकर कूफ़े से मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा रवाना हुए थे तो शौज़ब भी उनके साथ थे और इमाम हुसैन[अ0स0] के हमराह मक्के से इराक़ आए और करबला पहुंचे थे।

रोज़े आशूर आबिस ने अपने बावफ़ा ग़ुलाम से कहा ''क्यों शौज़ब! तुम्हारा क्या इरादा है? शौज़ब ने कहा ''इरादा क्या है? यही कि आप के साथ रह कर फ़रज़न्दे रसूल[स0अ0] की नुसरत में जंग करूँ और क़त्ल हो जाऊँ।'' आबिस ने कहा ''शाबाश मुझे तुमसे यही उम्मीद थी। अच्छा तो फिर आगे बढ़ो और इमाम पर जान निसार करो। ताकि इमाम तुम्हारी मुसीबत भी उसी तरह देख लें जैसे अपने दूसरे असहाब की देखी और मैं भी तुम्हारे ग़म को बरदाश्त करके सवाब का मुस्तहक़ बनूँ। यक़ीनन अगर इस वक़्त कोई ऐसा शख़्स मेरे साथ होता जिस पर मुझे उससे ज़्यादा इख़्तियार हासिल होता जितना मुझे तुम पर हासिल है तो मेरी ख़ुशी यह होती कि वह मेरे सामने जाये ताकि मैं उसके ग़म को बरदाश्त करूँ। क्योंकि आज वह दिन है जिसमें इन्सान से जितना हो सके उतना अज्र व सवाब हासिल करले। इसलिए कि आजके दिन के बाद हमारे अमल का दफ़्तर बन्द हो जाएगा। और हिसाब के सिवा कुछ रह नहीं जाएगा।[1]

यह वह अलफ़ाज़ हैं जिन्हें इतमीनानी हालत में शाएरी के तौर पर हर शख़्स कह सकता है लेकिन ऐन मुसीबत के मौक़े पर वाक़ई तौर से उनका इस तरह कहना कि अमल से उनकी तस्दीक़ होती हो बहुत मुशकिल है। अलफ़ाज़ से साफ़ ज़ाहिर था कि राहे हक़ में मसाएब उठाने का एक शौक़ है और तकालीफ़ के बरदाश्त करने का वलवला जो ख़ुद इख़्तियारी तौर पर अमली इक़दामात का मुहर्रिक (पहचान) है।

बहरतौर शौज़ब आगे बढ़े। इमाम हुसैन[अ0स0] को सलाम करके रूख़्सत हुए और जंग करके शहीद हुए। [2]

---

[1]तबरी जि/6, पेज/254

[2]तबरी जि/6, पेज/254

(73) आबिस बिन अबी श बीब शाकरी

नाम व नसब: आबिस बिन अबी शबीब बिन शाकिर बिन रबीया बिन मालिक बिन सअ्ब बिन मअ्तेया बिन कसीर बिन मालिक बिन जशम बिन हाशिद अल–हमदानीशाकरी। बनू शाकिर क़बील–ए–हमदान की एक शाख़ थे और उन ही की निसबत हज़रत अली बिन अबी तालिब^अ०स० ने जंगे सिफ़्फ़ीन के मौक़े पर फ़रमाया था कि अगर उनकी तादाद एक हज़ार हो जाए तो ख़ुदा की इबादत उस तरह होने लगे जिस तरह कि होना चाहिए।

यह लोग बड़े शुजा और जंग आज़मा थे और ''फ़तियानिस सबाह'' के लक़ब से मशहूर थें जिसके मानी हैं ''वक़्ते सुबह के जवाँमर्द'' चूँकि ग़ारतगरी और जंग का मुक़ाबला ज़्यादा तर अवक़ाते सुबह में होता था, इसलिए उस वक़्त की तरफ़ निसबत दी गई।

हमदान की एक दूसरी शाख़ बनू वादिआ के पास उन लोगों ने जाकर क़याम किया तो यह भी उनकी तरफ़ मन्सूब होने लगे और इसी लिए आबिस शाकरी भी कहा जाता था और वादई थी।

आबिस शिअ्याने कूफ़े में से रईसे क़ौम, बहादुर, मुक़र्रिर (बोलने वाले), इबादत गुज़ार और शब ज़िन्दादार थे। मुतअद्दिद लड़ाईयों में कारे नुमायाँ अन्जाम दे चुके थे। और दिलों पर उनकी शुजाअत का सिक्का क़ायम था।

जब मुस्लिम बिन अक़ील कूफ़े वारिद हुए थे और आपने पहला जलसा मुनअक़िद करके इमाम हुसैन^अ०स० का ख़त सुनाया था तो उस वक़्त सबसे पहले आबिस ही खड़े हुए थे और उन्होंने कहा था कि ''मैं दूसरों का ज़िम्मेदार नहीं। मगर जहाँ तक मेरी ज़ात का तअल्लुक़ है मैंने तय कर लिया है कि आख़री दम तक आप लोगों का साथ दूँगा।''

उनकी तक़रीर इतनी जामे (ठोस) और पुरमग़ज़ (इल्मी) थी कि हबीब बिन मज़ाहिर ने उनकी तारीफ़ की थी और उन ही की ताईद में अपनी नुसरत व वफ़ादारी का अहद किया था।

जब कूफ़े के अठ्ठारह हज़ार आदमियों ने मुस्लिम की बैयत कर ली और आपने इस सूरते हाल से मुतमइन होकर इमाम हुसैन^अ०स० को इत्तेला देना चाही तो आपने वह ख़त आबिस ही के हाथ मक्के भेजा था। चुनाँनचे वह उस ख़त को लेकर इमाम हुसैन^अ०स० के पास पहुँचे और फिर आपसे जुदा नहीं हुए।

उनका गुलाम शौज़ब उनके साथ साथ था चुनाँनचे उन्होंने अपने गुलाम को अपनी तरफ़ से हुसैन^अ०स० पर निसार किया।

जब शौज़ब दर्ज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हो चुके तो आबिस ने इमाम की ख़िदमत में अर्ज़ किया "ब–ख़ुदा रूए ज़मीन पर कोई ऐसा नहीं जो मुझे आपसे ज़्यादा अज़ीज़ व महबूब हो।

अगर मुझे क़ुदरत होती कि मैं अपनी जान से ज़्यादा कोई अज़ीज़ शै आपकी ख़िदमत में पेश करूँ तो ऐसा ही करता मगर अब तो बस मेरी जान बाक़ी है। बस अब इजाज़त दीजिए। मैं आख़री सलाम अर्ज़ करते हुए ख़ुदा को गवाह करता हूँ कि मैं आपके और आपके पिदरे बुज़ुर्गवार के दीन पर क़ायम हूँ।"

इन अलफ़ाज़ को कह कर इमाम से रूख़्सत हुए और तलवार खींचे हुए सुफ़ूफ़े (सफ़ की जमा) मुख़ालिफ़ के सामने पहुँचे। उनकी पेशानी पर उस वक़्त एक ज़ख़्म मौजूद था जो शायद पहले किसी हमले में आ गया था फ़ौजे कूफ़ा का एक शख़्स रबीअ् बिन तमीम जो वाक़ए करबला में मौजूद था बयान करता है कि मैंने आबिस को आते देखा तो पहचान लिया इसलिए कि मैं उन्हें इसके पहले लड़ाईयों में देख चुका था और उनकी शुजाअतों से वाक़िफ़ था। चुनाँनचे मैंने अपने साथियों से कहा "ऐयुहन्नास (ऐ लोगो!) यह शेरों का शेर है, यह इब्ने अबी शबीब है। देखो कोई एक शख़्स तुम में से उसके मुक़ाबले को बाहर न निकले।" आबिस ने आवाज़ देना शुरू की "क्या कोई मर्दे मैदान नहीं जो एक मर्द मैदान के मुक़ाबले को निकले।" मगर फ़ौजे यज़ीद में से एक शख़्स भी बाहर न निकला। उमरे सअ्द ने कहा इस बहादुर को पत्थरों से मार लो। चुनाँनचे हर तरफ़ से पत्थरों की बारिश होने लगी, यह अजीब तरीक़–ए–जंग देखकर आबिस ने ज़िरह और ख़ोद बक्तर (फ़ौजी लिबास) उतार कर फेंक दिया और तलवार सूंत कर सुफ़ूफ़े मुख़ालिफ़ पर टूट पड़े जिस सफ़ की तरफ़ रूख़ करते थे सैंकड़ों आदमी उनके सामने से भागते नज़र आते थे। थोड़ी देर की जंग के बाद फ़ौज के एक बड़े हिस्से ने उनको चारों तरफ़ से घेर कर क़त्ल कर दिया। फिर उनका सर क़लम किया गया और बहुत से आदमियों ने आपस में झगड़ना शुरू किया। हर एक कहता था कि इस शख़्स को मैंने क़त्ल किया है। बिल आख़िर उमरे सअ्द ने उसका यह कहकर फ़ैसला किया कि झगड़ा न करो। उस शख़्स का क़ातिल कोई एक नहीं हो सकता। तुम सब उसके क़ातिल हो। इस तरह यह निज़ा (लड़ाई) बर तरफ़ हुई।[1]

---

[1]तबरी जि/6, पेज/253

(74 व 75) अब्दुल्लाह व अब्दुर्रहमान फ़रज़न्दाने उरवा बिन हिराक़ ग़फ़्फ़ारी[1]

अबूज़र ग़फ़्फ़ारी के क़बीला–ए–हिराक़ ग़फ़्फ़ारी असहाबे हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] में से थे और आपके साथ जमल, सिफ़्फ़ीन और नहरवान के मारकों में शरीक रहे थे। उनके दोनों पोते अब्दुल्लाह और अब्दुर्रहमान अशराफ़ व शुजाआने कूफ़ा में से और शिअयाने अली में मुमताज़ हैसियत के मालिक थे। दानों भाई इमाम हुसैन[अ0स0] के पास मैदाने करबला में पहुँचे और आपके अन्सार में शामिल हुए थे।

ज़ोहर के बाद जब वक़्त सख़्त से सख़्त होता जा रहा था। असहाबे हुसैन[अ0स0] में से हर एक की अब यह कोशिश थी कि मैं अपनी जान निसार करूँ। चुनाँनचे इन दोनों भाईयों ने इमाम की ख़िदमत में अर्ज़ किया ''या अबा अबदिल्लाह! हमारा सलाम कुबूल कीजिए। दुश्मन अब आगे बढ़ते चले आ रहे हैं और हमारा बस नहीं चलता। इसलिए हम चाहते हैं कि खुद आपके सामने क़त्ल हो जायें और आपकी नुसरत का हक़ अदा करें। इमाम ने फ़रमाया अल्लाह तुम्हें जज़ाये ख़ैर अता फ़रमाये। आओ मेरे क़रीब आओ। यह दोनों इमाम के क़रीब ही उस फ़ौज से जो बढ़ आई थी बरसरे पैकार हो गए और रजज़ पढ़ रहे थे कि:

''तमाम बनी ग़फ़्फ़ार और ख़न्दक़ व बनी नज़ार के क़बाएल इस बात से वाक़िफ़ हैं कि हम फ़ासिक़ व फ़ाजिर गिरोह पर हमले करेंगे बाढ़ दार बुर्रान (नैज़ा उठाने वाले) शमशीरों के साथ। ऐ मेरे रफ़ीक़ो! आले रसूल[स0अ0] की हिफ़ाज़त में शमशीर व नैज़े के साथ जंग में कोई दक़ीक़ा उठा न रखो।'' आख़िर दोनों जंग करते हुए शहीद हुए।''[2]

(76) हन्ज़ला बिन असअद शबामी

नाम व नसब: हन्ज़ला बिन असअद शबाम बिन अब्दुल्लाह बिन असअद बिन हाशिद बिन हमदान अल–हमदानी अश–शबामी।

शिअ्याने कूफ़े में से नाम आवर और खुश तक़रीर, बहादुर और हाफ़िज़े कुरआन थे इमाम हुसैन[अ0स0] के पास आपके मैदाने करबला में वारिद होने के बाद पहुंचे थे और इमाम ने गुफ़्तगू–ए–सुल्ह के दौरान में अक्सर उनको उमरे सअ्द के पास ब–सिलसिल–ए–नामा व प्याम भेजा था।

---

[1]बाज़ किताबों में उरज़ा है। तबरी जि/6, पेज/254

[2]तबरी जि/6, पेज/253

रोज़े आशूर ज़ोहर के बाद जब हुसैनी मुजाहिदों में से बहुत से शहीद हो चुके तो वह इमाम के सामने आकर खड़े हुए और फ़ौजे कूफ़ा को मुख़तब करके ब–आवाज़े बलन्द कहने लगे।

"ऐ मेरी क़ौम के लोगो! मुझे तुम्हारे मुतअल्लिक़ अन्देशा है उस रोज़े बद का जो बहुत सी क़ौमों को नसीब हुआ जैसे क़ौमे नूह और आद और समूद वग़ैरह। और अल्लाह बन्दों पर ज़ुल्म नहीं करता बल्कि उनकी बद आमालियों ही का बदला देता है। ऐ मेरी क़ौम मैं तुम्हारे लिए अन्देशा रखता हूँ क़यामत के दिन से जबकि तुम इस दुनिया से पुश्त (पीठ) फिराओगे और कोई तुम्हारा बचाने वाला खुदा के अज़ाब से न होगा और जिसकी हिदायत से खुदा हाथ उठा ले फिर उसकी हिदायत कौन कर सकता है। ऐ मेरी क़ौम! हुसैन[अ0स0] को क़त्ल न करो। नही तो खुदा तुम पर अज़ाब नाज़िल करेगा और झूठ कहने वालों का अन्जाम नाकामी है।[1]

दुश्मन पर ऐसी तक़रीरों से असर ही कब होता था। इमाम ने पुकार कर फ़रमाया ऐ इब्ने सअ्द! खुदा अपनी रहमत तुम्हारे शामिले हाल करे। यह लोग अज़ाबे खुदा के मुस्तहक़ तो उसी वक़्त हो गए जब उन्होंने हक़ बात को क़ुबूल न किया और तुम लोगों के ख़िलाफ़ फ़ौज कशी की, चेजाएकि अब! अब तो यह तुम्हारे बहुत से नेक साथियों को क़त्ल भी कर चुके हैं।"

हन्ज़ला ने कहा "हुज़ूर सच फ़रमाते हैं। हुज़ूर से बढ़कर इन बातों को कौन समझ सकता है, अच्छा तो इजाज़त दीजिए कि हम भी जायें खुदा की तरफ़ और अपने साथियों से मुलहक़ हों। इमाम ने फ़रमाया जाओ दुनिया और आख़िरत की नेकी और ऐसी सलतनत की तरफ़ जिसको ज़वाल नहीं है।" हन्ज़ला ने रूख़सती सलाम किया, मैदाने जंग में गए। लड़े और शहीद हो गए।[2]

(77 व 78)सैफ़ बिन हारिस बिन सरीअ् व मालिक बिन अब्द बिन सरीअ् बिन जाबिर हमदानी

दोनों चचाज़ाद भाई और एक माँ की औलाद थे।[3] उन दिनों में कि जब सुल्ह की गुफ़्तगू हो रही थी मैदाने करबला में पहुँच कर जमाअते हुसैनी से

---

[1]तबरी जि/6, पेज/254, इरशाद पेज/252

[2]तबरी जि/6, पेज/254, इरशाद पेज/252

[3]तबरी जि/6, पेज/252

मुलहक़ हुए थे। उनका गुलाम शबीब भी उनके साथ था और हमल–ए–ऊला में शहीद हुआ था।

रोज़े आशूरा जब बाज़ारे शहादत गर्म था तो यह दोनों जवान इमाम के नज़दीक खड़े होकर रोने लगे। यह उनके दिल की बेचैनी थी जिसने अल्फ़ाज़ को सरिश्के ग़म(आँख में आँसू) की सूरत में तबदील कर दिया था और उनके मुंह से रंज की वजह से बात नहीं निकलती थी। उनकी इस हालत का मुशाहदा करके इमाम[अ0स0] ने फ़रमायाः कि "क्यों मेरे भाई के फ़रज़न्दो! रोते क्यों हो? देखो थोड़ी देर में तुम्हारे लिए खुशी ही खुशी के सामान मुहैय्या होंगे।" दोनों ने अर्ज़ किया "हमारी जान आप पर कुर्बान! हम अपने लिए थोड़ी रोते हैं। हमें तो आपकी बेकसी पर रोना आ रहा है। हम देख रहे हैं कि आपको चारों तरफ़ से घेर लिया गया है। और पूरे तौर पर हमसे आपकी हिफ़ाज़त का इम्कान नहीं रहा है।" इमाम ने फ़रमाया "तुम्हें इस सदमे पर जो मेरी वजह से है और उस हमदर्दी पर जो मेरे साथ है खुदा बेहतरीन जज़ा अता फ़रमाये।"[1]

हन्ज़ला इब्ने असअ्द शबामी की शहादत के बाद वह दोनों हुसैन[अ0स0] की ख़िदमत में सलामे आख़िर बजा लाये और लड़ कर शहीद हुए।[2]

(79)जौन (गुलाम अबूज़र ग़फ़्फ़ारी)

नाम व नसबः जौन बिन हुवी बिन क़तादा बिन आवर बिन साअदा बिन औफ़ बिन कअ्ब बिन हुवै मौला अबूज़र अल–ग़फ़्फ़ारी, हबशी नस्ल से फ़ज़ल बिन अब्बास बिन अब्दुल मुत्तलिब के ममलूक थे। हज़रत अली[अ0स0] ने डेढ़ सौ अशरफ़ी को उन्हें ख़रीद फ़रमाया था और अबूज़र ग़फ़्फ़ारी को हिबा कर दिया था ताकि उनकी ख़िदमत करें। चुनाँनचे वह अबूज़र के साथ रहे यहाँ तक कि रबज़ा में ब–हालते जिला वतनी भी उनके साथ रहे।

जब सन 32 हिजरी में अबूज़र का इन्तेक़ाल हुआ तो जौन मदीने वापस होकर फिर हज़रत अली[अ0स0] की ख़िदमत में रहने लगे। और आपकी शहादत के बाद इमाम हसन[अ0स0] और फिर इमाम हुसैन[अ0स0] के पास रहे।

रोज़े आशूरा जब जंग के शोले बलन्द हो गए तो जौन ने भी इमाम हुसैन[अ0स0] से इजाज़ते जेहाद तलब की। आपने फ़रमाया "तुम हमारे साथ राहत के लिए थे। अब हमारी वजह से क्यों मुसीबत में मुबतिला होते हो।" यह

---

[1]तबरी जि/6, पेज/253

[2]तबरी जि/6, पेज/254

सुनना था कि जौन ने आपके क़दमों पर गिर कर अर्ज़ किया "फ़रज़न्दे रसूल[स0अ0] यह क्यों कर हो सकता है कि राहत के ज़माने में तो मैंने आपके यहाँ के प्याले चाटे और अब सख़्ती के वक़्त मैं आपका साथ छोड़ कर चल दूँ। खुदा की क़सम मेरे जिस्म से बदबू आती है। मेरा हसब व नसब पस्त और रंग सियाह है। आप अपने तुफ़ैल से मुझे जन्नत का मुस्तहक़ बना दीजिए कि मेरी बू खुशबू से बदल जाये, मेरा हसब व नसब बावक़ार हो जाये और मेरा रंग सुफ़ैद हो जाये। ब–खुदा मैं आपसे जुदा न हूँगा, जब तक कि यह सियाह खून आप बुज़ुर्गवारों के नूरानी खून में मिल न जाए।" बहरतौर इजाज़ते जंग मिलने पर जौन ने मैदाने जंग में आकर रजज़ पढ़ना शुरू किया।

"ज़रा कुफ़्फ़ार देखें तो कि एक सियाह गुलाम शमशीर व नैज़े से किस तरह जंग करता है। आले रसूल[स0अ0] की नुसरत व हिमायत में।" उसके बाद उन्होंने जिहाद किया और दरज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के दिल में जौन के वह अलफ़ाज़ घर कर चुके थे, इसलिए आप जब उनकी लाश पर तशरीफ़ ले गए तो दुआ की "खुदा वन्दा! इसके चेहरे को रौशन कर दे, इसकी बू को खुशबू से बदल दे और इसे सालेहीन के साथ महशूर कर और इसे मुहम्मद आले मुहम्मद[स0अ0] की हक़ीक़ी मारिफ़त रखने वालों में महसूब फ़रमा।"

(80)गुलामे तुरकी

हाफ़िज़े कुरआन, हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के गुलाम थे जिनको आपने अपने फ़रज़न्द अली बिन हुसैन[अ0स0] (ज़ैनुल आबेदीन) को हिबा किया था। उन्होंने इमाम से इजाज़ते जिहाद मांगी तो आपने फ़रमाया कि ख़ैमे में जाकर अपने आक़ा से इजाज़त हासिल करो। चुनाँनचे वह इजाज़त हासिल करने के बाद तमाम अहले हरम की ख़िदमत में सलामे आख़िर बजा लाकर मैदाने जंग में आये। और यह रजज़ पढ़ने लगे। "समन्दर में मेरे नैज़े व शमशीर की गर्मी से आग लग जाती है और फ़िज़ा मेरे तीरों की परवाज़ से ममलू (भर) हो जाती है। जब मेरी तलवार मेरे हाथ में चमकती है तो मग़रूर हासिद का दिल शिगाफ़्ता (फट) हो जाता है।

जंग करके उन्होंने बहुत से लोगों को क़त्ल किया। बिल आख़िर ज़ख़्मी होकर गिर गए इमाम हुसैन[अ0स0] उनकी लाश पर सिरहाने तशरीफ़ लाये और गले में बाहें डाल दीं। और रूख़्सारा अपना उनके रूख़्सार पर रख दिया।

उन्होंने आँखें खोलीं और इस इज़्ज़त अफ़ज़ाई को देखकर मुसकुराते हुए हमेशा के लिए आँखें बन्द कर ली।

(81) अनस बिन हारिसे असदी

नाम व नसबः अनस बिन हारिस बिन नबिया बिन काहिल बिन अम्र बिन मुसअ्ब बिन असद बिन ख़ज़ीमा असदी काहली असहाबे रसूल[स0अ0] में से हदीस के रावी थे। वह पैग़म्बरे ख़ुदा[स0अ0] की ज़बानी शहादते हुसैन[अ0स0] की ख़बर सुनकर नुसरत के इरादे से उस दिन के मुन्तज़िर रहने लगे।

वाक़ए करबला के मौक़े पर वह बहुत कबीरूस सिन (बूढ़े) हो चुके थे मगर जज़ब–ए–ईमानी ऐसा रखते थे कि इमाम हुसैन[अ0स0] के साथ करबला पहुँचे और रोज़े आशूरा इजाज़ते जिहाद हासिल करने के बाद उन्होंने अमामा से अपनी कमर चुस्त बाँधी और भवों को जो आँखों पर लटक आई थी ऊँचा करके रूमाल से पेशानी पर बाँधा। इमाम नुसरते दीन में उनका यह एहतेमाम देख देख कर रो रहे थे और फ़रमा रहे थे। شکراللہ لک یا شیخ यानी ऐ बूढ़े मुजाहिद ख़ुदा तेरे हुस्ने अमल की क़द्र करे।" बिल आख़िर वह जंग करके दर्ज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

(82) हज्जाज बिन मसरूक़ जअ्फ़ी

जअ्फ़ बिन सअ्दुल अशीरा की नस्ल से, कूफ़े के मुअज़्ज़िज़ (इज़्ज़तदार) शिया थे। और हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] की सोहबत से शरफ़याब हुए थे। जब इमाम हुसैन[अ0स0] मक्का में क़याम गुज़ीं थे तो वह कूफ़े से जाकर आपके हमराह रिकाब हुए और अवक़ाते नमाज़ में अज़ान की ख़िदमत अन्जाम देने लगे।

जब इमाम मक्का से इराक़ की तरफ़ रवाना हुए तो वह आपके साथ थे चुनानचे उस मौक़े पर जब हुर के लशकर से मुलाक़ात हुई थी और नमाज़े ज़ोहर का वक़्त आया था तो तरीख़ में यह तसरीह (साफ़) मौजूद है कि हुसैन[अ0स0] ने हफज्जाज बिन मस्रूक़ को अज़ान का हुक्म दिया।[1] रोज़े आशूर उन्होंने भी इज़्ने जिहाद हासिल किया। मैदान में जाकर रजज़ पढ़ा। जंग करके बहुत से दुश्मनों को क़त्ल किया और आख़िर जामे शहादत नोश किया।

---

[1]इरशाद, पेज/235

(83) ज़ियाद बिन अरीब हमदानी

नाम व नसबः अबू आमिर बिन अम्र बिन अरीब बिन हन्ज़ला बिन वारिम बिन अब्दुल्लाह बिन कअ्ब अस–साएदी अल–हमदानी। उनके बाप को ख़िदमते रसूले खुदा[स0अ0] में हुज़ूरी का शरफ़ हासिल था और खुद ज़ियाद बड़े आबिद (इबादत गुज़ार) व ज़ाहिद (परहेज़गार), शब ज़िन्दा दार (रातों को जाग कर इबादत करने वाले) और तहज्जुद गुज़ार (नमाज़े शब) थे और शुजाअत में बुलन्द पाया रखते थे। रोज़े आशूर सख़्त जंग करने के बाद दरज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

(84)सालिम बिन अम्र बिन अब्दुल्लाह मौला बनुल मदीनतुल कलबी

बनुल मदीना क़बील–ए–कल्ब कुज़ाआ की एक शाख़ थे। ज़ैद बिन हारिसा सहाबी और मुहम्मद बिन साएब कल्बी साहिबे तफ़सीर भी इसी नस्ल से थे।

सालिम उसी ख़ानदान के गुलाम थे और शिअ्याने कूफ़ा में उनका शुमार होता था मुस्लिम बिन अक़ील के साथ जंग में शरीक हुए थे और आपकी शहादत के बाद गिरफ़्तार कर लिए गये थे मगर किसी तरह मौक़ा पाकर रिहा हो गए और अपनी क़ौम में मख़्फ़ी (छुप) हो गए थे। जब इमाम हुसैन[अ0स0] के मैदाने करबला में वारिद होने की ख़बर सुनी तो क़बील–ए–कल्ब के लोगों के साथ वहाँ पहुंच कर आपके अन्सार में दाख़िल हुए और रोज़े आशूरा दरज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

(85)सअ्द बिन हारिस मौला अमीरूल मोमिनीन

हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के गुलाम थे। आपकी शहादत के बाद इमाम हसन[अ0स0] और फिर इमाम हुसैन[अ0स0] की ख़िदमत में रहे। मदीना से करबला तक आपके साथ आए थे और रोज़े आशूरा उन्होंने भी अपनी जान आप पर निसार की।

(86)उमर बिन जुन्दब हज़रमी

शिअ्याने कूफ़ा में से थे। हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के साथ जमल और सिफ़्फ़ीन के मारकों में शरीक हुए थे। सन 51 हिजरी में हुज्र बिन अदी का हुकूमते बनी उमैया से तसादुम हुआ था तो वह हुज्र के आवान (मददगारों) में दाख़िल थे और इसी लिए जब हुज्र को गिरफ़्तार करके शाम भेजा गया तो वह रूपोश हो गए थे और ज़ियाद बिन अबीह के हलाक होने के बाद कूफ़े वापस आए थे। जब मुस्लिम बिन अक़ील कूफ़े में वारिद हुए थे तो

वह उनके अन्सार में शरीक हो गए थे और मुस्लिम की शहादत के बाद मख़्फ़ी तौर पर इमाम हुसैन[अ०स०] की ख़िदमत में पहुंचे। रोज़े आशूर दरज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

(87) क़अ्नब बिन अम्र अन–नमरी

शिअ्याने बसरा में से थे। हज्जाज बिन ज़ैद सअ्दी के साथ इमाम हुसैन[अ०स०] की ख़िदमत में हाज़िर हुए और रोज़े आशूर दरज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

(88) यज़ीद बिन सुबैत–अल–अब्दी

वह शिअ्याने बसरा और अबूल असवद दुअली शागिर्द हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ०स०] के मुसाहेबीन (दोस्तों) में से थे, जब इमाम हुसैन[अ०स०] मक्का से इराक़ की तरफ़ रवाना हुए थे तो इब्ने ज़ियाद ने अपने नाएब को जो बसरा में था ख़त लिखा था कि ''बसरा के लोगों से होशयार रहना, कोई शख़्स नुसरते हुसैन[अ०स०] के लिए वहाँ से आने न पाये।'' मगर बसरा में अब्दे क़ैस के क़बीले की एक ख़ातून मारिया बिन्ते मुन्क़ज़ बड़ी मुहिब्बे अहलेबैत थीं और उनका मकान शिअ्याने बसरा के इजतेमा का मरकज़ था। चुनाँनचे उन ही के मकान पर एक जलसा के दौरान में यज़ीद बिन सुबैत ने नुसरते हुसैन[अ०स०] के इरादे का इज़हार किया था और अपने दस फ़रज़न्दों को भी इसकी तरग़ीब दिलाई थी मगर उनमें से सिर्फ़ दो तय्यार हुए थे अब्दुल्लाह बिन सुबैत और उबैदुल्लाह बिन सुबैत (जिनका तज़किरा इस किताब में पहले हो चुका है) उनके बहुत से साथियों ने जो उस मकान में जमा हुआ करते थे उनको इस इरादे से बाज़ रखना चाहा मगर उन्होंने उनके मशवरों की तरफ़ कोई एतेना (परवाह) न की और चल खड़े हुए। कुछ और लोग भी उनके साथ हो गए और बिल आख़िर इराक़ के रास्ते में अबतह की मन्ज़िल पर इमाम वारिद हुए थे जब यह लोग उस मक़ाम पर पहुँच कर उनके ख़ैमे की तरफ़ शरफ़े मुलाक़ात हासिल करने के लिए गए तो इमाम ख़ुद उनके आने की ख़बर सुनकर उनसे मिलने के लिए दूसरे रास्ते से उनकी जाए क़याम पर तशरीफ़ ले जा चुके थे। और जब उन्हें न पाया तो वहीं इन्तेज़ार के लिए बैठ गए थे। यह लोग इमाम को उनके ख़ैमे में मौजूद न होने की वजह से मायूस होकर वापस हुए थे कि इमाम को अपने ही यहाँ बैठा पाया उस वक़्त उनकी ख़ुशी का अन्दाज़ा ग़ैर मुमकिन था। उन्होंने आयते क़ुरआन पढ़ी कि अल्लाह के फ़ज़ल व रहमत से मोमिनीन को ख़ुश होना चाहिए। उसके बाद इमाम की

ख़िदमत में सलाम अर्ज़ किया और अज़्मे नुसरत का इज़हार किया। इमाम ने दुआए ख़ैर दी।

रोज़े आशूर वह अपने फ़रज़न्दों के बाद जंग करके दरज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।[1]

(89) यज़ीद बिन् मुग़फ़ल जअ्फ़ी

असहबे अली बिन अबी तालिब[अ0स0] में से थे और आपके साथ जंगे सिफ़्फ़ीन में शरीक हुए थे। ख़रीत बिन राशिद नाजी ने जब सर ज़मीने अहवाज़ में ख़ुरूज किया था तो हज़रत अली[अ0स0] ने मुअक़्क़िल बिन क़ैस की सरकरदगी में उसकी सरकूबी के लिए लश्कर रवाना किया था। उस लशकर में यज़ीद बिन मुग़फ़िल मैमन–ए–फ़ौज के सरदार मुक़र्रर हुए थे।

मुरज़बानी ने मोअ्जमुश्शुअ्रा (वह ईरानी शाएर जो अरबी अल्फ़ाज़ इस्तेमाल करें) में उनका ज़िक्र किया है और लिखा है कि वह ताबेईन (हदीसें कोड करने वाले) में महसूब हैं। उनके बाप सहाबा में से थे। उन्होंने रोज़े आशूर इमाम हुसैन[अ0स0] की नुसरत की। जंग के मौक़े पर वह रजज़ पढ़ रहे थे।

''अगर न पहचानते हो मुझे तो पहचान लो कि मैं मुग़फ़िल का फ़रज़न्द हूँ। मैदाने जंग का शहसवार और मुकम्मल असलहा रखने वाला हूँ। मेरे हाथ में तेज़ शमशीर रहती है जिसको ग़ुबारे जंग के अन्दर शहसवार दुश्मन के सर पर बलन्द करता हूँ।'' बिल–आख़िर दरज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।

(90) राफ़ेअ् बिन् अब्दुल्लाह मौला मुस्लिमुल अज़्वी

मुस्लिम बिन कसीर आरज के ग़ुलाम थे। अपने मालिक के साथ करबला आए थे और रोज़े आशूर बादे ज़ोहर जंग करके शहीद हुए।

(91)बशीर बिन् अम्र बिन् अल–अहदूस अल–हज़्रमी अल–क़िन्दी

अस्ल में ''हज़रमूत'' के रहने वाले थे लेकिन कूफ़े में मुहल्ल–ए–बनी किन्दा में क़याम करने से किन्दी कहे जाने लगे। जब करबला में सुल्ह की गुफ़्तगू हो रही थी उस ज़माने में आकर अन्सारे हुसैन[अ0स0] में शामिल हुए थे।

रोज़े आशूरा उन्हें ख़बर मिली थी कि उनका फ़रज़न्द अम्र रै (आज का तेहरान) की सरहद पर क़ैद हो गया है। उस वक़्त इमाम हुसैन[अ0स0] ने उनसे कहा था कि तुम ख़ास तौर पर मेरी बैयत से आज़ाद हो जाओ और अपने बेटे की रिहाई का बन्दोबस्त करो, मगर उनके जज़्ब–ए–ईमानी ने उनको इसकी

---

[1]तबरी, जि / 6, पेज / 198

इजाज़त न दी। चुनाँनचे वह इमाम हुसैन[अ०स०] का साथ छोड़ कर न गए और असहाबे हुसैन[अ०स०] के सिलसिले में तक़रीबन बिल्कुल आख़िर में शहीद हुए।

(92) सुवैद बिन अम्र बिन अबिल मताअ् अल–ख़सअमी

ज़ईफ़ुल उम्र, आबिदो ज़ाहिद और बड़े नमाज़ गुज़ार थे। मुतअद्दिद लड़ाईयों में शरीक होकर कारहाये नुमायाँ अन्जाम दे चुके थे।

रोज़े आशूर शरीके जंग थे और असहाबे हुसैन[अ०स०] में सबसे आख़िर में वही एक बाक़ी रह गए थे।[1] चुनाँनचे बशीर बिन अम्र हज़रमी के बाद उन्होंने मैदाने जंग में निकल कर जंग की और बिल–आख़िर वह इस दर्जा जख़्मी होकर गिरे कि आम तौर पर समझ लिया गया कि उनकी रूह जिस्म से मुफ़ारिक़त (जुदा) कर गई मगर हक़ीक़तन उनमें जान बाक़ी थी। चुनाँनचे जब इमाम हुसैन[अ०स०] शहीद हो चुके तो उन्हें होश आया और उनके कान में आवाज़ गई कि हुसैन[अ०स०] क़त्ल हो गए बस वह बेताब होकर उठ खड़े हुए। उनकी तलवार लोग ले जा चुके थे। एक छुरा मौजूद था। उससे उन्होंने अपने नज़दीक के दुश्मनों पर हमला किया। आख़िर दुश्मन टूट पड़े। और सर उनका जिस्म से जुदा कर लिया।

अब जबकि असहाबे हुसैन[अ०स०] का (बनी हाशिम के अलावा) सिलसिला ख़त्म हो चुका है तो बेहतर यह मालूम होता है कि उस जमाअत की नौईयत और हैसियत पर एक नज़र फिर डाल ली जाए।

उन असहाब के उन हालात से जो सिलसिलावार पेश हुए हैं। यह अन्दाज़ा हो जाता है कि वह कुछ गुमनाम और ग़ैर मारूफ़ शख़सियतों के मालिक नहीं थे। बल्कि आदाद व शुमार के ज़रिये यह मालूम किया जा सकता है कि उनमें मुन्दर्जा ज़ैल (नीचे लिखे हुए) अशख़ास को असहाबे रसूल होने का शरफ़ हासिल था।

(1) मुस्लिम बिन औसजा। (2) ज़ाहिर बिन अम्र असलमी कन्दी। (3) शबीब बिन अब्दुल्लाह मौला हमदान। (4) अब्दुर्रहमान बिन अब्दे रब अन्सारी ख़ज़रजी। (5) अम्मार बिन अबी सलामा दालानी। (6) मुस्लिम बिन कसीर सदफ़ी। (7) हबीब बिन मज़ाहिर। (8) अनस बिन हारिस असदी।

वफ़ाते रसूल अल्लाह[स०अ०] से वाक़–ए–करबला तक पचास बरस का ज़माना गुज़र चुका था। इसलिए उनमें से किसी की उम्र पचपन (55) या साठ (60) बरस से कम नहीं क़रार पा सकती और उनमें से बाज़ की उम्र इससे

---

[1]तबरी, जि/6, पेज/256

यक़ीनन ज़्यादा थी। जैसे अनस बिन हारिस अब्दुर्रहमान बिन अब्द रब, हबीब बिन मज़ाहिर, मुस्लिम बिन औसजा, इनके अलावा सुवैद बिन अम्र ख़सअमी, आम इन्सानी तबियत के तक़ाज़ों के लिहाज़ से उन बूढ़े मुजाहदीन में से किसी एक के मुतअल्लिक़ भी यह नहीं कहा जा सकता वह किसी वक़्ती जोश या वलवल–ए–जंग की वजह से तेग़ आज़माई पर तय्यार हो गए थे।

हस्बे ज़ैल असहाबे हज़रत अली[अ0स0] थे जो इस्तेलाहन ताबेईन में दाख़िल हैं और ताबेईन का मर्तबा सहाबा के बाद सबसे बेहतर समझा जाता है।

(1) अब्दुल्लाह बिन उमैर कलबी। (2) मजमा बिन अब्दुल्लाह मुज़हजी। (3) जनादा बिन हारिसे सलमानी। (4) जुन्दब बिन हुजैर कन्दी। (5) उमैया बिन सअ्द ताई। (6) जबला बिन अली शैबानी। (7) हारिस बिन बनहान। (8) हिलास बिन अम्र अज़दी। (9) शबीब बिन अब्दुल्लह नहशली। (10) क़ासित बिन ज़ुहैर तग़लबी। (11) कुरूदुस बिन ज़ुहैर तग़लबी। (12) मक़सत बिन ज़ुहैर तग़लबी। (13) नोमान बिन अम्र अज़दी। (14) नईम बिन अजलान अन्सारी। (15) अबू सुमामा साएदी। (16) शौज़ब बिन अब्दुल्लाह। (17) जौन ग़ुलामे अबूज़रे ग़फ़्फ़ारी। (18) हुज्जाज बिन मसरूक़ जअ्फ़ी। (19) सअ्द बिन हारिस। (20) यज़ीद बिन मग़फ़ल जअ्फ़ी। (21) अम्र बिन जुन्दब हज़रमी।

इनमें से अक्सर जमल, सिफ़्फ़ीन और नहरवान की लड़ाईयों में जंग कर चुके थे। और बाज़ ऐसे भी थे जो हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के ज़मान–ए–ख़िलाफ़त में मुख़तलिफ़ सरकारी ओहदों पर फ़ाएज़ रह चुके थे और बाज़ शागिर्द की हैसियत से आप से इल्मी इस्तेफ़ादा कर चुके थे।

हस्बे ज़ैल हुफ़्फ़ाज़े क़ुरआन (हाफ़िज़) थे

(1) बुरैर बिन ख़ज़ीर हमदानी जो सय्यदुल क़र्रा (क़ारियों के सरदार) के लक़ब से मुलक़्क़ब (लक़ब दिया गया था) थे और कूफ़े में बच्चों को क़ुरआन की तालीम देते थे। (2) अब्दुर्रहमान बिन अब्द रब अन्सारी। (3) कनाना बिन अक़ील तग़लगी। (4) नाफ़े बिन हिलाल जमली। (5) हन्ज़ला बिन असअद शबामी। (6) ग़ुलाम तुरकी।

हस्बे ज़ैल उलमा और राावियाने हदीस थे

(1) मुस्लिम बिन औसजा। (2) हबशा बिन क़ैस नहमी। (3) ज़ाहिर बिन अम्र असलमी। (4) सवार बिन अबी उमैर नहमी। (5) अब्दुर्रहमान बिन अब्द रब अन्सारी। (6) हबीब बिन मज़ाहिर असदी। (7) नाफ़े बिन हिलाल जमली। (8) शौज़ब बिन अब्दुल्लाह। (9) अनस बिन हारिस असदी।

हस्बे ज़ैल शुजाआने रोज़गार थे जिनकी लड़ाईयों के कारनामे लोगों की ज़बान पर थे

(1) हुर बिन यज़ीद रियाही। (2) मुस्लिम बिन औसजा असदी। (3) हारिस बिन उमरउल क़ैस कन्दी। (4) अब्दुर्रहमान बिन अब्दुल्लाह बिन कदन अरजी। (5) सईद बिन अब्दुल्लाह हनफ़ी। (6) मसऊद बिन हज्जाज तैमी। (7) जुहैर बिन क़ैन बिजली। (8) आबिस बिन अबी शबीब शाकरी। (9) ज़ियाद बिन अरीब हमदानी। (10) सुवैद बिन अम्र बिन अबिल मताअ् ख़सअमी।

इसके अलावा इबादत और ज़ोहदो तक़वा में तो उनमें से अक्सर अफ़राद जिनके नाम मुन्दज–ए–बाला (ऊपर बयान हो चुका है) मुख़तलिफ़ उनवान के तहत में दर्ज किए जा चुके हैं शोरह–ए–आफ़ाक़ (मशहूर) थे बल्कि बाज़ अपनी मख़सूस शुजाअत के साथ इबादत व रियाज़त के लिए भी मशहूर थे जैसे आबिस बिन अबी शबीब और ज़ियाद बिन अरीब जिनके मुतअल्लिक़ तारीख़ में सराहत मौजूद है कि वह शब ज़िन्दादार (रातों को इबादत करने वाले) थे और सईद बिन अब्दुल्लाह हनफ़ी जिनके अवसाफ़ में इबादत का ख़ास तौर पर तज़किरा किया गया है।

यह सबके सब वह मायानाज़ अफ़राद थे जिनकी ज़िन्दगियाँ मुकम्मल तौर पर मेयारी हैसियत रखती थीं और इस्लामी अख़लाक़ की ज़िन्दा तस्वीर थीं।

इमाम हुसैन[अ0स0] को मैदाने करबला में ऐसे ही अफ़राद की ज़रूरत थी। आप जानते थेकि एक क़ायद को अपने साथ वालों की वजह से कितनी कशमश में मुबतिला होना पड़ता है। इसी लिए आप अवाम के मजमे को अपने साथ रखना मुनासिब न समझते थे। चुनाँनचे आपने सफ़रे इराक़ और करबला के क़याम के दौरान में हत्ता कि रोज़े आशूर तक बराबर हर हर मौक़े पर यह कोशिश जारी रखी कि जिन अशख़ास में कुछ भी ख़ामी हो, वह आपका साथ छोड़ कर चले जायें।

दर हक़ीक़त आप एक ऐसे अहम मक़सद की तकमील के लिए जो आपके पेशे नज़र था अवाम पर भरोसा कर ही नहीं सकते थे।

हुसैन[अ0स0] को जिस तरह का मुक़ाबला मन्ज़ूर था उसकी नौइयत सतही नज़रें कभी समझ ही न सकती थीं इसलिए कि इसके पहले जितनी भी लड़ाईयाँ कभी लड़ी गईं उनका मक़सद फ़रीक़े मुख़ालिफ़ को माद्दी (दुनयावी) तौर पर शिकस्त देना होता था। इस मक़सद के हासिल होने में ख़राबी वाक़े नहीं होती अगर एक हज़ार आदमियों में से सौ भी साबित क़दम रहें बशर्तेकि

वह बहादुरी से दुश्मन पर फ़तह हासिल करने में कामयाब साबित हो जायें। मगर इमाम हुसैन[अ0स0] को ताक़त का मुक़ाबला ताक़त से करना नहीं था बल्कि ताक़त का मुक़ाबला किरदार से। बातिल का मुक़ाबला हक़ से। तशद्दुद का मुक़ाबला साबित क़दमी से करना था। आपको अपने ख़ून की छींटों से एक ऐसी दुनिया को ख़्वाबे ग़फ़लत से जगाना मक़सूद था, जिस पर बेहिसी और बेहोशी छाई हुई थी। आप किरदार के ऐसे नमूने पेश करना चाहते थे जो मौजूदा और आइन्दा नस्लों के लिए मशअले राह बन सकें। यह मरहला बड़ा नाज़ुक था। यहाँ साथ वालों के इन्तेख़ाब का मसला बड़ा अहम था।

इमाम हुसैन[अ0स0] को अगर ताक़त का मुक़ाबला ताक़त से करना होता तो आपने वैसे इन्तेज़ाम किए होते। मगर चुँकि आपका मक़सद यह न था बल्कि आप चाहते थे कि बेहोश इस्लामी दुनिया में एहसासे बेदारी पैदा करे। इसके लिए आपके साथ मुल्के अरब के चीदा (चुने हुए) और मुन्तख़ब आबिद, ज़ाहिद, मुत्तक़ी और पारसा अफ़राद ही हो सकते थे। आप ने अपने साथ ऐसे ज़ईफ़ लिए जिनकी उमरों का बेशतर हिस्सा मेहराबे इबादत में गुज़र चुका था। क्योंकि ऐसे ही अफ़राद की कमरें कस कर तलवारें सूत कर मैदान में आने से मुसलमानों की आँखें खुल सकती थीं और वह यह सोचने पर मजबूर हो सकते थे कि इस्लाम पर क्या ऐसा वक़्त आ पड़ा है कि ऐसे ऐसे आबिद व ज़ाहिद भी तलवारें खींच कर मैदाने जंग में आ गए हैं।

हुसैन[अ0स0] के साथियों की शख़सियत का सिर्फ़ दूसरे मुसलमानों पर नहीं जो ग़ैर जानिबदार (किसी तरफ़ नहीं) या ख़ालियुज़ ज़हन (अक़्ल से ख़ाली) थे बल्कि खुद अफ़वाजे मुख़ालिफ़ पर जो हवा व हवस के पन्जों में असीर और हुकूमत की कोराना इताअत (अंधी तक़लीद) के शिकन्जे में गिरफ़्तार थीं ज़बरदस्त असर पड़ रहा था। जिसके मुख़तलिफ़ शवाहिद वाक़ेयात की सूरत में नज़रों के सामने आ रहे थे। मसलन मुस्लिम बिन औसजा की शहादत पर जब लशकरे मुख़ालिफ़ में खुशियाँ होने लगी थीं तो शब्स बिन रबई बोल उठा कि ''क्या ग़ज़ब की बात है कि मुस्लिम बिन औसजा का सा शख़्स क़त्ल हो और तुम लोग खुशियाँ मनाओ। मैंने ब–चश्मे खुद ख़िदमते इस्लाम में इस शख़्स के कारनामों का मुशाहदा किया है।'' या जब बुरैर हमदानी जंग कर रहे थे और लशकरे यज़ीद की जानिब से उन पर हमला करने के लिए एक शख़्स बढ़ा था तो उस पर फ़ौज के दूसरे लोगों ने मना किया था कि ''अरे यह तो बुरैर हाफ़िज़े क़ुरआन हैं जो मस्जिद में हिफ़्ज़े क़ुरआन कराया करते थे।'' या

जब आबिस बिन अबी शबीब मैदान में आए थे तो सुफ़ूफ़े मुख़ालिफ़ से यह आवाज़ बलन्द हुई थी कि ''यह शेरों का शेर है यह आबिस बिन अबी शबीब है।''

ज़ाहिर है कि इस क़िस्म के रिवायात दूसरों तक सिर्फ़ मुख़ालफ़ीन ही की ज़बानी पहुँच सकते थे और इसलिए यह अन्दाज़ा किया जा सकता है कि निसबतन इस क़िस्म के बहुत कम वाक़ेयात हम तक पहुँच सके हैं और इस तरह इनसे इस आम इज़तेराब और इन्तेशार का अच्छी तरह अन्दाज़ा हो जाता है जो हुसैनी मुजाहिदों के मुक़ाबले में अफ़वाजे यज़ीद में पाया जाता था।

उन असहाब की शिरकत वाक़ेय–ए–करबला की नौइयत को बरक़रार रखने के लिए निहायत ज़रूरी थी। अगर इमाम हुसैन[अ0स0] सिर्फ़ अपने ख़ानदान के अफ़राद के साथ करबला की सरज़मीन पर आ गए होते तो यह कहा और समझा जाता कि यह एक ख़ानदानी जंग थी जैसा कि आम तौर से बतलाया जाता है कि उमैया और बनी हाशिम एक ही ख़ानदान की दो शाख़ें थीं और उनमें बराबर ख़ाना जंगी रहा करती थी मगर इमाम हुसैन[अ0स0] के तक़रीबन तक़रीबन मुल्के अरब के हर क़बीले और मुख़तलिफ़ मक़ामात के मुमताज़ और सर बरआवुर्दा (नुमायाँ) अफ़राद मौजूद थे जिनमें नुक़त–ए–मुशतरक (एक होकर) सिर्फ़ उसूल का एहसास और एक ख़ास वजह यानी फ़रीज़–ए–दीनी का इत्तेहाद हो सकता था, और बस।

चुनाँनचे इस उसूल और मक़सद की अहमियत को ज़्यादा नुमायाँ कर दिया इमाम हुसैन[अ0स0] के इस तरीक़–ए–कार ने, कि आपने हर शख़्स से यह इसरार किया कि तुम मेरा साथ छोड़ दो और मुझे इस मुहिम को यक्क–ओ–तन्हा (अकेले) करने दो। यह सूरत इसलिए इख़्तियार की गई कि आम तौर पर अवाम साहिबुर राय नहीं होते जो भी राय होती है वह लीडरों की। अब अगर इमाम हुसैन[अ0स0] वाक़ेआत की हक़ीक़ी नौइयत से हर हर मुतनफ़्फ़िस (शख़्स) को पूरे तौर पर आगाह न करते तो यह सिर्फ़ आप ही का इक़दाम समझा जाता क्योंकि दूसरों ने सिर्फ़ आपके असर और दबाव से इस मुआमले में आपका साथ दिया होता। मगर इमाम हुसैन[अ0स0] यह चाहते थे कि हर दिमाग़ पर वज़न डाल कर उसे ख़ुद उसके फ़ेअ्ल का मोहर्रिक (तहरीक में शरीक) और ज़िम्मेदार बना दें। ऐसा नहीं था कि हुसैन[अ0स0] अपने मक़सद के लिए उन सबको नज़्र (क़ुरबान) कर रहे हों। बल्कि हक़ीक़तन उनमें से हर एक ने अपना सर हथेली पर रख कर हुसैनी मक़सद पर ख़ुद को निसार किया।

इसलिए उनमें से हर एक मोहर्रिक (शरीक) इन्फ़ेरादी (ज़ाती) और इजतेमाई (गुरूप की) हैसियत से हर तरह खुद उसका ज़मीर था और दर हक़ीक़त यही उनके सिबाते क़दम और इस्तेक़लाल (अटल होने) का बड़ा राज़ था।

अठ्ठाईसवाँ बाब

अक़रुबा–ए–इमाम (क़रीबी रिश्तेदार) यानी बनी हाशिम की कुर्बानियाँ

असहाब की शहादत के बाद अब इमाम हुसैन[अ०स०] के अइज़्ज़ा यानी बनी हाशिम की बारी थी। हक़ीक़त में असहाब की वफ़ादारी का यह एक हैरत अंगेज़ कारनामा था कि जब तक उनमें का एक भी बाक़ी रहा उन्होंने बनी हाशिम में से किसी एक फ़र्द को भी कोई गज़न्द (आँच नहीं आने दी) नहीं पहुँचने दिया। हालाँकि उस दरमियान में जंगे मग़लूबा भी हुई, तीरों की बारिश भी हुई मगर इस सब में कोई एक ज़ख़्म भी किसी एक हाशमी जवान या बच्चे को लगने का तारीख़ में पता नहीं है।

इन सबकी शहादत के बाद इमाम हुसैन[अ०स०] के बेटे, भाई, भतीजे और भान्जे एक एक करके जामे शहादत नोश करने लगे। चुनाँनचे उनके हालात भी तरतीबे शहादत के मुताबिक़ दर्ज किए जाते हैं।

(1)हज़रत अली अक्बर[अ०स०]

आप इमाम हुसैन[अ०स०] के फ़रज़न्द थे और सिलसिल–ए–बनी हाशिम के शोहदा में सबसे पहले आपकी ज़ात थी।[1] आपकी वालिदा लैला बिन्ते अबी मर्रा बिन उरवह बिन मसऊद बिन माबद अल–सक़फ़ी थीं और उनकी माँ मैमूना बिन्ते अबी सुफ़ियान बिन हर्ब।

इस तरह अली अकबर[अ०स०] बाप की तरफ़ से बनी हाशिम में दाख़िल और माँ की तरफ़ से क़बील–ए–सक़ीफ़ से तअल्लुक़ रखते थे। नीज़ आपकी वालिदा अमीरे शाम मुआविया बिन सुफ़ियान की भान्जी और यज़ीद की फूफीज़ाद बहन थीं। इस लिहाज़ से आपको मुवाफ़िक़ (तरफ़दार) और मुख़ालिफ़ सब ही इज़्ज़त की निगाह से देखते थे और आपकी अज़मत का एहसास रखते थे। यहाँ तक कि दरबारे शाम में आपका तज़किरा होता था।

---

[1]तबरी, जि/6, पेज/256, अख़बारूत तुवाल पेज/254

चुनाँनचे एक मर्तबा मुआविया ने अपने हाज़रीने दरबार से पूछा था कि तुम्हारे नज़दीक मन्सबे ख़िलाफ़त का सबसे ज़्यादा हक़दार कौन है? दरबारियों ने ख़ुशामद में कह दिया था कि ''आप'' मगर ख़ुद मुआविया ने कहा ''नहीं। सबसे ज़्यादा मुस्तहक़े ख़िलाफ़त हुसैन[अ0स0] के फ़रज़न्द अली हैं जिनके दादा रसूल अल्लाह थे। उनमें बनी हाशिम की शुजाअत, बनी उमैया की सख़ावत और क़बील–ए–सक़ीफ़ की ख़ुद्दारी की सिफ़तें यकजाई (एक होकर) हक़ीक़त से मौजूद हैं।''

उस दौर के उमवी शोअ्रा आपकी तारीफ़ व तौसीफ़ में अशआर भी नज़्म किया करते थे। चुनाँनचे अबू उबैदा और ख़लफ़ अहमर ने जो दो बड़े अदीब हैं। उन अशआर को नक़्ल किया है जो अली अकबर की शान में उस ज़माने में किए गए थे। उनका मज़मून यह है:

''कोई भी ज़मीन पर उनके मिस्ल आँखों से दिखाई नहीं दिया। उनके ज़ियाफ़त ख़ाने में मेहमानों के लिए गोश्त बराबर पकता रहता है और जब पक जाता है तो मेहमानों से अज़ीज़ नहीं किया जाता। जब उनके मेहमान ख़ाने की आग रौशन होती है तो उनकी इ़ज़्ज़त और बुज़ुर्गी उस आग में हरारत पैदा करती है। इससे मक़सूद यह होता है कि उस आग को मुसीबतज़दा और ग़रीब लोग देखें या किसी ऐसे शख़्स की नज़र पड़ जाए जो बेकस और बेबस हो और उसे देख कर मेहमान ख़ाने में चला आए। आप कभी दुनिया को दीन पर तरजीह नहीं देते और न हक़ को बातिल के एवज़ फ़रोख़्त करते हैं। मेरा रूए सुख़न (यह शेअ्र) लैला के फ़रज़न्द की तरफ़ है जो साहिबे अता व जूद (सख़ावत) हैं। वह जो बड़े हस्ब व नसब वाली ख़ातून के फ़रज़न्द हैं।''

मुमकिन है कि उमवी सियासत की बड़ी उम्मीदें आपकी ज़ात से वाबस्ता हों उसके मन्सूबे हों कि आपकी ननिहाली ख़ुसूसियत पर ज़ोर देते हुए आपके अवसाफ़ व कमालात को सराह कर फ़ित्री हैसयित से आपके दिल में यह एहसास जागुज़ीं (पैदा) किया जाए कि आप बनी हाशिम में एक इलाहिदा शान और हैसियत के मालिक हैं और इस तरह ख़ानदाने बनी हाशिम में फूट पड़ने के इम्कानात पैदा हों जायें।

अगर अली अकबर[अ0स0] की जगह कोई कम्ज़ोर नफ़्स का इन्सान होता तो बहुत मुमकिन था कि वह सियासत की इन चालों का शिकार हो जाता मगर आपका बलन्द और पाकीज़ा नफ़्स इस फ़रेब में आने वाला न था। आपने कभी इन बातों की तरफ़ ऐतिना (तवज्जो) भी न की। और अमवी फ़रेब कारियों की

शिकस्त पर आपने मैदाने करबला में फ़रज़न्दे फ़ातिमा ज़हरा[स0अ0] की हिमायत में अपना ख़ून बहाकर कभी न मिटने वाली मोहर सब्त कर दी और आपकी वालिद–ए–गिरामी लैला ने मुहब्बते आले रसूल में उन तमाम रूह फ़रसा (जान लेवा) मसाएबो आलाम को जो वाक़ए करबला के दौरान में और उसके बाद अहले बैते नुबूवत को मुतवातिर (लगातार) पेश आते रहे। इन्तेहाई सब्रो इस्तेक़लाल के साथ बरदाश्त करके उनके साथ अपनी रूहानी यगानगी (जानो दिल से) और इत्तेहाद का इतना मुकम्मल सुबूत फ़राहम कर दिया कि आज तक उनके मुतअल्लिक़ इस हक़ीक़त का बयान करना कि उन्हें ख़ानदाने बनी उमैया से क़रीब का तअल्लुक़ था तबियत पर बार गुज़रता है।

अली अकबर[अ0स0] सूरतो सीरत दोनों में रसूल अल्लाह[स0अ0] का नमूना थे और बहुत नुमायाँ शबाहत रखते थे। इसलिए इमाम हुसैन[अ0स0] को अपने फ़रज़न्द के साथ बड़ी मुहब्बत थी। करबला पहुँचने से क़ब्ल क़स्रे बनी मक़ातिल में इमाम हुसैन[अ0स0] ने ख़्वाब में एक सवार को देखा था जो यह कह रहा था कि यह लोग जा रहे हैं और मौत इनकी तरफ़ बढ़ रही है। चुनाँनचे उसे सुनकर अली अकबर ने आपसे सवाल किया था कि बाबा! क्या हम हक़ पर नहीं हैं? इमाम ने जवाब दिया था कि बेशक हम हक़ पर हैं। उस पर अली अकबर ने ख़ुश होकर कहा था कि फिर हमें मौत की क्या परवाह है।[1] इसी एक वाक़ए से अली अकबर के इस्तेक़लाल (मज़बूत इरादा) और हक़ की राह में फ़िदाकारी का अच्छी तरह अन्दाज़ा हो सकता है।

शैख़ मुफ़ीद [र0अ0] की तसरीह के मुताबिक़ अली अकबर की उम्र वाक़–ए–करबला में उन्नीस बरस की थी और हुस्नो जमाल में अपनी मिसाल आप थे।[2] वह अकबर इस लिहाज़ से कहे गए कि वाक़ेय–ए–करबला में शहीद होने वाले अली असग़र के लिहाज़ से बड़े थे मगर अपने बाप की औलाद में वह इमाम ज़ैनुल आबेदीन[अ0स0] से सिन में छोटे थे इसलिए उनके एतेबार से इनको अली असग़र कहना दुरूस्त है।[3]

हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने करबला में अपना एक ख़ास घोड़ा जिसका नाम लाहक़ था अली अकबर की सवारी के लिए दिया था।[4]

---

[1]इरशाद, पेज/237
[2]इरशाद, पेज/253
[3]इरशाद, पेज/265
[4]तबरी, जि/6, पेज/242

आप सुबहे आशूर ही से बेचैन होंगे कि मैदाने जिहाद में जाकर हाशमी शुजाअत के जौहर दिखाएं मगर हुसैनी तदबीर ने जो निज़ामे अमल क़ायम कर दिया था उसमें दरअन्दाज़ी (अपनी मर्ज़ी) का किसी को हक़ न था। जब सब असहाब शहीद हो चुके तो सबसे पहले अली अकबर ने इज़्ने जिहाद तलब किया।[1] इमाम ने अपने फ़रज़न्द को नरग़–ए–आदा में भेजने के मुतअल्लिक़ पसो पेश तो नहीं किया मगर दिल की बेचैनी ने जज़बात में तलातुम (हलचल) ज़रूर पैदा कर दिया। आपने आसमान की तरफ़ हाथ बलन्द करते हुए बारगाहे इलाही में अर्ज़ किया "ख़ुदा वन्दा गवाह रहना उन लोगों के ज़ुल्म पर कि अब जा रहा है उनकी तरफ़ वह नौजवान जो सूरत व सीरत और गुफ़्तार में तेरे रसूल के साथ सबसे ज़्यादा मुशाबेहत रखता है। जब हम तेरे पैग़म्बर की ज़ियारत के मुशताक़ होते तो इसका चेहरा देख लेते थे।"

कोई शक नहीं कि इस मुख़तसर मुनाजात के अलफ़ाज़ उस बेपाया अन्दोह (बेचैनी रंज) की पूरी तशरीह कर रहे हैं जो उस वक़्त इमाम के दिल पर ग़ालिब था मगर उसी के साथ वह उस इज़्ज़ते नफ़्स और बलन्द निगाह के हामिल हैं जो हुसैन[अ0स0] की ज़ात से मख़सूस थी उनको ज़्यादा क़लक़ है तो इस बात का कि इस वक़्त मेरे जद्दे बुज़ुर्गवार रसूल की तस्वीर मुझसे जुदा हो रही है।

यही वह इम्तियाज़ी शान है जिससे हुसैन[अ0स0] हक़ीक़तन हुसैन मालूम होते हैं "जा रहा है" के अलफ़ाज़ में इज़्ने जिहाद लाज़मी तौर पर मुज़मर (छिपा) है। चुनाँनचे इस मुनाजात के उनवान ही से अली अकबर समझ गए कि मुझे मैदाने जंग में जाने की इजाज़त हासिल है। अब मैदान में आए और यह रजज़ पढ़ने लगे।

"मैं हूँ अली, हुसैन[अ0स0] का बेटा और अली[अ0स0] का पोता। रब्बे काबा की क़सम सबसे ज़्यादा हमको रसूल अल्लाह की विरासत का हक़ पहुँचता है।

ख़ुदा की क़सम हमारे बारे में फ़ैसला ज़िनाज़ादा की औलाद हरगिज़ नहीं कर सकती।[2]

यह रजज़ शोहदा–ए–करबला में सबसे अलग ख़ास अन्दाज़ का हामिल था। दूसरे शोहदा के रजज़ में ज़्यादा तर शुजाआने अरब के मामूल के मुताबिक़ अपनी शुजाअत का इज़हार मक़सूद था या इमाम[अ0स0] से अपने अहदे

---

[1]इरशाद, पेज/253

[2]तबरी, जि/6, पेज/256, इरशाद, पेज/253

वफ़ा की तजदीद (फिर से एलान किया) लेकिन अली अकबर का रजज़ एक तबलीग़ी हैसियत रखता था। उसके मुख़तसर अलफ़ाज़ में रसूल अल्लाह[स0अ0] के साथ अपनी क़राबतदारी और इस्तेहक़ाक़े विरासत(हक़दार) और अपने मद्दे मुक़ाबिल की पस्ती को दिखाते हुए उसकी इताअत से इन्कार पर ज़ोर दिया गया था। गोया इमाम हुसैन[अ0स0] के मक़ासिदे जंग का एलान किया जा रहा था।

जनाबे अली अकबर[अ0स0] ने कई हमले किए।[1] और बराबर यही अशआर पढ़ रहे थे। इस शदीद जंग में आप ख़ुद भी बहुत ज़ख़्मी हो गए थे। मगर फिर भी पै दर पै हमले किए जाते थे। फ़ौजे मुख़ालिफ़ में के एक सिपाही मुर्रा बिन मुन्कज़ बिन नोमान अबदी ने अपने साथियों से कहा "अगर अब की मर्तबा इस जवान ने फिर हमला किया और मेरी तरफ़ से गुज़रा तो मैं ज़रूर उसके बाप को उसके ग़म में मुबतिला करूँगा।"

ऐसा ही हुआ अली अकबर तलवार हाथ में लिए दुश्मनों पर हमला आवर हो रहे थे कि मुर्रा ने पुश्त की तरफ़ से नैज़ा मारा जो सीने के पार हो गया।

अली अकबर घोड़े से ज़मीन पर गिरे और दुश्मनों ने चारों तरफ़ से घेर कर आपके जिस्म को तलवारों से टुकड़े टुकड़े कर डाला।

फ़ित्री हैसियत से अली अकबर की शहादत का हुसैन[अ0स0] पर बड़ा असर हुआ आपने फ़रमायाः "ख़ुदा फ़ना करे उस जमाअत को जिसने तुझे क़त्ल किया। ऐ मेरे फ़रज़न्द कितनी जुरअतें बढ़ गईं उन लोगों की ख़ुदा और उसके रसूल[स0अ0] के मुक़ाबले में! तेरे बाद दुनिया की ज़िन्दगी पर ख़ाक है।"[2]

आप नौजवानाने बनी हाशिम की तरफ़ मुतवज्जे हुए और फ़रमाया कि "उठाओ। अपने भाई की लाश।" सब नौजवान आगे बढ़े और उन्होंने अली अकबर की लाश को लाकर उस ख़ैमे के आगे रख दिया जो मरकज़े सिपाह की हैसियत रखता था।[3]

(2)अब्दुल्लाह बिन मुस्लिम बिन अक़ील

आपकी वालिदा रुक़य्या बिन्ते अली बिन अबी तालिब थीं जो उम्मे हबीब बिन्ते एबाद बिन रबिया बिन यहिया बिन अलक़मा तग़लबिया के बत्न से थीं जिन्हें हज़रत अली[अ0स0] ने जंगे यमामा या ऐनुत्तम्र के असीरों में से ख़रीद

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/254, तबरी, जि/6, पेज/256

[2]तबरी, जि/6, पेज/256, इरशाद, पेज/253

[3]तबरी, जि/6, पेज/256

फ़रमाया था। इस एतेबार से अब्दुल्लाह इमाम हुसैन[अ०स०] के चचाज़ाद भाई के फ़रज़न्द भी थे और भान्जे भी।

मुस्लिम बिन अक़ील की आलमे गुरबत में शहादत भी एक ताज़ा सानेहे की हैसियत रखती थी और उसका असर इमाम हुसैन[अ०स०] के दिल पर बहुत ज़्यादा था। चुनाँनचे इसी लिए शबे आशूर आपने अपने असहाब को मुजतमा करके जो तक़रीर फ़रमाई थी उसके आख़िर में औलादे अक़ील से ख़ास तौर पर ख़िताब फ़रमाया था कि ''तुम्हारे लिए मुस्लिम की शहादत काफ़ी है। तुम चले जाओ। मैं तुमको इजाज़त देता हूँ।'' मगर उन सबने मुत्तफ़िक़ होकर कहा था कि यह मुमकिन नही हम सब भी आप पर अपनी जानें निसार करेंगे।[1]

उनमें सबसे पहले शहीद अब्दुल्लाह थे। मालूम होता है कि आप बहुत कमसिन थे अली अकबर की शहादत से ख़ैम–ए–हुसैनी में जो कोहराम बरपा हुआ तो कमसिन बच्चे घबरा कर बाहर निकल पड़े। बेरहम दुश्मनों को मौक़ा मिल गया। अम्र बिन सबीह सदाई ने अब्दुल्लाह बिन मुस्लिम बिन अक़ील को तीर लगाया।[2] जो आपकी पेशानी की तरफ़ आया आपने घबराहट में हाथ अपना पेशानी पर रखा। तीर ने हाथ को पेशानी के साथ छेद दिया। फिर दूसरा तीर आया जो सीने पर पड़ा और उसने काम तमाम कर दिया।[3] दूसरी रिवायत यह है कि एक ज़ालिम ने नैज़े का वार किया और सीने पर मारा। उससे आपने शहादत पाई।[4]

(3) मुहम्मद बिन मुस्लिम बिन अक़ील

अब्दुल्लाह के मुख़तलिफ़ुल बत्न (दूसरी माँ से) भाई थे। इब्ने जूज़ी ने लिखा है कि आपकी वालिदा उम्मे वलद थीं। अब्दुल्लाह की शहादत के बाद औलादे अबी तालिब ने एक साथ हमला कर दिया। इमाम हुसैन[अ०स०] ने आवाज़ दी ''हाँ मेरे चचा के फ़रज़न्द मौत के मरहले को सर कर दो।'' उनमें से मुहम्मद बिन मुस्लिम अबू मरहम अज़दी और यक़ीत बिन अयास जहनी के हाथ से शहीद हुए।

---

[1] इरशाद पेज/244
[2] अख़बारूत तुवाल पेज/254
[3] तबरी, जि/6, पेज/256
[4] इरशाद पेज/253

(4)जाफ़र बिन अक़ील

अब्दुल्लाह बिन मुस्लिम की शहादत के बाद जाफ़र बिन अक़ील ने जंग की, आप यह रजज़ पढ़ रहे थे। ''मैं मक्के का रहने वाला हूँ! तालिब के ख़ानदान का हाशिम की नस्ल और ग़ालिब के घराने से। यक़ीनन हम तमाम क़बाएल के सरदार हैं और हुसैन[अ०स०] तमाम पाकीज़ा अशख़ास में सबसे ज़्यादा पाकीज़ा।''

बिल आख़िर आपको अब्दुल्लाह बिन अरज़ा ख़सअमी ने तीर मार कर शहीद किया।[1]

(5)अब्दुर्रहमान बिन अक़ील

आप मैदाने जंग में आए। रजज़ पढ़ी और जिहाद किया। आख़िर उसमान बिन ख़ालिद जहनी और बशीर बिन ख़ौत हमदानी दोनों ने मिलकर आपको शहीद कर दिया।[2] दूसरा क़ौल यह है कि अब्दुल्लाह बिन उरवा ख़सअमी ने तीर का निशाना बनाया।[3]

(6) मुहम्मद बिन अबी सईद बिन अक़ील

आपने मैदाने करबला में जिहाद किया। और यक़ीत बिन यासिर जहनी ने आपकी पेशानी पर तीर मारा जिससे आप शहीद हो गए।

(7)मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह बिन जाफ़र बिन अबी तालिब

आप इमाम हुसैन[अ०स०] के चचाज़ाद भाई के फ़रज़न्द थे। आपकी वालिदा का नाम ख़ौसअ् बिन्ते हफ़सा बिन सक़ीफ़ था और वह क़बील–ए–बनी बक्र बिन वाएल से थीं आप और आपके भाई औन जो जनाबे ज़ैनब बिन्ते अली[अ०स०] के फ़रज़न्द थे दोनों अपने वालिदे बुज़ुर्गवार अब्दुल्लाह बिन जाफ़र के भेजे हुए आकर इराक़ के रास्ते में क़ाफ़िल–ए–हुसैनी से मुलहक़ हुए थे उस वक़्त जब इमाम मक्के से बाहर निकल चुके थे।

रोज़े आशूर अब्दुर्रहमान बिन अक़ील के बाद आप मैदान में आए और जिहाद किया और बिल आख़िर आमिर बिन नहशल तमीमी के हाथ से शहीद हुए।[4]

---

[1]तबरी, जि/6, पेज/356

[2]तबरी, जि/6, पेज/256

[3]अख़बारूत तुवाल पेज/254

[4]तबरी, जि/6, पेज/256, इरशाद पेज/252

(8) औन बिन अब्दुल्लाह बिन जाफ़र

आप ज़ैनब बिन्ते अली अ०स० के बत्न से थे और इस तरह इमाम हुसैन अ०स० के हक़ीक़ी भान्जे थे अपने भाई मुहम्मद के बाद आप मैदाने कारज़ार में आए और अब्दुल्लाह बिन क़तबा ताई के हाथ से दरज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए।[1]

(9) क़ासिम बिन हसन

आप इमाम हुसैन अ०स० के बड़े भाई हज़रत इमाम हसन अ०स० के फ़रज़न्द थे। अभी आप हद्दे बुलूग़ को न पहुँचे थे कि मारक–ए–करबला दरपेश हुआ और हुस्नो जमाल का यह आलम था कि जब मैदाने जंग में आए तो फ़ौजे दुश्मन के एक सिपाही का बयान है यह मालूम हुआ कि जैसे चाँद का एक टुकड़ा सामने नमूदार हो गया। उनके जिस्म पर ज़िरह भी न थी बल्कि सिर्फ़ एक पैराहन (लिबास) पहने हुए थे। पैर में नालैन (चप्पल) ऐसे थे जिनमें से एक का तस्मा टूटा हुआ था।[2] साफ़ ज़ाहिर है कि उन्हें असलेह–ए–जंग से मुसलेह (हथियार से लैस) नहीं किया गया था। सिर्फ़ हाथ में तलवार लिए हुए वह नुसरते इमाम के जोश से मैदान में आ गए और हमला कर दिया।

उमर बिन सअ्द नफ़ील अज़दी की नज़र जो क़ासिम पर पड़ी तो उसने कहा किः

“मैं इस बच्चे को क़त्ल करूँगा। बाज़ लोगों ने रोका भी मगर उसने न माना और क़ासिम के पास आकर सर पर तलवार लगाई। क़ासिम मुँह के बल ज़मीन पर गिर गए और अपने चचा को मदद के लिए पुकारा। हुसैन अ०स० ग़ज़बनाक शेर की तरह झपट कर क़रीब पहुँचे। उमर बिन सअ्द बिन नुफ़ैल जिसने क़ासिम को क़त्ल किया था अभी पास ही मौजूद था। आपने उसपर तलवार का वार किया जिससे उसका हाथ कोहनी से कट कर गिर गया। लशकरे मुख़ालिफ़ उसके बचाने के लिए हुसैन अ०स० पर टूट पड़ां मगर इस तरह चारों तरफ़ से बेतहाशा घोड़े दौड़ा कर वह लोग उसकी कुमक को आए कि वह खुद अपने हवाख़्वाहों के घोड़ों से पामाल होकर हलाक हो गया।

जब मजमा मुन्तशिर हुआ तो हुसैन अ०स० क़ासिम के सिरहाने खड़े होकर हसरत व अन्दोह के साथ फ़रमाने लगे।

---

[1] तबरी, जि/6, पेज/256, इरशाद पेज/253

[2] तबरी, जि/6, पेज/256, इरशाद पेज/253–254

"तेरे चचा पर बहुत शाक़ है यह अम्र कि तू उसे पुकारे और वह तेरी ख़बर न ले सके या तेरी आवाज़ पर आने के बाद भी तुझे कोई फ़ाएदा न पहुँचा सके।"

उसके बाद आपने खुद क़ासिम की लाश उठाई इस तरह कि सीने से सीना मिला हुआ था और पैर ज़मीन पर ख़त देते जाते थे और जहाँ अली अकबर और दूसरे अज़ीज़ों की लाशें पहले से मौजूद थीं क़ासिम की लाश को भी वहीं लाकर लिटा दिया।[1]

(10) अबू बक्र बिन हसन[अ०स०]

आप इमाम हसन[अ०स०] के फ़रज़न्द थे। आपकी वालिदा का नाम उम्मे इसहाक़ बिन्ते तलहा अल–तमीमी। अब्दुल्लाह इब्ने अक़बा ग़नवी ने तीर मारा जिससे आप शहीद हो गए।[2]

(11)मुहम्मद बिन अली बिन अबी तालिब[अ०स०]

आप हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ०स०] के फ़रज़न्दों में मुहम्मद बिन हनफ़िया से छोटे थे इसलिए मुहम्मदुल असग़र कहलाते थे आपकी वालिदा ब–क़ौले असमा बिन्ते उमैस ख़सअमिया और बक़ौले उम्मे वलद।[3]

मुहम्मद अपने वालिदे बुज़ुर्गवार के बाद अपने भाई इमाम हसन[अ०स०] और फिर इमाम हुसैन[अ०स०] के साथ रहे और रोज़े आशूर मैदाने जिहाद में बहुत से दुश्मनों को क़त्ल किया। आख़िर क़बील–ए–बनी अहान बिन दारिम के एक शख़्स ने आपको तीर मारा जिससे आप दर्ज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए और वह आपका सर जुदा करके उमरे सअ्द के पास ले गया।[4]

(12) अब्दुल्लाह बिन अली

आपकी वालिदा उम्मुल बनीन फ़ातिमा बिन्ते अबुल अजल हिज़ाम इब्ने ख़ालिद बिन रबिया बिन आमिर अल वहीद बिन कअ्ब बिन आमिर इब्ने कलाब थीं।[5] हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ०स०] ने अपने भाई अक़ील से जो अन्साबे (नसब की जमा) अरब से खूब वाक़िफ़ थे यह फ़रमाइश की थी कि ऐसे ख़ानदान की लड़की तजवीज़ कीजिए जो बड़े बहादुराने अरब की नस्ल से हो,

---

[1]तबरी, जि/6, पेज/256, इरशाद पेज/254

[2]अख़बारूत तुवाल, पेज/354, इरशाद पेज/254

[3]तबरी, जि/6, पेज/89) और तीसरे क़ौल के मुताबिक़ लैला बिन्ते मसऊद दारमिया थीं। इरशाद पेज/189

[4]तबरी, जि/6, पेज/257

[5]तबरी, जि/6, पेज/89 व 336

ताकि उससे जो औलाद हो वह भी बड़ी बहादुर और जंग आज़मा हो। अक़ील ने कहा था कि उम्मुल बनीन कलाबिया से अक़्द कीजिए जिसके बाप दादा बड़े शुजाअ् व बहादुर हैं। चुनानचे आपने उम्मुल बनीन से अक़्द कर लिया था।

उनके सिलसिल–ए–अजदाद (दादा परदादा वग़ैरह) में मलाएबुल असना अबू बर्राअ् और तुफ़ैल फ़ारस क़रज़न और आमिर बिन तुफ़ैल मुल्के अरब में बहुत मशहूर सूरमा गुज़र चुके थे।

लुबैद बिन रबीआ शाएर जो मुअल्लक़ात (काबे पर क़सीदे लटकाए जाते थे उन में से उनका क़सीदा भी था) में से एक क़सीदे का मुसन्निफ़ था वह भी इसी ख़ानदान से था चुनाँनचे उसने अपने ख़ानदानी ख़ुसूसियात पर नोमान बिन मुन्ज़िर बादशाह हीरा के भरे हुए दरबार में इन अलफ़ाज़ में फ़ख़्र किया था:

نحن بنو ام البنين الاربعہ
ونحن خیر عامر بن صعصعہ
الضاربون الھام وسط المجمعہ

इस आवाज़ को तमाम क़बाएले अरब के नुमाइन्दों ने ख़ामोशी के साथ सुना था इन अशआर से ज़ाहिर होता है कि उम्मुल बनीन इस सिलसिले में पहले भी कोई मशहूर ख़ातून गुज़र चुकी थीं और उनके भी चार बेटे थे जो बड़ी शोहरत के मालिक थे।

उम्मुल बनीन के बत्न से हज़रत अली[अ0स0] के चार फ़रज़न्द थे:

(1) अबुल फ़ज़लिल अब्बास जो अपने भाईयों में सबसे बड़े थे। (2) अब्दुल्लाह जिनके हालात यहाँ दर्ज किए जा रहे हैं। (3) उसमान। (4) जाफ़र जो सबसे छोटे थे।

अब्दुल्लाह बिन अबील महल बिन ख़िराम बिन ख़ालिद बिन रबीआ बिन आमिर अल–वहीद उम्मुल बनीन का भतीजा था और कूफ़े के बड़े एमायद (नामवर लोगों) में शुमार होता था। इत्तेफ़ाक़ से उस वक़्त जब शिम्र अब्दुल्लाह बिन ज़ियाद का ख़त लेकर करबला की जानिब रवाना हो रहा था, वह भी दरबारे इब्ने ज़ियाद में मौजूद था। उसने इब्ने ज़ियाद से कहा कि ''हमारे ख़ानदान की एक लड़की के फ़रज़न्द हुसैन[अ0स0] के साथ हैं। आप उनके लिए अमान नामा लिख दीजिए। यह इस्तदआ (दरख़्वास्त) इब्ने ज़ियाद ने मन्ज़ूर कर ली और अब्बास और आपके भाईयों के लिए अमान नामा लिख दिया जिसे

अब्दुल्लाह बिन अबी महल ने अपने एक गुलाम करनान नामी के हाथ करबला रवाना कर दिया। वह उसको लेकर उन मुजाहिदों के पास पहुंचा और कहा कि आपके मामूज़ाद भाई ने इब्ने ज़ियाद से हासिल करके भेजा है उन चारों ने यकज़ुबान होकर कहा कि हमारे भाई को हमारी तरफ़ से सलाम कह देना और कहना कि हमको इब्ने ज़ियाद के अमान नामे की ज़रूरत नहीं है। अल्लाह की अमान हमारे लिए बहुत काफ़ी है।[1] खुद शिम्र ज़िल जौशन भी इसी ख़ानदान यानी आले वहीद कलाबी नस्ल आमिर बिन सअ्सा से था।[2] चुनाँनचे करबला पहुँच कर इब्ने ज़ियाद का ख़त उमरे सअ्द तक पहुँचाने के बाद सबसे पहला काम जो उसने किया वह यही था कि जमाअते हुसैनी के सामने खड़े हो कर आवाज़ दी कि "कहाँ हैं हमारी बहन के बेटे।" यह सुनकर अब्बास[अ0स0] और आपके तीनों भाईयों ने सामने आकर पूछा कि हमसे क्या कहना चाहते हो? उसने कहा "तुम लोग अमान में हो।" मुजाहिदों ने तेवर बदल कर जवाब दिया कि "खुदा लानत करे तुझ पर और तेरे अमान पर, हमारे लिए अमान है और फ़रज़न्दे रसूल के लिए अमान नहीं है।"[3]

चूँकि रोज़े आशूर अन्सार व अक़रुबा–ए–हुसैन[अ0स0] में से हर फ़र्द यह चाहता था कि जहाँ तक मुमकिन हो अपने से वाबस्तगी रखने वाली हर अज़ीज़ हस्ती को खुद अपनी ज़िन्दगी में राहे हक़ में निसार किया जाए। इसी बिना पर जनाबे अब्बास[अ0स0] ने भी एक एक करके अपने भाईयों को अपने पहले मैदान में भेजा और फ़रमाया कि "बढ़ो अपने आक़ा पर निसार हो।[4]ताकि तुमको क़त्ल होते हुए मैं अपनी आँखों से देख लूँ और उसको अपने लिए तोश–ए–आख़िरत समझूँ। क्योंकि तुम्हारे तो कोई औलाद है नहीं।[5] मतलब यह यह था कि अगर तुम्हारे औलाद होती और क़ाबिले जंग होती तो तुम उसका इन्तेज़ार करते कि पहले उसको अपने सामने क़त्ल होने भेज दें तो खुद जायें। चुनाँनचे अब्दुल्लाह जो आपके बाद उन भाईयों में सबसे बड़े थे मैदान में गए और शदीद जंग के बाद हानी बिन सुबैत हज़रमी की तलवार से शहीद हुए।[6]

---

[1]तबरी, जि/6, पेज/236

[2]अख़बारूत तुवाल, पेज/254

[3]तबरी, जि/6, पेज/237, इरशाद, पेज/242

[4]अख़बारूत तुवाल, पेज/255

[5]इरशाद, पेज/255

[6]तबरी, जि/6, पेज/257, इरशाद, पेज/255, देनवरी ने हानी बिन सवीब हज़रमी लिखा है। अख़बारूत तुवाल पेज/255

(13)उसमान बिन अली[अ०स०]

आप अबुल फ़ज़लिल अब्बास के दूसरे भाई थे, जब आपकी विलादत हुई तो अली इब्ने अबी तालिब[अ0स0] ने आपका नाम उसमान रखते हुए फ़रमाया था कि मैं अपने दोस्त उसमान बिन मज़ऊन के नाम पर इस मौलूद का नाम रख रहा हूँ। यह उसमान इब्ने मज़ऊन बड़े जलीलुल क़द्र सहाबी थे। रसूल अल्लाह[स0अ0] के सामने उनका इन्तेक़ाल हुआ था और आपने उनको जन्नतुल बक़ी में दफ़्न किया था।

जनाबे अब्बास[अ0स0] ने अब्दुल्लाह के बाद उसमान को मैदाने जंग में भेजा। चुनाँनचे आपने जिहाद किया और बिल–आख़िर ख़ूली बिन यज़ीद असबही के तीर से ज़मीन पर गिरे और बनी अबान बिन दारिम के एक शख़्स ने आपका सर जिस्म से जुदा किया।[1]

(14) जा़फ़र बिन अली[अ०स०]

आप उम्मुल बनीन की औलाद में सबसे छोटे थे। उसमान की शहादत के बाद जनाबे अब्बास आपकी तरफ़ मुतवज्जेह हुए और कहा ''जाओ! जैसे तुम्हारे दोनों भाईयों का सदमा मैंने बरदाश्त किया वैसे तुम्हारा भी बरदाश्त करूँ। क्योंकि तुम में से किसी के भी औलाद नहीं है।''

चुनाँनचे जाफ़र ने भी जिहाद किया और बिल आख़िर हानी बिन सुबैत हज़रमी के हाथ से शहीद हुए।[2]

एक रिवायत के मुताबिक़ अब्दुल्लाह के बाद जाफ़र और जाफ़र के बाद उसमान शहीद हुए।[3]

(15) अबुल फ़ज़लिल अब्बास बिन अली[अ०स०]

आपकी माँ उम्मुल बनीन के ख़ानदानी खुसूसियात का तज़किरा इसके पहले आपके भाई अब्दुल्लाह के हालात में हो चुका है।

सन 36 हिजरी में आपकी विलादत हुई थी। चौदह बरस आपने अपने वालिदे बुज़ुर्गवार के साय–ए–आतिफ़त (मेहरबान) में परवरिश पाई। सन 40 हिजरी में हज़रत अली[अ0स0] की शहादत के बाद से दस बरस आप अपने भाई इमाम हसन[अ0स0] के ज़ेरे तरबियत रहे और सन 50 हिजरी में इमाम हसन[अ0स0] के ज़हरे दग़ा से शहीद होने के बाद से आशूर मुहर्रम सन 61 हिजरी तक का

---

[1]तबरी, जि/6, पेज/257, इरशाद, पेज/255

[2]तबरी, जि/6, पेज/257, इरशाद, पेज/255

[3]अख़बारूत तुवाल, पेज/255

ज़माना आपने अपने भाई इमाम हुसैन[अ०स०] की रिफ़ाक़त में बसर किया। वाक़ेय–ए–करबला में आपकी उम्र 34 बरस की थी।

आप हुस्नो जमाल और कुव्वतो शुजाअत में अपने ज़माने में बहुत मुमताज़ दर्जा रखते थे और आम तौर पर क़मरे बनी हाशिम के लक़ब से मशहूर थे। आप ऐसे क़दआवर भी थे कि अस्पे दो रिकाबा (दो रिकाब का घोड़ा) पर सवार होने के बावजूद आपके पावँ ज़मीन पर ख़त देते जाते थे।

यह तो आपकी ज़ाहरी शान थी और बातनी औसाफ़ के मुतअल्लिक़ इमाम जाफ़रे सादिक[अ०स०] ने फ़रमाया है कि "हमारे चचा अब्बास बिन अली[अ०स०] बड़े दींदार और कामिलुल ईमान थे। आपने हुसैन बिन अली[अ०स०] का साथ देते हुए मारिक–ए–करबला में कारहाये नुमायाँ अन्जाम दिए और आख़िर दरज–ए–श्हादत पर फ़ाएज़ हुए।"

नहर पर फ़ौजे मुख़ालिफ़ के क़ब्ज़े के बाद जब अतफ़ाले (बच्चों) हुसैन[अ०स०] पर प्यास का ग़ल्बा हुआ तो अबुल फ़ज़लिल अब्बास नहर से पानी लाने पर मामूर हुए। इमाम हुसैन[अ०स०] ने तीस सवार और बीस प्यादे बीस मश्कों के साथ अपके हमराह कर दिए थे। चुनाँनचे जब नहर के क़रीब पहुंचे तो अम्र बिन हज्जाज जो नहर का मुहाफ़िज़ था अपनी सिपाह के साथ सद्दे राह (रूकावट बना) हुआ। अब्बास[अ०स०] ने सवारों की जमाअत के साथ उसका मुक़ाबला किया और प्यादों से फ़रमाया कि तुम तेज़ी से अपनी मश्कें पानी से भर लो। मुख़तसर यह कि अब्बास[अ०स०] की क़यादत में मश्कें पानी से भर कर ख़्यामे हुसैनी में पहुँचा दी गईं।[1] इसी वाक़ेए की बिना पर आपको "सक़्क़ा" का लक़ब हासिल हुआ।

इब्ने ज़ियाद के तहरीरी अमान नामे को ठुकरा देना आपकी वफ़ा शिआरी का एक बड़ा कारनामा था। इस वाक़ये में अगरचे तमाम भाई मुशतरक हैसियत रखते थे मगर बहरहाल आपके छोटे भाई सब आपके मुतीअ् (कहने में) थे। इसलिए यह समझना बिल्कुल दुरूस्त है कि दीगर भाईयों की वफ़ादारी में जनाबे अब्बास[अ०स०] की इन्तेहाई पुख़्तगी और जाँ निसारी बहुत बड़ी हद तक असर अन्दाज़ थी।

जब मुहर्रम की नवीं तारीख़ सहपहर के वक़्त उमरे सअ्द ने अपनी फ़ौज के साथ अन्सारे हुसैन[अ०स०] पर दफ़अतन (अचानक) हमला कर दिया था तो

---

[1]अख़बारूत तुवाल, पेज/253

अब्बास को इमाम ने उस अचानक हमले का सबब दरयाफ़्त करने पर मामूर फ़रमाया।[1]

इस वाक़ये से ज़ाहिर है कि अब्बास की सन्जीदगी, मुआमला फ़हमी, वफ़ादारी और शुजाअत पर इमाम हुसैन[अ0स0] को कितना एतेमाद था।

चुनाँनचे अब्बास ने इन्तेहाई सब्रो सुकून के साथ इस नाज़ुक मरहले को सर किया और एक शब के लिए जंग मुलतवी करा ली।

शबे आशूर जब इमाम ने अपने तमाम असहाब को जमा करके फ़रमाया था कि मैं अपनी बैयत से तुम सबको आज़ाद करता हूँ, जिसका जिधर दिल चाहे चला जाए बल्कि तुम में का एक एक मेरे एक एक अज़ीज़ को भी अपने साथ लेता जाए तो अब्बास बेताब हो गए थे और सबसे पहले आपने इस तरह इज़हारे ख़याल फ़रमाया था कि ''हम ऐसा किस लिए करें? क्या इसलिए कि आपके बाद ज़िन्दा रहें? हरगिज़ नहीं खुदा वह रोज़ हमको न दिखाए।'' आपके बाद दूसरे अइज़्ज़ा ने भी इसी क़िस्म के ख़यालात का इज़हार किया था।[2]

सुब्हे आशूर जब हुसैन[अ0स0] ने अपनी इस मुख़तसर सी जमाअत को भी लशकर के उनवान से तरतीब दिया तो अलमदारी का शरफ़ अबुल फ़ज़लिल अब्बास को अता हुआ और आपने इस आन बान के साथ हुसैनी परचम की इज़्ज़त को क़ायम रखा जो दुनिया की तारीख़ में यादगार है।

मैदाने जंग में अब्बास व अली अकबर साए की तरह इमाम हुसैन[अ0स0] के साथ साथ रहते थे। चुनानचे उस वक़्त जब आपने इतमामे हुज्जत की ग़रज़ से नाक़े पर सवार हो कर सुफ़ूफ़े (सफ़ों) मुख़ालिफ़ को मुख़ातब करते हुए तक़रीर फ़रमाई और आपकी आवाज़ ख़यामे हरम तक पहुँची और उनमें से शोर रोने का बलन्द हुआ था तो आपने अब्बास व अली अकबर को भेजा कि उन्हें ख़ामोश करो। रोने का वक़्त बाद को आएगा।

अब्बास बिन अली[अ0स0] की शुजाअत का एक बेनज़ीर मुरक़्क़ा वह था जब उमर बिन ख़ालिद सैदावी वग़ैरह चार मुजाहिद एक साथ सुफ़ूफ़े मुख़ालिफ़ पर हमला आवर हुए थे और लशकर में घुस कर शमशीर ज़नी करते हुए चारों तरफ़ से घिर कर अन्सारे हुसैन[अ0स0] से बिल्कुल जुदा हो गए थे। यह देखकर हुसैन[अ0स0] ने अब्बास को उनकी इमदाद के लिए भेजा था चुनाँनचे आप ने तने

---

[1]इरशाद, पेज/243

[2]इरशाद, पेज/234

तन्हा हमला करके ऐसी तलवार चलाई कि लशकरे मुख़ालिफ़ परागन्दा हो गया और आप उन ज़ख़्मी मुजाहिदों को अपने मुस्तक़र (महफ़ूज़) की तरफ़ वापस ले चले थे।

हज़रत अबुल फ़ज़लिल अब्बास की शहादत असहाब व अइज़्ज़ा में से सबसे आख़िर में हुई है। देनवरी का बयान है कि जनाबे अब्बास[अ0स0] हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के सामने खड़े होकर तने तन्हा आपकी हिफ़ाज़त में मसरूफ़ हो गए इस तरह कि जिस तरफ़ हज़रत मुड़ते थे अब्बास भी रूख़ मोड़ देते थे। यहाँ तक कि आप दर्जे–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए और उसके बाद इमाम बिल्कुल अकेले रह गए।[1]

दूसरी रिवायत है कि जब अब्बास अपने तीनों भाईयों को इमाम पर निसार कर चुके और सिवाए अब्बास और हुसैन[अ0स0] के कोई ऐसा बाक़ी नहीं रह गया जो नुसरते हक़ में जिहाद करे तो अबुल फ़ज़लिल अब्बास ने हुसैन[अ0स0] से इज़्ने जिहाद तलब किया।

इमाम हुसैन[अ0स0] ने अपने भाई के सरापा पर हसरतो यास से नज़र की और फ़रमायाः " तुम तो मेरे अलमदार हो।;; आपने अर्ज़ किया "अब मुझको बिल्कुल ताबे ज़ब्त बाक़ी नहीं और ज़िन्दगी मेरे लिए बारे गराँ हो रही है।" इमाम ने फ़रमायाः "अच्छा जाते हो तो पानी की फ़िक्र करना" अब्बास ने मशकीज़ा ले लिया और नहर की तरफ़ रवाना हुए फ़ौजे दुश्मन ने मज़ाहमत की। आपने हमला किया सिर्फ़ इसलिए कि नहर का रास्ता साफ़ हो जाए।

चुनाँनचे आप अपनी कोशिश में कामयाब हुए। नहर पर पहुँच कर मशकीज़ा पानी से भर लिया। और चूँकि खुद भी आप बहुत प्यासे थे इसलिए फ़ितरी तौर पर एक चुल्लू पानी का लेकर मुँह के क़रीब ले गए थे। इस तरह कि जैसे पीना चाहते हैं मगर हुसैन[अ0स0] और अतफ़ाले (बच्चे) हुसैन[अ0स0] की प्यास याद आ गई और आपने पानी चिल्लू से फेंक दिया और उसी तरह भरा हुआ मशकीज़ा दोश पर सँभाल कर नहर से निकले और ख़ैमागाहे हुसैनी की जानिब रवाना हो गए। अफ़वाजे मुख़ालिफ़ को एक फ़र्दे वाहिद (अकेले) के मुक़ाबले से गुरेज़ (पीछे हटने) करने पर ग़ैरत दिलाई जा चुकी थी और उनको अब यह कद (फ़िक्र) थी कि पानी किसी तरह हुसैन[अ0स0] तक पहुँचने न पाए। चुनाँनचे आप चारों तरफ़ से घेर लिए गए। उस वक़्त के आपके मुशकिलात का अन्दाज़ा करना आसान नहीं। दोश पर मश्क वाज़ेह तौर पर जंग से माने

---

[1]अख़बारूत तुवाल, पेज/255

(रूकावट) थी और फिर एक हाथ में आपको हुसैनी निशान का बलन्द रखना भी मक़सूद था मगर क्या कहना आपकी अदीमुल मिसाल जुरअत व शुजाअत का कि आपने इसी आलम में बड़े जोश व ख़रोश के साथ हमले करना शुरू कर दिये। और उस वक़्त आप की ज़बान पर यह शेअ्र जारी थे। "मौत कितने ही नारे लगाए मैं मौत से कभी ख़ौफ़ज़दा नहीं होता यहाँ तक कि तलवारों के साये में ज़मीन पर गिरा दिया जाऊँगा। मेरा नाम अब्बास है। मश्क ले जाऊँगा और ज़रूर ले जाऊँगा। और हंगामे जंग मौत की कोई परवाह नहीं करूँगा।"

इस अम्र को दुश्मनों की बुज़दिली का मुकम्मल ऐलान समझना चाहिए कि उन्होंने अब्बास के हाथों की मौजूदगी अपने लिए इन्तेहाई ख़तरनाक महसूस की, और हकीम बिन तुफ़ैल सनसबी ने आपके दाहने हाथ पर तलवार लगाई। चूंकि अब्बास को अपनी जान से ज़्यादा अलम का ख़याल था इसलिए आपने अलम को गिरने नहीं दिया बल्कि बायें शाने पर ले लिया और फ़रमाया "हालाँकि तुमने मेरा दाहना हाथ क़ता कर दिया है मगर यह न समझना कि मैं अपने दीन की हिमायत न कर सकूंगा। खुदा की क़सम इस फ़र्ज़ को तो मैं हमेशा हमेशा अन्जाम देता रहूँगा।

उसके बाद ज़ैद बिन वरक़ा जहनी ने मौक़ा पाकर आपके बायें हाथ पर तलवार लगाई और वह भी क़ता हो गया। अब्बास[अ0स0] ने पुश्ते फ़रस पर झुक कर अलम को सीने से रोकना चाहा ही था कि क़बील–ए–तमीम के एक शख़्स ने सर पर गुर्ज़ का वार किया जिससे आप ज़मीन पर गिर गए और बलन्द आवाज़ से पुकारे कि "भाई मेरी ख़बर लीजिए।"

इमाम हुसैन[अ0स0] पर इस आवाज़ का जो असर न होता कम था। आप मिस्ल शाहीन (बाज़, शिकरा) के झपट कर भाई की लाश पर पहुंचे तो देखा कि अब्बास[अ0स0] ज़ख़्मों से चूर दोनों हाथ क़ता पेशानी शिकस्ता, एक आँख में तीर पैवस्त, ज़मीन पर दम तोड़ रहे हैं।

इमाम आलमे रंजो मलाल में सिरहाने बैठ गए। यहाँ तक कि अब्बास की रूह ने जसद से मुफ़ारिक़त (जिस्म से जुदा) की। अब कोई ऐसा नहीं रह गया था जिसे इमाम इज़्ने जिहाद देते। आप लाश से उठे और आगे बढ़े। तलवार नियाम से निकाली और दाहने और बायें दुश्मनों पर हमला करना शुरू कर दिया। जब वह आपके सामने से भागते थे तो आप फ़रमाते थे "भागते कहाँ हो

तुमने मेरे भाई को मार डाला। भागते कहाँ हो। तुमने मेरे बाजू शिकस्ता कर दिए हैं।''

उसके बाद आप अपने मुस्तक़र (ठिकाने) पर वापस पहुंच कर खड़े हो गए।

अब दुश्मनों की कसरत थी और अकेले हुसैन[अ0स0] थे। नुसरते इस्लाम का फ़रीज़ा था और वह मुस्तहकम अज़्म था जो इतने मसाएब और अज़ीज़ों के दाग़ उठाने के बाद भी पहले ही की तरह कोहे गराँ (मज़बूत, पहाड़) की सूरत अपनी जगह क़ायम व बरक़रार था।

सतही नज़र से मुजाहदीन की यह तरतीब ख़िलाफ़े क़यास समझी जा सकती है। इसलिए कि अमली रहनुमाई का तक़ाज़ा यह मालूम होता है कि सबसे पहले हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] खुद मैदाने जिहाद में क़दम रखते हुए अपनी अमली मिसाल पेश फ़रमाते। फिर आपके अज़ीज़ यके बाद दीगरे जाते और आख़िर में असहाब की नौबत आती। हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] ने नहजुल बलाग़ा में रसूल अल्लाह[स0अ0] के तरीक़–ए–जंग के मुतअल्लिक़ फ़रमाया है कि आप ख़तरे के मौक़ों पर अपने अहलेबैत और अइज़्ज़ा को आगे रखते थे और उन्हें अपने असहाब की सिपर बनाते थे। मगर मैदाने करबला में तरतीब इसके ख़िलाफ़ रखी गई। यहाँ असहाब पहले मैदान में भेजे गए और फिर अइज़्ज़ा और आख़िर में खुद इमाम हुसैन[अ0स0] तशरीफ़ ले गए।

मगर ग़ौर करने से मालूम होता है कि वाक़–ए–करबला और दूसरे मारकों की नौइयत में बड़ा फ़र्क़ था। दूसरे हर मौक़े पर यह यक़ीनी था कि कुछ लोग क़त्ल हों। और कुछ सही व सलामत महफ़ूज़ रहें। लिहाज़ा यह कोशिश की जाती थी कि ज़्यादा से ज़्यादा ख़तरा वही बरदाश्त करें जो रसूल अल्लाह[स0अ0] के साथ ख़ानदानी तअल्लुक़ात रखते हों और वह लोग ज़्यादा से ज़्यादा महफ़ूज़ रहें जो ग़ैरों की हैसियत रखते हों। मगर मारक–ए–करबला में आशूर के दिन यह बिल्कुल यक़ीनी था कि ज़िन्दा बचने वाला कोई नहीं। बहरहाल जितने भी हैं उन सबको शहीद होना है। जहाँ तक ख़तरे से बचाने की कोशिश का तअल्लुक़ था वह शबे आशूरा की जा चुकी थी और उस वक़्त हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने बा–इसरार तमाम फ़रमाया था कि ''मुझे तन्हा इस ख़तरे को कुबूल कर लेने दो। तुम सब अपनी जानों को ख़तरे में मुबतिला न करो मगर हर एक ने अइज़्ज़ा व असहाब में से इन्कार करते हुए अपनी जानें हुसैन[अ0स0] पर कुर्बान करने के अज़्म बिल–जज़्म (दिलो जान से) का एलान

कर दिया था उसके बाद अब यह सवाल तो बाक़ी ही नहीं रहा था कि कौन क़त्ल हो और कौन ज़िन्दा रहे। ज़िन्दगी की दिल फ़रेबियाँ तो बहुत पहले ठुकराई जा चुकी थीं। अब तो हर एक के सामने बस मौत ही थी अब इस सूरत में सवाल था तो सिर्फ़ क़ब्ल और बाद का। मगर वाक़–ए–करबला की नौइयत यह थी कि जितना वक़्त गुज़रता जाता था, इम्तिहान सख़्त तर होता जाता था। पानी बन्द था ही और रोज़े आशूर दिन चढ़ने और तमाज़ते आफ़ताब (सूरज की तपिश) में इज़ाफ़ा होने के साथ साथ प्यास की तकलीफ़ लहज़ा ब–लहज़ा (वक़्त से साथ साथ) बहुत बढ़ती जाती थी। फिर इस हालत में कसीरूत–तादाद (बड़ी फ़ौज) दुश्मनों से पैहम नबर्द आज़माई (बराबर), साथियों की जुदाई और ऐसी हालत में ज़ाहिर है कि जितनी भी किसी मुजाहिद की शहादत में देर वाक़े होती थी उसका इम्तेहान शदीद तर होता जाता था।

इमाम हुसैन[अ0स0] अपने असहाब और अइज़्ज़ा की वफ़ादारी पर कितना ही एतेमाद क्यों न रखते हों मगर आप उन पर इतना बार नहीं डालना चाहते थे जो उनकी कुव्वते बर्दाश्त से बाहर होता। आपके लिए लाज़िम यही था कि आप दूसरों के सब्रो तहम्मुल और अपनी कुव्वते बरदाश्त के इम्तियाज़ पर नज़र रखते हुए निज़ामे जंग मुरत्तब फ़रमाते।

हक़ीक़तन हुसैन[अ0स0] के लिए निसबतन यह बहुत आसान होता कि सबसे पहले आप अपनी जान का हदिया राहे हक़ में पेश कर देते। उस सूरत में आपकी कुर्बानी अपनी जान की कुर्बानी होती और उसको किसी ऐसे शहीद की कुर्बानी का बड़ा दर्जा न दिया जा सकता जिसने कभी भी हिमायते हक़ में अपने नफ़्स की कुर्बानी पेश की हो।

इस सूरत में आपकी कुर्बानी इससे ज़्यादा वक़ीअ् (बलन्द) नहीं समझी जा सकती जितनी कि ब–क़ौले नसारा हज़रते ईसा[अ0स0] की कुर्बानी कि आप दीने हक़ की तबलीग़ की वजह से सूली पर चढ़ा दिए गए। या सुक़रात की कुर्बानी कि उनको उसूल की हिमायत में ज़हर का जाम पीना पड़ा और हुसैन[अ0स0] के लिए इस मन्ज़िल से गुज़र जाना मुशकिल ही क्या होता जबकि आप उस बाप के बेटे थे जिसका क़ौल यह था कि मुझे इसकी परवाह नहीं कि मौत मुझ पर आ पड़ती है या मौत पर मैं जा पड़ता हूँ और नीज़ यह कि मौत से उससे ज़्यादा मानूस हूँ जितना कि बच्चा पिस्ताने मादर से मानूस होता है बल्कि यूँ कहना चाहिए कि आप उस घराने के बुज़ुर्ग थे जिसके बच्चों का यह क़ौल था

कि "मौत शहद से ज़्यादा शीरीं है।" बल्कि उस ज़माने में मुल्के अरब के बहादुर का उसूले ज़िन्दगी यह था कि वह मौत का तलवारों के साये में आना अपने लिए बाइसे मुबाहात (फ़ख़्र) समझता था।

मगर हुसैन[अ0स0] की शहादत को जो ख़ास इम्तेयाज़ हासिल है वह इसी लिए कि आपने ऐसी हर हर फ़र्द को जो आपकी ज़ात से दूर या क़रीब का तअल्लुक़ रखती थी अपनी मौजूदगी में राहे हक़ में निसार कर दिया।

इन्साफ़ से देखा जाए तो तमाम साथियों का एक एक करके जुदा होना, भतीजों का आँखों के सामने दम तोड़ना, जवान बेटे का ख़ाक पर ऐड़ियाँ रगड़ना और जाँनिसार भाईयों का आलमे जवानी में मौत की नींद सो जाना। यह वह मसाएब थे जिन में से हर एक इन्सानी नफ़्स के लिए मौत से ज़्यादा नाक़ाबिले बरदाश्त क़रार पा सकता है। हुसैन[अ0स0] का कमाले अमल महेज़ यही नहीं था कि वक़्त और मौक़ा आने पर आपने अपनी जान राहे ख़ुदा में पेश कर दी बल्कि आपके नफ़्स का कमाल यह था कि आपने जान से अज़ीज़ हस्तियाँ रिज़ा–ए–हक़ के रास्ते में यके बाद दीगरे क़ुर्बान कर दीं। और जब तक सब्रो तहम्मुल के साथ उन तमाम दुश्वार गुज़ार मनाज़िल को तय न कर लिया उस वक़्त तक ख़ुद अपनी जान का हदिया पेश नहीं किया।

क़ुव्वते बर्दाश्त के इस ख़ास दर्जे में हुसैन[अ0स0] के अलावा कोई दूसरा नज़र नहीं आता। अमली हैसियत से इस बलन्दिये नफ़्स की तवक़्क़ो क्या इमाम हुसैन[अ0स0] के सिवा किसी और से की जा सकती थी जो उसे आप अपने बाद के लिए छोड़ देते?

(16) तिफ़्ले शीरख़्वार

तमाम असहाब व अइज़्ज़ा की शहादत के बाद ग़ालिबन दुश्मनाने दीन यह समझ रहे होंगे कि हुसैन[अ0स0] के सब्र व तहम्मुल की इन्तेहा हो चुकी मगर अभी ज़ालिमों के तरशक में तशद्दुद का एक ज़बरदस्त तीर बाक़ी था और उसके मुक़ाबले में हुसैन[अ0स0] को एक ज़बरदस्त क़ुर्बानी पेश करना थी जिस पर हर मज़हबो मिल्लत का इन्सान यह गवाही देने पर मजबूर है कि यज़ीदियों को इन्सानियत से कोई दूर का भी इलाक़ा न था।

शीरख़्वार अब्दुल्लाह[1] जो "अली असग़र" के नाम से मशहूर हैं और आपकी वालिदा रबाब बिन्ते उमराउल क़ैस बिन अदी कल्बी थीं जिनके बत्न से

---

[1]तबरी, जि/6, पेज/257, इरशाद पेज/269

एक साहबज़ादी भी मुतवल्लिद (पैदा) हुई थीं जिनका नाम सकीना बिन्तुल हुसैन[अ0स0] था।[1]

इन्सानियत लर्ज़ा बरअन्दाम (थरथरा रही) थी जब उस बच्चे को हुसैन[अ0स0] अपने हाथों पर लिए हुए थे और उस वक़्त एक तीरे ज़ुल्म ने बाप के हाथों पर बच्चे का काम तमाम कर दिया।[2] यह तीर मारने वाला क़बील–ए–बनी असद में से एक ज़ालिम था।[3]

एक रिवायत के मुताबिक़ इमाम हुसैन[अ0स0] ने उस बच्चे को हाथों पर बलन्द करके पानी का सवाल किया और उस वक़्त बजाए पानी पिलाने के सरदारे लश्कर, उमरे सअ्द के हुक्म से हुरमुला बिन काहिल असदी ने तीर लगाकर उस मासूम को शहीद कर किया।

---

[1] इरशाद, पेज/269

[2] तबरी, जि/6, पेज/220 व 257

[3] तबरी, जि/6, पेज/257, अख़बारूत तुवाल पेज/255, इरशाद पेज/254

उनतीसवाँ बाब

जिहादे आख़िर और शहादत

यह सब कुछ हुआ! असहाब एक एक करके रूख़्सत हो गए। अज़ीज़ जुदा हो गए भतीजे क़त्ल हुए। बेटा तलवार से टुकड़े हुआ। भाई तहेतेग़ हुए। मगर इमाम हुसैन[अ0स0] ने कोई ऐसी जंग नहीं की जिसे हुसैन की जंग कहा जाए। ज़ाहरी असबाब की बिना पर नावाक़िफ़ आदमी यह समझ सकता है कि आपको ब–ज़ाते खुद जंग करने का हौसला नहीं, नबर्द आज़माई (दुश्मन से भिड़ने) का वलवला ही नहीं। हालाँकि हक़ीक़त में आपकी जंग का लुत्फ़ तो जब ही था कि जब आप तलवार लेकर हमला आवर होते और एक तरफ़ अब्बास दादे शुजाअत देते और एक तरफ़ अली अकबर मारक–ए–जंग में जौहर दिखाते होते एक तरफ़ असहाब हिफ़ाज़त के लिए साथ साथ होते। उस सूरत में जंग का मंज़र दूसरा ही होता। मगर हुसैन[अ0स0] ने सबको दुनिया से एक एक करके रूख़्सत हो जाने दिया और उनके साथ मिलकर जंग नहीं की। फिर अब जबकि दिन भर की धूप सर पर पड़ चुकी। साथियों और अज़ीज़ों के ग़म ने दिल को शिकस्ता कर दिया। कमर अब्बास के मरने से टूट चुकी और आँखों की बसारत अली अकबर के साथ गोया जा चुकी। यह सत्तावन बरस की बुढ़ापे की उम्र का इन्सान अब इस आलम में भला तलवार खींच सकता है और जंग कर सकता है? मगर हुसैन[अ0स0] को तो करबला में सब्रो बर्दाश्त की मन्ज़िलों को तय करने के साथ साथ फ़राएज़ के हुदूद दिखलाना थे। वह शुरू से इस्लामी आईन के मुहाफ़िज़ थे। और उन ही आईनों उसूल के लिए जंग कर रहे थे। वह जानते थे कि दुश्मन के सामने ''सिपुर्दगी'' आईने इस्लाम के ख़िलाफ़ है। हिफ़ाज़त खुद इख़्तियारी के लिए दिफ़ा (Deffence) आख़री इम्कान के दर्जे तक हर इन्सान का फ़र्ज़ है। हुसैन[अ0स0] ने उस फ़र्ज़ को उस वक़्त अन्जाम दिया जब कोई दूसरा इन्सान उसे अन्जाम नहीं दे सकता था।

अब अली असग़र को नज़्रे राहे खुदा करने के बाद हुसैन[अ0स0] के पास कोई ऐसी कुर्बानी न थी जिसे वह हक़ की बारगाह में पेश करते। अब बस

एक आख़री मरहला था जो आपके लिए पहले ही बहुत आसान था। आपने उसे खुद अब तक अपने लिए मुशकिल से मुशकिल तर बनाया था। अब जबकि यह तमाम मुशकिलें ख़त्म हो चुकी हैं, अब जबकि मन्ज़िले अमल के दरमियानी क़िलों को तमाम व कमाल फ़तह कर चुके हैं। ज़ाहरी तौर पर आपसे बढ़कर उस वक़्त दिल शिकस्ता कोई नहीं मगर हक़ीक़तन आपसे बढ़कर उस वक़्त कामयाबी के एहसास से बालीदा (बाहिम्मत) कोई दूसरा नहीं। किसी के क़दम जिन रास्तों के तसव्वुर से डगमगा सकते थे उन्हें आप अमली तौर पर इस्तेक़लाल और साबित क़दमी के साथ तय किए हुए खड़े थे। आपसे बढ़कर उस वक़्त फ़तहमन्दी का एहसास किसी दूसरे को हो नहीं सकता। अब आपके लिए अपना सर शमशीरे क़ातिल के सिपुर्द कर देना था। यह बिल्कुल आसान था मगर वह पैग़म्बरे इस्लाम[स0अ0] के नवासे और अली[अ0स0] के बेटे न होते अगर अपना सर झुका के ख़ामोशी से दुश्मनों को दावत दे देते कि आओ यह सर क़लम कर लो। होने वाला है आख़िर में यही मगर ज़रा मैदाने जंग को बद्र व ओहद, ख़न्दक़ व सिफ़्फ़ीन का नमूना बन जाने दो। ज़रा भूली हुई दुनिया को अली[अ0स0] की याद आ जाने दो। ज़रा न देखी हुई आँखों के सामने हमज़ा व जाफ़र की तस्वीर खिंच जाने दो।

आज ही तो मौक़ा आया है कि हुसैन[अ0स0] अपने नाना के उस क़ौल को सच कर दिखायें कि हुसैन को मेरी जुरअत और सख़ावत मीरास में मिली है। सख़ावत के मुज़ाहरे बहुत हुए थे मगर जुरअत के अमली इज़हार का वक़्त अब आया है। और सच पूछिये तो रसूल अल्लाह[स0अ0] को मैदाने जंग में आम तौर पर कभी तलवार लेकर खुद जिहाद का मौक़ा नहीं मिला। इसलिए कि साथ वाले मौजूद रहे। हुसैन[अ0स0] भी जब तक एक लाएक़े जंग मुजाहिद भी साथ रहा, अपने नाना रसूल अल्लाह[स0अ0] की बिल्कुल तस्वीर बने रहे मगर अब जबकि आपकी हिमायत में तलवार खींचने वाला कोई बाक़ी नहीं रहा तो हुसैन[अ0स0] ने दिखला दिया कि अगर ज़रूरत पड़ती तो मेरे नाना रसूल अल्लाह[स0अ0] भी अमली हैसियत से किस पाये की शुजाअत व जुरअत का मुरक़्क़ा खींचते।

आप रूख़्सते आख़िर के लिए ख़ैमे में आए और एक यमनी चादर को जा–ब–जा से चाक करके बाक़ी लिबास के नीचे पहना।[1] शायद इसलिए कि

---

[1]तबरी, जि/6, पेज/240

बादे शहादत जब लिबास को लूटा जाए तो यह बोसीदा कपड़ा जिस्म पर रह जाए। उसके बाद मैदाने जंग में तशरीफ़ ले गए।

तारीख़ शाहिद है कि हुसैन[अ०स०] ग़मज़दा, दिल शिकस्ता, तश्ना (पयासा) व गुरसिना (भूखा) होने के बावजूद तने तन्हा जब तलवार खींच कर फ़ौजे मुख़ालिफ़ पर हमला आवर हुए तो तमाम गुज़िश्ता बहादुरों के कारनामे महो (मिट) हो गए और इन्सानी हाफ़िज़े में क़यामत तक इस शुजाअत व जुरअत की तस्वीर महफ़ूज़ रह गई।

मगर यह ग़ैर मसावी (बराबरी की) जंग ज़ाहरी एतेबार से अब अन्क़रीब ख़त्म होने वाली थी इसलिए कि एक का हज़ारों से मुक़ाबला कहाँ तक जारी रह सकता था। ताहम आपने अपने दुश्मनों के दिलों में यह धाक बिठा दी थी उनमें से कोई भी आपका मुक़ाबला करने की जसारत न करता था। यज़ीदी अफ़वाज की इस सरासीमगी (हैरान व परेशान) को देख कर शिम्र ने फ़ौज को ललकारा और नए सिरे से तरतीबे लशकर को दुरूस्त करके सवारों को प्यादों के पीछे खड़ा किया और तीर अन्दाज़ों को हुक्म दिया कि वह तीर बाराँ करें इतनी शिद्दत से तीर बरसाए गए कि जिस्मे हुसैन[अ०स०] साही के काँटों की तरह हो गया।[1]

उस वक़्त दोबारा शिम्र ने चिल्ला कर कहा कि "ख़ुदा तुमसे समझे खड़े क्या देख रहे हो उन्हें क़त्ल करो। ख़ुदा करे तुम्हारी मायें तुम्हें रोयें।"

इस तरह ग़ैरत दिलाए जाने के बाद वह लश्करे बेकराँ (बेइन्तेहा) हुसैन[अ०स०] पर चारों तरफ़ से टूट पड़ा।[2] और आप पर तीरों, तलवारों और नैज़ों का मेंह (बारिश) बरसने लगा जिससे यक़ीन है कि घोड़ा भी काफ़ी ज़ख़्मी हो गया होगा और उससे मजबूर होकर आप पुश्ते फ़रस से ज़मीन पर तशरीफ़ लाए मगर प्यादा (पैदल) होने के बाद भी आपने मुक़ाबला जारी रखा।

इसना–ए–जिहाद (जंग के दौरान) में एक मौक़ा ऐसा आया कि हज़रत तमाम फ़ौज को भगा कर नहर तक पहुँच गए। दुश्मनों को अन्देशा हुआ कि आप कहीं पानी से सेराब न हो जायें। उस वक़्त हसीन बिन तमीम ने तीर लगाया जो आपके दहेन पर पड़ा और ख़ून मुँह से उबलने लगा। आपने चिल्लू

---

[1] इरशाद, पेज/257

[2] इरशाद, पेज/257

में ख़ून लिया। आसमान की तरफ़ उछाल दिया और फिर शुक्रे ख़ुदा अदा किया।[1]

इसी असना (दौरान) में बेहया लश्करे यज़ीद का एक दस्ता अपनी शिकस्त की ख़िफ़्फ़त को मिटाने के लिए शिम्र की क़यादत में ख़यामे हुसैनी की तरफ़ जिसमें अहले हरम थे ग़ारतगरी के इरादे से मुतवज्जेह हुआ और आपके और ख़याम के बीच में हाएल हो गया। यह देखना था कि आपने पूरी फ़ौज को मुख़ातब करके फ़रमाया कि अगर तुम्हें मज़हब का पास और आख़िरत का कोई तसव्वुर नहीं है तब भी दुनिया में अपनी क़ौमी शराफ़त का सुबूत दो। अभी मैं ज़िन्दा हूँ। मेरे ख़याम से तअर्रूज़ (छेड़ छाड़) न करो। शिम्र अपनी हरकत पर शर्मिन्दा हुआ और ख़याम की तरफ़ से पलट आया।[2]

अब शिम्र ने प्यादों को अपने साथ लेकर खुद आपका मुहासरा कर लिया मगर आलम यह था कि जिस तरफ़ आप रूख़ करते थे उधर की जमाअत मुन्तशिर हो जाती थी।[3] ग़ालिबन इसी मौक़े का तज़किरा फ़ौजे दुश्मन के एक सिपाही ने इन अलफ़ाज़ में किया है कि मैंने कोई ऐसा नहीं देखा जो ज़ख़्मी हो चुका हो और उसकी औलाद, अज़ीज़ और साथी सब क़त्ल हो चुके हों और फिर वह हुसैन[अ०स०] का ऐसा मुतमइन और साबित क़दम नज़र आए और उनकी सी जुरअत व हिम्मत से मुक़ाबला करे। हालत यह थी कि प्यादे चारों तरफ़ से उन्हें घेरते थे और वह तलवार लेकर उन पर हमला कर देते थे तो वह सब दाहने बायें से यूँ हटते थे जैसे गोसफ़न्द का ग़ोल भेड़िये के हमले के वक़्त मुन्तशिर हो।[4]

उस वक़्त आपकी ज़बान पर यह तारीख़ी अलफ़ाज़ थे जिनसे एक तरफ़ फ़रीज़–ए–हिदायत पूरा हो रहा था और दूसरी तरफ़ नताएज की तरफ़ साफ़ इशारा था

''याद रखो कि अल्लाह मेरे क़त्ल से इन्तेहाई नाराज़ है। मैं ब–क़सम कहता हूँ कि तुम्हारे ज़िल्लत देने से अल्लाह मुझे इज़्ज़त देगा और फिर मेरा बदला तुमसे इस तरह लिया जाएगा जिसका तुम्हें इसके क़ब्ल तसव्वुर भी न होगा। याद रखो कि मुझे क़त्ल करने के बाद खुद तुम्हारे दरमियान तफ़रक़ा

---

[1]तबरी, जि/6, पेज/258

[2]तबरी, जि/6, पेज/258

[3]तबरी, जि/6, पेज/259

[4]तबरी, जि/6, पेज/259, इरशाद पेज/256–257

पड़ जाएगा। ख़ाना जंगियाँ होंगी और बिल आख़िर तुम्हारा ख़ून भी बहाया जाएगा। फिर उसके बाद आख़िरत की सज़ा, वह उससे भी ज़्यादा है।[1]

उसके बाद आप पर हर जानिब से शिद्दत के साथ हमले होने लगे और आख़िर ज़ख़्मों से चूर होकर आप ज़मीन पर गिर गए और खड़े होने की कुव्वत बाक़ी न रही।

(17) अब्दुल्लाह बिन हसन

आप हसन[अ०स०] बिन अली[अ०स०] के फ़रज़न्द थे। आपका सिन अपने भाई क़ासिम से भी कम था और आपकी वालिदा उम्मुर रबाब बिन्ते उमराऊल क़ैस रबाब मादरे सकीना व अली असग़र की बहन थीं।

जब इमाम हुसैन[अ०स०] ज़ख़्मों से चूर चूर हो कर ज़मीन पर तशरीफ़ ला चुके थे उस वक़्त आप ख़ैमे से बरामद हुए और इमाम[अ०स०] की तरफ़ चले। जनाबे ज़ैनब बिन्ते अली[अ०स०] ने आपको रोकना चाहा मगर आप किसी तरह न रूके और दौड़ते हुए इमाम के पास पहुँच गए। उस वक़्त बहर बिन कअ्ब बिन उबैदुल्लाह तैमी हज़रत पर तलवार का वार करना चाहता था। आपने उससे कहा ''ज़ने ख़बीसा के बेटे क्या तू मेरे चचा को क़त्ल करेगा?'' मगर उस पर भी जब उसने तलवार का वार कर ही दिया तो आपने उसे अपने हाथ पर रोका हाथ जिल्द के आख़िर हिस्से तक कट कर लटकने लगा और आपके मुंह से बेसाख़्ता निकल गया या उम्माह इमाम हुसैन[अ०स०] ने आपको अपने सीने से लगा लिया और फ़रमाया कि बेटे सब्र करो इस मुसीबत पर और उसके अज्रो सवाब के मुन्तज़िर रहो, तुम भी अपने बुजुर्गों यानी रसूल अल्लाह[स०अ०], अली बिन अबी तालिब[अ०स०], हमज़ा, जाफ़र[अ०स०] और हसन[अ०स०] की ख़िदमत में पहुँचा चाहते हो।[2]

अभी आप यह फ़रमा ही रहे थे कि हुरमुला ने चिल्ल–ए–कमान में तीर जोड़ कर मारा जिससे अब्दुल्लाह की शहादत वाक़े हुई।

(18) इमाम की शहादत

देर तक हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] ख़स्ता व मजरूह (ज़ख़्मी) बर सरे ख़ाक बाक़ी रहे जबकि आपको शहीद कर देने से बज़ाहिर कोई अम्र माने (किसी बात की रूकावट) न था मगर हर शख़्स इस जुरमे अज़ीम के इरतिकाब से

---

[1] तबरी, जि/6, पेज/261

[2] इरशाद, पेज/256

बचना चाहता था।[1] शिम्र ललकारा कि आख़िर अब क्या इन्तेज़ार है। आख़िर मालिक बिन नस्र बदी आगे बढ़ा। उसने आपके सर पर तलवार लगाई जो कास–ए–सर तक पहुंच गई।[2] बिल आख़िर ज़रआ बिन शरीक की तलवार[3] सनान बिन अनस का नैज़ा[4] और फिर शिम्र ज़िल जौशन का ख़ंजर वह था जिसने उस मुजस्सम–ए–हक़ की शमे हयात गुल कर दी। सच्चाई की गर्दन क़लम हुई और "शहीदे हक़, शहीदे इन्सानियत, शहीदे राहे खुदा का सर नैज़े पर बलन्द कर दिया गया।

10/मुहर्रम सन 61 हिजरी की वह यादगार तारीख़ जुमे का दिन है कि इन्सानी तारीख़ का यह सबसे अहम वाक़ेया रूनुमा हुआ।

---

[1]अख़बारूत तुवाल, पेज/255, इरशाद पेज/257

[2]तबरी, जि/6, पेज/250, देनवरी ने मालिक बिन बशर कन्दी लिखा है, अख़बारूत तुवाल पेज/255

[3]अख़बारूत तुवाल, पेज/255

[4]तबरी, जि/6, पेज/260, अख़बारूत तुवाल पेज/256

तीसवाँ बाब

शहादत के बाद

हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] और आपके अक़रुबा व अन्सार के शहीद किए जाने पर मज़ालिम का ख़ातिमा नहीं हुआ बल्कि आप जो लिबास पहने थे वह भी उतार लिया गया।

इसहाक़ बिन हैवा ख़ज़रमी ने क़मीस ली। बहर बिन कअ्ब ने ज़ेरे जामा[1] अख़नस बिन मुरसद ने अम्मामा, बनी दारिम के एक शख़्स ने तलवार।[2] और क़ैस बिन अशअस ने क़तीफ़ा (चादरे यमानी) जो ख़ज़ (शहर का नाम भी है, एक क़िस्म का रेशमी कपड़ा) की थी ले ली इसी लिए कूफ़े में वह "क़ैसे क़तीफ़ा" के नाम से मशहूर हो गया था।[3]

उसके बाद यज़ीदी फ़ौज ने ख़यामे अहले बैते नबवी पर छापा मारा और उनमें का तमाम असबाब व सामान लूट लिया।[4] हत्ता कि मुख़द्दराते इस्मत के सरों से चादरें तक उतार लीं।[5] उसके बाद ख़ैमों में आग लगा दी गई। और उमरे सअ्द ने अपनी फ़ौज में आवाज़ दी कि कौन कौन ऐसे हैं जो लाशे हुसैन[अ0स0] को घोड़ों से पामाल करने के लिए तैयार हों। उस पर दस आदमी आमादा हुए जिन्हों ने लाशे मुतहर के साथ उस ज़ुल्म को भी अन्जाम तक पहुंचाया।[6]

सरे इमाम हुसैन[अ0स0] जो तन से जुदा किया जा चुका था ख़ूली बिन यज़ीदे असबही के हाथ इब्ने ज़ियाद के पास पहले रवाना किया गया।[7] और

---

[1]तबरी, जि/6, पेज/259

[2]इरशाद, पेज/257

[3]तबरी, जि/6, पेज/260, एक रिवायत में उस शख़्स का नाम अबदुर्रहमान बिन मुहम्मद बिन अशअस है और लिखा है कि वह "अब्दुर्रहमान क़तीफ़ा" के नाम से मशहूर हुआ। (किताबुल बिलदान पेज/172

[4]अख़बारूत तुवाल पेज/356

[5]तबरी, जि/6, पेज/260

[6]तबरी, जि/6, पेज/261–262, इरशाद पेज/258

[7]अख़बारूत तुवाल, पेज/256

कुछ शोहदा के सर क़ता करके उसके बाद शिम्र बिन ज़िल जौशन, क़ैस बिन अशअस, अम्र बिनुल हज्जाज और अज़रा बिन क़ैस के साथ रवाना किए गए।[1]

इमाम हुसैन[अ0स0] के पसमान्दगान (पीछे छोड़े हुए) में सिर्फ़ एक बीमार फ़रज़न्द अली बिन हुसैन[अ0स0] पर्दा नशीन ख़वातीन और कुछ छोटे बच्चे रह गए थे जो रात भर ख़ैमों के जलने के बाद उसी खुले हुए सहरा में मुक़ीम रहे।

11/मुहर्रम को उमरे सअ्द ने अपनी फ़ौज के कुश्तों (मरे हुए) को जमा किया और उन पर नमाज़े जनाज़ा पढ़कर दफ़्न किया।[2] मगर शोहदा–ए–राहे ख़ुदा की लाशें उसी तरह बे दफ़्न छोड़ दीं और शाम होते होते अहलेबैते रसूल[स0अ0] को ब–तौर क़ैदियों के साथ लेकर इब्ने सअ्द कूफ़े की जानिब रवाना हो गया और बक़िया शोहदा के सरों को जो तादाद में बहत्तर थे नैज़ों पर बलन्द करके साथ ले गए।[3]

लाशह–ए–बेसर को लशकरे यज़ीद के करबला से चले जाने के बाद क़बील–ए–बनी असद जो करबला से थोड़ी दूर पर ग़ाज़रया में रहता था आ कर दफ़्न किया।[4]

हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] को उसी मक़ाम पर जहाँ कि इस वक़्त ज़रीह मौजूद है और आपके पाईने पा (पाइतियाने) अली अकबर को[5] जनाबे अब्बास[अ0स0] को ग़ाज़रया के रास्ते पर नहरे फ़ुरात के क़रीब जहाँ कि आप शहीद हुए थे और दूसरे अइज़्ज़ा और असहाब को एक गढ़ा खोद कर यकजा दफ़्न कर दिया गया जिनके कुबूर का वसूक़ के साथ मुऐयन करना मौजूदा माख़ज़ों (जगहों) के लिहाज़ से ग़ैर मुमकिन है। सिर्फ़ इतना मालूम है कि वह इमाम हुसैन[अ0स0] के गिर्दो पेश ही दफ़्न हैं और हाएर (इमाम हुसैन[अ0स0] के क़ब्रे मुबारक के पास) का एहाता उन सबको घेरे हुए है।[6] शोहदा के सर जब कूफ़े पहुँच गए तो शिम्र ने उन सरों को इब्ने ज़ियाद के सामने पेश किया।[7]

---

[1] इरशाद पेज/258

[2] तबरी, जि/6, पेज/260

[3] अख़बारूत तुवाल, पेज/256

[4] तबरी, जि/6, पेज/260, इरशाद पेज/258, अख़बारूत तुवाल पेज/257

[5] इरशाद पेज/258

[6] इरशाद पेज/265

[7] अख़बारूत तुवाल पेज/257

उस मौक़े पर इब्ने ज़ियाद ने सरे इमाम हुसैन[अ0स0] के साथ बेअदबी की जसारत की और वह एक छड़ी से आपके लबो दन्दान पर ज़र्ब लगाने लगा। यह गुस्ताख़ी देखकर ज़ैद बिन अरक़म सहाबी–ए–रसूल को ताब न रही। उन्होंने कहा अरे यह लब वह हैं जिन पर मैंने खुद रसूल अल्लाह[स0अ0] के लबों को बोसे लेते हुए देखा है और यह कह कर रोने लगे इब्ने ज़ियाद ने कहा अगर तुम बूढ़े न होते और अक़्ल न जा चुकी होती तो मैं अभी तुम्हारी गर्दन मारने का हुक्म दे देता। ज़ैद बिन अरक़म उठ कर इब्ने ज़ियाद को बुरा कहते और मुसलमानों को उसकी हुकूमत तस्लीम करने पर लानत मलामत करते चले गए।[1]

इधर अहले बैते नुबूवत का लुटा हुआ क़ाफ़ेला क़ैदियों की शक्ल में उसी शहरे कूफ़ा में कि जहाँ हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के दौरे हुकूमत में ज़ैनब[स0अ0] व उम्मे कुलसूम[स0अ0] शाहज़ादी की हैसियत से रह चुकी थीं, लाया जा रहा था मगर क़ब्ल इसके कि वह हुदूदे शहर में दाख़िल हों, हाकिम की तरफ़ से यह मुनादी कर दी गई थी कि इस मौक़े पर कूफ़े में कोई शख़्स सिलाहे (हथियार) जंग के साथ घर से बाहर न निकले। न कोई शख़्स हथियार लगाए हुए कूफ़े की सड़कों पर दिखलाई दे। इसके अलावा जगह जगह पर किसी ख़ास दहशत के सबब से सवार और प्यादों के बड़ी तादाद में पहरे बिठला दिए गए थे। तमाशाईयों में से बाज़ों को अस्ल वाक़ए की ख़बर थी और बाज़ बेख़बर हुकूमत के बयान पर एतेबार करते हुए यही समझते थे कि मुख़ालफ़ीने इस्लाम की जमाअत पसपा हुई है और उनके अहलो अयाल गिरफ़्तार होकर आ रहे हैं। सहल शहज़ोरी हज्जे बैतुल्लाह से फ़ारिग़ हो कर ऐन उसी वक़्त कूफ़े में पहुँचे, देखा कि बाज़ार सजा हुआ है तमाशाईयों में से अक्सर के चेहरों पर मसर्रत के आसार नुमायाँ हैं मगर उन ही में से बाज़ ऐसे भी हैं जिनके चेहरे उदास हैं। उन्होंने बढ़कर एक बूढ़े से हाल दरयाफ़्त किया। वह उनको एक गोशे में ले गया और ब–चश्मे गिरया (रोते हुए) ख़ानदाने रिसालत की तबाही पर मुन्दर्जा ज़ैल अशआर पर मुशतमिल मरसिया पढ़कर उनको हक़ीक़ते हाल से मुत्तेला किया।

الم تران الشمس اصحت مريضه　　لقتل الحسين والبلاد اضمحلت
وكانوا غياثا ثم اضحوازية　　لقد عظمت تلک الرزياوجلت
وانّ قتبيل الطف من آل هاشم　　اذل رقاب المسلمين وذلت

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/20, तबरी, जि/6, पेज/262

"क्या तुमने नहीं देखा कि क़त्ले हुसैन[अ0स0] से सूरज को गहन लग गया और तमाम आबादियाँ मग़मूम(ग़म में डूब गई) हो गईं। हाए अफ़सोस ख़ानदाने रिसालत तो लोगों के लिए फ़रयाद रस था लेकिन आज वह खुद मुबतिलाए मुसीबत हो गया। और सच तो यूँ है कि यह मुसीबतें बड़ी अज़ीम और सख़्त थीं। ब–तहक़ीक़ कि शहीदे करबला की शहादत से मुसलमानों की गर्दनों में रूसवाई और ज़िल्लत का तौक़ पड़ गया और दर अस्ल वह ज़लील हो गए।"

अभी यह मरसिया ख़त्म भी न हुआ था कि शादियानों की आवाज़ों के साथ साथ अहले बैते रसूल[स0अ0] का तबाह हाल क़ाफ़िला शहर में दाख़िल हो गया। आगे आगे नैज़ों पर शोहदा के सर थे। और उनके पीछे ओसरा–ए–आले मुहम्मद[स0अ0] कैदी थे। एक औरत जो इस मंज़र को देखने के लिए अपने कोठे पर बैठी हुई थी क़ैदियों से मुख़ातब होकर पूछने लगी कि "तुम किस क़ौम व क़बीले से हो।" जवाब दिया गया कि हम उसरा–ए–आले मुहम्मद हैं, यह सुनना था कि एक कोहराम बर्पा हो गया। गिरया व ज़ारी के शोर से कान पड़ी आवाज़ सुनाई न देती थी।

सतही नज़र से देखने वाले इस मंज़र को अहले बैते नुबूवत के लिए सख़्त तौहीन व ज़िल्लत का बाइस समझ रहे होंगे लेकिन हक़ीक़त यह है कि उस वक़्त हुसैन[अ0स0] की तबलीग़ मुन्तहाए (इन्तेहाई) शबाब पर पहुँच गयी और दावते हक़ का दाएरा वसी से वसी तर (बढ़ता) हो गया।

अगर चश्मे हक़ीक़त बीं (हक़ीक़त भरी नज़रों) से देखा जाए तो एक तरफ़ नैज़े पर सरे हुसैन[अ0स0] जिसकी पेशानी पर सजद–ए–ख़ालिक़ का निशान पड़ा हो और चेहरे से नूर सातेअ् (निकल रहा हो) और दूसरी तरफ़ मुख़द्दराते इसमत (पर्दा नशीन औरतें) जो नामहरमों के मजमे में चादर व मक़ना से महरूम कर दिए जाने के बाद भी ग़ैरत व हया का मुजस्समा, एख़लाक़े मुहम्मदिया की तस्वीर बनी हुई जाहो जलाल की चादरों में पिनहाँ, तहारत व इफ़्फ़त (पाक दामनी) के लिबास में मलबूस थीं दोनों ने सच्चाई के पैकर में रूह फूँक दी। और दुनिया की आँखों के सामने से जिहालत व ज़लालत के पर्दों को चाक करके फेंक दिया।

इस मौक़े पर जबकि आले रसूल[स0अ0] का लुटा हुआ क़ाफ़ेला कूफ़े से इस बेकसी के आलम में गुज़र रहा था कि उसको देख कर पत्थर का दिल भी पिघल जाता, ज़ेनाने (औरतों) कूफ़ा ने फ़ितरतन बेचैन होकर रोना शुरू किया तो अली बिन हुसैन[अ0स0] (सय्यदे सज्जाद) ने ज़ोअ्फ़ो नातवानी (कमज़ोरी) के

बाइस थर्राई हुई आवाज़ में कहा कि ''तुम ही ने तो हमारा खून बहाया, अब तुम्हारी औरतें हमारे हाल पर रो रही हैं? हमारा और तुम्हारा फ़ैसला खुदा के सिपुर्द है। फिर ज़रा ग़मो अलम की तासीर में इज़ाफ़ा हुआ, और मर्दो ज़न (औरतें) सब मिलकर रोने लगे। आपने फ़रमाया कि ''तुम लोग हमारी मुसीबत पर नाला व शेवन (रो रहे) कर रहे हो। फिर आख़िर हमको तबाह व बरबाद किसने किया है?'' बशीर बिन हज़ीम असदी नाक़िल (नक़्ल किया) है कि उस वक़्त ज़ैनब बिन्ते अली[अ0स0] ने मजमे की तरफ़ रूख़ किया और मौएज़ा (तक़रीर) फ़रमाना शुरू किया। मैंने कभी एक पर्दा नशीन ख़ातून को आपकी तरह पुरज़ोर तक़रीर करते न सुना था। बस यह मालूम होता था कि आपकी ज़बान से आपके पिदरे बुज़ुर्गवार अली बिन अबी तालिब[अ0स0] बोल रहे हैं।

आपने लोगों की तरफ़ सुकूत इख़्तियार करने का इशारा किया। जिससे हर तरफ़ ख़ामोशी छा गई। आपने फ़रमाया कि ''हम्द का सज़ावार अल्लाह है और सलवातो सलाम मेरे पिदरे बुज़ुर्गवार मुहम्मदे मुस्तफ़ा[स0अ0] और उनकी इतरत से मख़सूस है। ऐ अहले कूफ़ा ऐ अहले मकरो दग़ा तुम रोते हो? खुदा करे तुम्हारे आँसूओं को थमना नसीब न हो और तुम्हारी नौहा व फ़रयाद की आवाज़ों में सुकून पैदा होने न पाए।'' फिर आपकी तक़रीर का सिलसिला जारी रहा। यहाँ तक कि आपने फ़रमायाः

''क्या तुम लोग सच मुच आँसू बहा रहे हो और चीख़ें मार मार कर रो रहे हो? हक़ीक़तन तुम्हारे लिए है भी यही बेहतर कि ज़्यादा रोओ और कम हँसो। तुमने समझने की कोशिश भी की कि किस तरह तुमने रसूले खुदा[स0अ0] के जिगर को चाक किया? उनके मोहतरम अहले हरम को बेपर्दा किया। और उनकी हतके हुरमत (तौहीन) की? क्या तुमको इस पर तअज्जुब है कि आसमान ने खून बरसाया? यह तो कुछ नहीं। आख़िरत का अज़ाब बहुत सख़्त होगा। और उस वक़्त तुम्हारा कोई मददगार न होगा। इस चन्द रोज़ा मोहलत से खुश न होना। खुदा को जल्द बाज़ी की ज़रूरत नहीं। इसलिए कि उसको मौक़े के हाथ से जाने का अन्देशा नहीं बिला शुबहा वह तुम्हें एक वक़्त तक तुम्हारे हाल पर छोड़े रहेगा।'' रावी नाक़िल (बयान करता है) है कि आपकी इस दिल हिला देने वाली तक़रीर के दौरान में मेरे गिर्दो पेश तमाम सामईन (सुनने वाले) हालते इज़्तेराब (बेचैनी) में दाँतों में उंगलियाँ दबाए हुए रो रहे थे। और एक बूढ़े को मैंने देखा वह कह रहा था कि मेरे माँ बाप तुम पर निसार, तुम्हारे बूढ़े तमाम दुनिया के बूढ़ों से, तुम्हारे जवान तमाम जवानों से, तुम्हारी

औरतें तमाम औरतों से और तुम्हारी नस्ल तमाम नसलों से अफ़ज़ल व बेहतर है। न वह कभी ज़लील की जा सकती है न रूसवा।''

आपके बाद फ़ातिमा बिन्तुल हुसैन[अ0स0] उम्मे कुलसूम बिन्ते अली[अ0स0] और ज़ैनुल आबेदीन (अली बिनल हुसैन[अ0स0]) ने मुतअद्दिद खुत्बे इरशाद फ़रमाए जिनसे अहले कूफ़ा की आँखों के सामने से पर्दे हट गए और हुकूमत ने बेख़बरी और अवाम फ़रेबी (झूठ) का जो तिलिस्म (डरामा) क़ायम किया था वह टूट गया।

हुसैनी शख़सियत का असर इतना ज़बरदस्त था कि खुद हुसैन[अ0स0] के क़ातिलों में से एक जब सरे हुसैन[अ0स0] लिए हुए दरबारे इब्ने ज़ियाद में पहुँचा तो उसकी ज़बान पर हुसैन बिन अली[अ0स0] और आपके शख़्सी और ख़ानदानी खुसूसियात के तज़किरे में मुन्दर्जा ज़ैल अशआर जारी हुए।

املأ رکابی فضة وذهبا   فقد قتلت الملک المعجبا

ومن یصلی القبلتین فی الصبّا   وخیرهم اذ یذکرون السبا

قتلت خیرالناس امّا وابا

''यानी मेरे पालाने शुतुर (ऊँट की अमारी) को तला (सोना) व नुक़रा (चाँदी) से भर दीजिए क्योंकि मैंने (आपकी ख़ातिर से) एक बड़े ज़ी इज़्ज़त बादशाह को क़त्ल किया है, उसे जो बचपने में दोनों क़िबलों की तरफ़ नमाज़ पढ़ चुका था और हसबो नसब में दुनिया भर से बेहतर था। मेंने उसे क़त्ल किया है जिसके माँ बाप दुनिया में सबसे बेहतर थे।'' उसके ज़मीर की आवाज़ इज़्तेरारी (न चाहते हुए भी) तौर पर उसके मुँह से निकल रही थी। दरआँलाकि उसने महसूस न किया कि उसके यह अलफ़ाज़ सियासते बनी उमैया के लिए किस दर्जा मुज़िर साबित हो सकते थे। नतीजा यह हुआ कि इब्ने ज़ियाद ने ग़ज़बनाक होकर उससे कहा कि ''अगर तू उन्हें ऐसा ही समझता था तो फिर उनके क़त्ल में शरीक क्यों हुआ? तुझे मुझसे किसी अच्छे सुलूक की तवक़्क़ो न रखना चाहिए। बल्कि मैं खुद तुझे भी उन ही के पास भेज दूँगा।'' चुनाँनचे वह शख़्स उसी वक़्त क़ल कर दिया गया।

इब्ने ज़ियाद ने दरबार में पस्मान्दगाने (अहले हरम, अस्ल मानी पीछे छोड़े हुए अहले ख़ाना) हुसैन[अ0स0] की हाज़री का हुक्म दिया। चुनानचे ख़ानदाने रिसालत को क़ैदियों की हैसियत से लाकर इब्ने ज़ियाद के सामने खड़ा कर दिया गया। उसने उनका दिल दुखाने के लिए इमाम हुसैन[अ0स0] के दनदाने

मुबारक को छड़ी से ज़र्ब लगाना शुरू किया। यह बेअदबी देखकर ज़ैद बिन अरक़म सहाबिये रसूल[स0अ0] ने कहा कि यह वह लबो दनदान (होंट, दाँत) हैं जिनके रसूल[स0अ0] बोसे लिया करते थे।

एक रिवायत के मुताबिक़ अनस बिन मालिक दरबार में मौजूद थे। वह रोए और कहने लगे कि हुसैन[अ0स0] सबसे ज़्यादा रसूल[स0अ0] से मुशबेह थे।[1]

उस मौक़े के लिए हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] की बड़ी बेटी जनाबे ज़ैनब[स0अ0] ने पहले ही लिबास में तब्दीली कर ली थी। खुसूसियत के साथ बहुत पस्त और मामूली दर्जे के कपड़े पहेन लिए थे और अब उस वक़्त कनीज़ों ने आपके गिर्द हल्क़ा बाँध लिया था।[2] मगर ख़लक़ी (पैदाईशी) अज़मत व जलाल छुपाने से नहीं छुपते। चुनाँनचे इब्ने ज़ियाद ने ज़ैनबे कुबरा की तरफ़ इशारा करते हुए पूछा कि वह कौन औरत है? तीन दफ़ा उसने यही कहा मगर कुछ जवाब न मिला। आख़िर एक कनीज़ ने कह दिया। अरे यह ज़ैनब बिन्ते फ़ातिमा[स0अ0] हैं। यह सुनकर इब्ने ज़ियाद ने जो फ़तहो ज़फ़र के नशे में चूर था। आपको मुख़ातब करते हुए कहा। ''खुदा का शुक्र कि उसने तुम लोगों को रूसवा किया। तुम्हें क़त्ल किया और तुम्हारा झूठ ज़ाहिर कर दिया।''[3]

''तुम लोगों'' के ख़िताब के साथ इस फ़िक़रे में कि ''तुम्हारा झूठ ज़ाहिर कर दिया।'' बड़ी वुसअत थी। उसमें कुर्आन, हदीस, रिसालत और वही सबका इन्कार मुज़मर (छुपा) था। अब इस्लामी उसूल पर हमला हो रहा था जिस पर हज़रत ज़ैनब[स0अ0] ने ख़ामोश रहना अपने लिए रवा न जाना। फ़रमायाः

''हम्द है उस खुदा के लिए जिसने हमको इज़्ज़त दी मुहम्मदे मुस्तफ़ा[स0अ0] के साथ और हमें पाको पाकीज़ा क़रार दिया। इस तरह जो हक़ है पाको पाकीज़ा क़रार देने का। न वह कि जो तू कहता है। रूसवा वह होता है जो फ़ासिक़ व फ़ाजिर हो और झूठ उसका खुलता है जिसके मद्दे नज़र हमेशा सच्चाई न रहे और वह हम नहीं हैं, हमारा ग़ैर है।''

अगर ग़ैरत होती तो इब्ने ज़ियाद को मुन्फ़इल (शर्मिन्दा) होना चाहिए था। मगर वहाँ तो इक़तेदार का नश्शा और सलतनत का गुरूर था। उसे ख़्वाह मख़्वाह जनाबे ज़ैनब का दिल दुखाने का ख़याल पैदा हुआ। और यह कहने

---

[1]सही बुख़ारी जि/11, पेज/188

[2]तबरी, जि/6, पेज/262, इरशाद पेज/259

[3]तबरी, जि/6, पेज/262

लगा ''देखा तुमने अल्लाह ने तुम्हारे भाई और दीगर अज़ीज़ों के साथ क्या किया?।''

यह तन्ज़िया फ़िक़रा एक औरत के दिल पर जो असर कर सकता है वह ज़ाहिर है मगर जनाबे ज़ैनब[स0अ0] ने मतानत के साथ जवाब दिया ''मैंने तो अच्छा ही अच्छा देखा। वह ख़ासाने ख़ुदा वह थे जिनके लिए शहादत का दर्जा ख़त्ते तक़दीर में लिख दिया गया था और वह अपने पैरों से चलकर कुर्बानगाह की तरफ़ गए। और वह दिन भी दूर नहीं कि जब पेशे ख़ुदा तेरा और उनका मुक़ाबला होगा। और तुझको अपने करतूत पर जवाब देही करना होगी।[1]

उस पर इब्ने ज़ियाद को ग़ुस्सा आ गया और उसने आपको ताज़ियाने से ईज़ा रसानी का इरादा किया। मगर अम्र बिन हरीस वग़ैरह के समझाने से बाज़ रहा। फिर भी उसने आपकी तरफ़ मुतवज्जेह होकर कहा कि ''ख़ुदा ने मेरे दिल की मुराद पूरी कर दी तुम्हारे सरकश भाई और घराने के दूसरे नाफ़रमान और बाग़ी अशख़ास को क़त्ल करके।'' उसके इस तर्ज़े कलाम से ज़ैनबे कुबरा के दिल पर चोट लगी। और आपकी आँखों से आँसू निकल आये। मगर आपने सब्रो ज़ब्त से काम लेते हुए उसके जवाब में कहा कि ''हाँ बेशक तूने मेरे अज़ीज़ों को क़त्ल किया है, मेरी शाख़ों को काट डाला है और मेरी जड़ को उखाड़ फेंक दिया है। अगर तेरी मुराद उससे बर आ गई है तो ख़ुश होले।''

उसने कहा कि ''यह बड़ी क़ाफ़िया बाज़ (हाज़िर जवाब) औरत है और इसके बाप भी तो शाएर और क़ाफ़िया बाज़ थे।''

जनाबे ज़ैनब[स0अ0] ने फिर सुकूत मुनासिब न समझते हुए फ़रमाया ''भला एक औरत को क़ाफ़िया बन्दी और शाएरी से क्या तअल्लुक़ और मैं तो इस आलम में हूँ कि मुझे क़ाफ़िया बन्दी का होश कहाँ! लेकिन दिल की आवाज़ थी जो मेरे दहेन से निकल गई।''[2]

उसके बाद वह हुसैन[अ0स0] के बीमार फ़रज़न्द की तरफ़ मुख़ातब हुआ। आपका नाम दरयाफ़्त किया। आपने फ़रमाया ''अली बिन हुसैन[अ0स0]'' वह कहने लगा। ''क्या अल्लाह ने अली बिन हुसैन[अ0स0] को क़त्ल नहीं किया? आपने सुकूत किया इब्ने ज़ियाद ने कहा क्यों कुछ बोलते क्यों नहीं। आपने फ़रमाया कि मेरे एक और भाई का नाम भी अली था। जिनको लोगों ने क़त्ल कर

---

[1]तबरी, जि/6, पेज/262

[2]तबरी, जि/6, पेज/263, इरशाद पेज/259

दिया। उसने कहा "नहीं बल्कि अल्लाह ने क़त्ल किया।" आपने इस आयत की तिलावत फ़रमाई कि "الله يتوفى الانفس حين موتها" यानी अल्लाह ही मौत के वक़्त क़ब्ज़े रूह करता है" यह और बात है। वह बोला कि यह बच्चा नहीं है। समझदार है। ले जाओ। इसको भी क़त्ल कर दो।" यह सुनना था कि जनाबे ज़ैनबे कुबरा[स0अ0] दौड़ कर अपने भतीजे से पिलट गईं और कहा मुझे भी इन ही के साथ क़त्ल किया जाए जनाबे ज़ैनब[स0अ0] की इस बेताबी से वह ज़ालिम भी मुतअस्सिर हो गया और कहा "रहने दो।" इन औरतों को लेकर यही जाएगा।"[1]

लेकिन मौत पर फ़तह पाने वाले बीमार ने निहायत जुरअत व इस्तेक़लाल के साथ फ़रमाया कि:

"इब्ने ज़ियाद तू मुझे मौत से डराता है? क्या तू नहीं जानता कि क़त्ल होना हमारी आदत है और शहादत हमारी फ़ज़ीलत।" यह वह पुरशिकवा आवाज़ थी जो दरबारे इब्ने ज़ियाद में गूंजी और हर शख़्स ने सहम कर उसको सुना। इब्ने ज़ियाद अरक़े इन्फ़ेआल (शर्मिन्दगी के पानी) में डूब गया।

उसने दरबार बरख़ास्त कर दिया। लेकिन क़ैदियों को उस वक़्त के लिए क़ैद ख़ाने में रखे जाने का हुक्म दिया। जब तक कि दमिश्क़ से इब्ने ज़ियाद का क़ासिद उसके तहनियत (शाबाशी) नामे का जवाब लेकर वापस न आ जाये।

उसके बाद इब्ने ज़ियाद ने तमाम अहले कूफ़ा को मस्जिदे जामे में जमा होने का हुक्म दिया।

जब लोग जमा हो गए तो उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद ने मिम्बर पर जाकर ब-तरीक़े एलाने आम यह नारवा कलेमात (ग़लत बातें) अपनी ज़बान पर जारी किए कि "الحمدلله الذى اظهر الحق واهله ونصر اميرالمومنين يزيدبن معاوية وحزبه وقتل الحسين بن على وشعية" इन अलफ़ाज़ में अपनी फ़तह का एलान करते हुए जनाबे अमीर[अ0स0] और हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के लिए इन्तेहाई नाज़ेबा अलफ़ाज़ इस्तेमाल किए थे। जिनके सुनते ही अब्दुल्लाह बिन अफ़ीफ़ अज़दी खड़े हो गए। यह शिअयाने अली[अ0स0] में से एक थे जिनकी बाईं आँख जंगे जमल में जनाबे अमीर[अ0स0] की नुसरत में काम आई थी। और फिर सिफ़्फ़ीन में सर पर एक तलवार पड़ी और दूसरी ज़र्ब अबरू पर पड़ी जिससे दाहनी आँख भी

[1] तबरी, जि/6, पेज/263

जाती रही। अब उनका दस्तूर यह हो गया कि यह सुब्ह को मस्जिदे जामे में आ जाते थे और रात तक नमाज़ों में मसरूफ़ रहते थे। फिर वापस जाते थे। उन्होंने इब्ने ज़ियाद के इन अलफ़ाज़ को रद करते हुए कहा "ओ पिसरे मरजाना! तू झूठा और तेरा बाप झूठा और वह झूठा जिसने तुझको हाकिम बनाया और उसका बाप झूठा। ओ मरजाना के लड़के! पैग़म्बर की औलाद को क़त्ल करने के बाद रास्तबाज़ों की तरह कलाम करना चाहता है?" इब्ने ज़ियाद ने ग़ज़बनाक होकर सिपाहियों को हुक्म दिया कि वह उनको गिरफ़्तार कर लें मगर अब्दुल्लाह ने अपनी क़ौम अज़दी को आवाज़ दी जिसके सात सौ जंगी जवान कूफ़े में मौजूद थे। चुनाँनचे कुछ बहादुर अज़दी उनकी इमदाद के लिए आ गए और सिपाहियों के हाथ से उनको छुड़ा कर निकाल ले गए और उनके मकान पर पहुँचा दिया मगर रात को मख़्फ़ी तौर से इब्ने ज़ियाद ने फिर उनके घर पर से उन्हें गिरफ़्तार कराया और बेरहमी के साथ उनको क़त्ल करा दिया और उनकी लाश को दूसरों की इबरत के लिए दार पर खींचा।[1]

दूसरे दिन इब्ने ज़ियाद के हुक्म से सरे इमाम हुसैन[अ0स0] को कूफ़े के कूचे व बाज़ार और तमाम क़बाएल में गर्दिश दी गई। और फिर दरवाज़–ए–क़स्र पर आवेज़ाँ करा दिया गया।[2]

जिस ज़माने में अहले बैते अतहार कूफ़े में असीर थे आम ख़याल यह था कि यज़ीद तमाम क़ैदियों के क़त्ल कर दिये जाने का हुक्म देगा। उसी दौरान में कि जब उसराए (क़ैदी) आले मुहम्मद[स0अ0] कूफ़े में क़ैद थे एक दिन किसी ने क़ैद ख़ाने में एक पत्थर फेंका जिसमें इस मज़मून की एक तहरीर बंधी हुई थी कि आपके मुआमिलात के लिए एक ख़त यज़ीद के पास भेजा गया है। क़ासिद इस तारीख़ को जा रहा है और इस तारीख़ तक पलटेगा। अगर नावक़्त तकबीर की आवाज़ सुनाई दे तो अपने मुतअल्लिक़ हुक्मे क़त्ल का यक़ीन कर लीजिएगा। और अगर तकबीर न सुनाई दे तो समझ लीजिएगा कि इन्शाअल्लाह अमान है। लेकिन क़ासिद के आने पर तकबीर की आवाज़ बलन्द नहीं की गई। क्योंकि यज़ीद ने हुक्म दिया था कि क़ैदियों को दमिश्क़ रवाना कर दो।[3]

---

[1]तबरी, जि/6, पेज/263–264, इरशाद पेज/260

[2]इरशाद पेज/260

[3]तबरी, जि/6, पेज/266

इब्ने ज़ियाद ने हुक्म दिया कि इमाम हुसैन[अ0स0] के सर को नोके नैज़ा पर बलन्द करके तमाम शहर में गर्दिश दी जाए फिर तमाम शोहदा के सरों को ज़हर बिन क़ैस वग़ैरह चन्द आदमियों के सिपुर्द किया और उन्हें दमिश्क़ की तरफ़ रवाना किया और उनके एअक़ब (पीछे) में बीमार व नातवाँ अली बिन हुसैन[अ0स0] की गर्दन में तौक़ डाल कर और अहले हरम को ऊँटों पर सवार करके महज़र बिन सअ्लबा आएदी और शिम्र ज़िल जौशन की निगरानी में रवाना किया।[1]

ख़ानदाने रसूल की ताराजी और अपनी कामयाबी को नुमायाँ करने के लिए इराक़ से दमिश्क़ जाने का वह रास्ता इख़्तियार किया गया जिसमें आबादियाँ ज़्यादा पड़ती थीं।

रास्ते भर इमाम ज़ैनुल आबेदीन[अ0स0] का आलम यह था कि किसी से कलाम नहीं करते थे। बिल्कुल ख़ामोश चले जा रहे थे।[2] लेकिन पसमान्दगाने हुसैन के इस तरह तशहीर किए जाने से आम तौर पर उमवी हुकूमत के ख़िलाफ़ ग़म व ग़ुस्से का इज़हार किया जाने लगा। और बहुत से मक़ामात पर बेचैनी और बरहमी के आसार नमूदार हुए। बहरहाल तरह तरह के अन्दोह (तकलीफ़) व मसाएब को बरदाश्त करने के बाद यह पसमान्दगान (अहले हरम) दमिश्क़ में दाख़िल हुए। उस दिन वहाँ के बाज़ार ख़ास एहतेमाम से सजाए गए थे। और मजमे की यह कसरत थी कि आफ़ताब निकलने के साथ ही दाख़िल होने के बावजूद कहीं ज़वाल के वक़्त दरबारे यज़ीद में पहुँच सके थे। जब ख़ानदाने रिसालत का यह लुटा हुआ क़ाफ़ेला बाज़ार से गुज़र रहा था तो इब्राहीम बिन तलहा बिन अब्दुल्लाह ने अली बिन हुसैन[अ0स0] से तन्ज़न पूछा कि ''ऐ फ़रज़न्दे रसूल फ़तह किसकी हुई?'' आपने जवाब में फ़रमायाः ''तुमको अगर मालूम करना है कि फ़तह किसकी हुई तो नमाज़ के वक़्त जब अज़ान व एक़ामत कहना उस वक़्त मालूम कर लेना कि किसकी फ़तह हुई और किसकी शिकस्त।''

जब अहलेबैते नुबूवत हालते असीरी में दरवाज़—ए—मस्जिदे दमिश्क़ पर पहुँचे तो एक बूढ़ा सामने आया और उसने उनको देखकर कहा ''हम्द है उस ख़ुदा की जिसने तुमको क़त्ल और हलाक किया। और मुल्कों और शहरों को तुम्हारे मर्दों से ख़ाली और पुरअमन बनाया। और अमीरूल मोमिनीन यज़ीद को

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/257, तबरी, जि/6, पेज/264, इरशाद पेज/260

[2]तबरी, जि/6, पेज/264

तुम पर ग़लबा अता फ़रमाया।'' उस बूढ़े से यह कलेमात सुनकर बीमारे करबला अली बिन हुसैन[अ०स०] ने फ़रमाया ''ऐ शैख़ क्या तूने कुरआन में यह आयत पढ़ी है। ''قل لااسئلکم علیه اجراً الاالمودة فی القربیٰ'' यानी कह दो (ऐ हमारे हबीब) कि मैं सिवाए अपने ज़विल कुर्बा (अहलेबैत) की मवद्दत व मुहब्बत के तुमसे और कोई अज्र व मुआवेज़ा इस तबलीगे़ रिसालत पर नहीं माँगता, बूढ़े ने कहा कि ''हाँ यह आयत मैंने पढ़ी है।'' आपने फ़रमाया वह रसूल के ज़विल कुर्बा हम ही हैं जिनकी मुहब्बत तुम पर फ़र्ज़ की गई है। फिर फ़रमायाः क्या यह आयत भी पढ़ी है। ''واعلموا اناماغنمتم من یشیٔ فان اللہ خمسه وللرسول ولذی القربیٰ''यानी याद रखो कि जो तुम कुछ मुनफ़अत (फ़ाएदा) हासिल करो और जो माल बग़ैर मुशक़्क़त पाओ उसमें से पाँचवाँ हिस्सा अल्लाह, रसूल और उनके ज़विल कुर्बा (क़राबतदार) का हक़ निकाल दो। उसने अर्ज़ किया कि हाँ यह आयत भी पढ़ी है। आपने फ़रमाया वह ज़विल कुर्बा हम ही हैं। जिनका यह हक़ खुम्स में निकालना वाजिब है और क्या यह भी पढ़ा है कि ''انما یرید اللہ لیذهب عنکم الرجس اہل البیت ویطهرکم تطہیرا'' उसने अर्ज़ किया कि बेशक पढ़ा है। आपने फ़रमाया कि वह अहलेबैते नुबूवत हम ही हैं जिनको खुदा ने बुराई से पाक रखा और मासूम बनाया है। बूढ़ा यह सुनकर हैरान हो गया।

उसने तस्दीक़ के तौर पर दरयाफ़्त किया कि ''खुदा की क़सम सचमुच तुम वही हो? आपने ज़ोर देकर फ़रमाया कि हाँ क़सम ब–खुदा हम वही आले रसूल अहलेबैते नुबूवत ज़विल कुर्ब–ए–रिसालत हैं। बिला शक व शुबहा और अपने जद रसूल अल्लाह ही की क़सम कि हम वही हैं। यह सुनना था कि बूढ़े ने फूट फूट कर रोना शुरू किया। अम्मामा सर से फेंक दिया। सर आसमान की तरफ़ बलन्द किया और कहा कि ''खुदा वन्दा गवाह रहना कि मैं हर दुश्मने आले मुहम्मद[स०अ०] से चाहे वह जिन (जिन्नात) हो या इन्स (इन्सान) बेज़ार हूँ और उनसे दूरी चाहता हूँ।'' फिर बीमारे करबला की तरफ़ मुख़ातब होकर पूछने लगा कि ''क्या मेरी तौबा कुबूल हो सकती है? आपने फ़रमायाः हाँ अगर तुम तौबा क़रो तो कुबूल होगी। और तुम हमारे असहाब में शुमार होगे। उसने अर्ज़ किया ''मैं तौबा करता हूँ, उस गुस्ताख़ी से जो मैंने अदमे मारिफ़त (समझे बग़ैर) की बिना पर आपकी शान में की थी।''

इस वाक़ये से ज़ाहिर हो जाता है कि बनी उमैया के पचास बरस के प्रोपैगन्डे के नतीजे में आम मुसलमान ख़ुसूसन अहले शाम किस हद तक आले मुहम्मद[स0अ0] से ना आशना हो चुके थे।

इब्ने अल–क़फ़ती ने अपनी तारीख़ में लिखा है कि जिस वक़्त उसराए आले मुहम्मद और सरहाए शोहदा दमिश्क़ में दाख़िल हो रहे थे उस वक़्त यज़ीद अपने महल के बालाख़ाने पर जो मक़ामे जैरून में था इस मन्ज़र का मुशाहदा करने के लिए मौजूद था और जूँही सरहाए शोहदा नैज़ों पर दूर से नज़र आये उसने यह अशआर पढ़ें

لمابدت تلک الحمول واشرفت   تلک الؤوس علی ربی جبرون

نعب الغراب قل اولا تقل   فلقد قضیت من الرسول ویونی

जब वह सवारियाँ नज़र आईं और उन सरों का साया जबरून के टीलों पर पड़ा तो कौवा कायें कायें करने लगा। (जो कि नहूसत की निशानी समझी जाती थी) मैंने कहा तू बोल या न बोल मैंने बहरहाल पैग़म्बर[स0अ0] से अपने क़रज़े वसूल कर लिए हैं।

उन दो शेअ्रों ही से यज़ीद की ग़लत ज़हनियत का इन्केशाफ़ साफ़ तौर पर हो जाता है। यानी इमाम हुसैन[अ0स0] आपके अन्सार और अहले हरम के ख़िलाफ़ जो जो मज़ालिम किए गए थे उनको वह हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] से क़र्ज़ा वसूल होने के बराबर समझता था।

शहरे दमिश्क़ में दाख़िल होने के बाद यह क़ाफ़िला उस दरवाज़े के पास जो दरबारे शाही से क़रीब था रोक दिया गया। और वहाँ काफ़ी देर तक ठहराए रखे जाने के बाद उसको इज़्ने हुज़ूरी मिला। और उस दरबार में जो ख़ुसूसियत के साथ आरास्ता किया गया था। ख़ानदाने रिसालत मिस्ले ग़ुलामाने हबश व कनीज़ाने तुर्कों दैलम और तश्ते तला में हुसैन मज़लूम[अ0स0] का सरे मुबारक यज़ीद के सामने पेश किया जा रहा था।

ज़हर बिन क़ैस ने ग़लत तौर से बढ़ा चढ़ा कर अपनी जमाअत की बहादुरी और असहाबे हुसैन[अ0स0] की बेबसी का नक़्शा खींचते हुए रूदादे जंग यज़ीद को सुनाई। जिसका मज़मून यह था कि सरकारे वाला हुसैन बिन अली[अ0स0] इराक़ की तरफ़ अठ्ठारा आदमियों को लिए हुए अपने अहलेबैत में से और साठ आदमियों के साथ अपने शियों में से तो हम उनके मुक़ाबले के लिए गए और उनसे मुतालबा किया कि वह ग़ैर मशरूत (बग़ैर शर्त) तरीक़े पर अपने को अमीर उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद के सिपुर्द कर दें या जिदाल व

क़िताल (जंग और क़त्ल) पर आमादा हो जायें उन्होंने जंग को सिपुर्दगी के मुक़ाबले में तरजीह दी। तो सूरज निकलने के बाद ही हमने उनको चारों तरफ़ से घेर कर इस तरह हमला कर दिया जिस तरह कबूतरों पर शिकरे हमला करते हैं। जिससे उनको किसी तरह पनाह न मिलती थी। चुनाँनचे ज़्यादा देर गुज़रने न पाई कि उनका पूरे तौर पर ख़ातमा कर दिया गया। और उनके जिस्म बेलिबास ख़ाक व ख़ून में आलूदा छोड़ दिए गए।[1]

उस मौक़े पर यज़ीद अपने नुदमा (दोस्तों) के साथ बैठा हुआ शतरंज खेल रहा था और शराब के नशे में यह शेअ्र गा रहा था।

ادرکاساوناولها   الایاایهاالساقی

फिर कैफ़ो सुरूर के साथ साथ बे दीनी का पारा और ऊँचा हुआ और यह अशआर पढ़ने लगा।

لیت اشیاخی ببدرشهدوا   جزع الخزرج من وقع الاصل

لاهلّوا واستهلوا فرحاً   ولقالوا یا یزید لاتشل

لعبت بنوهاشمی بالملک ولا   خبرجاء ولاوحی نزل

यानी मेरे जंगे बद्र वाले बुज़ुर्ग ज़िन्दा होते और देखते कि दीने मुहम्मदी के अन्सार किस तरह नैज़ों के पड़ने से घिर गए हैं। तो वह इस सूरत में खुश होकर मुझे दुआएं देने लगते। बनी हाशिम ने हुसूले सलतनत का एक खेल खेला था। हक़ीक़त में न कोई ख़बर आई थी और न कोई वही नाज़िल हुई थी।

यह सुनना था कि जनाबे ज़ैनबे कुबरा[स0अ0] खड़ी हो गईं और आपने मारिकतुल आरा तक़रीर शुरू की जिसने यज़ीद के जाहो जलाल (शानो शौकत) की तमाम बुनियादों को खोखला कर दिया। आपने फ़रमाया कि "कितना सच्चा है मेरे परवरदिगार का इरशाद कि "आख़िर में उन लोगों की जो बुरे आमाल करते हैं यह नौबत पहुंची कि वह आयाते ख़ुदा वन्दी की तकज़ीब (झुठलाने) करने और उनकी हंसी उड़ाने लगे।" तूने ऐ यज़ीद! क्या यह गुमान किया है कि चूँकि तूने हम पर ज़मीन व आसमान के तमाम रास्तों को बन्द करते हुए हमको इस हालत में पहुँचा दिया है कि आज हम तेरे सामने क़ैदियों की तरह लाये जा रहे हैं तो इससे ख़ुदा के नज़ीक भी हम

---

[1]तबरी, जि/6, पेज/264, इरशाद पेज/261, देनवरी ने इस तक़रीर को शिम्र की तरफ़ मन्सूब करके दर्ज किया है। अख़बारूत तुवाल, पेज/257–258

हक़ीर और तू बाइज़्ज़त क़रार पा गया। या यह कि तुझे यह ज़ाहरी कामयाबी तेरे मुक़र्रब (क़रीबतर) बारगाहे इलाही होने की जेहत से हासिल हुई है। इसी ख़याल के मातहत तू खुश हो हो कर अपने शानों पर नज़र डाल रहा है। इसलिए कि इस वक़्त तुझको यही दिखाई दे रहा है कि दुनिया तेरे हुक्म की पाबन्द और उमूरे ममलकत मुनज़्ज़म व मुरत्तब (हुकूमत का निज़ाम ठीक ठाक) हैं। और सलतनतो हुकूमत तेरे लिए तमाम ख़तरात से पाको साफ़ हो गई है। क्या तू भूल गया खुदा के क़ौल को कि न ख़याल करें वह लोग जिन्हों ने कुफ़्र इख़्तियार कर रखा है कि हम जो उनको मोहलत देते हैं वह उनके लिए किसी बेहतरी का बाइस होगी। हम उनको सिर्फ़ इसलिए मोहलत देते हैं कि वह खूब दिल खोल कर गुनाह कर लें।

बिल–आख़िर तो उनके लिए हिक़ारत (ज़िल्लत) आमेज़ सज़ा मुक़र्रर ही है। क्या इस्लामी ग़ैरत व हमीयत इसी की मुतक़ाज़ी (तक़ाज़ा) है कि तू अपनी औरतों बल्कि कनीज़ों तक के लिए पर्दे का एहतेमाम करे और रसूल[स0अ0] की नवासियों को क़ैद करके दर बदर फिराए और फिर उस पर यह कहने की जुरअत करे कि ''لاهلّوا واستهلوا فرحاً'' गोया तू अपने मुशरिक बुज़ुर्गों से दाद (तारीफ़) का तालिब है। घबरा नहीं थोड़े ही दिनों में तू भी उसी घाट उतार दिया जायेगा और उस वक़्त तू आरज़ू करेगा कि काश तेरे हाथ शल और ज़बान गुंग होती और तूने जो कुछ कहा और किया वह न कहा और न किया होता। तेरे लिए इससे बदतर क्या हो सकता है कि रोज़े हश्र खुदा तेरा फ़ैसला करने वाला, मुहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] तेरे मुक़ाबिल में मुद्दई (हमारे गवाह, दावा) और जिब्रील उनकी तरफ़ से दावे के गवाह होंगे। उस वक़्त उन लोगों को भी जिन्हों ने तेरे अफ़आल (बदकारियों) की ताईद की है और तेरा साथ देकर तुझे मुसलमानों की गर्दनों पर मुसल्लत रखा है। मालूम हो जाएगा कि ज़ालिमों को कैसा बुरा बदला दिया जाता है। अगरचे इन्क़ेलाबे ज़माना ने यह नौबत पहुँचा दी है कि मैं तुझसे बात कर रही हूँ, मेरी नज़रों में तेरी तो कोई वुक़अत नहीं हत्ता कि तेरी तोबीख़ व सरज़निश (मलामत) को भी मैं अपने लिए एक बड़ी मुसीबत ख़याल करती हूँ। लेकिन करूँ क्या कि दिल भरा हुआ है और कलेजे में आग लगी है। खुदा की शान कि खुदा परस्त अफ़राद शैतानी लशकर के हाथों क़त्ल हों।

अच्छा (ऐ यज़ीद तुझको क़सम है) तू कोई दक़ीक़ा उठा न रख। और अपनी पूरी कोशिश सर्फ़ कर और अपनी तमाम जिद्दो जोहद ख़त्म कर दे,

लेकिन खुदा की क़सम तू हमारे ज़िक्र को और हमारी ज़िन्दगी को फ़ना नहीं कर सकता। और न हमारे असली मक़सद को तू पहुँच सकता है। इस ख़ूने नाहक़ का धब्बा तेरे दामन पर क़यामत तक बाक़ी रहेगा। और तू कभी उसको धो नहीं सकता।

तेरी राए यक़ीनन ग़लत, तेरी ज़िन्दगी बहुत महदूद। और तेरे इर्द–गिर्द का मजमा बहुत जल्द तितिर बितिर होने वाला है। वह दिन बहुत नज़दीक है जब मुनादी निदा करेगा कि ''ज़ालिमों पर खुदा की लानत है।'' शुक्र है उस खुदा का जिसने हमारे पेशरौ बुज़ुर्गों का अन्जाम सआदत के साथ और हमारे आख़री बुज़ुर्ग का अन्जाम शहादत व रहमत के साथ मुक़र्रर किया। और वही हमारे लिए काफ़ी और बेहतरीन नासिर व मुईन (मददगार) है।''

अब यज़ीद ने इमाम ज़ैनुल आबेदीन[अ0स0] की दिल आज़ारी (दिल दुखाना) करना चाही और आपको मुख़ातब करते हुए कुरआन की यह आयत पढ़ी, ''وَمَا أَصَابَكُمْ مِنْ مُصِيبَةٍ فَبِمَا كَسَبَتْ أَيْدِيكُمْ'' ''जो मुसीबत तुम पर आई वह तुम्हारे हाथों आई।'' इमाम ने दूसरी कुरआनी आयत पढ़ते हुए बताया कि हम पहली आयत के मिसदाक़ नहीं हैं बल्कि इस आयत के मिसदाक़ हैं:

ما أصاب من مصيبة في الأرض ولا في أنفسكم إلا في كتاب مبين من قبل أن نبرأها إن ذلك على الله يسير[1]

मतलब यह हुआ कि हमारी मुसीबत एक अहदो पैमान के मुताबिक़ है जो अज़ल से क़लमबन्द हो चुका था और जिसकी तकमील ज़रूरी थी।

पैहम (मुसलसल) हक़ के एलानात ने हाज़रीन की निगाहों से बातिल के पर्दे भी हटाए और जुरअते इज़हार भी पैदा की। चुनाँनचे जब यज़ीद ने भी लबो दन्दाने हुसैन[अ0स0] के साथ इस बेअदबी का एआदा (दोहराया) किया जो कूफ़े में इब्ने ज़ियाद कर चुका था। ग़ालिबन इस ख़याल के मातहत कि कूफ़ा शिअयाने अली[अ0स0] का मरकज़ रह चुका था। लिहाज़ा ज़ैद बिन अरक़म इब्ने ज़ियाद को बरसरे दरबाद टोक देने की हिम्मत कर सके। भला दमिश्क़ में किसकी मजाल होगी कि मुझ पर मोतरिज़ (एतेराज़) हो सके। मगर हुआ यहाँ भी वही।

अबू बरज़–ए–असलमी खड़े हो गए और कहा अरे तू अपनी छड़ी उस लबो दन्दान पर लगाता है जिसे मैंने अक्सर देखा कि उस पर रसूल

[1]काफ़ी, जि/1, पेज/503

अल्लाह[स0अ0] अपना मुँह रखते थे। याद रख कि अब क़यामत के दिन बस तेरी शिफ़ाअत इब्ने ज़ियाद ही करेगा।[1]

बावजूद इसके यज़ीद की इन जसारतों और गुस्ताख़ियों को देख कर अहले दरबार की हिम्मतें बढ़ गईं। चुनाँनचे एक सुर्ख़ रंग शामी खड़ा हुआ और कहने लगा कि ऐ अमीरूल मोमिनीन! यह लड़की मुझे दे दीजिए। और इशारा किया उसने फ़ातिमा बिन्तुल हुसैन[अ0स0] की तरफ़। यह सुनना था कि आप काँपने लगीं और अपनी फूफी जनाबे ज़ैनब[स0अ0] से लिपट गईं। जनाबे ज़ैनब ने बच्ची को तसल्ली दी और बलन्द आवाज़ से उस शामी से कहा कि क्या बकता है। ब–खुदा तू मर भी जाए तो यह नहीं हो सकता। न यज़ीद ऐसा कर सकता है। आपके आख़री फ़िक़रे पर यज़ीद को तैश आ गया और वह कहने लगा ''तुम ग़लत कहती हो मुझे इसका इख़्तियार हासिल है और अगर मैं चाहूँ तो ऐसा यक़ीनन कर सकता हूँ।'' जनाबे ज़ैनब[स0अ0] ने फ़रमाया ''जब तक इस्लाम का दावा रखता है तू हरगिज़ ऐसा नहीं कर सकता, यह और बात है कि अलल एलान तू हमारे मज़हब से ख़ारिज हो कर कोई दूसरा दीन इख़्तियार कर ले।'' उस पर यज़ीद का गुस्सा और बढ़ा और वह कहने लगा ''मुझसे तुम ऐसी बातें करती हो। दीन से ख़ारिज तो, तुम्हारे बाप और भाई थे।'' जनाबे ज़ैनब[स0अ0] ने जवाब दिया कि मेरे बाप और भाई के दीन ही को बज़ाहिर इख़्तियार करके तू और तेरा बाप और दादा मुसलमान कहलाये।'' यज़ीद उसके बाद और ज़्यादा सख़्त कलामी पर उतर आया। नाचार ज़ैनबे कुबरा को यह कहना पड़ा कि यज़ीद तू एक ज़ालिम हाकिम है और अपने जबरो तशद्दुद से हमको दबाना चाहता है।'' आपके इस जवाब से यज़ीद को कुछ शर्म दामनगीर हुई और वह ख़ामोश हो गया। उसके बाद जब शामी ने फिर अपनी दरख़्वास्त को दोहराया तो यज़ीद ने उसे सख़्ती से डाँट दिया और कहा कि ''दूर हो खुदा तुझे ग़ारत करे।'' 1 (तबरी, जि/6, पेज/265, इरशाद पेज/260)

एक दफ़ा दरबार में यज़ीद ने हज़रत इमाम ज़ैनुल आबेदीन[अ0स0] से मुख़ातब होकर कहा ''ऐ अली बिन हुसैन[अ0स0] तुम्हारे बाप ने मेरी क़राबतदारी का ख़याल न किया मेरे हुक़ूक़ को नज़र अन्दाज़ किया और मेरी सलतनत में मुनाज़िअत (लड़ाई) की तो अल्लाह ने उनके साथ वही किया जो तुम देख रहे हो।'' इमाम ने उसके जवाब में वही आयत पढ़ी कि ''

---

[1]तबरी, जि/6, पेज/267

मतलब यह था कि यह तो अलमे इम्कान में लैलो नहार (सुबह व शाम) रहता ही है किसी को फ़तह और किसी को शिकस्त। इसकी दलीलें हक़्क़ानियत नहीं समझना चाहिए।

अब यज़ीद को फ़तह की तरंग (नशा) और बढ़ी। यह उसकी नफ़्सियाती ख़लिश (अन्दर की जलन) का असर था वह समझ रहा था कि खुद मेरे दरबार में हर शख़्स मुझे मुजरिम समझ रहा है। वह सफ़ाई की कोशिश करने लगा। जो मज़ीद उसके ख़बसे नफ़्स (अन्दर की गंदगी) का सुबूत बन गई। वह अपने ख़ानदान की मुद्दते दराज़ (बरसों) की इस सियासत को कि आले रसूल[स0अ0] से अवाम को नावाक़िफ़ रखा जाए फ़तह के नशे में खुद शिकस्ता कर रहा था। उसने कहा "तुम लोग जानते हो इन पर यह मुसीबत क्यों आई? सिर्फ़ इसलिए कि यह अपनी जगह समझते थे कि मेरे बाप अली[अ0स0] इस (यज़ीद) के बाप से बेहतर और मेरी माँ उसकी माँ से बेहतर और मेरे नाना उसके नाना से बेहतर थे और मैं खुद उससे बेहतर और ख़िलाफ़त का उससे ज़्यादा मुस्तहक़ हूँ। हालाँकि उनका यह ख़याल कि उनके बाप मेरे बाप से बेहतर थे उसका तसफ़िया (फ़ैसला) यूँ हो जाता है कि मेरे बाप और इनके बाप के दरमियान झगड़ा तो दुनिया को मालूम है कि उसका फ़ैसला किसके मुवाफ़िक़ हुआ। बेशक उनका यह कहना कि उनकी माँ मेरी माँ से बेहतर थीं और यह भी कि उनके नाना मेरे नाना से बेहतर थे। यक़ीनन दुरूस्त है इसलिए कि कोई मुसलमान रसूल[स0अ0] का मद्दे मुक़ाबिल दूसरे को नहीं समझ सकता। मगर कुरआन की यह आयत उनके पेशे नज़र न थी कि सलतनत का मालिक अल्लाह है जिसे चाहता है देता है और जिससे चाहता है सल्ब (ले लेता) करता है और जिसे चाहता है इज़्ज़त देता है और जिसे चाहता है ज़लील करता है वह हर शै पर क़ादिर है।"

इस तक़रीर से ज़ाहिर है कि औसाफ़े (खुसूसियतों) इम्तेयाज़ी के मुक़ाबले में यज़ीद ने अपनी शिकस्त का इक़रार कर लिया। मगर आख़िर में दलील वही क़हरो ग़ल्बा की पेश कर दी। जिसकी बिना पर नमरूद, फ़िरऔन और शद्दाद तक बेजुर्मो ख़ता साबित किए जा सकते हैं। मगर ज़ाहिर है कि यह मेयारे हक़्क़ानियत (हक़ की कसौटी) नहीं है न कुरआन की आयत का यह मतलब है।

ख़ानदाने बनी उमैया का एक शख़्स यहिया बिन हकम इन हालात से इतना मुतअस्सिर हुआ कि एलानिया उसने अपने अशआर में हुसैन[अ0स0] की शहादत पर इज़हारे रंजो मलाल और इब्ने ज़ियाद को बुरा कहना शुरू कर दिया। उस पर यज़ीद ने यहिया के सीने पर हाथ मारा और कहा ख़ामोश नहीं रहते हो।[1]

इतना ही नहीं बल्कि यज़ीद की बीवी हिन्द बिन्ते अब्दुल्लाह बिन आमिर बिन करेज़ तो दरबार में निकल आई कि अरे रसूल[स0अ0] की बेटी फ़ातिमा के लाल का सर और इस तरह।[2] फिर भी ऐसा नहीं हुआ कि अहलेबैते नुबूवत को फ़ौरन मदीने रवाना कर दिया जाता बल्कि वह अरसे तक ज़िन्दान में क़ैद रहे बेशक जब मुल्क में बेचैनी के आसार नज़र आये और सियासी तौर पर अपनी ग़लती का एहसास हुआ तो अब उसने अहलेबैते रसूल[स0अ0] को रिहा कर दिया और उनके लिए एक मकान ख़ाली करा दिया जिसमें दमिश्क़ की ख़ास ख़ास घरानों की औरतों ने आकर अहले बैते हुसैन[अ0स0] को हुसैन का पुरसा दिया और तीन दिन तक इमामे मज़लूम का मातम बरपा रहा।[3]

नोमान बिन बशीर अन्सारी को जो जनाबे मुस्लिम बिन अक़ील के साथ तशद्दुद (ज़ुल्म) न करने के जुर्म में कूफ़े की हुकूमत से माज़ूल कर दिए गए थे और उसके बाद से वह दमिश्क़ में गोया नज़र बन्द रखे गए थे आले मुहम्मद[स0अ0] का हमदर्द समझ कर हिदायत की गई कि वह पसमान्दगाने (अहले हरम) हुसैन[अ0स0] को बाइज़्ज़त व एहतेराम के साथ मदीने पहुँचाने का इन्तेज़ाम करें।[4]

अब यज़ीद क़त्ले हुसैन[अ0स0] से अपने को बरी ज़ाहिर करने की नाकाम कोशिश कर रहा था। इसलिए उसने इमाम ज़ैनुल आबेदीन[अ0स0] को तन्हाई में अपने पास बुलाया और कहा कि ख़ुदा इब्ने मरजाना पर लानत करे। अगर बराहे रास्त आपके वालिद का और मेरा सामना हो जाता तो जो कुछ वह फ़रमाते मैं मन्ज़ूर कर लेता और कभी उनको क़त्ल करना गवारा न करता। बहरतौर ख़ुदा को जो मन्ज़ूर था वह हुआ। अब आप मदीने तशरीफ़ ले जाइये

---

[1]तबरी, जि/6, पेज/265
[2]तबरी, जि/6, पेज/267
[3]तबरी, जि/6, पेज/267
[4]तबरी, जि/6, पेज/265

और वहाँ से मुझे ख़त लिखते रहियेगा और जो भी ज़रूरत हो उससे मुझे मुत्तेला कीजिएगा।[1]

उसके बाद तीस आदमी नोअ्मान बिन बशीर के साथ किए गए और नोमान ने हस्बे हिदायत अहलेबैते रिसालत के साथ रास्ते भर पूरे एहतेराम का बर्ताव रखा और उनको मदीने तक पहुँचाया।[2]

इस लुटे हुए क़ाफ़ेले के पहुँचने से मदीने में एक कोहराम बरपा था। पर्दा नशीन ख़वातीन तक बेताबाना घरों से निकल आईं। चुनाँनचे ख़ानदाने अब्दुल मुत्तलिब की एक ख़ातून का यह आलम था कि वह बाल बिखराए हुए दर्दअंगेज़ नौहा पढ़ रही थीं। जिसका मज़मून यह था कि रोज़े क़यामत रसूले ख़ुदा[स0अ0] को क्या जवाब दोगे। जब वह पूछेंगे कि तुमने मेरे बाद मेरे अहलेबैत से क्या सुलूक किया। जिनका आलम यह है कि कुछ उनमें से क़ैदी बनाए गए हैं और कुछ ख़ाको ख़ून में आग़ुश्ता (मुबतिला) हुए। क्या मेरी ख़िदमात का यही सिला था कि तुम मेरी औलाद के साथ मेरे बाद यह सुलूक करो।[3]

---

[1]तबरी, जि/6, पेज/266, इरशाद पेज/263

[2]अख़बारूत तुवाल पेज/258

[3]तबरी, जि/6, पेज/221

इक्तीसवाँ बाब

असीरि–ए–अहले हरम के वाक़ेआत पर एक जामे तबसेरा

गुज़िश्ता वाक़ेआत की रौशनी में पूरे तौर पर यह अन्दाज़ा हो जाता है कि यज़ीद को इन्कारे बैयत के बहाने सिर्फ़ क़त्ले हुसैन[अ०स०] ही मक़सूद न था बल्कि हक़ीक़तन वह उस रूहानी मरकज़ को फ़ना करना और अवाम की नज़रों से गिराना चाहता था जो तालीमाते इस्लामी का मुहाफ़िज़ होते हुए नाजाएज़ इक़्तेदार के तसर्रूफ़ात में किसी भी जमाअत के साथ तआवुन न कर सकता था और उसकी तमाम ज़िम्मेदारी दमिश्क़ की मरकज़ी हुकूमत पर थी जिसने अपने मक़सद के हुसूल के लिए मदीने फ़रमान भेजा, हाकिमे मदीना को बदला, मक्के में हाजीयों के लिबास में फ़ौज के सिपाही भेजे। इब्ने ज़ियाद को कूफ़े का गवर्नर मुक़र्रर किया और उसे इस मुहिम को सर करने का पूरा इख़्तियार दिया। अगर यह सब बातें हुक्मे यज़ीद से न हुई होतीं तो इब्ने ज़ियाद अहलेबैत को दमिश्क़ न भेजता, कूफ़े ही में क़ैद रखता। फिर उसके इत्तेला देने के बाद अगर यज़ीद को अहलेबैते रिसालत की तज़लील व तौहीन मद्दे नज़र न होती तो क़ैद करके शाम बुलाने की कोई वजह न थी बल्कि करबला या कूफ़े ही से वह मदीने रवाना कर दिए जाते। शहादते इमाम हुसैन[अ०स०] तक तो ब–फ़र्ज़े मुहाल मान भी लिया जाए कि यज़ीद को इत्तेला न थी और वह इब्ने ज़ियाद का ज़ाती फ़ेअ्ल (अमल) था मगर शहादते हुसैन[अ०स०] के बाद तो इब्ने ज़ियाद ने पसमान्दगाने हुसैन[अ०स०] को इसी ग़रज़ से कूफ़े में ठहराये रखा कि उनके मुतअल्लिक़ यज़ीद से हिदायात हासिल किए जायें। चुनाँनचे उसके बाद से जो कुछ अमल दर आमद हुआ वह तो सराहतन (खुले हुए) यज़ीद के अहकाम के बाद हुआ। फिर भी क्या इस ख़याल की गुन्जाइश बाक़ी रह सकती है कि सरहाए शोहदा और अहले हरम का क़ैद करके दमिश्क़ भेजना भी इब्ने ज़ियाद का ज़ाती फ़ेअ्ल था।

फिर अगर यज़ीद को ख़्वाह मख़्वाह उन हज़रात की तौहीन मन्ज़ूर न होती तो कोई मकान पहले से मुहैया किया जाता और उसी में अहलेबैते

रिसालत को उतारा जाता। और यज़ीद ने पहली ही बार इज़्ज़तो एहतेराम के साथ सय्यदे सज्जाद अली बिनल हुसैन[अ0स0] से मुलाक़ात की होती, मगर तारीख़ें मुत्तफ़िक़ हैं कि अहले हरम शाम बुलवाये गए। यज़ीद ने दरबारे आम और ना महरमों के मजमे में उसराये (असीर) आले मुहम्मद[स0अ0] को तलब किया। और कुछ न हुआ होता तो अहलेबैत की यही क्या कम बेहुरमती थी जो बिला वास्ता खुद यज़ीद ही के हाथों अमल में आई थी न कि "मज़ीद बरआँ चूब खेज़रान और सरे हुसैन[अ0स0] के साथ बेअदबी! यह वह क़यामत ख़ेज़ मन्ज़र था कि जिस पर मुसलमान तो मुसलमान, ईसाई भी एहतेजाज करने पर मजबूर हो गए।

ख़याल किया जा सकता है कि इन तमाम मज़ालिम का मौक़ा खुद इमाम हुसैन[अ0स0] ने दिया। अहले हरम को अपने साथ रखकर, इसी लिए यह इमाम के अमल का नाज़ुक तरीन पहलू समझा गया है जिससे मशवरा देने वाले मना कर रहे थे मगर हुसैन[अ0स0] ने उनका अपने साथ रखना ज़रूरी समझा था।

हालाँकि आम तौर पर मैदाने जंग में औरतों और बच्चों का किसी फ़रीक़ के साथ मौजूद होना उनके हिफ़ाज़ती और मुदाफ़ेअती (Defence) मुशकिला बहुत बढ़ा देता है और फ़रीक़े मुख़ालिफ़ (दुश्मन) के लिए बड़ी आसानियाँ पैदा कर देता है। चुनाँनचे एक शाएर कहता है।

الهفی بقرّیٰ سجل حین احلیت

علینا الولایا والعد والمیاسل

यानी "अफ़सोस है कि उस जंग के मैदान में हमारे ख़िलाफ़ फ़ौज कशी की, हमारे साथ औरतों और सख़्त दुश्मन दोनों ने मिलकर।" इस सूरत में यह सवाल पैदा होता है कि इमाम हुसैन[अ0स0] अपने साथ अहले हरम को ले क्यों गए। जहाँ तक कि तारीख़ से पता चलता है इमाम हुसैन[अ0स0] ने किसी मशवरा देने वाले के उन ख़यालात को रद नहीं किया जो आइन्दा के ख़तरात के मुतअल्लिक़ वह पेश करते थे। फिर भी आपने उनका साथ ले जाना नागुज़ीर (ज़रूरी) बताया। कभी यह कह कर कि मन्ज़ूरे इलाही यही है कि यह क़ैद हों और कभी यह कह कर कि जो मुक़द्दर में है वह होकर रहेगा। इन बातों से साफ़ ज़ाहिर हो जाता है कि इमाम हुसैन[अ0स0] तमाम ख़तरात को पेशे नज़र रखते हुए अहले हरम का अपने साथ ले जाना ज़रूरी समझते थे और इस सूरत में यह मानना पड़ेगा कि उनके साथ रखने को आपके मक़सद की तकमील में बड़ा दख़ल था। और यह कि बराहे रास्त हज़रत इमाम

हुसैन[अ0स0] को माद्दी ज़राए (ज़ाहरी ताक़त) इख़्तियार करते हुए किसी सलतनत से मुतसादिम (भिड़ना) होना मक़सूद न था। आपका नुक़त–ए–नज़र यह न था कि ख़ुद तख़्ते हुकूमत पर बैठ कर मालो मनाल (दौलत) और लज़्ज़ते हयात (अरामदेह ज़िन्दगी) दुनिया से मुतमत्ते (ख़्वाहिश) हों बल्कि आप महज़ हक़्क़ानियत के तहफ़्फ़ुज़ में हिमायते बातिल से बचते हुए यज़ीद की बैयत से इन्कार फ़रमा रहे थे और इस इन्कार पर अपनी आख़री साँस तक क़ायम रहने का तहैया कर चुके थे ताकि आपका यह इन्कार दुनिया की आँखों के सामने हक़ीक़त के वाज़ेह होने का एक ज़रिया बने और वह यज़ीद के आमाल व अफ़आल को आज और कभी शरीअते इस्लाम का जुज़्व (हिस्सा) न समझ ले। उसके लिए बड़ी ज़रूरत इस बात की थी कि आपकी मुक़ाविमत (तहरीक) के किसी उन्सुर (बात) के मुतअल्लिक़ ग़लत तौजीहों (तरीक़े से) की इशाअत करना फ़रीक़े मुख़ालिफ़ (दुश्मनों) के लिए नामुमकिन हो जाए और आपकी शहादते उज़्मा को किसी "पुर असरार हादिसे (ख़ामोशी से हादिसा)।" की शक्ल न दी जा सके, इसलिए कि उस सूरत में हक़्क़ानियत के दवामी तहफ़्फ़ुज़ (हमेशा के लिए) में रख़ना (रोड़ा) पड़ने का पूरा पूरा इम्कान बाक़ी रह जाता। यह मक़सद इमाम हुसैन[अ0स0] का अहले हरम के ज़रिये इन्तेहाई कामयाबी के साथ पूरा हुआ और आपकी हक़्क़ानियत व मज़लूमियत इतनी नुमायाँ हो गई कि बनी उमैया की कोई तावील (बहाना) व कोई तमा कारी (मक्कारी) और सियासी शोबदा बाज़ी (चालें) उसको मुशतबह (शक) न बना सकी।

तारीख़ की खुली हुई हक़ीक़त है कि बनी उमैया ने एक ज़बरदस्त चाल बनी हाशिम के मुक़ाबले में यह चली कि उसमान को बहैसियत मज़लूम पेश किया और उस ख़ून की ज़िम्मेदारी ग़लत तौर पर बनी हाशिम और बिल–ख़ुसूस अली बिन अबी तालिब[अ0स0] पर आएद कर दी। इसके लिए उसमान का ख़ून भरा कुर्ता और उनकी ज़ौजा नाएला की कटी हुई उंगलियाँ मुद्दत तक मस्जिदे जामे दमिश्क़ में मजमे के सामने पेश की जाती रहीं और मजमा उनको देख कर आहो ज़ारी करता और सरो सीना पीटता था। इस तरह एक बहुत बड़ी जमाअत के दिलों को अहलेबैते रसूल से मुन्हरिफ़ किया गया और आले सुफ़ियान ने मक़तूल के वुरसा (वारिस) बनकर लोगों की हमदर्दी हासिल की। यह प्रोपिगन्डा उस वक़्त तक ख़त्म नहीं हो सकता था जब तक आले बनी हाशिम में औलादे सुफ़ियान के हाथों एक ऐसा ग़मअंगेज़

हादसा न हो जाये जो हमदर्दी के असरात को मअ्कूस (बरअक्स, उलटा) कर दे। हक़ीक़तन इमाम हुसैन[अ0स0] को शहीद करके दुश्मन खुद क़हरी तौर पर इस काम के अन्जाम पाने का ज़रिया बन गया जिसका बनी उमैया अपने जोशे ज़फ़रयाबी (कामयाबी) में इब्तेदाअन (शुरू में) अन्दाज़ा भी न कर सके। वह रोज़े आशूर तक अपने इक़दामात के जवाज़ में क़त्ले उसमान के वाक़ेए का हवाला देते थे मसलन हुसैन[अ0स0] और आपके साथियों पर पानी बन्द करने की सनदे जवाज़ इसी को क़रार दिया कि इसके पहले उसमान पर पानी बन्द किया जा चुका है इसलिए यह उसका बदला है। हालाँकि उसमान पर पानी बन्द करने में बनी हाशिम का कोई हाथ न था मगर प्रोपिगन्डा तो यही किया गया था लेकिन पहले तो खुद करबला ही में जवानों नौजवानों और सबसे आख़िर में शशमाहे बच्चे की शहादत से मज़लूम का दर्जा इतना ऊँचा हो गया कि अब उसमान का नाम लेना भी इन्सानी इन्साफ़ की निगाह में ग़ैर मुतवाज़िन (नबराबरी) बात हो गई और फिर अहलेबैते अतहार की असीरी ने तो आले रसूल[स0अ0] की मज़लूमियत को इस नुक़त–ए मेराज तक पहुँचा दिया जिसके बाद हवा ख़्वाहाने बनी उमैया की ज़बानें बन्द हो गईं और उन्हें फिर उसमान के वाक़य–ए–क़त्ल का नाम लेते हुए भी शर्म दामनगीर होने लगी। लुत्फ़ यह है कि उसमान की क़मीस खून आलूद और उनकी ज़ौज–ए–मुकर्रमा की कटी हुई उंगलियों की नुमाइश तो खुद मक़तूल (जिनका क़त्ल हुआ है) वाली जमाअत के हाथों से हुई थी। जिसके साथ उसका कोई सुबूत न था कि उसका मुरतकिब (ज़िम्मेदार) कौन हुआ है लेकिन हुसैन[अ0स0] के सरे बुरीदा और उनके अहलेबैते अतहार की असीरी की नुमाइश खुद उन ही ज़ालिमों के हाथ से हो रही थी जो इस ज़ुल्म के मुरतकिब थे इसलिए इस जुर्म का इरतेकाब करने वलों को कहीं और ढूंढने की ज़रूरत न थी। इसका नतीजा यह था कि उस दुनिया की भी जो इसके पहले जनाबे उसमान से हमदर्दी की वजह से आले सुफ़ियान के साथ और बनी हाशिम से मुन्हरिफ़ (फिरी हुई) थी हमदर्दियाँ मुन्क़लिब (पलट) हो गईं। वह अब बनी हाशिम की ग़मख़्वार बनकर आले सुफ़ियान से मुन्हरिफ़ (फिर) हो गईं। अगर इमाम हुसैन[अ0स0] अहले हरम को साथ न लाते तो हक़ीक़ते वाक़ेआ और उमवी ज़ेहनियत का इस दर्जा इन्केशाफ़ (खुल कर सामने न आई) ग़ैर मुमकिन था।

तारीख़े इस्लाम में यह मिसाल मौजूद है कि इसके पहले हसन[अ0स0] बिन अली[अ0स0] ज़हेर से शहीद कर दिए गए मगर उस वक़्त तक हुकूमते बनी

उमय्या के ज़ोरे हुकूमत से मरऊब (डर कर) या सियासी चालों से फ़रेब (धोखा) खुर्दा तारीख़ों में यह मसला मुशतबा (मशकूक) बना रखा गया है कि इस साज़िश की पूरी ज़िम्मेदारी किस की है। इसी तरह करबला के बेआबो गयाह (बग़ैर खाना पानी) मैदान में बहत्तर या सवा सौ आदमी जिन्हें चारों तरफ़ से फ़ौजी आहनी (लोहे नुमा) हिसारों में इस तरह महसूर (घेर) कर लिया गया था कि किसी आदमी का आना जाना बल्कि ख़बरों तक की आमदो रफ़्त (मिलना) नामुमकिन थी। जब क़त्ल हो जाते तो किसी को क्या ख़बर होती, बस उधर क़ातिलों की ज़बानें होतीं और अपनी बेजुरमी की दास्तानें और इधर से कोई जवाब देने वाला न होता। इस तरह हुसैनी मसलक (तहरीक) मुशतबा (मशकूक) बना दिया जाता और नौईयते शहादत बिल्कुल ही बदल दी जाती।

इस सूरत में हुसैन[अ0स0] ने जानो माल और औलाद सबको हक़्क़ानियत के अहया (ज़िन्दा करने) में सर्फ़ तो करते लेकिन नतीजा इसका यह होता कि तारीख़ के औराक़ (पन्ने) और कुतुब सेर (सीरत की किताबों) के सफ़हात में यज़ीद के लिए मिस्ले दीगर (पहले की जंगों की तरह यज़ीद को भी) जंग आज़मा हस्तियों के ग़ाज़ी और मुजाहिद का लक़ब इस्तेमाल किया गया होता और पैकरे हक़्क़ानियत हुसैन बिन अली[अ0स0] के लिए (माज़ल्लाह) मुफ़सिद (फ़सादी) और बाग़ी के से ग़लत अलफ़ाज़ सर्फ़ किए गए होते। इस तरह सिर्फ़ इमाम हुसैन[अ0स0] ही नहीं बल्कि आपके साथ हक़्क़ानियत व सिदाक़त भी क़त्ल हो जाते जिससे बढ़ कर हुसैन[अ0स0] की शिकस्त न हो सकती थी।

इमाम हुसैन[अ0स0] के नज़दीक आपकी शहादत के बाद आपके फ़लसफ़–ए–श्हादत और हक़्क़ानियत व सिदाक़त की तबलीग़ का क़ाबिले इतमीनान कोई ज़रिया हो ही नहीं सकता था, सिवा उन ही बेवालि–ओ–वारिस मुख़द्दराते इस्मत (पर्दा दार औरतें) के जो क़ैदी बनाकर शहर बशहर फिराई जा रही थीं, जिनके दिलों में ग़म व गुस्से की आग भड़क रही थी, जिनकी रगों में अलवी और फ़ातमी ख़ून जोश खा रहा था जिनकी ज़बानों पर इज़हारे हक़ की ख़ातिर नबवी बलाग़त और अलवी फ़साहत अलफ़ाज़ की सूरत में मौजज़न थी या फिर अली बिन हुसैन[अ0स0] जिनको मशीअते बारी (अल्लाह) ने शिद्दते मरज़ की बिना पर नुसरते हुसैन[अ0स0] से रोज़े आशूर मैदाने जिहाद में हिस्सा ले सकने से शायद इसी ग़रज़ से बाज़ रखा था।

इमाम हुसैन[अ0स0] ख़ूब वाक़िफ़ थे कि बनी उमैया हुदूदे इन्सानियत से कितना ही गुज़र जायें फिर भी वह बेवाली व वारिस ख़वातीन को क़त्ल करने

की हिम्मत न कर सकेंगे जिनका क़ुसूर ज़्यादा से ज़्यादा यह बताया जा सकता है कि उन्होंने इन्तेहाई इज़तेराब और परेशानी के आलम में हुकूमत के मज़ालिम पर सदाए फ़रयाद बलन्द की।

यह सही है कि रोज़े आशूर दुश्मनों के हाथ से बाज़ औरतें और बच्चे भी शहीद हुए थे मगर मारिकए जंग के ख़ुसूसियात दूसरे मवाक़े पर बतौरे सनद पेश नहीं किए जा सकते। बल्कि यक़ीन किया जा सकता है कि यज़ीद व इब्ने ज़ियाद अपने तमाम ज़ुल्मो जौर पस्त फ़ितरती और बहमियत (जानवर सिफ़त) के बावजूद इस पर क़ादिर न थे कि वह मारिक–ए–करबला के बाद अहले हरमे हुसैन में से किसी एक फ़र्द को भी क़त्ल करा देते। हरगिज़ उन में इतनी जुरअत व हिम्मत बाक़ी न थी और न उनके गिर्दो पेश की फ़िज़ा इसकी मुतहम्मिल (आप–पास की फ़िज़ा बर्दाश्त कर सकती थी) हो सकती थी। चुनाँनचे कूफ़े में जब जनाबे ज़ैनबे कुबरा ने अपनी बातिल शिकन (बातिल को बेनिक़ाब करने वाली) तक़रीर से उमवी हुकूमत के फ़िस्क़ो फ़ुजूर (बदकारी) और ख़बस सक़ावत (ज़ालिम ख़बीस) को तश्त अज़ बाम (बेनक़ाब) कर दिया था तो इब्ने ज़ियाद ने चाहा भी था कि आपको ताज़ियाने से अज़ीयत दे मगर उसी के दरबार वालों में से अम्र बिन हरीस सामने आ गया था और मज़ाहिम (रूकावट) हुआ था।

बाद को यज़ीद का क़त्ले हुसैन[अ0स0] की ज़िम्मेदारी इब्ने ज़ियाद पर आएद करना ख़ुद एहसासे शिकस्त की बिना पर था मगर चूंकि अहले हरमे हुसैन[अ0स0] के साथ भी इन्तेहाई बदसुलूकियाँ की जा चुकी थीं। लिहाज़ा उसके अफ़आल की बाबत किसी तावील (उसके बहाने) की गुन्जाइश बाक़ी न रह गई थी। जिसकी बिना पर मुअर्रख़ीन (तारीख़ लिखने वाले) को यह समझना पड़ा की अगर उसके दिल में क़ब्ले इस्लाम के कीने (जलन) और बद्र की अदावतें न होतीं तो वह सरे इमाम हुसैन[अ0स0] का एहतेराम करता। उनके कफ़न व दफ़्न का हुक्म देता और अहलेबैते रिसालत के साथ हुस्ने सुलूक से पेश आता।

बत्तीसवाँ बाब

उसरा–ए–अहलेबैत के मुख़्तसर हालात

अब जबकि असीरी के हालात भी बयान हो चुके उसके नताएज पर भी तबसेरा हो गया। मुनासिब मालूम होता है कि जिस तरह इसके क़ब्ल के बाब में शोहद–ए–करबला में से हर हर फ़र्द के हालात पेश किए जा चुके हैं उसी तरह यहाँ असीराने करबला में से नुमायाँ अफ़राद के हालात भी अलाहिदा अलाहिदा दर्ज कर दिए जायें।

(1) अली बिनल हुसैन[अ०स०]

ज़ैनुल आबेदीन और सय्यदे सज्जाद आपके मशहूर अलक़ाब थे। आप इमाम हुसैन[अ०स०] के सबसे बड़े फ़रज़न्द थे आपके ज़रिए से कुदरत को अरब और अजम के कमालात को एक मरकज़ पर मुजतमा (जमा) करना था। इसलिए कि शहरबानों यानी आपकी वालिद–ए–गिरामी यज़्दजुर्द आख़री बादशाहे ईरान की बेटी थीं। सन 37 हिजरी में आपकी विलादत हुई।[1] जबकि हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ०स०] कूफ़े में मसनदे ख़िलाफ़त पर मुतमक्किन (फ़ाएज़) थे और अभी आपका सिन पूरे तीस साल भी न होने पाया था कि 21/रमज़ान सन 40 हिजरी को अली बिन अबी तालिब[अ०स०] की शहादत वाक़े हुई। फिर आप पूरे बारह साल के न होने पाये थे कि 28/सफ़र सन 50 हिजरी को आपके चचा हसने मुजतबा ज़हरे दग़ा से शहीद कर दिए गए।

सन 60 हिजरी में आपकी उम्र 22/साल से कुछ ज़ाएद थी जब 28/रजब को अपने वालिदे बुज़ुर्गवार इमाम हुसैन[अ०स०] के साथ इराक़ के लिए रवाना हुए। यक़ीन के साथ नहीं कहा जा सकता कि रास्ते में या करबला पहुँचने के बाद कहाँ आप बीमार हो गए। बहर सूरत 10/मुहर्रम सन 61 हिजरी को इमाम हुसैन[अ०स०] की शहादत के मौक़े पर आप इस क़द्र बीमार थे कि नशिस्तो बरख़ास्त (उठना बैठना) मुशकिल थी और ज़ाहिर है कि सातवीं

---

[1] काफ़ी जि/1, पेज/296, इरशाद पेज/200

मुहर्रम को पानी बन्द होने के बाद फिर आपको भी तशनगी की मुसीबत उठानी पड़ी जिससे ज़ोफ़ इज़महलाल (कमज़ोरी नक़ाहत) में इज़ाफ़ा हो ही जाना चाहिए था इसका नतीजा था कि आप नुसरते हुसैन[अ०स०] में उस तरह शिरकत न कर सके जिस तरह आपके दूसरे भाईयों ने की मगर क़ुदरत को आपका इम्तेहान दूसरी तरह लेना मन्ज़ूर था। आशूर के बाद आप दुश्मनों के हाथों बहनों, फुफियों और दीगर अज़ीज़ ख़वातीन के साथ पा–ब–ज़ंजीर होकर करबला से कूफ़ा और कूफ़े से शाम ले जाये गएं दरबारे इब्ने ज़ियाद में आपकी गुफ़्तगू और यज़ीद के रूबरू आपके पुरज़ोर एहतेजाज का तज़किरा इसके पहले किया जा चुका है। शाम से रिहाई के बाद आप मदीने में रहे और पूरी ज़िन्दगी इबादते ख़ुदा में गुज़ार दी। आपकी इबादत के मुतअल्लिक़ वारिद है कि जब आप नमाज़ के लिए वुज़ू करते थे तो चेहरा आपका ज़र्द हो जाता था और कोई इसका सबब दरयाफ़्त करता तो आप फ़रमाते थे कि तुमको नहीं मालूम कि किसकी बारगाह में हाज़री देने जा रहा हूँ।[1]

तर्के दुनिया और सादगी में आपकी ज़िन्दगी हज़रत अमीर[अ०स०] की सीरत का नमूना थी। इसी के साथ मुद्दतुल उम्र(काफ़ी अरसे तक) आप अहकामे शरअ् और उलूमे अहलेबैते नुबूवत की ख़ामोशी के साथ तालीम भी देते रहे। फिर पोशीदा तरीक़े पर रातों को ग़रीबों और मिसकीनों के लिए खाना भी पहुंचाया करते थे। इस तरह कि ख़ूद उन्हें भी मालूम न होता था कि कौन दे गया है। जब आपकी वफ़ात हुई और लोगों का आज़ूक़ा (अनाज) पहुंचना बन्द हुआ उस वक़्त पता चला कि वह आप थे जो दे जाते थे।[2]

फ़रज़दक़ का क़सीदा आपकी शान में जो मक्क–ए–मुअज़्ज़ेमा में हज के मौक़े पर उन्होंने नज़्म किया था,[3] अदबे अरबी का एक मख़सूस शाहकार है। ख़ुद आपकी दुआओं का मजमूआ ''सहीफ़–ए–कामिला।'' के नाम से आलमे इस्लामी में मशहूरो मारूफ़ है। उसमें मआरिफ़ (अल्लाह से इरफ़ान) का दरया मौजें मारता नज़र आता है। उसको ''ज़ुबूरे आले मुहम्मद'' के नाम से भी याद किया जाता है।

---

[1]इरशाद पेज/272

[2]काफ़ी जि/2, पेज/296, इरशाद पेज/275

[3]इरशाद पेज/276

अफ़सोस है कि आपकी इस ख़ामोश और ख़ालिस रूहानी ज़िन्दगी को भी तागूती (शैतानी) सलतनत ने बरदाश्त न किया और आपने सन 94 हिजरी[1] या 95 हिजरी में वफ़ात पाई और जन्नतुल बक़ी में अपने चचा हज़रत इमाम हसन[अ0स0] की क़ब्र के पास दफ़्न हुए।[2]

(2) ज़ैनब[स०अ०] बिन्ते अली[अ०स०]

आप हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] और जनाबे फ़ातिमा ज़हरा[स0अ0] बिन्ते मुहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] की बेटी और पैग़म्बरे इस्लाम[स0अ0] की बड़ी नवासी थीं। इस हैसियत से आप पसमान्दगाने (अज़ीज़ों में) हुसैन[अ0स0] में सबसे नुमायाँ शख़सियत की हामिल थीं। जब आपके जद्दे बुज़ुर्गवार हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] और वालिद–ए–गिरामी जनाब फ़ातिमा ज़हरा[स0अ0] की वफ़ात हुई तो आप बहुत कमसिन थीं। उनके बाद आप अपने वालिदे माजिद हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के साय–ए–तरबियत में परवान चढ़ीं और हज़रत ने आपकी शादी अपने हक़ीक़ी भतीजे अब्दुल्लाह बिन जाफ़र के साथ की।

हज़रत अली[अ0स0] मुहब्बत व शफ़क़त के लिहाज़ से ज़ैनब[अ0स0] के साथ तक़रीबन हसन[अ0स0] हुसैन[अ0स0] के बराबर का बर्ताव करते थे। चुनाँनचे अपनी शहादत के क़ब्ल माहे रमज़ान में आपने अफ़्तार के दिनों को जो अपनी औलाद पर तक़सीम फ़रमाया वह इस तरह कि एक रात इमाम हसन[अ0स0] के यहाँ इफ़्तार फ़रमाते थे एक रात इमाम हुसैन[अ0स0] के यहाँ और एक रात अब्दुल्लाह बिन जाफ़र के माकन पर यानी अपनी साहबज़ादी जनाबे ज़ैनब[स0अ0] के यहाँ।[3]

वाक़ेय–ए–करबला तक कमो बेश पचास बरस की तूलानी मुद्दत में ग़ैर मामूली वाक़ेयात पेश आए और उनमें आपने ग़ैर मामूली क़ुव्वते बरदाश्त के मनाज़िर का कम अज़ कम तीन ज़िन्दा मिसालों में बराबर मुशाहदा फ़रमाया। यही वह बुनियाद थी जिस पर आपके किरदारे बलन्द की वह मुस्तहकम (मज़बूत) इमारत क़ायम हुई जिसे करबला के मसाएब भी ज़र्रा भर मुतज़लज़ल (हिला) न कर सके।

---

[1]तबरी जि/8, पेज/95

[2]इरशाद पेज/270

[3]तबरी जि/8, पेज/95

मदीने से लेकर करबला तक ज़ैनब[स0अ0] हर मन्ज़िल में बिल्कुल हुसैन[अ0स0] के साथ थीं और इसलिए अब तक कि जितने वाक़ेआत इस किताब में दर्ज हुए हैं उन सबको ज़ैनबे कुबरा[स0अ0] ही की रूदादे हयात समझना चाहिए।

उनमें से बाज़ वाक़ेआत का ज़िक्र सफ़हे तारीख़ पर नुमायाँ तौर से नज़र आता है। चुनाँनचे क़यामे करबला के बाद एक मौक़ा वह है जब बहन ने भाई की ज़बानी वह हसरत आमेज़ अशआर सुने जिनका मतलब यह था कि ज़माने का अन्दाज़ सुबह व शाम यही है कि कोई न कोई लुक़म–ए–अजल होता है और हर ज़ीरूह को उसी रास्ते पर जाना है। इन अशआर से ज़ैनबे कुबरा ने महसूस किया कि भाई ख़ुद अपनी सुनानी सुना रहे हैं वह बेताबाना भाई के पास आईं और कहा हाए काश मैं दुनिया से गुज़र चुकी होती। अरे आज महसूस हो रहा है कि मेरी माँ का साया सर से उठा। मेरे बाप और मेरे भाई हसन[अ0स0] आज ही मुझसे छुट रहे हैं आप ही तो अब उन सबके जानशीन हैं। इमाम हुसैन[अ0स0] ने बहन को तलक़ीने सब्र फ़रमाई। ज़ैनब[स0अ0] ने कहा क्यों भाई क्या बिल्कुल आप मरने पर तैयार हो गए हैं। हज़रत ने एक अरबी की मिसल ज़बान पर जारी फ़रमाई कि لو ترک القطالینام मतलब यह था कि इसके सिवा चारा ही क्या है। यह सुनकर जनाबे ज़ैनब की बेचैनी और बढ़ी और कहा ''हाय ग़ज़ब।''

इसका मतलब है कि आपको ज़बरतस्दी हमसे छीन लिया जाएगा। यह कहकर अपने मुंह पर तमांचे मारे, गरीबान चाक किया और ग़श खाकर गिर पड़ीं। इमाम किसी तरह बहन को होश में लाये और बसीरत अफ़रोज़ अलफ़ाज़ में बहन को सब्र की हिदायत फ़रमा कर क़सम दी कि मेरे बाद गरीबान न फाड़ना मुंह न नोचना और वावैला कहकर नौहा न करना। फिर बहन को ले जाकर उस जगह बिठा दिया जहाँ ज़ैनुल आबेदीन[अ0स0] बीमारी के आलम में लेटे हुए थे।[1] ताकि फुफी भतीजे की तीमारदारी में मसरूफ़ हो जायें और उनकी तवज्जो उसी तरह मरकूज़ रहे।

ज़ैनबे कुबरा[स0अ0] ने अपने भाई की उस वक़्त की हिदायतों को सख़्त मवाक़े पर भी पेशे नज़र रखा और मसाएब की इन्तेहाई शिद्दत के बावजूद ऐसी बेताबी का मुज़ाहरा नहीं किया कि दुश्मनों को शमातत (मसाएब पर ख़ुश होते) का मौक़ा मिले।

---

[1]तबरी जि/6, पेज/239–240

फिर नवीं मुहर्रम की अस्र को जब फ़ौजे दुश्मन ने हमला किया तो जनाबे ज़ैनब ही थीं जिन्हों ने पास आकर इमाम हुसैन[अ0स0] को उस सूरते हाल की तरफ़ मुतवज्जा किया।

रोज़े आशूर जब इमाम रूख़्सत के लिए तशरीफ़ लाये तो आप ने जनाबे ज़ैनब[स0अ0] ही से वह पैराहन लेकर पहना जिसे और जाबजा से चाक कर लिया ताकि दुश्मन लूटने के वक़्त बोसीदा होने की वजह से शायद इस पैराहन को न लें और लाश आपकी बरहना न हो।

उसके बाद ज़ैनबे कुबरा की आँखों के सामने वह मनाज़िर पेश आए जिनका तसव्वुर भी लरज़ा बर अन्दाम (कापने) करने के लिए काफ़ी था। भाई की शहादत, ख़ैमों की लूट और फिर आतिश ज़दगी और उसके बाद असीरी। इन तमाम मराहिल को जनाबे ज़ैनब ने ज़ब्तो सब्र के साथ तय किया।

11/मुहर्रम की सुबह को जब पसमान्दगाने हुसैन[अ0स0] क़ैदी बनाए जा चुके और लुटा हुआ क़ाफ़िला कूफ़े की तरफ़ रवाना किया गया तो क़त्लगाह से होकर गुज़ारा कि जहाँ अफ़वाजे यज़ीद के मक़तूलीन को दफ़्न किये जाने के बाद शोहदा–ए–राहे खुदा की लाशें बेगुस्लो कफ़न ख़ाक व ख़ून में आलूदा छोड़ दी गई थीं।

इस जिगर ख़राश मन्ज़र से बीमारो नातवाँ अली बिल हुसैन[अ0स0] का वह आलम हुआ जिसे देख कर जनाबे ज़ैनब[स0अ0] बेताब हो गईं और उनसे दरयाफ़्त किया कि ऐ यादगारे रफ़्तगाँ,! यह तुम्हारी क्या हालत है कि रूह तुम्हारे जिस्म से परवाज़ किया चाहती है। भतीजे ने जवाब दिया ऐ फूफी इस मन्ज़र को देखकर किस तरह बरदाश्त करूँ कि मेरे पिदरे बुज़ुर्गवार और चचा और भाई ग़रज़कि तमाम अज़ीज़ व अक़ारिब को देख रहा हूँ कि सबके सब इस मैदान में अपने ख़ून में नहाए बे दफ़्नो कफ़न पड़े हैं और कोई इनका निगराँ है न पुरसाँ। इस नाज़ुक मौक़े पर जनाबे ज़ैनब[स0अ0] ही का काम था कि उन्होंने इमाम ज़ैनुल आबेदीन[अ0स0] को तसल्ली और दिलासा दिया।

उसके बाद कूफ़े का बाज़ार, हालाँकि इससे पहले आपने किसी मजमे में कोई तक़रीर न की थी। मगर जब आपने माहौल के इन्तेहाई ख़िलाफ़ होने के बाद तक़रीर शुरू की (जिसका तज़किरा पहले किया जा चुका है) तो जितना मजमा आपके हद्दे नज़र में था आपके इशारे पर ख़ामोश हो गया। उस तक़रीर में आपने अपनी अन्दोहनाक (तकलीफ़ देह) हालत का तज़किरा नहीं किया और न इस बिना पर उनसे किसी रहमो करम की इलतेजा की। बल्कि

उन बद आमालियों पर सैर हासिल तबसेरा फ़रमाते हुए उनको अपने नुफ़ूस का जाएज़ा लेने उनके मुतअल्लिक़ ख़ुद फ़ैसला कर लेने की तरफ़ मुतवज्जेह किया। चुनाँनचे वह आँखें जो क़ैदियों का तमाशा देखने के लिए उनकी तरफ़ उठी थीं ज़मीन में गड़ गईं और मजमे में हर मुतनफ़्फ़स (शख़्स) अपने को मुजरिम महसूस करने लगा।

फिर दरबारे आम में जब ख़ास तौर पर इब्ने ज़ियाद ने गुफ़्तगू की तो वहाँ भी आपने अलवी फ़साहत व बलाग़त के वह जौहर दिखाए जिनका अपने तरीक़े पर इब्ने ज़ियाद को भी एतेराफ़ करना पड़ा। और जिनका उसके पास सिवाये इराद–ए–तशद्दुद के कोई जवाब न था।

उसके बाद फिर दरबारे यज़ीद में आपकी गुफ़्तगू जिसका ज़िक्र भी पहले हो चुका है कोई शक नहीं कि ऐसे सख़्त और ना ख़ुशगवार माहौल में अपने सुकूने दिमाग़ को क़ायम रखना और अपने महसूसात के पूरे इज़हार पर क़ादिर होना बस ज़ैनबे कुबरा[स0अ0] का काम था। रिहाई के बाद ज़ालिम के दारूस सलतनत में मज़लूम का मातम बरपा करना भी आप ही का कारनामा था। और यह इमाम हुसैन[अ0स0] की शहादत के बाद पहली मजलिसे अज़ा थी जो उसी सोगवार बहन ने बरपा की थी।

(3) उम्मे कुलसूम बिन्ते अली[अ०स०]

ज़ैनबे सुग़रा और उम्मे कुलसूम कुन्नियत थी।[1] हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] और जनाबे फ़ातिमा ज़हरा[स0अ0] बिन्ते मुहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] की छोटी बेटी। रसूल अल्लाह[स0अ0] के ज़माने के आख़िर में मुतवल्लिद (पैदा) हुईं थीं और तक़रीबन दो साल की उम्र में अपने नाना रसूले ख़ुदा[स0अ0] और उसके चन्द ही महीने के बाद अपनी वालिदा गिरामी के साय–ए–आतिफ़त (मुहब्बत) से महरूम हो गईं। अपने चचाज़ाद भाई मुहम्मद बिन जाफ़र बिन अबी तालिब के साथ आपका अक़्द हुआ था।

बेवा होने के बाद से आप अपने भाईयों के साथ रहीं और उसी दौरान में अपने शफ़ीक़ बाप की शहादत से इन्तेहाई दर्जा दिल शिकस्ता हुईं। आख़री रात जिसकी सुबह को हज़रत अली[अ0स0] के सर पर इब्ने मुलजिम ने तलवार लगाई हज़रत अपनी इसी बेटी के मेहमान थे और उस रात के तमाम हालात जनाबे उम्मे कुलसूम ही की ज़बानी वारिद हुए हैं। जब अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के सरे मुबारक पर ज़रबत लग चुकी है। और आप बैतुश शरफ़ में

[1] इरशाद पेज / 189

लाए गए हैं और उसके बाद ज़हर की तासीर बढ़ रही है तो खुसूसियत के साथ उम्मे कुलसूम शिद्दत से गिरया कर रही थीं।[1]

देनवरी ने सराहत के साथ लिखा है कि जब हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] मदीने की सुकूनत तर्क फ़रमा कर मक्के तशरीफ़ ले गए थे। तो आपकी दोनों बहनें ज़ैनब व उम्मे कुलसूम आपके साथ थीं।[2]

बाज़ारे कूफ़ा में ज़ैनबे कुबरा के खुतबे के बाद आपने भी बसीरत अफ़रोज़ तक़रीर फ़रमाई थी।

(4) रूक़य्या बिन्ते अली बिन अबी तालिब[अ०स०]

आप उमर बिन अली[अ0स0] की हक़ीक़ी बहन बल्कि उन्हीं के साथ तौअम (जुड़वा) पैदा हुईं। आपकी वालिदा उम्मे हबीब बिन्ते रबीआ थीं।[3]

आपका अक़्द मुस्लिम बिन अक़ील के साथ हुआ था। मदीने से अपने शौहर की मईयत (साथ) में हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के साथ चली थीं। जब मुस्लिम मक्के से कूफ़े की तरफ़ रवाना कर दिए गए थे तो आप अपने भाई इमाम हुसैन[अ0स0] के साथ गईं। मक्का से रवानगी के बाद रास्ते में आपको अपने शौहर की शहादत की इत्तेला हुई थी और करबला पहुँच कर रोज़े आशूर आपने अपने साहबज़ादे अब्दुल्लाह बिन मुस्लिम बिन अक़ील को इमाम पर निसार कर दिया था। फिर असीरी में अपनी दोनो बहनों ज़ैनब व उम्मे कुलसूम के साथ रूह फ़रसा मसाएब व आलाम का मुक़ाबला करती रहीं और रिहाई के बाद उन ही के साथ मदीने वापस गईं।

(5) लैला सक़फ़िया

आप अली अकबर बिन हुसैन[अ0स0] की वालिद–ए–मोहतरमा थीं। आपके नाम व नसब और ख़ानदानी खुसूसियात का तज़किरा अली अकबर[अ0स0] के हालात में हो चुका है। आप मारक–ए–करबला में मौजूद थीं और असीरी में दुख़्तराने अली व फ़ातिमा के साथ थीं मगर उसके बाद से आपके हालाते ज़िन्दगी का तारीख़ में कोई तज़किरा नहीं है।

(6) रबाब बिन्ते उमराउल क़ैस कलबी

आप अली असग़र और सकीना बिन्तुल हुसैन[अ0स0] की वालिद–ए–गिरामी थीं आप मैदाने करबला में मौजूद थीं और असीरी में भी शरीक लेकिन रिहाई

---

[1]इरशाद पेज / 8–9

[2]अख़बारूत तुवाल पेज / 220

[3]इरशाद पेज / 189

के बाद आपने मदीने जाने से इन्कार कर दिया और एक साल तक क़ब्रे हुसैन[अ०स०] पर ख़ैमा लगा कर मुजाविर की हैसियत से मुक़ीम रहीं। जिसमें शबो रोज़ मजलिसे गिरया व बुका और नौहा व मातम में मसरूफ़ रहती थीं।[1]

एक साल के बाद मदीने वापस हुईं। यहाँ भी आपने इमाम हुसैन[अ०स०] का मातम बरपा किया। और अरस–ए–दराज़ तक वह उनकी कनीज़ें और उनसे वाबस्तगी रखने वाली ख़वातीन नौहा व ज़ारी में मसरूफ़ रहीं।[2]

(7) फ़ातिमा बिन्तुल हुसैन[अ०स०]

आपकी वालिदा उम्मे इसहाक़ बिन्ते तलहा बिन अब्दुल्लाह तैमिया थीं।[3]

शैख़ मुफ़ीद [र०अ०] ने लिखा है कि इमाम हसन[अ०स०] के फ़रज़न्द हसने मुसन्ना (दूसरे) ने अपने चचा हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] से आपकी दो साहबज़ादियों में से किसी एक के साथ अक़्द की ख़्वास्तगारी की। हज़रत ने फ़रमाया कि उन दोनों में से जिसके साथ तुम कहो तुम्हारा अक़्द किया जाए। हसन ने शर्म से सर झुका लिया और कुछ जवाब न दिया। हज़रत ने फ़रमाया अच्छा मैं ख़ुद ही तुम्हारे लिए अपनी लड़की फ़ातिमा को मुन्तख़ब करता हूँ। क्योंकि वह मेरी मादरे गिरामी फ़ातिमा बिन्ते रसूल[स०अ०]से ज़्यादा मुशाबेह (मिलती) है।[4]

हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] को अपनी इस साहबज़ादी पर इतना एतेमाद था कि जब आप मैदाने करबला में ब–अज़्मे (इरादे) जिहाद तशरीफ़ ले जा रहे थे तो चूँकि आपके फ़रज़न्द इमाम ज़ैनुल आबेदीन[अ०स०] शिद्दते बीमारी से ग़श में थे। आपने मख़सूस तहरीरी अमानतें एक सर ब मुहर बंद लिफ़ाफ़े में और वसीयत नामा दोनों को फ़ातिमा के सिपुर्द फ़रमाया। बाद में फ़ातिमा ने यह चीज़ें अपने भाई के सिपुर्द कीं।[5]

आप वाक़ेय–ए–करबला के बाद अरसे तक ज़िन्दा रही थीं। और रावियाने अहादीस में आपका शुमार है। आपके साहबज़ादे अब्दुल्लाह अल–महज़ आपके वास्ते से नक़्ले हदीस करते थे।[6]

---

[1]अन्साबा मिस्र जि/1, पेज/113
[2]काफ़ी जि/1, पेज/296
[3]इरशाद पेज/269
[4]इरशाद पेज/201
[5]काफ़ी जि/1, पेज/179 व 188
[6]काफ़ी जि/1, पेज/394 व इब्ने हिशाम जि/1, पेज/153

आप अपने भाई हज़रत इमाम ज़ैनुल आबेदीन[अ०स०] के साथ खुलूसो मुहब्बत रखती थीं और अपनी औलाद को हज़रत के पास बैठने और इस्तेफ़ादा करने की हिदायत करती थीं।[1]

आख़िर में आपको अपने शौहर हसन बिन हसन[अ०स०] की वफ़ात का सदमा उठाना पड़ा। आपने एक साल तक उनकी क़ब्र पर अपना ख़ैमा बरपा रखा।[2]और बराबर दिन को रोज़ा रखती थीं और रात भर नमाज़ें पढ़ती थीं। जब एक साल कामिल हो चुका तो ख़ैमा हटाया गया और आप मदीना वापस गईं।[3]

(8) सकीना बिन्तुल हुसैन[अ०स०]

आप रबाब मादरे अली असग़र[अ०स०] के बत्न से थीं। वाक़ेय–ए–करबला में आप बहुत कमसिन थीं। वाक़ेय–ए–करबला के बाद आपकी ज़िन्दगी के जो हालात मिलते हैं वह मोतबर व मुस्तनद तरीक़े से साबित नहीं हैं।

जबकि ख़वातीने अहलेबैते रिसालत[स०अ०] का तज़किरा हो रहा है तो बाज़ ऐसी ख़वातीन का भी यहाँ ज़िक्र कर देना मुनासिब मालूम होता है जो मैदाने करबला में खुद तो मौजूद न थीं मगर करबला के वाक़ेआत से अहम तअल्लुक़ रखती थीं।

(1) उम्मुल मोमिनीन उम्मे सलमा ज़ौज–ए–ख़ातिमुन नबीईन हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स०अ०]

आप अज़वाजे रिसालत मआब[स०अ०] में इन्तेहाई नेक निहाद और मुक़द्दस व मोहतरम बीबी थीं। आँहज़रत[स०अ०]ने हिजरत के दूसरे साल जंगे बद्र के बाद आपसे अक़्द किया था। रसूल अल्लाह[स०अ०] की वफ़ात के बाद भी उम्मे सलमा को हज़रत के अहलेबैत यानी अली बिन अबी तालिब[अ०स०] और हसनो हुसैन[अ०स०] के साथ ख़ास उलफ़त व मुहब्बत रही। चुनाँनचे जंगे जमल के मौक़े पर जब उम्मुल मोमिनीन आएशा ने हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ०स०]के ख़िलाफ़ सफ़ आराई की थी और उसकी ख़बर मदीने पहुँची तो उम्मुल मोमिनीन उम्मे सलमा ने हज़रत अली बिन अबी तालिब से कहा कि अगर मेरे लिए घर से निकलना शरअन ममनू (मना) न होता और मुझे यह यक़ीन न होता कि आप उसे कभी

---

[1]इरशाद पेज / 202

[2]बुख़ारी जि / 1, पेज / 147

[3]इरशाद पेज / 203

गवारा न करेंगे तो मैं खुद आपके साथ जंग में चलती मगर क्या करूँ मजबूर हूँ कि निकल नहीं सकती।

बहरहाल अपने फ़रज़न्द उमर को जिसे मैं अपनी जान से ज़्यादा अज़ीज़ रखती हूँ, मैं आपके साथ भेजती हूँ। वह आपकी नुसरत में जंग करेगा। चुनाँनचे यह बराबर हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के हमराहे रिकाब रहे यहाँ तक कि आपने हुकूमते बहरैन उनको तफ़वीज़ (सिपुर्द) फ़रमाई। जिस पर वह एक अरसे तक क़ायम रहे।[1]

तिरमिज़ी की रिवायत है कि उम्मे सलमा ने रोज़े आशूर रसूल अल्लाह[स0अ0] को ख़्वाब में इस हालत में देखा कि आप रो रहे थे और आपके सरो रीशे मुबारक (डाढ़ी) पर ख़ाक पड़ी हुई थी। उम्मे सलमा ने सबब दरयाफ़्त किया। आपने फ़रमाया कि अभी अभी मेरा हुसैन[अ0स0] क़त्ल कर दिया गया है।

सहीह मुस्लिम की एक रिवायत के मुताबिक़ उम्मे सलमा का वजूद सन 63 हिजरी तक मालूम होता है। मगर एक क़ौल यह भी है कि आपने उसी रोज़ यानी सन 61 हिजरी आशूरे मुहर्रम को इन्तेक़ाल फ़रमायाः

(2) उम्मुल बनीन, ज़ौज–ए–अमीरूल मोमिनीन अली बिन अबी तालिब[अ०स०]

आपके नाम व नसब और ख़ानदानी खुसूसियात का तज़किरा अबुल फ़ज़लिल अब्बास[अ0स0] और उनके भाईयों के हालात के ज़ैल में हो चुका है।

जिस माँ के ऐसे चार बेटे हों और वह सबके सब एक साथ क़त्ल हो जायें उसके तअस्सुरात ज़बाने क़लम से कहाँ अदा हो सकते हैं। शरहे कामिल में अबुल हसन अख़तश अरब के एक बड़े अदीब की ज़बानी यह रिवायत दर्ज है कि वाक़ेआते करबला से मुत्तेला होने के बाद उम्मुल बनीन रोज़ाना बक़ीअ् की तरफ़ अब्बास के कमसिन फ़रज़न्द अब्दुल्लाह को साथ लेकर चली जाती थीं और वहाँ अब्बास का मरसिया पढ़ती थीं जो इतना दर्दनाक होता था कि मदीने के लोग वहाँ जमा हो जाते थे। हत्ता कि मरवान बिन हकम का सा ख़ानदान नुबूवत का दुश्मन भी अक्सर उस मजमे में दिखाई देता था और आपके पुरदर्द अशआर को सुनकर लोगों की आँखों से बेसाख़्ता आँसू जारी हो जाते थे।

---

[1]तबरी जि/5, पेज/167

आपके यह अशआर पुरदर्द ही नहीं बल्कि उस कुव्वते नफ़्स के भी हामिल होते थे जिससे ज़ाहिर होता था कि आप अब्बास ऐसे मुजाहिदे राहे ख़ुदा की माँ हैं।

चुनाँनचे आपके अशआर में से बाज़ तारीख़ के औराक़ तक पहुँच कर हमारी नज़र से भी गुज़रे हैं जिनका मफ़हूम दर्जज़ैल है:

कहाँ हैं उस मन्ज़र को देखने वाले कि जब मेरा शेर दिल अब्बास हमला आवर हो रहा था भेड़ों के गल्ले पर और उसके पीछे थे हैदरे सफ़दर (अली बिन अबी तालिब) की औलाद में से कई बाहिम्मत शेर, हाय अफ़सोस कि मेरे फ़रज़न्द का सर गुर्ज़े गिराँ से शिगाफ़्ता किया गया। उस वक़्त कि जब उसके दोनों हाथ कट चुके थे। ऐ अब्बास मुझे यक़ीन है कि अगर तलवार तेरे हाथ में रहती तो किसी की हिम्मत न थी कि तेरे क़रीब आ सकता।

"ऐ लोगो! अब मुझे "उम्मुल बनीन" (फ़रज़न्दों की माँ) न कहो, इसलिए कि उससे मुझे मेरे शेर याद आ जाते हैं। मेरे कभी कई बेटे थे जिनकी तरफ़ निसबत देकर मैं पुकारी जाती थी। अब तो मेरे बेटे ही नहीं रह गए। वह चारों जो मिस्ल बाज़हाये (शिकरे) शिकारी के थे मौत के गले में बाहें डाल चुके। नैज़ों ने उनके टुकड़े कर दिए और वह सब ज़मीन पर बेजान होकर गिर गए। क्या सही है जैसाकि लोग कहते हैं कि अब्बास के हाथ भी क़ता कर दिए गए थे।!!"

जबकि ख़्वातीने मुतअल्लिक़–ए–करबला का तज़किरा हो रहा है तो असहाबे हुसैनी से निसबत रखने वाली उन ख़्वातीन का ज़िक्र भी मुनासिब मालूम होता है जिनका वाक़ेआते करबला में कोई कारनामा तारीख़ के सफ़हात पर सब्त (बाक़ी) है ताकि वाक़ेय–ए–करबला की हमागीरी के सिलसिले में उसका पूरा अन्दाज़ा हो सके कि तबक़–ए–ख़वातीन का इस मारके में कितना हिस्सा है।

(11) दलहम बिन्ते अम्र

यह ज़ुहैर बिन क़ैन की ज़ौजा थीं। उनका ज़िक्र हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के सफ़रे इराक़ के सिलसिले में मन्ज़िले ज़ुरूद के हालात में आ चुका है।

यह मोहतरम ख़ातून अपने शौहर के साथ सन 60 हिजरी में हज को गई हुई थीं। उनके शौहर ज़ुहैर अब तक ख़ानदाने रसूल[स0अ0] से कोई ख़ास रब्त ज़ब्त न रखते थे। बल्कि आम तौर से उसमानी जमाअत में समझे जाते थे मगर वाक़ेय–ए– करबला से अन्दाज़ा होता है कि उस ख़ातून के दिल में

मख़्फ़ी तौर पर (ख़ामोशी से) सही अहलेबैते रसूल[स0अ0] के साथ अक़ीदत मौजूद थी इसी बिना पर जब मन्ज़िले ज़ुरूद में हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने ज़ुहैर के बुलाने को आदमी भेजा और ज़ुहैर को जाने में तअम्मुल हुआ तो इस ख़ातून ने कहा कि सुबहानल्लाह! फ़रज़न्दे रसूल तुम्हारे बुलाने को आदमी भेजें और तुम न जाओ। बड़े ग़ज़ब की बात है। ज़रा जाकर सुनो तो कि हज़रत क्या फ़रमाते हैं। इसी बसीरत अफ़रोज़ फ़िक़रे का असर था कि ज़ुहैर गए और वापस आये तो जानो दिल से इमाम की नुसरत पर आमादा होकर। बेशक उस ख़ातून को ख़ुद वाक़ेय–ए–करबला में शिरकत का मौक़ा नहीं मिला। इसलिए कि ज़ुहैर ने उसे अपने साथ ले जाना पसन्द नहीं किया बल्कि उसी मन्ज़िल पर उसे तलाक़ देकर उसके मैके भेजवा दिया और ख़ुद इमाम हुसैन[अ0स0] के साथियों में शामिल हो गए। मगर उस की मोहर्रिक (ज़िम्मेदार) यही ख़ातून थी इसलिए वाक़ेय–ए–करबला के तज़किरे में नज़र अन्दाज़ नहीं किया जा सकता।

(12) उम्मे वहब बिन्ते माबद

क़बील–ए–नम्र बिन क़ासित में से अब्दुल्लाह बिन उमैर कलबी की ज़ौजा थीं। कूफ़े में क़बील–ए–हमदान के मक़ाम बेअरअल जाअ्द के पास उनका मकान था जो कूफ़े की गुन्जान (घनी) आबादी से बाहर नख़ीला (पेड़ों) के हुदूद में बाग़ाते ख़ुरमा के क़रीब था। जब इमाम हुसैन[अ0स0] के करबला पहुँचने की इत्तेला इब्ने ज़ियाद को पहुँची और उसने अपना लशकर गाह नख़लिया में क़रार दिया और अब्दुल्लाह ने उस फ़ौज कशी का सबब मालूम होने पर यह इरादा किया कि वह हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] की मदद को जायेंगे तो उन्होंने अपने इस मुबारक इरादे का तज़किरा अपनी इसी क़ाबिले एतेमाद और वफ़ादार बीबी उम्मे वहब से किया। उसने बग़ैर किसी तरद्दुद (हिचकिचाहट) और हिरास (ख़ौफ़) के अपने शौहर की हिम्मत अफ़ज़ाई की और कहा तुमने बिल्कुल ठीक इरादा किया है। ख़ुदा तुम्हारे इरादे में बरकत अता करे ज़रूर ऐसा ही करो और मुझे भी अपने साथ ले चलो।" चुनाँनचे रात के वक़्त दोनों रवाना हुए और अन्सारे हुसैन[अ0स0] के साथ करबला में जाकर मुलहक़ हो गए।

उसका तफ़सीली तज़किरा अब्दुल्लाह बिन उमैर कलबी के हालात में हो चुका है। तबक़–ए–ख़वातीन में यही वह तन्हा ख़ातून है जिसके बेगुनाह ख़ून ने शोहदा–ए–करबला के साथ करबला में जलती रेत पर बहकर उस मुरक़्क़े की दिल दोज़ी और दर्दअंगेज़ी में एक मुअस्सिर इज़ाफ़ा किया।

सलाम हो उस ख़ातून पर जिसने मज़लूम की नुसरत में अपने घर बार, अपने सुहाग और फिर अपनी जान को भी निसार कर दिया।

(13) ज़ौजा–ए–मुस्लिम बिन औसजा

फ़ाज़िले समावी ने लिखा है कि बनी हाशिम के अलावा जितने अन्सारे इमाम हुसैन[अ0स0] थे वह करबला में अपने अहलो अयाल को साथ न लाए थे। इसलिए कि जो अफ़राद मदीने से साथ आए थे वह देख रहे थे कि हज़रत बैयते यज़ीद से बचने के लिए कैसे ग़ैर इतमीनानी तरीक़े पर तशरीफ़ लिए जा रहे हैं। तो वह अपने साथ मुतअल्लक़ीन (अज़ीज़ों को) क्यों लाते और जो लोग रास्ते में पहुँचे या करबला में आकर शरीक हुए वह दुश्मनों की नाका बन्दी से बचते हुए खुद ही कितनी मुशकिलों से जान बचा कर आए थे। फिर वह अपने साथ अपने अहलो अयाल को क्यों कर ला सकते थे।

बस सिर्फ़ तीन आदमी थे जो करबला में अपने मुतअल्लक़ीन (अज़ीज़ों) के साथ आए थे। एक अब्दुल्लाह बिन उमैर कबली (जिनका ज़िक्र अभी हो चुका है)

दूसरे जुनादा बिन हारिस सलमानी (उनका ज़िक्र अभी आएगा।)

तीसरे मुस्लिम बिन औसजा यह करबला में अपने मुतअल्लक़ीन (अज़ीज़ों) के साथ आये। खुद असहाबे हुसैन[अ0स0] के ख़याम के साथ अपना ख़ैमा लगा लिया और औरतों को ख़यामे हुसैन[अ0स0] में अहले हरम के पास भेज दिया। चुनानचे जंगे मग़लूबा में क़ब्ले ज़ोहर जब मुस्लिम बिन औसजा शहीद हुए तो उनकी एक कनीज़ ने बलन्द आवाज़ से रोते हुए कहा واسيداه وامسلم ابن عوسجاه "हाय मेरे आक़ा। हाय मुस्लिम बिन औसजा।" इसी आवाज़ से फ़ौजे शाम को यह इल्म हो सका कि मुस्लिम शहीद हो गए हैं।[1]

(14) बहरिया बिन्ते मसऊद

यह जुनादा बिन कअ्ब अन्सारी की ज़ौजा थीं। अपने शौहर और बच्चे के साथ मक्के से हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के क़ाफ़ेले में आई थीं। जब जुनादा बिन कअ्ब शहीद हो गए तो उन्होंने अपने नौ उम्र फ़रज़न्द अम्र बिन जुनादा को नुसरते हुसैन[अ0स0] के लिए भेज दिया। चुनाँनचे जब इमाम हुसैन[अ0स0] ने इजाज़त देने में तअम्मुल (इन्कार) फ़रमाया इस बिना पर कि अभी तो उसका बाप काम आया है। अब उसकी बेवा माँ के दिल पर क्या गुज़रेगी तो बच्चे ने

---

[1]अबसारूल ऐन, पेज/128

कहा कि मुझे मेरी माँ ही ने तो भेजा है। और उन्होंने ही मुझे यह जंग का लिबास पहनाया है।

जब यह बच्चा मैदान में जाकर अपनी कुर्बानी पेश कर रहा था तो यह मुक़द्दस ख़ातून अपने ख़ैमे के दरवाज़े पर खड़ी इस मन्ज़र का मुशाहदा कर रही थीं। बेरहम दुश्मनों ने बच्चे का सर काट कर फ़ौजे हुसैनी की तरफ़ फेंक दिया। तो माँ ने उस सर को उठा लिया और कहा शाबाश बेटा। शाबाश! तूने मेरा दिल खुश कर दिया और मेरी आँखों में ठंडक डाल दी।

फिर उसने सर को उठा कर फ़ौजे दुश्मन की तरफ़ फेंक दिया और खुद भी एक गुर्ज़े आहनी लेकर हमला कर दिया। इमाम ने हुक्मे इस्लामी याद दिलाया कि औरतों को तलवार लेकर जिहाद नहीं करना चाहिए तो वह फ़र्ज़ शनास ख़ातून वापस चली आईं और अहले हरम के पास आकर बैठ गईं।

क़यास कहता है कि मुस्लिम बिन औसजा और जुनादा बिन काब दोनों की मुतअल्लक़ा ख़वातीने अहले हरम हुसैन[अ0स0] के साथ असीरी में शरीक होंगी मगर फ़ाज़िले समावी की तहक़ीक़ यह है कि वह कूफ़े तक साथ रहीं और कूफ़े में उनके अज़ीज़ो अक़ारिब इब्ने ज़ियाद से कह सुनकर उन ख़वातीन को रिहा करा ले गए। कूफ़े से शाम तक जो ले जाई गईं वह सिर्फ़ ख़ानदाने रिसालत की मुक़द्दस ख़वातीन या उनके साथ हमेशा वाबस्तगी रखने वाली कनीज़ें थीं।[1]

---

[1] अबसारूल ऐन, पेज/132

तैंतीसवाँ बाब

गुज़िश्ता वाक़ेआत की रौशनी में हुसैनी शख़्सियत और कारनाम–ए–हुसैनी पर तबसेरा

राहे हक़ में वाक़ेय–ए–करबला के पहले भी बहुत सी कुर्बानियाँ हुई हैं मगर वह इन्फ़रादी (एक आदमी का क़त्ल) हैसियत रखती थीं जैसे सुक़रात का जामे ज़हर (ज़हर का प्याला) पीना। जनाबे ज़करिया और यहया का शहीद किया जाना, (ब–क़ौल नसारा) हज़रत ईसा[अ0स0] का सलीब पर चढ़ाया जाना और बहुत से दूसरे अम्बिया व मुरसलीन का क़त्ल कर दिया जाना। मगर वाक़ेय–ए–करबला की हैसियत इजतेमाई (गिरोह की शक्ल) थी, जहाँ हुसैन[अ0स0] की क़यादत व रहनुमाई में एक जमाअत मसरूफ़े कार थी जिसमे बच्चे बूढ़े और जवान, आज़ाद और गुलाम, अरबी और ग़ैर अरबी, क़रशी (मक्के के क़बील–ए–क़ुरैश से) और ग़ैर क़रशी हर सिन और हर तबक़े के अफ़राद मौजूद थे। जिनमें मुशतरक नुक़ता सिवाए एक इत्तेहादे मक़सद के कुछ न था।

यह नाक़ाबिले इन्कार हक़ीक़त है कि इतने हम दिल और हम ज़बान, हम ख़याल और हम आहंग अफ़राद दुनिया में न वाक़ेय–ए–करबला के पहले एक नुक़ते पर मुजतमा (जमा) हुए और न उसके बाद।

हालाँकि जज़बाते इन्सानी में माहौल और सिनो साल के इख़्तेलाफ़ से किस क़द्र फ़र्क़ हुआ करता है। मसलन जवान ज़्यादा तर इक़दाम पसन्द(जज़्बाती) होते हैं और जल्द ही मैदाने अमल में कूद पड़ना चाहते हैं। बूढ़े निसबतन बुर्दबार (ग़ौरो फ़िक्र करने वाले) होते हैं और हर मुआमले में बहुत सोच समझकर हाथ डालना चाहते हैं और औरतें ज़्यादा तर दिल की कमज़ोर होती हैं। इसलिए हौलनाक मौक़े पर शिद्दत से मुतअस्सिर होकर मर्दों के अज़्मो इरादे को भी पस्त कर देने की बाइस क़रार पाती हैं और बच्चे तो नामुवाफ़िक़ हालात में रोने या मचलने लगते हैं। चुनाँनचे अगर किसी सख़्त

मौक़े पर एक मर्द एक औरत एक बच्चा और एक बूढ़ा यकजा हों तो उफ़तादे तबा (मिज़ाज) के लिहाज़ से उनके रूजहानात में इतना इख़्तेलाफ़ होगा कि उनमें की ज़िम्मेदार फ़र्द को किसी एक राहे अमल को मुऐयन करने और सबको उस पर चलाने में काफ़ी दिक़्क़त महसूस होगी। चेजाएकि सौ डेढ़ सौ आदमियों की वह जमाअत जिस में एक नहीं मुतअद्‌दिद बूढ़े, मुतअद्‌दिद जवान, मुतअद्‌दिद बच्चे, और फिर इनके अलावा मुतअद्‌दिद औरतें मौजूद हों, और फिर यह तमाम अफ़राद बग़ैर किसी बाहमी इख़्तेलाफ़ या कशमकश के सख़्त से सख़्त हालात में भी बराबर से शरीके कार व मसरूफ़े अमल हों तो इसके मुतअल्लिक़ बस यही समझा जा सकता है कि उनके क़ाएद की क़यादत अजीब तासीर रखती थी कि उसने जवानों के ख़ून की गर्मी को घटा कर उसमें बूढ़ों के साथ ठहरने की सलाहियत पैदा की और बूढ़ों की तबियत में हरारत पैदा करके उनको जवानों के साथ साथ चलने के क़ाबिल बनाया। औरतों के दिलों में इतनी क़ूव्वत भर दी कि वह शदीद से शदीद ज़ुल्मो तशद्‌दुद के हंगाम में परेशान व मुज़तरिब न हों और बच्चों की तबियतों में वह पुख़्तगी रासिख़ (पैवस्त) कर दी कि हौलनाक मौक़ों पर भी वह रोने के बजाये हंसते नज़र आयें।

इमाम हुसैन[अ0स0] का यह तरीक़–ए–क़यादत हक़ीक़तन एक राज़े सर बस्ता (पोशीदा) की हैसियत रखता है। इसलिए कि दुश्मनों के मुक़ाबले में तो आपने ब–ग़रज़ इतमामे हुज्जत तक़रीरें की। लेकिन अपने अहबाब व अइज़्ज़ा में जोशे अमल पैदा करने के लिए कोई तक़रीर भी नहीं की बल्कि उसके बरख़िलाफ़ आप बराबर उनको अपना साथ छोड़ कर चले जाने की तरग़ीब देते रहे और वह सख़्ती के साथ आपकी नुसरत का दम भरते रहे।

उसके मुतअल्लिक़ इससे ज़्यादा कुछ नहीं कहा जा सकता कि यह बस इमाम हुसैन[अ0स0] की मख़सूस ज़ेहनी तरबियत थी कि हक़्क़ानियत की सहीं क़द्रो क़ीमत का एहसास इस तरह उनके दिल में उतार दिया था कि वह ख़ुद अपने ज़मीर की तहरीक से क़दम आगे बढ़ाने पर गोया कि अपने को मजबूर पा रहे थे। वहाँ किसी ख़ातिर दारी और मुरव्वत या दबाव का सवाल न था बल्कि उनकी वह जमाअत थी जो हक़ को हक़ समझते हुए राहे हक़ पर गामज़न थी और हक़ीक़तन ऐसे ही साथियों की हुसैन[अ0स0] को ज़रूरत भी थी। इसी लिए आपने मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा से रवानगी के वक़्त से लेकर शबे आशूर तक हर हर मौक़े पर अपनी दुशवार गुज़ार मुक़ावमत (रास्तों) के ब–ज़ाहिर

हौलनाक अन्जाम से उनको बार बार मुतनब्बेह (आगाह) करते रहने को अपना मुस्तक़िल शिआर (तरीक़ा) बना लिया था और यही आपका तरीक़–ए–कार था जिसने आपकी मुक़ावमत (इक़दाम) को एजाज़ की हद तक कामयाब साबित कर दिखाया।

ऐसा आज भी मुमकिन है कि दौराने जंग में किसी फ़रीक़ की गोला बारी से कोई बस्ती बिल्कुल तहस नहस और वीरान हो जाये और उसमें कोई एक मुतनफ़्फ़िस (शख़्स) भी ज़िन्दा बाक़ी न रहे मगर उन लोगों में से कि जिनकी जानें उस गोला बारी के ज़ैल में ज़ाए हो रही होंगी नामुमकिन है कि हर एक उस मुसीबत को बर्दाश्त करने का हक़ीक़तन आरज़ू मन्द हो और ख़ुद इख़्तियारी तौर पर उसको गवारा कर रहा हो। उनमें से बेशतर का अगर बस चल सके तो जिस क़ीमत पर भी हो अपने को इस मुसीबत से बचा लें। मगर करबला में अन्सारे हुसैन[अ0स0] में से हर एक ख़ुद ज़ाती हैसियत से मौत की आँखों में आँखें डाल कर मसलक की हक़्क़ानियत पर यक़ीने कामिल रखते हुए ब–रज़ा व रग़बते (दिलो जान से) तमाम आगे बढ़ रहा था। इस तरह कि उनमें से किसी एक के दामने अमल पर भी कमज़ोरी का धब्बा न आ सका।

ग़द्दारी और मुख़ालिफ़ाना सरगर्मी से क़तए नज़र (छोड़ कर) करते हुए किसी जमाअत में मुनसलिक (जुड़े हुए) शुदा अफ़राद का बाहम (एक दूसरे) नेक नीयती और ख़ुलूस के साथ इख़तेलाफ़े राय रखना उमूमन क़ाबिले एतेराज़ अम्र नहीं होता लेकिन चूँकि अमल में हमआहंगी (एक आवाज़) और यक जेहती (एक तरीक़ा) बाक़ी नहीं रहती लिहाज़ा मक़सद और नतीज–ए–तहरीक के इस्तेहकाम पर उसका भी असर बुरा पड़ता है मगर जमाअते हुसैनी के अफ़राद में बाहम इख़्तेलाफ़े राय का नामो निशान भी न था बल्कि वहाँ पूरी जमाअत ने इख़्तियारी तौर पर और पूरे शऊर (होशो हवास) व इरादे के साथ अपने तसब्वुर ख़याल, इरादा, अज़्म और इक़दाम को मुस्तग़रक़ (ग़र्क़) कर दिया था। एक इन्सान के ख़याल, इरादे और इक़दाम के अन्दर। इसी लिए यह कहना दुरूस्त है कि ऐसे क़ाएद और ऐसी जमाअत की मिसाल दुनिया के पर्दे पर नज़र नहीं आती।

जमाअत में से हर एक रहनुमाई की हस्ती और वह उसके मसलक पर जिसे ख़ुद भी अपने दिमाग़ो अक़्ल से सही समझ चुका था। अपने को क़ुर्बान कर रहा था। और रहनुमा उनमें से हर एक की मुसीबत को बर्दाश्त करने के बाद अपने को सख़्त तरीन मौक़े की आज़माइश के लिए तैयार पा रहा था।

वह सख़्त मौक़ा वह था जब आस पास कोई न रहा था और सिर्फ़ एक अकेले हुसैन[अ0स0] की ज़ात थी मगर अब भी उस एक अकेले इन्सान के अज़्मो इरादा में वही जाहो जलाल और इस्तेहकाम (मज़बूत इरादा) था जो मददगारों के मौजूद होने के आलम में मौजूद था। चिराग़ बुझ गया मगर अपनी रौशनी छोड़ गया वह रौशनी जो हज़ारों तारीकियों के पर्दे में अब तक जगमगा रही है। कोई शुबहा (शक) नहीं कि ज़ुल्म और तशद्दुद की आग ने इब्तेदा–ए–आफ़रीनिश (इब्तेदा–ए–ज़माना) से आज तक लाखों बस्तियाँ ख़ाकिस्तर कर दीं मगर मज़लूमियत में कभी शऊर (जागरुक्ता) इक़्तेदार व इख़्तियार और फ़राएज़ की बजा आवरी (अमल करने) में इतमीनान व सुकूनो वक़ार का यह मुज़ाहरा नज़र नहीं आया जो करबला के मैदान में नज़र आ रहा था।

सबसे पहले जबरूत (ताक़त का नशा) व तशद्दुद के मुक़ाबले में ज़ाहरी हैसियत से बेसरो सामानी और बेबसी की जंग का नूमना करबला में पेश किया गया इसलिए कि इसके पहले ताक़त का मुक़ाबला ताक़त से हमेशा होता रहा था मगर ताक़त का मुक़ाबला किरदार की क़ुव्वत से कभी नहीं किया गया था।

इसी तरीक़–ए–मुक़ाबले को बहुत ही नाक़िस दर्जा पर हिन्दुस्तान की निजात के लिए इख़्तियार किया गया। मगर बावजूद यह कि यहाँ मुक़ाबिल के ज़ुल्मो तशद्दुद का दर्जा इतना संगीन न था जो बिल–उमूम (आम तौर से) इन्सानों की बेश क़ीमत जानों तक पहुंचता फिर भी अफ़राद में वह हमरंगी (एक ख़याल) व हम आहंगी (एक सोच) नज़र न आ सकी जो इस क़िस्म के मुक़ाबले की कामयाबी का असली राज़ है।

इसके साथ वाक़ेय–ए–करबला में यह ख़ास खुसूसियत थी कि वहाँ ताक़त के मुक़ाबले में बेकसी और बेबसी के बावजूद भी वह "सिपुर्दगी" (हथियार डाल देना) न थी जो ज़ालिम की हिम्मत अफ़ज़ाई की बाइस हो सके। बल्कि वहाँ हिफ़ाज़ते खुद इख़्तियारी के उस फ़ित्री आईन (क़ुदरती निज़ाम) पर पूरा अमल किया जा रहा था जो इस्लाम का बुनियादी क़ानून है इस तरह वाक़ेय–ए–करबला में एक ऐसी नौइयत पैदा हो गई थी जिसे दुनिया आज तक न दोहरा सकी है। न आइन्दा कभी दोहरा सकेगी।

इस मुक़ाबले की अदीमुल मिसाल (जिसकी कोई मिसाल न हो) नौइयत को मलहूज़े ख़ातिर (नज़र में) रखते हुए करबला के मैदान में इमाम हुसैन[अ0स0] मुख़द्दराते इस्मत (अहले हरम) और अतफ़ाले खुर्दो साल (छोटे बच्चे) को भी

अपने साथ लाए जिन्हों ने अपने अपने हुदूद के अन्दर उस मुजाहिद–ए–उज़मा (बड़ी कुर्बानी) में नुमायाँ और मुनज़्ज़म हिस्सा लिया जिसने वाक़ेय–ए–करबला के मुनफ़रिद ख़ुसूसियात में एक बड़ा इज़ाफ़ा कर दिया जिसके मुतअल्लिक़ गुज़िश्ता अबवाब (पिछले) में सेर हासिल बहस की जा चुकी है।

हक़ीक़त यह है कि वाक़ेय–ए–करबला में बूढ़े, जवान, बच्चे और औरतें सब ही हक़्क़ानियत के तहफ़्फ़ुज़ में अपने अपने महल (जगह) पर अपना काम, फ़र्ज़ के कामिल एहसास के साथ अन्जाम दे रहे थे जिनके लिहाज़ से वाक़ेय–ए–करबला सिर्फ़ दर्दअंगेज़ और जाँ गुसल (मुसीबतों भरा) वाक़ेया नहीं रहा बल्कि वह मज़हबी व अख़लाक़ी तालीमात का एक बे मिसाल मुरक़्क़ा बन गया जो इतमीनानो सुकून के लमहात में भी अगर मुरत्तब (रूनुमा) होता तब भी इन्तेहाई तारीफ़ के क़ाबिल होता चेजाएकि वह ऐसे पुर इज़तेराब (मुसीबतों के) आलम में मुरत्तब हुआ था जबकि इन्सान के होश भी बजा रहना मुशकिल हैं।

हुसैनी शख़्सियत की बेनज़ीर रफ़अत

हुसैन[अ0स0] अपने किरदार की बलन्दी में मुन्फ़रिद होते उस वक़्त भी कि जब यज़ीद की ख़िलाफ़त के तमाम आलमे इस्लामी में तस्लीम शुदा (मान लेना) होने के बाद तन्हा इन्कार की आवाज़ ही आपने बलन्द की होती, लेकिन उस वक़्त हुसैन[अ0स0] और भी बलन्द नज़र आये कि जब आपने हज़ारों तलवारों नैज़ों और तीरों के मुक़ाबले में भी उस इन्कार को क़ायम रखा। हुसैन[अ0स0] उस वक़्त भी हुसैन होते जब आप अकेले क़ुर्बान गाहे शहादत में तन्हा अपनी जान का हदया पेश कर देते। लेकिन हुसैन[अ0स0] और भी बलन्द हो गए जब आपने अपने साथ कम अज़ कम बहत्तर कुर्बानियाँ और भी पेश कर दीं।

हुसैन[अ0स0] बेशक हुसैन ही रहते अगर आप किसी जमाअत को पुर जोश तक़रीरों के ज़रिये से तरग़ीब (राग़िब) व तहरीस (अच्छी तवक़्क़ो) से काम लेते हुए अपने साथ रखने में कामयाब हुए होते लेकिन हुसैन और भी बलन्द मन्ज़िलों पर नज़र आए कि जब आपने अपने साथ वालों को इस क़िस्म की किसी सूरत से अपने साथ रखने में कामयाबी हासिल नहीं की। बल्कि आपने अपनी हक़्क़ानियत को इस तरह पर उनके ज़हेन नशीन किया कि उनमें से हर एक हुसैनी अज़्म और इस्तेक़ामत का हामिल हो गया यानी आम तौर पर तो एक इन्सान का अपने दिलो दिमाग़ को क़ाबू में रखना और अपने क़दम का मुस्तक़िल रखना ही एक बड़ा कारनामा होता है लेकिन हुसैन[अ0स0]ने बहत्तर

आदमियों के दिलो दिमाग़ को एक मरकज़ पर जमा करके गोया हर एक सीने में अपना दिल और हर दिल में अपना इस्तेक़लाल वदीयत (पेवस्त) कर दिया था। जिसे यूँ कहा जा सकता है कि:

हुसैन[अ0स0]एक अकेले मैदाने जिहाद में हुसैन होकर नहीं आए थे बल्कि वह ब–वक़्ते वाहिद (एक वक़्त में) बहत्तर हुसैन मैदाने क़ुर्बानी में पेश कर रहे थे यानी ऐसे अफ़राद जिनमें हर एक क़ौम, क़बीले और सिनो साल के बाहमी (आपसी) इख़तेलाफ़ के बावजूद उस एक रूह का हामिल था जिस रूह को हम सिवाये ''लफ़्ज़े हुसैन'' के किसी दूसरे नाम से ताबीर नहीं कर सकते।

उसके बाद हुसैन[अ0स0]उस वक़्त भी हुसैन ही रहते जब आप अपने अइज़्ज़ा व अहबाब के दाग़ उठाने के क़ब्ल जामे शहादत नोश फ़रमा लेते लेकिन हुसैन[अ0स0] उस वक़्त और बलन्द सतह पर नज़र आए कि जब आपने उनमें की हर फ़र्द को अपने सामने राहे हक़ में निसार कर दिया।

फिर उस सूरत में भी हुसैन[अ0स0] यक़ीनी एक मख़्सूस मन्ज़िल पर होते अगर उसके बाद आप बग़ैर मुक़ाबला किए हुए अपने को नैज़े व शमशीर के सिपुर्द कर देते मगर हुसैन[अ0स0]उस क़्त उससे भी बलन्द नज़र आये जबकि उन ही हाथों से जिन पर अभी अभी तिफ़्ले शीरख़्वार (दूध पीता बच्चा) का लाशा उठा चुके थे। तलवार के क़ब्ज़े को मज़बूत पकड़ा और मर्दाना वार मुक़ाबला शुरू कर दिया। और इस तन्हाई के आलम में, और हज़ारों के नरग़े में भी आपने हमज़ा व जाफ़र[अ0स0] और हैदरे सफ़दर के रवायात को ज़िन्दा कर दिखाया।

हुसैन और भी बलन्द मन्ज़िल पर उस वक़्त नज़र आते हैं जब हम उस पर ग़ौर करते हैं कि आपने शदीद से शदीद मसाएब व आलाम में मुबतिला होने के बावजूद शरीअते इस्लाम के आम फ़राएज़ व तालीमात को एक लमहा के लिए नज़र अन्दाज़ नहीं फ़रमाया चुनानचे असहाब व अइज़्ज़ा के लाशे उठाने के साथ साथ ग़ुलामों के लिए भी मसावाते (बराबरी) इस्लामी को बरत रहे थे जैसाकि जौन ग़ुलामे अबूज़रे ग़फ़्फ़ारी और ग़ुलामे तुरकी के हालात में दर्ज किया जाचुका है। और उस मौक़े पर भी कि जब आपके असहाब एक एक करके शहीद होते जा रहे थे और जिदालो क़िताल (जंग) जारी था। आपने नमाज़े ज़ोहर ब–जमाअत अदा फ़रमा कर एहसासे फ़र्ज़ की बेनज़ीर मिसाल पेश की। दूसरे लफ़्ज़ों में यह है कि ब–वक़्ते वाहिद आप जिहाद भी करते जाते थे और मक़ासिदे जिहाद का अमली ऐलान भी।

हुसैन[अ०स०] उस वक़्त भी हुसैन ही रहते कि जब आप सिर्फ़ अपने तमाम असहाब व अइज़्ज़ा के साथ शहीद हो जाते और अपने जिहाद को अपनी ज़िन्दगी के ख़ातमे ही पर ख़त्म करते, मगर उस वक़्त हुसैन[अ०स०] मैदाने जिहाद में और भी बलन्द नज़र आय जब आपने अपनी शहादत के बाद के लिए उस शहादत के मक़ासिद (मक़सद) की इशाअत (प्रचार) का इन्तेज़ाम किया, अपने अहले हरम और छोटे बच्चों को साथ ला कर जिनमें से हर एक में फ़र्ज़ शनासी और हक़ीक़त परवरी इस तरह सरायत (पेवस्त) किए हुए थी कि इब्ने ज़ियाद के दरबार और यज़ीद के क़स्रे हुकूमत में भी उन पसमान्दगान में से किसी एक मुतनफ़्फ़िस (शख़्स) ने उमवी हुकूमत के सामने सरे तस्लीम ख़म नहीं किया। यानी वह बैयत का इन्कार जिस पर हुसैन[अ०स०] का सर नैज़े पर पहुँच गया अब भी क़ाएम था और अब उसके अलमबरदार सय्यदे सज्जाद[अ०स०], ज़ैनब ख़ातून[स०अ०], उम्मे कुलसूम[स०अ०] ही नहीं बल्कि कमसिन बच्चे फ़ातिमा[स०अ०] और सकीना[स०अ] और मुहम्मदे बाक़र[अ०स०] भी थे।

किरदारे हुसैनी की लामुतनाही रफ़अत (न ख़त्म होने वाली बलन्दी) के मज़कूर–ए–बाला मनाज़िल (ऊपर बयान की हुई मन्ज़िलों) में से हर मन्ज़िल वह है जहाँ इन्सानियत सरे तस्लीम ख़म कर देती है और उसी को इन्तेहाए इम्कान (आख़री हद) समझ लेने पर इक्तेफ़ा (तकिया) कर लेती है। मगर हुसैनी अमल उसके बाद भी आगे बढ़ता ही नज़र आता है और आख़िर यह तस्लीम करना पड़ता है कि आपकी ज़ात तारीख़े आलम में एक नए इन्सानी तसव्वुर का इज़ाफ़ा करती है। वह तसव्वुर जिसके ख़त व ख़ाल समझने में तेरह सौ बरस से अब तक दुनिया मसरूफ़ है और अभी बहुत कुछ समझ कर लफ़्ज़ों में बयान कर सकना बाक़ी है।

चौंतीसवाँ बाबा

फ़तह किसकी हुई

मादूदी (ज़ाहरी) नुक़्त–ए–नज़र से यह ख़याल किया जा सकता है कि मारिक–ए–करबला के नतीजे में यज़ीद की फ़तह हुई और इमाम हुसैन[अ०स०] की मुकम्मतल तौर से शिकस्त हो गई। मगर हक़ीक़त यह है कि किसी ज़बान व लुग़त में भी फ़तह पाने के मानी "क़त्ल कर देना" और शिकस्त खाने के मानी क़त्ल कर दिया जाना नहीं क़रार पा सकते। बल्कि फ़तह नाम है कामयाबी यानी मक़सद के हुसूल का और शिकस्त नाकामी यानी मक़सद के हाथ न आने का। लिहाज़ा मारिक–ए–करबला के नतीजे के मुतअल्लिक़ किसी फ़ैसले तक पहुँचने के लिए तरफ़ैन (दोनों तरफ़) के मक़ासिद को समझना बहरहाल ज़रूरी है। जैसा कि पहले साबित किया जा चुका है। यज़ीद से इमाम हुसैन[अ०स०] को ज़ाती और शख़्सी अग़राज़ (ग़रज़) की बिना पर मुख़ालिफ़त न थी। अगर ब–हैसियत एक मुतनफ़्फ़िस (शख़्स) के हुसैन[अ०स०] बस ज़िन्दगानिए दुनिया ही के ख़्वाहाँ होते और यज़ीद आप की दुनियावी सियासत से एलाहदगी को अपने इक़तेदारे सलतनत के क़ाएम रहने के लिए काफ़ी समझता तो अमली हैसियत से किसी तसादुम का इमकान ही न होता।

मगर वहाँ सूरते हाल यह थी कि यज़ीद मुसलमानों के सरों पर ब–हैसियत एक खुद सर और मुतलकुल एनान (बेलगाम) फ़रमाँरवा (हाकिम) के मुसल्लत होने के साथ साथ ब–हैसियत पैग़म्बरे इस्लाम[स०अ०] की नियाबत का दावेदार था और हुसैन[अ०स०] के ख़ामोशी के साथ बैयत से अलाहिदा रहने को भी वह अपने मक़सद में मज़ाहिम (रूकावट) समझता था। वह क़बले इस्लाम की मादूदा परस्ती (इस्लाम से पहले वाले हालात) को पलटाने के लिए अमली तौर से कोशाँ और हुसैन[अ०स०] रूहानियत और खुदा परस्ती को क़ायम रखने के ज़िम्मेदार, वह जब्रो जुल्म और इस्तिबदाद (ज़बरदस्ती) का सिक्का चलाने के दरपै और हुसैन[अ०स०] हक़ व रास्ती का अलम बलन्द करने पर मामूर, वह इस्लामी हुदूद व इम्तेयाज़ात (फ़र्क़) मिटाने पर तुला हुआ, और

हुसैन[अ0स0] इस्लामी खुसूसियात को बाक़ी रखने के फ़रीज़े पर मुतएय्यन (क़ाएम) थे चुनाँनचे यज़ीद ने मारिक–ए–करबला के मक़ासिद का तज़किरा करते हुए अपने क़हरमानी (ज़ुल्मो क़हर) नुक़त–ए–नज़र को बेनक़ाब कर दिया यह कहकर कि हुसैन[अ0स0] ने (अवाम को उनके हुकूक़ से आगाह करके) हमारी बलन्द इमारतों और आराइश व आसाइश के सामानों को ख़तरे में डाल दिया था इसलिए हमें अपने इक़तेदार और दौलत को क़ाएम रखने के लिए जंग करना पड़ी।'' और हुसैन[अ0स0] ने अपनी मुक़ाविमत (इक़दाम) की नौइयत को मुन्दर्जा ज़ैल अशआर में वाज़ेह फ़रमाया है। जो इब्ने ख़शाब ने नक़्ल किए हैं।

الله يعلم ان ما   بيدى يزيد لغيره
وبانہ لم يكتسبہ   بخيره وبميره
لوانصف النفس الحنو   ان لقصرت من سيره
ولكان ذالک منہ   مادنیٰ شره من خيره

यानी अल्लाह जानता है कि जो कुछ यज़ीद के पास है वह सबका सब दूसरों का है। खुद उसको कोई इस्तेहक़ाक़ (हक़) उस पर तसर्रुफ़ का हासिल नहीं है। अगर वह ख़यानत करने वाला इन्साफ़ से काम लेता तो अपनी रफ़्तार बदल देता और शरारत में कमी करता।

हुसैन[अ0स0] का यही नज़रिया वह था जिसका फैलना और दूसरों के दिमाग़ों और फिर ज़बानों तक पहुँचना यज़ीद की तबाही का बाइस हो सकता था।

पहले बयान किया जा चुका है कि इस्तेबदादी (ज़ुल्म भरी) ताक़त इस अम्र की मुतक़ाज़ी (तक़ाज़ा) होती है कि अफ़रादे क़ौम की क़ूव्वते एहसास और जुरअते इज़हार ख़त्म की जाए।

चुनाँनचे हुकूमते दमिश्क़ की तरफ़ से ऐसी ही तदबीरें की गईं कि अवाम ने यह सोचना छोड़ दिया था कि हुकूमत जाएज़ है या ना जाएज़। और अगर कोई सोचता और समझ भी लेता तो उसमें इतनी हिम्मत न होती कि वह अपने ख़यालात का आज़ादी के साथ इज़हार कर सकता। उसके बिल्कुल बरख़िलाफ़ इमाम हुसैन[अ0स0] का मक़सद यह था कि जमहूर (अक्सरियत) मुसलमीन में क़ूव्वते एहसास और जुरअते इज़हार की सिफ़तें जो मफ़क़ूद (ख़त्म) हो गई थीं फिर से पैदा हो जायें।

हुसैन[अ0स0] अपने बलन्द किरदार से एक आम बेदारी पैदा करना चाहते थे। जिसके मातहत सिर्फ़ ताक़त व इक़तेदार को हक़ न समझा जाए। बल्कि अस्ल हक़ को हक़ समझने और उसपे अमल पैरा होने की ताक़त पैदा हो,

ज़ाहिर है कि आम ख़यालात जिस सतह पर क़ायम हो जाते हैं। उससे उस वक़्त तक नहीं हटते जब तक कि ''फ़ज़ा–ए–दिमाग़ी में हलचल डालने वाला कोई अहम वाक़ेया पेश नहीं आता।

चुनाँनचे सन 60 हिजरी में हुकूमते शाम के क़बीह (बदतरीन) व मज़मूम (घिनौनी) अफ़आल (हरकतें) आम तौर पर मुसलमान अपनी आँखों से देख रहे थे फिर भी उन पर एक आम बेहिसी छाई हुई थी। यही सबब था कि इमाम हुसैन[अ0स0] का साथ देने वाले भी तादाद में बहुत कम थे।

लिहाज़ा फ़ित्री हैसियत से ज़रूरत थी किसी ऐसे अचानक हादिसे की, बल्कि ग़ैर मामूली वाक़ेए की जो आम ख़िल्क़ते इन्सानी की कुव्वते एहसास को बेदार कर दे। चुनाँनचे इमाम हुसैन[अ0स0] की शहादत ने इसी मक़सद को हासिल किया।

इसी के साथ आपकी अमली हैसियत से निहायत शानदार मुक़ाविमत (इक़दाम) की मिसाल ने उनमें फिर से जुरअते इज़हार पैदा कर दी। बात यह है कि आम तौर पर जब तक इन्सान मैदाने अमल में कोई सरीही (खुली हुई) मिसाल नहीं देख लेता उस वक़्त तक हिचकिचाता रहता है लेकिन मिसाल सामने आ जाने पर वह खुद भी सरगर्मे अमल होने पर आमादा हो जाता है।

मैदाने करबला में न सिर्फ़ हुसैन[अ0स0] ही को बल्कि बूढ़ों जवानों और बच्चों तक को निहायत इतमीनान व सुकून के साथ अपनी अपनी जानों की कुर्बानियाँ पेश करते अपनी आँखों से देखने या कानों से सुन लेने वालों के नज़दीक राहे हक़ में मौत का मरहला पहले से बहुत ज़्यादा आसान हो गया।

याद रखना चाहिए कि अक्सर वही असबाब जिनके ज़रिए से ख़ास तरह का नतीजा पैदा करना मक़सूद होता है हद से बढ़ जाने पर तवक़्क़ो के बिल्कुल ख़िलाफ़ नतीजा बरामद करते हैं। जैसा कि अरब का मकूला है ''الشی اذا تجاوز عن حده رجع الی ضده'' यानी कोई शै जब अपनी हद से तजावुज़ (आगे) करती है तो अपनी ज़िद (Oposite) की तरफ़ माएल होती है।

चुनाँनचे एक जाबिर व क़ाहिर हुकूमत की तरफ़ से अवाम पर उस पाबन्दी का आएद किया जाना कि उसके तर्ज़े अमल के ख़िलाफ़ आवाज़ बलन्द न की जाए। ज़्यादा तर जब्रो तशद्दुद की बिना पर होता है लेकिन यही ज़ुल्मो तशद्दुद जब हद से गुज़र जाता है तो फिर उसी दबी और पिसी हुई ख़िलक़त की आवाज़ एक बे–इख़्तियार चीख़ के तौर पर बलन्द होती है जो आगे चल कर कहीं ज़्यादा ख़तरनाक साबित होती है।

यज़ीदी हुकूमत जो हुसैन[अ०स०] पर ज़ुल्मो सितम ढा रही थी वह इसी ग़रज़ से कि आपके बज़ाहिर इबरतनाक अन्जाम को देखकर फिर किसी को ज़रा भी मुख़ालिफ़त की जुरअत न हो, और इमाम हुसैन[अ०स०] उसके तमाम मज़ालिम सब्रो सुकून के साथ बर्दाश्त कर रहे थे।

नतीजतन हुकूमत अपने ज़ौक़े सितम रानी (ज़ुल्मो सितम का शेवा) के सबब से यह तमीज़ न कर सकी कि ज़ुल्मो जौर को किस हद तक जब्र के दबाव से ख़िलक़त बर्दाश्त करने पर तैयार की जा सकती है। और किस नुक़ते तक पहुँच कर बज़ाहिर वह एहसासात भी फुरहरी (झुरझुरी) लेकर चौंक पड़ते हैं और शिकन्ज–ए–ज़ुल्म में गिरफ़्तार और बज़ाहिर बेबस ख़ल्क़े ख़ुदा इस शिद्दत से फड़फड़ाती है कि ख़ुद शिकन्जा टूट कर रह जाता है।

चुनाँनचे हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] यह एतेमादे कामिल रखते थे कि आप हक़्क़ानियत के तहफ़्फ़ुज़ में मसाएब का वह ग़ैर मामूली मुक़ाबला कर सकेंगे कि ख़ुद ज़ुल्मो तशद्दुद के दस्तो बाज़ू आपकी क़ुव्वते बर्दाश्त के मुक़ाबले में मुअत्तल (बेकार) व आजिज़ नज़र आने लगेंगे।

हुकूमत की तवक़्क़ो तो यह थी और मज़ालिम ढाए इसी लिए जाते हैं कि दूसरे इबरत हासिल करके उसके बाद ऐसी जुरअत न करेंगे और हुकूमत की मन्शा के ख़िलाफ़ तर्ज़े अमल इख़्तियार करने का यह दर्दनाक अन्जाम देखकर किसी को लब कुशाई (ज़बान खोलने) की हिम्मत न होगी। इसी ख़याल के मातहत पसमान्दगाने (अहले हरम वग़ैरह) हुसैन[अ०स०] का लुटा हुआ क़ाफ़िला बहाले तबाह शहर ब–शहर और दयार ब–दयार तशहीर (घुमाया) किया गया था। मगर औराक़े तारीख़ गवाह हैं कि नतीजा बिल्कुल यज़ीद की तवक़्क़ो के ख़िलाफ़ ज़ाहिर हुआ जिसके आसार ऐन मौक़–ए–जंग ही पर हुर बिन यज़ीद रियाही के लशकरे शाम से जुदा हो जाने ही से नज़र आने लगे थे। चुनाँनचे शहादते हुसैन[अ०स०] के बाद तीसरे ही दिन जब दरबारे इब्ने ज़ियादा में सरे हुसैन[अ०स०] के साथ बेअदबी की जा रही थी तो बूढ़े सहाबी ज़ैद बिन अरक़म ने सरे दरबार खड़े होकर सदा–ए–एहतेजाज बलन्द की जिससे ज़ाहिर हो गया कि करबला के वाक़ेये से हक़ गोई की जुरअत कम नहीं हुई बल्कि ज़्यादा हो गई। फिर जब मस्जिदे जामे में लोग जमा किए गए एलाने फ़तह सुनने के लिए तो बावजूदेकि वफ़ादारों का ख़ास जमाओ था, फिर भी हुसैन[अ०स०] और आपके वालिदे बुज़ुर्गवार अली बिन अबी तालिब[अ०स०] का नाम बेअदबी के साथ आना था कि दफ़अतन (अचानक) मस्जिद की ख़ामोश फ़िज़ा में एक हैजानी

कैफ़ियत पैदा हो गई और बूढ़े नाबीना अब्दुल्लाह बिन अफ़ीफ़ ने इस बेजिगरी के साथ इब्ने ज़ियाद को टोका जो तारीख़ में यादगार है।

इसी तरह यज़ीद ने अपने दरबार में जब चौबे ख़ेज़राँ (लकड़ी की छड़ी) से सेरे हुसैन[अ0स0] के साथ बेअदबी की तो अबू बरज़–ए–असलमी और नीज़ सफ़ीरे बादशाहे रोम ने जो ईसाई था उसके मुंह पर उसको बहुत कुछ सख़्त व सुस्त कहा।

यह थी हुसैनी फ़तह, कि बातिल के ख़िलाफ़ एहतेजाज होने लगा। और मुसलमान ही नहीं बल्कि ग़ैर मुस्लिम भी अपने में जुरअते इज़हार महसूस करने लगे थे।

मरक–ए–करबला से पहले किसकी मजाल थी कि यज़ीद के दरबार में इमाम हुसैन[अ0स0] का नाम इज़्ज़त के साथ ले सके। लेकिन पसमान्दगाने हसुैन[अ0स0] के क़ैदियों की सूरत में उसके सामने पेश किए जाने के बाद उसके मुंह पर हुसैन[अ0स0] की तरीफ़ें होती थीं और उसको ख़ामोशी के साथ सुनना पड़ता था।

इस सब के बाद नतीजे के लिहाज़ से यह मानना लाज़मी है कि हुसैन[अ0स0] अपने मक़सद में कामयाब हुए। लिहाज़ा वह फ़ातेह थे और यज़ीद अपने मक़सद में नाकाम हुआ लिहाज़ा वह यक़ीनन मफ़तूह (हारा हुआ) था।

पैंतीसवाँ बाब

मुजरिमों की पशेमानी

फ़तह और शिकस्त की एक ख़ास शनाख़्त यह है कि फ़ातेह अपने कारनामे पर नाज़ाँ होता है और मफ़तूह अपने तर्ज़े अमल पर शर्मिन्दा व पेशमान, चुनानचे ज़ाहिर है कि हुसैन[अ0स0] जिस रास्ते पर चले थे उस पर क़ायम रहे और आपने जो कुछ किया और जो उसका नतीजा हुआ उस पर न आप ख़ुद पशेमान हुए न आपके साथी, आपके पसमान्दगान और आपके छोटे छोटे बच्चों तक में से कोई पशेमान हुआ न आपकी औलाद या आपके मानने वालों में से कोई आपके बाद पशेमान हुआ कि हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने ऐसा क्यों किया जिसका नतीजा आपकी बरबादी की सूरत में ज़ाहिर हुआ लेकिन आपके क़ातिल और मुख़ालिफ़ ही नहीं बल्कि वह भी जिन्हों ने अमली हैसियत से आपकी नुसरत का फ़र्ज़ अदा न किया था या न कर सके थे बाद में पशेमान हुए कि हमने ऐसा क्यों किया।

नफ़सियाती हैसियत से इज़हारे पशेमानी मुख़तलिफ़ सूरतें इख़्तियार करता है। कभी तो उसके मातहत अपने तर्ज़े अमल के मुतअल्लिक़ तावीलों (बहाने) और उज़्र तराशियों से काम निकाला जाता है और कभी अपने सर से ज़िम्मेदारी हटा कर दूसरों के सर आएद की जाती है और कभी निदामत व अफ़सोस का साफ़ साफ़ इज़हार कर दिया जाता है।

चुनानचे हक़ीक़ी मानी में बरमहल और क़ाबिले सद सताइश इज़हारे निदामत हुर बिन यज़ीद रियाही का था जिसके ज़ैल में उन्होंने रोज़े आशूर नुसरते हुसैन[अ0स0] के अहम फ़रीज़े की पूरी बजा आवरी करते हुए अपने बहते हुए ख़ून से अपनी फ़र्दे अमल को धो कर साफ़ बना दिया और सआदते शहादत हासिल की, उसके बाद जिन जिन लोगों ने भी अपनी अपनी पशेमानी का इज़हार मुख़तलिफ़ तरीक़ों पर किया वह बाद अज़ वक़्त (वक़्त गुज़र जाने के बाद) था।

इनमें सबसे ख़फ़ीफ़ (हल्का) दर्जे के मुजरिम वह अहले कूफ़ा थे जिन्हों ने मुस्लिम बिन अक़ील के वास्ते से नुसरते हुसैन अ0स0 का अहदो पैमान किया था मगर वक़्त आने पर उन असबाब से जिनका तज़किरा तफ़सील के साथ इस किताब में हो चुका है करबला न पहुंच सके, या पहुंचने की कोशिश न की। उनकी पशेमानी निहायत सच्चे दिल से मारक–ए–करबला के बाद बहुत जल्द ही वक़ूअ् (ज़ाहिर) में आ गई जिसे उन्होंने अपनी उन कोशिशों से जो खूने हुसैन अ0स0 का इन्तेक़ाम लेने के लिए की गईं एक क़ाबिले एहतेराम दर्जा दे दिया और ''तव्वाबीन'' लक़ब हासिल किया।

ऐसे मुजरिमों में जिन्हों ने फ़रीज़–ए–नुसरत के अदा करने में कोताही की थी एक अब्दुल्लाह बिन हुर अल जअ्फ़ी था जिसे राहे कूफ़ा में हज़रत इमाम हुसैन अ0स0 ने खुद नुसरत की दावत दी थी मगर उसने हीला व हवाला (बहाने बाज़ी) से अपनी जान बचाई और इस सअतादत से महरूम रहा।[1] उस पर उसे उम्र भर निदामत रही जिसे उसने इन अशआर की सूरत में ज़ाहिर करते हुए कहा।

فيالک حسرة مادمت حيّا — ترددبين حلقى والتراقى
حسين حين يطلب بذل نصرى — على اهل العداوة الشقاق
فما انىٔ غداة يقول حزنا — اتترکنى وتزمع لالطلاق
فلوفلق التلهف قلب حىّ — لهم القلب هنّى بانفلاق

(यानी) तमाम ज़िन्दगी मुझे यह रंजो मलाल रहेगा कि हज़रत इमाम हुसैन अ0स0 ने मुझसे मदद तलब की और मैंने उस सआदत को हासिल न किया।[2] फिर! वाक़ा–ए–करबला के बाद जब इब्ने ज़ियाद ने उससे शिकायत की कि तुम अरसे से कहाँ ग़ाएब थे। तुमने हुसैन अ0स0 के मुक़ाबले को जाने से गुरेज़ किया मालूम होता है तुम हमारे दुश्मनों से हमदर्दी रखते थे तो यह सुनकर उसके जज़बात में और ज़्यादा तूफ़ान पैदा हो गया। और अब उसने जो अशआर कहे उनमें से दो शेअ्र हस्बे ज़ैल थे।

يقول امير غادر حق غادر — الاکنت قاتلت الشهيد ابن فاطمه
فياندمى الا اکون نصرتہ — الاکل نفس لا تسدّد نادمة

---

[1] इरशाद पेज / 237
[2] अख़बारूत तुवाल पेज / 258

"वह अमीर जो ख़ुद इन्तेहाई ग़द्दार है मुझसे पूछता है कि तुम फ़रज़न्दे फ़ातिमा ज़हरा[स0अ0] के ख़िलाफ़ जंग में शरीक क्यों न हुए? हालाँकि मुझे तो उसी की निदामत है कि मैंने उनकी नुसरत क्यों न की और यक़ीनन जो शख़्स भी सही रास्ता न इख़्तियार करे तो उसे नादिम होना ही चाहिए।" उसके बाद वह कूफ़े से निकल कर सरज़मीने जबल की तरफ़ चला गया।"[1]

उनसे ज़्यादा मुजरिम वह ख़िलक़त थी जो हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] का मुक़ाबला करने के लिए मैदाने करबला में सफ़ बस्ता खड़ी थी। चुनाँनचे उनमें से बाज़ के इज़हारे पशेमानी पर मबनी अक़वाल जस्ता जस्ता (धीरे धीरे) तारीख़ ने हम तक पहुँचाये हैं। मसलन क़ुर्रा बिन क़ैस कि जो उमर बिन सअ्द के नुमाइन्दे की हैसियत से इमाम हुसैन[अ0स0] की ख़िदमत में आया था वाक़ेय–ए–करबला के बाद कहा करता था कि अगर हुर बिन यज़ीद ने मुझको मुत्तेला कर दिया होता कि वह जमाअते हुसैनी की तरफ़ जा रहे हैं तो मैं भी उनके साथ ज़रूर हो लेता।[2]

इसी तरह रज़ी बिन मुनक़ज़ अबदी कि जिसने मैदाने करबला में बुरैरे हमदानी पर हमला किया था और बिल आख़िर ज़ेर होने पर काब बिन जाबिर बिन अम्र अज़दी को अपनी कुमक (मदद) पर बुलाया था और उसने बुरैर को नैज़ा मार कर क़त्ल कर दिया था, वाक़ेय–ए–करबला के बाद अपनी पशेमानी का हस्बे ज़ैल अशआर में इज़हार करता था।

"मुक़द्दर में इस तरह लिखा न होता तो मैं इस जंग में शरीक ही न हुआ होता कि इब्ने जाबिर का एहसान मुझ पर हो सकता। वह दिन मेरे ही लिए तमाम उम्र के आरो नंग (ज़िल्लतो रूसवाई) का बाइस नहीं हुआ। बल्कि मुतअद्दिद नसलों की ज़िल्लत व ख़्वारी का सबब हो गया। काश बुरैर के क़त्ल और हुसैन[अ0स0] से मुक़ातिला (एक दूसरे को क़त्ल करना) के दिन से पहले ही मैं मर कर क़ब्र में पहुंच गया होता।[3]

शबस बिन रबीअ् को जो फ़ौजे इब्ने सअ्द के बड़े सरदारों में से था। यह कहते हुए सुना गया कि अल्लाह इस मुल्क वालों को कोई ख़ैर नहीं पहुँचाएगा कितने ग़ज़ब की बात है कि हमने पांच बरस तक अली बिन अबी तालिब[अ0स0] और उनके फ़रज़न्द (हसने मुजतबा[स0अ0]) के साथ मिलकर आले अबू सुफ़ियान

---

[1]तबरी जि/6, पेज/270
[2]इरशाद पेज/349, तबरी जि/6, पेज/244
[3]तबरी जि/6, पेज/248

से जंग की फिर उसके बाद उन ही के फ़रज़न्द इमाम हुसैन[अ0स0] के मुक़ाबले में जो अपने ज़ाती सिफ़ात के लिहाज़ से भी तमाम रूए ज़मीन के लोगों से बेहतर थे हमने मुआविया और ज़ियाद की औलाद के साथ मिलकर चढ़ाई कर दी। यह इतनी बड़ी गुमराही थी जिससे बढ़ कर हो नहीं सकती।[1]

अय्यूब बिन मशरह हैवानी जिसने हुर बिन यज़ीद रियाही के घोड़े को करबला में तीर मार कर क़त्ल किया था, अरसे के बाद जब वह यह रूदाद बयान कर रहा था तो हाज़रीन में से बाज़ ने पूछा कि तुमने हुर को क़त्ल भी किया था? कहा नहीं ब–ख़ुदा मैंने उन्हें क़त्ल नहीं किया। क़त्ल किसी दूसरे ने किया और मुझे पसन्द भी न था कि मैं उन्हें क़त्ल करूँ। अबू अलविदाक (हाज़रीन में से एक शख़्स) ने कहा क्यों? कहा आम ख़याल यह है कि वह बहुत नेक आमाल लोगों में से थे अब अगर उनके मुक़ाबले में हाथ उठाना गुनाह था तो मैं सिर्फ़ ज़ख़्मी करने और मुक़ाबले में खड़े होने ही की हद तक गुनागहार हुआ यह बेहतर था उससे कि मैं उनमें से किसी के क़त्ल का मुरतकिब होता। यह सुनकर अबू अलविदाक को गुस्सा आ गया। कहा मेरे नज़दीक तो तुमसे अल्लाह उन सबके क़त्ल का मुवाख़िज़ा करेगा। अरे किसी को तीर लगाया, किसी के घोड़े का ख़ातिमा किया। किसी से दस्त ब–दस्त मुक़ाबला किया। कभी ख़ुद हमला किया और कभी दूसरों को तरग़ीब (हिम्मत) दिलाई और कुछ नही तो कम अज़ कम अपनी मौजूदगी से सवारे लशकर में इज़ाफ़ा किया और जब हमला हुआ तो मैदान से फ़रार करना गवारा न किया और तुम्हारी तरह दूसरों ने भी यही सब बातें कहीं तो तुम सब ही उन तमाम शोहदा के क़ातिल ठहरे और सब ही को इस जुर्म की सज़ा मिलना है। अय्यूब के पास उसका कोई सन्जीदा जवाब न था। वह जलकर कहने लगा कि अच्छा अगर तुम्हारे हाथ रोज़े क़यामत का हिसाब हो तो तुम मुझे कभी न बख़्शना।[2]

उनसे भी बढ़कर मुजरिम अफ़वाजे यज़ीद का अफ़सर उमरे सअ्द था। उसके तअस्सुरात का बयान हमीद बिन मुस्लिम ने किया है। वह कहते हैं कि उमर बिन सअ्द मेरा दोस्त था। जब वह मैदाने करबला से वापस हुआ तो मैंने जाकर उससे हालात दरयाफ़्त किए उसने कहा कुछ न पूछो कोई मुसाफ़िर अपनी मन्ज़िल की तरफ़ ऐसे बुरे अन्जाम के साथ वापस नहीं हुआ होगा जैसे

---

[1]तबरी जि/6, पेज/250

[2]तबरी जि/6, पेज/250

कि मैं। मैंने क़रीबी रिश्तेदारी का पास न करते हुए एक जुर्मे अज़ीम का इरतेकाब किया।[1]

उससे बड़ा मुजरिम हाकिमे कूफ़ा उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद था कि जिसने तमाम अफ़वाज को अपनी निगरानी में मैदाने करबला की तरफ़ भेजा और उमर बिन सअ्द को क़त्ले हुसैन[अ०स०] पर मामूर किया। वह अपने इस अमल से मुतअल्लिक़ ज़िम्मेदारी यज़ीद पर आएद करता था। चुनाँनचे जब यज़ीद के मरने पर इराक़ में हुकूमत के ख़िलाफ़ हमागीर (पूरे मुल्क में) शोरिश बरपा हो गई और इब्ने ज़ियाद को बसरा से फ़रार इख़्तियार करना पड़ा तो उसने क़बील–ए–बनी यशकर में से एक शख़्स को रास्ता बताने के लिए अपने साथ लिया। असनाये राह (रास्ते में) में एक मर्तबा जब देर तक इब्ने ज़ियाद नाक़े पर सर झुकायबैठा रहा तो उस शख़्स ने यह ख़याल करके कि वह सो गया है उसको आवाज़ दी। इब्ने ज़ियाद ने जवाब में कहा कि मैं सो नहीं रहा हूँ बल्कि एक अहम मसले के मुतअल्लिक़ ग़ौरो फ़िक्र कर रहा था। उस शख़्स ने कहा मैं जानता हूँ आप क्या सोच रहे थे, फिर इब्ने ज़ियाद के दरयाफ़्त करने पर उसने बतलाया कि "आप हुसैन बिन अली[अ०स०]" के क़त्ल करा देने पर ख़जालत (शर्मिन्दगी) व पशेमानी का एहसास कर रहे थे और बसरा में जो क़स्रे अबयज़ (सफ़ेद महल) तामीर कराया है और उसमें रहना नसीब न हुआ उसके मुतअल्लिक़ सोच रहे थे। या बसरा के ख़वारिज को जो महज़ बदगुमानी और तवहहुम की बिना पर आपने क़त्ल कर दिया था उस पर पशेमान हो रहे थे।" इब्ने ज़ियाद ने जवाब दिया कि तुमने कोई बात ठीक नहीं की। चूँकि हुसैन बिन अली[अ०स०] ने बादशाहे वक़्त की मुख़ालिफ़त की थी और उसने मुझको उनके क़त्ल करने का हुक्म दिया था लिहाज़ा उसकी ज़िम्मेदारी यज़ीद बिन मुआविया पर है मुझ पर नहीं है।[2]

इसी पशेमानी का नतीजा था कि जब यज़ीद ने हिजाज़ पर फ़ौज कशी करना चाही और इब्ने ज़ियाद को लिखा कि अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर के मुक़ाबले के लिए जाओ तो उसने इनकार कर दिया और कहा उस फ़ासिक़ के कहने से रसूल[स०अ०] के नवासे को तो क़त्ल कर चुका अब काबे पर फ़ौज कशी करूँ। यह मुझसे नहीं हो सकता।[3]

---

[1]अख़बारूत तुवाल, पेज/257

[2]तबरी जि/6, पेज/28–29

[3]तबरी जि/7, पेज/6

सबसे बड़ा मुजरिम यज़ीद बिन मुआविया था जिसकी तस्दीक़ इब्ने ज़ियाद के बयान से हो चुकी और उसका सुबूत यह है कि यह इत्तेला मिलने पर कि हुसैन[अ0स0] कूफ़े की तरफ़ मुतवज्जेह हुए हैं उसने इब्ने ज़ियाद को कूफ़े का हाकिम इसी लिए मुक़र्रर किया था कि वह इन्तेहाई सख़्त गीरी से काम ले सकेगा। फिर जब इब्ने ज़ियाद के हुक्म से मुस्लिम बिन अक़ील[अ0स0] शहीद कर दिए गए और उनका सर काट कर यज़ीद के पास भेजा गया तो यज़ीद ने उससे अपनी ख़ुशी का इज़हार करते हुए इब्ने ज़ियाद के हुस्ने ख़िदमत का इक़रार किया और उसको मज़ीद हिदायत भेजी कि अब हुसैन[अ0स0] का मुक़ाबला भी उसी उनवान से किया जाये।

फिर शहादते हुसैन के बाद इब्ने ज़ियाद ने पहले सरहाए शोहदा और पसमान्दगाने हुसैन[अ0स0] की बाबत यज़ीद की मर्ज़ी मालूम कर ली, उस वक़्त उनको कूफ़े से दमिश्क़ की तरफ़ रवाना किया। और तमाम वाक़ेआते मज़ालिम मालूम होने के बाद यज़ीद की तरफ़ से इब्ने ज़ियाद पर कोई एताब नहीं हुआ बल्कि वह यज़ीद की ज़िन्दगी की आख़री साँस तक कूफ़े के तख़्ते हुकूमत पर बाक़ी रहा और यज़ीद की नवाज़िशें उसी पर नहीं बल्कि आले ज़ियाद में से दूसरे अफ़राद पर भी और ज़्यादा हो गईं। चुनाँनचे इब्ने ज़ियाद का एक भाई अब्दुर्रहमान बिन ज़ियाद जो सन 58 हिजरी से ख़ुरासान में का हाकिम था, शहादते हुसैन[अ0स0] को सुनने के बाद ख़ुरासान में अपनी जगह एक दूसरे शख़्स को क़ायम मुक़ाम बना कर दमिश्क़ गया और ख़ुरासान के ख़ज़ाने में जो दो करोड़ दिरहम उसके इक़रार के मुताबिक़ जमा थे वह अपने नाम माफ़ करा लिए।[1] फिर अब्दुर्रहमान के बाद ख़ुरासान की हुकूमत उसी के दूसरे भाई मुस्लिम बिन ज़ियाद के सिपुर्द की गई।[2]

इन सब बातों से ज़ाहिर है कि क़त्ले हुसैन[अ0स0] यज़ीद के मन्शा के मुताबिक़ और उसी के हुक्म से अमल में लाया गया था, इसी बिना पर शुरू शुरू उसने शहादते हुसैनी पर इन्तेहाई शादमानी (ख़ुशी) का इज़हार किया लेकिन उसके बाद जब आसारे इन्क़ेलाब क़वी से क़वी तर होते गए तो उसका सारा नशा हिरन हो गया और वह कफ़े (हथेली) अफ़सोस मल मल कर निहायत हसरतो यास के साथ कहने लगा कि "हाय हुसैन बिन अली[अ0स0] को क़त्ल करके इब्ने ज़ियाद ने मुसलमानों की नज़रों में मुझको ज़लील व ख़्वार

---

[1]अल–वज़रा वल किताब, पेज / 18

[2]अल–वज़रा वल किताब, पेज / 19, तबरी जि / 6, पेज / 272

और क़ाबिले नफ़रत बना दिया और उनके दिलों में मेरी तरफ़ से कीना व अदावत के बीज बो दिए। क़त्ले हुसैन[अ0स0] को संगीन तरीन जुर्म समझते हुए मुसलमानों में के नेक व बद सब ही मुझसे बेज़ार हो गए। हाये इब्ने मरजाना (इब्ने ज़ियाद) ने यह क्या किया। ख़ुदा उस पर लानत करे।[1]

इन्फ़ेआल व पशेमानी का लाज़मी नतीजा यह होता है कि इन्सान अपनी बात से हट जाये। इमाम हुसैन[अ0स0] और यज़ीद में बिनाए मुख़ासिमत यही थी कि यज़ीद हुसैन[अ0स0] से बैयत हासिल करने पर मुसिर था और इमाम हुसैन[अ0स0] को आख़री हद तक इन्कार था। अब यह तो क़तई तौर पर साबित है कि इमाम हुसैन[अ0स0] ने अपने इन्कारे बैयत को इक़रार से तब्दील नहीं किया। इसलिए कि अगर ऐसा कर दिया होता तो सर नोके नैज़ा पर नज़र न आता। मगर यह देखना है कि यज़ीद अपने मुतालबे पर क़ायम रहा या उससे हट गया? यहाँ पर यह याद कर लेना ज़रूरी होगा कि यज़ीद का हुसैन[अ0स0] से बैयत का मुतालबा शख़्सी हैसियत में से न था बल्कि पैग़म्बरे इस्लाम के रूहानी विरसेदार की हैसियत से जब ऐसा था तो जो हैसियत अपनी ज़िन्दगी में हुसैन को हासिल थी वही आपके बाद आपके फ़रज़न्द अली बिन हुसैन[अ0स0] को हासिल हो गई थी। फिर हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] तो ब–नफ़्से नफ़ीस (ज़ाती तौर पर) यज़ीद की गिरफ़्त में कभी आ न सके थे। इसलिए कि यज़ीद था दमिश्क़ में और हुसैन[अ0स0] थे मदीने, मक्के या फिर करबला में। मगर आपके पसमान्दगान के लिए ऐसा वक़्त आया कि जब वह सबके सब क़ैदियों की हैसियत से यज़ीद के सामने पेश किए गए। अगर यज़ीद अपने मुतालब–ए–बैयत पर क़ायम होता तो उसको अली बिन हुसैन[अ0स0] के सामने इस सवाल को फिर पेश करना चाहिए था लेकिन पसमान्दगाने हुसैन[अ0स0] में से किसी फ़र्द के सामने भी बैयत का सवाल पेश नहीं किया गया। इससे ज़ाहिर है कि यज़ीद अपने मुतालब–ए–बैयत से हट गया था। हालाँकि मज़ालिम ढाये इसी लिए जाते हैं कि कमज़ोर फ़रीक़ मरऊब व ख़ौफ़ज़दा हो जाये मगर इब्ने ज़ियाद के दरबार में ऐसा मौक़ा पेश आ चुका था कि उसके अली बिन हुसैन[अ0स0] को क़त्ल की धमकी देने पर आपने तेवर बदल कर नहीफ़ (कमज़ोर) मगर अज़्मे मुस्तक़िल की पूरी तरजुमानी करती हुई आवाज़ में कहा था। ''لا

[1]तबरी जि/7, पेज/19

علمت ان القتل لنا عادة وكرامتنا الشهادة'' यानी क्यों इब्ने ज़ियाद! अभी तक तू नहीं समझ सका कि क़त्ल होना हमारी आदत है और शहादत हमारी इज़्ज़त है।

इससे ज़ाहिर हो गया कि ज़ुल्म उठाने वाले ज़ुल्म की संगीनी से ख़ौफ़ज़दा नहीं हुए मगर ज़ुल्म करने वाले उनके सब्रो इस्तेक़लाल को देख कर ख़ौफ़ ज़दा हो गए। चुनाँनचे यज़ीद में अपने तमाम जबरूत के मुज़ाहरों के बावजूद अब इतनी हिम्मत न थी कि वह पसमान्दगाने हुसैन[अ0स0] में से किसी के सामने सवाले बैयत पेश करता। इसलिए कि उसकी आँखों के सामने हुसैन[अ0स0] का सरे बुरीदा मौजूद था और उसके कानों में करबला के हालात गूंज रहे थे और वह समझ रहा था कि अगर सवाले बैयत कहीं फिर कर दिया गया तो दमिश्क़ का दरबार सहराए करबला बन जायेगा, लिहाज़ा दूसरी तरह की दिल आज़ारियाँ पसमान्दगाने हुसैन[अ0स0] के ख़िलाफ़ इख़्तियार की गईं मगर सवाले बैयत उठाया नहीं जा सका। क्या इससे बढ़ कर हुसैन[अ0स0] की फ़तह और यज़ीद की शिकस्त का दूसरा कोई सुबूत दरकार है।?

छत्तीसवाँ बाब

आलमे इस्लामी के तअस्सुरात

शहादते हुसैन[अ0स0] के तफ़सीलात पर मुत्तेला होते ही आलमे इस्लामी की हर फ़र्द के दिल में ग़म व ग़ुस्से का तूफ़ान बरपा हो गया और जो जो भी उसके इरतिकाब के ज़िम्मेदार समझे गए उनसे नफ़रत व बेज़ारी का इज़हार किया जाने लगा और क़त्ले हुसैन[अ0स0] उनके लिए रूसवाई की एक सनद बन गया।

चूँकि ब–ज़ाहिर हालात इस शहादते उज़मा से अहले कूफ़ा को क़रीब का तअल्लुक़ था लिहाज़ा उनके दामन पर उसका ऐसा धब्बा लगा कि सदियों तक वह धोया न जा सका यहाँ तक कि अबुल अब्बास सुफ़्फ़ाह के सामने जब बसरा और कूफ़े की बाहमी (एक दूसरे की) अफ़ज़लियत के बारे में मुनाज़रा हुआ तो अबू बकर हज़ली की मज़म्मत में यही चीज़ ख़ास तौर से पेश की कि यहाँ के लोगों ने हुसैन[अ0स0] को क़त्ल किया।

अबू उसमान नहदी एक सहाबिए रसूल[स0अ0] कूफ़े में रहा करते थे जब हुसैन[अ0स0] मैदाने करबला में शहीद कर दिए गए तो कूफ़े से वह बसरा की तरफ़ मुन्तक़िल हो गए यह कह कर कि मैं उस शहर में नहीं रहूँगा जहाँ रसूल अल्लाह[स0अ0] का नवासा शहीद कर डाला गया हो।

फिर चूँकि कूफ़ा और करबला सरज़मीने इराक़ पर वाक़े हैं लिहाज़ा इराक़ के लिए भी क़त्ले हुसैन[अ0स0] बाइसे ज़िल्लत शुमार किया जाने लगा। चुनाँनचे अहले इराक़ में से एक शख़्स ने अब्दुल्लाह बिन उमर से दरयाफ़्त किया कि हालते एहराम में मच्छर मारना जाएज़ है या नहीं? उस पर उन्होंने कहा कि अहले इराक़ को देखो तो यह मच्छर के ख़ून के मुतअल्लिक़ इस्तिफ़्सार (पूछ गूछ) करते हैं हालाँकि उन ही लोगों ने पैग़म्बरे ख़ुदा के नवासे का ख़ून बेदरेग़

बहा दिया। बावजूदेकि पैग़म्बरे ख़ुदा ने हसन व हुसैन[अ0स0] के बारे में फ़रमाया था कि यह दोनों काएनाते आलम में मेरे दो गुलदस्ते हैं।[1]

शख़सियतों के लिहाज़ से शोहदाए करबला के क़ातिलों से तनफ़्फ़ुर (नफ़रत) ख़ुद उनके घर वालों तक को हो गया। चुनाँनचे बुरैर हमदानी का क़ातिल कअ्ब बिन जाबिर जब अपने मकान पर वापस हुआ तो उसकी बीवी या बहन नवार बिन्ते जाबिर ने कहा कि मैं तुझसे अब उम्र भर बात नहीं करूँगी। तूने फ़ातिमा ज़हरा[स0अ0] के फ़रज़न्द के ख़िलाफ़ जंग में शिरकत की और सैयदुल क़ुर्रा (बुरैर) को क़त्ल किया।[2]

इब्ने ज़ियाद जिसने बराहे रास्त करबला की तरफ़ फ़ौजें भेजी थीं उसके मुतअल्लिक़ क़ब्ल इसके कि यज़ीद की सियासत में कोई तबदिली वाक़े हो और वह ख़ुद इब्ने ज़ियाद को क़त्ले हुसैन[अ0स0] का ज़िम्मादार क़रार देते हुए उसकी मज़म्मत शुरू करे। दूसरे लोग उसके दरबारियों में से इब्ने ज़ियाद को माँ सुमैया के हिक़ारत आमेज़ तज़किरे के साथ उसे बुरा कहते थे जिसे यज़ीद को बहरहाल ख़ामोशी के साथ सुनना पड़ता था। चुनाँनचे यहया बिन हकम ने यज़ीद के पहलू में बैठ कर हस्बे ज़ैल शेअ्र पढ़ दिए थे।

لهام بجنب الطف ادنیٰ قرابۃ من ابن زیاد العد ذی الحب الوغل

سمیۃ اضحیٰ نسلها عد الحصیٰ وبنت رسول الله لها لیس لئل

"यानी वह सर जो मैदाने करबला में तनों से जुदा कर दिए गए क़राबत के एतेबार से हमसे ज़्यादा नज़दीक थे ब–निसबत गुलाम ज़ादा इब्ने ज़ियाद के जो कमीना ख़ानदान से है। अफ़सोस सुमैया की नस्ल तो संगरेज़ों की तरह फैल गई और दुख़्तरे रसूल[स0अ0] की नस्ल बाक़ी न रही।"[3]

किसी और का क्या ज़िक्र उसी सुमैया ने जो इब्ने ज़ियाद की माँ थी बेटे को उसके इस फ़ेअ्ल पर लानत मलामत की।[4]

ख़ुद यज़ीद की रूसवाई के आलम का पूरा पूरा अन्दाज़ा उसी के इस क़ौल से हो जाता है कि इब्ने ज़ियाद ने मुसलमानों में मुझको ज़लील व ख़्वार और क़ाबिले नफ़रत बना दिया और उनमें के नेक व बद सब ही मुझसे बेज़ार हो गए।

---

1 बुख़ारी जि/2, पेज/188, जि/4, पेज/32
2 तबरी जि/6, पेज/247
3 इरशाद, पेज/261–262
4 तबरी जि/7, पेज/6

न सिर्फ़ यह कि खुद उसके ज़माने में लोग उसे बुरा कहते और समझते थे बल्कि उसके बाद आने वाली नसलों में भी उसके ख़िलाफ़ ग़म व गुस्से का क़वी जज़्बा पाया जाता था यहाँ तक कि खुद बनी उमैया में से उसके बाद होने वाले सलातीन (हाकिम) इस चीज़ के रवादार न थे कि कोई भी उसका ज़िक्र ताज़ीम व एहतेराम के साथ करे बल्कि खुद उसके बेटे मुआविया बिन यज़ीद ने बर सरे मिम्बर अपने बाप की बद आमालियों का इक़रार करते हुए उसके ख़ाली किए हुए तख़्ते हुकूमत पर बैठने से इन्कार कर दिया।

दूसरी सदी हिजरी के अवाएल (शुरू) तक यह जज़्बा बरक़रार रहा। चुनाँनचे उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ के दरबार में किसी शख़्स ने एक मर्तबा यज़ीद के नाम से साथ लफ़्ज़े ''अमीरूल मोमिनीन'' कह दिया था तो उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ ने गुस्से से कहा ''तुम उसे अमीरूल मोमिनीन कहते हो?'' और फिर हुक्म दिया कि उसे बीस ताज़ियाने लगाये जायें। चुनाँनचे यह सज़ा उसको दी भी गई।

इतना ही नहीं बल्कि क़त्ले हुसैन[अ0स0] और यज़ीद की हुकूमत उम्मते इस्लामिया के दामन पर एक धब्बा बन गई जैसा कि चौथी सदी हिजरी के मशहूर फ़लसफ़ी शाएर अबुल अला मअरी ने मुन्दर्जा ज़ैल दो शेअ्रों में इसका इज़हार किया है:

ارى الايام تفعل كل كره   فما انا بالعجائب مستزيد

اليس قريشكم قتلت حسينا   وكان على خلافتكم يزيد

यानी ''ज़माने की नीरंगियाँ मेरे सामने अजीब नक़्शे पेश करती रहती हैं। यहाँ तक कि उनको देखने की अब मुझे हवस बाक़ी नहीं रही क्यों? क्या तुम्हारे क़ुरैश ने हुसैन[अ0स0] को क़त्ल नहीं किया और क्या तुम्हारी ख़िलाफ़त के तख़्त पर यज़ीद सा ख़ताकार नहीं बैठा?''

ज़ाहिर है कि इस दर्जा वसीअ् और देरपा (मुद्दतों) जज़्ब–ए–नफ़रत जो क़ातिलाने हुसैन[अ0स0] के ख़िलाफ़ आम तौर पर ख़ल्क़े ख़ुदा में पैदा हो चुका था वह बेनतीजा नहीं रह सकता था। लिहाज़ा नामुमकिन था कि सूरते हाल में इन्क़ेलाब पैदा न होता।

सैंतीसवाँ बाब

आसारे इन्क़ेलाब

वाक़ेय–ए–हुर्रा ख़िलाफ़ते इब्ने ज़ुबैर, इज़तेराबे इराक़ व ईरान और दीगर जुज़ई (छोटे) वाक़ेयात

बड़े से बड़े इन्क़ेलाब का संगे बुनियाद वही दो चीज़ें हैं कि जो शहादते हुसैन[अ०स०] के क़हरी नतीजे के ज़ैल में आम तौर पर मुसलमानों में पैदा हो चुकी थी। यानी कूव्वते एहसास और जुरअते इज़हार जब यह दो चीज़ें किसी ख़ास सलतनत किसी ख़ास निज़ाम या किसी ख़ास इक़्तेदार के ख़िलाफ़ बरूए कार आ जायें तो फिर इन्क़ेलाब रूनुमा होना लाज़मी और ज़रूरी है।

चुनाँनचे हुकूमते यज़ीद के ख़िलाफ़ आसारे इन्क़लाब उसी वक़्त से नुमायाँ होने लगे थे कि जब पसमान्दगाने हुसैन[अ०स०] क़ैदियों की सूरत से कूफ़े के बाज़ार में तशहीर (नुमायाँ) किए जा रहे थे। हालाँकि उन क़ैदियों को ख़ुद रोने की इजाज़त न थी और हुकूमत की तरफ़ से फ़तह की ख़ुशियाँ मनाने का एहतेमाम था मगर बहर तौर पसमान्दगाने हुसैन[अ०स०] की हालते ज़ार को देखकर, और ज़ैनब व कुलसूम[अ०स०] और अली बिन हुसैन[अ०स०] के ज़ोरदार ख़ुतबों को सुनकर कूचा व बाज़ार में गिरया व ज़ारी के शोर से एक कोहराम बरपा हो गया था यह राय अम्मा (आम राय) का वह बेसाख़्ता मुज़ाहिरा था जिसे कोई ताक़त दबा नहीं सकती थी।

फिर जब पसमान्दगाने हुसैन[अ०स०] शाम की तरफ़ रवाना किए गए तो यज़ीदियों के मुक़ाबले में रास्ते में बहुत सी मंज़िलों पर शहरों के दरवाज़े बन्द कर लिये गये। बहुत से मक़ामात पर लोग मुसल्लह (हथियारों से लैस) होकर निकल आये और अक्सर जगह जंग की सूरत भी पेश आई। चुनाँनचे यह आग़ाज़ ही वह था जो बजाए ख़ुद किसी बड़े इन्क़ेलाब की अपने अन्जाम में ख़बर दे रहा था।

मदीन–ए–मुनव्वरा और मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा यह दोनों मुसलमानों के ख़ास मरकज़ थे। मदीना बनी हाशिम का शहर था जिनमें से अबूतालिब की अक्सर औलाद हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] के साथ जा चुकी थी। मगर इस

ख़ानदान के दूसरे अफ़राद तो सब ही मदीने में रह गए थे। फिर औलादे अबूतालिब में से भी मुहम्मद बिन हनफ़िया और अब्दुल्लाह बिन जाफ़र मदीने ही में रहे थे। ख़वातीन में से भी कई बाक़ी रह गई थीं। अहले मदीना कितने ही बेहिस सही मगर इतने दर्दमन्द दिलों के तअस्सुरात उन्हें कहाँ तक मुतअस्सिर न बनाते। उसी वक़्त जब इब्ने ज़ियाद ने सरे इमाम हुसैन[अ0स0] दमिश्क़ की जानिब रवाना किया, यज़ीद ने अब्दुल मलिक बिन अबिल हदीस सलमा को मदीना रवाना किया और कहा कि जाकर अम्र बिन सईद बिन आस (हाकिमे मदीना) को क़त्ले हुसैन[अ0स0] की खुश ख़बरी पहुँचाओ। अब्दुल मलिक जब मदीने के पास पहुंचा तो रास्ते ही में एक शख़्स ने क़ुरैश में से उसे देख कर पूछा, क्यों क्या वाक़ेया है? उसने कहा कि वाक़ेया अमीर के पास पहुँच कर मालूम होगा। यह सुनना था कि उसने कहा "انا لله وانا اليه راجعون" ब–खुदा हुसैन[अ0स0] क़त्ल हुए।

अब्दुल मलिक ने अम्र बिन सईद के पास पहुँच कर शहादते हुसैन[अ0स0] की इत्तेला दी। उसने कहा कि जाओ और मदीने में इसका एलान कर दो। अब्दुल मलिक ने मदीने में एलान किया तो एक मर्तबा शहरे मदीना में पिट्टस पड़ गई। खुद अब्दुल मलिक का बयान है कि मैंने उम्र भर में रोने का यह शोर नहीं सुना जो हुसैन बिन अली[अ0स0] के क़त्ल का एलान सुनने के बाद मदीने में बनी हाशिम के घरों से बलन्द हुआ।

अब्दुल मलिक इस एलान के बाद अम्र बिन सईद के पास वापस आया तो वह उसको देख कर मुसकुराया और मिसाल में अम्र बिन माअदीकर्ब का यह शेअ्र पढ़ा।

عجت نساء بنی زیاد عجة

لعجيج نسوتناغداة الارنب

और कहा यह आज का मातम बदला है, उस मातम का, जो बनी उमैया की औरतों में उसमान के क़त्ल पर बरपा हुआ था। फिर उसने मस्जिद में जाकर तक़रीर की और लोगों को इमाम हुसैन[अ0स0] की शहादत से मुत्तेला किया।[1]

---

[1]इरशाद पेज/263

मुहम्मद हनफ़िया को जिस वक़्त इत्तेला मिली वजू कर रहे थे। उनकी आँखों से आँसू टप टप उसी तश्त में गिरने लगे।[1]

अब्दुल्लाह बिन जाफ़र को हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के साथ ही साथ उनके दोनों बेटों की शहादत की इत्तेला भी दी गई। उन्होंने कलम–ए "إنّا لله وَإنّـا إلَيْهِ رَاجِعون" ज़बान पर जारी किया। उनका गुलाम अबूस्सलासिल जो हुसैनी अज़मत से नावाक़िफ़ था और अपने आक़ा ज़ादों के क़त्ल से मुतअस्सिर था! कहने लगा कि यह रोज़े बद हमें हुसैन[अ0स0] की बदौलत देखना पड़ा। अब्दुल्लाह बिन जाफ़र ने जो यह सुना तो ग़ज़बनाक होकर अपनी नअ्ल (चप्पल) से उसे ज़र्ब लगाई और कहा "हराम ज़ादे! तू हुसैन[अ0स0] के बारे में ऐसा कहता है। ब–खुदा अगर मैं उनके साथ होता तो अपनी जान निसार करता। मुझे तो बस इससे एक तरह का सब्र आ गया कि मेरे दोनों बच्चे मेरे भाई के साथ वफ़ादारी का हक़ अदा करके सब्रो इस्तेक़लाल के साथ जाँ बहक़ तस्लीम हुए।

फिर हाज़रीन से मुख़ातब होकर कहा अल्लाह का शुक्र है कि अगर मैं खुद हुसैन[अ0स0] की नुसरत न कर सका तो कम अज़ कम मेरे दोनों फ़रज़न्दों ने हक़्क़े नुसरत अदा किया।[2]

एक तरफ़ अक़ील बिन अबी तालिब की बेटियाँ, मुस्लिम की बहनें, उम्मे लुक़मान और उम्मे हानी, असमा और रमला और ज़ैनब अपने भाई मुस्लिम पर तो तवज्जोह नहीं कर रहीं थीं मगर हुसैन[अ0स0] के ग़म में अजीब पुर तासीर अन्दाज़ से कह रही थीं–––

"क्या कहोगे (ऐ मुसलमानो!) जब रसूल तुमसे पूछेंगे कि मेरे बाद तुमने मेरी औलाद और मेरे अहलेबैत के साथ क्या सुलूक किया? यह कि कुछ उनमें से क़ैद हैं और कुछ मक़तूल ख़ाको खून में आलूदा हैं। मैंने तुम्हारे साथ जो ख़ैरख़्वाही की और जो ख़िदमतें अन्जाम दीं उनका यही सिला था कि मेरे बाद मेरे घराने के साथ ऐसा सुलूक करो।"[3]

मुमकिन नहीं था कि यह तअस्सुरात असर पैदा न करते। इन तअस्सुरात ही का नतीजा था कि मदीने वालों ने आँखें खोलीं और यज़ीद के अफ़आल व आमाल की जाँच का ख़याल पैदा हुआ। चुनाँनचे सन 62 हिजरी में अब्दुल्लाह

---

[1]तबरी जि/6, पेज/223

[2]इरशाद पेज/264

[3]तबरी जि/7, पेज/4, तारीख़े कामिल जि/4, पेज/52

बिन हनज़ला ग़सीलुल मलाएका (उन्हें मलाएका ने ग़ुस्ल दिया था) वग़ैरह शुरफ़ाए मदीना के वफ़्द ने शाम जा कर यज़ीद के हालात का मुतालिआ किया। हालाँकि उन लोगों को बड़ी बड़ी रक़में दी गईं। मगर जब वह वापस आये तो उन्होंने यज़ीद के बेदीनी के हालात को ज़ाहिर किया और कहा कि ''हम ऐसे शख़्स के पास से आ रहे हैं कि जो कोई मज़हब नहीं रखता बल्कि शराब पीता है, तम्बूरा बजाता है, गाने वालियों से गाना सुनता है और कुत्तों से खेलता रहता है। और रिन्दों बदमस्तों के साथ क़िस्सा गोई में औक़ात सर्फ़ करता है। चुनाँनचे हम सब उसकी बैयत का क़लादा (फंदा) अपनी अपनी गर्दन सें उतार डालते हैं।[1]

अल्लामा जलालुद्दीन सियूती तारीख़ुल ख़ुलफ़ा में लिखते हैं कि उस वफ़्द के अरकान ने बयान किया कि ''हमने यज़ीद की मुख़ालिफ़त उस वक़्त इख़्तियार की है कि जब हमें उसका अन्देशा पैदा हो गया कि हम पर अज़ाबे इलाही के तौर पर आसमान से पत्थर बरसेंगे। इसलिए कि वह ऐसा शख़्स है जो अपने बाप की तसर्रूफ़ कर्दा (इस्तेमाल में) कनीज़ों (अपनी सौतेली माओं) और बहनों तक को अपने लिए हलाल समझता है शराब पीता है और नमाज़ को तर्क करता है।''

अगरचे मदीने से जो वफ़द दमिश्क़ गया था उसके अरकान के रूजहानात पर क़ाबू रखने के लिए तमाम वह तदाबीर बरूए कार लाये गए थे जो उसके बहुत पहले से हुकूमते दमिश्क़ के ज़ेरे तजुर्बा रह कर कामयाब साबित होते रहे थे मगर शहादते हुसैन[अ0स0] का यह असर था कि इस मर्तबा वह तमाम ज़राए नाकामयाब साबित हुए बल्कि उस वफ़द के एक रूक्न (Membar) मुन्ज़िर बिन ज़ुबैर ने अपनी तक़रीरों में यह भी ज़ाहिर कर दिया कि यज़ीद ने मुझको एक लाख दिरहम दिये हैं मगर यह चीज़ मुझे उसके सही हालात आप लोगों के सामने बयान करने से बाज़ नहीं रख सकती। चुनाँनचे मैं साफ़ साफ़ बतलाता हूँ कि वह शराब पीता है और उस नशे में ऐसा सरशार होता है कि नमाज़ तर्क हो जाती है। इसके अलावा वह तमाम वाक़ेआत उन्होंने भी बयान किए जो उनके दूसरे साथी बयान कर चुके थे।

चुनाँनचे सन 63 हिजरी के शुरू होते ही अहले मदीना ने मुत्तफ़िक़ होकर यज़ीद के गवर्नर को जो यज़ीद का एक चचाज़ाद भाई उसमान बिन मुहम्मद

---

[1]तबरी जि/7, पेज/4, तारीख़े कामिल जि/4, पेज/52

बिन अबू सुफ़ियान था मदीने से निकाल दिया और बनी उमैया का बावजूदेकि वह वहाँ तक़रीबन एक हज़ार की तादाद में थे मुहासिरा कर लिया।[1]

अब अमल और रद्दे अमल (जवाब) के तहत में यज़ीद की तरफ़ से तशद्दुद और मुसलमानों की तरफ़ से मुज़ाहिराते नफ़रत का एक सिलसिला था जो जारी हो गया। क़त्ले हुसैन[अ0स0] ने जो बेदारी पैदा की, उसके नतीजे में मदीने वालों में बेचैनी पैदा हुई और अब मदीने वालों की सरकूबी (कुचलने) के लिए मुस्लिम बिन अक़बा की सर करदगी में जो फ़ौज भेजी तो ग़ैज़ो ग़ज़ब की शिद्दत में उसे हुक्म दे दिया कि फ़तह पाने के बाद मदीने को तीन दिन के लिए मुबाह (जाएज़) समझ लेना यानी बे मुहाबा (बग़ैर रिआयत) क़त्लो ग़ारत करना और जो माल या हथियार या क़ैदी मिलें वह सब फ़ौज की मिलकियत होंगे।[2]

देनवरी की रिवायत के अलफ़ाज़ यह हैं कि ''अगर अहले मदीना पर फ़तह पाना तो तीन दिन तक बराबर मदीने को लूटते रहना।''[3]

चुनाँनचे रोज़े चहार शम्बा (बुध) 28/ज़िलहिज्जा सन 63 हिजरी को मदीन–ए–मुनव्वरा में क़त्लो ग़ारत करके मुकम्मल तौर पर उस हुक्म की तामील की गई।[4] और तीन दिन रात मुसलसल अहले शाम मदीने को लूटते रहे।[5]

ज़ाहिर है कि मदीने में क़ैदी जो मिल सकते हैं वह यहूदो नसारा वग़ैरह नहीं होंगे। वह सहाब–ए–रसूल और ताबेईन के घरानों के औरतें और बच्चे थे मगर यज़ीद की तरफ़ से उनके लिए यह हुक्मे सरीह मौजूद था कि वह फ़ौज के सिपाहियों पर तक़सीम हो जायेंगे।

उस वक़्त बातिल का हौसला इतना बलन्द था कि बाक़ी मान्दा अहले मदीना से जो यज़ीद की बैयत ली गई वह इस शर्त के साथ कि वह सब यज़ीद के ग़ुलाम होंगे। यज़ीद उनकी जानो माल और अहलो अयाल के बारे में मुकम्मल इख़्तियारात का मालिक होगा।[6] चुनाँनचे जनाबे उम्मे सलमा ज़ौजा–ए–रसूल[स0अ0] के नवासे यज़ीद बिन अब्दुल्लाह बिन रबिया बिन असवद

---

[1]तबरी जि/6, पेज/273–274

[2]तबरी जि/7, पेज/6–7

[3]अख़बारूत तुवाल, पेज/260

[4]तबरी जि/7, पेज/8

[5]अख़बारूत तुवाल, पेज/261

[6]तबरी जि/7, पेज/12–13

ने इन अलफ़ाज़ के साथ बैयत करने से इन्कार किया तो उन्हें फ़ौरन क़त्ल कर दिया गया।[1] यज़ीद ने यह सब वाक़ेआत सुने तो उन पर बजाए तअस्सुफ़ (अफ़सोस) के खुशी का इज़हार किया और यह अशआर पढ़े कि:

لیت اشیاءاخی ببدر شھدوا   جزع الخزرج من وقع الاسل

حین حکّت بقباء برکھا   واستحرالقتل فی عبدالاشل[2]

इसके मानी यह हैं कि मदीने पर यह हमला और अहले मदीना के साथ यह सुलूक भी पैगम्बरे इस्लाम से बदला लेने ही के सिलसिले में था।

इधर मक्के वाले भी करवट बदल चुके थे चुनाँनचे अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर ने कि जो अरसे से ख़िलाफ़त के मुतमन्नी (तमन्ना) थे इमाम हुसैन[अ०स०] की शहादत की ख़बर सुनकर और यज़ीद व बनी उमैया के ख़िलाफ़ नफ़रत व बेज़ारी का क़ौमी जज़बा लोगों में पाकर मौक़े को ग़नीमत समझा और एक पुरज़ोर तक़रीर में कूफ़े और इराक़ के लोगों की बेवफ़ाई और जफ़ा शेआरी, (ज़ुल्म की आदत) की पूरी तरह मज़म्मत की और हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] की सिदाक़त और हक़्क़ानियत का इज़हार व एतेराफ़ करते हुए कहा कि "क़सम है खुदा की हुसैन[अ०स०] ने शराफ़त व करामत के साथ जान देने को ज़िल्लत और हिक़ारत के साथ ज़िन्दा रहने पर तरजीह दी। क़त्ले हुसैन[अ०स०] के बाद हम कभी उस क़ौम की तरफ़ से मुतमइन नहीं हो सकते। ब–खुदा उन लोगों ने ऐसे बुज़र्गवार को शहीद किया है कि जो क़लीलुन नौम (कम सोने वाले) और कसीरूस सौम (ज़्यादा रोज़े रखने वाले) था। रातों को इबादते इलाही में तूलानी क़याम करने वाला, दिनों को बकसरत रोज़ा रखने वाला, शरफ़ व बुज़ुर्गी और दीन में सबसे अफ़ज़ल और अम्रे ख़िलाफ़त के लिए सबसे ज़्यादा मुस्तहक़ और मौज़ूँ था। क़सम है खुदा की कि उसने कभी क़ुरआन को ग़लत मानी नहीं पहलाए, ख़ौफ़े इलाही से वह बेहद रोने वाला था और बजाए मैख़्वारी (शराब) के हमेशा रोज़े रखता था और बजाए शिकारी कुत्ते पालने के ज़िकरे इलाही के जलसे उसके घर में बरपा रहते थे। उसी तक़रीर का असर था कि अहले मक्का को यज़ीद से बेज़ारी पैदा हुई और अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर की बैयत के लिए तैयार हुए। यज़ीद यहाँ के हालात से बहुत फ़िक्र मन्द हुआ और उसने कोशिश की कि मक्क–ए–मुअज़्ज़ेमा की किसी मुमताज़ शख़सियत

[1] अख़बारूत तुवाल, पेज/261
[2] अख़बारूत तुवाल, पेज/236

को अपने साथ वाबस्ता कर सके मगर क़त्ले इमाम हुसैन[अ0स0] का वह बड़ा जुर्म उसके नाम–ए–आमाल में था कि जो अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर की इताअत न करना चाहते थे वह भी यज़ीद से बहरहाल नफ़रत करते थे चुनानचे अब्दुल्लाह बिन अब्बास ऐसे ही शख़्स थे कि उन्होंने इब्ने ज़ुबैर की बैयत करने से इन्कार कर दिया था। यज़ीद को यह मालूम हुआ तो उसने अब्दुल्लाह बिन अब्बास को लिखा कि मुझे इत्तेला मिली है कि उस ला–मज़हब (इब्ने ज़ुबैर) ने आपको हरमे इलाही में अपनी बैयत हासिल करने के लिए बुलाया था मगर आपने हमारी वफ़ादारी का सुबूत देते हुए उसकी बैयत करने से इन्कार कर दिया है बस अपने अबनाए वतन (वतन के लोगों) को और उन लोगों को जो बैरूनजात (बाहर वाले) के आपके पास आमदो रफ़्त रखते हैं, इब्ने ज़ुबैर और मेरी निसबत अपने सही ख़यालात से बराबर आप मुत्तेला फ़रमाते रहें इसलिए कि इब्ने ज़ुबैर आपको अपनी बैयत और इताअत में लेने के बाद आपसे बातिल की तमन्ना और अपने गुनाहों में आपको शरीक करने की आरज़ू रखता था मगर आपने हमारी बैयत व इताअत में दाख़िल रहते हुए वफ़ाए अहद के हक़ को पूरा किया है। लिहाज़ा खुदा इस सिला रहम की आपको जज़ाये ख़ैर दे और बहरतौर मैं भी आपके इस सिला–ए–रहम की आपको जज़ाए ख़ैर दे और बहरतौर मैं अभी आपके इस नेक सुलूक को भूलने वाला नहीं हूँ और जिस सिले व इन्आम के आप मुस्तहक़ हैं वह बहुत जल्द आपके पास पहुँचाऊँगा। मुकर्रर यह(याद रहे कि) कि आप आने जाने वालों को इब्ने ज़ुबैर की बुराईयों और उसकी चर्मज़ुबानी के मुतअल्लिक़ मुतनब्बेह (आगाह) करते रहें क्योंकि आम तौर पर लोग उसके मुतअल्लिक़ आपकी राय को ज़्यादा वक़ीअ् (बलन्द) और मोतबर समझते हैं।'' अब्दुल्लाह इब्ने अब्बास ने उस ख़त का हस्बे ज़ैल जवाब यज़ीद को रवाना किया।

''तुम्हारा ख़त पहुंचा। तुमने जो यह लिखा है कि मैंने अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर की बैयत तुम्हारी वफ़ादारी के ख़याल से नहीं की। यह ग़तल है। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मैं कभी भी तुम्हारा मद्दाह (चाहने वाला) और हवा ख़्वाह (तरफ़दार) नहीं रहा क्या तुम समझते हो कि मैं उस बात को भूल जाऊँगा कि तुमने ही हुसैन[अ0स0] को क़त्ल किया है और क्या बनी मुत्तलिब के उन नौजवानों की ख़ाको ख़ून में भरी लाशों का हौलनाक तसव्वुर मेरे दिमाग़ से महो (मिट) हो जायेगा जिनके कपड़े तक लूट लिए गए थे और बेगोरो कफ़न गर्म रेग पर यूँही छोड़ दी गई थीं। सिर्फ़ हवा के झोंको ने ख़ाक डाल

कर जिनकी पर्दा दारी का हक़ अदा किया और जानवराने सहराई (रेगिस्तानी जानवरों)ने उनकी हिफ़ाज़त के फ़र्ज़ को पूरा किया। यहाँ तक कि अल्लाह ने एक क़ौम के ज़रिये उनके दफ़्न व कफ़न का सर अन्जाम किया।

हाँ हाँ ऐ यज़ीद! मैं नहीं भूल सकता और कभी नहीं यह कि तुमने हुसैन[अ0स0] को हरमे ख़ुदा और हरमे रसूल से निकलने पर मजबूर किया और इब्ने मरजाना को क़त्ले हुसैन[अ0स0] पर मामूर किया। मैं तो ख़ुदा की ज़ात से बहरहाल उम्मीद रखता हूँ कि वह मुन्तक़िमे हक़ीक़ी (सही सज़ा देने वाला ख़ुदा) बहुत जल्द तुम्हारे आमाल के मुताबिक़ सज़ा देगा और अज़ाब में मुबतिला फ़रमाएगा क्योंकि तुमने उसके नबी की इतरत को क़त्ल किया है और उनके क़त्ल पर राज़ी हुए हो और यह जो तुमने लिखा है कि तुम मेरे साथ सिल–ए–रहम बरतोगे और इन्आमो इकराम से पेश आते रहोगे तो तुम अपनी इस मेहरबानी और सिल–ए–रहम को बस अपने ही लिए उठा रखो। हमको इसकी मुतलक़ (क़तई) ज़रूरत नहीं है और यह जो तुमने लिखा है कि मैं लोगों को तुम्हारी तरफ़ माएल (झुकाओ) और अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर से मुन्हरिफ़ (दूर) और बरगश्ता (बेज़ार) करूँ तो उसके मुतअल्लिक़ मैं बस यही कह सकता हूँ कि तुम्हारे लिए कभी ख़ैरो बरकत ना हो इसलिए कि तुम मुझसे अपनी नुसरत और हिमायत की उम्मीद रखते हो दराँहालेकि तुमने मेरे इब्ने अम को क़त्ल और रसूल अल्लाह[स0अ0] के उन अहलेबैत को ज़िबह किया है जो रूश्दो हिदायत के चिराग़ और तारीक रातों में रौशन सितारे थे अफ़सोस कि उनको तुम्हारी फ़ौजों की घंघोर घटा ने पोशीदा कर दिया। क्यों ऐ यज़ीद क्या तुमने अपने नमक ख़्वारों को इसलिए हरमे इलाही में नहीं भेजा था कि हुसैन[अ0स0] को उसी हरमे मुक़द्दस में क़त्ल कर दें और क्या तुम हुसैन को बराबर डराते धमकाते नहीं रहे यहाँ तक कि वह सफ़रे इराक़ इख़्तियार करने पर मजबूर हो गए तुमने ही यह सब कुछ किया और इसलिए किया कि तुम्हारे दिल में मुख़ालिफ़ते ख़ुदा और रसूल और आले रसूल कि जिनकी शान में ख़ुदा ने आयते ततहीर नाज़िल फ़रमाई, जागुज़ीं, (हक़) है। इस आयते ततहीर के मिस्दाक़ आले रसूल[स0अ0] ही थे, न कि तुम्हारे बाप दादा, जो जफ़ाकार, ताग़ी (फ़ासिद) व बाग़ी और दुश्मने ख़ुदा और रसूल[स0अ0] थे। अब इन अफ़आल (बुरे कामों) व आमाल के बावजूद भी क्या तुम मुझसे अपनी हवा ख़्वाही (तरफ़दारी) की उम्मीद रख सकते हो? ऐ यज़ीद! सबसे ज़्यादा अज़ीम जसारत तुम्हारी यह थी कि तुमने रसूल[स0अ0] की नवासियों को सर बरहना किया और

क़ैदी बनाकर इराक़ से शाम तक तशहीर कराया ताकि लोगों के दिलों पर अपने ग़लब–ए–तसल्लुत और क़हहारी का यह सिक्का बिठाओ कि बज़ाहिर किस तरह ज़ुर्रियते (आले) रसूल[स0अ0] को मग़लूब (कमज़ोर) व मक़हूर (क़हर ढाना) करने में तुम कामयाब हुए हो और फिर तुम उस पर नाज़ाँ हो कि इस तरह तुमने आले रसूल से अपने उन फ़ासिक़ व फ़ाजिर और काफ़िर बुज़ुर्गों के ख़ून का बदला लिया है जो जंगे बद्र में क़त्ल हुए थे और जिसका कीना तुम्हारे दिल में दबी हुई चिंगारी की तरह छुपा हुआ था।

अल्लामा सिब्ते इब्ने जैज़ी लिखते हैं कि जब यह ख़त यज़ीद ने पढ़ा तो सख़्त बरअफ़रोख़्ता (आपे से बाहर) हुआ। बल्कि इब्ने अब्बास के क़त्ल का इरादा भी उसने किया मगर यह कि इब्ने ज़ुबैर के ख़िलाफ़ जंग में मशग़ूल होकर क़त्ले इब्ने अब्बास की तदबीर न कर सका।

अल्लामा इब्ने असीर ने भी अपनी तारीख़[1] में इस ख़तो किताबत को कुछ कमी और बेशी के साथ दर्ज किया है।

मदीने में क़त्लो ग़ारत के बाद यज़ीद की हिदायत के मुताबिक़ उसका फ़रस्तादा (फ़रमाँ बरदार) अफ़सर मुस्लिम बिन अक़बा मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा की तरफ़ मुतवज्जेह हुआ मगर मुहर्रम सन 64 हिजरी में अभी वह रास्ते ही में था कि पन्ज–ए–मौत में गिरफ़्तार हो गया।[2] ताहम मरने से पहले ही उसने अपनी जगह यज़ीद के कहने के मुवाफ़िक़ हसीन इब्ने नुमैर सकूनी को सरदारे लशकर बना दिया। और यह हिदायत कर दी कि देखो अहले मक्का के साथ शाम वाले जो भी करना चाहें तुम उसमें कोई मज़ाहमत (रोक टोक) न करना।[3] हसीन ने मक्के पर हमला किया और ख़ान–ए–काबा का मुहासिरा कर लिया। कई महीने तक अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर से मुक़ाबला होता रहा और नौबत यहाँ तक पहुँची कि रोज़े शम्बा (हफ़्ता) 3/रबीउल अव्वल सन 64 हिजरी को मिन्जिनीक़ (तोप ख़ाना) नस्ब करके ख़ान–ए–काबा पर पत्थर ही नहीं बरसाये गए बल्कि आतिशबारी (आग बरसाई) की गई जिससे काबे में आग लग गई।[4]

---

[1]मतबूआ मिस्र जि/4, पेज/62

[2]तबरी जि/7, पेज/14

[3]अख़बारूत तुवाल पेज/263

[4]सही मुस्लिम जि/1, पेज/630, तबरी जि/7, पेज/14

बस यह आख़री कारनामा था जिसके बाद रोज़े सह शम्बा (मंगल) 14/रबीउल अव्वल सन 64 हिजरी को यज़ीद दुनिया से रूख़्सत हो गया।[1]

जिसके बाद हसीन बिन नुमैर ने अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर से कहला भेजा कि जिसने हमको तुमसे जंग के लिए भेजा था वह तो हलाक हो गया। लिहाज़ा अब हमारी तुम्हारी जंग भी ख़त्म हो गई। अब तुम शहर के दरवाज़े हमारे लिए खोल दो कि हम ख़ाना–ए–काबा का तवाफ़ करके वापस जायें। चुनाँनचे ऐसा ही हुआ और यह फ़ौज वापस गई। [2]

अल–फ़ख़री लिखता है कि "यज़ीद के अहदे हुकूमत की मजमूई मुद्दत सही हिसाब के रू से कुल तीन साल और छः महीने होती है। उनमें से पहले साल में उसने हुसैन बिन अली[अ0स0] को शहीद किया। दूसरे साल में मदीन–ए–मुनव्वरा पर चढ़ाई की और उसको तीन रोज़ तक ताराज किया और तीसरे साल में मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा पर फ़ौज कशी की। उन हरसा मज़ालिम में से करबला के हादिसे ने बिल–खुसूस दुनियाए इस्लाम में ऐसी ख़ौफ़नाक सन्सनी फैला दी कि जो शख़्स भी अपने दिल में कुव्वते एहसास रखते हुए इस नाज़ेबा इक़दाम के तफ़सीलात से मुत्तेला होता था मुमकिन ही न था कि उसका दिल मुतअस्सिर न हो इसलिए कि यह इक़दाम सिर्फ़ शरई गुनाह और क़ानूनी जुर्म ही न था बल्कि एक बहुत बड़ी सियासी ग़लती थी जिसके मातहत यज़ीद और उसके नालाएक़ कमीने मुशीराने तदबीर (राय देने वाले) मसलन इब्ने ज़ियाद व शिम्र वग़ैरह ने उन लोगों को भी अपनी मुख़ालिफ़त पर आमादा कर दिया कि जो रसूले खुदा[स0अ0] की अज़मत के क़ाएल होने और दीने इस्लाम से वाबस्तगी रखने के बावजूद उमवी हुकूमत के साथ अक़ीदत और वफ़ादारी तो नहीं, अदमे तअर्रूज़ (कोई एतेराज़ नहीं) और रवादारी के मसलक पर आख़िर तक क़ायम रहना ज़रूर चाहते थे।

सन 64 हिजरी में यज़ीद की हलाकत के बाद इराक़ के घुटे हुए जज़बात इब्ने ज़ियाद के ख़िलाफ़ इस तरह उबले कि उसे "ब–यक बीनी व दू गोश (आनन फ़ानन)" बसरे से फ़रार करना पड़ा।[3] उसे अपनी ज़ात से ख़लक़े खुदा (अवाम) की बेज़ारी का अन्दाज़ा हो गया रास्ते में जब एक शुतुरबान (ऊँट

[1]तबरी जि/7, पेज/15

[2]अख़बारूत तुवाल, पेज/263

[3]अख़बारूत तुवाल पेज/276–277, तबरी जि/7, पेज/21

वाला) को सुना कि वह अपने ऊँट की हुदी ख़्वानी (ऊँट को हंकाते वक़्त गाना) इन अशआर के साथ कर रहा था।

يارب رب الارض والعباد العن زياد اوبنی زياد

كم قتلوا من مسلم عباد حم الصلوة خاشع الفؤاد

يكابدالليل من السّهاد

यानी परवरदिगारा ज़ियाद और औलादे ज़ियाद पर लानत फ़रमा कि उन्होंने कितने नमाज़ गुज़ार, शब बेदार मुत्तक़ी और परहेज़गार मुसलमानों को बेजुर्मो ख़ता क़त्ल किया है।[1]

अहले इराक़ का इशतेआल (गुस्सा) उसके ख़िलाफ़ इतना बढ़ा हुआ था कि जब तआक़ुब (पीछा) करने पर वह खुद न मिल सका तो दारूल अमारा पर हमला करके जो कुछ उसका मालो मता (सामान) था सब लूट लिया।[2]

कूफ़े का जो आलम था वह उन वाक़ेआत से ज़ाहिर है कि जब कूफ़े में यज़ीद की हलाकत के बाद इब्ने ज़ियाद की हुकूमत तस्लीम किए जाने की तहरीक हुई तो यज़ीद बिन हारिस बिन रवीम शैबानी ने उसकी मुख़ालिफ़त करते हुए कहा कि हम तो इब्ने सुमैया से निजात हासिल करने के मुतमन्नी (तमन्ना) हैं। हम हरगिज़ उसकी हुकूमत को नहीं मान सकते।[3]

हालाँकि यह यज़ीद खुद करबला में लशकरे यज़ीद के अन्दर मौजूद था मगर वह भी अब बनी उमैया की हुकूमत से नफ़रत ज़ाहिर कर रहा था। उससे आम फ़िज़ा का अन्दाज़ा किया जा सकता है। इतना ही नहीं बल्कि हमदान की औरतें हुसैन[अ0स0] का मातम करती हुई और उनके मर्द तलवारें लिए हुए यह सब मस्जिद में आकर मुज़ाहरा करने लगे कि हम अब ऐसे अशख़ास का इक़तेदार बरदाश्त नहीं कर सकते जिन्हों ने फ़रज़न्दे रसूल[स0अ0] का करबला में खून बहाया है।[4]

ब—क़ौले जनाब नज्म आफ़न्दीः

शहीदेजुल्म कलेजे हिला दिये तूने
हुसैन दर्द के दरया बहा दिये तूने

---

[1]अख़बारूत तुवाल, पेज/278
[2]तबरी जि/7, पेज/28
[3]तबरी जि/7, पेज/30
[4]सवाएक़े मुहर्रिक़ा पेज/134, तबरी जि/7, पेज/30

हर एक ज़र्र–ए–बेहिस में एक तड़प भर दी
दिमाग़ वज़ा किये दिल बना दिये तूने

इन्तेहा यह थी कि ख़ुद यज़ीद के बेटे और जानशीन मुआविया बिन यज़ीद ने सरे मिम्बर अपने बाप के आमाल व किरदार से नफ़रत व बेज़ारी का इज़हार किया। इस तरह कि जब यज़ीद के बाद उसे ख़लीफ़ा तस्लीम किया गया तो उसने मिम्बर पर जाकर हस्बे ज़ैल तक़रीर की।

"ऐयुहन्नास यह अम्रे ख़िलाफ़त अल्लाह की एक मुस्तहकम (मज़बूत) रस्सी थी, मगर मेरे दादा मुआविया बिन अबी सुफ़ियान ने उसके मुतअल्लिक़ हक़ीक़ी मानी में मुस्तहक़्क़े ख़िलाफ़त शख़्स अली बिन अबी तालिब[अ0स0] से झगड़ा किया और वह मज़मूम (गिरा हुआ, ग़लत) तरीक़ा इख़्तियार किया जिससे सब ही वाक़िफ़ हैं। बहरहाल जब वह अपने गुनाहों में चारों तरफ़ से घिर कर क़ब्र में पहुँच गए तो यह मन्सब मेरे बाप यज़ीद को पहुंचा और वह भी किसी तरह उसके मुस्तहक़ न थे। उन्होंने रसूल के नवासे हुसैन इब्ने अली[अ0स0] को क़त्ल किया। बिल आख़िर उनकी भी उम्र ख़त्म हो गयी। और वह भी अपने गुनाहों में गिरफ़्तार क़ब्र में जा पहुंचे।"

उसके बाद वह रो दिया और कहने लगा कि सबसे बड़ी मुसीबत हमारे लिए इस अम्र (बात) का एहसास है कि उनका अन्जाम बुरा हुआ। क्योंकि उन्होंने औलादे रसूल[स0अ0] को क़त्ल, शराब को मुबाह (जाएज़) और हुरमते ख़ान–ए–काबा को बरबाद किया। पस अब मैं जो इस वक़्त तक ख़िलाफ़त की शीरीनी (मिठास) से ना आशना हूँ तो उसकी तलख़ी का मज़ा क्यों चखूँ। तुम जानो और तुम्हारा काम। मुझे ख़िलाफ़त से कोई सरोकार नहीं। बिल–फ़र्ज़ दुनिया अगर कोई अच्छी नेअ्मत है तो भी हम उसमें से बहुत काफ़ी हिस्सा पा चुके और हक़ीक़तन अगर वह कोई बुरी चीज़ है तो जितना भी इस वक़्त तक हमको उसमें से मिलता रहा वही बहुत ज़्यादा है।" उसके बाद वह महल में चला गया और चालीस दिन गुज़ारने के बाद इस दारे फ़ानी (ख़त्म होने वाली दुनिया) से रेहलत (मर) कर गया।[1]

बाज़ मुअर्रिख़ीन का ख़याल है कि उसे ज़हर दे दिया गया।[2] मुआविया बिन यज़ीद के बाद ख़ुरासान में भी हरकत पैदा हो गई। उन्होंने अपने यहाँ के गवर्नरों को निकाल दिया, और जंगो जिदाल शुरू कर दी।[1]

---

[1]तबरी जि/7, पेज/30, सवाएक़े मुहर्रिक़ा पेज/134

[2]तबरी जि/7, पेज/34

अब ख़िलाफ़त औलादे अबू सुफ़ियान से हमेशा के लिए निकल गई। शाम में बूढ़े मरवान बिन हकम की बैयत की गई और ख़िलाफ़त फिर अरसे तक उसी की औलाद में बरक़रार रही।

[1]तबरी जि/7, पेज/44

अड़तीसवाँ बाब

जमाअते तव्वाबीन

मुअर्रिख़े तबरी का बयान है कि जब हुसैन बिन अली[अ0स0] क़त्ल कर दिए गए और इब्ने ज़ियाद अपने लश्कर गाह से जो नख़ीला में क़रार दिया गया था वापस होकर फिर कूफ़े में दाख़िल हुआ तो शिअयाने अली[अ0स0] ने एक दूसरे को नफ़रीन व मलामत और अपनी कमज़ोरी पर इज़हारे निदामत और शर्मसारी करना शुरू किया और अच्छी तरह महसूस करने लगे कि हमसे एक बड़े जुर्म का इरतिकाब हुआ कि पहले तो इमाम हुसैन[अ0स0] से नुसरत के वादे पर कूफ़े तशरीफ़ लाने की ख़्वाहिश की। मगर जब आप हमारी दावत मन्जूर फ़रमा कर इराक़ तशरीफ़ ले आये तो आपकी मदद को न गए। यहाँ तक कि आप हमारे बिल्कुल क़रीब ही क़त्ल कर डाले गए। लिहाज़ा उन्होंने तय कर लिया कि यह आरो नंग (शर्म) हमसे दूर नहीं हो सकता जब तक कि हम उन लोगों को जिन्हों ने हुसैन व अन्सारे हुसैन[अ0स0] के क़त्ल में शिरकत की थी क़त्ल न कर लें या इस कोशिश के ज़ैल में खुद भी अपनी अपनी जानें दे न दें। चुनाँनचे उन्होंने इस सिलसिले में दोस्ताने अहले बैत[अ0स0] में से पाँच अहम शख़सियतों से राब्ता क़ायम किया। सुलैमान बिन सुर्द ख़ुज़ाई जो असहाबे रसूल[स0अ0] में से थे। मुसैयब बिन नजबा फ़ज़ारी जो असहाबे हज़रत अली[अ0स0] में से मुमताज़ हैसियत रखते थे। अब्दुल्लाह बिन सअ्द बिन नुफ़ैल अज़दी, अब्दुल्लाह बिन वाल तैमी और रिफ़ाआ बिन शद्दाद बिजली। चुनाँनचे यह पाँचों आदमी और दूसरे बहुत से मुमताज़ अफ़राद सुलैमान बिन सुर्द ख़ुज़ाई के मकान पर जमा हुए और मुसैयब बिन नजबा ने तक़रीर की।[1] जिसमें कहा कि हम अपनी सच्चाई पर नाज़ और अपनी जमाअत पर फ़ख़्र किया करते थे लेकिन जब खुदा ने हमारा इम्तेहान लिया, मालूम हुआ कि हमारे दावे सरासर ग़लत थे। हमने इमाम हुसैन[अ0स0] को दावत दी और उनके पास पैग़ाम भेजे कि

---

[1]तबरी जि/7, पेज/47

आईये हम आपकी नुसरत पर आमादा हैं लेकिन जब आप तशरीफ़ ले आये तो हमने अपनी जान चुराई और हमने अपनी जानों और अपने अमवाल बल्कि अपनी ज़बानों से भी अपने फ़रीज़े और नुसरत व हिमायत को पुरा न किया और न अपने क़बीले ही को उसके लिए आमादा किया। अब हम ख़ुदा व रसूल[स0अ0] को क्या जवाब देंगे जबकि हमारा कोई उज़्र क़ाबिले क़ुबूल क़रार पा ही नहीं सकता। अलबत्ता यह एक सूरत हो सकती है कि क़त्ले हुसैन[अ0स0] में किसी हैसियत से भी जिन जिन ने हिस्सा लिया है उन सब अशख़ास को क़त्ल करें या इस सिलसिले में ख़ुद अपनी जानों से गुज़र जायें अब आप लोगों को लाज़िम है कि कोई अपना सरदार मुन्तख़ब करें जिसके ज़ेरे क़यादत इस मुहिम की तकमील हो।

उनकी तक़रीर ख़त्म होते ही रिफ़ाआ बिन शद्दाद खड़े हुए और उन्होंने मुनासिब अलफ़ाज़ में उनकी ताईद की और कहा कि अगर आप पसन्द करें तो आप ही को इस मुहिम की क़यादत सिपुर्द की जाये और आपकी राय न हो और दूसरे हज़रात भी मुत्तफ़िक़ हों तो हम इस ज़िम्मेदारी को अपनी जमाअत की सबसे मुअम्मर फ़र्द सुलैमान बिन सुर्द के सिपुर्द करें। जो पैग़म्बरे ख़ुदा[स0अ0] के सहाबी हैं और जिनके कारनामे नुसरते दीन में सब ही को मालूम हैं और जिनकी इसाबते राय (नेक मशवरा) और बसीरत (सूझ–बूझ) भी क़ाबिले एतेमाद है। अब्दुल्लाह बिन दाल और अब्दुल्लाह बिन सअ्द ने भी अपनी तक़रीरों में मज़ीद ताईद के साथ मुसैयब बिन नजबा और सुलैमान बिन सुर्द दोनों की अहलियत का इक़रार किया। और में मुसय्यब बिन नजबा की एख़्तितामी तक़रीर के बाद बिल इत्तेफ़ाक़ सुलैमान बिन सुर्द का इस जमाअत की क़यादत के लिए इन्तेख़ाब हो गया।

अब सुलैमान खड़े हुए और उन्होंने इन्तेहाई पुरज़ोर व असर एक तक़रीर की जिसे वह उसके बाद से हर जुमे में दोहराया करते थे।[1] उसका मुख़्तसर इक़्तेबास दर्ज ज़ैल है:

"हम लोग गर्दनें उठा उठा कर इशतियाक़ के साथ अहले बैते रसूल[स0अ0] की तशरीफ़ आवरी की राह देखा करते थे लेकिन जब वह आये तो हमने तग़ाफ़ुल (ग़फ़लत) और तसाहुली (काहिली) से काम लिया। यहाँ तक कि हमारे मुल्क में और हमारे क़रीब फ़रज़न्दे रसूल[अ0स0] क़त्ल कर दिए गए जबकि आप आवाज़े इस्तेग़ासा (मदद के लिए) बलन्द कर रहे थे लेकिन कोई लब्बैक कहने

---

[1] तबरी जि/7, पेज/48

वाला न था। गिरोहे फ़ासिक़ीन ने उनको अपने तीरों का निशाना और नैज़ों का सर मश्क़ बनाये रखा यहाँ तक कि आप शहीद हो गए। और इतना ही नहीं बल्कि आदा (जुल्म करने वाले) ने बादे शहादत आपका लिबास तक लूट लिया। फिर अब उठना है तो उठ खड़े हो। अल्लाह का ग़ज़ब हरकत में आ चुका है। बस अब तय कर लो कि अपने बीवी बच्चों के पास उस वक़्त तक वापस नहीं जाओगे जब तक अल्लाह की खुशनूदी का सामान न कर लोगे। और बखुदा मेरे ख़याल में तो वह उस वक़्त तक तुमसे खुशनूद नहीं हो सकता जब तक कि उनके क़ातिलों को कैफ़रे किरदार (अंजाम) तक न पहुंचा दो। या खुद उसी राह में जान न दे दो। हाँ ख़बरदार मौत से डरना नहीं क्योंकि जो कोई मौत से डरता है वह ज़लील होता है। देखो तो कि बनी इस्राईल की एक जमाअत ने जब गोसाला (गाय) परस्ती के जुर्म का इरतिकाब किया तो उनकी तौबा किस तरह कुबूल हुई? उनसे कहा गया कि तुम अपने नुफ़ूस के क़त्ल करने पर तैयार हो जाओ। उस पर उस जमाअत ने क्या किया? वह गर्दनें बढ़ा कर फ़ैसल–ए–कुदरत के इजरा के लिए तैयार बैठ गए इसलिए कि उन्हें अपने जुर्म का सही एहसास था और यह मालूम हो गया था कि बग़ैर उसके तौबा कुबूल नहीं हो सकती। अब तुम भी अगर अपने को मुजरिम समझ रहे हो तो ऐसी ही कुर्बानी के लिए तैयार हो जाओ। तलवारें तेज़ कर लो। नैज़ों की अनियाँ दुरुस्त कर लो। और पूरे साज़ो सामान से तैयार हो कर मुन्तज़िर होकर बैठ जाओ कि जब तुम्हें दावत दी जाये तो फ़ौरन निकल खड़े हो। देर न होने पाये।''

यह पुरजोश तक़रीर थी जिसे सुनकर मजमे के जज़बात में तूफ़ान बरपा हो गया।

मुतअद्दिद मुक़र्ररीन ने खड़े हो हो कर अपने तअस्सुरात और अज़्मे जिहाद का इज़हार किया। अब्दुल्लाह बिन दाल तैमी ख़ज़ान्ची मुक़र्रर हुए और तय पाया कि उनके पास रूपया जमा किया जाये और अज़्म व वलवले से भरा हुआ यह मजमा मुन्तशिर हुआ।

अब सुलैमान ने मदाएन में सअ्द बिन हुज़ैफ़ा बिन यमान और दूसरे मक़ामात पर कुछ दूसरे अशख़ास को खुतूत भी लिखे।[1]उन खुतूत के मज़मून का अहम हिस्सा हस्बे ज़ैल था।

---

[1]तबरी जि/7, पेज/49

''शीईयाने अहलेबैत ने अपने इस मुवक़्क़िफ़ पर ग़ौर किया है जो उनसे रूनुमा हुआ। फ़रज़न्दे रसूल के बारे में जिन्हें दावत दी गई। तो वह आगए और उन्होंने जब दावते नुसरत दी तो उस पर लब्बैक न कही गई। और उन्होंने वापस जाना चाहा तो उन्हें रोका गया और उन्होंने अमान चाही तो इन्कार किया गया और उन्होंने चाहा कि उन्हें उनके हाल पर छोड़ दें मगर दुश्मनों ने उन्हें न छोड़ा और उन पर चढ़ाई करके उन्हें शहीद कर डाला फिर उनका लिबास लूट लिया और लाशे मुतह्हर (पाक) को उरियाँ छोड़ दिया। अब हमारी जमाअत ने उस पेश आमद (हालात) पर ग़ौर किया है और उन्हें शिद्दत के साथ यह एहसास पैदा हुआ कि उनसे इस मासूम की मदद न करने में बहुत बड़ी ख़ता सरज़द हुई है जिसका कफ़्फ़ारा यही है कि उनके क़ातिलों को क़त्ल करें या खुद अपनी जान दे दें। अब यह सब बिल्कुल तैयार हो गए हैं। लिहाज़ा आप लोग भी तैयार हो जायें। हमने इस मोहिम के आग़ाज़ के लिए एक तारीख़ और जगह मुक़र्रर कर दी है जिसमें सबको मुजतमा (जमा) हो जाना चाहिए। तारीख़ यकुम रबीउस सानी सन 65 हिजरी होगी और जगह मक़ामे नख़ीला।''

यह ख़त सअ्द को पहुँचा और उन्होंने मदाएन के शियों को पढ़ कर सुनाया और उसके साथ खुद तक़रीर की।[1] जिसमें कहा कि ''वाक़ेया यह है कि आप लोग मुत्तफ़िक़ा तौर (एक हो कर) पर हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] की नुसरत का अज़्म रखते थे और जूंही उनके तशरीफ़ लाने की इत्तेला मिले फ़ौरन ही उनके पास जाने का इरादा रखते थे मगर आपको अचानक उनकी शहादत की ख़बर मिली जिससे मजबूर होगए। बहरहाल अल्लाह के यहाँ आपकी नीयतों का अज्र मिलेगा। अब सूरते हाल यह है कि आपके बरादराने दीनी अहले बातिल से मुक़ाबले के लिए आपकी मदद के ख़्वास्तगार (दरख़्वास्त) हैं। अब ग़ौर करना है कि इस बारे में क्या करना चाहिए।''

सबने कहा कि हम ज़रूर उनकी मदद करेंगे और मुत्तफ़िक़ा तौर पर दुश्मनाने अहलेबैत से जिहाद करेंगे। चुनाँनचे सअ्द बिन हुज़ैफ़ा ने सुलैमान बिन सुर्द के ख़त का जवाब इक़रारे नुसरत पर मुशतमिल रवाना कर दिया। इसी तरह के जवाब दूसरों के भी आये। यह सब कारवाईयाँ बिल्कुल ख़ामोशी से हो रही थीं। यहाँ तक कि राज़दारी के साथ काफ़ी अफ़राद इस तहरीक से मुत्तफ़िक़ हो गए। ताहम सन 61 हिजरी से लेकर रबीउल अव्वल सन 64

---

[1]तबरी जि/7, पेज/50

हिजरी यानी हलाकते यज़ीद तक हालात ऐसे पैदा नहीं हो सके कि इस सिलसिले में कोई अमली इक़दाम किया जा सकता।[1] मगर यज़ीद की मौत के बाद इस तहरीक में ज़्यादा कुव्वत पैदा हुई और अब तक़रीबन एलानिया उसकी इशाअत की जाने लगी। यहाँ तक कि यह तहरीक मिस्र तक भी पहुँच गई और उबैदुल्लाह बिन अब्दुल्लाह मतरी की मुसलसल तक़रीरों ने जिनमें शहादते इमाम हुसैन[अ0स0] का तज़किरा निहायत मुअस्सिर (पुर असर) अलफ़ाज़ में किया जाता था। वहाँ भी जोशो ख़रोश पैदा कर दिया।[2]

यकुम रबीउस सानी सन 65 हिजरी मुक़र्ररा तारीख़ पर यह लोग नख़ीला में जमा हुए तो यह देख कर किसी हद तक मायूसी हुई कि जिन लोगों ने इक़रारे नुसरत किया था और जिनके नाम फ़ेहरिस्त में दर्ज हो चुके थे वह सोलह हज़ार थे मगर तारीख़े मुऐयन (तै हुई) पर जो तादाद जमा हुई वह सिर्फ़ चार हज़ार की थी।[3] ताहम यह लोग अज़्मो इरादे के पुख़्ता थे। इसलिए क़िल्लते तादाद की परवा न करते हुए उन्होंने अमली इक़दाम का तहैया कर लिया।

बाज़ लोगों की राय थी कि क़ातिलाने हुसैन[अ0स0] कूफ़े ही में मौजूद हैं उनसे यहीं समझ लेना चाहिए मगर सुलैमान की राय यह हुई कि सबसे बड़ा क़ातिल हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] का जो इस वक़्त मौजूद है। इब्ने ज़ियाद है जिसने तमाम शराएते मुसालिहत (सुलह) को मुस्तरद (रद) किया और यह कहा कि जब तक हुसैन[अ0स0] ग़ैर मशरूत (बग़ैर शर्त) तौर पर इताअत न कर लें उनको अमान नहीं मिल सकती। लिहाज़ा उसी के मुक़ाबले के लिए चलना चाहिए। जब उसके मुक़ाबले में कामयाबी हो जाये तो फिर उन छोटे आदमियों को सज़ा देना कौन मुशकिल है। चुनाँनचे सबने उस राय पर इत्तेफ़ाक़ कर लिया।[4]

शबे जुमा 5/रबीउस सानी सन 65 हिजरी को अंधेरे मुंह यह लोग शाम की तरफ़ रवाना हो गए।[5]

---

[1]तबरी जि/7, पेज/51
[2]तबरी जि/7, पेज/52
[3]तबरी जि/7, पेज/67
[4]तबरी जि/7, पेज/68
[5]तबरी जि/7, पेज/69

सबसे पहले उन लोगों ने जाकर क़ब्रे हुसैन[अ0स0] की ज़ियारत की। उस वक़्त उनके गिरया व शेवन (बैन) का अजीब आलम था और हर एक इस आरज़ू से बेताब था कि काश वह नुसरते इमाम में रोज़े आशूर काम आया होता और इस शहादत के दर्जे को हासिल करता। एक शबो रोज़ उन्होंने इसी आलम में नौहा व मातम के साथ साथ नमाज़ व मुनाजात और तौबा व अस्तग़फ़ार में बसर किया। उसके बाद जज़बात के इन्तेहाई तलातुम में वह पूरा मजमा क़ब्रे इमाम हुसैन[अ0स0] से रूख़्सत हुआ जिसके साथ सुलैमान बिन सुर्द और दूसरे सरदारों की इन्तेहाई मुअस्सिर (दिलों पर असर करने वाली) तक़रीरों ने वलवले व जोश के दरया को शिद्दत के साथ तूलानी कर दिया।[1]

उन मुजाहदीन ने मन्ज़िल ब–मन्ज़िल तय करके ऐनुल वरदा में जाकर अपने सुफ़ूफ़ मुरत्तब (सफ़ों को ठीक) किए। पाँच दिन के बाद शाम की फ़ौजें इब्ने ज़िल कलाअ् और हसीन बिन नुमैर की सरकर्दगी में उनके मुक़ाबिल पहुँच गईं। अब सुलैमान बिन सुर्द ने आख़िरी इन्तेज़ामात किए और ऐलान किया कि अगर मैं काम आ जाऊँ तो सरदारे लशकर मुसैय्यब बिन नजबा होंगे और वह शहीद हो जायेंतो सरदार अब्दुल्लाह बिन सअ्द बिन नफ़ील होंगे और उनके बाद अब्दुल्लाह बिन वाल और फिर रिफ़ाआ बिन शद्दाद।[2]

रोज़े चहार शम्बा (बुध) 8/जमादिल ऊला को पहला मुक़ाबला हुआ। बावजूदेकि दुश्मन की फ़ौज बारह हज़ार थी।[3]और यह कुल चार हज़ार। फिर भी यह ग़ालिब आये। मगर दूसरे दिन आठ हज़ार फ़ौज की कुमक उनके मुक़ाबले में आगई जिसे उबैदुल्लाह बिन ज़्याद ने रवाना किया था। आज बड़ी शिद्दत का मुक़ाबला रहा और रात आने तक जंग जारी रही अब ज़ख़मियों की तादाद मुजाहदीन में बहुत ज़्यादा थी।

तीसरे दिन दुश्मनों की कसरत और उनकी क़िल्लत से हालत दिगरगूँ (ख़राब) हो गई फिर भी जान तोड़ मुक़ाबला करते रहे मगर आख़िर में बुज़दिल दुश्मनों ने तीर बाराँ (बरसाये) का सिलसिल जारी कर दिया। चुनाँनचे एक तीर आकर सुलैमान बिन सुर्द खुज़ाई के लगा जिससे वह दरज–ए–शहादत पर फ़ाएज़ हुए। उनके बाद अलमे लशकर मुसैयब बिन

---

[1]तबरी जि/7, पेज/70
[2]तबरी जि/7, पेज/74
[3]तबरी जि/7, पेज/75

नजबा ने लिया और बड़ी बहादुरी से कई हमले किए मगर आख़िर वह भी शहीद हुए।[1]

उनके बाद अब्दुल्लाह बिन सअ्द बिन नफ़ील ने अलम संभाला और क़बील–ए–अज़्द की जमाअत को साथ लेकर मुक़ाबला शुरू किया। उस दौरान में मदाएन के तीन सवार आये जिन्हों ने इत्तेला दी कि मदाएन और बसरा से कुमक रवाना हो चुकी है मगर यहाँ हालत इतनी नाज़ुक हो चुकी थी कि उन मुजाहदीन की ज़िन्दगी में उस फ़ौज के पहुंचने की उम्मीद न थी आख़िर वह नौ वारिद (नये आने वाले) तीनों मुजाहदीन भी लड़ कर जाँ बहक़ तस्लीम हुए।[2] और उसके बाद अब्दुल्लाह बिन सअ्द और फिर अब्दुल्लाह बिन वाल भी शहीद हो गए।[3]

अब शाम हो गई थी इसलिए जंग मौक़ूफ़ (बंद) हो गई। नाम ज़द सरदारों में अब सिर्फ़ रिफ़ाआ बिन शद्दाद बाक़ी थे मगर अब हालत यह थी कि उनकी तादाद चार हज़ार से घट कर सिर्फ़ चन्द सौ बाक़ी रह गई थी और उनमें से भी अक्सर ज़ख़्मी और नाक़ाबिले जंग थे लिहाज़ा उन्होंने मुक़ाबला जारी रखने में कामयाबी की सूरत न देखते हुए रात के वक़्त अपनी क़लील फ़ौज के साथ मुराजेअत (वापस) इख़्तियार की।[4] और इस तरह क़ातिलाने हसैन[अ०स०] से बदला लेने की यह पहली कोशिश मन्ज़िले आख़िर तक पहुंची।

---

[1]तबरी जि/7, पेज/76
[2]तबरी जि/7, पेज/77
[3]तबरी जि/7, पेज/78
[4]तबरी जि/7, पेज/80

उनतालीसवाँ बाब

ख़ूने नाहक़ का इन्तेक़ाम

सुलैमान बिन सुरदे ख़ुज़ाई की सरकर्दगी में जमाअते तव्वाबीन ने भी क़ातिलाने हुसैन[अ0स0] ही से इन्तेक़ाम लेना चाहा था। मगर चूंकि उन्होंने अपने नुक़त–ए–नज़र के मुताबिक़ बराहे रास्त हुकूमते यज़ीद के ख़िलाफ़ महाज़े जंग क़ायम किया था और उसको अपनी क़लील तादाद की बिना पर कोई ख़ास माद्दी नुक़सान न पहुंचा सके लिहाज़ा इन्फ़ेरादी हैसियत में क़ातिलाने हुसैन[अ0स0] से वह कोई इन्तेक़ाम न ले सके। फिर भी कुदरत इस क़त्ले नाहक़ के इरतिकाब करने वालों को ज़्यादा अरसे तक मोहलत देने के लिए तैयार न थी, चुनाँनचे मशीयते ईज़दी (अल्लाह) ने इस काम के लिए मुख़तार बिन अबी उबैदा सक़फ़ी को मुन्तख़ब किया।

ख़ानदानी एतेबार से वह रूऊसाये अरब में से थे। उनके वालिद अबू उबैदा इस्लामी फ़ुतूहात के सिलसिले में तसख़ीरे ईरान (ईरान पर क़ब्ज़े के लिए) से मुतअल्लिक़ अक्सर नबर्द आज़माईयों (जंग) में शरीक हो चुके थे। चुनाँनचे ''जसर अबी उबैद'' की जंग उन्ही के नाम से मन्सूब है और खुद मुख़तार अहलेबैते रसूल[स0अ0]के हमदर्द की हैसियत से ख़ास तौर पर मशहूर हुए। अगरचे जो खुतूत हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] को कूफ़े से भेजे गए थे उनमें उनके नाम की सराहत नज़र नहीं आती, ताहम जब मुस्लिम बिन अक़ील कूफ़े पहुंचे थे तो आपने मुख़तार ही के घर पर क़याम किया था।[1]

उसके बाद जब इब्ने ज़ियाद का कूफ़े पर तसल्लुत हुआ और फ़िज़ा मुकद्दर (खुराब) हुई तो उस मौक़े पर मुख़तार कूफ़े में मौजूद नहीं थे बल्कि अपनी ज़मींदारी में किसी मौज़अ् (घर) पर गए हुए थे। लिहाज़ा मुस्लिम उनके घर से मुन्तक़िल होकर हानी के मकान पर क़याम पज़ीर हुए फिर हानी के गिरफ़्तार होने पर मुस्लिम को जिहाद के लिए निकलना पड़ा और बिल आख़िर

---

[1]तबरी जि/7, पेज/58, इरशाद पेज/211

मुस्लिम व हानी दोनों शहीद हुए। उसके बाद अम्र बिन हरीस ने रायते अमान (हथियार डाल देने पर अमान) उस एलान के साथ बलन्द किया कि जो इस झण्डे के नीचे आ जाएगा उसका जानो माल महफ़ूज़ रहेगा। उस वक़्त मुख़तार कूफ़े वापस पहुँचे।[1] और अम्र बिन हरीस के रायते अमान के नीचे आ गए लेकिन उनकी तरफ़ से हुकूमते कूफ़ा इस दर्जा बदज़न थी कि उन्हें उस झण्डे के नीचे पहुँच जाने पर भी अमान न मिल सकी। इब्ने ज़ियाद ने अपने दरबार में बुलाकर अपनी छड़ी से उनके चेहरे पर ऐसी ज़रबें लगाईं कि उनकी आँख को सदमा (तकलीफ़) पहुँच गया। और फिर उन्हें क़ैद ख़ाने भिजवा दिया। चुनानचे जब हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] की शहादत वाक़ेअ् हुई तो वह कूफ़े में मुक़ैयद (क़ैद) थे और ग़ालिबन क़त्ल भी कर दिए जाते मगर उनकी बहन अब्दुल्लाह बिन उमर की ज़ौजा थीं। और अगरचे अब्दुल्लाह बिन उमर भी शुरू में यज़ीद की बैयत से इन्कार करते थे। मगर शहादते हुसैन[अ0स0] पर मुत्तेला होने के बाद उनका हौसला पस्त हो चुका था और वह हुकूमते यज़ीद की तरफ़ झुकने लगे थे।

उधर यज़ीद आम तौर पर आलमे इस्लामी की बेरहमी (ग़ुस्से) और बेज़ारी से मुतअस्सिर होकर हर ऐसे शख़्स की इन्तेहाई दिल जूई (जीतने) और मुराआत (आसानियाँ) करना चाहता था कि जो कम अज़ कम उसकी हुकूमत के ख़िलाफ़ आवाज़ बलन्द करने से बाज़ रखा जा सकता हो। लिहाज़ा इस मौक़े पर अब्दुल्लाह बिन उमर की किसी बात को रद करके उनको अपने से बरगश्ता ख़ातिर (दूर) करना किसी तरह मुनासिब न समझता था। चुनाँनचे अब्दुल्लाह बिन उमर ने मुख़तार की बहन के इन्तेहाई इसरार से मजबूर होकर यज़ीद को मुख़तार की रिहाई के लिए ख़त लिखा और यज़ीद ने फ़ौरन उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद को ताकीदी हुक्म भेजा कि मुख़तार को रिहा कर दिया जाए।

इस तरह इब्ने ज़ियाद उनको रिहा करने पर मजबूर हो गया। मगर शर्त कर दी कि तीन दिन के अन्दर कूफ़ा छोड़ देना वरना तुम्हारा ख़ून मुबाह (जाएज़) होगा चुनाँनचे तीन दिन के अन्दर मुख़तार कूफ़े से हिजाज़ की तरफ़ रवाना हो गए।[2]

---

[1]तबरी जि/7, पेज/59
[2]तबरी जि/7, पेज/59

एक साल से ज़्यादा वह हिजाज़ में मुख़तलिफ़ मक़ामात पर गर्दिश करते रहे और उस दौरान में वह बराबर कहते रहते थे कि मुझे हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के खून का इन्तेक़ाम लेना है। जो मैं लेकर रहूँगा।[1] जब दमिश्क़ की फ़ौजों ने हसीन बिन नुमैर की सरकर्दगी में अब्दुल्लाह बिन जुबैर के मुक़ाबले में फ़ौज कशी की और मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा का मुहासिरा किया तो मुख़तार उस वक़्त मक्के में थे और 3/रबीउल अव्वल सन 64 हिजरी को जिस दिन ख़ान–ए–काबा में आग लगाई गई और शाम की फ़ौजें शहरे मक्का में दाख़िल हुईं तो मुख़तार ने अहले शाम के मुक़ाबले में तक़रीबन तने तन्हा जुरअत व हिम्मत के साथ शदीद जंग की।[2]

यहाँ तक कि अहले शाम को शिकस्त हुई। उसी दौरान में हलाकते यज़ीद की ख़बर आई और शाम की फ़ौजें वापस गईं। मुख़तार उसके बाद भी पाँच महीने से कुछ ज़्यादा अब्दुल्लाह बिन जुबैर के पास मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा में मुक़ीम रहे।

इतने अरसे में कूफ़े की हुकूमत में इन्क़लाब हो चुका था। अहले कूफ़ा इब्ने ज़ियाद के नाएब हुकूमत अम्र बिन हरीस को निकाल चुके थे। और आरज़ी (वक़्ती) तौर पर आमिर बिन मसऊद को हाकिम बना दिया था जिसने अब्दुल्लाह बिन जुबैर की इताअत कर ली और अहले कूफ़ा से इब्ने जुबैर की बैयत तस्लीम कराई। मगर अभी तक कूफ़े में नज़्मो नस्क़ (क़ानून) पूरे तौर पर क़ायम नहीं होने पाया था। मुख़तार को यह वक़्त क़ातिलाने इमाम हुसैन[अ0स0] से इन्तेक़ाम के मुतअल्लिक़ अपने मन्सूबे की तकमील के लिए बहुत मुनासिब मालूम हुआ, वह कूफ़े की तरफ़ रवाना हो गए।[3] और वहाँ पहुंच कर मुमताज़ अफ़रादे शिया से अपनी मुहिम के बारे में तबादिल–ए–ख़याल शुरू कर दिया। और बहुत से अशख़ास उनके साथ मुत्तफ़िक़ुर्राय (राज़ी) हो गए।[4]

मगर जब सुलैमान बिन सुर्द खुज़ाई जमाअते तव्वाबीन के साथ शामियों के मुक़ाबले को निकले, उस वक़्त कूफ़े में मुख़तार को भी क़ैद करके दाख़िले ज़िन्दाँ कर दिया गया।[5]

---

[1]तबरी जि/7, पेज/62
[2]तबरी जि/7, पेज/63
[3]तबरी जि/7, पेज/63
[4]तबरी जि/7, पेज/64
[5]तबरी जि/7, पेज/65

सुलैमान की शहादत के बाद जब उनकी जमाअत के बाक़ी मान्दा अफ़राद रिफ़ाआ बिन शद्दाद के साथ कूफ़े वापस हुए तो मुख़तार क़ैद ख़ाने में थे।[1]

आख़िर को अब्दुल्लाह बिन उमर ने फिर अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर और इब्राहीम बिन मोहम्मद बिन तलहा को जो उस वक़्त अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर की तरफ़ से कूफ़े का हाकिम था मुख़तार की रिहाई के लिए ख़त लिखा जिसके बाद वफ़ादारी की क़समें लेने के बाद मुख़तार को रिहा कर दिया गया।

उसके बाद अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर ने उन दोनों को माज़ूल (हटा दिया) कर दिया और अब्दुल्लाह बिन मुतीअ् को कूफ़े का गवर्नर मुक़र्रर किया।[2] जो रोज़े पन्जशम्बा (जुमेरात) 25/माहे रमज़ान सन 65 हिजरी को कूफ़े में वारिद हुए।[3]

अब मुख़तार के साथ बहुत से मुमताज़ साहिबाने अज़्मो हिम्मत मुत्तफ़िक़ुर्राए (एक राय) हो चुके थे मगर मालिके अशतर के फ़रज़न्द इब्राहीम की एक अहम शख़सियत थी जिनका मुत्तहिद बनाना इस मुहिम के लिए ज़रूरी महसूस होता था। चुनाँनचे इब्राहीम को मक़सद से पूरे तौर पर आगाह करके उन्हें भी मुत्तफ़िक़ बना लिया गया जिससे मुख़तार की तहरीक को बड़ी क़ूव्वत हासिल हुई।[4]

अब बराबर मुख़तार इब्राहीम के यहाँ आमदो रफ़्त (आना जाना) रखने लगे रोज़ाना शाम के वक़्त इब्राहीम उनके यहाँ जाते थे और रात गए तक तबादिल–ए–ख़याल करते रहते थे। बिल आख़िर इस अम्र (बात) पर इत्तेफ़ाक़ हुआ कि शबे पन्जशम्बा (जुमेरात) 14/रबीउल अव्वल सन 66 हिजरी को अमली इक़दामात का आग़ाज़ कर दिया जाए।[5]

उन लोगों ने बाहम यह राय क़ायम की कि हमको क़ातिलाने हुसैन[अ0स0] से इन्तेक़ाम लेने के लिए दमिश्क़ जाने की ज़रूरत नहीं बल्कि हक़ीक़तन क़ातिलाने हुसैन[अ0स0] चूँकि यहीं कूफ़े में मौजूद हैं लिहाज़ा उनसे हमको बदला लेना चाहिए लेकिन इस सूरत में इब्ने ज़ुबैर की हुकूमत से उनका तसादुम

---

[1]तबरी जि/7, पेज/80
[2]तबरी जि/7, पेज/94
[3]तबरी जि/7, पेज/95
[4]अख़बारूत तुवाल पेज/282–283, तबरी जि/7, पेज/98–99
[5]तबरी जि/7, पेज/100

लाज़मी था। इसलिए कि क़ातिलाने इमाम हुसैन[अ०स०] का बराहे रास्त तअल्लुक़ अगरचे हुकूमते शाम से था। मगर वह उस वक़्त कूफ़े के बाशिन्दे थे। उनसे इन्तेक़ाम लेने के मानी थे क़ानून को अपने हाथ में लेना और ज़ाहिर है कि हुकूमते वक़्त को इस सूरत में अपने निज़ाम के तहफ़्फ़ुज़ की ख़ातिर उन अफ़राद की हिफ़ाज़त करना थी जो उस शहर के बाशिन्दे थे लिहाज़ा मुख़तार और उनकी जमाअत के लिए क़ातिलाने हुसैन[अ०स०] से अपने हस्बे दिलख़्वाह (अपनी मर्ज़ी से) इन्तेक़ाम लेना मुमकिन ही न हो सकता था जब तक कि वह कूफ़े की मौजूदा हुकूमत को ख़त्म करके एक खुद मुख़तार हुकूमत क़ायम करने में कामयाब न हो जाते। चुनाँनचे इस नज़रये के मातहत उनका हुकूमते इब्ने ज़ुबैर से तसादुम नागुज़ीर (फ़साद यक़ीनी था) हुआ। और नतीजा अब्दुल्लाह बिन मुतीअ् के ताबे मुक़ाबला न लाकर फ़रार इख़्तियार करने पर कूफ़े में मुख़तार की हुकूमत क़ायम हो गई।

इस तरह मुख़तार दो हुकूमतों के ग़ैज़ो ग़ज़ब का मरकज़ बन गए। एक तरफ़ हुकूमते शाम जिससे बराहे रास्त क़ातिलाने इमाम हुसैन[अ०स०] का तअल्लुक़ा था और दूसरी तरफ़ इब्ने ज़ुबैर की हुकूमत जो कूफ़े में अपने तसल्लुत (इक़तेदार) के लिए मुख़तार से जंग करना ज़रूरी समझती थी।

इस सूरते हाल के देखने के बाद ही हम उन इलज़ामात की हक़ीक़त के मुतअल्लिक़ बहुत कुछ समझ सकते हैं जो मुख़तार के मुतअल्लिक़ आम तवारीख़ मे दर्ज कर दिए गए हैं। मसलन यह कि वह इल्मे ग़ैब के मुद्दई (चाहते) थे, वह कहते थे कि मुझ पर जिब्रील आते हैं। उन्होंने मुहम्मदे हनफ़िया की महदवियत का एलान करके ग़लत तौर पर अपने को उनका नुमाइन्दा बताया और उनकी तरफ़ से जाली ख़त बनाकर इब्राहीम बिन मालिके अशतर को अपना हम ख़याल बनाया वग़ैरह वग़ैरह। हम सझते हैं कि यह सब हुकूमतों की तरफ़ से उनके ख़िलाफ़ प्रोपिगन्डा था जिसकी मिसालें बराबर तारीख़ में हमारे सामने आती रहती हैं। यहाँ तक कि अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर को यज़ीद और उसके हवा ख़्वाह (साथी) मुलहिद (बेदीन) के नाम से याद करते थे। फिर अगर मुख़तार के ख़िलाफ़ इस क़बील (तरह) के अलफ़ाज़ मिलते हैं तो उन्हें क्योंकर हक़ीक़त समझा जा सकता है।

हमारे नज़दीक तो इन इलज़ामात का ग़लत होना उन अफ़राद ही पर नज़र करने से साबित हो जाता है जो मुख़तार के साथ थे और बराबर रहे

जैसे कि अबू तुफ़ैल आमिर बिन वासिला बिन असक़ा कनानी कि जो सहाबि–ए–रसूल थे।[1]

इसी तरह उसमान नहदी और फिर रिफ़ाआ बिन शद्दाद, यज़ीद बिन अनस, अब्दुर्रहमान बिन सईद बिन क़ैस, वरक़ा बिन आज़िब और अहमर बिन शुमैत वग़ैरह। यह सब साहिबाने बसीरत और दीनदार लोग थे।

इब्राहीम बिन मालिके अशतर के मुतअल्लिक़ यह मान भी लिया जाए कि उन्हें ग़लत तहरीर दिखला कर मुवाफ़िक़ बना लिया गया था तो बाद में मुख़तार के साथ तक़रीबन हर वक़्त रहने के बावजूद उन्हें मुख़तार के अक़ाएद व आमाल पर इत्तेला न होती और इत्तेला होने के बाद वह मुन्हरिफ़ न हो जाते? फिर अगर फ़र्ज़ किया जाए कि उन्हें हर वक़्त साथ रहने के बावजूद उन बातों की इत्तेला नहीं हुई तो आख़िर उन रावियों को उन की इत्तेला क्योंकर हो सकी जो मुख़तार के साथ वैसे रवाबित भी न रखते थे।

मुख़तार का ख़ुलूस तो इससे ज़ाहिर है कि हुकूमत पाने के बाद भी मुख़तार और उनके साथियों ने अपने नस्बुल ऐन (मक़सद) को फ़रामोश नहीं किया। और चुन चुन कर उन्होंने क़ातिलाने हुसैन[अ0स0] को क़त्ल करना शुरू कर दिया। जिस तरह उनका इम्तियाज़ी नारा था। "या लिसारातिल हुसैन"[2] उसी के मुताबिक़ उनका अमल ज़ाहिर हुआ। उसकी तकमील इस तरह हो गई कि एक तरफ़ तो उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद शाम की फ़ौज को लेकर मूसल पर हमला आवर हुआ। मुख़तार ने उसके मुक़ाबले के लिए तीन हज़ार की जमियत के साथ यज़ीद बिन अनस को भेजा।[3] उस फ़ौज ने दुश्मन के लशकर को जंग में शिकस्त भी दे दी।[4] मगर ऐन मारिक–ए–जंग में यज़ीद बिन अनस की जो पहले से बीमार थे वफ़ात हो गई और वरक़ा बिन आज़िब ने फ़ौजे दुश्मन की कसरत और अपनी क़िल्लते तादाद के सबब अपने सरदार के इन्तेक़ाल के बाद इस मुहिम को कूफ़े से मज़ीद कुमत मँगवाने तक मुलतवी करने का फ़ैसला किया।[5]

---

[1]सन 100 हिजरी में वफ़ात पाई। असहाबे रसूल[स0अ0] में सबके आख़िर में उन्हीं की वफ़ात हुई है।, सही मुस्लिम जि/2, पेज/258

[2]तबरी जि/7, पेज/120

[3]तबरी जि/7, पेज/113

[4]तबरी जि/7, पेज/114

[5]तबरी जि/7, पेज/115

मुख़तार को यह इत्तेला हुई तो उन्होंने इब्राहीम बिन मालिके अशतर को सात हज़ार फ़ौज के साथ वरक़ा की मदद के लिए मूसल की तरफ़ रवाना किया। कूफ़े के सरदारों ने जो तक़रीबन सब ही वह लोग थे जो हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के मुक़ाबले में जंग में शिकरत कर चुके थे उस मौक़े को ग़नीमत जान कर कि इब्राहीम कूफ़े से बाहर गए हुए हैं और मुख़तार तक़रीबन अकेले हैं मुत्तफ़िक़ होकर बग़ावत कर दी और मुख़तार से जंग शुरू कर दी।[1] उनमें हस्बे ज़ैल अफ़राद के नाम नुमायाँ तौर पर मिलते हैं। शब्स बिन रबीअ्, शिम्र ज़िल जौशन, मुहम्मद बिन अशअस, ज़हर बिन क़ैस, हिजार बिन अबजर, यज़ीद बिन हारिस बिन रवीम शीबानी, अम्र बिन हज्जाज ज़ुबैदी।[2] इनमें से कोई भी नाम वाक़ेआते करबला का मुतालिआ कर चुकने वालों के लिए अजनबी नहीं हैं।

मुख़तार ने अपने साथ वाली जमाअत के साथ उन लोगों का मामूली तौर से मुक़ाबला जारी रखा और एक क़ासदि को इब्राहीम बिन अशतर के पास भेज कर इत्तेला दी कि वह अपनी फ़ौज के साथ फ़ौरन कूफ़े की तरफ़ वापस आयें, चुनाँनचे तीसरे दिन वह अपने लशकर के साथ कूफ़े वापस आ गए।[3]

अब दुश्मनाने आले रसूल की सरकूबी का हंगाम आ गया था। चुनानचे गिरफ्तारियों का सिलसिला शुरू हो गया।

पहला ही पांच सौ आदमियों का जत्था जो गिरफ़्तार होकर मुख़तार के पास पेश हुआ तो मुख़तार ने कहा। उनमें से जो जो क़त्ले हुसैन[अ0स0] के मौक़े पर करबला में मौजूद हों उन्हें मुझे बताते जाना, उनकी मैं जान बख़्शी नहीं करूँगा। बाक़ी सबको छोड़ दूँगा। चुनाँनचे जिन जिनके बारे में यह इलज़ाम साबित हुआ वह क़त्ल कर दिए गए। बाक़ी सबको इक़रारे वफ़ादारी लेने के बाद रिहा कर दिया।[4]

उसके बाद मुख़तार की जानिब से शहर में निदा दी गई कि जो अपने घर का दरवाज़ा बन्द करके बैठ जाए उसे अमान होगी सिवा उस शख़्स के

---

[1]तबरी जि/7, पेज/116

[2]तबरी जि/7, पेज/116–117

[3]तबरी जि/7, पेज/118

[4]तबरी जि/7, पेज/121

जो आले रसूल[स0अ0] के खून में शरीक हुआ हो।[1] यह रोज़े चहार शम्बा (बुध) 24/ज़िलहिज्जा सन 66 हिजरी का ज़िक्र है।[2]

अबू उमरा कियान पुलिस के अफ़सर थे चूँकि क़ातिलाने हुसैन[अ0स0] भी अब घरों में छुप गए थे इसलिए अबू उमरा मामूर हुए कि एक हज़ार मज़दूर साथ लेकर जायें और जो जो मज़ालिमे करबला में शरीक थे उनके घरों को मिसमार करायें क्योंकि अबू उमरा उन लोगों से खूब वाक़िफ़ थे। चुनाँनचे उन्होंने बकसरत घर मुन्हदिम कराए और इस ज़ैल में बहुत से दुश्मनाने अहले बैत क़त्ल हुए।[3]

अब बड़े बड़े नुमायाँ अफ़राद जो क़ातिलाने इमाम हुसैन[अ0स0]में से थे तलवार के घाट उतार दिए गए। जैसे शिम्र बिन ज़िल जौशन।[4] अब्दुल्लाह बिन असद जहनी। मालिक बिन नस्रबदी, हमल बिन मालिक महारबी,[5] ज़ियाद बिन मालिक, इमरान बिन ख़ालिद। अब्दुर्रहमान बिन ख़शकारा बिजली, अब्दुल्लाह बिन क़ैस खूसलानी, अब्दुल्लाह बिन सलख़ब,अब्दुर्रहमान बिन वहब, उसमान बिन ख़ालिद जहनी, बशर बिन सौत क़ाबिज़ी।[6] खूली बिन यज़ीद असबही,[7] उमर बिन सअ्द। [8]हकीम बिन तुफ़ैल ताई सानबसी,[9] ज़ैद बिन रिक़ाद जहनी। हुरमुला बिन काहिल असदी, अम्र बिन सबीह सदाई।[10] और क़ैस बिन अशअस।[11]

कूफ़े की मुहिम से फ़रागत के बाद मुख़तार ने इब्राहीम को फिर इब्ने ज़ियाद से जंग के लिए रवाना किया।[12] मूसल से पाँच फ़रसख़ पर मक़ाम ख़ाज़र में जंग हुई। शदीद मुक़ाबले के बाद शाम की फ़ौज को शिकस्त हुई और खुद इब्ने ज़ियाद इब्राहीम के हाथ से क़त्ल हुआ। इसके अलावा हसीन

---

[1]तबरी जि/7, पेज/121
[2]तबरी जि/7, पेज/124
[3]अख़बारूत तुवाल, पेज/286
[4]तबरी जि/7, पेज/122
[5]तबरी जि/7, पेज/124
[6]तबरी जि/7, पेज/125
[7]तबरी जि/7, पेज/126
[8]तबरी जि/7, पेज/127
[9]तबरी जि/7, पेज/128
[10]तबरी जि/7, पेज/129
[11]तबरी जि/7, पेज/139
[12]अख़बारूत तुवाल, पेज/139

बिन नुमैर सकूनी और सरजील बिन ज़िल कलाअ् जो शाम के दो मशहूर सरदार थे वह भी इस जंग में मारे गए।[1]इब्राहीम ने इब्ने ज़ियाद का सर काट कर मुख़तार के पास भेजा और मुख़तार ने उसे मुहम्मद बिन हनफ़िया के पास भेज दिया।[2] उसके बाद इब्राहीम ने मुसल और उसके तमाम अतराफ़ पर तसल्लुत क़ायम करके उम्माल (काम करने वाले) मुक़र्रर किए और ख़ुद नसीबीन में जाकर क़याम किया।[3] मुख़तार अब कूफ़े में अकेले रह गए।

इब्ने ज़ुबैर को मुख़तार से बिनाये मुख़ासिमत (नफ़रत) क़ायम हो चुकी थी और इराक़ में बसरा पर उनका तसल्लुत क़ायम था। उस दौरान में उन्होंने बसरा के मक़ामी हाकिम को जो ज़्यादा उनके नज़दीक क़ाबिले इतमीनान न था माज़ूल (हटा कर) करके अपने भाई मुसअब बिन ज़ुबैर को बसरा में हाकिम मुक़र्रर किया। मुमकिन है उसी वक़्त उसका मक़सद मुख़तार के मुक़ाबले में मुहिम का सर अन्जाम देना हो।

इधर कूफ़े से जो क़ातिलाने इमाम हुसैन[अ०स०] मुख़तार के हाथों बच कर किसी तरह निकले जैसे शबस बिन रबीअ्, मुहम्मद बिन अशअस, मर्रा बिन मुन्क़ज़ अबदी, सनान बिन अनस और अब्दुल्लाह बिन उरवह ख़सअमी वग़ैरह वह सीधे मसअब बिन ज़ुबैर के पास बसरा पहुंचे।[4] और उन्होंने भी उसको मुख़तार से जंग पर आमादा किया। ख़ुसूसियत के साथ शबस बिन रबीअ् और मुहम्मद बिन अशअस ने बड़े मुबालग़े (ग़लत बयानी) के साथ अपनी मज़लूमी के ग़लत अफ़साने सुनाकर इलहाह व ज़ारी (गिड़गिड़ाने, रोने) से काम लिया और कूफ़े पर हमला करने की तरग़ीब (आमादा) दी।[5]

देनवरी का बयान है कि दस हज़ार अहले कूफ़ा रफ़्ता रफ़्ता निकल कर बसरा पहुँच गए और उन सबने मुहम्मद बिन अशअस की सरकर्दगी में मुसअब को कामयाबी का यक़ीन दिलाया।[6]

उसी दौरान में एक वाक़ेया यह भी पेश आया कि अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर ने मक्क–ए–मुअज़्ज़मा में मुहम्मद बिन हनफ़िया, उनके मुतअल्लक़ीन (रिश्तेदार) और उन कूफ़े के आदमियों को जो मक्के में थे मुक़ैयद (क़ैद) कर दिया। और

---

[1]अख़बारूत तुवाल, पेज/288
[2]तबरी जि/7, पेज/144–145
[3]अख़बारूत तुवाल, पेज/289
[4]तबरी जि/7, पेज/124–128 –129–130 व 146
[5]तबरी जि/7, पेज/146–147
[6]अख़बारूत तुवाल, पेज/295

एक मुद्दत मुक़र्रर कर दी कि अगर उस वक़्त तक उन्होंने बैयत न की तो वह सब ज़िन्दा जला दिए जायेंगे। मुहम्मदे हनफ़िया ने एक क़ासिद के ज़रिये से इसकी इत्तेला मुख़तार को दी। मुख़तार ने कूफ़े से फ़ौज रवाना की जिसने मक्के जाकर मुहम्मदे हनफ़िया और उनके साथ वालों को क़ैद से रिहाई दी। यह लोग तो इब्ने ज़ुबैर का ख़ातमा कर देने पर आमादगी ज़ाहिर कर रहे थे मगर मुहम्मद हनफ़िया ने हरम में ख़ूँरेज़ी से सख़्ती के साथ मुमानिअत की इसलिए यह लोग मुहम्मदे हनफ़िया को एक महफ़ूज़ जाएपनाह तक पहुंचा कर वापस आ गए।[1]

बिल आख़िर मुसअब बिन ज़ुबैर ने ग़ालिबन अपने बड़े भाई अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर की हिदायत ही की बिना पर एक लशकरे गिराँ (बड़े लश्कर) के साथ कूफ़े पर हमला कर दिया। मुख़तार ने भी मुक़ाबले की तैयारी की मगर अब मशीयते इलाही का फ़ैसला कुछ और था। मुख़तार अपने मक़सदे हयात को पूरा कर चुके थे। उनकी ताक़त भी उस वक़्त यकजा (एक जगह) न थी क्योंकि इब्राहीम बिन मालिके अशतर नसीबैन में थे और इस सूरते हाल की उन्हें कोई इत्तेला न थी। मुसअब के पास फ़ौज बहुत ज़्यादा थी और मुहम्मद बिन अशअस वग़ैरह रूअसाए अहले कूफ़ा भी साथ थे इसलिए ख़ुद कूफ़े के बहुत से लोग जो दबे हुए थे वह भी उनका साथ देने के लिए उठ खड़े हुए। नीज़ मुख़तार के ख़िलाफ़ एक तबक़ावाराना (नस्ल परस्ती) सवाल अरब और ग़ैर अरब का उठा दिया गया था और यह कह कर कि मुख़तार ने अजमियों (ईरानी) को अरबों पर मुसल्लत कर दिया है तमाम अरबों के जज़बात को मुख़तार के ख़िलाफ़ भड़का दिया गया।[2]

ताहम मुख़तार ने अपने पास के लशकर के साथ कई दिन बड़ी बहादुरी के साथ मुसअब से जंग की जिसके दौरान में उनके साथ के कई मुमताज़ सरदार जैसे अहमर बिन शुमैत और अब्दुल्लाह बिन कामिल वग़ैरह शहीद हो गए।[3]

इस जंग में फ़ौजे मुख़ालिफ़ में से भी एक शख़्स जो दुश्मनाने अहले बैत में नुमायाँ हैसियत रखता था यानी मुहम्मद बिन अशअस क़त्ल हुआ।[4]

---

[1]तबरी जि/7, पेज/136

[2]अख़बारूत तुवाल पेज/295

[3]तबरी जि/7, पेज/148–149

[4]अख़बारूत तुवाल पेज/297, तबरी जि/7, पेज/151

आख़िरूल अम्र मुख़तार के तमाम बावफ़ा साथी शहीद, अवामुन्नास (लोग) मुन्तशिर और वह ख़ुद क़िले के अन्दर महसूर हो गए। फिर चन्द जाँबाज़ों के साथ निकल कर उन्होंने आख़री बार बड़ी पामर्दी से जंग की और ऐन मारिक–ए–जंग में 14 माहे रमज़ान सन 67 हिजरी को सरसठ 67 बरस की उम्र में जान अपनी जान आफ़रीं के सिपुर्द की।[1]

अदावत और क़सावत की हद यह थी कि उनके बाद उनकी बीवी उमरा बिन्ते नोमान बिन बशीर अन्सारी को भी जिन्हों ने मुख़तार को बुरा कहने से इन्कार किया मजम–ए–आम में क़त्ल किया गया।[2]

यक़ीनन ख़ुश क़िसमत है वह इन्सान जो मशीयत के किसी मक़सद की तकमील का ज़रिया बने। मुख़तार उन्हीं ख़ुश क़िसमत इन्सानों में थे। उनकी ज़ात के साथ क़ुदरत ने अपना एक अमली निज़ाम वाबस्ता किया था और इस निज़ाम की तकमील के साथ उनकी ज़िन्दगी भी ख़त्म हो गई। अब वह ख़त्म नहीं हो गई बल्कि जाविदानी तौर पर बाक़ी है।

हरगिज़ नमीरद आँकि दिलश ज़िन्दा शुद ब–इश्क़
सब्त अस्त बर जरीद–ए–आलम दवामे मा।

[1]तबरी जि/7, पेज/155 व 161
[2]तबरी जि/7, पेज/158, अख़बारूत तुवाल पेज/300

चालीसवाँ बाब

उमवी हुकूमत का अन्जाम

तारीख़ी हक़ीक़त है कि जब किसी क़ौम को इस हद तक ग़लब–ए–इक़तेदार हासिल हो जाता है कि उसके साहिबाने हल्लो अक़्द (हाकिम वज़ीर वग़ैरह) के लिए महज़ ज़रूरियाते ज़िन्दगी ही नहीं बल्कि फ़रावानी के साथ सामाने तअय्यश (ऐश) भी फ़राहम हो सके तो उसमें ऐश पसन्दी, जाह तलबी, (हवस) कमीना तबई (तबीयत), ख़ुद ग़रज़ी, नाआक़िबत अन्देशी (सूझ–बूझ की कमी), सहेल अंगारी (आराम तलबी) और नतीजतन बुज़दिली पैदा हो जाती है जैसा कि क़ुरआने मजीद में इरशाद हुआ है:

"وَ اِذَا اَرَدْنَا اَنْ نُّهْلِكَ قَرْيَةً اَمَرْنَا مُتْرَفِيْهَا فَفَسَقُوْا فِيْهَا فَحَقَّ عَلَيْهَا الْقَوْلُ فَدَمَّرْنٰهَا تَدْمِيْرًا"

यानी "जब हम किसी आबादी को बरबाद करना चाहते हैं तो उसके दौलत मन्दों की तादाद में इज़ाफ़ा कर देते हैं वह फ़िस्क़ो फ़ुजूर (हराम कामों) में मुबतिला हो जाते हैं। फिर उन पर हमारा क़ानूने फ़ितरत मुन्तबक़ (लागू) हो जाता है और हम उसको तबाह व बरबाद कर देते हैं।"

रसूल अल्लाह[स0अ0] के बाद से दौरे यज़ीद तक बनी उमैया की माद्दी तरक़्क़ियाँ किसको मालूम नहीं दौलत व सरवत, वुसअते (बराबरी) ममलिकत और हशम व ख़दम (नौकर चाकर) के लिहाज़ से वह क़ैसर व किसरा (ईरानी शहनशाहियत) की हमसरी (बराबरी) करते नज़र आते थे लेकिन नफ़्स परस्ती और तन परवरी के एतेबार से उनसे भी कहीं बढ़े हुए थे। चुनाँनचे क़ानूने फ़ितरत के मुताबिक़ उनके इन्हितात और ज़वाल का वक़्त यूँ ही क़रीब आ चुका था। उस पर ना आक़िबत अन्देश यज़ीद ने नश–ए–सलतनत व इमारत से सरशार होकर इमाम हुसैन[अ0स0] को आपकी रूहानी अज़मत और हक़्क़ानित की नाक़ाबिले तस्ख़ीर, (कभी न ख़त्म होने वाली) ताक़त का ख़याल किए बग़ैर शहीद कर दिया। उसका नतीजा ज़ाहिर था और वह यह कि मुतज़लज़िल

(डाँवा डोल) उमवी निज़ाम तेज़ी के साथ तबाही और बरबादी के आख़री दर्जे तक पहुंच गया।

उधर अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर ख़ूने हुसैन[अ0स0] का वास्ता दिला कर खुल कर यज़ीद के मुक़ाबिल आ गए। इधर अहले मदीना जिन्हों ने चुपचुपाते इमाम हुसैन[अ0स0] को शहीद होते देखा था मुख़ालिफ़ हो गए। तव्वाबीन का गिरोह अलाहिदा उठ खड़ा हुआ। मुख़तार ने एक तरफ़ अलमे मुख़ालिफ़त बलन्द किया। फिर ज़ैद बिन अली बिन हुसैन[अ0स0] भी सन 118 हिजरी में ख़ूने हुसैन[अ0स0] के इन्तेक़ाम ही के तालिब होकर उठे।[1] और अगरचे शहीद कर डाले गए मगर एक मुस्तक़िल जमाअत की तशकील कर गए। जो ज़ालिम हुकूमत के लिए ख़तरा बनी है। बनी अब्बास अलाहिदा ख़ूने मज़लूम का बदला लेने के नाम से बनी उमैया के मुक़ाबिल में आ डटे।[2]

यह समझना बिल्कुल ग़लत होगा कि इन तमाम तहरीकों में ख़ुलूस मुज़मर था बल्कि इन में से बाज़ में सियासी करवटें थीं और इसी लिए औलादे इमाम हुसैन[अ0स0] का उनमें ज़र्रा बराबर हाथ न था। तारीख़ बतलाती है कि औलादे इमाम इन्क़ेलाब कुनिन्दगान (बरपा करने वाले) से एलाहिदा रहते हुए मना करते रहे मगर क़ानूने फ़ितरत को पूरा होना ज़रूर था, और वह पूरा होकर रहा।

बहरतौर जब अबू मुस्लिम ख़ुरासानी ने इन्तेक़ामे ख़ूने हुसैन[अ0स0]के एलान के साथ मरू में सियाह झण्डा निकाला तो हज़ारों आदमी उसके नीचे जमा हो गए और बिल आख़िर बनी उमैया का आख़री बादशाह मरवान बिन मुहम्मद जंगे ज़ाब में मारा गया।[3] और इसी के साथ उमवी हुकूमत का हमेशा के लिए ख़ात्मा हो गया।

---

[1]इरशाद पेज/286

[2]इस तहरीक का आग़ाज़ मुहम्मद बिन अली बिन अब्दुल्लाह बिन अब्बास ने सन 100 हिजरी के आख़िर या सन 101 हिजरी के शुरू में किया। 3 तबरी जि/8, पेज/135, अख़बारूत तुवाल पेज/318, सन 104 हिजरी में अबुल अब्बास (सुफ़्फ़ाह) अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद बिन अली की विलादत हुई। तबरी जि/8, पेज/174, सन 127 में मरवान बिन मुहम्मद तख़्ते हुकूमत पर बैठा। तबरी जि/9, पेज/54, सन 129 हिजरी में दावते तबलीग़ एलान के साथ शुरू हुई। तबरी जि/9, पेज/83

[3]तबरी जि/9, पेज/136

इक्तालीसवाँ बाब

बनी अब्बास की सलतनत

शहादते इमाम हुसैन[अ0स0] के कुछ अरसे के बाद जो बनी अब्बास ने दावत का आग़ाज़ किया और रफ़्ता रफ़्ता उसमें तरक़्क़ी हुई यहाँ तक कि अबू मुस्लिम ख़ुरासानी ने ख़ुरासान में कामयाबी हासिल की और ईरान से इराक़ तक तमाम ममलिकते इस्लामी में बनी उमैया के ख़िलाफ़ हरकत पैदा हुई तो यह सब आले रसूल[स0अ0] की हमदर्दी के नाम से था।

अगरचे उनकी सियाह पोशी का शोहदा–ए–करबला के ग़म से तअल्लुक़ न था बल्कि वह अपनी इस तहरीक के बानी मुहम्मद बिन अली बिन अब्दुल्लाह बिन अब्बास की वफ़ात पर इज़हारे रंजो मलाल[1] और फिर उनके फ़रज़न्द और उस जमाअत के सरगिरोह इब्राहीम बिन मुहम्मद के क़त्ल किए जाने पर सोगवारी का मुज़ाहरा था।[2] ताहम अक्सर नावाक़िफ़ यही समझते रहे कि यह भी ग़मे इमाम हुसैन[अ0स0] की अलामत थी और इस ख़याल को इसलिए और तक़वियत पहुँची कि उमवी ख़लीफ़ा मरवान के क़त्ल के बाद कूफ़े की मस्जिदे जामे में जो उनका सियाह पोश इज्तेमा हुआ वह 10/मुहर्रम सन 132 हिजरी यानी अशरे के दिन था।[3] जो शहादते इमाम हुसैन[अ0स0] की तारीख़ है।

फिर लोगों को अहलेबैत और इतरते रसूल[स0अ0] के फ़ज़ाएल और हुक़ूक़ ही का वास्ता देकर उस तहरीक से वाबस्ता किया गया। चुनाँनचे एलाने दावत के बाद उनके एक ख़ास कारकुन अबूदाऊद ख़ालिद बिन इब्राहीम ने एक मजमे के सामने जो तक़रीर की वह हस्बे ज़ैल थी।

"क्या तुम में किसी को इसमें शक है कि अल्लाह सुबहानहू ने हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स0अ0] को अपनी रिसालत के लिए मुन्तख़ब किया और तमाम ख़ल्क़ की तरफ़ मबऊस (भेजा) किया? (सबने कहा नहीं, इसमें कोई शक नहीं)

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/324

[2]अख़बारूत तुवाल पेज/243

[3]अख़बारूत तुवाल पेज/324

अच्छा तो क्या इसमें कोई शक है कि अल्लाह ने उन पर अपनी किताब नाज़िल की जिसे जिब्रीले अमीन लेकर उतरे और उसमें अहकामे हलालो हराम का बयान है? (सबने कहा बेशक) फिर क्या इसमें शक है कि आप दुनिया से जब तशरीफ़ ले गए तो पूरे तौर से रिसालत के फ़र्ज़ को अन्जाम देने के बाद? (सबने कहा नहीं कोई शक नहीं?) अच्छा वह इल्म जो आप पर उतरा था क्या आप ही के साथ उठ गया या आपके बाद बाक़ी रहा? (सबने कहा ज़रूरी बाक़ी रहा।) जब बाक़ी रहा तो क्या वह आपकी इतरत और अहलेबैत के सिवा और के पास हो सकता है? (सबने कहा नहीं।) तो फिर अगर ऐसे इम्कानात पैदा हों कि हुकूमते इस्लामिया अहलेबैत व इतरते रसूल[स0अ0] में आ जाए तो क्या तुम में से कोई यह पसन्द करेगा कि वह उनके सिवा किसी दूसरे तक पहुंच जाए?''

(सबने कहा नहीं। हम में से कोई इसको पसन्द न करेगा।)[1]

सन 130 हिजरी में तरीद बिन शक़ीक़ सलमी ने नस्र बिन सियार से जंग की तैयारी के सिलसिले में अपनी एक तक़रीर में कहा:

''क़बील–ए–मुज़िर के लोग आले रसूल[स0अ0] के क़ातिल और बनी उमैया के आवान व अन्सार (मददगार) हैं।''[2]

बैयत जो लोगों से ली जाती थी वह किसी ख़ास बादशाह का नाम लेकर नहीं बल्कि यह कह कर कि ''ابایعکم علیٰ کتاب اللہ عزوجل وسنته نبيئه والطاعة للرضا من اهل بيت رسول الله''

''मैं तुमसे बैयत लेता हूँ किताबे खुदा और सुन्नते रसूल[स0अ0] और अहलेबैते रसूल[स0अ0] के रिज़ा (पसन्दीदा शख़्स) की इताअत पर।''[3] क़हतबा ने अहले ख़ुरासान को मुख़ातब करके जो तक़रीर की उसमें कहा कि ''बनी उमैया ने इतरते रसूले ख़ुदा[स0अ0] में से उन अफ़राद को जो नेकूकार और परहेज़गार थे ख़ौफ़ो दहशत में मुबतिला किया। अब अल्लाह ने तुम्हें मुक़र्रर किया है कि तुम्हारे ज़रिये बनी उमय्या से उनका इन्तेक़ाम ले।[4]

11/मुहर्रम सन 132 हिजरी को इराक़ में हाशमी सलतनत के क़याम का एलान किया गया तो अबू सलमा हफ़स बिन सुलैमान जो दोस्ताने अहलेबैत में

---

[1]तबरी जि/9, पेज/87
[2]तबरी जि/9, पेज/97
[3]तबरी जि/9, पेज/97
[4]तबरी जि/9, पेज/106

से थे वज़ीर मुक़र्रर किए गए। वह ''वज़ीरे आले मुहम्मद'' और अबू मुस्लिम ख़ुरासानी ''अमीने आले मुहम्मद'' के नाम से मशहूर हुए।[1]

बेशक अहले बैत रसूल[स0अ0] में से ज़िम्मेदार अफ़राद इक़दामात की हक़ीक़त से वाक़िफ़ थे और जानते थे कि आले रसूल[स0अ0] का नाम सिर्फ़ सियासी मक़सद बरारी (कामयाबी) के लिए लिया जा रहा है। चुनानचे जब ख़िलाफ़त की पेशकश पर मुशतमिल ख़त हज़रत जाफ़र बिन मुहम्मद सादिक़[अ0स0] के पास भेजा गया तो आपने उसे क़ासिद के सामने ही चिराग़ के शोले में जलाकर ख़ाक कर दिया और फ़रमाया कि अहले ख़ुरासान हक़ीक़त में शिय–ए–अली[अ0स0] नहीं हैं। अबू सलमा को धोखा दिया गया है और उसे नतीजे में क़त्ल कर दिया जाएगा।[2]

चुनानचे वाक़ेया यही सामने आया कि इधर अबुल अब्बास सुफ़्फ़ाह अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद बिन अली बिन अब्दुल्लाह बिन अब्बास की ख़िलाफ़त का एलान हुआ और उसी के कुछ दिन बाद अबू सलमा का ख़ातिमा कर दिया गया।[3] और सफ़्फ़ाह के बाद तो आले रसूल[स0अ0] के साथ वक़्तन फ़वक़्तन वैसी ही बदसुलूकियाँ की गईं जैसी बनी उमैया के दौर में हो चुकी थीं। मगर उससे इस तारीख़ी हक़ीक़त पर कुछ असर नहीं पड़ता कि अवाम की हमदर्दियाँ बनी उमैया के ख़िलाफ़ सिर्फ़ अहलेबैते रसूल[स0अ0] और आले मुहम्मद[स0अ0] के नाम ही पर हासिल की गई थीं उसी जज़्ब–ए–नफ़रत की बिना पर जो उन्हें शहादते इमाम हुसैन[अ0स0] के बाद बनी उमैया से पैदा हो चुका था।

---

[1]तबरी जि/1, पेज/142

[2]अलवज़रा वल किताब पेज/57

[3]अलवज़रा वल किताब पेज/60

बयालीसवाँ बाब

तब्दीले ज़ेहनियत

इमाम हुसैन[अ0स0] का मक़सद जैसाकि जाबजा इस किताब में बताया गया है बराहे रास्त यह नहीं था कि यज़ीद या बनी उमैया की हुकूमत को माद्दी (ज़ाहरी) हैसियत में तबाह व बरबाद कर दिया जाए इसलिए कि अगर आपको यही मन्ज़ूर होता तो आपने शुरू ही से माद्दी ज़राए इख़्तियार किए होते और अपने गिर्द मुनासिब हाल फ़ौजी ताक़त जमा की होती बल्कि आप हक़ीक़तन ज़हनी इन्क़ेलाब पैदा करने के लिए कोशाँ थें और ज़ाहिर है कि फ़ौजी ताक़त और तलवार इन्सानी अजसाम (जिसमों) को टुकड़े टुकड़े किया करती है मगर उनकी ज़हनियत को तब्दील नहीं कर सकती। लिहाज़ा आपने उसकी तरफ़ पूरी तवज्जोह नहीं फ़रमाई बल्कि नसबुल ऐन (तरीक़ा) कुल्ली तौर पर यही रखा कि उनकी ज़ेहनियत में तब्दीली करें। ऐसी तब्दीली जो मुस्तक़िल और देरपा हो। और जिसके असरात महो (मिट) न हो सकें। अब देखना चाहिए कि इमाम हुसैन[अ0स0] इस मक़सद में कहाँ तक कामयाब हुए।

यह बात हर एक को मालूम होगी कि मुसलमानों की अक्सरियत ने खुलफ़—ए—इस्लाम को ''ऊलिल अम्र'' (अल्ला के नुमाइंदे) माना और उनकी इताअत को इताअते खुदा व रसूल की तरह फ़र्ज़ क़रार दिया। इस ज़ैल में किसी दर्जे तक ''हक़्क़े तशरीअ्'' (शरीयत) भी उनके लिए तस्लीम कर लिया गया। इसका मुक़तज़ा (मुराद) तो यह है कि जो खुलफ़ा का रास्ता हो वह ठीक है मगर आज शियों का ज़िक्र नहीं जो इस ख़िलाफ़त को किसी हैसियत से तस्लीम ही नहीं करते बल्कि जमहूरे मुसलमीन यानी अहले सुन्नत ख़िलाफ़त के दो हिस्से क़रार देते हैं। एक ख़िलाफ़ते राशिदा (हिदायत याफ़्ता), और एक ग़ैरे राशिदा जिसको ''मुलके अज़ूज़'' कहा जाता है। आम तौर पर हज़रत अली[अ0स0] और फिर इमाम हसन[अ0स0] की ख़िलाफ़त जो मुआविया से सुल्ह के क़ब्ल तक रही ख़िलाफ़ते राशिदा की आख़री हद मानी जाती है। मुआविया और फिर यज़ीद और दीगर खुलफ़ा—ए—बनी उमैया व बनी अब्बास सब

खुलफ़ा कहे जाते हैं मगर ग़ैर राशिदीन। यह तफ़रीक़ इमाम हुसैन[अ0स0] के लिए बेपनाह एहतेजाज और मख़सूस रंग के जिहाद ही का नतीजा हो सकती है।

आपकी इस मुक़ाविमत (इक़दाम) के बाइस यह मसला हमेशा के लिए साफ़ हो गया कि खुलफ़ा में से किसी को भी हक़्क़े तशरीअ् नहीं है और जिस तरह बुरे आमाल अगर कोई आम इन्सान करे तो वह गुनाह हैं इसी तरह मुसलमानों का मुन्तख़ब कर्दा ख़लीफ़–ए–वक़्त उनका इरतिकाब करे तो वह भी गुनाह हैं और सबसे बड़े गुनाह हैं। यह भी कि बरसरे इक़तेदार हाकिमे वक़्त की इताअत अम्ने आम्मा के तहफ़्फ़ुज़ के लिए उसी वक़्त तक है जब तक मफ़ादे खुदा वन्दी से तसादुम (टकराव) न हो लेकिन जब इलाही क़ानून का तक़ाज़ा उस हुकूमत की मुख़ालिफ़त में मुज़मर हो तो हर बन्द–ए–खुदा का फ़र्ज़ है कि वह ब–मुक़तज़ाए (मुताबिक़) हुक्मे खुदा वन्दी मुक़ाबले के लिए तैयार हो जाए।

इस तरह इस भेड़िया धसान वाली कैफ़ियत में जो सन 60 हिजरी तक नज़र आ रही थी आपने एक फ़र्ज़ शनासी का एहसास और हुकूमते जौर से मुहासिबे (अपना हिसाब खुद करना) का एक जज़बा पैदा कर दिया जिसकी बदौलत फिर किसी सलतनत की रज़र में उसका ख़्वाबे ख़रगोश पुर कैफ़ (मज़ेदार) और खुशगवार बाक़ी न रह सका।

उसके बाद हुसैन[अ0स0] का सब्रो इस्तेक़लाल एक दाएमी (हमेशा के लिए) मिसाल बन गया जो हर सख़्त मौक़े पर याद किया जाता और मुतज़लज़ल (डावाँ डोल) दिलों में इस्तेक़लाल (साबित क़दमी) पैदा करता रहा। चुनाँनचे उस वक़्त जब सन 71 हिजरी में मुसअब बिन ज़ुबैर के मुक़ाबले में अब्दुल मलिक बिन मरवान ने लशकर कशी की और फ़ौजे मुख़ालिफ़ की कसरत से मुसअब की फ़ौज में अबतरी (कमज़ोरी) हो गई और एक आम रोब तारी हो गया तो मुसअब ने उरवा बिन मुग़ीरा बिन शाअ्बा को पुकारा कि इधर आओ। जब वह क़रीब आया तो मुसअब ने कहा इस वक़्त हुसैन[अ0स0] के हालात बयान करो कि उन्होंने किस तरह इब्ने ज़ियाद का हुक्म मानने से इन्कार किया और जिहाद पर कमर चुस्त बाँधी। उरवा ने इमाम हुसैन[अ0स0] के हालात बयान किए मुसअब ने जोश में अपने घोड़े को ताज़ियाना लगाया और यह शेअ्र पढ़ा।

فان الانی بالطف من آلِ ہاشم

تاسو فسنّواللکرام التاسیّا

यानी ''वह जो करबला में हाशमी घराने की फ़र्दें थीं एक ऐसी मिसाल क़ायम कर गई हैं जो शरीफ़ों के लिए हमेशा के वास्ते एक बेहतरीन नमूना है।''

यह कहकर फ़ौजे दुश्मन का जान तोड़ मुक़ाबला किया और जंग करते हुए तलवार के घाट उतारे गए। यह 15 जमादिल अव्वल सन 72 हिजरी का वाक़ेया है।[1]

इसी तरह हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] ने जो कुव्वते बर्दाश्त और जुरअते इज़हार पैदा कर दी थी वह हमेशा ज़ुल्मो जौर की ताक़तों के ख़िलाफ़ एक ख़तरा बनी रही और एहसासे इन्सानी को बेदारी का जो पैग़ाम दिया गया था वह इस वक़्त तक बाक़ी है और यूँ ही बाक़ी रहेगा। जैसा कि ''जोश'' ने कहा है:

यह आज जो एक गूंज है आज़ादी की
यह भी है हुसैन इब्ने अली की आवाज़

---

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/301–303

तैंतालीसवाँ बाब

एख़्लाक़ी नताएज

वाक़ेय–ए–करबला की हक़ीक़ी और लाफ़ानी एफ़ादियत (कभी न ख़त्म होने वाला फ़ाएदा) उस रद्दे अमल और नीज़ उन इन्क़ेलाबाते माद्दी (ज़ाहरी) से बिल्कुल अलाहिदा और मुख़्तलिफ़ है जो कि क़हरी नतीजे (ज़ोर ज़बरदस्ती) के तौर पर हंगामी हैसियत से मुरत्तब हुए थे। वह उस अख़्लाक़ी कुव्वत से वाबस्ता है जो नौए बशर (अवाम) की ज़हनियत की सही तामीर और रहबरी करने की पूरी ज़मानत कर सकती है।

इमाम हुसैन[अ0स0] की ज़ात और उनके कारनाम–ए–जावेद को उसके हक़ीक़ी फ़ुयूज़ (फ़ाएदे) व बरकात के लिहाज़ से किसी एक गिरोह में महदूद कर देना इस्लाम की उस रूह के ख़िलाफ़ है जो ख़ालिक़े काएनात को रब्बुल आलमीन बनाने में मुज़मर है। जब खुदा की खुदाई किसी ख़ास गिरोह से मख़सूस नहीं समझी जा सकती तो हुसैन[अ0स0] ऐसे फ़िदय–ए–राहे खुदा की कुर्बानी को किसी एक गिरोह में हमदूद करना भी सरासर ग़लत है। बल्कि आपकी शहादत का मफ़ाद उन तमाम लोगों से मुतअल्लिक़ है जो आप से इन्सानी ज़िन्दगी का सबक़ लेना चाहें।

ज़ैल में वाक़ेय–ए–करबला से मज़हबे इन्सानियत और इस्लाम के मुतअल्लिक़ जो फ़वाएद हासिल होते हैं। उनको सिलसिले के साथ दर्ज किया जाता है।

(1)
मज़हब और रूहानियत की ताक़त का मुज़ाहरा

माद्दियत (दुनयवी ज़िन्दगी) और रूहानियत में जंग हमेशा ही बरपा रही और आज भी मज़हब रूहानियत का अलमबरदार है। इसलिए आज जबकि दुनिया रूहानियत की तरफ़ से मुँह मोड़े हुए है तो वह मज़हबी मोतक़िदात

(अक़ीदों) का औहाम (वहम की जमा) के नाम से ताबीर करके उनकी अहमित को घटाती है मगर मज़हब अपनी ताक़त हमेशा मनवाता रहा है।

करबला की जंग मज़हबियत और माद्दियत के दरमियान एक अज़ीमुश्शान जंग थी। उस तरफ़ तमाम माद्दी मज़ाहिर (दुनयवी आराम) थे जो आँखों के सामने थे और वह एक इन्सान को मरऊब और मुतअस्सिर बनाने के लिए काफ़ी थे और इस मरऊबियत (मुतअस्सिर) व तअस्सुर का लाज़मी तक़ाज़ा यज़ीद की बैयत के लिए सरे तस्लीम ख़म कर देना था। और इधर वही ''नादीदा (न दिखने वाली)'' हक़ीक़तें थीं जिन्हें मज़हब इन्सानी दिमाग़ में रासिख़ करता है।

दुनिया ने देख लिया कि तमाम माद्दी मज़ाहिर हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] और उनके जाँबाज़ रूफ़क़ा को मुतअस्सिर बनाने में नाकाम हुए और वह इन्कारे बैयत जो ग़ैबी ताक़त पर ईमान का नतीजा था पूरे जाहो जलाल के साथ आख़िर तक क़ायम व बरक़रार रहा और नतीजे के एतेबार से कामयाबी हासिल करके दुनिया के सामने रूहानियत की फ़तह का ला ज़वाल नमूना बन गया।

(2)
हक़्क़ानियते इस्लाम की तस्दीक़ व इशाअत

एक मज़हब की सच्चाई का बड़ा निशान है उसके बानियान का सिबाते क़दम और इस्तेक़लाल के साथ मसाएब को बरदाश्त करना और आख़िर तक अपने उसूल से मुन्हरिफ़ (हटना) न होना।

मगर किसी मज़हब के अक़ीदत केशों (आदत) में आम अफ़राद का मसाएब झेल लेना या अपने को क़ुर्बानी के लिए पेश करना कोई ऐसा मुस्तनद अम्र नहीं है इसलिए कि आम अफ़राद अक्सर हक़ीक़ते हाल से बेख़बर और वाक़ई धोखे और फ़रेब में मुबतिला होते हैं। उनके लिए बिल्कुल मुमकिन है कि वह सराब (पानी जैसी दिखने वाली रेत) को आब और मजाज़ को हक़ीक़त ख़याल करलें और अपने ज़ोमे (गुमान) बातिल की हिमायत में जान देने पर भी तैयार हो जायें लेकिन ख़ुद बानिए मज़हब और उसके मख़सूस वाक़िफ़ कार अफ़राद और घर वालों का जो उसके असरारे ज़िन्दगी और रुमूज़े हयात और मेयारे अख़लाक़ व औसाफ़ से पूरे तौर पर वाक़िफ़ हैं उसूल की हिमायत में

इस्तेक़लाल व सिबाते क़दम के साथ मसाएब को बरदाश्त करना और ज़रूरत के वक़्त जान की क़ुर्बानी पेश करना बेशक इस बात की दलील होता है कि उस उसूल में सच्चाई और ख़ुलूस का जौहर मुज़मर (छिपा) है।

इसी लिए हज़रत रसूल[स0अ0] का तर्ज़े अमल अपनी लड़ाईयों में भी यही था कि वह अपने अज़ीज़ों को मैदाने जंग में सबसे आगे रखते थे जिसका तज़किरा हज़रत अली[अ0स0] ने नहजुल बलाग़ा में फ़रमाया है इन अलफ़ाज़ में कि "जब ख़ूँरेज़ जंग की सूरत सामने आती थी और लोगों के क़दम पीछे हटते थे तो आप अपने घराने वालों को आगे बढ़ाते थे और उनको अपने असहाब की हिफ़ाज़त का ज़रिया बनाते थे नैज़ा व शमशीर की आँच से।" इसका नतीजा था कि उबैदा बिन हारिस बिन अब्दुल मुत्तलिब रसूल[स0अ0] के चचा ज़ाद भाई शहीद हुए जंगे बद्र में जो सबसे पहली इस्लामी लड़ाई थी और हमज़ा बिन अब्दुल मुत्तलिब जो हज़रत[स0अ0] के चचा थे ओहद में मारे गए और जाफ़र बिन अबी तालिब जो रसूल[स0अ0] के दूसरे चचाज़ाद और हज़रत अली[अ0स0] के हक़ीक़ी भाई थी। मौता के मारके में शहीद हुए और ख़ुद हज़रत अली[अ0स0] हर ख़तरे में मौत की तरफ़ आगे बढ़ते नज़र आये।

यह तर्ज़े अमल रसूल[स0अ0] का बतलाता है कि ख़ुदा का दीन हज़रत को किस दर्जा अज़ीज़ था। और आप इसके लिए कैसी क़ुर्बानियाँ पेश करने पर तैयार रहते थे। आख़िर में ज़रूरत पड़ी एक शहीद की जो कमाले मज़लूमियत का नमूना हो। इसके लिए भी रसूल[स0अ0] का जिगर बन्द हुसैन[अ0स0] ही आगे बढ़ कर आया।

इमाम हुसैन[अ0स0] की क़ुर्बानी कोई ख़ामोश क़ुर्बानी न थी बल्कि आप अमली क़ुर्बानी के साथ साथ बराबर अपनी ज़बान से भी हक़ीक़ी इस्लाम की तरफ़ दावत देते रहे और अपने किरदार से भी अहकामे इस्लाम की अज़मत दिलों में क़ायम करते रहे। आपने करबला में तब्लीग़े हक़ के पहलू को किसी वक़्त नज़र अन्दाज़ नहीं किया। उस वक़्त कि जब ख़ून के प्यासे दुश्मनों ने चारों तरफ़ से इमाम पर रास्ता बन्द कर दिया था और तीस हज़ार के लशकर ने दीन व मज़हब बल्कि इन्सानियत वग़ैरह को ख़ैरबाद कहकर फ़रज़न्दे रसूल[स0अ0] के क़त्ल पर कमर बाँध ली थी तो हालाँकि उनका गुमराही से बाज़ आना मुमकिन न था। और हुसैन[अ0स0] इससे पूरी तरह वाक़िफ़ थे फिर भी चूँकि एक मुबल्लिग़े मज़हब और दाईये (बुलाने वाला) हक़ का फ़रीज़ा यही है कि

वह हक़ की आवाज़ बलन्द करे और तब्लीग़ व दावत में कोताही न करे लिहाज़ा इस फ़रीज़े को इमाम आख़िर दम तक अदा करते रहे।

9/मुहर्रम को उस वक़्त जबकि ख़ूँख़्वार लश्कर की यूरिश (हमला) थी और हुसैन[अ0स0] और उनकी मुख़तसर जमाअत के क़त्ल कर देने के लिए हमला कर दिया गया था तो आपने अपने भाई अब्बास को भेज कर एक शब की मोहलत माँगी सिर्फ़ इसलिए कि उस रात भर आख़िरी दफ़ा बेदार रहकर ख़ुदा की इबादत कर लें। चुनाँनचे शब इस तरह गुज़ारी गई कि لهم دوی کدوی النحل यानी उस जमाअत की आवाज़ें ज़िक्रे इलाही और तस्बीह के साथ इस तरह गूँज रही थी जैसे शहद की मक्खी के छत्ते से आवाज़ आती है। इस तरह उन्होंने दिखला दिया कि सख़्त तरीन मवाक़े पर किस तरह उसूले मज़हब का ख़याल रखना चाहिए और यह कि रूहानी क़ूव्वत, आलम की हर क़ूव्वत से ज़्यादा पुर ताक़त है।

उससे ज़्यादा और कठिन वह मौक़ा था जब रोज़े आशूर लड़ाई शुरू हो चुकी थी। हुसैनी जमाअत के बहुत से अफ़राद क़त्ल हो चुके थे और नुमायाँ कमज़ोरी महसूस होने लगी थी। और तीरों की बारिश जारी थी। लेकिन इस हालत में भी नमाज़े ज़ोहर ब–जमाअत अदा की गई। और ऐसी नमाज़ कि जिसकी नज़ीर आलम की तारीख़ पेश नहीं कर सकती।

इमाम रू–ब–क़िबला और मुजाहदीन की सफ़ें पीछे और दो बहादुर जांनिसार इमाम के आगे सीना सिपर बने हुए कि जो तीर आये अपने सीने पर लें जिसका लाज़मी नतीजा यह था कि नमाज़ ख़त्म होते होते उन दो बहादुरों में से एक सईद बिन अब्दुल्लाह हनफ़ी ज़मीन पर गिर कर तड़पने लगे और दुनिया से रूख़्सत हो गए।

यह थे हक़्क़ानियत के वह मुज़ाहरात (वाक़ेआत) और इस्लामी तालीम के वह नमूने जिन्हों ने एक तरफ़ तो दुनिया को दावते हक़ की पुर ज़ोर आवाज़ से ममलू (भर दिया) कर दिया और अफ़रादे इस्लाम के इस्लामी एहसासात को झिंझोड़ कर बेदार कर दिया और दूसरी तरफ़ यज़ीद और हवा ख़्वाहाने (चापलूस) यज़ीद के ज़ालिमाना अफ़आल (हरकतें) और इस्लाम कुश (मुख़ालिफ़) हरकात का पर्दा चाक कर दिया।

तारीख़ शाहिद है कि करबला की जंग में हुसैनी जमाअत की हर फ़र्द एक मुबल्लिग़ (तब्लीग़ करने वाले) की हैसियत रखती थी। बुरैर हमदानी का मुबाहला, हबीब बिन मज़ाहिर का मुकालमा (Dialogs), ज़ुहैर बिन क़ैन का

ख़ुतबा और तमाम अन्सार व अक़रबा के रजज़ (जंग से पहले तक़रीर करने को रजज़ कहते हैं) इन सबके ज़रिये हुसैनी इक़दाम के असबाब व इलल (वजह) निहायत तसरीह (साफ़) के साथ मैदाने करबला ही में बयान कर दिए गए। ख़्वाह उनका असर ज़ाहिर हुआ या न हुआ क्योंकि एक मुबल्लिग़ की कामयाबी यह नहीं है कि उसकी आवाज़ पर लब्बैक कहने वाले ज़्यादा से ज़्यादा तादाद में पैदा हो जायें बल्कि उसकी कामयाबी यह है कि वह सख़्त और कठिन मौक़ों पर और दुश्वार गुज़ार मनाज़िल में अपने फ़रीज़े को अदा कर दे और जो दावत व इज़हार का हक़ है उसे पूरा कर दे।

यहाँ तक कि जब हुसैनी जमाअत के पीरो (बूढ़े) जवान सब दादे शजाअत देकर रूख़्सत हो चुके और सिर्फ़ मज़लूम हुसैन बाक़ी रह गए थे। दुश्मनों का नरग़ा था। दिल पर मसाएब का हुजूम और आँखों में दुनिया अंधेर थी तो उसके बावजूद अपने फ़रीज़े से ज़रा देर के लिए भी ग़ाफ़िल नहीं हुए। उन्होंने कोई दक़ीक़ा इज़हारे हक़ में उठा नहीं रखा। और आख़िर नफ़स (सांस) तक अपने फ़र्ज़ को अदा करते रहे।

उस वक़्त भी जबकि शिम्र का ख़न्जर बोसा गाहे मुस्तफ़ा के क़रीब आ चुका था और ख़ामिसे आले एबा की ज़िन्दगी का चिराग़ गुल हो रहा था हुसैन[अ0स0] ने अपने क़ातिल के हक़ में भी तब्लीग़ का फ़र्ज़ अदा किया और अपने नाना की हक़्क़ानियत को साबित कर दिखाया। यह फ़रमा कर कि "ऐ शिम्र" ज़रा अपने चेहरे से निक़ाब उठा" शिम्र ने नक़ाब हटाई। हज़रत ने फ़रमायाः "मेरे नाना रसूल अल्लाह ने सच कहा था कि ऐ हुसैन[अ0स0] तुम्हारा क़ातिल एक मबरूस (कोढ़ी) शख़्स होगा।"

रूही ल–क–ल फ़िदा। ऐ हुसैन बिन अली[अ0स0] आपने मरते दम तक अपने फ़रीज़े से हाथ नहीं उठाया। आपने अपने नाना के क़ौल की ज़ेरे ख़ंजर भी तस्दीक़ की, आपके ख़ून का हर क़तरा जो करबला की सरज़मीन पर गिर रहा था इस्लाम की सच्चाई का एक दाएमी निशान था।

एख़्लाक़ी और तमद्दुनी तालीमात

करबला का वाक़ेया मुरक़्क़–ए–मसाएब होने के साथ सिर्फ़ दावते आहो नाला और तहरीके अश्क अफ़शानी (आँसू बहाना) का सरमाया नहीं है। बल्कि इसके अलावा वह एक दर्सगाहे तालीम व तरबियत भी है जिससे इन्सानी रफ़अत (बलन्दी) की शाहराहें सामने आती हैं।

हालाँकि आम तौर पर किसी अमल में कोई एक पहलू होता है तालीम का, मगर वाक़ेय–ए–करबला बावजूद अपनी मुख़्तसर मुद्दते वुक़ूअ् (वाक़ेअ् होना) के तमाम अहम तालीमात का मरकज़ है, ज़ैल में कुछ अनावीन (Titles) को दर्ज करके वाक़ेयात का हवाला दिया जाता है जिनसे किसी हद तक वाक़ेय–ए–करबला की हमागीरी का अन्दाज़ा किया जा सकता है।

हुर्रियत

हुर्रियत के मानी ख़्वाहिश के मुताबिक़ मुतलकुल ऐनानी (खुली आज़ादी) के नहीं हैं बल्कि उसके मानी यह हैं कि इन्सान अपने ज़मीर के फ़ैसलों पर बग़ैर किसी रूकावट के अमल पैरा हो सके। उन रूकावटों में सबसे बढ़कर खुद अपने लज़ाएज़ और उन चीज़ों से मुहब्बत है जो उस ज़मीर की आवाज़ पर अमल करने से ख़तरे में पड़ती हैं।

अगर इन्सान अपनी ख़्वाहिशों और नफ़्स के तक़ाज़ों से आज़ाद हो गया तो दुनिया का कोई ज़ालिम उसे गुलाम नहीं बना सकता।

हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के सामने हर वह चीज़ ख़तरे में थी जो किसी इन्सान को अज़ीज़ होती है लेकिन आपने अपने ज़मीर के फ़ैसले के मुताबिक़ अमल करके ऐसे हंगाम में हुर्रियते नफ़्स का सुबूत दिया जिसकी शिद्दतों का तसव्वुर भी आम तौर पर इन्सान को लर्ज़ा बर अन्दाम बनाने के लिए काफ़ी है।

यही हुर्रियत के वह मानी हैं जिसके एतेबार से आपने हुर बिन यज़ीदे रियाही को जो फ़ौजे बातिल का साथ छोड़ कर हक़ की तरफ़ आ गए हुर्रियत की सनद देते हुए फ़रमाया "انت کانت کما سمتک امک" तुम बेशक इस्मे बा मुसम्मा (बामानी नाम) हो।"

''انت حر فی الدنیا والآخرۃ''यानी तुम दुनिया में भी हुर हो और आख़िरत में भी। यह हुर्रियते आज़ादी और ग़ुलामी के उस मफ़हूम से बिल्कुल अलग है जो आज सियासी दुनिया में राएज है।

किसी आज़ाद मुल्क के अफ़राद भी हक़ीक़त में ग़ुलाम हैं जब वह गंगा जमुनी तवक़्क़ुआत की बिना पर ग़लत मफ़ादात की राह इख़्तियार किए हुए हों और किसी ''ग़ुलाम'' मुल्क के भी अफ़राद आज़ाद हैं। अगर वह बावजूद जब्रो तशद्दुद के शिकन्जे के अपने फ़राएज़ हक़ परस्ती से ग़ाफ़िल न हों।

इस्तेक़लाल

सख़्त और दुश्वार मुन्ज़िलों के सामने आने पर क़दम में लग़ज़िश न होना सिबात व इस्तेक़लाल है। और इस इम्तिहान में करबला के मुजाहदीन का नम्बर सबसे अव्वल है।

कौन नहीं जानता कि गुफ़्तार और किरदार दो मुख़तलिफ़ चीज़ें हैं। कहना आसान है। लेकिन अमल करना मशुकिल है।

माज़ि–ए–क़रीब की अज़ीम जंगों में बहुत सी क़ौमों की आज़ादी सल्ब हुई।

उनमें से कौन वह क़ौम थी जिसने जंग शुरू करते वक़्त यह एलान न किया हो कि हम आख़री क़तर–ए–ख़ून गिरने तक दुश्मनों की ग़ुलामी क़ुबूल नहीं करेंगे। मगर वह मुल्क फ़तह हो गए। और कोई नहीं कह सकता कि उस वक़्त उनमें कोई फ़र्द भी क़ाबिले जंग बाक़ी न रह गई थी। होता यही है कि उनमें बहुत बड़ी जमाअत ऐसी बाक़ी रहती है जो जंग करने के क़ाबिल समझी जा सके मगर मुशकिलात के सामने वह सिपर अन्दाख़्ता (हथियार डाल देती है) हो जाती है।

उसके बरख़िलाफ़ अगर करबला वालों पर नज़र डालिए तो आपको वहाँ का बच्चा बच्चा अपने क़ौल की कसौटी पर पूरा उतरता हुआ दिखाई देगा। और आपको मालूम हो जाएगा कि उस फ़ौज के सरदार और उसके साथियों ने जो कहा उस पर अमल करके दिखा दिया।

हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने जब यह फ़रमाया था कि ''बैयत नहीं करूँगा'' तो उस वक़्त इसका सही मफ़हूम दुनिया को मालूम न था क्योंकि इन्सानी तख़ैयुल (ख़याल) के हुदूद उन इम्कानात का अन्दाज़ा नहीं कर सकते थे जहाँ तक वाक़ेयात की रफ़तार बाद को पहुँच गई।

दुनिया नहीं समझ सकती थी कि इस "नहीं" में कितने मुशकिलात के मुक़ाबले का अज़्म मुज़मर है। लेकिन हुसैन[अ०स०] जिस वक़्त "नहीं" की आवाज़ बलन्द कर रहे थे तो दिल की गहराईयों में अपनी क़ूव्वते इरादी का जाएज़ा लेने और मौक़े की नज़ाकत पर ग़ौर करने के बाद यह फ़ैसला कर रहे थे कि शदाएद (मुशकिलें) अपने इम्कानात की आख़री हद तक पहुँच जाएगे लेकिन मेरे अज़्म को न बदल सकेंगे। चुनाँनचे नतीजे ने ज़ाहिर कर दिया कि इस "नहीं" में कितना वज़्न था।

रास्ते में जब हुर कहता हुआ जा रहा था कि अपने ऊपर रहम कीजिए। मैं देखता हूँ कि आप क़त्ल हो जायेंगे। तो आपने फ़रमाया था कि क्या इसके आगे भी कुछ है? जब इन्सान हक़ पर क़ायम है तो मौत के आने में कोई मुज़ाएक़ा नहीं।

आपके फ़रज़न्द अली अकबर[अ०स०] ने यही कहा था कि जब हम हक़ पर क़ायम हैं तो मौत की कोई परवा नहीं।

आपकी इस कुव्वते अज़्म का अन्दाज़ा दुश्मन को भी था। चुनाँनचे उस वक़्त कि जब शिम्र इब्ने ज़ियाद का ख़त लेकर नवीं तारीख़ मुहर्रम को आया था कि हुसैन[अ०स०] से ग़ैर मशरूत तौर पर इताअत का इक़रार लो या जंग करो। और उमरे सअ्द ने ख़त देखा था तो बजाए इसके कि इमाम हुसैन[अ०स०] के पास जाता और आपको मज़मूने ख़त से इत्तेला देता उसने अपनी जगह पर कह दिया कि "हुसैन[अ०स०] इस तरह तो इताअत न करेंगे। वह अपने बाप का दिल अपने सीने में रखते हैं।"[1]

नतीजे में सबने देख लिया कि मैदाने जंग में हज़ारों मसाएब के सैलाब थे जो आते थे और उस कोहे अज़्मो इस्तेक़लाल से टकरा कर वापस चले जाते थे गोया इन तमाम मसाएब के हुजूम में हुसैन[अ०स०] की ज़बान पर यह शेअ्र जारी था कि:

ان كان دين محمد لم يستقم
الايقتلی یاسیوف خذینی

"अगर मेरे नाना का दीन उस वक़्त तक बरक़रार नहीं रह सकता जब तक कि मेरी रगे हयात क़ता न हो जाए तो ऐ ख़ून आशाम तलवारो आओ यह जिस्म हाज़िर है।"

[1]इरशाद पेज/242

यहाँ तक कि उस वक़्त भी कि जब आस पास कोई मौजूद न रहा था। असहाब व अन्सार सब शहीद हो चुके थे। ख़ुद आप पर हमले हो रहे थे और ज़ख़्मों से चूर चूर थे। उस वक़्त भी आपकी अबरू पर शिकन न थी। ख़ुद फ़ौजे उमरे सअ्द का एक आदमी बयान करता है कि ''ख़ुदा की क़सम मैंने कोई दिल शिकस्ता व ज़ख़्म रसीदा आदमी जिसके औलाद, भाई, अइज़्ज़ा व अन्सार सब क़त्ल हो गए हों ऐसा नहीं देखा जो हुसैन[अ0स0] से ज़्यादा मुतमइन, मुस्तक़िल मिज़ाज साबित क़दम और बाहिम्मत हो।[1] ख़ुदा की क़सम उनसे ज़्यादा क्या! मैंने उनके क़ब्ल और उनके बाद उनके मिस्ल भी कोई नहीं देखा।[2]

जमाअती तन्ज़ीम

तन्ज़ीमे इज्तेमाई (ग्रुप) एक जमियत की वहदते ख़याल (एक ख़याल), वहदते क़द्र और वहदते अमल से पैदा होती हैं एक शख़्स अगर तन्हा एक ख़याल पर क़ायम भी है तो यह ज़रूरी नहीं कि उसे साथी भी ऐसे मिल जायें जो बिला इस्तेसना सब आख़िर तक उसके साथ साथ चलते रहें। पैरूओं (इताअत करने वालों Followers) का सिबात व इस्तेक़लाल एक अलाहिदा चीज़ है जो किसी इन्सान की इन्तेहाई अज़मत के बाद भी ज़रूरी नहीं है कि हासिल ही हो जाये।

हमारे सामने अम्बिया व मुरसलीन के हालात हैं। हमें मालूम है कि हज़रत मूसा[अ0स0] के बनी इस्राईल पर कितने एहसानात थे उनको मज़ालिम से छुड़ाया। मिस्र के मुल्क से बचा कर निकाल ले गए। बैतुल मुक़द्दस के फ़तह करने के लिए तैयार किया मगर जब यह लोग अमल की मन्ज़िल से दो चार हुए और फ़िलिस्तीन के क़दआवर (लम्बे) आदमी दिखाई दिए तो उन्होंने मूसा[अ0स0] से साफ़ कह दिया कि ''वहाँ तो बड़े बड़े ज़बरदस्त लोग मौजूद हैं। हम हरगिज़ नहीं जायेंगे जब तक कि वह ख़ारिज न हो जायें। हाँ जब वह निकल जायेंगे तो फिर हम अन्दर दाख़िल होंगे।'' उस बड़े मजमे में जो मूसा[अ0स0] के साथ था क़ुर्आन ने शुमार करके बताया है कि कितने आदमी थे जो अपनी बात पर क़ायम रहे।'' सिर्फ़ दो मख़्सूस आदमी वह थे जिन्हों ने कहा कि दरवाज़े में दाख़िल हो। जब तुम दाख़िल हो जाओगे तो तुम्हें फ़तह हासिल होगी। और

---

[1]इरशाद पेज/256

[2]तबरी जि/6, पेज/259

ख़ुदा पर भरोसा करो अगर ईमान रखते हो। मगर दूसरे लोगों ने कोई असर नहीं लिया। और निहायत दिल शिकन अलफ़ाज़ में कहा "हम हरगिज़ दाख़िल नहीं होंगे, जब तक यह उसमें मौजूद हैं। ऐसा ही है तो आप जाईये और आपका परवरदिगार और आप दोनों मिल कर जंग कर लीजिए। हम यहाँ बैठ कर तमाशा देखेंगे।"

हज़रत ईसा[अ०स०] के शागिर्दों का तज़किरा भी हमारे सामने है। थोड़े से तो वह लोग ही थे जो ईमान लाए थे उनमें भी यह आलम था कि शागिर्द ही में से एक था जिसने उनके ख़िलाफ़ ख़बर रसानी की और उनको गिरफ़्तार करा दिया।

इन्जील बता रही है कि यसूअ् मसीह ने अपने साथियों से कहा कि तुम में से कोई ऐसा न होगा जो मेरे बारे में ठोकर न खाए। एक बड़े मख़सूस शागिर्द पितरूस ने कहा कि ऐ मेरे बाप सब ठोकरें खायें मैं नहीं खाऊँगा। यसूअ् ने फ़रमाया कि (सुबह को) मुर्ग़ के अज़ान देने से पहले तू तीन मर्तबा मेरा इन्कार करेगा। अन्जाम यही हुआ कि जब हज़रत मसीह[अ०स०] को गिरफ़्तार करके ले चले तो यह शख़्स पीछे पीछे हालात देखने के लिए गया। मुख़ालिफ़ जमाअत को शक हुआ कि यह हज़रत ईसा[अ०स०] का आदमी है। पूछा तुम इनके तरफ़दारों में से हो? कहा नहीं मैं इनको नहीं जानता। दूसरी मर्तबा भी ऐसा ही हुआ और तीसरी मर्तबा उसके साथ हज़रत ईसा[अ०स०] की शान में नाज़ेबा कलमात भी इस्तेमाल किए। उस वक़्त मुर्ग़ की अज़ान की आवाज़ आई और इस तरह मसीह[अ०स०] की यह पेशिनगोई पूरी हुई। इसी तरह बाक़ी साथियों ने भी हज़रत ईसा[अ०स०] की कोई नुसरत व हिमायत नहीं की और राहे हक़ पर साबित क़दम न रह सके।

हमारे पैग़म्बर[स०अ०] की तारीख़े ज़िन्दगी भी इस तरह के वाक़ेयात से भरी हुई है। बहुत से इस तरह के मवाक़े का तज़किरा कुरआने करीम के अन्दर मौजूद है। एक मामूली सा वाक़ेया यह है कि एक अफ़सर की मातहती में जिसका नाम अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर था पचास आदमियों को दर्रा कोहे ओहद पर खड़ा कर दिया गया था कि चाहे हमें शिकस्त हो चाहे फ़तह, तुम इस जगह से न हटना मगर जब जंग में मुसलमानों को कामयाबी हुई तो बावजूदेकि अफ़सर रोकता रहा मगर सिवाए चन्द आदमियों के वहाँ कोई न रह गया। और सब माले ग़नीमत के लूटने में मसरूफ़ हो गए। नतीजा यह हुआ

कि फ़तह शिकस्त की सूरत में तब्दील हो गई और मुसलमानों की अक्सरियत सब्रो इस्तेक़लाल से आरी (ख़ाली) साबित हुई।

ऐसे नमूने तारीख़ में बेशुमार हैं। लेकिन करबला में हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के साथ जो लोग थे, उनमें कोई एक शख़्स भी ऐसा न था जिसके क़ौल व अमल में इख़तेलाफ़ की झलक भी नज़र आ सके।

इसी वजह से इमाम हुसैन[अ0स0] फ़ख्र से कहते थे कि जैसे वफ़ादार और जाँनिसार मेरे साथी हैं ऐसे किसी के न थे।

इज़्ज़ते नफ़्स

कोई शक नहीं कि ज़िन्दगी अज़ीज़ शै है और फ़ितरते इन्सानी में हयाते दुनिया की मुहब्बत वदीअत (पैवस्त) की गई है। इन्सान इसी की ख़ातिर सख़्त तरीन दुनिया के मुशकिलात को बरदाश्त करता और सर्द व गर्म आलम का तहम्मुल (बरदाश्त) करता है। और तमाम वह मुमकिन ज़राये जिनसे उसकी हस्ती की बक़ा का इम्कान हो अपने लिए हासिल करना ज़रूरी समझता है। इस्लाम ने इस फ़ितरी रूजहान को रोकने की वजह नहीं बतायी बल्कि وَلَا تُلْقُوا بِأَيْدِيكُمْ إِلَى التَّهْلُكَةِ (अपने नफ़्स को हलाकत में न डालो) के हकीमाना हुक्म से हिफ़ाज़ते नफ़्स को एक लाज़मी फ़रीज़ा क़रार दिया। लेकिन ज़माने के लैलो नहार (रात दिन) में ऐसे नाज़ुक मवाक़े भी पेश आ जाया करते हैं जब जज़्बात में तलातुम और तबई (तबियत) व अक़ली रूजहानात में तसादुम (टकराओ) होता है। ज़िन्दगी अपनी तमाम दिल फ़रेबियों के बावजूद इतनी मुहीब (डराऊनी) सूरत में नज़र आती है कि इन्सान बेइख़्तियार उससे आँखें मोड़ लेना पसन्द करता है और उसी महबूब ज़िन्दगी से जिस पर वह हर मुमकिन चीज़ क़ुर्बान कर देना पसन्द करता था हाथ धोने में लज़्ज़त महसूस करता है।

यह सूरत कभी ग़ैर शुऊरी (नासमझी), शहवानी (ख़्वाहिशे नफ़्स), जाहिलाना, नाआक़िबत अन्देश (अन्जाम से बेख़बर) रूजहानात से पैदा होती है और उस मौक़े पर जान देने से न अक़्ल बढ़ कर मरहबा कहती है और न शरअ् शाबाश की आवाज़ देती है। लेकिन जिस वक़्त मौत से बदतर ज़िन्दगी और ज़िन्दगी से बेहतर मौत में मुआमिला पड़ गया हो, जिस वक़्त बक़ाये हयात अहम तरीन मक़ासिद के पामाल हो जाने पर मौक़ूफ़ (रूका) हो और जिस वक़्त इज़्ज़ते नफ़्स और फ़नाये वक़्ती का सवाल दरपेश हो। जबकि मीज़ाने अक़्ल ने सूरते हाल के मुख़तलिफ़ पहलूओं को तौल कर मौत को

हयात पर तरजीह भी दी हो तो उस वक़्त मौत के मुंह में जा पड़ने वाले हयाते दाएमी के मालिक हो जाते हैं।

हुसैन बिन अली[अ०स०] ने करबला में अपने फ़रीज़े का एहसास करते हुए जो रास्ता तय किया था वह इसी उसूल पर मबनी था आपकी ज़बान से निकली हुई लफ़्ज़ें (الموت خيرمن رکوب العار) "नंगो आर के बरदाश्त करने से मौत का आना बेहतर है। और यह कि (الموت فی عزّ خیرمن حیوة فی ذل) "यानी इज़्ज़त की मौत ज़िल्लत की ज़िन्दगी से बेहतर है।"

सहरा–ए–करबला में गूँज कर फ़ना नहीं हो गये बल्कि उनका पाएदार (मज़बूत) मफ़हूम अब भी ग़ैरतदार अक़वाम के सहीफ़–ए–हयात का सरनामा और दीबाचा–ए–ज़िन्दगी का उनवाने अव्वल है।

यह मुख़तसर लफ़्ज़ें उलूये (बलन्द) हिम्मत की मुनादी (सदा देने वाला) और इज़्ज़ते नफ़्स की तरजुमान हैं और उन्ही को हुसैन[अ०स०] ने अमली वज़्न के साथ दुनिया के सामने रखा है।

सब्र

यह सिफ़त तो हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] के साथ ऐसी मख़सूस हुई कि "सय्यदुस साबेरीन" (सब्र करने वालों के सरदार) का लक़ब हासिल हो गया। मुसीबत के हंगामी तौर पर आजाने के बाद फिर उसको बरदाश्त कर लेना तो एक मजबूरी का सवाल समझा जा सकता है। मगर करबला में हक़ के शैदाई मुसीबतों का खुद इस्तेक़बाल करते थे।

हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] का खुद तलवार न उठाना और तमाम साथियों और अज़ीज़ों को अपने सामने रूख़सत करना कुव्वते बरदाश्त का इन्तेहाई इम्तिहान देना था।

यही रूह आपके तमाम साथियों में भी कार फ़रमा नज़र आती है।

वह आबिस का कहना अपने ग़ुलाम से कि "तुम्हारा क्या इरादा है।" और शौज़ब का जवाब कि "इरादा यही है कि आपके साथ रह कर फ़रज़न्दे रसूल[स०अ०] की नुसरत में जंग करूँ और क़त्ल हो जाऊँ।" और फिर आबिस का कहना कि "शाबाश! मुझे तुम से यही उम्मीद थी। अच्छा तो फिर बढ़ो आगे और इमाम पर जान निसार करो ताकि इमाम तुम्हारी मुसीबत भी उसी तरह देख लें जैसे अपने दूसरे असहाब की देखी है। और मैं भी तुम्हारे ग़म को बरदाश्त करके सवाब का मुस्तहक़ बनूँ। यक़ीनन अगर इस वक़्त कोई ऐसा

शख़्स मेरे साथ होता जिस पर मुझे तुमसे ज़्यादा इख़्तियार होता तो मेरी ख़ुशी होती कि वह मेरे सामने जिहाद में काम आए। ताकि मैं उसकी मुसीबत को बरदाश्त करूँ क्योंकि आज तो दिन ऐसा है जिसमें जितना इन्सान से हो सके उतना अज्रो सवाब हासिल करले क्योंकि आज के दिन के बाद फिर अमल का दफ़्तर ख़त्म है। और हिसाब के सिवा कुछ नहीं है।''[1]

यह वह अलफ़ाज़ हैं जिन्हें इतमीनान के मौक़े पर शाएरी के तौर पर हर शख़्स कह सकता है लेकिन ऐन मुसीबत के मौक़े पर वाक़ई तौर से उनका कहना बहुत मुशकिल है। मालूम होता है मसाएब के उठाने का एक जज़बा है जो ख़ुद इख़्तियारी तौर पर अमली इक़दामात का मुहर्रिक है।

इसी तरह जनाबे अबुल फ़ज़लिल अब्बास[अ0स0] का क़ौल भी अपने भाईयों से कि ''बढ़ो आगे बढ़ो ताकि मैं तुम्हें अपनी आँख से क़त्ल होते देख लूँ।'' इसी वलवले और जज़बे का आईनादार है।

श ुजाअत

इल्मे एख़लाक़ में तय पाया है कि इन्सान की तमाम क़ूव्वतों का मोतदिल (Balance) होना मजमूई तौर पर फ़ज़ाएल का संगे बुनियाद है।

यह दुनिया वालों की नासमझी है कि वह हर उस शख़्स को जो महल बे महल जंग पर आमादा हो जाए, बहादुर और शुजाअ् कह देते हैं लेकिन शुजाअत हक़ीक़तन यह है कि इन्सान के लिए जिस वक़्त क़दम उठाना मुनासिब हो और इक़दाम ज़रूरी हो उस वक़्त पुर जिगरी के साथ वह आगे बढ़े और वह सब कुछ करे जो उसका फ़र्ज़ मालूम होता हो, चाहे इस सिलसिले में उसे जान भी देना पड़े और जिस मौक़े पर इक़दाम मुनासिब न हो बल्कि सुकूत और चश्मपोशी की ज़रूरत हो। उस वक़्त तहम्मुल से काम ले। चाहे उसमें कितने ही मुशकिलात दरपेश हों और नागवार सूरतों का मुक़ाबला करना पड़े।

इस सूरत में ख़ामोशी उसी तरह शुजाअत का सुबूत होगी जिस तरह पहली सूरत में नबर्दआज़माई (जंग)।

दुनिया वाले उमूमन ज़ाहिर बीं (देखने वाले) होते हैं। वह हक़ीक़ी असबाब व एलल (सबब) पर ग़ौर नहीं करते चुनाँनचे हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने जिस तरह और जिस मौक़े पर मैदाने करबला में अपनी अज़ीम क़ुर्बानी पेश की

---

[1]तबरी जि/6, पेज/254

उसकी हक़ीक़ी अहमियत व अज़मत का एहसास करने वाले दुनिया में बहुत कम हैं मगर हर शख़्स हर मौक़े पर जोश पैदा करने के लिए वाक़ेय–ए–करबला की मिसाल ज़रूर पेश करता है, गोया हर शख़्स अपने वक़्त का हुसैन[अ0स0] और हर मौक़ा उसके लिए करबला है। मगर दुनिया को मालूम होना चाहिए कि महल का तक़ाज़ा और असबाब की सूरत मुख़तलिफ़ हुआ करती है।

हुसैन बिन अली[अ0स0] की शुजाअत का वह सिर्फ़ एक रुख़ है जिसे करबला पेश करती हे और उसका दूसरा पहलू वह है जिसे हज़रत ने दस बरस तक अपने भाई इमाम हसन[अ0स0] की सुलह का पाबन्द रह कर पहले दिखलाया। उस दौरान में बहुत से तकलीफ़देह वाक़ेआत पेश आए मगर इमाम हुसैन[अ0स0] ने उन्हें बरदाश्त किया। और किसी तरह मुकद्दर (ज़ुल्म की गन्दगी) फ़िज़ा में अपनी तरफ़ से इज़तेराब पैदा न किया। बेशक जिस वक़्त आपको यह फ़र्ज़ मालूम हुआ कि आप खड़े हों और बातिल से टकरा जायें तो फिर पहाड़ों का इस्तेहकाम (मज़बूती) आपके इस्तेक़लाल तक नहीं पहुंचता था।

आपकी शुजाअत का वह रुख़ भी बेनज़ीर था और यह रूख़ भी ऐसा था जिसकी मिसाल पेश नहीं की जा सकती मगर चूंकि सुकून से हरकत ज़्यादा नुमायाँ चीज़ है और नफ़ी (इन्कार) से ज़्यादा इस्बात (सुबूत) नज़रों को मुतवज्जेह करता है। इसी लिए आम निगाहों में शुजाअत का यह ईजाबी (ज़रूरी) पहलू ज़्यादा खपता है और दुनिया उसे देखती है तो हुसैनी शुजाअत का कलमा पढ़ने लगती है।

सिर्फ़ आप ही नहीं बल्कि आपके साथी भी इस सिफ़त में बेनज़ीर नज़र आते हैं।

करबला की जंग में जो पुर जिगरी के मुज़ाहरात सामने आए हैं वह इन्सान के जिस्म पर रोंगटे खड़े कर देने के लिए आज भी काफ़ी हैं।

याद कीजिए ज़ोहर की नमाज़ को कि किस तरह अदा की गई थी इमाम और आपके असहाब मुसल्ले पर नमाज़ में मसरूफ़ और सईद बिन अब्दुल्लाह हनफ़ी सामने सिपर बने हुए खड़े थे, जो तीर दाहनी या बाईं तरफ़ से आता था उसे अपने जिस्म पर रोकते थे। यहाँ तक कि ज़ख़्मों से चूर होकर गिर गए थे।

या ज़ोहर से क़ब्ल का वह वक़्त जब हमल–ए–ऊला के बाद पचास आदमी फ़ौजे हुसैनी के एक साथ शहीद हो गए थे और उससे लशकरे

मुख़ालिफ़ की हिम्मत बढ़ गई थी। जिस पर अब उसकी कोशिश थी कि दम के दम में यह मुहिम सर हो जाए मगर यह हज़रत इमाम हुसैन[अ०स०] की बेनज़ीर सियासते हर्ब (जंग) और हुसैनी जमाअत की बेमिसाल शुजाअत ही थी जो हर हमले को नाकाम बना देती थी। आख़िर जब शिम्र ने मख़सूस ख़ैम–ए–इमाम हुसैन[अ०स०] पर हमला किया और अपना नेज़ा ख़ैमे पर मार कर कहा था कि आग लाओ मैं इस ख़ैमे को उसके रहने वालों समेत जला दूँ और ख़ैमे से एक शोर रोने का बलन्द हुआ तो सिर्फ़ दस बहादुर जाँबाज़ थे जिन्हें लेकर ज़ुहैर बिन क़ैन आगे बढ़े और शिम्र और उसके साथ की फ़ौज को ख़ैमों के पास से दूर हटा दिया था।

या यह मन्ज़र कि अम्र बिन क़र्ता जंग करते हैं और कुछ देर तलवार चलाने के बाद फिर इमाम के सामने आकर खड़े हो जाते हैं जो तीर आता है उसे अपने सीने पर रोकते हैं और जो वार होता है ख़ुद सिपर बन जाते हैं आख़िर ज़ख़्मों से चूर चूर हो जाते हैं और इमाम से मुख़ातिब होकर कहते हैं "क्यों फ़रज़न्दे रसूल[स०अ०] मैंने फ़र्ज़ को अदा किया।" हज़रत फ़रमाते हैं कि "हाँ तुम जन्नत में मेरे आगे जाओगे।" बहादुर जाँबाज़ ज़ख़्मों की कसरत से ज़मीन पर गिरता है और जाँ बहक़ तस्लीम होता है।

या यह आलम कि जब आबिस तलवार खींचे हुए फ़ौजे दुश्मन पर हमला आवर होते हैं और बुज़दिल दुश्मन की फ़ौज पत्थरों की बारिश कर देती है तो आबिस ज़ेरह और ख़ोद व बक्तर उतार कर फेंक देते और तलवार नियाम से लेकर फ़ौजे मुख़ालिफ़ पर टूट पड़ते हैं।

यक़ीनन उनमें से हर मन्ज़र शुजाअत का एक यादगार मुरक़्क़ा है और उनसे ज़्यादा अज़ीम हुसैनी शुजाअत के काम में लाए जाने का वक़्त था जब एक यको तन्हा और बेकस कमर ख़मीदा और दिल शिकस्ता के सामने हज़ारों आदमी भागते नज़र आते थे।

तमाम मुजाहदीने करबला और उनके सालार हज़रत सैयदुश्शोहदा की शुजाअत ने वह मुरक़्क़े पेश किए जिनका असर दुश्मनों के दिल पर मुद्दतुल उम्र रहा और इसका इज़हार उनकी ज़बान से हुआ किया जैसा कि बुरैर हमदानी के क़ातिल काअ्ब बिन जाबिर ने अपने अशआर में कहा:

"मेरी आँखों ने न इस ज़माने में और न इसके पहले इब्तेदाए उम्र से कभी उनकी ऐसी जमाअत नहीं देखी जो इस शिद्दत से हर्बो ज़र्ब (लड़ने) करने वाली हो। उन्होंने बग़ैर ज़ेरह व बक्तर के जंग में ग़ैर मामूली इस्तेक़लाल

दिखला दिया। यह और बात है कि नतीजतन उससे कोई फ़ाएदा हासिल न हुआ।[1]

यह आख़री फ़िक़रा उसकी माद्दी ज़ेहनियत के लिहाज़ से ही जो कामयाबी को सिर्फ़ जंग की ज़ाहरी फ़तह में मुज़मर समझती थी। हालाँकि मुस्तक़बिल ने साबित कर दिया कि फ़तह भी उसी बहादुर जमाअत को नसीब हुई और उनकी मुख़ालिफ़ अक्सरियत को वह अबदी शिकस्त हुई जो तारीख़ में मिसाल नहीं रखती।

ईसार

मुशतरिका (सबकी) ज़रूरत के वक़्त दूसरे को अपने नफ़्स पर मुक़द्दम करना ईसार है। इस सिफ़त का बेहतरीन और मुकम्मल नमूना इमाम हुसैन[अ0स0] और दूसरे मुजाहदीने करबला ने पेश किया।

इमाम ने तो अपने अमल से यह मिसाल क़ायम कर दी कि ज़रूरत के वक़्त दोस्त क्या दुश्मन को भी अपनी ज़ात पर मुक़द्दम करो। यह सबक़ हज़रत ने उस वक़्त दिया जब इराक़ की राह में फ़ौजे हुर को जो सद्दे राह (रूकावट) होने के लिए आई थी आपने अपने साथ का सब पानी पिला दिया और अपने और अपने वाबस्तगान के मुस्तक़बिल के लिए उसको महफ़ूज़ न फ़रमाया। और करबला में असहाब व अक़ारिबे इमाम में से हर फ़र्द ने इमाम के नफ़्स की हिफ़ाज़त को अपने जिस्मो जान के मुक़ाबले में इस तरह मुक़दम क़रार दे लिया था कि वह अपनी हस्ती को जीते जी मादूम (ख़त्म) समझते थे। सईद का इमाम के मुसल्ले के सामने सिपर बन कर खड़ा होना और तीरों का अपने सीने पर रोकना न भूलने वाले ईसार का मुरक़्क़ा है।

करबला में क़ुर्बानी पेश करने के लिए हर एक दूसरे पर सबक़त करना चाहता था और हर एक का मन्शा यह था कि कम अज़ कम वक़्त के लिए सही वह ख़ुद अपनी जान से गुज़र कर दूसरों के तहफ़्फ़ुज़ का ज़रिया बन सके। अगरचे यह सबको मालूम था कि बचने वाला कोई नहीं, फिर भी फ़िक्र यह थी कि जब तक हम हैं दूसरों पर आँच न आने पाए।

उन्हें अपना ग़म न था, अपनी फ़िक्र न थी, ग़म था अगर तो हुसैन[अ0स0] का, फ़िक्र थी तो उनकी तन्हाई की। चुनाँनचे याद कीजिए सैफ़ बिन हारिस व मालिक बिन अब्द दोनों भाईयों का वह इमाम के पास आकर रोने लगना और

---

[1] तबरी जि/6, पेज/248

इमाम का फ़रमाना क्यों रोते हो? और उनका कहना कि हम अपने लिए थोड़ी रोते हैं। हमें तो आपकी बेकसी पर रोना आ रहा है। हम देख रहे हैं कि आपको चारों तरफ़ से घेर लिया गया है और यह कि अब हमसे आपकी हिफ़ाज़त क़रार वाक़ई तौर पर न हो सकेगी।

इसी तरह यह वाक़ेया भी कि बशीर बिन अम्र हज़रमी को ख़बर पहुँचती है कि उनका फ़रज़न्द अम्र रै की सरहद में क़ैद हो गया है। इमाम बुलाते हैं और फ़रमाते हैं कि तुम मेरी बैयत से आज़ाद हो। जाओ और अपने फ़रज़न्द की रिहाई की फ़िक्र करो और वह बावफ़ा मुजाहिद कहता है कि मुझे जीते जी दरिन्दे खा जायें अगर मैं आपसे जुदा हूँ। यह किसी तरह मुमकिन नहीं।

इन्फ़ेरादी तौर पर जान बचाने के इम्कानात ठुकराये जा रहे थे सिर्फ़ हुसैन[अ0स0] के साथ हक़्क़े वफ़ादारी अदा करने के लिए जनाबे अबुल फ़ज़लिल अब्बास[अ0स0] और उनके भाईयों को दो अमान नामे पहुँचे एक अब्दुल्लाह बिन अबल महल के ज़रिये से जो उनकी वालिदा–ए–गिरामी उम्मुल बनीन का भतीजा था और एक शिम्र के ज़रिये से जो उसी ख़ानदान से था मगर दोनों रद कर दिए गए। अपने सामने ज़िन्दगी की राह साफ़ होने के बावजूद दूसरे की ख़ातिर मौत को इख़्तियार करना कोई मामूली ईसार का मुज़ाहिरा नहीं है। फिर यह भी इमाम और उस पूरी जमाअत का ईसार ही था कि दीनो मज़हब के तहफ़्फ़ुज़ और नौए इन्सानी को मज़ालिम से बचाने की ख़ातिर अपना सब कुछ नज़्र कर दिया और किसी भी शै को जो दुनिया के किसी शख़्स को अज़ीज़ होती, उन्होंने क़तअन अज़ीज़ न किया।

मवासात

दूसरे को मुसीबत में मुबतिला पाकर उसका शरीक और हमदर्द बन जाने का नाम मवासात है। करबला में हुसैन[अ0स0] और अन्सारे हुसैन[अ0स0] ने बाहमी मवासात का बे मिसाल नमूना पेश किया।

इमाम की मवासात का यह आलम था कि कोई मुसीबत अन्सार व असहाब पर नहीं पड़ी जिसमें इमाम ने उनका साथ न दिया हो। अन्सार और अज़ीज़ों की शहादत के उनवान मुख़्तलिफ़ थे लेकिन जब इमाम की शहादत पर नज़र डाली जाती है तो मालूम होता है कि वह किसी एक उनवान के साथ मख़सूस न थी। बल्कि एक बेकस के क़त्ल की जितनी सूरतें हो सकती हैं वह उस एक ज़ात में जमा हो गई थीं। इसी तरह असहाबे हुसैन[अ0स0] की इमाम के साथ मवासात दुनिया–ए–तारीख़ में बेनज़ीर है। वह सिर्फ़ अपनी

जानें नहीं दे रहे थे बल्कि दुनिया को मवासात का न भूलने के क़ाबिल सबक़ याद करा रहे थे और एक बेनज़ीर मिसालिया क़ायम कर रहे थे।

हुस्ने मुआशिरत

दोस्तों के साथ क्या बर्ताव होना चाहिए और अपनों में किस तरह मसावात (बराबरी) मद्दे नज़र रहना चाहिए इसका बेहतरीन सबक़ इमाम हुसैन[अ0स0] ने दिया है। पहले के वाक़यात का तज़किरा जबकि इतमिनान के लम्हे और सुकून के अवक़ात थे इतना अहम नहीं है क्योंकि उन हालात में दूसरे भी मुआशिरती (सोसाइटी) हुकूक़ का कुछ न कुछ लिहाज़ करते हैं मगर आशूर के दिन जब मसाएब का हुजूम था, इमाम हुसैन[अ0स0] ने किस तरह हुकूक़ का लिहाज़ किया है और यह ख़याल रखा है कि किसी के साथ जानिबदारी और पासदारी होने न पाए इसको क़रारे वाक़ई तौर पर समझने के लिए यह देखना होगा कि जमाअते हुसैनी में अज़ीज़ भी थे और ग़ैर भी थे मगर आपका तर्ज़े अमल सबके साथ अपने अपने हुदूद में मसावियाना (बराबर) था और फिर हिफ़्ज़े मरातिब (दर्जा) के साथ यही चीज़ मुशकिल है। जंग के मैदान में और ख़यामे हुसैनी के क़याम की जगह में काफ़ी फ़ासला था। चुनाँनचे इमाम के नफ़्स को कितना तअ्ब (थकन) और कितनी मशक़्क़त बर्दाश्त करना होती होगी मगर चूँकि आपको सबसे अज़ीज़ाना बर्ताव करना ज़रूरी था। लिहाज़ा जो मुजाहिद आता था और इज़ाज़ते जिहाद माँगता था ब–ग़ौर उसे देखते थे, इजाज़ते जिहाद देते थे जब तक कि जंग करता था खड़े होकर उसकी जंग का मुशाहिदा फ़रमाते थे और जब ज़ख़्मी हो कर गिरता था तो उसकी लाश पर जाते थे। उस धूप और गर्मी और तमाज़ते आफ़ताब में हर शहीद की लाश पर जाना और फिर वापस आना कितनी सख़्त ज़हमत का बाइस होता होगा। मगर इमाम को तो दिखाना था कि एक सरदार, एक रईस और एक अफ़सर को अपने साथियों, मा–तहतों या सिपाहियों के साथ किस तरह यगायंगी और मसावात को मल्हूज़ (पेशे नज़र) रखना चाहिए।

उन सख़्त अवक़ात में जबकि एक इन्सान के होश व हवास बजा नहीं रह सकते, यह इमाम हुसैन[अ0स0] ही का काम था कि मुआशिरती हुकूक़ की निगहदाश्त (हिफ़ाज़त) कामिल तौर पर मलहूज़ रखी। फिर याद कीजिये वह

वाक़ेया कि जब बशर बिन अम्र को उनके फ़रज़न्द की गिरफ़्तारी की ख़बर मिली थी तो इमाम हुसैन[अ०स०] ने उनको बुलाकर फ़रमाया कि जाओ और अपने फ़रज़न्द की रिहाई की फ़िक्र करो और उस मुजाहिद ने क़तई तौर पर साथ छोड़ने से इन्कार किया था उस वक़्त क़द्र दाने इमाम ने उनको पाँच क़ीमती कपड़े दिये थे जिनकी क़ीमत पाँच हज़ार अशरफ़ी के क़रीब थी और फ़रमाया था कि अच्छा तुम नहीं जाते हो तो अपने फ़रज़न्द मोहम्मद को भेज दो ताकि वह इन कपड़ों की क़ीमत से अपने भाई की रिहाई का सामान करे। आम तौर पर इन्सान फ़राएज़ के पूरा करने में मामूली से मामूली उज़्र के ज़रिये अपना बचाव करता है और इमाम हुसैन[अ०स०] से बढ़कर ज़ाहरी तौर पर उस वक़्त मजबूर कौन समझा जा सकता था। आप अपने वतन में नहीं बल्कि सफ़र में थे। यही मजबूरी इज़हारे माजूरी के लिए काफ़ी थी। सूरते वाक़ेया से यह भी ज़ाहिर होता है कि आपके पास नक़द रूपया भी मौजूद न था। फिर उस वक़्त महसूर (घिरे) भी थे। बे–आबो दाना भी थे। मौत की मन्ज़िल के सामने भी थे। अपनी और तमाम साथियों की जान का मुआमिला दरपेश था। ऐसी हालत में अगर उस परेशानी पर जो आपके एक साथी को दरपेश थी, आप अख़लाक़ी तौर पर सिर्फ़ इज़हारे अफ़सोस पर इक्तिफ़ा करते तो उन हालात के लिहाज़ से कोई मुतनफ़्फ़िस (जानदार) आपके तर्ज़े अमल पर हर्फ़गीरी (उंगली नहीं उठा सकता) नहीं कर सकता था मगर हुसैन[अ०स०] उस दिन कमाले इन्सानियत का मिसालिया क़ायम कर रहे थे। आपने उस वक़्त भी जब हर शख़्स आपको मजबूर समझ रहा था और उन होशरूबा (होश उड़ा देने वाली) परेशानियों के आलम में जो दरपेश थीं आपने खुद अपने इमकानात का जाएज़ा लिया और जो मुमकिन सूरते इमदाद की नज़र आई उससे दरेग़ नहीं किया।

मैदाने करबला में ऐन मारक–ए जंग में अक्सर साथियों और अज़ीज़ों ने मुख़तलिफ़ तरीक़ों पर हुसैन[अ०स०] से मदद चाही और कभी यह नहीं हुआ कि आपने मदद न दी हो।

याद कीजिये वह मौक़ा जब अम्र बिन ख़ालिद सैदावी, मजमा बिन अब्दुल्लाह और जुनादा बिन हारिस वग़ैरह पाँच बहादुरों ने अन्सारे इमाम हुसैन[अ०स०] में से फ़ौजे मुख़ालिफ़ में घुस कर शमशीर ज़नी करना शुरू कर दी थी और फ़ौजे आदा ने उनको चारों तरफ़ से घेर कर ज़ख़्मी कर दिया था। यह देखना था कि इमाम हुसैन[अ०स०] ने अपने भाई अब्बास[अ०स०] को उनकी

इमदाद के लिए भेजा। और आप ने तने तन्हा जाकर फ़ौज पर हमला किया और बहादुरों को दुश्मनों के हल्क़े से निकाल लिया था।

यह अब्बास[अ0स0] वही थे जिनकी ज़िन्दगी इमाम को इस क़द्र अज़ीज़ थी कि जब तक एक मुजाहिद भी मौजूद रहा अब्बास को मरने की इजाज़त नहीं दी मगर साथियों की क़द्र दानी ऐसी थी कि उनकी ख़ातिर अपने ऐसे अज़ीज़ भाई को फ़ौज के नरग़े में भेज दिया और ख़त्रे की कोई परवाह नहीं की।

वह भी एक तरह की इम्दाद ही थी की जब अब्दुल्लाह बिन उमैर मैदान में मसरूफ़ थे और उनकी वफ़ादार बीवी उम्मे वहब गुर्ज़ हाथ में लिये हुए मैदान में निकल आई थी और पुकार कर कहने लगी थी कि ''हाँ मेरे माँ बाप तुम पर निसार नुसरते औलादे रसूल में कोताही न हो।'' अब्दुल्लाह से कुछ बन न पड़ता था कि ज़ौजा को किस तरह ख़ैमे में वापस करें इमाम ने जो यह देखा आवाज़ दी कि ''ऐ मोमिना ख़ैमे में वापस जा औरतों पर से जिहाद साक़ित है।'' हुक्मे इमाम का वह नहीब (रोअ्ब) था कि फ़र्ज़ शनास ख़ातून फ़ौरन वापस हुई और ख़ैमे में चली गई।

असहाबो अइज़्ज़ा में ज़्यादातर जो घोड़े से गिरता था यही आवाज़ देता था कि या अबा अब्दिल्लाह अदरिकनी (यानी) ऐ इमाम मेरी ख़बर लीजिये और आप हर एक की इमदाद को अपना फ़र्ज़ समझते थे, इमाम की कोशिश यह थी कि किसी का सर उसके तन से जुदा न किया जा सके और यह एक वाक़ेया है कि इमाम की ज़िन्दगी में सिवाये बाज़ अन्सार के जिन्हें इमाम को आवाज़ देने का मौक़ा भी न मिल सका था और किसी का सर तन से जुदा नहीं किया जा सका।

शोहदा की लाशों का एहतेराम हज़रत को इम्कानी हद तक पेशे नज़र था। असहाब की शहादत के मौक़े पर तो साथी अक्सर मौजूद होते थे जो लाश की हिफ़ाज़त का सामान कर लेते थे मगर जब अज़ीज़ों की बारी आई तो फिर ज़्यादा तर खुद हुसैन[अ0स0] को उनकी लाशों को मैदान से उठवाने और ख़ैमे तक लाने का एहतेमाम करना पड़ा। अली अकबर[अ0स0] के लिए कुछ जवानाने बनी हाशिम के ज़िम्मे यह ख़िदमत की गई कि अपने भाई की लाश ख़ैमे तक पहुंचाओ और क़ासिम की लाश आपने खुद उठाई और दूसरे बनी हाशिम की लाशों के पास पहुंचाई। फिर भी यह तमन्ना दिल में यक़ीनी होगी कि काश आप उन सबको दफ़्न भी कर सकते। इसलिए अगर हालात ने इतनी मोहलत न दी कि आप बड़ी लाशों को दफ़्न कर सकें फिर भी आपने

इस फ़र्ज़ को कुल्लियतन तशन–ए–तकमील नहीं छोड़ा चुनानचे शीरख़्वार अली असग़र की छोटी सी लाश को आपने अपने हाथ से सिपुर्दे ज़मीन किया। और इस तरह यह साबित कर दिया कि उस सख़्त तरीन हंगाम–ए–मसाएब में ऐसा नहीं होने पाया कि कोई एक फ़रीज़–ए–एख़लाक़ी भी आपकी नज़र से ओझल और तवज्जा से महरूम रह सके।

इन्सानी हमदर्दी

दोस्तों के साथ मराआत और सुलूक करना एक मोतदिल (Balance) फ़ितरत इन्सान का ख़ास्स–ए–मिज़ाज होता है और यह कोई ग़ैर मामूली अम्र नहीं है लेकिन दुश्मनों के साथ एहसान करना और उन लोगों के साथ नेक सुलूक करना जो अपने से जंग पर तैयार हों। उनकी ज़रूरत पर काम आना जो अपने ख़ून के प्यासे हों। यह हर इन्सान का काम नहीं है। यह सबक़ हुसैन[अ0स0] ने दिया।

इस सिलसिले में नाज़रीन को करबला के रास्ते में मन्ज़िले शिराफ़ का वाक़ेया याद होगा।

करबला में आख़िर वक़्त तक दुश्मनों की ख़ैरख़्वाहाना (हमदर्दी) नसीहत से बाज़ नहीं आए।

असहाब भी इमाम के रास्ते के सालिक (साथी) और आपके क़दम ब–क़दम थे। हर एक ने नसीहत व दावते हक़ के फ़र्ज़ को अदा किया। ज़ुहैर बिन क़ैन की तक़रीर इसी जज़्ब–ए–हक़ कोशी की तरजुमान थी। वह कह रहे थे:

"देखो हर मुसलमान का फ़र्ज़ है कि वह अपने बरादरे मुस्लिम को ख़ैर ख़्वाही के साथ नसीहत करे। और सच्चा मश्वरा दे और हम तुम अभी तक भाई भाई हैं और एक ही दीन और एक ही मिल्लत पर हैं जब तक हमारे दरमियान तलवार चलने न लगे। उस वक़्त तक तुम इसके मुस्तहक़ हो कि तुमको नसीहत करें और नेक सलाह दें।"

हक़ीक़त में हुसैन[अ0स0] अपने किसी दुश्मन के भी दुश्मन न थे बल्कि दोस्त थें वह चाहते थे कि वह किसी तरह निजात के रास्ते पर आ जाएं।

साफ़ बयानी

दुनिया के सियासत अन्देश और क़यादत पसन्द अफ़राद जब किसी तहरीक के दाई (बानी) होते हैं तो वह उन लोगों को जिन्हें साथ लेना चाहते हैं तरह तरह के मवाईद (वादों) से अपनी हिमायत पर आमादा करते और तरह

तरह के खुश आइन्द तवक़्क़ुआत पैदा करा के उन्हें अपनी तरफ़ मुतवज्जा करते हैं। फ़तह व ज़फ़र की कहानियाँ सुनाई जाती हैं। मालो दौलत और जाहो सरवत के ख़्वाब दिखाए जाते हैं और इस तरह लोगों को अपने गिर्द मुजतमा (जमा) किया जाता है।

कौन होगा जो अपनी कमज़ोरियों, मायूसियों और ना उम्मीदियों को उन अशख़ास पर ज़ाहिर कर दे जिनसे उसे काम लेना मन्ज़ूर हैं चेजाएकि कहना कि तुम हमारा साथ छोड़ दो। हमारे पास से चले जाओ और हम नहीं चाहते कि तुम हमारी वजह से जान दो।

मगर हक़ीक़त यह है कि इन्सान की सच्चाई, ईमानदारी और दियानत पर बड़ा हर्फ़ आता है इससे कि वह दूसरों को धोखे में मुबतिला रखे और ग़लत तवक़्क़ुआत क़ायम कराके अपने साथ ले या कम अज़ कम ख़ामोश रह कर अरसे तक उनको ग़लत फ़हमी में मुबतिला रहने दे।

इमाम हुसैन[अ0स0] ने शुरू से आख़िर तक इस बात की कोशिश की कि कोई आपके मुतअल्लिक़ ग़लत फ़हमी में मुबतिला न हो और ग़लत तवक़्क़ुआत की बिना पर साथ देने के लिए आमादा न हो। आप बराबर हक़ीक़ते हाल और अपने आख़री अन्जाम से मुत्तेला करते रहे और एलान फ़रमाते रहे कि हमारा आख़री नतीजा इस सफ़र में मौत है।

उस वक़्त जबकि अभी मदीन–ए–मुनव्वरा से रवाना भी न हुए थे और अग़यार (मजमा) आपके साथ न हुए थे। सिर्फ़ अइज़्ज़ा थे जो हमराही पर आमादा थे उस वक़्त भी आप ऐसी बातें करते थे जिनसे खुद बखुद मौत के इस्तेक़बाल की तैयारी का पता चलता था।

चुनाँनचे अबू सईद मक़बरी जो रजब सन 60 हिजरी में यानी उस ज़माने में जब इमाम हुसैन[अ0स0] मदीन–ए–मुनव्वरा से रवाना हुए हैं वहाँ मौजूद थे नाक़िल (बयान करते हैं) हैं कि मैंने इमाम हुसैन[अ0स0] को देखा कि आप मस्जिदे नबवी में तशरीफ़ ले जा रहे थे और आपकी ज़बान पर इब्ने मुफ़र्रग़ शाएर का यह क़ौल ब–तौरे तमसील (मिसाल) जारी था कि:

لاذعرت السوام فی فلق الصبح   مغیر اولا دعیت یزیدا

یوم اعطی من المهابة ضیما   والمنایا یرصدننی ان احیدا

''यानी यह नहीं हो सकता कि मौत के ख़ौफ़ से मैं ज़िल्लत को बरदाश्त करूँ और उस वक़्त कि जब मौत मेरी ताक में हो मैं हट जाऊँ।''

यह कोई तक़रीर नहीं थी और न कोई ख़ास एलान था मगर सुनने वाले ने समझ लिया और बाद में बयान किया कि इन अशआर को सुनते ही मैंने अपने दिल में कह दिया कि ब–ख़ुदा इन शेअ्रों का पढ़ना रम्ज़ (राज़) से ख़ाली नहीं और कोई न कोई ख़ास मुहिम आपके पेशे नज़र है। उसके बाद दो दिन न गुज़रे थे कि आप मदीने से रवाना हो गए।[1]

अब वह वक़्त आया कि आप मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा से रवाना होने वाले हैं। यह वह वक़्त है कि लोगों को बहुत ख़ुश आइन्द (अच्छे दिन) तवक़्क़ुआत (उम्मीदें) आपके मुतअल्लिक़ क़ायम हो चुके हैं इसलिए कि कूफ़ा इराक़ का पाए तख़्त और बड़ा मरकज़ है। हज़रत अली[अ0स0] का दारूस सलतनत रह चुका है। लोगों की ग़लत ख़याली उन्हें इस धोखे में मुबतिला किए हुए है कि कूफ़ा अली[अ0स0] और औलादे अली[अ0स0] के दोस्तों से भरा हुआ है। वहाँ से बारह सौ ख़त भी आ चुके हैं कि आप आईये और हम आपकी नुसरत में अपना ख़ून पसीने की तरह बहाने के लिए तैयार हैं। इन ख़ुतूत के बाद हज़रत मुस्लिम[अ0स0] रवाना किए जा चुके हैं और उनका भी ख़त आ चुका है कि अट्ठारह हज़ार आदमियों ने आपकी बैयत कर ली है। इस सबके बाद इमाम हुसैन[अ0स0] कूफ़े की तरफ़ रवाना हो रहे हैं तो आम अफ़राद का ख़याल इसके मुतअल्लिक़ यही है कि आप एक ऐसी जगह जा रहे हैं जहाँ ताजो तख़्त के मालिक होंगे और बादशाह तस्लीम किए जायेंगे इसलिए फ़ितरतन बहुत से लोगों को आपके साथ इस ख़याल से हो जाना चाहिए था कि वहाँ जाकर आपकी सलतनत से फ़ाएदा उठायेंगे और नीज़ चूंकि आप ज़रख़ेज़ (उपजाऊ) ख़ित्त–ए–ज़मीन की तरफ़ जा रहे हैं इसलिए वहाँ जाकर माली मुनाफ़े भी हासिल करेंगे। इस तरह यक़ीनन आप जो कूफ़े की तरफ़ तशरीफ़ ले जाते तो एक कसीर (बड़ी) जमाअत जो एक लशकर की हैसियत रखती होती आपके साथ होती। लेकिन यह आपको मन्ज़ूर न था। आपने ज़रूरत महसूस की कि आम लोगों के सामने हक़ीक़त को वाज़ेह फ़रमा दें और सब पर आशकार कर दें कि उनके ख़ुश आइन्द तवक़्क़ुआत सराब (धोखा) से ज़्यादा हक़ीक़त नहीं रखते। आपने मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा से रवानगी के एक दिन क़ब्ल हम्दो सलात (नमाज़) के बाद यह तारीख़ी ख़ुतबा इरशाद फ़रमाया कि:

''मौत औलादे आदम के गले का हार है। मैं अपने असलाफ़ (बुज़ुर्गों) की मुलाक़ात का मुशताक़ हूँ उतना कि जितना याकूब, यूसुफ़ की मुलाक़ात के

[1]तबरी जि/6, पेज/191

मुशताक़ थे। मेरे लिए बेहतर है वह जगह जहाँ मैं क़त्ल करके गिराया जाऊँगा। मेरे पेशे नज़र है वह मन्ज़र जब मेरे जोड़ बन्द वहशी दरिन्दे क़ता कर रहे होंगे। मेरे ख़ून से अपनी प्यास बुझा रहे होंगे। और अपनी हसरतें मेरे ख़ून से निकाल रहे होंगे। कोई चार–ए–कार नहीं है। कोई मफ़र (फ़रार) नहीं है उस दिन से जो क़लमे तक़दीर ने लिख दिया है। जो ख़ुदा की मर्ज़ी हो। उसी में हम अहलेबैत की मर्ज़ी है। हम उसकी आज़माइश पर सब्र करते हैं और जो साबेरीन का अज्र है उसको पूरा पूरा हासिल करते हैं। रसूले ख़ुदा[स0अ0] से उनके जिगर के टुकड़े दूर नहीं हो सकते बल्कि वह बारगाहे कुदरत में जन्नते आला में उनके पास जमा होने वाले हैं जिनसे उनकी आँखें खुन्क (ठंडी) होंगी और उनका वादा पूरा होगा।

जो अपनी जान मेरे साथ फ़िदा करना चाहता हो और मौत पर कमर बाँधे हुए हो वह मेरे साथ चले। मैं सुबह को इन्शाअल्लाह रवाना हो जाऊँगा।''

देखिए किन अलफ़ाज़ में लोगों को अपने साथ चलने की दावत दी जा रही है। क्या इससे बढ़कर दुनिया में हक़्क़ानियत और सच्चाई का सुबूत हो सकता है? क्या इससे बढ़कर साफ़ गोई और पाकबाज़ी का मुज़ाहरा हो सकता है? अब साथ चलने वाले वही लोग थे जो जान देने पर तैयार थे। जो हक़ीक़तन इस्तेक़लाल और साबित क़दमी रखते थे जिनको दुनिया की तवक़्क़ो (उम्मीदें) और राहते दुनिया का कोई ख़याल अपनी तरफ़ मुतवज्जे नहीं कर रहा था। बल्कि वह मजाज़ (बेहक़ीक़त) के पर्दों को चाक करके हक़ीक़त को हासिल करना चाहते थे।

इस हक़ीक़त परवर तक़रीर के बाद वही लोग आपके साथ हुए जो दुनिया के मालो दौलत और जाहो हशम को हेच (बेकार) समझते थे। जो हक़ीक़ी ज़िन्दगी के तालिब थे और उसे मौत का नतीजा समझते थे।

यह तक़रीर मक्क–ए–मुअज़्ज़मा में की गई थी जिसने हर क़िस्म की ग़लत फ़हमी के पर्दों को चाक कर दिया और हक़ीक़ते हाल वाज़ेह कर दी मगर मक्क–ए–मुअज़्ज़मा से रवानगी के बाद रास्ते के आराब (देहाती), बादिया नशीन (रेगिस्तान के रहने वाले) क़बाएल और दूसरे बेख़बर अशख़ास इमाम को देखते हैं कि एक जमीअत के साथ एक क़ाफ़िले की सूरत में जा रहे हैं दरयाफ़्त करते हैं मालूम होता है इराक़ का इरादा है, वहाँ से तलबी हुई है। ज़्यादा तर जो सुनता है उसे ख़याल होता है कि हम भी आपके साथ हो लें।

नतीजा यह हुआ कि मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा से साथ चलने वाली जमाअत गो मुख़्तसर थी मगर रास्ते में तरह तरह के लोग शरीक होते गए और इस तरह वह जमीअत जो इसके क़ब्ल एक क़ाफ़ेले की हैसियत रखती थी एक लशकर की सूरत इख़्तियार कर गई।

कोई और होता तो इस नाख़्वान्दा (बे बुलाये) अज़दहाम को ग़नीमत समझता और उसके अपने साथ हो जाने को बेहतरीन इत्तेफ़ाक़ ख़याल करता। वह चाहता कि किसी तरह उन्हें गिरवीदा बनाये रखे और अपनी गिरफ़्त से निकलने न दे मगर इमाम हुसैन[अ0स0] ने अरसे तक इस सूरते हाल को बरदाश्त न किया। बल्कि उस वक़्त जब मुस्लिम बिन अक़ील और हानी बिन उरवा के क़त्ल होने की ख़बर पहुंची और अब्दुल्लाह बिन यक़तर जो आपके क़ासिद थे उनके भी शहीद होने की इत्तेला आ गई तो मन्ज़िले ज़िबाला पर आपने क़याम फ़रमाया और एक तहरीर जिसे सरकारी बयान कहना चाहिए आपने तमाम अहले क़ाफ़ेला के मजमे में पढ़कर सुनाई जिसका मज़मून यह था कि:

''हमें यह दर्दनाक ख़बर पहुंची है कि मुस्लिम बिन अक़ील और हानी बिन उरवा और अब्दुल्लाह बिन यक़तर शहीद कर डाले गए और उन लोगों ने जो हमारी दोस्ती का दावा करते थे हमारा साथ छोड़ दिया। इस सूरते हाल के बाद जो शख़्स तुम में से वापस जाना चाहे वह वापस चला जाए। हमारी तरफ़ से उस पर कोई ज़िम्मेदारी आएद न होगी।''

हज़रत की इस तक़रीर के बाद लोग मुतफ़र्रिक़ (छटने) होने लगे यहाँ तक कि बस वही मुन्तख़ब जमाअत रह गई जो आपके साथ मदीन–ए–मुनव्वरा से आई थी।

यूँ समझना चाहिए कि मजमा छट जाने के बाद सिर्फ़ वही लोग रह गए जो आपकी मक्क–ए–मुअज़्ज़िमा वाली तक़रीर को सुन चुके थे और हक़ीक़तन मौत पर आमादा थे।

उसके बाद करबला पहुंच कर दसवीं मुहर्रम की शब को जबकि सुलह की गुफ़्तगू ख़त्म हो चुकी थी और सिर्फ़ एक रात की मोहलत ब–मुशकिल माँगने से मिली थी और साथ गिनती के मुन्तख़ब अफ़राद रह गए थे जो मौत के यक़ीनी होने का ज़िक्र कई बार सुन भी चुके थे मगर हज़रत ने चाहा कि ख़तरे के बिल्कुल सामने आने के बाद भी साथ वालों को मौक़ा दे दिया जाए। चुनानचे आपने एक मबसूत (साफ़ लफ़्ज़ों में) और यादगार ख़ुतबा इरशाद फ़रमाया। उसमें साफ़ तौर से कह दिया कि कल का दिन हमारा उन दुश्मनों

के साथ तारीख़ी होगा। मैंने तुम्हारे मुतअल्लिक़ ग़ौर किया है और इस नतीजे पर पहुंचा हूँ कि तुम सब इस वक़्त चले जाओ और मेरी इजाज़त से मेरा साथ छोड़ दो। तुम पर मेरी तरफ़ से कोई ज़िम्मेदारी आएद न होगी। देखो रात का पर्दा पड़ गया है। उसे तुम अपने लिए ग़नीमत समझो और उससे फ़ाएदा उठाओ। तुम ख़ुद भी जाओ और इतना और भी करो कि हर एक तुममें से मेरे एक एक अज़ीज़ का हाथ पकड़ ले और उसे साथ लेता जाए। उसके बाद अपने अपने देहात और शहरों में मुतफ़र्रिक़ (इधर उधर) हो जाओ तावक़्तेकि तुम्हें कशाइश (आसूदगी) हो और बनी उमैया की सलतनत से निजात हासिल हो। यह लोग तो सिर्फ़ मेरे तालिब हैं जब मैं उन्हें मिल जाऊँगा और मुझे क़त्ल कर डालेंगे तो फिर उन्हें किसी दूसरे की फ़िक्र न होगी।

यह आख़री इतमामे हुज्जत थी लेकिन ऐसी जमाअत के सामने जिसमें का कोई फ़र्द हक़ीक़ते हाल से बे ख़बर होकर या किसी लालच से साथ नहीं आया था लिहाज़ा एक तरफ़ अइज़्ज़ा खड़े हो गए और दूसरी तरफ़ असहाब और सबने इमाम का साथ छोड़ने से इन्कार किया।

इमाम हुसैन[अ०स०] ने इस तर्ज़े अमल से यह सबक़ दिया कि दुनिया में हक़्क़ानियत, ज़मीर की सफ़ाई और अमानत का लिहाज़ रखना चाहिए। किसी ग़लत फ़हमी से फ़ाएदा उठा कर अपना मक़सद न निकाले कभी ग़लत तवक़्क़ुआत क़ायम करके अपनी कार बरारी (काम न निकाले) न करे। ग़लत फ़हमी का सद्दे बाब (दूर) करके जो हक़ीक़ी जान निसार हों बस उनकी ही हमदर्दी क़ुबूल करे और किसी की ग़लत अन्देशी और फ़रेब ख़ुर्दगी (धोखे में रख कर) से फ़ाएदा न उठाए।

अम्न पसन्दी और रवादारी

यह इस्लाम का एक बुनियादी उसूल है।

अम्नो अमान यानी "जियो और जीने दो।" इसकी तरफ़ ख़ुद इस्लाम का नाम तक इशरा रखता है। "इस्लाम मुश्तक़ है।" "स्लिम" से और उसके मानी हैं "सुलह पसन्दी।" और ईमान जो एक बलन्द मर्तबा है वह मुश्तक़ है "अमन" से। एक सच्चे मुस्लिम और मोमिन की शान यह है कि उसके हाथ और ज़बान से दूसरे अफ़राद महफ़ूज़ रहें। तुम्हारे हाथ से किसी को तकलीफ़ न पहुंचे। तुम बिला वजह किसी से बर सरे पैकार (लड़ो नहीं) न हो। कभी फ़ितना व फ़साद के बाइस न हो लेकिन उसके साथ एक अहम उसूल और

है। वह यह कि बातिल की हिमायत कभी न करो और तुम्हारे अमल से हक़ पामाल न होने पाए।

यह दो उनसुर (बुनियादें) अम्न पसन्दी मगर हिमायते बातिल से एलाहदगी ही वह होते हैं जिनके लिए अकसर सब्रो सुकून और कभी क़याम व इक़दाम (ज़ुल्म के ख़िलाफ़ खड़े होना) दोनों ही बातों की ज़रूरत होती है इस तरह कि जब तक अपने ऊपर हिमायते बातिल का इलज़ाम न आता हो उस वक़्त तक चाहे जितने भी नुक़सानात बरदाश्त करना पड़ें और नागवार तबा (दिल को नागवार गुज़रने वाले) हालात से गुज़रना पड़े, अमन पसन्दी और ख़ामोशी क़ायम रहे। मगर जिस वक़्त ख़ामोशी से हक़ का दामन तार तार होता हो और बातिल को तक़वियत देने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर आती हो उसी वक़्त से ख़ामोशी की मोहर टूट जाए और जिस हद तक इक़दाम ज़रूरी हो और आगे बढ़ना बातिल परवरी से दामन बचाने के लिए लाज़िम हो दरेग़ न किया जाए चाहे अपने ऊपर इसमें जो भी मज़ालिम हो जायें।

यही चीज़ हमको पैग़म्बरे इस्लाम[स0अ0] की सीरत में नज़र आती है, यही अमीरूल मोमिनीन हज़रत अली[अ0स0] के यहाँ, यही हज़रत इमाम हसने मुजतबा[अ0स0] के यहाँ और यही इमाम हुसैन[अ0स0] के वाक़ेआते ज़िन्दगी और क़दम की रफ़्तार में साफ़ नुमायाँ है।

किताब के इब्तेदाई हिस्सों में पैग़म्बरे ख़ुदा[स0अ0] के सुलह हुदैबिया फिर हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] के दौरे हयात और फिर सुलहे इमाम हसन[अ0स0]के हालात में यह मिसालें काफ़ी वज़ाहत के साथ दर्ज हुई हैं। उन पर ज़रूरी तबसिरा भी किया गया है।

इमाम हुसैन[अ0स0] ने सुलहे हसन[अ0स0] के बाद दस बरस तक इमाम हसन[अ0स0] की ज़िन्दगी में और दस बरस इमाम हसन[अ0स0] के बाद रवादारी और ख़ामोशी की ज़िन्दगी बसर की हालाँकि उस मुद्दत में कैसे सब्र आज़मा मराहिल पेश आए। इमाम हसन[अ0स0] की वफ़ात और रसूल[स0अ0] के रौज़े में दफ़्न से मुमानिअत (मना) यह कोई मामूली वाक़ेया नहीं था मगर हुसैन[अ0स0]जिनकी शुजाअत व जुरअत का वाक़ेय–ए–करबला ने दुनिया से कलमा पढ़वा दिया ऐसे मौक़े पर ख़ामोश रहे। यह रवादारी न थी तो क्या था?

यज़ीद की बिल्कुल ग़ैर आईनी (नाजाएज़) ख़िलाफ़त के सिलसिले में अमीरे शाम ने जो सूरतें इख़्तियार कीं, जलसे किए, ममालिके इस्लामिया में पैग़ाम रवाना किए, लोगों को बैयत पर मजबूर किया मगर इमाम हुसैन[अ0स0] की

तरफ़ से उसके ख़िलाफ़ कोई इस तरह का इक़दाम नहीं हुआ कि आप इस्लामी बिलाद (शहर) में ख़ुतूत भेजते, इज्तेमाई जलसे करते, तक़रीरों और तहरीरों के ज़रिये से मुसलमानों को मुख़ालिफ़त पर आमादा करते। ऐसा नहीं होता।

आपका इब्तेदाई और इन्तेहाई इक़दाम उन मौक़ों पर यही इन्कार था कि मैं बैयत नहीं करूँगा। आप जानते थे कि अगर मुसलमानों में सोचने समझने की कुछ भी सलाहियत बाक़ी है तो यह मेरा इन्कार ही है हक़ पर से पर्दा हटाने के लिए काफ़ी है। और अगर उनकी कूव्वते शुऊर (समझने की सलाहियत) व इम्तियाज़ बिल्कुल ख़त्म ही हो गई है तो कम अज़ कम हम तो ताईदे बातिल के ज़िम्मेदार न होंगे। हमें दुनिया से मतलब नहीं है वह जैसे चाहे ख़लीफ़ा और बादशाह बनाए और जो करना हो करे। मगर हमसे तअर्रूज़ (बूछ–गछ) न करे, हमसे बैयत की ख़्वाहाँ न हो। यह उसूल था जिस पर इमाम हुसैन[अ0स0] अव्वल से क़ायम थे और आख़िर तक क़ायम रहे और इसी लिए मुआविया ने अपनी आज़मूदा कारी (तजरबा) और जहाँ दीदगी (समझदारी) से आपके ख़िलाफ़ कोई सख़्त अमली क़दम नहीं उठाया कयोंकि वह समझते थे कि हुसैन[अ0स0] अम्नो अमान के हामी हैं, जब तक हम ख़ुद उन्हें मजबूर न करेंगे वह अम्न पसन्दी से अलाहिदा न होंगे।

लेकिन उसके बाद मुआविया का इन्तेक़ाल हो गया और यज़ीद तख़्ते ख़िलाफ़त पर बैठा बाप बेटे में नुमायाँ तफ़रक़ा (फ़र्क़) था।

यज़ीद, हुसैन[अ0स0] से ब–जब्र (ज़बरदस्ती) बैयत का तालिब हुआ और मदीने के गवर्नर ने बैयत का मुतालबा हुसैन[अ0स0] के सामने सख़्ती के साथ पेश किया।

यह मालूम है कि जब एक बादशाह दुनिया से जाता है तो लोगों में ख़ास तौर से इन्तेशार होता है और निज़ामे हुकूमत भी इन्तेहाई कमज़ोर हो जाता है। अगर हुसैन[अ0स0] चाहते तो चूंकि उस वक़्त मदीने में वलीद के पास कोई ख़ास फ़ौज भी मौजूद न थी, वलीद को क़त्ल कर देते और मरवान का भी काम तमाम कर देते और इस तरह वक़्ती हैसियत से मदीने में आपकी सलतनत क़ायम हो जाती और फिर आपको मौक़ा होता कि अतराफ़ व जवानिब में ख़ुतूत लिखकर अपने ज़ेरे असर एक बड़ा लशकर फ़राहम कर लें मगर उस सूरत में एक तवील सिलसिल–ए–हर्बो ज़र्ब (जंग) के आग़ाज़ की ज़िम्मेदारी आप पर आएद होती जिसका नतीजा भी बहर हाल मशकूक था।

आपने ख़ूँरेज़ी से बचने के लिए मदीना छोड़ना गवारा किया और मक्क–ए–मुअज़्ज़मा तशरीफ़ ले गए जहाँ आपका जाना इस बात का अमली सुबूत पेश करता था कि आपका हक़ीक़ी मक़सद सिर्फ़ हिमायते बातिल से अलग रहते हुए अपनी और अपने मुतअल्लिक़ीन की ज़िन्दगी को ख़तरे से महफ़ूज़ रखना है इसलिए कि मक्क–ए–मुअज़्ज़मा वह जगह है जिसको (मामिनन्नास) तमाम अन्सानों के लिए महल्ले अमन क़रार दिया गया है।

यहाँ आने के बाद दुनिया की कोई तारीख़ इस बात का पता नहीं देती कि आपने लोगों को मक्क–ए–मुअज़्ज़मा के अन्दर अपनी तरफ़ दावत दी या कुछ लोगों को बाहर से बुलाया हो और लशकर की फ़राहमी में किसी क़िस्म का कोई क़दम उठाया हो।

ज़ाहिर है कि रसूल अल्लाह[स0अ0] से जो निसबत आपको थी और मक्के वालों को जितनी आपकी हस्ती अज़ीज़ हो सकती थी उतनी अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर की नहीं थी। चुनानचे तारीख़ बतलाती है कि इमाम हुसैन[अ0स0] के मक्के में वारिद होने से पहले लोग अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर के गिर्द आकर बैठा करते थे लेकिन जब से आप तशरीफ़ ले आए थे तमाम लोगों ने अब्दुल्लाह को छोड़ दिया था और इमाम के गिर्द परवाना वार जमा हो गए थे। फिर जब अब्दुल्लाह के लिए मक्के में यह मुमकिन हो सका कि वह अपना मज़बूत जंगी महाज़ क़ायम कर लें और एक अरसे तक हुकूमते शाम से बरसरे पैकार रहें तो इमाम हुसैन[अ0स0] के लिए यह बदर्ज–ए–औला (बेहतर) मुमकिन होता मगर आपने मक्क–ए–मुअज़्ज़मा में ख़ामोशी के साथ क़याम करके अमली तौर पर एलान कर दिया कि हम दुनिया में अम्न अमान के ख़्वाहाँ हैं चाहते हैं कि दुनिया में सुकून रहे मगर हम भी अपने इस हक़ के साथ जिस पर हम हैं क़ायम रहें अमनो अमान में ख़लल भी न पड़े और बातिल की हिमायत भी न होने पाए।

जब इराक़ वालों को यह ख़बर मालूम हुई कि इमाम हुसैन[अ0स0] ने इस तरह बैयत से इन्कार किया है तो उन्होंने ख़ुतूत लिखना शुरू किए जिनकी तादाद सैकड़ों तक पहुंची उन ख़ुतूत में से बाज़ में यह भी दर्ज था कि अगर आप आ जाये तो हम नोमान को बाहर निकाल दें और आपको हाकिम बना दें। मगर इमाम हुसैन[अ0स0] ने उन ख़ुतूत के जवाब में जो कुछ लिखा उसमें यह तारीख़ी फ़िक़रात भी दर्ज किए कि ''इमाम के मानी सिर्फ़ यह हैं कि किताबे

ख़ुदा पर आमिल (अमल पैरा) हों इन्साफ़ का पाबन्द हो। हक़ को अपना उसूले ज़िन्दगी क़रार दे और अपनी ज़ात को ख़ुदा की ख़ुशनूदी के लिए वक़्फ़ रखे।''

इसका साफ़ मतलब यह था कि यह न समझना कि मैं जो आ रहा हूँ वह इसलिए कि किसी के ख़िलाफ़ तलवार उठाऊँगा या तख़्ते सलतनत पर क़ब्ज़ा करूँगा बल्कि मुझे हिदायते ख़ल्क़ मन्ज़ूर है और किताबे इलाही व सुन्नते रिसालत पनाही का इजरा (आम करना) मक़सूद है।

ख़त में इसका इशारा तक नहीं कि हमारे सफ़ीर के पहुंचते ही कूफ़े के हाकिम को बाहर निकाल देना और हमारे फ़रस्तादा (भेजे हुए) को नज़्मे हुकूमत सिपुर्द कर देना। उस वक़्त मेरे आने की उम्मीद करना।

इसीलिए हज़रत मुस्लिम ने भी जो आपकी तहरीर के मुताबिक़ आपके मोतमिदे (ज़िम्मेदार) ख़ास और क़ाबिले एतेबार थे और आपकी हिदायत से यकसरे मू (बाल बराबर भी) इन्हेराफ़ करने वाले न थे जहाँ तक हालात साथ देते रहे अपने अमल से उसी का सुबूत दिया।

वह अली[अ0स0] का भतीजा और हुसैन[अ0स0] का सफ़ीर था जो फ़क़ीराना लिबास में बग़ैर किसी साबिक़ा (पिछले) इत्तेला या तुज़्को एहतेशाम (शानो शौकत) के कूफ़े में दाख़िल हुआ। नोमान बिन बशीर दारूल एमारा के अन्दर तख़्तो ताज का मालिक और हज़रत मुस्लिम को उससे न कोई मतलब न तअर्रूज़ (ग़रज़)। आप जाते हैं और एक मामूली ज़मींदार मुख़तार बिन अबी उबैदा सक़फ़ी के मकान में फ़रोकश (ठहरे) हो जाते हैं। वहाँ इजतेमा होता है तो इमाम का ख़त पढ़ कर सुना देते हैं और बस। लोग इमाम की इताअत व वफ़ा का अहदो पैमान करते हैं आ आप उनसे बैयत लेते हैं यह बैयत इसकी दलील नहीं है कि आप कोई बग़ावत बरपा करना चाहते थे या किसी सलतनत की बुनियाद क़ायम कर रहे थे बल्कि यह सिर्फ़ इस क़रारदाद की पहचान थी कि हम हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] की पैरवी और इत्तेबा पर आमादा हैं और हज़रत की हिमायत व हिफ़ाज़त में ब–जानो दिल कोशाँ रहेंगे। इसी लिए जब अट्ठारह हज़ार कूफ़ियों ने बैयत कर ली थी तब भी उन्होंने कोई क़दम हुकूमत के ख़िलाफ़ नहीं उठाया। फिर भी वह उसी मुख़तार के घर में मुक़ीम रहे और नोमान बिन बशीर को उसी तरह तख़्ते हुकूमत पर रहने दिया। ख़ुद नोमान को इसका एहसास था कि जनाबे मुस्लिम का तर्ज़े अमल मुआनिदाना (दुश्मनी भरा) नहीं है। चुनानचे जब लोगों ने कहा कि मुस्लिम बैयत ले रहे हैं और तुम ख़ामोश बैठे हो। तो नोमान ने जवाब दिया ''मैं बस उस शख़्स से

जंग करूँगा जो मुझसे जंग करे और उस पर हमला करूँगा जो मुझ पर हमला आवर हो मगर मैं बद गुमानियों पर अमल नहीं करता।"[1]

इससे साफ़ ज़ाहिर है कि नोमान भी इस बात का एहसास रखता था कि मुस्लिम कोई बग़ावत का क़दम नहीं उठा रहे हैं।

उसके बाद उन असबाब की बिना पर जिनका तज़किरा अपने महल (जगह) पर हो चुका है नोमान बिन बशीर को माजूल किया गया और उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद कूफ़े का गवर्नर मुक़र्रर हुआ और पुर अम्न व सुलह पसन्द ख़ामोश व गोशा गीर (अलग थलग रहने वाले) मुस्लिम बिन अक़ील को बेदर्दी से क़त्ल कर दिया गया।

अभी मुस्लिम के मुतअल्लिक़ कोई इत्तेला आने नहीं पाई थी कि इमाम हुसैन[अ०स०] ने मक्क–ए–मुअज़्ज़मा से हिजरत फ़रमाई। इस फ़ौरी और ब–ज़ाहिर बे मौक़ा रवानगी ही से अन्दाज़ा हो सकता है कि मक्के में हुसैन[अ०स०] को अपने लिए ख़तरा कितना नज़दीक नज़र आ रहा थां जिस हस्ती को इबादते इलाही का इतना शौक़ हो कि मरते मरते इबादत के लिए एक शब की मोहलत मांगी हो वह हज के ऐन मौक़े पर हज को तर्क कर दे। यक़ीनन आपको क़वी अन्देशा था कि अगर आप मक्क–ए–मुअज़्ज़मा में क़याम करेंगे तो बहुत जल्द आप खुफ़िया तरीक़े पर क़त्ल कर दिए जायेंगे। इस सूरते हाल से मुतमइन होने के लिए एक तरीक़ा यह हो सकता था कि वहीं हिफ़ाज़ती तदाबीर (हिफ़ाज़त के तरीक़े) इख़्तियार किए जाते मगर इस हालत में तसादुम के इम्कानात बहुत क़रीब हुए जाते थे। लिहाज़ा जिस तरह मदीने से निकल कर आपने साबित कर दिया था कि मुझे जंग करना मन्जूर नहीं है। उसी तरह क़यामे मक्का को तारीख़े हज से सिर्फ़ एक दिन पहले जबकि मुसलमान तमाम ख़ित्तों से हज के लिए जमा हो रहे थे तर्क किया।

इमाम हुसैन[अ०स०] कूफ़े की तरफ़ रवाना होते हैं। क्या आपने कोई तैयारी की है? सामाने जंग साथ लिया है? नहीं बल्कि उसके ख़िलाफ़ अहले हरम मय अतफ़ाल खुर्द साल (कम्सिन बच्चे) आपके साथ हैं जिससे मालूम होता है कि आप अम्नो सलामती की ज़िन्दगी बसर करने के ख़्वाहाँ हैं और अपनी तरफ़ से जंग के इम्कानात पैदा होने देना नहीं चाहते।

उसके बाद जब कूफ़े के रास्ते में भी ख़ूँरेज़ी के आसार मालूम हुए और हुर का लशकर आता नज़र आया तो आपने रास्ता बदल दिया और दाहनी

[1]अख़बारूत तुवाल पेज/233

तरफ़ का रूख़ करके ज़ूहसम पहाड़ के दामन में जाकर क़याम किया। मगर यह आने वाली फ़ौज खुद तशद्दुद पर आमादा और सुलह पसन्दी से अलाहिदा (दूर) थी। इसलिए जिधर आप को मुतवज्जा देखा इसी तरफ़ यह लशकर भी मुतवज्जा हो गया। इस वक़्त इन वाक़ेयात का तफ़सील से ज़िक्र करना मक़सूद नहीं है। वह पहले बयान हो चुके हैं सिर्फ़ जहाँ तक के रवादारी और सुलह पसन्दी के सुबूत का तअल्लुक़ है। इजमालन (मुख़तसर) यहाँ ज़िक्र किया जा रहा है।

हज़रत का सबसे पहले हुर के लशकर को सैराब कर देना भी बड़ा सुबूत इसका था कि आप जंगजूई के तरीक़ों पर अमल नहीं फ़रमा रहे थे। ज़ोहर की नमाज़ के वक़्त हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने एक तक़रीर में इरशाद फ़रमाया था:

"मैंने उस वक़्त तक तुम्हारी जानिब आने का ख़याल नहीं किया जब तक कि तुम्हारे खुतूत और क़ासिद मेरे पास नहीं पहुँचे इस मज़मून पर मुशतमिल कि हमारा कोई इमाम नहीं है। आप आईये। शायद आपकी वजह से हम हक़ पर मुजतमा (जमा) हो जायें। अब अगर तुम इस बात पर क़ायम हो तो मुझसे अहदो पैमान (वादों) करो और मैं तुम्हारे साथ कूफ़े चलने पर तैयार हूँ और अगर तुम्हें यह मन्ज़ूर नहीं है और मेरा आना नागवार है तो मैं जहाँ से आया हूँ वहाँ वापस चला जाऊँ।"[1]

क्या रवादारी का इससे बढ़कर मुज़ाहरा हो सकता है?

अस्र की नमाज़ के वक़्त भी आपने तक़रीर फ़रमाई और यही कहा कि अगर तुम्हें मेरा आना ना पसन्द हो तो मैं वापस चला जाऊँ मगर हुर ने उसे न माना और आख़िर तय यह हुआ कि आप न तो कूफ़े की तरफ़ जायें और न मदीने की तरफ़ बल्कि ऐसा रास्ता इख़्तियार करें जो कूफ़े और मदीने के अलावा किसी दूसरी तरफ़ को गया हो और उसी क़रारदाद के मुताबिक़ आप रवाना हुए।[2] मगर करबला की ज़मीन के क़रीब पहुंच कर इब्ने ज़ियाद का वह इन्तेहाई तशद्दुद आमेज़ (भड़काऊ) ख़त हुर के पास आया कि "हुसैन[अ0स0] के साथ सख़्ती से काम लो और हुसैन को उतरने पर मजबूर करो एक खुश्क ज़मीन पर जहाँ कोई पनाह लेने का ठिकाना और पीने के लिए पानी न मौजूद हो।"

---

[1]इरशाद पेज/235
[2]इरशाद पेज/236

इस ख़त के बाद हुर ने इतनी सख़्ती बरती कि कुर्बो जवार (आस पास) के क़सबे (गावँ) जो बहुत नज़दीक थे जैसे नैनवा, ग़ाज़रया, शफ़िया किसी में क़याम करने की इजाज़त न दी और कहा मुझे हुक्म यही है कि मैं आपको किसी आबाद मक़ाम पर नहीं बल्कि चटियल मैदान में उतरने पर मजबूर करूँ जहाँ पानी भी क़रीब न हो। उस वक़्त असहाब ने इमाम हुसैन[अ0स0] से कहा कि दुश्मन की तादाद भी ज़्यादा नहीं है आप जंग कर लें लेकिन हुसैन[अ0स0] ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया और कहा मैं किसी सूरत में भी इबतेदा करना नहीं चाहता।[1] फिर उमरे सअ्द के करबला पहुंचने के बाद आपने कई दिन तक उसके साथ मुफ़ाहमत (सुलह) की गुफ़्तो शुनीद (बात चीत) जारी रखी।"

जब उमरे सअ्द आपसे मुलाक़ात के लिए रात के वक़्त उस ख़ेमे की तरफ़ चला जो दोनों लशकरों के दरमियान इसी मक़सद के लिए नस्ब किया गया था तो उसने बीस सवार अपने साथ ले लिए शायद इसलिए कि मुख़ालिफ़ का सामना है। मालूम नहीं सूरते हाल क्या पेश आए मगर जब इमाम हुसैन[अ0स0] तशरीफ़ लाए और आपके साथ आपके असहाब भी हो लिए ताकि हज़रत तन्हा न रहें तो आपने असहाब को अलाहिदा हो जाने का हुक्म दिया और फ़रमाया मैं उमरे सअ्द से तन्हा मुलाक़ात करूँगा। इस तरह यह साबित करना था कि खुलूस और नेक नियती और सब्रो सुकून के साथ गुफ़्तगू करना है जिसके लिए किसी जमीयत (गिरोह) की ज़रूरत नहीं।

जब उमर बिन सअ्द ने यह देखा कि इमाम तन्हा रह गए हैं तो उसने भी साथियों को वापस कर दिया। इमाम हुसैन[अ0स0] की गुफ़्तगू सरासर सुलह पसन्दी पर मबनी थी। आपने यह कहा कि मैं मदीने वापस चला जाऊँगा। यह कहा कि मुझे मुल्के अरब से बाहर चला जाने दो और दूर तरीन सरहदों में ज़िन्दगी गुज़ारने दो।

मुख़तसर यह कि अम्न आम्मा (पूरी तरह अम्न) को क़ायम रखने के लिए आप अपनी ज़ात पर हर तकलीफ़ बरदाश्त करने के लिए तैयार थे मगर यज़ीद को जाएज़ ख़लीफ़–ए–रसूल या इस्लाम का सच्चा नुमाइन्दा तस्लीम करने पर आप किसी तरह तैयार न थे।

आपका रवैया तहफ़्फ़ुज़े अमन के बारे में इतना वाज़ेह था कि फ़ौजे यज़ीदी के अफ़सर उमरे सअ्द ने अपने हाकिम उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद को ख़त लिखा कि "मुबारक हो ख़ुदा ने फ़ितने की आग को बुझा दिया और

---

[1] इरशाद पेज / 238–239

मुसलमानों के शीराज़े को मुजतमा (एक जगह) किया और उम्मते इस्लामी के अम्र (आमाल) की इस्लाह की। हुसैन[अ0स0] सुलह पर आमादा हैं और उनके शराएत ऐसे हैं जिन्हें कुबूल करने में हमको उज़्र न होना चाहिए।

इब्ने ज़ियाद भी मुसालेहत की तरफ़ माएल हो चुका था। सिर्फ़ शिम्र की मुफ़सिदाना (फ़साद पर मबनी) दरअन्दाज़ी वह थी जिसकी वजह से इब्ने ज़ियाद ने इस आख़री रिश्ते को तवक़्क़ुआते अम्न (अम्न की उम्मीद) को क़ता (ख़त्म) कर दिया। और इब्ने सअ्द को ख़त लिखा कि हमने तुमको गुफ़्तो शुनीद (बात चीत) और मुसालिहत के शराएत तय करने के लिए नहीं भेजा है बल्कि तुम हुसैन[अ0स0] के सामने सिर्फ़ ग़ैर मशरूत इताअत का मुतालिबा पेश करो। और अगर वह मन्ज़ूर न करें तो फिर उनसे जंग करो।[1] इस ख़त का पहुँचना था कि बस उमरे सअ्द ने पूरी फ़ौज को हुसैन[अ0स0] और असहाबे हुसैन[अ0स0] पर टूट पड़ने का हुक्म दे दिया। फिर भी इमाम हुसैन[अ0स0] ने एक रात के लिए ख़ूँरेज़ी को और रोका।

सुबह हुई आशूर की क़यामत ख़ेज़ सुबह। पैमाना लब्रेज़ और पानी सर से ऊँचा हो चुका है और कोई उम्मीद सुलह की बाक़ी नहीं है मगर हुसैन[अ0स0] अब भी अमन पसन्दी का सुबूत दे रहे हैं कि मैं अपनी तरफ़ से जंग करना नहीं चाहता।

सुबहे आशूर उस वक़्त कि जब इमाम ख़ामोशी के साथ अपने ख़ैमे के दरवाज़े पर खड़े थे और ख़ैमे की पुश्त पर ख़न्दक़ में आग भड़क रही थी शिम्र ने आकर निहायत सख़्त जुमला कहा कि "आख़िरत की आग से पहले दुनिया ही में तुमने आग का सामान कर लिया।" यह इतना इशतेआल अंगेज़ फ़िक़रा था कि ज़ईफ़ुल उम्र मुस्लिम बिन औसजा को भी ताब न रही और इमाम से इजाज़त मांगी कि उसे तीर का निशाना बनायें।[2] मगर हज़रत ने फ़रमाया कि "नहीं ऐसा न करो मैं जंग में इब्तेदा नहीं करना चाहता।

इतमामे हुज्जत की तमाम मन्ज़िलें इमाम हुसैन[अ0स0] की तरफ़ से तय की जा रही हैं जिन्हें अपनी जान का कोई ख़ौफ़ नहीं है। जो मौत को अपनी आख़री मन्ज़िल समझ चुके हैं उसका बित–तकरार (बार बार) एलान फ़रमाते रहे हैं। जो मौत का इस्तेक़बाल कुशादा पेशानी (खुले दिल) के साथ करने पर तैयार हैं उसके बाद यह अमन पसन्दी, यह सुलह जूई यह इशतेआल

---

[1]इरशाद पेज/241

[2]इरशाद पेज/247

(वरग़लाने) से अलाहदगी, यह जज़बात की रोक थाम यह साथियों के वलवलों (हौसलों) की निगहदाश्त (नज़र)। यक़ीनन इमाम हुसैन[अ0स0] उस दिन जिहाद बिस–सैफ़ (तलवार) से पहले जिहाद बिन–नफ़्स की मन्ज़िल तय कर रहे थे। और "जिहादे असग़र" के साथ "जिहादे अकबर" का फ़र्ज़ अदा कर रहे थे।

इमाम हुसैन[अ0स0] ने सुबह की मैदाने जंग में जबकि तमाम इशतेआल अंगेज़ सूरतें पैदा हो चुकी थीं मगर उसके बाद भी आपकी जानिब से जंग की तैयारी का मुज़ाहरा नहीं हुआ। आप घोड़े पर सवार भी नहीं हुए जो जंग का मरकब (सवारी) होता है बल्कि नाक़े पर सवार हुए जो अमन की निशानी है और उसके बाद वह तारीख़ी खुतबा पढ़ा जिसमें अपने नाम व नसब का तआरूफ़ कराया। अपनी बेगुनाही का ब–दलाएल सुबूत पेश किया और उसके आख़िर में आपने पूरे मजमे के सामने यह ऐलान किया कि अगर तुम लोगों को मेरा आना पसन्द नहीं है तो मैं जहाँ से आया हूँ वहीं वापस जाने दो। यही वह बात थी जो आपने हुर के सामने पेश की थी और वही अब पूरे लशकर के सामने पेश की जा रही थी। यह वह ज़बरदस्त अम्न पसन्दी के मुज़ाहरात थे जिन्हों ने हुर को फ़ौजे यज़ीद का साथ छोड़ देने पर मजबूर किया जिसकी तफ़सील पहले बयान हो चुकी है। उसके बाद जंग छिड़ गई। दुनिया में जंग का क़ाएदा था कि बड़े से बड़े बहादुर भी जंग में ज़िरह पहनते थे मगर करबला में हुसैन सिर्फ़ एक कुर्ता पहने हुए थे ख़ज़ का जो एक निहायत बारीक कपड़ा होता है और सर पर अम्मामा बाँधे थे[1] उसे देख कर हर शख़्स सोच सकता है कि क्या जंग की तैयारी यूँही होती है और जिसको लड़ना मन्ज़ूर होता है वह यूँही मैदाने जंग में आता है?

कुर्बानी

हुसैन[अ0स0] की कुर्बानी एक मुनज़्ज़म (Sistametic) हैसियत रखती थी। अगर वह अपनी शहादत के मरहले को सबसे पहले तय कर लेते तो यह कहने को होता कि मसाएब से घबरा कर अपनी जान दे दी लेकिन आपने आहिस्ता आहिस्ता कुर्बानी के मनाज़िल (दरजे) को तय करके यह साबित कर दिया कि आपका इक़दाम किसी वक़्ती जज़्बे का नतीजा नहीं था बल्कि मुआमिला फ़हमी (हालात को समझ कर) और फ़र्ज़ शनासी (ज़िम्मेदारी का एहसास) पर मबनी था।

---

[1]तबरी जि/6, पेज/259

आपका मक़सद यह था कि अपनी तरफ़ निसबत रखने वाली हर अज़ीज़ शै को ख़ुद अपने हाथ से क़ुर्बान करें और जब अपने नफ़्स (जान) के सिवा कुछ बाक़ी न रह जाए तो इस माताये गिराँ माया (क़ीमती जान) को क़ुर्बानी के मैदान में पेश कर दें।

आपने रोज़े आशूर सबसे पहले अपने महबूब तरीन आवान (मददगार) व अन्सार और साथ के खेले हुए अहबाब को क़ुर्बान किया। यहाँ तक कि अज़ीज़ों की बारी आई तो आपने एक एक करके उन सबको मैदाने क़ुर्बानी में भेजा। अपने दिल की क़ूव्वत, आँखों की रौशनी और पीरी (बुढ़ापे) के सहारे अली अकबर के ऐसे फ़रज़न्द, क़ासिम व अब्दुल्लाह ऐसे भेतीजे। अबुल फ़ज़लिल अब्बास[अ0स0] ऐसे वफ़ादार भाई सबको फ़िदय–ए–राहे हक़ होने दिया और सबके बाद बाग़े उम्मीद की आख़री कोपल और गुन्च–ए–नाशगुफ़्ता (वह फूल जो न खिल सका, कली) अली असग़र[अ0स0] को ख़ुद अपने हाथों पर निशाना–ए–तीरे सितम होते देख लिया। अभी तक दिल के टुकड़ों की क़ुर्बानी हो रही थी। अब आज़ाए (हिस्सा) बदन तक नौबत पहुंची। सतहे जिस्म का चप्पा चप्पा और ख़ून का हर हर क़तरा क़ुर्बान किया। यहाँ तक कि तने अक़दस पर तीरों को जगह न मिलती थी और दुश्मनों की तलवारों और नैज़ों को जुस्तजू के बाद भी कोई ख़ाली गोशा दस्तेयाब न होता था। जब जिस्म का हर हिस्सा और दिल का हर टुकड़ा क़ुर्बान हो चुका तो अब हुसैन[अ0स0] के लिए कोई चार–ए–कार न था। कोई क़ुर्बानी के क़ाबिल शै बाक़ी नहीं रही थी। सिर्फ़ एक रिश्त–ए–हयात था जो रूह व बदन के बन्दर पूरी कशमकशे हयात के बावजूद क़ायम था और सरो गर्दन का इरतिबात (रिश्ता) था जिसमें अब तक जुदाई न हुई थी। ऐसे बाहिम्मत मुजाहिद के लिए गुज़िश्ता तमाम क़ुबानियों के मरहले तय कर चुकने के बाद, यह मन्ज़िल बिल्कुल आसान थी। अस्र के होते होते हुसैन[अ0स0] इस क़ुर्बानी में कामयाब हो गए और ख़न्जरे शिम्र से कुछ देर राज़ो नियाज़ के बाद एक तरफ़ नफ़्स की आमद व शुद (सांस के आने) का सिलसिला और जिस्मो रूह का ज़ाहरी इत्तेसाल (राबिता) क़ता (ख़त्म) हुआ और दूसरी तरफ़ सरो गर्दन के बाहमी इरतेबाद (रब्त) में जुदाई पैदा हुई।

आसमान लाखों बरस गर्दिश करे, ज़माने के वरक़ हज़ारों बार उलट जायें लेकिन इतनी शानदार, मुकम्मल, व मुनज़्ज़म और मुरत्तब क़ुर्बानी की मिसाल पैदा नहीं हो सकती।

बाज़ मुतफ़र्रिक़ (मुख़्तलिफ़) तालीमात

वाक़ेय–ए–करबला की यह ख़ास ख़ुसूसियत है कि इतने हंगामा ख़ेज़ माहौल में हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने फ़राएज़ के ऐसे जुज़ईयात (छोटी छोटी बातों) तक को पूरा किया है जिन्हें आम इन्सान निसबतन (सिरे से) बिल्कुल मामूली और ख़फ़ीफ़ (हलका) इज़्तेराब (परेशानियों) के मौक़े पर भी तर्क कर देते हैं या कम अज़ कम मुलतवी (टाल) करते हैं या फ़र्ज़ की पाबन्दी में कम अज़ कम ख़िफ़्फ़त (हलका समझना) पैदा करते हैं। मगर हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने सख़्त से सख़्त अवक़ात में फ़राएज़ की पाबन्दी उतनी ही सख़्ती के साथ की जितनी कि आम हालात में हो सकती थी। मसलन चन्द चीज़ें दर्ज ज़ैल हैं।

पर्दा

यह शरीअते इस्लामिया का एक क़ानून है कि मर्द और औरत के फ़राएज़, तर्ज़े ज़िन्दगी और निज़ामे मुआशरत (सोसाईटी) जुदा है। मर्द पर जब मौक़ा आए तलवार लेकर जिहाद वाजिब है मगर औरत पर से जिहाद साक़ित नहीं है। मर्द मैदान में नज़र आना चाहिए और औरत घर की चहार दीवारी के अन्दर यह पर्दा औरत के लिए एक लाज़मी फ़रीज़ा है और उसकी पाबन्दी ताहद्दे इम्कान (इम्कान की आख़री हद तक) ज़रूरी है।

ख़ानदाने रसूल[स0अ0] की शान जिस तरह तमाम इबादात व वाजिबात के अदा करने में इम्तियाज़ी दर्जा रखती थी उसी तरह पर्दे के बारे में भी उस घराने का एहतेमाम ख़ुसूसी इम्तियाज़ रखता था।

दुख़्तरे रसूल हज़रत फ़ातिमा ज़हरा[स0अ0] उस घराने की मुक़द्दस ख़्वातीन के लिए मूरिसे आला (बलन्द तरीन नमून–ए–अमल) की हैसियत रखती थीं जिन्हें पर्दे का इतना ख़याल था कि मरने के बाद जनाज़े पर भी नामहरम की निगाह पड़ना गवारा न थी।

करबलाः में हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] के साथ उस घराने की तक़रीबन तमाम मुक़द्दस ख़्वातीन मौजूद थीं। पैग़म्बरे ख़ुदा की नवासियाँ ज़ैनब व उम्मे कुलसूम हज़रत अली[अ0स0] की बेटियाँ फ़ातिमा और रूक़ैया, बहूवेः बेव–ए–इमामे हसन[अ0स0] और ख़ुद आपकी अज़वाज लैला और रबाब, साहबज़ादियाँ फ़ातिमा व सकीना[अ0स0] और दीगर अज़ीज़ ख़्वातीन। उनके अलावा कनीज़ें थीं। बाज़ असहाब भी अपने मुतअल्लक़ीन (फ़ैमली) के साथ आए थे जैसे मुस्लिम बिन औसजा, अब्दुल्लाह बिन उमैर और जुनादा बिन काअ़ब वग़ैरह।

हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने अपने अहले हरम की पर्दे दारी का एहतेमाम हर लमहा पेशे नज़र रखा। रास्ते में जब फ़ौजे हुर आते दिखाई दी थी तो आपने ज़ूहसम पहाड़ी इसी लिए मुन्तख़ब की थी कि उसे पुश्त पर क़रार देकर ख़यामे अहलेबैत बरपा (लगाये) किए जायें। चुनानचे यह काम इतनी तेज़ी से अमल में लाया गया कि ख़ैमे बरपा हो चुके और अहले हरम ख़ैमों में फ़ुरूकश (आराम फ़रमा) हो चुके उस वक़्त हुर का लशकर वहाँ पहुंच सका।

करबला में भी हज़रत ने जाए क़याम के लिए रेगिस्तानी टीलों का एक सिलसिला मुन्तख़ब किया था। फिर शबे आशूर ख़ैमों की तनाबों को एक दूसरे से इस तरह वाबस्ता कर दिया था कि किसी एक ख़ैमे की तनाबें काट कर गिराना ग़ैर मुमकिन हो गया था। और ख़ैमों के गिर्द ख़न्दक़ खुदाई थी और उस शदीद गर्मी में उसके अन्दर आग रौशन कराई थी इसी लिए कि पुश्त पर से दुश्मन ख़ैमों की जानिब न आ सके।

यह तमाम इन्तेज़ामात सुबहे आशूर आग़ाज़े जिहाद से पहले ही मुकम्मल हो चुके थे।

बीबीयाँ ख़ैमों के अन्दर और अइज़्ज़ा मैदाने जिहाद में बाहर थे। क्या इस मौक़े पर अहले हरम के दिलों में इज़्तेराब की जो कैफ़ियत थी उसका कोई अन्दाज़ा कर सकता है। जबकि तीरों की मुसलसल बारिश हो रही थी। ज़मीन घोड़ों के सरपट दौड़ने से लरज़ रही थी, चारों तरफ़ ग़ुबार से तारीकी छाई हुई थी। फ़ौजों का सैलाब बार बार सफ़े हुसैनी के कोहे इस्तेक़लाल (मज़बूत अज़्मो इरादे के पहाड़) से टकरा कर शोर करता हुआ वापस होता था और हर मर्तबा बहनें भाईयों के लिए, मायें बच्चों के लिए, बीवियाँ शौहरों के लिए फ़ितरतन मुज़तरिब हो जाती होंगी मगर क्या मुमकिन था कि उनमें से किसी का क़दम ख़ैमे से बाहर निकला हो।

वह मौक़ा उससे ज़्यादा सख़्त था कि एक माँ को ख़बर पहुंचती है कि उसका बेटा मसरूफ़े जिहाद है। या एक बहन को यह कि भाई लड़ रहा है। या एक ख़ातून को यह कि उसका शौहर दुश्मन की फ़ौज में घिर गया है। इस मौक़े पर एक शरीफ़ और बाइज़्ज़त ख़ातून के लिए और वह भी अरब की ख़ातून जो ख़ुद फ़ित्री शुजाअत का ख़ून रगों में रखती हो और वह भी ख़ानदाने बनी हाशिम की ख़्वातीन जिनको शुजाअते हैदरी विरसे में मिली हो कितना दुश्वार है कि वह सब्र व सुकून के साथ अपनी जगह पर बैठी रहें

जबकि कोसों की मुसाफ़त नहीं, पहाड़ों का ओट नहीं बल्कि सिर्फ़ ख़ैमे का पर्दा और मैदाने जंग की वुसअत दरमियान में है।

उससे ज़्यादा सख़्त वक़्त वह था कि जब ख़बर पहुंचती है कि बेटा, भाई या शौहर ज़ख़्मी होकर गिर गया है और अपनी ज़िन्दगी की आख़री सांसें ले रहा है और फिर उसकी फ़रयाद की आवाज़ आती है कि या अबा अब्दिल्लाह अदरिकनी और जब इमाम उसकी आवाज़ पर जाते दिखलाई देते हैं। यह मौक़ा दिल की दुनिया में ज़लज़ला पैदा कर देने वाला और सब्रो तहम्मुल की कशती को तूफ़ानी बना देने वाला है।

ऐसे मौक़ों पर बाज़ असहाब की औरतें नुसरते हुसैन[अ0स0] के शौक़ में बेचैन होकर मैदाने जिहाद में निकल आईं जैसे अब्दुल्लाह बिन उमैर की ज़ौजा और अम्र बिन जुनादा की माँ तो इमाम हुसैन[अ0स0] ने उनको फ़र्ज़े इस्लामी की तरफ़ तवज्जो दिलाई। फ़रमाया कि औरतों पर से जिहाद साक़ित है और उन्हें ख़ैमों की तरफ़ वापस कर दिया।

क्या कोई कह सकता है कि ज़ौज–ए–अब्दुल्लाह बिन उमैर और मादरे अम्र बिन जुनादा में जुरअत व शुजाअत का जौहर हज़रते ज़ैनब व हज़रत उम्मे कुलसूम से ज़्यादा था जिनकी रगों में अली बिन अबी तालिब[अ0स0] का ख़ून गर्दिश कर रहा था। हरगिज़ नहीं मगर उनके एहसासे फ़राएज़ की पुख़्तगी थी कि उन्होंने किसी वक़्त भी अपनी हद से क़दम आगे नहीं बढ़ाया।

बहुत ज़्यादा सख़्त मौक़ा वह था जब खुद इमाम हुसैन[अ0स0] नैज़ा व शमशीर व तबर का निशाना बने हुए थे फिर सबसे बढ़कर वह वक़्त जब आप घोड़े से ज़मीन पर तशरीफ़ ला चुके थे। मगर क्या अन्दाज़ा हो सकता है उन बरगुज़ीदा ख़वातीन के एहसासे फ़राएज़ का जिन्हों ने उस मौक़े पर भी उसूले शरीअत का एहतेराम हाथ से नहीं जाने दिया।

जिस वक़्त अब्दुल्लाह बिन हसन ने ख़ैमे से तड़प कर बाहर निकलना चाहा था और हज़रत उम्मे कुलसूम ने दामन पकड़ लिया था कि कहाँ जाते हो मगर बच्चा यह कहता हुआ कि इस आलम में मैं अपने चचा को तन्हा न छोड़ूंगा। दामन हाथ से छुड़ा कर रवाना हो गया। बस अब उम्मे कुलसूम बेबस हो गई थीं और ऐसा नहीं हुआ कि आप बच्चे के साथ मैदान में आ जातीं। मालूम होता है कि जहाँ तक ख़ैमे के हुदूद थे वहाँ तक उम्मे कुलसूम चली आईं और जहाँ से बच्चा उससे आगे बढ़ गया बस शाहज़ादी के क़दम रूक गए।

करबला में हिफ़्ज़े मरातिब (मर्तबों का लिहाज़ा) के उसूल बरते जा रहे थे। वहाँ हर अदना आला पर कुर्बान हो रहा था। असहाब अइज़्ज़ा पर कुर्बान हुए और अइज़्ज़ा इमाम पर कुर्बान हुए और इमाम, दीने खुदा पर कुर्बान हुए। अगर आईने इस्लाम के हुदूद में कुछ भी गुन्जाइश होती तो उस वक़्त जब हुसैन[अ0स0] ज़ख़्मी हो चुके थे और क़रीब था कि आपके जिस्म व रूह में मुफ़ारिक़त (जुदाई) हो जाए, तमाम ख़ानदाने बनी हाशिम की ख़्वातीन तलवारें लेकर मैदाने जिहाद में आ जातीं। बल्कि यक़ीन समझना चाए कि काफ़ी वक़्त तक हुसैन[अ0स0] की हिफ़ाज़त की जा सकती थी और ज़रूर वाक़ेय–ए–करबला में एक नई नौइयत पैदा हो जाती, मगर न इमाम हुसैन[अ0स0] इस तरह की कुर्बानी को अपने निज़ामे अमल में जगह दे सकते थे। और न वह मुख़द्दराते इस्मत (पर्दा दार औरतें) ख़ून के इन्तेहाई जोश और दिल के इन्तेहाई तलातुम के बावजूद कोई एक क़दम भी हुसैन[अ0स0] के मुरत्तब कर्दा (तैयार किया हुआ) नक़्श–ए–जंग के ख़िलाफ़ उठाने के लिए तैयार थीं इसलिए हुसैन[अ0स0] की तन्हाई भी देखी दुश्मन के हमलों का ख़रोश (शोर) भी सुना, फ़तह के बाजों की आवाज़ें भी आईं और क़ुतिलल हुसैन की जिगर ख़राश (ज़ख़्मी) सदा भी गोश ज़द (कानों में) हुई मगर वह जहाँ हुसैन बिठा गए थे वहीं बैठी रहीं। उस वक़्त तक जब तक वह जगह बाक़ी रही। हाँ जब ख़ैमों में आग के शोले बलन्द थे, उस वक़्त मजबूर होकर इमामे वक़्त हज़रत ज़ैनुल आबेदीन[अ0स0] के शरई हुक्म के मातहत मैंदान में निकलीं और फिर भी इख़्तियार की रफ़्तार के साथ पर्दे का एहसास क़ायम रहा। जब तक चादरें रहीं, चादरों का पर्दा रखा। चादरें न रहीं तो बालों से मुंह छुपाए। दरबार में कनीज़ों के हल्क़े में अपने को मख़फ़ी (छिपाया) किया। और जब यज़ीद के दरबार में तक़रीर की ज़रूरत महसूस हुई तो अज़ीज़ों के तलवारों से टुकड़े टुकड़े किए जाने से ज़्यादा दर्दनाक अलफ़ाज़ में उस मुसीबत का शिकवा किया कि तूने अपनी औरतों और कनीज़ों को तो पर्दा में बिठाया है और ख़ानदाने रसूल[स0अ0] की ख़्वातीन को इस तरह दर बदर फिरा रहा है कि उनके चेहरों पर अपने पराए हर एक की निगाह पड़ रही है।

ऐसे सब्र आज़मा मवाक़े पर इस फ़रीज़–ए–इस्लामी की इतनी मुशकिल निगहदाश्त (तवज्जो) की गई है जो हमेशा के वास्ते मुसलमानों के सामने एक ज़र्रीं मिसाल की हैसियत से क़ायम रहेगी।

वसीयत

शरीअते इस्लामी में वसीयत का पूरा करना एक अहम फ़रीज़ा है। बाज़ वसीयतें इन्सान के ज़ाती जज़बात व नफ़सियात के ख़िलाफ़ होती हैं मगर मरने वाले इन्सान का एहतेराम उसकी वसीयत की तामील पर मजबूर करता है। बाज़ वसीयतें बाद के पैदा शुदा हालात में दुशवार या आम निगाहों में ख़िलाफ़े मसलेहत भी होती हैं मगर फ़र्ज़ शनास इन्सान को वसीयत की पाबन्दी मौजूदा हालात के तक़ाज़े पर मुक़द्दम महसूस होती है।

हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने अपने बुज़ुर्गों की वसीयत का जिस तरह और जिन जिन मौक़ों पर लिहाज़ किया है वह न भूलने के क़ाबिल एक सबक़ है। रसूल अल्लाह[स0अ0] की वफ़ात के वक़्त इमाम हुसैन[अ0स0] बहुत कमसिन थे मगर मज़हबी रिवायात मुत्तफ़िक़ा (बग़ैर इख़्तिलाफ़ के) तौर पर यह बतलाते हैं कि रसूल अल्लाह[स0अ0] ने अपने इस बच्चे की सलाहियतों का कमसिनी ही में अन्दाज़ा करके उसे अपने मज़हबे इस्लाम की मुस्तक़बिल में हिफ़ाज़त करते रहने की वसीयत की थी। अगर उसे लफ़्ज़ी तौर पर कोई न भी माने तो इसमें तो शुबहा (शक) नहीं कि रसूल अल्लाह[स0अ0] का बर्ताव हुसैन[अ0स0] के साथ और इस्लाम के मफ़ाद पर पैग़म्बर[स0अ0] का हर कुर्बानी के लिए आमादा रहना यह हर लमहा हुसैन[अ0स0] के नज़दीक उस वसीयत की हैसियत रखता था कि जब इस्लाम पर कोई वक़्त पड़े तो अपनी जान अज़ीज़ न करना। तुम्हें उसी दिन के लिए इस मुहब्बत व शफ़क़त की गोद में पाला जा रहा है। हुसैन[अ0स0] ने उस वसीयत को मरते दम तक याद रखा और करबला का पूरा वाक़ेया उसी वसीयत की तामील था।

हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ0स0] ने अपनी वफ़ात के क़ब्ल इमाम हसन[अ0स0] को जानशीन बनाते हुए हुसैन[अ0स0] को उनकी पैरवी की हिदायत कर दी थी। हुसैन[अ0स0] ने बेनज़ीर तरीक़े पर उस फ़र्ज़ को भी अन्जाम दिया।

इमाम हसन[अ0स0] की वसीयत थी कि मेरे ताबूत को मेरे जद्दे बुज़ुर्गवार रसूल अल्लाह[स0अ0] के मज़ार की तरफ़ विदा के लिए ले जाना लेकिन अगर मुज़ाहमत (रूकावट) हो तो एक क़तर–ए–खून गिरने न पाए बग़ैर किसी जंग व मुक़ाविमत के मेरे जनाज़े को वापस लाना और बक़ीअ् में दफ़्न कर देना। हुसैन[अ0स0] हस्बे वसीयत भाई का जनाज़ा रौज़–ए–रसूल पर ले गए मगर जैसा कि इमाम हसन[अ0स0] को अन्देशा था वही हुआ। उम्मुल मोमिनीन आएशा और मरवान वग़ैरह ने मुख़ालिफ़त की। नौबत यह पहुंची कि मुख़ालिफ़ जमाअत ने

तीरों की बारिश कर दी और कुछ तीर जनाज़–ए–इमाम हसन[अ0स0] तक पहुंचे। बनी हाशिम के इशतेआल (गुस्से) की इन्तेहा न थी मगर वह फ़र्ज़ शनास हुसैन[अ0स0] थे जिन्हों ने भाई की वसीयत के मुक़ाबले में अपने तमाम जोश, वलवले और तबीयत के तक़ाज़ों का ख़ून कर दिया। उन्होंने सब्र और ख़ामोशी के साथ दुश्मन की मुख़ालिफ़त को बरदाश्त किया और इमाम हसन[अ0स0] का ताबूत वापस ले जाकर जन्नतुल बक़ीअ् में दफ़्न कर दिया।

अपने मरहूम भाई इमाम हसन[अ0स0] की वसीयत के एहतेराम ही की बिना पर करबला में अपने अज़ीज़ भतीजे क़ासिम बिन हसन[अ0स0] को इजाज़ते जिहाद दी जबकि आप ख़ुद इसलिए इज़्ने जिहाद में तअम्मुल (इजाज़त नहीं दे रहे थे) फ़रमा रहे थे कि अभी क़ासिम हद्दे बुलूग़ (बालिग़ न थे) को न पहुंचे थे और जिहाद की तकलीफ़ आएद न थी।

अपनी नामज़द लड़की का यतीमे इमामे हसन[अ0स0] के साथ अक़्द कर देना भी अपने भाई की वसीयत की तामील ही में था।

जब ही तो हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] की ज़ियारत में इस सिफ़त का ख़ास तज़किरा है कि ''والى وصية اخيک مسارعا'' यानी अपने भाई की वसीयत के पूरा करने में आपने बड़ी ताजील (जल्दी) की कि कहीं वक़्त निकल न जाए और वसीयत की तामील रह न जाए।

तल्क़ीने सब्र

बलन्द मर्तबा हस्तियों के मसाएब के तज़किरे पर अश्कबार होना हक़ीक़तन उन बलन्द औसाफ़ की क़द्रो क़ीमत का इज़हार है जो उन हस्तियों के साथ उठ गए और इस लिए यह आँसू सच्चाई की शर्त के साथ बड़ी क़द्रो क़ीमत के हामिल हैं मगर किसी इन्सान का ख़्वाह वह कितना ही बलन्द मर्तबा हो ख़ुद अपनी मुसीबत पर बेताब होना और बिलख़ुसूस जबकि दुश्मनों को मज़हका (मज़ाक़ उड़ाने) का मौक़ा मिले। उस इन्सान की अज़्मते नफ़्स के ख़िलाफ़ है।

राहे हक़ में इन्सान को ख़ुद अगर मुसीबत से दोचार होना पड़े तो उसे सब्रो सुकून के साथ बरदाश्त करना शाने सिबातो इस्तेक़लाल (हिम्मत, साबित क़दम) है जो मर्तबा की रफ़अत (बलन्दी) का सबब होती है।

हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] करबला में ख़ुद साहिबे मुसीबत थे। और आप की शहादत के बाद आपके अहले हरम और बिलख़ुसूस ज़ैनब व कुलसूम साहिबे मुसीबत थीं। हज़रत ज़ैनब को मुहब्बत भी अपने भाई के साथ ग़ैर

मामूली थी। वह एक मर्तबा सिर्फ़ हुसैन[अ0स0] की ज़बान से उनकी शहादत की ख़बर के तौर पर कुछ अशआर सुन कर बेहोश हो गई थीं। इमाम हुसैन[अ0स0] को यह फ़िक्र थी कि कहीं मेरे ग़म में मेरे अहले हरम और बिलख़ुसूस मेरी बहन ज़्यादा अपना हाल तबाह न करें और कहीं ऐसा न हो कि उनका फ़ित्री इज़तेराब दुश्मनों के तान व तशनीअ् (बुरा भला) का ज़रिया बन जाए। इसलिए आपने अपनी बहन को बड़े मुअस्सिर (बा–असर) अन्दाज़ में यह वसीयत फ़रमाई कि मेरे ग़म में गरीबान न फाड़ना, मुंह पर तमांचे न मारना और वावैला व वासबूरा (फ़रयाद करना यानी हम बरबाद हो गए) कह के नौहा न करना।[1] यक़ीनन हुसैन[अ0स0] की सी बलन्द मर्तबा हस्ती के ग़म में यह तमाम बातें रवा थीं मगर अपनी बहन ज़ैनब को हुसैन[अ0स0] ख़ुद साहिबे मुसीबत होने के एतेबार से असीरी के हौलनाक माहौल और दुश्मनों के मुहासरे में ऐसे सब्रो सुकून का मुरक़्क़ा बनाना चाहते थे जो दुनिया के साहिबाने मुसीबत के लिए एक उसव–ए–हसना (नमून–ए–अमल) हो सके और हज़रते ज़ैनब[स0अ0] ने उस पर ऐसे बेहतरीन तरीक़े पर अमल किया कि ख़ुद बेताब होना कैसा वह कूफ़े की तरफ़ रवानगी के मौक़े पर और मक़्तले शोहदा में से हो कर गुज़रने के वक़्त अपने भतीजे इमाम ज़ैनुल आबेदीन[अ0स0] को दिलासा दे रही थीं जबकि वह अपने बाप के लाशे को ज़मीने गर्म पर बे दफ़्न देख कर इतना मुतअस्सिर हुए थे कि क़रीब था रूह जिस्म से मुफ़ारिक़त (अलग, परवाज़) कर जाए।

---

[1]इरशाद पेज/248

शआएरे इलाहिया(अल्लाह की निशानियाँ) का एहतेराम

इमाम हुसैन[अ0स0] ने काबे के एहतेराम को मद्दे नज़र रखने के लिए हज को तर्क किया और मुसाफ़िरत गवारा की। चुनानचे खुद फ़रमाया मैं नहीं चाहता कि मेरी वजह से ख़ान–ए–काबा की हुरमत बरबाद हो।

असलाफ़ (बुज़ुर्गों) की याद

हुसैन[अ0स0] किसी वक़्त अपने बुजुर्गों को नहीं भूले जब मदीने से रवानगी क़तई हो गई थी तो आपने आख़री शब अपने बुज़र्गों के मज़ारात की ज़ियारत के लिए मख़सूस की थी।

मक्के से चलते वक़्त जो खुत्बा पढ़ा था उसमें भी फ़रमाया था कि मैं अपने बुजुर्गों की मुलाक़ात का इतना मुशताक़ हूँ जितना याक़ूब यूसुफ़ से मुलाक़ात के मुशताक़ थे।

नहुम(9)मुहर्रम की अस्र को जिस वक़्त हमला हुआ है तो आप पर ग़नूदगी तारी थी। जनाबे ज़ैनब[स0अ0] ने बेदार किया तो फ़रमाया मैंने अपने नाना को ख़्वाब में देखा वह फ़रमा रहे थे कि अब तुम मेरे पास आने वाले हो।[1]

आशूर के दिन आपने अपने जवान फ़रज़न्द अली अकबर को इज़्ने जिहाद देने के बाद खुदा की बारगाह में हाथ उठाए और कहा खुदा वन्दा गवाह रहना कि वह जवान जा रहा है जो सूरत व सीरत व रफ़्तार व गुफ़्तार (बोलने) में तेरे रसूल[स0अ0] से मुशाबेह (मिलता) है जब हम मुशताक़ तेरे रसूल की ज़ियारत के होते थे तो उसके चेहरे पर नज़र डालते थे। इस तरह आपने अली अकबर के ग़म में अपने शदीद तअस्सुर का सबब भी ज़ाहिर कर दिया। ब–क़ौल आलिम नक़वी

शह को ग़म था शबीहे अहमद का
कब वह रोते थे अपने अकबर को

---

[1]इरशाद पेज / 243

ख़ुद्दारी

आम इन्सान ज़रा सा सख़्त मौक़ा आए तो गिड़गिड़ाने लगता है और बहुत सी ऐसी सूरतें इख़्तियार करता है जो एक खुद्दार इन्सान के शायाने शान नहीं होती।

हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] ने शुरू से आख़िर तक कोई ऐसा तर्ज़े अमल इख़्तियार नहीं किया जो अज़मते नफ़्स के ख़िलाफ़ हो।

उस वक़्त जब आप मदीने से रवाना हो रहे थे तो लोगों ने कहा था कि अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर की तरह आम रास्ते को छोड़ दीजिए और ग़ैर मारूफ़ (जो आम रास्ता न हो)रास्ते से रवाना हो जाईये। मगर हज़रत ने फ़रमाया था कि मैं मुजरिमों की तरह छुप कर जाना नहीं चाहता। मैं आम रास्ते ही से जाऊँगा।

करबला में सातवीं तारीख़ से पानी बन्द हो गया था। कोई नहीं कह सकता कि ग़िज़ा मौजूद थी, जैसा कि जनाबे शैख़ जाफ़र शुसतरी ने लिखा है। यक़ीनन ग़िज़ा भी मयस्सर न थी और इस लिए इमाम हुसैन[अ0स0] और उनके अहले हरम जिस तरह तीन दिन के प्यासे थे वह तीन दिन के भूखे भी थे लेकिन उसके बावजूद करबला में इमाम हुसैन[अ0स0] ने सवाले आब तो बार बार किया और प्यास का मुख़तलिफ़ तरह इज़हार भी किया मगर कोई तारीख़ नहीं बतला सकती कि आपने या आपके अइज़्ज़ा व अन्सार में से किसी ने भी भूख की शिकायत की हो। और ग़िज़ा के लिए सवाल किया हो।

इसका क्या सबब है? सिर्फ़ यह कि पानी मांगना उसूले शराफ़त के ख़िलाफ़ नहीं है हर आदमी दूसरे से पानी मांग लेता है मगर खाना मांगना या भूख की तकलीफ़ ज़ाहिर करना रक़ीक़ (बेइज़्ज़ती) बात है और शराफ़त के ख़िलाफ़ समझा जाता है हज़रत इमाम हुसैन[अ0स0] और उनके साथियों में से किसी ने उसको एक लमहे के लिए भी गवारा नहीं किया। बल्कि पानी का सवाल भी हक़ीक़त में कोई सवाल न था। सवाल तो उस वक़्त कहा जा सकता था कि जब उनका जमा करर्दा कोई ज़ख़ीरा पानी का होता और इमाम हुसैन[अ0स0] उसमें से तलब करते। यहाँ तो अल्लाह की जारी की हुई नहर सामने थी जिसे ब–सूरते ज़ुल्मो तशद्दुद दुश्मनों ने रोक रखा था। तो जिसे सवाल कहा जाता है वह दर हक़ीक़त एक हक़ का मुतालबा था और ज़ुल्मे नारवा (बिला वजह ज़ुल्म) के ख़िलाफ़ एहतेजाज था। इस की नौईयत उस सवाल की है ही नहीं जो किसी भी मन्ज़िल पर इज़्ज़ते नफ़्स के ख़िलाफ़ समझा जा सके।

ख़ातिम-ए-किताब

आलमे इन्सानी को इस्लाहे अमल और इत्तेबाए उसव–ए–हुसैनी (हुसैनी उसूलों पर चलने) की दावत

सन 1361 हिजरी में वाक़ेय–ए–करबला को पूरे तेरह सौ बरस का ज़माना गुज़रा और उसकी सीज़दह सद साला (1300) यादगार शर्क़ व ग़र्ब (पूरब पश्चिम) आलम में मनाई गई। जिसके ज़ैल में हर तबक़ा और हर ख़याल के लोगों ने मिल कर हुसैन बिन अली[अ0स0] की ख़िदमत में ख़िराजे अक़ीदत पेश किया।

इसी यादगार के सिलसिले में यह तारीख़ी किताब "शहीदे इन्सानियत" पेश हो रही है।

आम तौर पर वाक़ेय–ए–करबला को एक ऐसे ग़मनाक हादिसे ही की हैसियत से देखा जाता है कि जिस पर हमारा काम आँसू बहाना और इज़हारे रंजो मलाल करना हो और बस। मगर यह तो एक फ़ित्री तक़ाज़–ए–इन्सानियत है। उसको मक़सदे हुसैन[अ0स0] या अस्ल मफ़ादे वाक़ेय–ए–करबला समझना किसी तरह दुरूस्त नहीं है।

हुसैन[अ0स0] का बलन्द नस्बुल ऐन (तरीक़े) हमसे कुछ और चाहता है। वह यह कि हम अपनी सीरते ज़िन्दगी को हुसैनी सीरत के सांचे में ढालने की कोशिश करते रहें।

इमाम हुसैन[अ0स0] को इस एतेबार से निजात देहिन्दा (निजात दिलाने वाले) समझना ग़लत है कि आप ने अपने मोतक़ेदीन (चाहने वालों) को फ़राएज़ की वाजबी पाबन्दी से कुल्लियतन आज़ाद कर दिया और (माज़ल्लाह) ख़ुद उनके गुनाहों के कफ़्फ़ारे के तौर पर शहीद हो गए और यह समझना भी कि इमाम हुसैन[अ0स0] ने गुनाहगाराने उम्मत के लिए शहादत इख़्तियार की, इस मानी में हरगिज़ सही नहीं हो सकता कि गोया आपने हमको गुनाहों के इरतिकाब का जवाज़ अता कर दिया। अगर कोई इस तरह का अक़ीदा रखता है तो अपनी

ग़लत ज़हनियत की बिना पर शहादते हुसैन[अ०स०] के मक़सदे हक़ीक़ी को फ़रामोश करने का दरपै होता है।

हुसैन[अ०स०] यक़ीनन निजात देहिन्द–ए–उम्मत थे और हैं ब–ईं माना (इन माना में) कि आपने निजात का रास्ता नुमायाँ कर दिया। और एक ऐसी जमाअत की बक़ा का सामान कर दिया जो अपने अमल से निजात की हक़दार हो। अगर हुसैन[अ०स०] का करबला का जिहाद न होता तो दीनो शरीअत की अस्ल सूरत रूख़्सत हो जाती। बादशाहों की सीरत सुन्नते इलाहिया क़रार दी जाती और उनकी तक़लीद ही मेयारे नजात समझी जाती। इस तरह उम्मते इस्लामिया अबदी हलाकत में मुबतिला होती। हुसैन[अ०स०] ने अपने उसव–ए–हसना (अमल) से हमको निजात के क़ाबिल बना दिया।

हुसैन[अ०स०] ने हमारे क़वाये (सलाहियत) अमल को मुअत्तल (ख़त्म) व शल (अपाहिज) नहीं किया बल्कि आपका उसव–ए–हुसना हमारे लिए बेहतरीन मुहर्रिके अमल (नमूना)हो सकता है।

पेशवायाने मज़हब ने जो गिरया व बुका की ताकीद की और उसके लिए आख़िरत के बेहतरीन सवाब बताये। उसका फ़लसफ़ा यही था कि अगर यह सवाब हमारे पेशे नज़र होगा तो हम उनके हालात को ज़्यादा सुनने और याद करने की कोशिश करेंगे इसका असर यह होगा कि हमारे आमाल पर उसका असर पड़ेगा। अगर इतनी अहमियत इस वाक़ए को बहैसियते मुसीबत न दी गई होती तो दुनिया के तमाम दीगर वाक़ेयात की तरह यह भी तारीख़ के अवराक़ के सिपुर्द हो जाता और यह जो बच्चा बच्चा उससे वाक़िफ़ है यह कभी न होता। जब हम उससे पूरे तौर पर वाक़िफ़ ही न होते तो सबक़ क्या हासिल करते।

सीज़दह सद साला (तेरह सौ साल) यादगारे हुसैनी को इम्तियाज़ी शान के साथ क़ायम करने का भी अस्ल माहसल (निचोड़) यही है। हुसैन[अ०स०] की याद अगर पूरी ताक़त और एक नई ज़िन्दगी के साथ हमारे दिल में ताज़ा हुई है तो इसका असर हमारे किरदार पर पड़ना चाहिए।

वाक़ेय–ए–करबला हक़ीक़त में एक मदरस–ए–तरबियत है जहाँ दुनिया को मज़हब, अख़लाक़ और फ़राएज़ शनासी के उसूल बताए गए हैं। मुबारक होंगे वह अफ़राद जो उससे सबक़ हासिल करें और अपने को अमली हैसियत से वैसे ही पेश करें जैसाकि हुसैन[अ०स०] दुनिया को बनाना चाहते थे।

Mirza Jamal (mahakavi)